ओ३म्

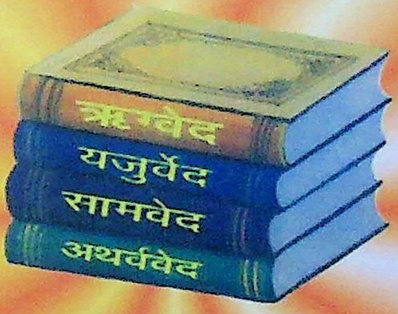
ब्राह्मी-वाक्

गुरुकुल-शोध-पत्रिका

विशेषांक

विश्व-वेद-सम्मेलनम्

२०, २१, २२ नवम्बर २००९



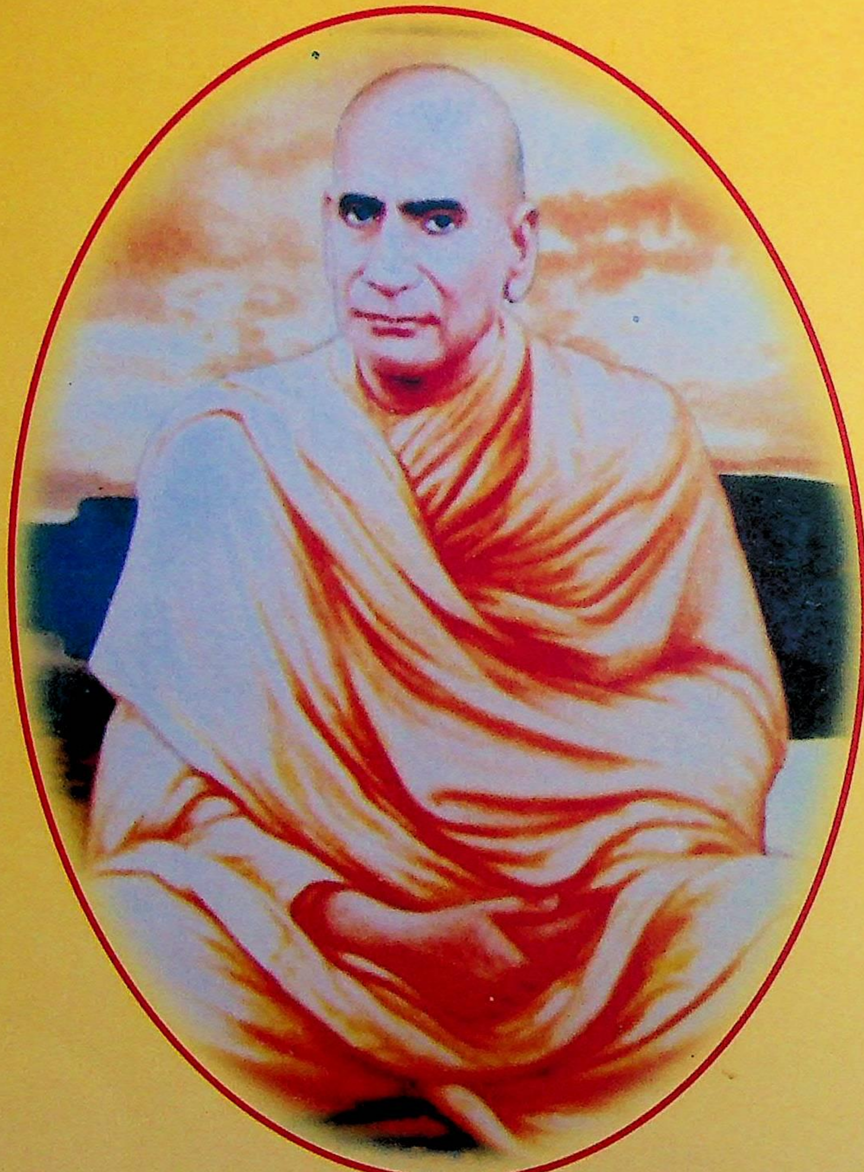
निदेशकः
प्रो० वेदप्रकाशः शास्त्री
आचार्योपकुलपतिः

सम्पादकः
प्रो० महावीरः
आयोजनसचिवः

गुरुकुल- कांगड़ी-विश्वविद्यालयः
हरिद्वारम्-249404 (उत्तराखण्डम्)

संस्थापकः
गुरुकुल-कांगड़ी-विश्वविद्यालयस्य

The Founder of
Gurukula Kangri Vishwavidyalaya



अमरहुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्दः

Swami Shraddhanand Ji

(1856 - 1926)

ओ३म्

ब्राह्मी-वाक्

गुरुकुल-शोध-पत्रिका

विशेषांक

विश्व-वेद-सम्मेलनम्

२०, २१, २२ नवम्बर २००९



निदेशकः
प्रो० वेदप्रकाशः शास्त्री
आचार्योपकुलपतिः

सम्पादकः
प्रो० महावीरः
आयोजनसचिवः

गुरुकुल- कांगड़ी-विश्वविद्यालयः

हरिद्वारम्-249404 (उत्तराखण्डम्)

ब्राह्मी-वाक्

गुरुकुल-पत्रिका

विश्व-वेद-सम्मेलन

२०,२१, २२ नवम्बर २००९

विशेषांक

संरक्षक : प्रो० स्वतन्त्र कुमार, कुलपति

निर्देशक : प्रो० वेदप्रकाश शास्त्री, उपकुलपति

प्रधान सम्पादक : प्रो० महावीर, संस्कृत विभाग
आयोजन सचिव

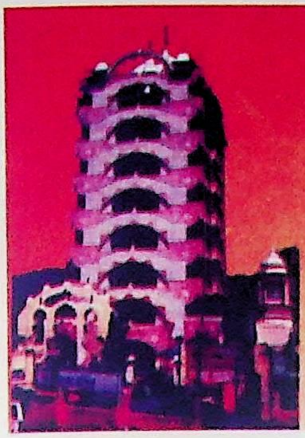
सम्पादक मण्डल : डॉ. दिनेशचन्द्र शास्त्री, वेद विभाग
प्रो० मुकेशरंजन वर्मा, अंग्रेजी विभाग
डॉ० ब्रह्मदेव विद्यालंकार, संस्कृत विभाग
डॉ० अमित कुमार चौहान
डॉ० योगेश शास्त्री
डॉ० हरीश गुरुरानी
डॉ० विजय कुमार त्यागी

प्रकाशक : डॉ० ए० के० चोपड़ा, कुलसचिव

वित्त नियन्त्रक : डॉ० डी०आर० खन्ना, वित्ताधिकारी

व्यवस्थापक : डॉ० जगदीश विद्यालंकार, पुस्तकालयाध्यक्ष

मुद्रक : किरण ऑफसैट प्रिंटिंग प्रैस
निकट गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी, सिंह द्वार
कनखल, हरिद्वार
फोन : 01334-245975, 9837007222

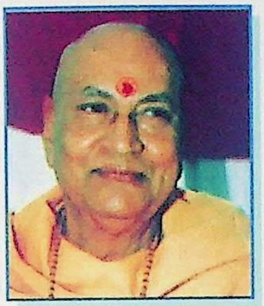


भारतमाता मन्दिर
BHARATMATA MANDIR

समन्वय कुटीर, सप्त सरोवर, हरिद्वार-249410 (उत्तराखण्ड) भारत
Samanvaya Kutir, Sapta Sarowar, Haridwar-249410 (Uttrakhand) BHARAT
Telephone : Office : 01334-326190, 260256, Fax : 01334-260981
Bharat Sadan : 01334-218014, Fax: 01334-260111

संस्थापक:
स्वामी सत्यमित्रानन्द गिरि





दिनांक : 14.9.09

सम्माननीय प्रो0 महावीर जी महोदय,

सप्रेम नारायण स्मरण।

आपका पत्र पढ़कर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार में त्रिदिवसीय विश्व वेद सम्मेलन आयोजित कर रहा है जिसमें देश–विदेश के मूर्धन्य विद्वान अपनी उपस्थिति और विचारों से सम्मेलन को गौरव प्रदान करेंगे।

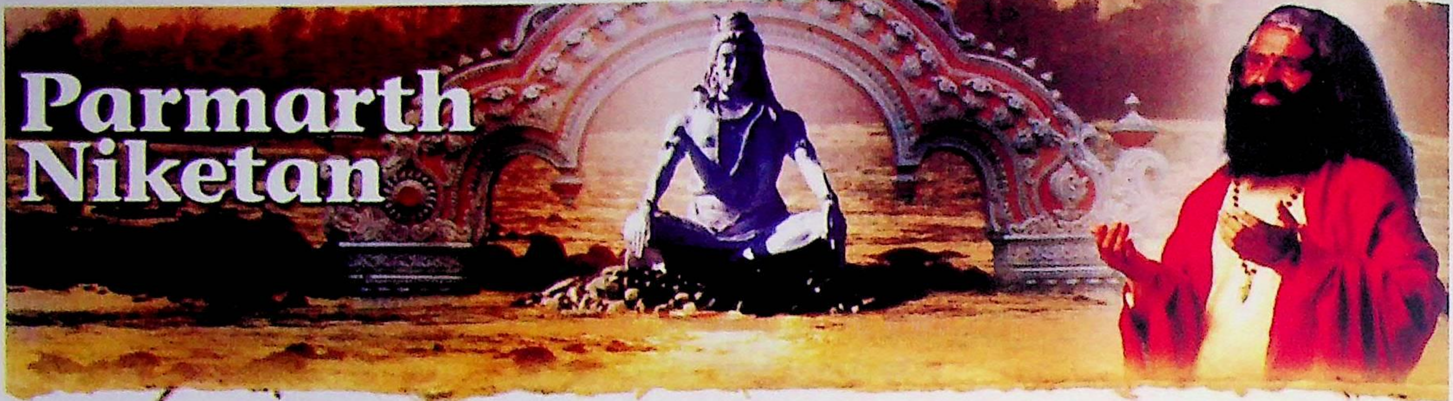
वेद ऐसा अपौरुषेय विश्व का प्रथम आर्ष ग्रंथ है जिसके दिव्य मंत्रों का भारत के प्राचीन ऋषियों ने अपनी ऋतम्भरा प्रज्ञा में दर्शन कर विश्व को ज्ञान–विज्ञान की अमूल्य धरोहर प्रदान की है। सम्पूर्ण विश्व में जो कुछ भी भौतिक जगत् का ज्ञान–विज्ञानमय चमत्कार मनुष्य और मनीषियों को व्यामोहित कर रहा है यह सब वैदिक वाङ्मय की महिमा है। वर्तमान विश्व की आज जितनी भी समस्याएं मानव को संत्रस्त कर रही हैं उनका समाधान वैदिक साहित्य को आचरण में लाने से सम्भव है।

इस अवसर पर आप आकर्षक स्मारिका प्रकाशित करने जा रहे हैं। इसके माध्यम से पाठकों के हृदय मस्तिष्क को ज्योतिर्मय वैदिक चेतना निश्चित ही आलोकित करेगी ऐसा विश्वास जगना चाहिये। सम्मेलन और स्मारिका के प्रकाशन के लिये मैं अपनी शुभकामनाएं प्रेषित करते हुए परमात्मा से प्रार्थना है कि आप और आपके सभी सहयोगियों को वे शक्ति प्रदान करें।

शेष भगवत्कृपा।

भवदीय

(स्वामी सत्यमित्रानन्द गिरि)



H.H. Pujya Swami Chidanand Saraswatiji
President, Parmarth Niketan

ॐ

परमार्थ निकेतन,
ऋषिकेश।

आदरणीय प्राध्यापक महावीरजी,
सप्रेम हरिस्मरण।

आपका पत्र प्राप्त हुआ और जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुयी कि गुरुकुल कांगडी विश्वविद्यालय भागीरथी मां गंगा के पावन तटपर स्थित हरिद्वार में विश्व वेद सम्मेलन का आयोजन हो रहा है।

'वसुधैव कुटुम्बकम्', 'सत्यं वद। धर्मं चर।', 'मातृदेवो भव', 'पितृदेवो भव', तथा 'उत्तिष्ठत जाग्रत' जैसे जीवन को सफल बनानेवाले तथा विश्वशान्ति का मार्ग प्रशस्त करने वाले वेद हमारी ही नहीं पूरे मानवजगत की अमूल्य धरोहर है। यह केवल विद्वानों की सम्पत्ति नहीं बल्कि पूरे विश्व की दौलत है।

दिव्य वेदों का परम कल्याणकारी सन्देश विश्व के कोने कोने में प्रसारित करने का यह सुन्दर संकल्प लेने के लिये मैं आपको एवं गुरुकुल कांगडी को हृदय से साधुवाद देता हूं। देश विदेश में बसनेवाले वेदविज्ञ इस सम्मेलन में हिस्सा लेंगे किन्तु पूरे विश्व में इस की विचारधारा एवं ऊर्जा जन मन को उजागर करे, प्रेरणास्रोत बने यही ठाकुर से प्रार्थना। आपके अत्यन्त सराहनीय कार्य में सफलता की मंगल प्रार्थना मैं करता हूं।

प्रभु आपके जीवन में राष्ट्रभक्ति की यह ज्योति सतत प्रज्ज्वलित रखें इसी मंगलकामना के साथ,

मानवसेवा व प्रभुसेवा में समर्पित,
आपका अपनाही,

Swami Chidanand

स्वामी चिदानन्द सरस्वती
अध्यक्ष, परमार्थ निकेतन, ऋषिकेश

प्रो. महावीर, आयोजन् सचिव, विश्व वेद सम्मेलन,
गुरुकुल कांगडी विश्वविद्यालय, हरिद्वार २४९ ४०४

Parmarth Niketan, P.O. Swargashram, Rishikesh (Himalayas), Uttarakhand -- 249304, India
Phone: 0135-2440088, 2440077 Fax: 0135-2440066, Email: swamiji@parmarth.com

देव संस्कृति विश्वविद्यालय

विश्व के सांस्कृतिक नवोन्मेष के लिए संकल्पित एक अभिनव स्थापना

संरक्षक

वेदमूर्ति, तपोनिष्ठ पं. श्रीराम शर्मा आचार्य एवं
शक्तिस्वरूपा माता भगवती देवी शर्मा

डॉ. प्रणव पण्ड्या
एमडी

कुलाधिपति	देव संस्कृति विश्वविद्यालय
प्रमुख	अखिल विश्व गायत्री परिवार
निदेशक	ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान
संपादक	अखण्ड ज्योति, युगशक्ति गायत्री
अध्यक्ष	स्वामी विवेकानन्द योग अनुसन्धान संस्थान



७ सितम्बर २००९

शुभाशंसनम्

सर्वज्ञानमयो वेदः परावाग्रूपः। न केवलं भूर्लोकेऽपि तु विश्वस्य लोकलोकान्तरेष्वपि वेदः तत्तल्लोकवासिभिः तत्तल्लोकगीःसु प्रत्यहमभ्यस्यत इत्यागमशास्त्रेषु बहुधा चर्चितम्। नित्या वेदाः शरीरमास्थाय परां देवीं स्तुवन्तीत्यपि तत्रैव प्रतिपादितम्। वेदानधीत्य त्रिकालदर्शित्वमापन्ना ऋषयो लोकमङ्गलायाहर्निशं प्रयतमाना आसन्। तेषां दृष्टिर्वैज्ञानिकी चित्तमाध्यात्मिकं हृदयं च निष्कारणकरुणावरुणालयमासीत्।

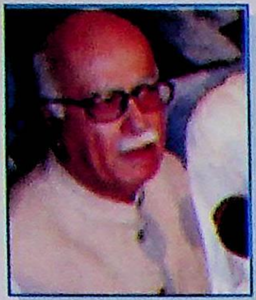
साम्प्रतिकेऽन्धवैज्ञानिके युगे आध्यात्मिकचेतनायाः सर्वथाऽभावात् सर्वत्र विध्वंसकृत्प्रवृत्तयो दरीदृश्यन्ते। विनाशोन्मुखे भीषावहेऽस्मिन्समये वैज्ञानिकाध्यात्मवाद एव एकः श्रेयस्करः पन्थाः। स च वेदानां वैज्ञानिकविचारोद्वलिताध्यात्मिकचिन्तनेन तथा प्रचारणेनैव सम्भवति।

हरिद्वारस्थगुरुकुलकाँगड़ीविश्वविद्यालयेनाऽयोजितं दिवसत्रयव्यापि विश्ववेदसम्मेलनं विश्वकल्याणमभिलक्ष्य विचारगोष्ठीः तथा प्रवर्तयिष्यति यथा ''द्यौः शान्तिः पृथिवी शान्तिः'' इति श्रुतिः चरितार्था भवेद् इत्याशास्ते-

(डॉ. प्रणव पण्ड्या)

मुख्य परिसर गायत्रीकुञ्ज-शान्तिकुञ्ज विस्तार, पोस्ट- शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार (उत्तराखण्ड) 249411, हिमालय (भारत
Tel 91-1334 260602, 260309, 260723, 261367 • Fax : 091 1334 260866
Email pranav@awgp.org, shantikunj@awgp.org • Internet www.awgp.org www.dsvv.org

लाल कृष्ण आडवाणी
नेता, प्रतिपक्ष
लोक सभा



सत्यमेव जयते

44, संसद भवन
नई दिल्ली-110 001
दूरभाष: 23016705, 23034284
फैक्स: 23017470

दिनांक 26 अगस्त 2009

संदेश

मुझे यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार, 20 से 22 नवम्बर 2009 तक विश्व वेद सम्मेलन आयोजित कर रहा है, जिसमें देश-विदेश के अनेक मूर्धन्य वैदिक विद्वान् भी सम्मिलित हो रहे हैं व इस अवसर पर एक स्मारिका भी प्रकाशित की जा रही है।

मैं विश्व वेद सम्मेलन की सपफलता की कामना करता हूँ व स्मारिका के प्रकाशन हेतु शुभकामनायें प्रेषित करता हूँ।

लाल आडवाणी

(लालकृष्ण आडवाणी)

निवास : 30, पृथ्वीराज रोड, नई दिल्ली-1100011 दूरभाष : 23794124, 23794125, फैक्स : 23017015

ओ३म्

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

हरिद्वार-249 404 (उत्तराखण्ड)



सुदर्शन शर्मा
कुलाधिपति
गुरुकुल कांगड़ी वि.वि. हरिद्वार

शुभ कामनाएं

यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हो रही है कि गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के पावन परिसर में 20.21. 22 नव. को विशाल विश्व-वेद-सम्मेलन आयोजित किया जा रहा है और इस समारोह में देश के उच्च कोटि के विद्वान् पधार रहे हैं।

वेद ईश्वरीय ज्ञान है। परमकृपालु परमेश्वर ने मानव मात्र के कल्याण के लिये वेदों का पवित्र ज्ञान ऋषियों के अन्त:करणों में प्रकाशित किया था। हम भारतीयों का दृढ़ विश्वास है कि चारों वेदों में ज्ञान की अनेक धाराएं प्रवाहित हो रही हैं। प्रेम, दया, करुणा और विश्वबन्धुत्व का सन्देश प्रदान करने वाले वैदिक वाङ्मय का महत्त्व प्रत्येक देश एवं प्रत्येक काल में समान रूप से रहता है।

विश्व-वेद-सम्मेलन में पधारने वाले विद्वान् और विदुषियां अपने-अपने शोधपत्रों के माध्यम से जो श्रेष्ठ विचारों का अमृत प्रदान करेंगे उससे मानवता की रक्षा होगी।

मैं देश के विभिन्न भागों से पधारने वाले महानुभावों का हार्दिक स्वागत करता हूँ तथा इस सुन्दर आयोजन के लिये विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. स्वतन्त्रकुमार, उपकुलपति प्रो. वेदप्रकाश एवं आयोजन सचिव प्रो. महावीर को हार्दिक बधाई एवं शुभकामना प्रदान करता हूँ।

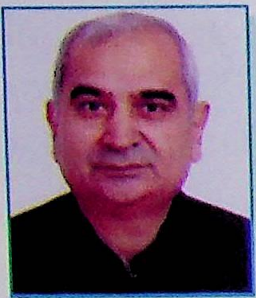
मंगलाभिलाषी

सुदर्शन शर्मा
कुलाधिपति

ओ३म्

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

हरिद्वार-249 404 (उत्तराखण्ड)



पद्मभूषण वैद्य देवेन्द्र त्रिगुणा
परिद्रष्टा
गुरुकुल कांगड़ी वि.वि. हरिद्वार

शुभ कामनाएं

प्राचीनतम काल से वैदिक संहिताओं को समस्त ज्ञान-विज्ञान का मूल माना जाता है। आध्यात्मिक सम्पदा से परिपूर्ण वेदों में भौतिकविज्ञान के असंख्य सूत्र विद्यमान हैं। आयुर्विज्ञान की उत्पत्ति वेद से ही मानी जाती है। आज यह सत्य सर्व स्वीकार्य हो गया है कि आयुर्वेद सर्वोत्तम चिकित्सा पद्धति है।

मुझे यह जानकर अत्यन्त हर्ष हो रहा है कि गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के पावन परिसर में समायोजित विश्व-वेद सम्मेलन में बहुत बड़ी संख्या में विद्वान् पधार रहे हैं और इसमें आयुर्वेद के भी अनेक विद्वान् सम्मिलित हैं।

हिमालय के चरणों में भगवती भागीरथी के पावन तट पर महाकुम्भ से पूर्व इस प्रकार का यह आयोजन निश्चय ही अभिनन्दनीय है। इस उत्तमोत्तम आयोजन के लिये आयोजन समिति को बधाई और शुभकामनाएं प्रदान करता हूँ और अभ्यागत मनीषियों का हार्दिक स्वागत एवं अभिनन्दन करता हूँ।

पद्मभूषण वैद्य देवेन्द्र त्रिगुणा
परिद्रष्टा
गुरुकुल कांगड़ी वि.वि. हरिद्वार

डा. रमेश पोखरियाल 'निशंक'

मुख्यमंत्री, उत्तराखण्ड

उत्तराखण्ड सचिवालय,
देहरादून - 248001
फोन : 0135-2656068 (का.)
0135-2665090
0135-2531533 (नि.)
फैक्स : 0135-2712827

संख्या: उ0-1260 मु.मं.का./नि./09
दिनांक 12-नवम्बर 09



संदेश

मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हो रही कि **'गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार (उत्तराखण्ड)'** द्वारा दिनांक 20-22 नवम्बर, 2009 को **'विश्व वेद सम्मेलन'** का आयोजन किया जा रहा है, तथा इस अवसर पर **'स्मारिका'** भी प्रकाशित होगी।

'विश्व वेद सम्मेलन' के अवसर पर प्रकाशित होने वाली **'स्मारिका'** के सफल प्रकाशन की कामना के साथ विश्वविद्यालय परिवार को मेरी ओर से ढ़ेर सारी शुभकामनाएं प्रेषित हैं।

(डा0 रमेश पोखरियाल 'निशंक')

डा. रमेश पोखरियाल 'निशंक'



मुख्यमंत्री, उत्तराखण्ड

उत्तराखण्ड सचिवालय,
देहरादून-248001
फोन : 0135-2656068 (का.)
0135-2665090
0135-2531533 (नि.)
फैक्स : 0135-2712827

संख्या 10-1260 मु.मं.का./नि./09

दिनांक 12-नवम्बर 09

संदेश

मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हो रही कि **'गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार (उत्तराखण्ड)'** द्वारा दिनांक 20-22 नवम्बर, 2009 को **'विश्व वेद सम्मेलन'** का आयोजन किया जा रहा है, तथा इस अवसर पर **'स्मारिका'** भी प्रकाशित होगी।

'विश्व वेद सम्मेलन' के अवसर पर प्रकाशित होने वाली **'स्मारिका'** के सफल प्रकाशन की कामना के साथ विश्वविद्यालय परिवार को मेरी ओर से ढ़ेर सारी शुभकामनाएं प्रेषित हैं।

(डा0 रमेश पोखरियाल 'निशंक')

ओ३म्

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

हरिद्वार-249 404 (उत्तराखण्ड)



प्रो० स्वतन्त्र कुमार
कुलपति

सुस्वागतम्

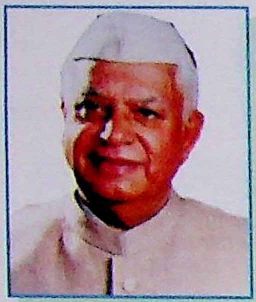
अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द की पुण्यभूमि में देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों से पधारने वाले वैदिक विद्वानों, विदुषियों का हार्दिक स्वागत एवं अभिनन्दन करते हुए मुझे अपार हर्ष हो रहा है। युगप्रवर्त्तक, आदित्य ब्रह्मचारी, महर्षि दयानन्द सरस्वती इस पवित्र भारतवर्ष में वैदिक ज्ञान गंगा प्रवाहित करना चाहते थे। उनके संकल्पों को साकार रूप प्रदान करने के लिये स्वामी श्रद्धानन्द ने गंगा के पावन तट पर 4 मार्च 1902 में गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की स्थापना की थी। स्थापना काल से ही यह विश्वविद्यालय वेद, दर्शन, आयुर्वेद, योग आदि विषयों में उच्च स्तरीय अध्ययन-अध्यापन के साथ-साथ अनुसन्धान एवं प्रकाशन कार्य में संलग्न है। गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के यशस्वी स्नातकों एवं आचार्यों ने वैदिक विषयों पर उच्चकोटि का लेखन कार्य किया है। हमारा यह भी प्रयास रहा है कि समय-समय पर विशाल वैदिक-शोध-सम्मेलनों के माध्यम से वेद का सन्देश जन-जन तक पहुंचे। 20, 21, 22 नवम्बर का विश्व-वेद-सम्मेलन इस दिशा में एक विनम्र प्रयास है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि अतिथि विद्वान तीन दिन तक जो विचारों का आदान-प्रदान करेंगे, उससे उत्तम विचारों की गंगा प्रवाहित होगी।

मैं आयोजन की सफलता के लिए अपनी शुभकामनाएं प्रदान करते हुए पुनः अभ्यागत विद्वानों का स्वागत करता हूं।

प्रो० स्वतन्त्र कुमार
कुलपति
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार

नारायण दत्त तिवारी

राज भवन
हैदराबाद - 500 041



सत्यमेव जयते

दिनांक 26 अगस्त 2009

संदेश

यह जानकर प्रसन्नता हो रही है कि गुरुकुल कांगडी विश्वविद्यालय हरिद्वार आगामी 20 से 22 नवम्बर, 2009 तक विश्ववेद सम्मेलन का आयोजन किया जा रहा है। विश्व के विविध विधाओं में निष्णात, देश के कर्णधार एवं लब्ध प्रतिष्ठित विद्वानों की उपस्थिति में यह सम्मेलन हासिल करेगा ऐसी आशा करता हूँ।

मैं गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय द्वारा किये जा रहे इस सद्प्रयास की सराहना करता हूँ आयोजनकर्ताओं को अपनी बधाई देता हूँ तथा आयोजन की सफलता की कामना करता हूँ।

(नारायणदत्त तिवारी)

प्रो. महावीर
आयोजन-सचिव, विश्व वेद सम्मेलनम्
गुरुकुल-कांगडी-विश्वविद्यालय
हरिद्वार
उत्तराखण्ड



मुख्यमंत्री
राजस्थान

सत्यमेव जयते

22 सितम्बर 2009

संदेश

मुझे यह जानकर प्रासन्नता है कि गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार (उत्तराखण्ड) के तत्वावधान में 20 से 22 नवम्बर, 2009 तक विश्व वेद सम्मेलन का आयोजन और इस अवसर पर स्मारिका का प्रकाशन किया जा रहा है।

देववाणी संस्कृत के अनुपम ग्रंथ विश्व के प्राचीनतम ग्रंथों की श्रेणी में आते हैं। इनमें निहित ज्ञान-विज्ञान को प्रकाशमान करने के लिये ऐसे सम्मेलन महत्वपूर्ण हैं। आवश्यकता इस बात की है कि ऐसे सम्मेलनों के माध्यम से वैदिक विधाओं की जानकारी आम लोगों तक पहुंचाने की दिशा में चिन्तन किया जाय।

आशा है सम्मेलन में शामिल देश-विदेश के वैदिक विद्वानों के विचार और निष्कर्ष हमारी गौरवपूर्ण विरासत एवं संस्कृत भाषा की महत्ता का बढाने में सहायक होंगे।

मैं इस सम्मेलन और स्मारिका के प्रकाशन की सफलता के लिये अपनी हार्दिक शुभ कामनाऐं प्रेषित करता हूं।

(अशोक गहलोत)

शिवराज सिंह चौहान
मुख्यमंत्री



सत्यमेव जयते

मध्यप्रदेश शासन
भोपाल – 462004

15 सितम्बर, 2009

संदेश

यह प्रसन्नता का विषय है कि गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार द्वारा 20–22 नवम्बर 2009 को विश्व वेद सम्मेलन का आयोजन किया जा रहा है।

वेद, भारतीय संस्कृति और मनीषा के सबसे पहले और संहिताबद्ध ग्रंथ है। वेदों का अध्ययन न केवल भारत वर्ष बल्कि विश्व के लिये भी मार्गदर्शी और नियामक प्रमाणित हुआ है। मुझे विश्वास है कि विश्व वेद सम्मेलन वेदों के बारे में विश्वव्यापी विश्लेषण का सार्थक मंच प्रमाणित होगा।

सम्मेलन के सफल आयोजन और इस अवसर पर प्रकाशित की जा रही स्मारिका के लिए शुभकामनाओं सहित।

शि. रा. चौ.

(शिवराजसिंह चौहान)

प्रेम कुमार धूमल

मुख्य मंत्री

एलर्जली

शिमला – 171002



संदेश

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हो रही है कि गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार, में 20 से 22 नवम्बर, 2009 को विश्व वेद सम्मेलन का आयोजन किया जा रहा है जिसमें विश्व के विभिन्न भागों से मूर्धन्य वैदिक विद्वानों के भाग लेने की आशा है।

वेद और पुराण विश्व के सबसे प्राचीन धर्म ग्रंथ है जिन्हें हमारे ऋषि मुनियों ने अपने अनुभव और आलोकिक ज्ञान से सृजित किया है तथा आज विश्व के अनेकों देशों में इनमें उल्लिखित तथ्यों पर गहन शोध हो रहा है । भारतीय संस्कृति ब्रम्हाण्ड पर सबसे पुरातन संस्कृति है जिससे समूचा विश्व प्रभावित रहा है।

मैं आशा करता हूँ कि विश्व वेद सम्मेलन में इन ग्रंथों का ज्ञान विश्व के हर कोने तक पहुँचाने और उनसे मानवता का कल्याण करने की विधियों की जानकारी हर व्यक्ति तक पहुँचाने, के उपायों पर विद्वानों द्वारा गहन विचार विमर्ष होगा और निश्चय ही यह सम्मेलन भारत को आध्यात्मिय रूप में विश्व गुरू बनाने की दिशा में मार्गदर्शक हो सकेगा।

सम्मेलन के सफल आयोजन के लिए मेरी हार्दिक शुभकामनाएं।

प्रेम धूमल

(प्रेम कुमार धूमल)

शीला दीक्षित
मुख्य मंत्री



सत्यमेव जयते

राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली सरकार
दिल्ली सचिवालय आई.पी. एस्टेट,
नई दिल्ली - 110002

अ.शा. पत्र संख्या : OSD CM/417
दिनांक : 14.9.2009

संदेश

मुझे यह जानकर बेहद खुशी हुई कि **गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार** आगामी 20 से 22 नवम्बर, 2009 को **विश्व वेद सम्मेलन** का आयोजन करने जा रहा है। इस अवसर पर एक स्मारिका का प्रकाशन भी किया जा रहा है। आशा है स्मारिका वेद के बारे में अधिकाधिक जानकारी लोगों तक पहुँचाने में उपयोगी सिद्ध होगी।

मैं सम्मेलन के सफल आयोजन तथा स्मारिका के सफल प्रकाशन के लिए अपनी शुभकामनाएं प्रेषित करती हूँ।

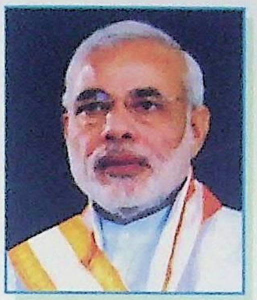
शीला दीक्षित

(शीला दीक्षित)

फोन : ऑफिस - 23392020, 23392030 फैक्स : 23392111

नरेन्द्र मोदी

मुख्य मंत्री, गुजरात राज्य



सत्यमेव जयते

दिनांक : 27-08-09

संदेश

वेद विश्व का सबसे प्राचीन ग्रंथ है । भारतीय संस्कृति में वेद के मंत्रदृष्टा ऋषियों के माध्यम से दिया गया दिव्य ज्ञान है । हमारी संस्कृति की यह प्राचीन धरोहर है । हजारो वर्ष पूर्व एक सुसंस्कृत समाज और पूर्ण विकसित सभ्यता का प्रतीक यह ज्ञान आज भी इतना ही प्रस्तुत है ।

गुरुकुल - कांगड़ी - विश्वविद्यालय हरिद्वार द्वारा विश्व - वेद - सम्मेलन दि. २०, २१, २२ नवम्बर २००९ में आयोजित हो रहा है यह जानकर प्रसन्नता हुई ।

इस अवसर पर प्रकाशित होने वाली **स्मारिका** के प्रकाशन की सफलता हेतु हार्दिक शुभकामना ।

आपका,

(नरेन्द्र मोदी)

प्रति,
प्रो. महावीर - *आयोजन सचिव,*
विश्व वेद सम्मेलन,
गुरुकुल - कांगड़ी - विश्वविद्यालय,
हरिद्वार - उत्तराखंड.

बी. एल. जोशी
राज्यपाल, उत्तर प्रदेश



सत्यमेव जयते

राज भवन
लखनऊ-227 132

दिनांक : 07 सितम्बर, 2009

सन्देश

मुझे यह जानकर अतीव प्रसन्नता हुई कि गुरूकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार द्वारा आगामी 20 से 22 नवम्बर, 2009 तक "विश्व वेद सम्मेलन" का आयोजन किया जा रहा है, जिसमें देश–विदेश के अनेक मूर्धन्य वैदिक विद्वान उपस्थित होंगे। इस अवसर पर एक स्मारिका भी प्रकाशित की जायेगी।

वेद, पुराण और गीता केवल हमारे धार्मिक ग्रन्थ ही नहीं, बल्कि भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग हैं, जिसमें मानव–कल्याणार्थ धर्म, कर्म ,अर्थ और मोक्ष का रहस्य समाहित है। मुझे आशा है कि हरिद्वार की पावन नगरी में आयोजित इस विश्व वेद सम्मेलन में आने वाले मूर्धन्य वैदिक विद्वानों के आपसी विचार–विमर्श से इसका और महत्व बढ़ेगा।

विश्व वेद सम्मेलन के सफल आयोजन के लिये मैं अपनी हार्दिक शुभकामनाएँ प्रेषित करता हूँ।

बी एल जोशी

(बी०एल०जोशी)

मेजर जनरल
भुवन चन्द्र खण्डूड़ी ए वी एस एम
(से. नि.)
Major General
Bhuwan Chandra Khanduri AVSM
(Retd.)

पूर्व मंत्री भारत सरकार
पूर्व मुख्यमंत्री उत्तराखण्ड
विधायक-धुमाकोट
Former Minister Govt. of India
Former Chief Minister Uttarakhand
MLA-Dhumakot

दिनांकः—13.9.2009



सन्देश

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि गुरुकुल कांगड़ी—विश्वविद्यालय, हरिद्वार द्वारा विश्व वेद सम्मेलन आयोजित किया जा रहा है । इस सम्मेलन में देश विदेश के अनेक मूर्धन्य वैद्यिक विद्वान पधार रहे हैं । इस सम्मेलन के शुभ अवसर पर विश्वविद्यालय द्वारा एक स्समारिका का भी प्रकाशन किया जा रहा है ।

मैं इस स्मारिका की सफलता की कामना करता हूँ और इसकी सफलता के लिये अपनी शुभकामनायें प्रेषित करता हूँ ।

(भुवन चन्द्र खण्डूड़ी)

सर्किट हाउस एनेक्सी, न्यू कैन्ट रोड, देहरादून - 248001 (उत्तराखण्ड), 0135-2754316, टेलीफैक्स : 2755100
Circuit House Annexe, New Cantt Road, Dehradun - 248001 (Uttarakhand), 0135-2754316, Telefax : 2755100

हरीश रावत
HARISH RAWAT



सत्यमेव जयते

D. O. No. 2/C(10)/MOS/L&E/VIP/2009
श्रम एवं रोजगार राज्य मंत्री
भारत सरकार, नई दिल्ली
MINISTER OF STATE
FOR LABOUR & EMPLOYMENT
GOVERNMENT OF INDIA
NEW DELHI

8 सितम्बर, 2009

आदरणीय प्रो० महावीर जी,

यह अत्यन्त हर्ष का विषय है कि गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार द्वारा विश्व को वेद के आलोक से आलोकित करने की संकल्पना से 20, 21, 22 नवम्बर, 2009 को विश्व वेद सम्मेलन का आयोजन किया जा रहा है, जिसमें देश-विदेश के अनेक मूर्धन्य वैदिक विद्वान् पधार रहे हैं।

प्राचीन्काल से ही हमारे वेद सभी धर्मों, सम्प्रदायों और समाज के विभिन्न वर्गों को जोड़ने की प्रेरणा व मार्गदर्शन, सर्वधर्म सम्भाव व धार्मिक विश्वास के आदर की शिक्षा देने का कार्य करते आ रहे हैं। मैं समझता हूँ कि गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार द्वारा आयोजित विश्व वेद सम्मेलन निश्चित रूप से हरिद्वार की इस महान् धरती के प्रति आस्था व विश्वास की परम्परा को मजबूती प्रदान करने में सहायक सिद्ध होगा।

मुझे विश्वास है कि प्रकाशित स्मारिका सम्मानित पाठकों के लिए ज्ञानवर्धक एवं मार्गदर्शक सिद्ध होगी। स्मारिका के सफल प्रकाशन हेतु मेरी हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएं।

आदर सहित,

आपका,

(हरीश रावत)

प्रकाश पन्त

मंत्री,
पेयजल, श्रम, विधायी, संसदीय कार्य,
नियोजन, पुनर्गठन, निर्वाचन,
बाह्य सहायतित परियोजनायें
उत्तराखण्ड

उत्तराखण्ड शासन

विधान भवन,
देहरादून–248001
दूरभाष : 2665088 (कार्यालय)
2665988 (फैक्स)
2748200 (आवास)

दिनांक – 14/09/09

सन्देश



मुझे यह जानकर अति प्रसन्नता हो रही है कि गुरुकुल–कांगड़ी–विश्वविद्यालय हरिद्वार (उत्तराखण्ड) द्वारा सम्पूर्ण विश्व को वेद के आलोक से आलोकित करने की संकल्पना से दिनांक ***20–11–2009 से 22–11–2009 विश्व वेद सम्मलेन*** का आयोजन किया जा रहा है। इस सम्मलेन के आयोजन से निःसन्देह भारत वर्ष एक विश्व गुरु के रूप में पहचान बनाने में अपनी अमिट छाप छोड़ेगा तथा अन्य देशों से इस सम्मलेन में अनेक विद्वानों के प्रतिभाग करने पर भारत वर्ष की संस्कृति का भी व्यापक प्रचार–प्रसार होगा। यह भी हर्ष का विषय है कि इस शुभअवसर पर एक आकर्षक स्मारिका का भी प्रकाशन किया जा रहा है। इस स्मारिका के प्रकाशन से इस सम्मलेन के मधुर क्षणों का भी उसमें निःसन्देह समावेश होगा।

मैं इस सम्मेलन के सफल आयोजन एवं उक्त स्मारिका के सफल प्रकाशन के लिए अपनी हार्दिक शुभकामनाएं प्रेषित करता हूँ।

(प्रकाश पन्त)

निवास : 17-ए, न्यू कैण्ट रोड, देहरादून - 248001

पतंजलि विश्वविद्यालय, हरिद्वार

(उत्तरांचल विधान मंडल द्वारा पारित पतंजलि विश्वविद्यालय अधिनियम संख्या ४, वर्ष २००६ के अन्तर्गत स्थापित)

UNIVERSITY OF PATANJALI, HARDWAR

(Established by Uttaranchal State Legislature under the University of Patanjali Act No. 4, year 2006)

क्रमांक U.O.P./H.R.C.F./Greetings/BH-1
Sl. No.

दिनांक : 10.09.2009
Dated :

सन्देश



मुझे यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार 20, 21 एवं 22 नवम्बर 2009 को 'विश्व वेद सम्मेलन' का आयोजन कर रहा है तथा इस अवसर पर पदवाक्यप्रमाणज्ञ वेदवित् विद्वानों के शोधपूर्ण आलेखों व शोध निष्कर्षों को भी एक 'स्मारिका' के रूप में प्रकाशित किया जा रहा है।

वस्तुतः वेद विश्वमानव की सम्पत्ति हैं। देश, काल, जाति, वर्ग या सम्प्रदाय से ऊपर उठकर वेद की ज्योत्सना सभी को आह्लादित करती है। भारतीय मनीषी वेदों को सर्वज्ञानमय मानते रहे हैं। भारतीय शास्त्रपरम्परा एवं तर्कपरम्परा में वेद अन्तःप्रमाण के रूप में मान्य हैं। प्राक्तन आचार्यों ने एक स्वर से वेद के नित्यत्व को स्वीकार किया है। वैदिकों की समस्त साहित्यिक और सांस्कृतिक साधना तथा चेतना का विस्तार वेद से ही था तथा समस्त व्यावहारिक और पारमार्थिक जीवनचर्या श्रुति का समांदर करते हुए ही अर्थवान थी ।

वेदाध्ययन की प्राचीन परम्परा के समानान्तर साम्प्रतिक युग में इसके अध्ययन की एक प्रभावशाली नूतन परम्परा ने जन्म लिया है। प्राच्य आचार्यों की वेदविषयक घोषणाओं का नूतन शोध प्रविधि के द्वारा परीक्षण, प्रशिक्षण एवं मूल्यांकन किया जा रहा है। नये युग में वेदों की वैज्ञानिक प्रासांगिकता बनाये रखने के लिए यह आवश्यक भी है। मुझे विश्वास है कि इस सम्मेलन में एकत्रित हो रहे विश्व के मूर्धन्य मनीषियों के शोध निष्कर्ष वैदिक गवेषणा को व्यापक आयाम प्रदान कर सकेंगे। इससे वेदों के सर्वातिशायी महत्त्व में और अभिवृद्धि होगी। मैं इस सम्मेलन की सफलता की कामना करता हूं तथा आयोजन समिति को इस गरिमापूर्ण आयोजन के लिए बधाई देता हूं।

(आचार्य बालकृष्ण)
कुलपति
पतंजलि विश्वविद्यालय
दयानन्द ग्राम, बहादराबाद
हरिद्वार (उत्तराखण्ड)

शिविर कार्यालय : पतंजलि योगपीठ, महर्षि दयानन्द ग्राम, दिल्ली-हरिद्वार राष्ट्रीय राजमार्ग, निकट बहादराबाद, हरिद्वार-249402, उत्तराखण्ड, भारत
फोन : 01334 - 242526 ई-मेल : uopyp2009@gmail.com
Camp Office : Patanjali Yogpeeth, Maharishi Dayanand Gram, Delhi-Haridwar National Highway, Near Bahadrabad, Haridwar-249402, Uttarakhand, India
Tel. : 01334 - 242526 E-mail : uopyp2009@gmail.com

प्रो. वाचस्पति उपाध्याय
कुलपति
Prof. Vachaspati Upadhyaya
Vice-Chancellor



श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ
(मानित विश्वविद्यालय)
कुतुब इन्स्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली-110 016
Shri Lal Bahadur Shastri Rashtriya Sanskrit Vidyapeetha
(Deemed University)
Qutub Institutional Area, New Delhi-110016

दिनांक : 11.09.2009/662

नान्दीवाक्

मुझे यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि पुण्यप्रदेश उत्तराखण्ड के तपःपूत अञ्चल हरिद्वार में परमश्रद्धेय स्वामी श्री श्रद्धानन्द जी महाराज के करकमलों द्वारा संस्थापित गुरुकुल-कांगड़ी-विश्वविद्यालय के पुनीत-प्रांगण में त्रिदिवसीय विश्ववेदसम्मेलन का समायोजन दिनांक 20.11.2009 से 22.11.2009 तक सम्पन्न होने जा रहा है । यह विश्वविद्यालय वैदिक मूल्यों के संरक्षण एवं संवर्धन में सदा से ही सतत् प्रयत्नशील है ।

इस परम पुनीत शुभ अवसर पर एक स्मारिका का प्रकाशन भी संकल्पित है, जिसमें इस सारस्वत समारोह में पधारे वैदिक मनीषियों के द्वारा विचारित परिचर्चा परस्पर संवाद एवं परिशीलन से निर्णीत निष्कर्षों का भव्य प्रकाशन किया जायेगा, जो निश्चय ही हमारे लिए शास्त्रसंरक्षण की दिशा में पाथेय सिद्ध होगा ।

यह सर्वविदित है कि वेद भारतीय संस्कृति के प्राणभूत हैं । वैदिक धर्म तथा भारतीय संस्कृति के विशुद्ध रूप को समझने के लिए आज वेदाध्ययन की अत्यन्त आवश्यकता है । यह अमर विद्या ऋषियों की उत्कट साधना से सम्पन्न आज भी अपने मौलिक रूप में विद्यमान है जो धरोहर के रूप में हमें यह प्राप्त हुई है, जिसके प्रचार-प्रसार एवं रक्षण का दायित्व हमें प्राप्त है, जिसके लिए वेद का वचन है **''गोपाय मां शेवधिष्टेऽहमस्मि''** ।

आज इस वैश्वीकरण के युग में जितनी भी समस्यायें सामने है, उनका मूल कारण अज्ञान है जिसका एकमात्र समाधान वेद ही है क्योंकि वेद ज्ञान स्वरूप हैं ज्ञान से ही अज्ञान नष्ट होता है, इसीलिए वेद को **''सर्वज्ञानमयो हि सः''** कहा गया है । वेद की उपेक्षा अपने कल्याण की उपेक्षा है । यह वेद विद्या मानवमात्र की स्वस्तिवाचिका है । अस्तु,

यह महान आयोजन प्राकृतिक सुषमा से सम्पन्न एवं पुण्यसलिला भगवती भागीरथी के पुनीत तट पर सम्पन्न होने जा रहा है । महान भारत का यह प्रशस्त प्रदेश न केवल भारतीय संस्कृति को ही, अपितु विश्व संस्कृति को अपनी आध्यात्मिक ऊर्जा एवं प्राकृतिक रमणीयता से सदा से ही प्रभावित किया है । यह धरित्री न केवल महर्षियों की साधनास्थली ही है अपितु ज्ञानगंगा की प्रसवस्थली भी है।

मेरा विश्वास है कि इस प्रकार का विश्ववेद सम्मेलन इसकी प्राचीन परम्परा को सुरक्षित रखते हुए वैदिक मूल्यों को परवर्त्ती परम्परा में संक्रमित करने हेतु एक सार्थक सत्प्रयास सिद्ध होगा ।

इस अवसर पर विश्ववेद सम्मेलन के समस्त सहयोगियों को सोत्साह प्रवृत्त होने के लिए हार्दिक बधाई देता हूँ तथा समारोह की निर्विघ्न सम्पन्नता हेतु अपनी मंगल कामनायें प्रेषित कर रहा हूँ ।

16/9/09
(वाचस्पति उपाध्याय)

Tel. : (Off.) 26851253, 26564003 (Resi.) 26851250, 26855099 Fax : 011-26520255
E-mail : vu_vidyapeetha@hotmail.com, vcslbsrsv@yahoo.co.in

प्रो. वेम्पटि कुटुम्ब शास्त्री
कुलपति
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय
वाराणसी - २२१००२

दूरलेख : 'श्रुतम्'
दूरभाष कार्यालय : (०५४२) २२०४०८९
निवास : (०५४२) २२०४२१३
: (०५४२) २२०६६१७
फैक्स : (०५४२) २२०६६१७

पत्राङ्क V.C/28/2009

दिनाङ्क 16.9.09

प्रिय प्रो० महावीर जी,

आपका पत्र दिनांक 10-08-09 प्राप्त हुआ। मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव हुआ कि हिमालय की पवित्र-स्थली पर आगामी 20, 21, 22 नवम्बर, 2009 को त्रि-दिवसीय विश्व वेद सम्मेलन का आयोजन गुरूकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार के तत्वावधान में होने जा रहा है। साथ ही इस अवसर पर एक भव्य स्मारिका के प्रकाशन का भी संकल्प है। एतदर्थ बधाई है।

भारतीय परम्परा में वेद को ऋषियों का परिपूर्ण ज्ञान माना जाता है। इस आस्था से वैदिक अर्थों के प्रति नई श्रद्धा के भाव की अनुभूति होती है। मानव की सुख-समृद्धि एवं जीवन को व्यवहार में जीने की कला वेद में ही बताई गयी है। मुझे आशा है विश्व वेद सम्मेलन की अवसर पर वैदिक एवं शास्त्रीय पक्ष का विभिन्न चर्चाओं के माध्यम से समाज को एक नई दिशा प्राप्त होगी।

इस अवसर पर सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय परिवार की ओर से मेरी हार्दिक बधाई एवं शुभकामना है। बाबा विश्वनाथ एवं माँ अन्नपूर्णा से इस स्मारिका की सफल प्रकाशन के लिए कामना है।

अनन्त मंगलकामनाओं सहित।

भवदीय

16-9-09.

(प्रो० वेम्पटि कुटुम्ब शास्त्री)
कुलपति

E-mail : vc.ssvv@gmail.com ❖ Website : www.ssvv.up.nic.in

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
नई दिल्ली-११००६७
NEW DELHI-110067

Professor B.B. Bhattacharya
Vice-Chancellor

दिनांक 01 सितम्बर, 2009



सन्देश

मुझे यह जानकर अत्यधिक प्रसन्नता हो रही है कि गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार दिनांक 20–22 नवम्बर 2009 को विश्व वेद सम्मेलन आयोजित करने जा रहा है। गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय सदैव वैदिक शिक्षा के लिए पूरे विश्व में एक अग्रणी संस्थान के रूप में जाना जाता है। वेद जो हमारी संस्कृति और ज्ञान का स्रोत हैं, उन पर विश्व स्तरीय सम्मेलन आयोजित करना अपने आप में ही एक प्रशंसनीय कार्य है। मुझे ज्ञात हुआ है कि इस सम्मेलन में देश–विदेश के प्रसिद्ध वैदिक विद्वान विज्ञान और समाजशास्त्र से जुड़े महत्वपूर्ण विषयों पर अपने–अपने विचार प्रस्तुत करेंगे।

मैं इस सम्मेलन के आयोजकों एवं देश–विदेश से आए प्रतिभागी विद्वानों को इस सम्मेलन की सफलता के लिए अपनी शुभकामनाएँ भेजता हूँ।

(बी.बी. भट्टाचार्य)

Tel. : 26717500, 26704001, 26717676, Ext. 4001 ☐ **Res.** 26717555, 26704733, 26177641
☐ **Gram :** JAYENU ☐ **Fax :** +91-11-26717580 ☐ **E-mail :** vc@mail.jnu.ac.in; bbb@mail.jnu.ac.in

GRAMS : VIDYAPEETHA

Prof. HAREKRISHNA SATAPATHY
VICE CHANCELLOR

RASHTRIYA SANSKRIT VIDYAPEETHA
(University established under sec. 3 of UGC Act, 1956)
TIRUPATI – 517 064 (A.P.)
(Accredited at A+ Level by NAAC)

Office : Ph. 0877 - 2287680
Fax : 2287838
Residence : Ph. : 2287826
Fax : 2286349
E-mail : hks_vc@yahoo.co.in

"Centre of Excellence in the Subject of Traditional Sastras"



शुभकामना :

महान् आनन्दस्य विषय : यत् हरिद्वारस्थितगुरुकुलकाङ्गडीविश्वविद्यालयपक्षत : विश्ववेदसम्मेलनस्य आयोजनं क्रियते । इदं सम्मेलनं नवम्बरमासस्य २०-२२ दिनाङ्केषु अनुष्ठास्यते ; यत्र भारतवर्षस्य विभिन्नेभ्य : स्थानेभ्य : तथा विश्वस्य अनेकदेशेभ्य : बहव : प्रतिनिधय : अंशग्रहणं कुर्वन्ति । वेदविद्याया : प्रचारार्थं गुरुकुलकांगडीविश्वविद्यालयपक्षत : एतस्य विश्ववैदिकवेदिकाया : यत् आयोजनं क्रियते ; तदर्थं विश्वविद्यालयस्य कुलपतिसमेता : सर्वे पदाधिकारिण : अध्यापका : छात्राश्च अस्माकमभिनन्दनीया :, अभिवन्दनीयाश्च ।

सम्प्रति विज्ञानयुगेऽपि वेदस्य महत्त्वं न केवलं भारतवर्षे सीमितम्, अपि तु भारताद्बहिरपि विशेषत : पूर्णविकासप्राप्तेषु राष्ट्रेषु प्रचारितं भवति । आमेरिकादेशस्य सिनेट्मध्ये प्रथमत : मङ्गलाचरणरूपेण वेदस्य पाठ : यदा अभूत्, तदा सर्वे अस्य सामग्रिकं माहात्म्यं बहुधा ज्ञातुं समर्था : अभवन् । भारतवर्षस्य सर्वस्वं वेदेषु वर्तते इति विद्वद्भि : गवेषकैश्च बहुधा चर्च्चितम् । विश्ववेदसम्मेलनस्य आयोजनेन एतत्सर्वं पुनरपि विश्वजनमानसे प्रतिध्वनितं भविष्यति - इत्यत्र नास्ति कश्चन संशय : ।

अवसरेऽस्मिन् विश्ववेदसम्मेलनस्य सर्वेभ्य : आयोजकेभ्य : धन्यवादं वितरामि ; अभिनन्दनञ्च निवेदयामि ; तथा सप्ताचलनायकस्य श्रीश्रीवेङ्कटेश्वरस्य परमपावनचरणकमलतले अस्य सम्मेलनस्य सर्वविधां सफलतां प्रार्थये ।

हरेकृष्ण शतपथी
(हरेकृष्णशतपथी)
कुलपति :

प्रोफेसर महावीर :
आयोजनसचिव :
विश्ववेदसम्मेलनम्
गुरुकुलकांगडीविश्वविद्यालय :
हरिद्वारम्, उत्तराखण्डम्

युगल किशोर मिश्र
कुलपति

Yugal Kishor Mishra
Vice-Chancellor

जगद्गुरुरामानन्दाचार्य
राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय
मदाऊ, भांकरोटा, जयपुर - 302 026

JAGADGURU RAMANANDACHARYA
RAJASTHAN SANSKRIT UNIVERSITY
Madau, Bhankrota, Jaipur - 302 026
Phone : 0141 - 5132001 (O)
0141 - 5132002 (R)
Website : jrrsanskrituniversity.ac.in



Message

I am immensely happy to know that the Gurukula Kangri Vishwavidyalaya, Haridwar is organizing a "World Veda Conference" during the month of November 2009.

Vedas are the spiritual feelings of vedic seers and the vedic mantras are the result of true revelation of subject matters, churned as the core-essence in their heart. Since the Vedas are the store-house of multidisciplinary wisdom of vedic seers, transmitted by the invisible energy or supreme power, scholars may deliberate in the diversified area of social and oriental sciences like Political science, Economics, Ayurveda, Yoga, etc. as well as the different branches of science like Physics, Chemistry, Mathematics, Botany, and Agriculture. In fact, the vedic scholars from the different corners of the world are now deeply engaged in promoting the Vedic knowledge.

I am sure that outstanding scholars participating in this conference would present the invaluable information available in our ancient Vedic texts which would go a long way in building a healthy, prosperous and eco-friendly society . I wish the Conference all success.

(Yugal Kisore Mishra)
Vice-Chancellor

कविकुलगुरु–कालिदास–संस्कृत–विश्वविद्यालयः रामटेक (महाराष्ट्र)
Kavikulaguru Kalidas Sanskrit University Ramtek, (Maharashtra)

डॉ. पंकज चांदे
कुलगुरुः
Dr. Pankaj Chande
Vice-Chancellor

Ramtek : (O) Ph.No. : (07114) 256476
Fax : (07114) 255549
Nagpur : (O) Ph.No. : (0712) 2560992
Fax : (0712) 2560992

Ramtek Office: Administrative Building, Mauda Rd., Ramtek 441 106 Dist. - Nagpur. (M.S.)
Nagpur Office: Kasturba Bhavan, Near Dnyaneshwar Temple, Bajaj Nagar, Nagpur-440010 (M.S.)

No. KKSU/V.C./2009/528

Date :- 24.10.2009



To,

Prof. Mahavir,
Organizing Secretary,
Vishva-Veda-Sammelanam,
Gurukul Kangdi Vishwavidyalaya,
Haridwar - 249 404
(Uttarakhanda)

Respected Sir,

नमो नमः

It is heartening to know that Gurukul Kangdi Vishwavidyalaya is organizing World Vedic Conference in the month of November, 2009 at Kangdi. It is really appreciable that world renowned Vedic scholars are being invited for this memorable academic event. All the four Vedas carry the richest content of wisdom and knowledge available on this earth in oceanic proportion.

Your immense experience in various areas of Vedic studies and Sanskrit studies will definitely help to take this Conference to great heights academically, spiritually and philosophically and the blessings of Hon'ble Chancellor Pt. Sudarshan Kumar Sharma and guidance of Hon'ble Vice-Chancellor Prof. Col. Swatantra Kumar will make this conference fruitfully memorable. I congratulate you and your colleagues for taking initiative and efforts to take Indian wisdom bank at global level.

Thanking you,

With warm regards.

Yours sincerely,

Dr. Pankaj Chande

डा0 सुधा रानी पाण्डे
कुलपति
एम०ए० (संस्कृत, हिन्दी) पी०एच०डी०, डी० लिट्.

उत्तराखण्ड संस्कृत विश्वविद्यालय
'संस्कृत भवन', हरिद्वार-दिल्ली राष्ट्रीय राजमार्ग
पो0 ज्वालापुर (हरिद्वार) 249 407
☎: 01334-250896 फैक्स: 250636
: 9411111855
ई-मेल: sanskrit_university@yahoo.com



अर्द्ध0शा0प0सं0 : 188 / नि0स0कु0 / 2009
दिनांक :– 24 अगस्त , 2009

शुभ–सन्देशः

आदरणीयाः, प्रो महावीर :

वेदः स्मृतिः सदाचारः, स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः, साक्षात् धर्मस्य लक्षणम् ।।

विश्वसाहित्ये वेदानां प्राचीनता सर्वमान्याऽस्ति। अतः भारतीयपरम्परायां प्रत्येक–विषयस्य सम्बन्धः सम्बद्धयते। संस्कृतव्याकरणस्यादिमस्स्रोतः कः? वेदाः।

वेदार्थानुशीलनाद् ज्ञायते यद् वेदा हि विविध–ज्ञान–विज्ञानराशयः, संस्कृतेराधाररूपाः, कर्तव्याकर्तव्यबोधकाः, जीवनस्योन्नायकाः, जगद्धितसम्पादकाः, सुखशान्तिसाधकाः, कलाकलापप्रेरकाः, नैराश्यविनाशकास्सन्ति।

मुख्यत्वेन वेदः ऋग्यजुः सामाथर्वनामभिः सर्वमान्यानां चतसृणां वेदसंहितानां बोधकः। अत एव महर्षिणा पतञ्जलिना कर्तव्यत्वेन समादिश्यते यत् –

"ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च"

अत एवात्यन्तहर्षस्यविषयोऽयं यद् भवतां गुरुकुलकांगड़ीविश्वविद्यालयेन दिनाङ्कः 2009 तमे नवम्बरमासस्य २०, २१, २२ तारिकासु विश्ववेदसम्मेलनमायोजितम्। येषु देश–विदेशस्यानेकार्विद्वांसरागच्छन्ति।

उक्तपावनेऽवसरेऽस्मिन् विश्वविद्यालयेन प्राप्त–शोधपत्राणां ***"आकर्षक स्मारिका"*** प्रकाशिता। स्मारिकायाः प्रकाशनार्थम् आयोजनसाफल्यार्थं हार्दिकाः शुभकामनाः प्रेषयाम्यहम्।

प्रतिष्ठायाम्,
प्रो0 महावीरः
आयोजनसचिवः,
विश्व–वेद–सम्मेलनम्।

(डॉ0 सुधा रानी पाण्डे)
कुलपतिः।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय

गायत्रीकुंज-शांतिकुंज, हरिद्वार-249 411 (उत्तरांचल)

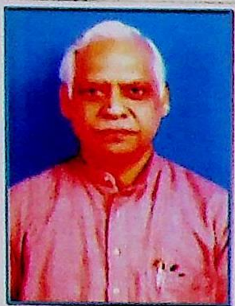
(उत्तरांचल सरकार के अधिनियम द्वारा स्थापित, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा मान्यता प्राप्त
एवं श्री वेदमाता गायत्री ट्रस्ट द्वारा पोषित)

स्थापना वि.स. 2058

विश्व के सांस्कृतिक नवोन्मेष के लिए संकल्पित एक अभिनव स्थापना

डॉ० एस० पी० मिश्र
कुलपति

पत्रांक : 9685/जे.डी./कुलपति सन्देश/09
दिनांक : 30 सितम्बर, 2009



सन्देश

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय द्वारा **'विश्व वेद सम्मेलन'** के आयोजन की जानकारी पाकर मुझे आत्मिक आनन्द की अनुभूति हुई। **शाश्वत सत्यों का साक्षात्कार कराने वाले ज्ञान-विज्ञान के उजियारे का वेद अनन्त स्रोत हैं।** जीवन की समस्याओं का प्रामाणिक समाधान सुझाने से ही ये विश्व में सुप्रतिष्ठित, अविस्मरणीय बने। इनकी शिक्षाओं में समाहित अपरिवर्तनीय मूल तत्व हर काल, समय, परिस्थितियों में पूर्णतः व्यावहारिक, विशुद्ध वैज्ञानिक सिद्ध हुए। **'परदारेषु मातृवत्', 'पर द्रव्येषु लोष्ठवत्', 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' के उद्घोषक, चक्रवर्ती आर्यावर्त्त (भारत) की संस्कृति, सभ्यता की तो आत्मा ही हैं 'वेद'।**

ऐसे विज्ञान पर प्रकाश डालने, उसके मर्म को आमजनों तक पहुँचाने, उनके अभावों-पीड़ाओं-पतन निवारण के सूत्र देने वाले चिन्तन-संकल्पों-योजनाओं को प्रगट करने वाले वेद सम्मेलनों की उपयोगिता सुसंस्कृत-समृद्धिशाली-आनंदपूर्ण विश्व के निर्माण हेतु नितांत आवश्यक है। आज वेदमाता-विश्वमाता सजल नयनों से निहार रही है कि उसके लाल उसकी आशाओं पर खरे उतरें, उसकी आकांक्षाएँ पूर्ण कर सकें। वेद **सम्मेलनों की चर्चा चलते ही सहज स्मरण हो आते हैं- वैदिक कोषालय की कुंजी हमारे पावन हाथों में सौंपने वाले सहृदय सायणाचार्य और उसे खोलकर उसमें प्रवेश दिलाने वाले युग निर्माण योजना, अखिल विश्व गायत्री परिवार के सूत्रधार और देव संस्कृति विश्वविद्यालय के पूज्य कुलपिता वेदमूर्ति, तपोनिष्ठ पं. श्रीराम शर्मा 'आचार्य', जिनके प्रति सब चिर कृतज्ञ हैं।** आचार्यश्री ने चारों वेदों के भाष्य विश्व को प्रदान किये। वह भाष्य जो वर्तमान के परिप्रेक्ष्य में व्यावहारिक हैं, वैज्ञानिक हैं। राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द सरस्वती, तिलक, अरविन्द, शंकर बालकृष्ण दीक्षित, श्रीपाददामोदार सतावलेकर, रमेशचन्द्र दत्त, राम गोविन्द त्रिवेदी, जयेदव विद्यालंकार, श्रीधर पाठक, कपिलदेव द्विवेदी, आदि अनेक महानुभावों के प्रति भारतीय समाज चिर ऋणी है।

इस महत्वपूर्ण वेद सम्मेलन का संदेश सारी दुनिया में फैले, यही हमारी मंगलकामना है।

(एस. पी. मिश्र)
कुलपति

Phone 01334-260723, 261485, PABX · 261367, 262094
Fax 91-1334-260723 e-mail · spmishra98@hotmail.com internet www.dsvv.org

बी एच ई एल
BHEL
डी० के० मोदी
कार्यपालक निदेशक
D.K.MODY
EXECUTIVE DIRECTOR

भारत हेवी इलेक्ट्रिकल्स लिमिटेड
हेवी इलेक्ट्रिकल इक्विपमेंट प्लांट
रानीपुर, हरिद्वार - 249403, (उत्तराखंड) भारत
Bharat Heavy Electricals Limited
Heavy Electrical Equipment Plant
RANIPUR, HARIDWAR - 249403, (UTTARAKHAND) INDIA
Tel. : 91-1334-226459 (O), 226461 (R); FAX : 91-1334-225096
e-mail : dkmody@bhelhwr.co.in



आत्मानुभूति के दो शब्द-----

"यो भूतं च भव्यं च सर्व यश्चाधि तिष्ठति।
स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्टाय ब्रहमणै नमः।।"

अत्यन्त हर्ष का विषय है कि भारतीय वैदिक सभ्यता तथा संस्कृति से पोषित 'गुरुकुल' अपने दस महत्वपूर्ण एंव जीवनोपयोगी सिद्दान्तों की पुनीत उर्जा से अनुप्राणित होकर 'पवित्र वेद' के दिव्य आलोक से अभिप्रेरित 'विश्व वेद सम्मेलन' का आयोजन कर रहा है। अज्ञानता की कलुषता को ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशवान कर निर्मूल करने की संकल्पना स्वयं में सत्य के साक्षात्कार एवं परमसाध्य की प्राप्ति का निर्विवाद मार्ग है जिसकी अहेतु प्राप्ति 'वेद' के जिजीविषा युक्त ज्ञान से ही सम्भव है।

मैं मानता हूँ कि 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' का प्रतिबिम्व बनाते चेतन तत्व का दर्शन ही वेद की स्तुति है जो परम मोक्ष का मार्ग प्रशस्त करती है। 'वेद' के ज्ञान प्रकीर्ण संदर्भित 'विश्व वेद सम्मेलन' में प्रबुद्ध मनीषियों, विषय मर्मज्ञों के साथ-साथ नव उर्जा युक्त छात्र मुमुक्षुओं की वाणी प्रवाह से वेद-विषयक धारा का अविरल प्रवाह अपने लक्ष्य को प्राप्त करे तथा ज्ञान की संदेशात्मक मंदाकिनी अपने प्रयोजन में सिद्ध हो इसके लिए मेरी कोटिशः मंगलकामनाएं।

मुझे यह जानकर बहुत प्रसन्नता हुई कि 'विश्व वेद सम्मेलन' के गरिमामय अवसर पर समसामयिक विषय वस्तु एवं ज्ञानात्मक और बोधात्मक सामग्री के संकलन को संयोजित कर एक 'स्मारिका' का प्रकाशन भी किया जा रहा है। ज्ञान सौन्दर्य से आच्छादित यह स्मारिका अपने उद्देश्य में सफल हो, इसी मनोकामना के साथ मैं 'विश्व वेद सम्मेलन' की अपार सफलता की कामना करता हूँ तथा 'गुरुकुल' परिवार को औद्योगिक प्रतिष्ठित नवरत्न संस्थान 'बीएचईएल' परिवार की ओर से साधुवाद देता हूँ।

पुनश्यः बधाई एवं शुभकामनाएं।

(देवेन्द्र कुमार मोदी)
कार्यपालक निदेशक

पंजीकृत कार्यालय : बी.एच.ई.एल. हाउस, सीरी फोर्ट, नई दिल्ली – 110 049
REGISTERED OFFICE : BHEL HOUSE, SIRI FORT, NEW DELHI - 110 049

प्रो० एस०सी० सक्सैना
निदेशक
Prof. S. C. SAXENA
Director



भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान रुड़की
रुड़की–247 667, उत्तराखण्ड, भारत

INDIAN INSTITUTE OF TECHNOLOGY ROORKEE
ROORKEE-247 667, UTTARAKHAND, INDIA

TEL : +911332-272742, 285500 (O), 272342, 285400 (R)
FAX : +911332-273560, 285815 (O), 285300 (R)
e-mail : director@iitr.ernet.in, saxenasuresh@yahoo.co.in

सं. डी.आई.आर. / आई.आई.टी.आर./212
28 अगस्त, 2009

संदेश

महोदय

मुझे यह जानकर अत्यधिक प्रसन्नता है कि गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार में 20, 21 व 22 नवंबर 2009 को **विश्व वेद सम्मेलन** का आयोजन किया जा रहा है तथा इससे भी अधिक कि इस सम्मेलन में **'वेदों में विज्ञान'** विषय पर चर्चा होगी ।

मुझे वेदों के पर्याप्त अध्ययन का अवसर नहीं मिला है परंतु मैं विद्वानों से सुनता आ रहा हूँ कि वेदों में विज्ञान संबंधी जानकारी प्रचुर मात्रा में है और मेरी हार्दिक अभिलाषा है कि वेदों में निहित यह ज्ञान जन–सामान्य के लाभार्थ प्रकाश में आये तथा उस पर व्यापक और गंभीर चर्चाएं हों । बहुत संभव है कि इससे हमें प्रगति, ज्ञान और चिंतन की एक बिल्कुल नवीन दिशा मिल सके।

विश्व के अन्य देशों में भी वेदों का पर्याप्त अध्ययन और उस पर गंभीर चिंतन किया गया है । वैदिक ज्ञान के संबंध में उनके विचार जानना भी महत्वपूर्ण है ।

मुझे विश्वास है कि विश्व वेद सम्मेलन अपने उद्देश्यों में पूरी तरह से सफल होगा । मैं इसके लिये अपनी शुभकामनाएँ अभिव्यक्त करता हूँ तथा निवेदन करता हूँ कि सम्मेलन के निष्कर्षों से मुझे अवगत कराने की कृपा करें ।

मंगल कामनाओं सहित,

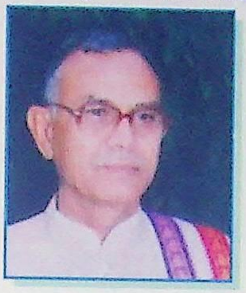
भवदीय

(एस.सी.सक्सेना)

प्रोफेसर महावीर
आयोजन–सचिव, विश्व–वेद–सम्मेलन
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार –249404 (उत्तराखण्ड)

ओ३म्

आचार्य एवं उप-कुलपति
Acharya & Pro. Vice-Chancellor



Off. : 0133-416207
Resi. : 0133-423451

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
Gurukula Kangri Vishwavidyalaya, Hardwar
पो० ओ० गुरुकुल कांगड़ी, जि० हरिद्वार - २४९४०४
P.O. Gurukula Kangri, Distt. Hardwar - 249404

दिनांक 7-10-2009

हार्दिकम्

दैवीवाक्समुपासकधुरीणानां, शारदावीणातन्त्रीवादनविचक्षणानां, सारस्वतसम्मानविभूषितानां, सतां महतां विदुषां सुखकरं वृत्तमिदं विद्यते यद्वेदार्णवमन्थनोत्थविविधविद्यारत्ननिचयनिर्मलप्रभाप्रभासिते, वैदिकाचार्यपरम्परापरिपोषणपरीक्षणकालप्रकटितनैपुण्याधिगतपूर्णाङ्काङ्किते, महर्षिदेवदयानन्द-समाख्यातवेदमहत्त्वप्रसारणनिपुणे, व्रत-दीक्षा-दक्षिणा-श्रद्धा-सत्यान्वेषणार्पितजीवनेन, श्रद्धाविग्रहधारिणा अमरहुतात्मना स्वामिश्रद्धानन्देन संस्थापिते गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालये पवित्रे प्राङ्गणे समायोज्यते वैलक्षण्यावहं विश्ववेदसम्मेलनम्।

वेदविद्याविलासलसमानमानसा ये विद्वांसः सम्मेलनभुवमलञ्चिकीर्षवस्ते खलु श्रुत्यनुरागाकृष्टचित्ता इव, विविधसद्विचारकमलोन्मेषणदिवाकरकिरणपुञ्जा इव, कायिकवाचिकमानसिक तपोवह्निदग्धदेहवाक्मनोविकारा इव, वेदमातावात्सल्यभावतन्तुनिर्मितकोमलपाशाबद्धा इव, वेदविज्ञानानुसन्धानप्रक्रियापरिवर्धनदक्षा इव, वैदिकदर्शनध्वजोत्तोलननिपुणा इव, दिवसपुत्रायमाणाः सन्तः स्वात्मन्युल्लसन्तः सम्मेलनोल्लासमभिवर्धयिष्यन्ति।

अस्यां कुलभुवि सम्मेलने वेदविद्वांसः स्वप्रतिभानमन्योऽन्यमनुभावयन्तः केचन धार्मिकतत्त्वोद्भावने, केचन भौतिकीसांख्यिकीविद्याप्रकाशने, केचन रसायनपद्धतिप्रकरणे, केचन अभियान्त्रिकी गुणाख्याने, केचन पर्यावरणसमस्यानिराकरणे, केचन संगीतविद्याप्रसङ्गे, केचन इतिवृत्तसम्भावने, केचन सूक्ष्मजीवविज्ञानक्षेत्रे, केचन प्रबन्धनविद्योत्कर्षे, केचन संगीतमाधुर्य्ये, केचन साहित्यविद्यारसास्वादने, वेदविद्यावैभवं प्रसार्य संप्रसार्य सम्मेलनस्यास्य अमन्दानन्दप्रददतां विकासयिष्यन्ति।

सम्मेलनशोभासंवर्धनप्रहितमनसां समेषां सारस्वतपुत्राणाम् अभिनन्दने स्वकीयं निर्मलं मनोनियोजयन् दीर्घायुष्यं यात्रासुखं वसतिविनोदं, शोधपत्रप्रवाचनचातुर्यं सकलकालकलोल्लासं च भूयो भूयः कामये।।

वेदप्रकाश शास्त्री

(महामहोपाध्याय प्रो० वेदप्रकाशः शास्त्री)
आचार्य उपकुलपतिश्च

ओ३म्

राष्ट्रपति-सम्मानित

पूर्व उपकुलपति एवं अध्यक्ष संस्कृत विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
पूर्व प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
महर्षि दयानन्द वैदिक शोधपीठ
पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़



☎ - ०१३३४-२५३८४५

आचार्य (डॉ०) रामनाथ वेदालंकार
विद्यामार्तण्ड
वेदमन्दिर, ज्वालापुर-२४९४०७
(हरिद्वार) उत्तराञ्चल

एतद् विज्ञाय प्रसीदामि यत् प्रचलितसंवत्सरस्य नवम्बर-मासे २०-२२ दिवसेषु गुरुकुलकांगड़ीविश्वविद्यालयो विश्व-वेदसम्मेलनं संयोजयतीति। वेदानुपजीव्य स्कन्द-सायण-महीधर-माधव-भरतस्वामिप्रभृतीनां भारतीयविदुषां संस्कृतभाष्याणि, विल्सन-ग्रासमैन-ग्रिफिथ-लुडविग-गेल्डनर-कीथ-ब्लूमफील्डा-दीनां वैदेशिकविदुषां जर्मनभाषायाम् आंग्लभाषायां वा सटिप्पणा अनुवादाश्च प्राप्यन्ते। ख्रीष्टस्यैकोनविंशशताब्द्यामाविर्भूतेन विद्वत्तल्लजेन महर्षिदयानन्दसरस्वतीस्वामिना तद्विषये बहवो दोषा उद्भाविताः स्वयं च वेदार्थे महती क्रान्तिः कृता, या हि प्रत्नापि नूत्नेव प्रतीयते, यामनुसृत्य च वेदाः स्वल्पाध्यात्मिक-दार्शनिक-वैधानिक-राजनीतिक-याज्ञिक-वैज्ञानिकादि-विविधविद्यानां प्रामाणिकस्रोतोरूपेण विद्वद्भिराद्रियन्ते। अतो वेदविषये सर्वेषां यथोचितं योगदानं मत्वापि प्रमुखतः स एव परिव्राजकाचार्यः प्रकाशस्तम्भत्वेन प्रतिपादितो दिक् च स्वीकार्यः। सम्मेलने वाचितेषु विशिष्टाः शोधलेखाः प्रकाश्यन्ते चेत् ते स्थिरसाहित्यरूपेण सुरक्षिता भवन्ति। अहं सम्मेलनस्य साफल्यं कामयमानः स्वकीयामाशिषं प्रयुञ्जे, विश्वविद्यालयस्याधिकारिणो निर्देशकान् संयोजकांश्च भूयो भूयोऽभिनन्दामि, शोधपत्रवाचकानां च यशोऽभिलषामि।

लसतु लसतु लोके वेदविद्याविलासो
हसतु हसतु कीर्तिर्वेदवैदुष्यभाजाम्।
विकसतु खलु नित्यं विश्वविद्यालयोऽयं
वितरतु भुवि शोभां सर्वतन्त्रस्वतन्त्राम्॥

रामनाथ वेदालङ्कारः
२८-६-२००६

डॉ० हरि नारायण दीक्षित
एम.ए., पी-एच.डी., डी.लिट्., व्याकरणाचार्य,
सांख्य-योगाचार्य, साहित्याचार्य, साहित्यरत्न,
राष्ट्रपतिसम्मानप्रमाणपत्रपुरस्कारप्राप्त,
पूर्व प्रोफेसर एवं संस्कृतविभागाध्यक्ष,
पूर्व अधिष्ठाता, कला संकाय,
कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल (उत्तराञ्चल)।

दूरभाष : 05942-236981
आवास : 196, बड़ा बाजार, मल्लीताल,
नैनीताल-263001 (उत्तराञ्चल)।

सन्दर्भ/दिनाङ्क ०९/०८/.........200८

आदरणीया आचार्यमहोदयाः !
सादरा नमोवाचः ।

(१)

विश्वस्तरे वेदविदां समागमं
ज्ञात्वा निदेशे भवतां च भाविनम् ।
मनः प्रसन्नं च मतिः प्रभाविता
बोभूयते पत्रमवाप्य भावतम् ॥

(२)

वेदव्रयुतं मम चित्तहारकं
गीर्वाण-वाणी-विभवानुहारकम् ।
आमन्त्रणं प्राप्य भवन्मुखादपि
चित्तं सदा तिष्ठति मे तदुत्सुकम् ॥

(३)

सूचयामि सहर्षं तद् वेदविद्यामहोत्सवे
अस्मिन् समागमिष्यामि द्रष्टुं वेदमनीषिणः ॥

(४)

शृण्वतो विदुषां वाचो वार्तालापं च कुर्वतः ।
व्यतियास्यति सानन्दं मन्ये मे तद् दिनत्रयम् ॥

(५)

सफलः सर्वथा भूयादेष वेदज्ञ-सङ्गमः ।
यशश्च विपुलं भूयादेनेन भवतां भवे ॥

— भवदात्मीयताधीनो
हरिनारायणदीक्षितः ।

ओ३म् स्वस्ति पन्थामनुचरेम

डॉ० गणेश दत्त शर्मा

एम० ए०, पी० एच० डी०, शास्त्री साहित्याचार्य, विद्याभास्कर
पूर्व प्राचार्य, लाजपतराय पोस्ट ग्रेजुएट कॉलेज, साहिबाबाद
पूर्व अध्यक्ष (संस्कृत) एन० ए० एस० पोस्ट ग्रेजुएट कॉलेज, मेरठ
पूर्व विजिटिंग प्रोफेसर हिन्दू यूनिवर्सिटी ऑफ अमेरिका (औरलैण्डो)

निवास :
10/98, सैक्टर-3, राजेन्द्र नगर
साहिबाबाद, गाजियाबाद - 201 005
फोन : 2631153, 2634946

सम्मेलनं सुमंगलम्

(1)

श्रद्धानन्दतपोभूमौ
पुण्ये गुरुकुलस्थले।
विश्वेषां वेदविज्ञानाम्
सम्मेलनं सुखावहम्।।

(2)

विश्वं ब्रह्माण्डविज्ञानम्
वेदे विज्ञापितं खलु
विश्वक्षेमक्षमं तच्च
शाश्वतं सार्वभौमिकम्।।

(3)

वेदेषु विविधा विद्या
विद्यन्ते विदुषां मते।
रहस्योद्घाटनं तासां
सम्मेलने ह्यपेक्ष्यते।।

(4)

प्रीताः स्युर्विश्वे देवाः
संगोष्ठ्यामागता बुधाः।
चर्चन्तश्च पठन्तश्च
शोधपत्राणि श्रद्धया।।

(5)

साफल्यमाप्नुयान्नूनम्
सम्मेलनं सुमंगलम्।
कुर्वन् संघोषणां सम्यक्
सर्वं वेदात् प्रसिद्ध्यति।।

डॉ० गणेशदत्त शर्मा

विद्या भारती अखिल भारतीय शिक्षा संस्थान

पंजीकृत कार्यालय :
विद्या भारती भवन, सरस्वती कुञ्ज,
निराला नगर, लखनऊ - 226 020
दूरभाष / फैक्स : 0522-2788733, 2787816
Internet Website : www.vidyabharati.org

सा विद्या या विमुक्तये
विद्या भारती

उप कार्यालय :
- गो.ला.त्रेहन सरस्वती बाल मंदिर परिसर, महात्मा गाँधी मार्ग, नेहरू नगर, नई दिल्ली - 110 065
दूरभाष / फैक्स : 011-6320126, 6320013
- संस्कृति भवन, गीता विद्यालय परिसर, कुरूक्षेत्र - 136 118 (हरियाणा)
दूरभाष / फैक्स : 01744-291903, 290515

पत्रांक वि० भा० । २९ । ०९ तिथि .... दिनांक २१ । ९ । ०९

आदरणीय प्रो0 महावीर जी,

सादर नमस्कार।

आपके पत्र दिनांक 27.08.2009 द्वारा यह जानकर अतीव प्रसन्नता हुई कि **गुरुकुल–कांगड़ी–विश्वविद्यालय, हरिद्वार** द्वारा दिनांक 20,21,22 नवम्बर 2009 को विश्व वेद सम्मेलन आयोजित किया जा रहा है। जिसमें देश–विदेश के अनेक मूर्धन्य वेदों के मर्मज्ञ विद्वान् पधार रहे हैं। इस शुभ अवसर पर विश्वविद्यालय एक प्रेरणा देने वाली **स्मारिका** भी प्रकाशित कर रहा है।

वेद ईश्वरीय ज्ञान का भंडार है। संसार में जितना भी ज्ञान, विज्ञान, विद्याएँ और कलाएँ दृष्टिगोचर हो रही हैं उन सबका मूल वेद में ही विद्यमान है। यह सत्य है कि बाद में भिन्न–भिन्न आचार्यों और विद्वानों ने अपनी–अपनी रुचि के विषयों की व्याख्या और विस्तार करके उनको स्वतंत्र शास्त्रों का रूप दिया है। परन्तु जो कोई ध्यान पूर्वक अध्ययन करेगा उसे यह अवश्य प्रतीत होगा कि संसार के ज्ञान का आदि स्रोत वेद ही है।

गुरुकुल–कांगड़ी–विश्वविद्यालय, हरिद्वार द्वारा किया जा रहा यह कार्य सराहनीय है। इस पुनीत कार्य हेतु विश्वविद्यालय के सभी सम्माननीय सदस्यों, आचार्यों को हार्दिक साधुवाद!

पुनः हार्दिक शुभकामनाओं सहित।

ब्रह्मदेव शर्मा

(ब्रह्मदेव . शर्मा)

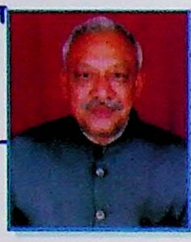
राष्ट्रीय संगठन मंत्री

कृण्वन्तो ओ३म् विश्वमार्यम्

आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तराखण्ड (पंजीकृत)

मुख्य कार्यालय : आर्य समाज मन्दिर, धामावाला, देहरादून

देवराज आर्य
प्रधान
365/III/5बी, बीएचईएल
रानीपुर, हरिद्वार-249403
01334-232407
09997070789



यशपाल आर्य
कोषाध्यक्ष
आर्यनिवास, 1/3ए-मौहल्ला
धामावाला, देहरादून, 248001
0135-2658798
09412050282

ज्ञानचन्द गुप्त
मंत्री
141/2, पार्क रोड, लक्ष्मण चौक
देहरादून - 248001
0135-2723397
09897346730

पत्रांक....................

दिनांक 15-09-2009

दिव्य-सन्देश

यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि आर्य जगत् की विश्व प्रसिद्ध शिक्षण संस्था गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार 20 से 22 नवम्बर 2009 तक तीन दिवसीय 'विश्व वेद सम्मेलन' का आयोजन करने जा रहा है। जिसमें देश-विदेश के वैदिक विद्वान् एवं विषय विशेषज्ञ अपने शोध-पत्र प्रस्तुत करेंगे।

जीवन एक कला है। जिसके लिए विचारों की आवश्यकता होती है। व्यक्ति और समाज का निर्माण सद् विचारों के द्वारा होता है। ये सद्विचार वेद हमें देते हैं। समस्त ज्ञान-विज्ञान का मूल वेद हैं। वेद ईश्वरीय वाणी होने के कारण मानव जीवन के सच्चे पथ-प्रदर्शक हैं। इसलिए महर्षि दयानन्द सरस्वती ने मानव कल्याणार्थ वेदों का घर-घर प्रचार कर सत्य और प्रकाश का मार्ग दिखाने का अथक प्रयास किया। वेद मंत्रों के जीवनोपयोगी, आध्यात्मिक, सामाजिक, राजनैतिक और वैज्ञानिक अर्थ किए। वस्तुत: वेद ऐसा ग्रंथ है जिसके उपदेश और सन्देश किसी वर्ग या देश-विशेष के लिए नहीं अपितु संसार के प्रत्येक प्राणी के लिए समान रूप से आत्मोन्नति, सामाजिक उत्थान, सद्भाव, सदाचार सुख, शांति और समृद्धि का मार्ग प्रशस्त करते हैं। देखा जाए तो जिस प्रकार लौकिक वस्तुओं को देखने के लिए नेत्रों की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार अलौकिक रहस्यों को जानने के लिए वेदों की आवश्यकता होती है। अत: जीवन की विभिन्न समस्याओं के निवारण एवं मानवता की रक्षा हेतु वेदानुकूल आचरण आवश्यक है।

आशा है, मानवीय मूल्यों के विकास, राष्ट्रीय चरित्र के निर्माण तथा 'वेदों की ओर लौटो' के आह्वान के साथ यह सम्मेलन सफल होगा।

शुभकामनाओं सहित,

आपका

(देवराज आर्य)
सभा प्रधान
आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तराखण्ड
देहरादून

ओ३म्

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

हरिद्वार-249 404 (उत्तराखण्ड)



प्रो० ए० के० चोपडा
कुलसचिव

शुभ सन्देश

यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है कि प्राच्य विद्या संकाय के अन्तर्गत 'विश्व-वेद-सम्मेलन' का आयोजन २० से २२ नवम्बर २००९ को किया जा रहा है। इसकी सफलता के लिए अपनी शुभकामनाऐं प्रेषित करता हूँ। मुझे उम्मीद है कि इस सम्मेलन के माध्यम से वेदों में निहित ज्ञान नाना प्रकार से उद्घाटित होगा और वैदिक संस्कृति की प्रतिष्ठा लोक में प्रसृत होगी।

प्रो० ए० के० चोपडा
कुलपति
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार

वेदमंजरी

विश्वस्य भुवनस्य राजा

महाँ असि महिष वृष्ण्येभिर्धनस्पृदुग्र सहमानो अन्यान्।
एको विश्वस्य भुवनस्य राजा स योधया च क्षयया च जनान्।। ऋग्. ३.४६.२

<u>ऋषि:</u> गाथिनो विश्वामित्र:। <u>देवता</u> - इन्द्र:। <u>छन्द:</u> त्रिष्टुप्।

(महिष) हे महनीय! (उग्र) हे प्रचण्ड! (धनस्पृत्) धनस्य दाता, (अन्यान् सहमान:) नास्तिकान् पराभवन् त्वम् (वृष्ण्येभि:) वर्षकैर्गुणै: बलैश्च (महान् असि) महिमान्वितो विद्यसे। त्वम् (एक:) एकल: (विश्वस्य भुवनस्य राजा) सकलस्य ब्रह्माण्डस्य सम्राट् वर्तसे। (स:) असौ त्वम् (जनान्) मनुष्यान् अस्मान्(योधय च) संघर्षं कारय च (क्षय य च) निवासय च।

हे हृदयाधिराज परमात्मन्! त्वं महिषोऽसि, महान् असि, परम महनीयोऽसि। त्वयि महत्ताया: पराकाष्ठा विद्यते। वयम् अमहान्त: क्षुद्र जनास्तु तव गगनचुम्बिनीं सर्वव्यापिनीं महत्तां दृष्ट्वा विस्मयस्तिमिता भवाम:। त्वं 'धनस्पृत्' असि, सर्वविधानाम् ऐश्वर्याणां प्रदाता विद्यसे। अस्मिन् जगतीतले यान्यपि विविधान्यैश्वर्याणि वर्तन्ते, तेषां जनका वयं मानवा न स्म:, प्रत्युत त्वमेव तेषां जनयिता प्रदाता च भवसि। वयम् अल्प बला जनास्तु त्वत्प्रदत्ताम् उपादानसामग्रीं विना क्षुद्रमपि वस्तु रचयितुं न समर्था: स्म:। त्वं नास्तिकजनानां पराभविता विद्यसे। तेषां पराभवं त्वं द्विप्रकारेण करोषि। त्वं तान् कयाचित् चामत्कारिकघटनया प्रभावितान् कृत्वा आस्तिकान् विदधासि, यद्वा त्वं त्वद्विरोधे भाषणानि कुर्वतस्तान् स्वकीयेन भयङ्करेण चक्रवातेन उड्डाय्य न जाने कस्मिन् विपत्ति कूपे पातयसि। त्वं स्वकीयैरनेकैर्गुणै: बलैश्च महिमान्वितो विद्यसे। त्वं निर्गुणानां गुणकरोऽसि, निर्बलानां बलकरोऽसि। येऽपि सत्यन्यायदयादयो गुणगणा:, आत्मिकानि शारीराणि च बलानि जगति दृश्यन्ते, तेषाम् उद्गमभूमिस्त्वमेव वर्तसे।

त्वं सकलस्य भुवनस्य, समस्तस्य ब्रह्माण्डस्य एको राजा, अद्वितीय: सम्राड् विद्यसे। स्वकीयराजत्वस्य गर्वं कुर्वन्तो महान्तोऽपि जना: त्वत्सम्मुखं सेवका: सन्ति। त्वत्सम: अन्य: कोऽपि विश्वस्य सम्राड् नास्ति। येऽपि अग्निवायुसूर्ययमविष्णुरुद्रवरुणप्रभृतयो देवा वेदेषु स्तूयन्ते, ते तवैव विभिन्नानि नामानि सन्ति।

अयि राजाधिराज इन्द्र! त्वम् अस्मान् संग्रामे प्रवर्तय, संघर्षेषु संपात्य अस्मान् सतेजस्कान् कुरु, विजयिनश्च संपादय। अकर्मण्य: सन्, संघर्षेभ्यो भीत: सन् कोऽपि जनो निवासं लब्धुं न शक्नोति। हे देव! अस्मत्प्रार्थनां पूरय, येन राजराजेश्वरस्य तव छत्रच्छायायां निवसन्तो वयं चरमम् उत्कर्षं प्राप्तुं शक्नुयाम।

आचार्य रामनाथ वेदालङ्कार:

सम्पादकीयम्



अपने स्थापना काल से ही गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय प्राच्य विद्याओं के अध्ययन-अध्यापन एवं उच्च स्तरीय अनुसन्धान तथा प्रकाशन का केन्द्र रहा है। अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द ने मानव निर्माण एवं विश्वकल्याण के केन्द्ररूप में विश्वविद्यालय की स्थापना की थी। ४ मार्च १९०२ को भगवती भागीरथी के पावन तट पर प्राचीन भारतीय आदर्शों एवं जीवनमूल्यों को साकार रूप प्रदान करने के लिए गुरुकुलीय परम्परा का पुनरावर्त्तन हुआ था। युगद्रष्टा महर्षि दयानन्द से प्रेरणा पाकर स्वामी जी ने गुरुकुल रूपी कल्प-वृक्ष लगाया था। इन महापुरुषों का यह दृढ़ विश्वास था कि वेद विद्या के प्रचार-प्रसार और उन्नयन से ही देश का निर्माण होगा। जब तक वेद में छिपे हुए रहस्यों को संसार के समक्ष रखा नहीं जायेगा, तब तक अविद्या-अन्धकार दूर नहीं होगा। वेदभाष्यकार एंव आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि ने आर्यसमाज के दूसरे नियम में स्पष्ट घोषणा की - "वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।" गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में स्वतन्त्र रूप से वेद विभाग का अस्तित्व वेद की महत्ता प्रतिपादित करता है। गुरुकुल के विद्वान् उपाध्यायों एवं यशस्वी स्नातकों ने वेद विषयक अनेक उत्तमोत्तम ग्रन्थों का निर्माण किया है। आचार्य अभयदेव विरचित वैदिक विनय, आचार्य रामनाथ वेदालङ्कार प्रणीत वेद-मञ्जरी एवं सामवेद भाष्य आदि अनुपम ग्रन्थों को पढ़कर सभी आनन्दविभोर हो जाते हैं। वैदिक वाङ्मय से सम्बन्धित साहित्य के अतिरिक्त इस विश्वविद्यालय ने समय-समय पर वेद विषयक विशाल संगोष्ठियों का आयोजन किया है। जनवरी २००५ में अन्ताराष्ट्रिय वैदिक सम्मेलनों का क्रम प्रारम्भ हुआ, जो उत्तरोत्तर विकसित होता हुआ २०.२१.२२. नव. २००९ को चरमोत्कर्ष पर पहुंच रहा है। संपूर्ण देश के प्रायः सभी विश्वविद्यालयों के सुधी प्राध्यापक एवं प्रज्ञ-शोधार्थी बहुत बड़ी संख्या में सम्मिलित हो रहे हैं। न केवल संस्कृत के अपितु अन्यान्य विषयों के मनीषियों का उत्साहपूर्वक इस महाकुम्भ में सम्मिलित होना अत्यन्त हर्ष का विषय है।

विश्व में प्रेम, अहिंसा, परोपकार, मित्रभाव, विश्वबन्धुत्व आदि श्रेष्ठ गुणों की स्थापना का लक्ष्य वैदिक विचारों से ही संभव है, क्योंकि चारों वेदों, ब्राह्मण ग्रन्थों, आरण्यकों, उपनिषदों एवं वेदाङ्ग साहित्य में ऋत, सत्य, विश्वबन्धुत्व, विश्वशान्ति, विश्वकल्याण तथा मानवमात्र के प्रति मित्रता और प्रेम का सन्देश दिया गया है। 'मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे, मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे', 'यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्', 'तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु', 'अग्ने नय सुपथा राये', 'माताभूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः' आदि वेदवचनों को सुनकर मन के कलुष धुल जाते हैं। नवजीवन, नवीन ऊर्जा, उदात्त भाव एवं सुखमय, आनन्दमय जीवन की आधार शिला है वैदिक वाङ्मय।

मध्यकाल में हम वेद की चिन्तनधारा से दूर हटते गये, वेदभानु के आलोक से दूर होने का भयानक दुष्परिणाम हमने भोगा। हमारी स्वतन्त्रता गई, देश परतन्त्र हुआ, अज्ञान अन्धकार में मानवजाति भटकती रही, पाश्चात्य संस्कृति एवं पश्चिमी विचारधारा ने हमें मानसिक रूप में रुग्ण बना दिया। किन्तु ईश्वर की कृपा से पराधीन भारत में गुजरात राज्य के टंकारा नगर में बालक मूलशंकर का जन्म, शिवरात्री के दिन शिवालय में शिवमूर्ति पर चढ़कर चूहे का मलमूत्र विसर्जन देखकर सच्चे शिव की खोज का उपक्रम, प्रबल वैराग्य, वन-पर्वतों में सत्य ज्ञान की प्राप्ति के लिये अटल, संन्यास की दीक्षा, मथुरा में प्रज्ञाचक्षु गुरु विरजानन्द की कुटिया में 'मैं कौन हूँ' इस प्रश्न का समाधान और वेद ज्ञान के प्रचार-प्रसार के शिव संकल्प के साथ जीवन क्षेत्र में अवतरण। १८७५ में मुम्बई में आर्यसमाज की स्थापना। महर्षि से प्रेरणा पाकर महात्मा मुन्शीराम द्वारा हरिद्वार में गुरुकुल की स्थापना और उसी का सुखद परिणाम है यह भव्य विश्व वेद सम्मेलन। भारतवर्ष के प्रायः सभी राज्यों से विद्वान् भाई-बहन आये हैं। हमारे स्नेह भरे निमन्त्रण को स्वीकार कर सर्दी की चिन्ता न करते हुए आप गुरुकुल की पुण्यभूमि में पधारे हैं। आप सबको यहां देखकर मेरे पास शब्द नहीं हैं, मैं किन शब्दों में आपका स्वागत करुं, आपका अभिनन्दन करुं। यह विश्वविद्यालय आपका है, मैं आपका हूँ। आपके प्रेम और आत्मीयभाव के नीचे मैं स्वयं को दबा हुआ अनुभव करता हूँ।

इस विश्व वेद-सम्मेलन में केवल संस्कृत, वेद के ही विद्वान् नहीं है अपितु विज्ञान, अर्थशास्त्र, गणित, आयुर्वेद, राजनीति, हिन्दी, अंग्रेजी, शिक्षाशास्त्र आदि विविध विषयों में कृतभूरिश्रम विद्वान् पधारे हैं, यह हमारे लिये गौरव का विषय है। जिस प्रकार हरिद्वार में सायं काल आरती के समय गंगा की लहरों पर फूलों के मध्य जलते हुए, झूमते हुए दीपकों को प्रवाहित किया जाता है, और वे दीपक जलते हुए, झूमते हुए दूर-दूर तक जाकर प्रकाश फैलाते हैं और अन्धकार को दूर करते हैं, उसी प्रकार आप सब दीपक बनकर वेदालोक से धरती को प्रकाशमान करेंगे ऐसा हमें विश्वास है। हमारे पास आपकी सुख, सुविधा के लिये विशेष साधन नहीं हैं, किन्तु आपकी वैदिक ज्ञान के प्रति भक्ति, हरिद्वार और गंगा के प्रति अनुरक्ति और गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के प्रति विशेष प्रीति है, इसीलिये आप असुविधाओं की चिन्ता न करते हुए इस आयोजन की शोभा बढ़ा रहे हैं, मैं रोम-रोम से आपका स्वागत- अभिनन्दन करता हूँ। हमें पूर्ण विश्वास है कि तीन दिन तक इस पावन परिसर में वरेण्य विद्वद्वृन्द द्वारा वेदोदधि का मन्थन होगा और मन्थनोत्थ अमृत का पान कर समाज और राष्ट्र सशक्त होगा।

हरिद्वार यात्रा में मान्य अतिथियों को जो-जो असुविधा या कष्ट होगा उसके लिए विनम्रभाव से क्षमा-याचना करता हूँ। हमें आशीर्वाद प्रदान करने के लिये देश की महान् विभूतियां यहां मंच पर विराजमान हैं। हम श्रद्धावनत होकर इन वन्दनीय महात्माओं को सादर प्रणाम करते हैं। हमें विश्वविद्यालय के माननीय कुलाधिपति महोदय का आशीर्वाद, मार्गदर्शन एवं स्नेह सदैव प्राप्त होता रहता है, इस बृहद् आयोजन में कुलाधिपति पं.सुदर्शन शर्मा जी हमें विशेष गौरवान्वित कर रहे हैं। परमपूज्य स्वामी सत्यमित्रानन्दजी एवं पूज्य स्वामी रामदेव जी का आशीर्वाद पाकर हम धन्य हो गये। वेदभाष्यकार परमपूज्य गुरुदेव डॉ. रामनाथ जी वेदालङ्कार जी का स्नेहसिक्त आशीर्वाद हमारी इस संकल्पना को साकार कराने वाला दिव्य रसायन है। संपूर्ण देश में विशेषतः शिशुओं एवं किशोरवय बालकों के जीवन में ज्ञान का प्रकाश फैलाने में अपना समग्र जीवन अर्पित करने वाले हमारे प्रेरणास्रोत माननीय ब्रह्मदेव शर्मा (भाईजी) के आगमन से हमें नई ऊर्जा प्राप्त हो रही है। संपूर्ण विश्व में विख्यात हीरो होण्डा प्रतिष्ठान के अध्यक्ष पद्मभूषण श्रीमान् बृजमोहन मुंजाल जी ने हमारा आर्थिक सहयोग किया है और आज उद्घाटन समारोह में वे हमें आशीर्वाद देने पधारे हैं हम हृदय से कृतज्ञ हैं। माननीय कुलपति प्रो. स्वतन्त्र कुमार जी तथा माननीय उपकुलपति एवं आचार्य प्रो. वेदप्रकाश जी की प्रेरणा, मार्गदर्शन एंव आशीर्वाद से इस वेद-कुम्भ के आयोजन का साहस प्राप्त हुआ है। विश्वविद्यालय के कुलसचिव प्रो. ए.के. चोपड़ा, वित्ताधिकारी प्रो. डी.आर. खन्ना, सहायक कुलसचिव श्री महेन्द्र सिंह नेगी जी आदि का पूर्ण सहयोग हमें प्राप्त हुआ है। आयोजन में कन्या गुरुकुल महाविद्यालय की प्राचार्या तथा सभी संकायाध्यक्षों, विभागाध्यक्षों एवं प्राध्यापक बन्धुओं का पग-पग पर विशिष्ट सहयोग प्राप्त होने से बहुत बड़ा कार्य सुकर प्रतीत हो रहा है।

अपनी आंखों से अपने इस विशाल संस्कृत परिवार को देखकर मैं आनन्दविभोर हूँ। आप इसी प्रकार मां भारती की सेवा करते रहें। वैदिक साहित्यार्णव में अवगाहन कर सुन्दर रत्नों को प्राप्त करें और मानवता की सेवा में उन्हें समर्पित करते रहें। हम आपको भविष्य में स्नेहभरा निमन्त्रण भेजें आप अवश्य स्वीकार करें और अपने शुभागमन से हमें कृतार्थ करें, यही आपसे विनम्र प्रार्थना है।

इस 'ब्राह्मीवाक्' को सीमित समय में सुन्दर रूप में प्रकाशित करने में 'किरण प्रिन्टिंग प्रैस' के स्वामी श्री चन्द्रकिरण सैनी का उत्साह प्रशंसनीय रहा है। स्मारिका के सम्पादन में डॉ. दिनेशचन्द्र शास्त्री (रीडर वेद विभाग), डॉ. रजत अग्रवाल(आई.आई.टी. रुड़की), डॉ. हरीश गुरुरानी(प्रोजैक्ट फैलो), डॉ. विजय कुमार त्यागी प्रा. गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर तथा डॉ. योगेश शास्त्री, मुख्याध्यापक गुरुकुल कांगड़ी ने बहुत परिश्रम किया है। इन सबको शुभाशीष।

स्मारिका के प्रकाशन में तथा विश्ववेद-सम्मेलन के आयोजन में जो कमी रह गयी है, वह मेरी अल्पज्ञता है, उसके लिये क्षमा याचना करता हूँ।

अन्त में देवाधिदेव परमपिता परमात्मा, पूज्य माता, पिता, भारतदेश की ऋषि परम्परा एवं प्रातः वन्दनीय गुरुजनों का वन्दन करते हुए यह स्मारिका आपके करकमलों में सादर-सस्नेह समर्पित है।

प्रो. महावीर

वेदेषु मनस्तत्त्वमीमांसा

प्रो० वेदप्रकाशः शास्त्री आचार्य उपकुलपतिश्च गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालयः, हरिद्वारम्

चेतनाबद्ध निखिलं जगद् विद्यते। चेतनामेवाधारीकृत्य सर्वं ज्ञानं विज्ञानं च शब्दब्रह्मणा प्रकाश्यते। परमात्मना मानवाभ्युदयार्थं यदपेक्षितं ज्ञानं तदेव वेदमाध्यमेन प्रदत्तम्। अत एवोच्यते

अनादि निधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा।
आदौ वेदमयी दिव्या यतः सर्वाः प्रवृत्तयः।।

मानवबुद्धिविनिर्मिते शास्त्रनिकरे मनोजगत् बहुधा व्याख्यातं विद्यते। परं येनापि मतिमता मनीषिणा मनस्तत्वविचिन्तने या प्रतिभा प्रकटिता तन्मूले वेदविद्यैव विभासते। वेदेषु मनस्तत्वं यदाख्यातं तदेवाविकलतया सर्वाङ्गत्वेन विकलतयैकाङ्गत्वेन च मनस्तत्वविवेचनसंपृक्तधिया धीमता समुदीरितम् अद्यत्वे वैज्ञानिके युगे मनोविज्ञानविद्भिर्मनोविषये यद्यद् महदूहनं क्रियते तत्सर्वं बीजत्वेन वेदे प्रविद्यते। मनोविज्ञानवेत्तारः सम्प्रति स्नायुमण्डलं, संवेदनां, प्रत्यक्षीकरणं, ध्यानं, शिक्षणं, स्मरणं, विस्मरणं, कल्पनां, चिन्तनं, अनुभूतिं, संवेगं, प्रेरणां, चेतनां, स्वप्नं, बुद्धिं, योग्यतां, व्यक्तित्वं, वंशानुक्रमतां, सफलतां विफलताञ्च मनोविज्ञानविद्यया ध्यायन्ति। एतत् सर्वं चिन्तनं वेदेषु पदेपदे मन्त्रेषु विलोक्यते। अथर्ववेदस्यैकस्मिन् मन्त्रे यज्ञवेदिमधिश्रितेन यज्ञकर्त्रा यजमानेन निगद्यते यद् यज्ञाग्नौ हव्यं प्रयच्छता मया मनसा मननशक्तिरवाप्यते, प्रेरणात्मकगुणोऽनुगृह्यते, चेतसा चेतनानुचीयते, धिया अवधानत्वमवाप्यते आकूत्या संकल्पः संकलप्यते, संवेगोऽभिवर्ध्यते, चित्तेन चिन्त्यते, विचिन्त्यते, स्मर्यते, विस्मर्यते, मत्या बुद्धिव्यापारो वितन्यते, ज्ञानशक्तिरुपचीयते, श्रुतेन श्रवणाध्ययनमभिवर्ध्यते, चक्षसा परिवर्धनपुरःसरं प्रत्यक्षीकरणमनुभूयते। मन्त्रेऽस्मिन् मनसो विविधाः शक्तयः बहवश्च गुणा अष्टधात्वेन समाख्याता यार्थाथ्यविधिना यथा -

मनसे चेतसे धिय आकूतय उत चित्तये।
मत्यै श्रुताय चक्षसे विधेम हविषा वयम्।। (अथर्व ६/४१/१)

संकल्पशक्तिस्रोतो मनः-

मनुष्या मनसः प्रोद्भूतेन संकल्पजेन बलेन बलवत्तां प्रकटयन्तः शुभे वा अशुभे वा कर्मणि भवन्ति प्रवृत्ताः। सत्संकल्पेन सत्कर्मनिपुणा असत्संकल्पेन चासत्कर्मनिपुणा भूत्वा सुखं वा दुःखं वा जनयन्ति। शिवसंकल्पी देवानपेत्य दिव्यतां प्रसारयन् प्रसरति पुरस्तान्निर्वाधं, अशिवसंकल्पी रक्षांसि व्युपेत्य, अदिव्यतां प्रसारयन् प्रसरति पुरस्ताद् सबहुबाधमनुदिनम्। वेदे सत्संकल्पनाय मनुष्या दिव्यया वाचा निर्दिष्टाः यथा-

मनसा संकल्पयति तद् देवाँ अपि गच्छति।
अथोह ब्रह्माणो वशाम् उप प्रयन्ति याचितुम्।। (अथर्व १२.४.३१)
मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीय।
पशूनाँ रूपमन्नस्य रसो यशः श्रीः श्रयतां मयि स्वाहा।। (यजु० ३९/४)

वेदे मनो विद्यतेऽनश्वरम्-

अनश्वरं दिव्यं रुपम् अतित्वरया गत्या प्रासुं देवा यथा देवान् हविषा प्रीणयन्ति तथैव प्रसन्नेन मनसा मनुष्या मनुष्यान् सार्थयन्ति। वयं सर्वे मनुष्या मनसः शक्त्या शक्तिमन्तो भवेम। यथा मनो नास्ति परिमितम् तथैव संसाध्यमनः संसारे वयमप्यपरिमिता स्याम। यत् शक्त्या द्युलोकद्युतिं वेत्ति जनो यत् शक्त्या व्योम विलोकयति यत् शक्त्या पृथिवीप्रथितां पश्यति। येन मनोबलेन पुरुषो दूरस्थोऽप्यदूरस्थ इव अदूरस्थोऽपि दूरस्थ इव भवति तन्मनोबलं दिव्यमेव। सर्वादिव्यशक्तयो मनसि संस्थिताः।

यथा देवा देवान् हविषा यजन्त अमर्त्यान् मनसाऽमर्त्येन।
मदेम तत्र परमे व्योमन् पश्येम तदुदितौ सूर्यस्य।। (अथर्व ७/५/३)
अवः परेण पितरं यो अस्य वेद अवः परेण पर एनावरेण।
कवीयमानः क इह प्रवोचद् देवं मनः कुतो अधि प्रजातम्।।

वेदमन्त्रपठनानन्तरं विज्ञायते यत् सर्वासां शक्तीनां स्रोतो नु मन एव। मनस्विनो मनसि महान् वेगो भवति अत एव महद्भिर्वेदविद्भिर्मनसो वेगवत्ता वायोरपि वरीयसीति कथितम्। मनसा वायुना सप्तविंशति गन्धर्वैश्च मनुष्यरुपापन्नमश्वमाश्रित्य जवत्वमाहितम् यथा

वातो वा मनो वा गन्धर्वाः सप्तविंशतिः।
ते अग्ने अश्वमयुञ्जन् ते अस्मिन् जवमादधुः। (मनु०-७)

न वै वातात् किञ्चन आशीयोऽस्ति न मनसः किञ्चन आशीयोऽस्ति तस्मादाह वातो वा मनो वेति।। (शत-५/१/४/८)

लोके मनसो गतिरतितीव्रा भवति, विचारैः सह मनो वा मनसा सह विचारा वा दूराद्दूरं प्रयान्ति। केनापि यन्त्रेणाश्वस्य वायोर्वागतिरनुमाप्यते परं मनसो गतिरननुमेयाननुमाप्या च कस्यचिदन्यस्य गतिरेकस्यांदिशि प्रभवति परं मनसो गति विश्वव्यापिनी भवति क्षणांशेनापि कालेन। यथा-

यथा मनो मनस्केतैः परापतत्याशुमत्।
एवा त्वं कासे प्रपत मनसोऽनुप्रवाच्यम्।। (अथर्व ६/१०५/१)
यत् ते दिवं पृथिवी मनो जगाम दूरकम्।
तत् त आवर्तयामसि इह क्षयाय जीवसे।। (ऋक् १०/५८/२)
यत् ते विश्वमिदं जगत् मनो जगाम दूरकम्।
तत् आवर्तयामसि इह क्षयाय जीवसे।। (ऋक् १०/५८/१०)
आ ते मह इन्द्रोऽत्युग्र समन्यवो यत् समरन्त सेनाः।
पताति दिद्युन् नर्यस्य बाह्वोर्मा ते मनो विश्वद् रयग् विचारीत्।। (ऋग् ७/२५/१)

सत्त्वगुणशालिभिर्मनीषिभिस्तपश्चर्या शमितकिल्विषैः सूक्ष्मतया मनसि वर्तमाना ज्ञानसत्ता संदृष्टा। ब्रह्मणःसत्तां मनस्यनुभूय तत्त्वविदा तपस्विना क्वमनो वै ब्रह्म इति निगद्यल क्वमनो ब्रह्मा इत्युदीर्यल क्वमनो वै प्रजापतिःल क्वमन एव सर्वम्ल क्वअनन्तं वै मनःल क्वमनो देवःल क्वमनो वै समुद्रःल इत्यादीनि पीयूषवर्षीणि वाक्यानि प्रथितानि। शतपथब्राह्मणे मनसोऽग्निरूपमालोक्य क्वमनो वै अग्निःल इति निगद्य अग्निसत्तया सह मनो वर्णनं कृतम्। यथा अग्निः सर्वत्र गच्छति सर्वं जीवयति सर्वेषु प्राणं सञ्चारयति तथैव मनुष्योऽपि मनसा आत्मसत्तां प्रसारयति दुर्भावं मनोबलेन नाशयति, ऋतस्य सूक्ष्मतां मनसः सूक्ष्मशक्त्या पश्यति। विश्वधारका ये शाश्वतिका ऋतस्य तन्तवः सन्ति तान् ऋतस्य तन्तून् मनसा मिमाति मनुष्यः। साधकः साधनां संसाध्य मनसि वर्तमानया चिन्तनशक्त्या भूतकाले यज्जातं तत्सर्वं पश्यति वर्तमाने काले यज्जायते तदपि जानाति यद् अद्य ना अपितु श्वो भविष्यति तत्सर्वं ज्ञातुं प्रभवति। मनसः सूक्ष्मतत्त्वज्ञातृतायां त्रिकालज्ञतायां मन्त्रद्वयी प्रस्तूयते। यथा-

अष्टधा युक्तो वहति वह्निरुग्रः पिता देवानां जनिता मतीनाम्।
ऋतस्य तन्तुं मनसा मिमानः सर्वा दिशः पवते मातरिश्वा।। (अथर्व १३/३/१९)
यत् ते भूतं च भव्यं च मनो जगाम दूरकम्।
तत् त आ वर्तयामसि इह क्षयाय जीवसे।। (ऋक् १०/५८/१२)

मनसि निर्देशनशक्तिः-

कदाचित् पुरुषाणां मनसि संकल्पा विकल्पाः प्रादुर्भवन्ति। कर्त्तव्याकर्तव्यविषये पुरुषो न भवति निश्चलः अतस्तस्य हृदयं दुःखावेष्टितं भवति तदा मनुष्यहृदयं ऋतस्य जिज्ञासायां मनः कथयति यन्मे मित्राणि सन्ति दुःखितानि कुर्वन्ति च विलपनम्। हर्षशोकचिन्ताक्षोभादिविषये यदो निर्देशनावश्यकता भवति तदा मन एव भवति निर्देशकः। हृदयगतं दुखं द्रोहं शत्रुतां विपन्नतां क्षीणतां दीनतां मन एव सुखेन प्रेम्णा मैत्र्या-सम्पन्नतया-पूर्णतया साहसतया च यथासंख्येन परिणमयति। यस्मिन् काले पुरुष आत्मानं नाशयितुमिच्छति तस्मिन्नेव काले मनसः शक्तिमवाप्य जीवितुमिच्छति। कदापि चिन्तयति यन्नष्टोऽहंजातः कदापि चिन्तयति हृष्टोऽहं पुष्टोऽहं पूर्णोऽहमस्मि जातः।

आ यन्मा वेना अरुहन्नृतस्यँ, एकमासीनं हर्यतस्य पृष्ठे।
मनश्चिन्मे हृद आ प्रत्यवोचद् अचिक्रन्दन शिशुमन्तः सखायः।। (ऋग् ८/१००/५)

ऋग्वेदस्यैकस्मिन् मन्त्रे दृश्यते यत् मन एव अक्षय्यं ज्ञानं विभर्ति। परमात्मना ज्ञानमयेन तपसा मनसा वेदत्रयी धृता। शरीरे वर्तमानः प्राणवायुरेव मनसा अभिहतेनाग्निना प्रेरितो भूत्वा भवति स्वरोत्पादकः। तेजस्विनीं ज्योतिष्मती वाचं मनसि संस्थाप्य तपोबलेन तामुदीर्य जगत्कल्याणाय प्रवर्त्तन्ते महामनीषिणाः। यथा-

पतङ्गो वाचं मनसा बिभर्ति तां गन्धर्वोऽवदद् गर्भेऽन्तः।
तां द्योतमानां स्वर्यं मनीषिणाम् ऋतस्य पदे कवयो नि पान्ति।। (ऋग् १०/१७७/२)

यत्र ऋग्वेदस्य यजुर्वेदस्य सामवेदस्याथर्वस्य च प्रत्यक्षपदवाच्याः परोक्षपदवाच्या आध्यात्मिकपदवाच्याश्च मन्त्रास्तिष्ठन्ति। सर्वाणि तपांसि विततानि रथनाभौ यथा अरा आश्लिष्टास्तथैव मनसा भवन्ति समाश्लिष्टा सर्वे वेदाः। सर्वासां प्रजानां चित्तं यत्र सर्वथोतं प्रोतं भवति तदैव मन इति निगद्यते। मनस एव शिवां संकल्पशक्तिं प्रेरयितुं साधकस्तपस्वी प्रार्थयते सर्वज्ञं परमात्मानम्।

यस्मिन्नृचः साम यजूंषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
यस्मिंश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।। (यजु० ३४/५)

जाग्रतः पुरुषस्य यथा मनो सुदूरमपि समीपमपि स्वगतिं करोति तथैव सुप्तस्यापि पार्श्ववर्ति दूरवर्ति च भवति। एतन्मनः सर्वेषां ज्योतिषां ज्योतिर्विद्यते एतद् विना नहि किमपि विचारयितुं कर्तुं विकर्तुम् अपकर्तुं प्रभवति यथा-

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु।। (यजु० ३४/१)

येन मनसा श्रद्धया कर्मवीराः सात्विकवृत्त्या यज्ञं वितन्वन्ति वाचावाचं योजयन्ति देवैर्देवानुद्बोधयन्ति च तस्य मनसः शिवसंकल्पता समीहिता-

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु।। (यजु० ३४/२)

मानसिक्या शक्त्या अखण्डं ज्ञानं प्राप्यते यत् एव क्वप्रज्ञानं मनब ज्ञानरूपं मन इति निगद्यते। ज्ञातस्य वस्तुनः स्मरणं मनसैव क्रियते अत एव स्मृतिकोशो मनः। मनसैव कर्म क्रियते मनसा वागुच्यते मनसा दृश्यते मनसा समूह्यते। सुखदुःखयोः स्थली मन एवं मनसश्च हृदये वासः, मन एव प्रजापतेरपूर्वा तनूः। ज्योतिषाममरता मनस्येव। यथा-

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।
यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु।। (यजु ३४/३)
न ह्ययुक्तेन मनसा किञ्चन संप्रति शक्नोति कर्तुम्। (शत० ६,३,१,९१६)
मनसा ह्येव पश्यति मनसा शृणोति। (शत० १४,३,१६)
येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत् परिगृहीतमृतेन सर्वम्।
येन यज्ञस्तायते सप्त होता तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु।। (यजु० ३४/४/४)
सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान् नेनीयते अभीशुभिर्वाजिन इव।
हृत् प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु।। (यजु० ३४,४,६)

मनो निग्रहेण मृत्युञ्जयः-

मनसि वर्तमाना चञ्चलतैव मानवं पतनगर्ते पातयति। रथं स्थि्ायितुं शकटं वा साधयितुं युगं परिदृढैस्तन्तुभिर्बध्नन्ति जनाः। रज्जुपट्टिकाभिरबध्दो युगं रथे शैथिल्यं जनयति, स्थिरतया रथो न भवति गतिमान्। अतएव रथरूपं देहं उद्यमार्गेण नेतुं मनो प्रग्रहस्य प्रबन्धनमपेक्ष्यते। जीवनाय मृत्युवारणाय अनिष्टविनाशाय मनो निग्रहो नूनमनिवार्यः। मनो निग्रहेण पुरुषः सर्वं कर्तुमर्हति। निश्चलमनसां मानवानां किमपि नास्त्यसाध्यं भूतले, परमति चञ्चलमनसां पुरुषाणां मार्गे तु पदे-पदे भवति दुःखोत्पातः। त्रिविधतापतप्तः कश्चित् चञ्चलचित्तो नरः शान्त्यर्थम् आचार्यं गुरुं तपस्विनमुपदेष्टारं सम्यगुपेत्य स्वदुःखं विज्ञापयति। आचार्यस्तन्मनोव्यथाकारणं मनश्चाञ्चल्यं विज्ञाय मनसः स्तभ्मनायोपायमुपायान्तरं च निगद्य मनो व्यथामपहरति। संस्तभ्य तन्मनस्तेनाचार्येण तज्जीवनं सञ्जीवितम्। मनोनिग्रहभेषजं निपीय पुरुषो बलवान् भवति संसारे तत्कृते किमप्य सम्भवं न भवति। तज्जीवनं नानेति, भावं न स्पृशति, चञ्चलचित्तं पुरुषं नकारात्मको भावो पुनः पुनर्मृत्युमुखे प्रक्षिपति। दुश्चिन्तनेन यन्मनो दूरं गत्वा नैराश्यमुत्पादयति तदेव मनः साधनया स्थिरतामुपेत्य मनुष्यं साधयति सततं कर्मकरणाय प्रेरयति दक्षतां च ददाति। साधकानां चिन्तनानुसारं मनोनिग्रहः सञ्जीवनीशक्तिरूपः सन् मानवजीवनं विकासयति। निग्रहवान् पुरुषो मनोबलेन पतितोऽपि उद्गतः उद्ग्रसितोऽप्युन्मुक्तः हीनोऽप्यहीनः दीनोऽप्यदीनः निष्क्रियोऽपि सक्रियः निर्बलोऽपि सबलः, अक्षमोऽपि सक्षमः, अपण्डितोऽपि पण्डितो भवति, भवति च लोके प्रशस्यः।

यथा युगं वरत्रया नह्यन्ति धरणाय कम्।
एवा दधार ते मनो जीवातवे न मृत्यवे अथो अरिष्ट तातये।। (ऋग् १०/६०/८)
मनसैवेदमवासव्यं नेह ना नास्ति किञ्चन।
मृत्योः स मृत्युं गच्छति य इह नानेव पश्यति।। (कठोप० २/४/११)
यमादहं वैवस्वतात् सुबन्धोर्मन आभरम्।
जीवातवे न मृत्यवे अथो अरिष्ट तातये।। (ऋग् १०/६०/१०)
आ न एतु मनः पुनः क्रत्वे दक्षाय जीवसे।
ज्योक् च सूर्यं दृशे।। (यजु ३/५४)

मनोबुद्धिसमन्वये जायते मनोनिग्रहोदयस्तेनैव सह सौख्यं सौमनस्यं सौभाग्यं दाक्ष्यं भद्रत्वं माङ्गल्यं च वर्धते।

त्वं धियं मनोयुजं सृजा वृष्टिं न तन्यतुः।

त्वं वसूनि पार्थिवा दिव्या च सोम पुष्यसि।। (ऋग् ९/१००/३)

मानवानां मनसि पापधारा पुण्यधारा च सदैव प्रवहति। एकस्मिन्नेव काले द्वे धारे न प्रवहतः। कदाचित् मनः पापाश्लिष्टं कदाचिच्च पुण्याश्लिष्टं जायते। अशुभचिन्तनान्विते मनसि प्राणानां गतिरसमा शुभचिन्तनान्विते च मनसि प्राणानां गतिः समा भवति। प्राणानामसमत्वे रागोत्पत्तिर्जायते सति रोगे आयुरपि क्षीयते। येषां प्राणाः समाः प्रवहन्ति ते रोगरहिता दीर्घजीविनश्च भवन्ति। सत्कर्मव्यापृतं मनो न संस्पृशन्ति दुर्विचाराः। रिक्ते मनसि पापानां निवासः प्रवर्धते। शुभकर्मरतं पुरुषं यदि कदाचित् पापवृत्तिरात्मायत्तीकर्तुं कामयते तदा सत्कर्मलग्नः पुरुषः पापमुद्दिश्य कथयति यत् रे पाप! त्वं मामपहाय दूरं गच्छ। यतो हि मे मनो सद् गृहकार्ये संलग्नं जातम्। शिवसंकल्पावृते मनसि न पापवासावसरो मनागपि वर्तते अतस्तव वासस्तु हे पाप! वने वा वृक्षे वा भवतु। यथा

परोऽपेहि मनस्पाप किमशस्तानि शंससि।

परेहि न त्वा कामये वृक्षान् वनानि सं चर गृहेषु गोषु मे मनः।। (अथर्व० ६/४५/१)

अपेहि मनस्पतेऽप क्राम परश्चर।

परो निर्ऋत्या आचक्ष्व बहुधा जीवतो मनः।। (अथर्व २०/९६/२४)

येषां पुरुषाणां मनसि बलवत्ता विराजते ते जगत्यां सर्वं कर्तुं क्षमन्ते। न केवलमेकं वस्तु ते लभन्तेऽपितु समग्रं विश्वमपि जेतुं शक्नुवन्ति ते। मनोबलेन दिग्विजयो जायते जायते च विश्वविजयः परं परविजयात् प्राग् आत्मविजयो विधेयः। येन स्वमनो जितं तेनैव जगज्जितम्। स्वमनोजयेनाभिवर्धितमनोबलानां मनीषिणां समये-समये कुर्वन्त्यात्मोल्लासमिमे वेदमन्त्राः-

अभिद्यां महिना भुवम् अभीमां पृथिवीं महीम्।

कुवित्सोमस्यापामिति।। (ऋग् १०, ११९, ८)

अहमिन्द्रो न परा जिग्य इद् धनम् न मृत्यवेऽवतस्थे कदाचन।

सोममिन्मा सुन्वन्तो याचता वसु न मे पूरवः सख्ये रिषाथन।। (ऋग् १०/४८/५)

मनोबलहीनानां पुरुषाणां मनसि प्रायो नैराश्यमुत्पद्यते, नैराश्यशमनाय मनोबलवर्धनाय च वेदमन्त्रो बलहीनान् सबलयितुं निर्दिशति यद् यदा नैराश्यमभिजायेत् तदा पूर्वेषामृषीणां जीवनपद्धतिर्ग्राह्या, महापुरुषाणां जीवनचरितं पठनीयं महतां स्मरणं करणीयम्। यथा-

मनो न्वाह्वामहे नाराशंसेन स्तोमेन।

पितॄणां च मन्मभिः।। (यजु० ३/५३)

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।

समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि।। (ऋग् १०/१९१/३)

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।

समानमस्तु वो मनो यथा वः सु सहासति।। (ऋग् १०/१९१/४)

अतोऽन्ते प्रोच्यते यत् शिवसंकल्पावृतं भवतु नो मनः।

वेदेषु पर्यावरणसंरक्षणम्

डॉ. गणेश दत्त शर्मापूर्व प्राचार्य, लाजपत राय पी.जी. कॉलेज, साहिबाबाद(गाजियाबाद)।

अस्मान् परितः आकाशवायुरग्निजलपृथिव्यादीनां, सूर्यचन्द्रनक्षत्रादीनां तथा च वृक्षाणां वनस्पतीनां, नदीनां, पर्वतानां, पशूनां, पक्षिणामन्येषां च प्राकृतिकपदार्थानां यत् आवरणं तदेव पर्यावरणम्। वेदमन्त्रेषु पर्यावरणार्थे परिधिः, परिभूः, छन्दस्(आच्छादकः) आदिपदानां प्रयोगाः विहितः

(क) सर्वो वै तत्र जीवति गौरश्वः पुरुषः पशुः।

यत्रेदं ब्रह्म क्रियते परिधिर्जीवनायकम्।। अथर्व. 8.2.25

(ख) अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि

स इद् देवेषु गच्छति।ऋक् 1.1.4

(ग) त्रीणि छन्दांसि कवयो वियेतिरे.........।

आपो वाता ओषधयस्तान्येकस्मिन् भुवन अर्पितानि। अथर्व. 18.1.17

पर्यावरणं हि सर्वेषां जीवनस्याधारभूतम्। अतः सर्वभूतहितसाधकेषु वेदेषु पर्यावरणरक्षार्थ प्रेरणा प्रदत्ता तदर्थं चोपायाः वर्णिताः।

अद्य वैज्ञानिकैः प्रदूषणनिवारणार्थं वृक्षाणां वनानां च महत्त्वं सर्वोपरि स्वीकृतम्। यतो हि ते हानिकारकं वायुमात्मसात्कुर्वन्ति जीवनदायकं च सुखकरम् वायुमुद्वमन्ति। इदमेव वैज्ञानिकं सत्यं प्रमाणीकृत्य वेदमन्त्रेषु वृक्षेभ्यो वनेभ्यस्तत्पालकेभ्यश्च सश्रद्धं नमः अकारि

(क) नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यः । यजु. 16.17

(ख) वृक्षाणां पतये नमः। ओषधीनां पतये नमः। यजु. 16.19

(ग) अरण्यानां पतये नमः। यजु. 16.20

(घ) नमो वन्याय च। यजु. 16.34

ऋग्वेदस्य दशमे मण्डले एकं सम्पूर्णं सूक्तं (146) वनदेवतायै प्रस्तुतम्। तच्च "अरण्यानी" इति नाम्ना प्रथितम्। तत्र अरण्यानी प्रभूतान्नयुता सर्वेषां जन्तूनां च मातृरूपेण वर्णिता

आन्जनगन्धिं सुरभिं बह्वन्नामकृषीवलाम्।

प्राहं मृगाणां मातरमरण्यामनिशंसिषम्।। ऋक्. 10.146.6

"वृक्षाः, वनस्पतयः, ओषधयश्च सर्वेषां कृते मधुमयाः, हितावहाः शान्तिदायकाश्च भवेयुः- "इत्येताः कामना अपि वेदमन्त्रेषु अभिव्यक्ताः

(क) मधुमान्नो वनस्पतिः। ऋक् 1.90.8

(ख) सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु। यजु. 36.23

(ग) ओषधयः शान्ति वनस्पतयः शान्तिः। यजु. 36.17

(घ) माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः। यजु. 13.27

अत्रेदं विज्ञेयं यत्- वनस्पतिः, वृक्षः- ओषधिश्चेत्यादयः शब्दाः वैदिकेषु लौकिकेषु च ग्रन्थेषु प्रायशः एकस्मिन्नेवार्थे प्रयुक्ताः।

मन्त्रद्रष्टारः ऋषयस्तथ्यमिदं सम्यक् यज्ञुः यत्- वनानि वृक्षाः, वनस्पतयो लताश्च प्रदूषणं दूरीकुर्वन्ति, परिशुद्धं सुगन्धितं च गन्ध वहं प्रवाहयन्ति, मेघानामुत्पादने च साहाय्यं कुर्वन्ति। इत्थं ते महदुपकारकाः खलु पर्यावरणस्य। अतस्ते सर्वथा संरक्षणीयाः। न केवलं संरक्षणीयाः- अपितु नूतना वृक्षा अपि सततमारोपणीयाः। एकस्मिन् मन्त्रे- "वनस्पतिं वन आस्थापयध्वम्।" (ऋक्. 10.101.11) इत्यादिरूपेण सुस्पष्टमादिष्टं वृक्षारोपणम्।

प्रदूषणरहितः शुद्ध पूतः वायुरेव स्वास्थ्यप्रदः जीवनाधायकश्चेति वैज्ञानिकं सत्यं सुविदितमासीत् वेदविद्भिः। अत एवैकस्मिन् मन्त्रे - "विश्वभेषज" इति सम्बोधनेन सम्बोधितो वातः, - भेषजं वातं प्रवाहयितुं प्रार्थितः-

आ वात वा हि भेषजं वि वातं वाहि यद्रपः।

त्वं हि विश्वभेषजो देवानां दूत ईयसे। ऋक् 10.137.3

शुद्धः- आरोग्यदायकश्च भेषजवातो विशेषतः हृद्रोगिणां कृते शान्तिदायकः आयुवर्धकश्चेति आयुर्वैदिकं रहस्यमपि मन्त्रद्रष्टारः सम्यक् विदुः। यथा च कांक्षितं मन्त्रे-

वात आ वातु भेषजं शंभु मयोभु नो हृदे। प्र ण आयूंषि तारिषत्।। ऋक् 10.186.1

वेदमन्त्रवर्णितस्य भेषजवातस्य च स्रोतांसि तान्येव वनानि येषां महत्त्वं वैदिकैर्कविभि- "नमो वन्याय च" एवमेव "वनानां पतये नमः" इत्यादिमन्त्रेषु मुक्तकण्ठेन गीतम्।

वायुरिव जलानामपि पर्यावरणसंरक्षणे महत् खलु योगदानम्। अतएव आपः- देवीरूपेण मातृरूपेण च पूजिताः सूक्तेषु-

(क) शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। यजु. 36.12

(ख) आपो अस्मान् मातरः शुन्धयन्तु। ऋक् 10.17.10

जलेषु- अमृतं भेषजतत्त्वमपि च संकेतितम्- "अप्स्वन्तरमृतं अप्सु भेषजम्"। ऋक् 1.30.19) अथर्ववेदे जलानामष्टौ भेदा वर्णिताः-

(क) शं त आपो हैमवतीः शमु ते सन्तूत्स्याः।

शं ते सनिष्यदा आपः शमु ते सन्तु वर्ष्याः। अथर्व. 19.2.1

(ख) शं ते आपो धन्वन्याः शं ते सन्त्वनूप्याः।

शं ते खनित्रिमा आपः शं या कुम्भेभिराभृताः।। अथर्व. 19.2.2

यजुर्वेदे जलानामोषधीनां च हिंसा निषिद्धा- मापो मौषधीर्हिंसीः (6.22) अस्ति तत्र पृथिवीहिंसाया अपि निषेधः- "पृथिवीं दृंह, पृथिवीं मा हिंसीः(13.18) अथर्ववेदे पृथिवी सर्वेषां मातृरूपेण प्रतिष्ठिता-

(क) माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः। अथर्व. 12.1.12

(ख) विश्वस्वं मातरमोषधीनाम्। अथर्व. 12.1.17

वस्तुतः पृथिव्यां जलेषु च मलानां निक्षेपणं तेषां च दुरुपयोगः तथा च तेषां असंतुलितं दोहनमपि तेषां हिंसनमेव यत्प्रतिषेधयति मन्त्रद्रष्टा ऋषिः।

वेदानुसारं पर्यावरणशुद्धेः सर्वोत्तमं सरलमल्पव्ययसाध्यं च साधनमग्निहोत्रं यज्ञो वा अस्ति। यज्ञाग्नौ प्रदत्ता घृतस्य हवनसामग्र्याश्च आहुतयः वातावरणं शुद्धं पवित्रं सुगन्धितं प्राणदायकं स्वास्थ्यप्रदं च कुर्वन्ति। एकस्मिन् वेदमन्त्रे यज्ञेन वायुमण्डलशोधनार्थं प्रेरणा प्रदत्ता-

आ जुहोता हविषा मर्जयध्वम्। सामवेद 1.7.1

"यज्ञस्य प्रधानभूतं द्रव्यं घृतं नूनं विषनाशकम्"- इति वैज्ञानिकैः सुपरिक्षितम्। प्राचीनकाले विषवैद्याः घृतेनैव सर्पदंशचिकित्सां कुर्वन्ति स्म। इदमेव घृतमग्नौ प्रस्तुतं सत् सहस्रगुणं शक्तियुतं भूत्वा पर्यावरणं निर्विषं, प्रदूषणरहितं, सुपुष्टं च विदधाति। इदमेव वैज्ञानिकं रहस्यं प्रमाणीकुर्वता ऋषिणा मन्त्रे सुस्पष्टं व्याहृतम्-

घृतेन द्यावापृथिवी पूर्येथाम्। यजु 5.28

एतच्च स्वतःसिद्धमेव यद् घृतेन द्यावापृथिव्योः पूरणं यज्ञेनैव संभवम्। एवमेवाग्निहोत्रे घृतेन सह या सामग्री हूयते तस्यां प्रदूषणनिवारकाणां रोगविनाशकानां च ओषधीनां मिश्रणं भवति। अतो यज्ञकुण्डोत्थितो धूमः पर्यावरणस्य महानुपकारकः। पर्यावरणदृष्ट्या यज्ञस्य महत्त्वमुपयोगितां च स्वीकृत्यैव- "यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म" एवं च "अयं यज्ञो विश्वस्य भुवनस्य नाभिः" इत्यादि रूपेण यज्ञस्य प्रशंसा विहिता वैदिकवैज्ञानिकैः।

यज्ञीयसामग्री होमकुण्डे केवलमेवमेव न प्रक्षिप्यते- अपितु वेदमन्त्रोच्चारणपुरस्सरं सा सश्रद्धमग्निदेवं प्रति समर्प्यते। यज्ञविधौ ये मन्त्रा निर्धारितास्तेषु विश्वबन्धुत्वभावना लोककल्याणकामनाश्च सन्निहिताः। तास्तु यथा-

(क) शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे। यजु. 36.8

(ख) सर्व आशा मम मित्रं भवन्तु। अथर्व. 19.15.6

(ग) द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्ति..........। यजु. 36.17

यज्ञावसरे भक्तिभावपूर्वकं सुमधुरया वाचा सस्वरं समुच्चारिता एते मन्त्राः खलु सकलमपि वातावरणं शान्तिमयं, सुखमयमानन्दमयं सौहार्दमयं च कुर्वन्ति। सस्वरमन्त्रपाठेन तु ध्वनिप्रदूषणमपि निवारयितुम् शक्यते।

भौतिकपर्यावरणसमकालमेव वेदेषु- आध्यात्मिकपर्यावरणशुद्ध्यर्थमपि दिव्यसंदेशाः समुपायनीयकृताः। वेदमन्त्रेषु- **सहृदयं साम्मनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः**(अथर्व. 3.30.1) "तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु"(यजु. 34.1) "धियो यो न प्रचोदयात्"(यजु.3.35) इत्याद्या दिव्यातिदिव्या वेदसूक्तयः अस्य प्रमाणभूताः। इत्थं वेदाध्ययनेनैतत्प्रमाणितं भवति यन्मन्त्रद्रष्टारः ऋषयः पर्यावरणं प्रति दत्तावधाना आसन्। वेदमन्त्रेषु प्रदूषणनिवारणार्थं पर्यावरणसंरक्षणार्थं च ये उपाया वर्णितास्ते सततमुपयोगितां, सार्थकतां, व्यावहारिकतां, वैज्ञानिकतां च धारयन्ति। भौतिकमाध्यात्मिकं चोभयमति पर्यावरणं वैदिकोपायैरेव संरक्षितुं शक्यम्।

स्वामी दयानन्द की विचारधारा के आलोक में -

वेदों में भू, भूसमुद्र और भूतल पर आदिम जीव-सृष्टि की विवेचना

डॉ0 महावीर डी. लिट्
आचार्य, संस्कृत विभाग
गु. कां. वि. वि. हरिद्वार

डॉ0 दिनेशचन्द्र शास्त्री डी.लिट्
उपाचार्य, वेद विभाग
गु. कां. वि. वि. हरिद्वार

खगोल या आकाश मण्डल में वर्तमान सूर्य, चन्द्र, शुक्र आदि ग्रहों, रेवती, अश्विनी आदि नक्षत्रों, धूमकेतु आदि तारों एवं अनन्त ज्योतिष्पिण्डों और पृथिवी आदि गोलों की यह समस्त सृष्टि गतिमय होने से परिणामिनी है अतएव उत्पन्न हुई है। वेद में कहा है- इयं विसृष्टिर्यत आ बभूव, ऋ. 10.129.7, यह विविध सृष्टि जिससे उत्पन्न हुई है इस कथन से उक्त सृष्टि का उत्पन्न होना दर्शाया है। उत्पत्ति किसी उत्पत्तिकर्त्ता की अपेक्षा रखती है। इसी लिये वेद में कहा गया है-

द्यावाभूमी जनयन्देव एकः (ऋग्.10.81.3; यजु.17.19)

द्यावाभूमि अर्थात् सूर्य आदि ज्योतिष्पिण्डों और पृथिवी आदि प्रकाश्य गोलों एवं खगोल के समस्त प्रकाश्य-प्रकाशक पिण्डों का उत्पन्न करनेवाला एक देव है।' अनन्त असीम खगोल सृष्टि का उत्पन्न करने वाला कोई अदृश्य असीम शक्तिसम्पन्न देव है।[1] उसे ही लोग अपने-अपने तरीकों से ईश्वर या परमात्मा, गॉड अथवा खुदा कहते हैं।

अथर्ववेद शौनक संहिता में उत्पत्ति-समय पृथिवी की पूर्वस्थिति का वर्णन करते हुए कहा गया है- यार्णवेधि सलिलमग्र आसीद्. 12.1.8 अर्थात् आरम्भ में पृथिवी जल के अन्दर जलरूप थी।' एवं इसके सब ओर जल ही जल था। उस समय इसके समस्त भाग व्यथमान थे- उथल् पुथल कर रहे थे। ऋग्वेद शाकल संहिता और अथर्ववेद शौनक संहिता में कहा भी है-

यः पृथिवीं व्यथमानामदृंहद्

यः पर्वतान्प्रकुपिताँ अरम्णात्। ऋ 2.12.2; अथर्व. 20.34.2

अर्थात् पृथिवी व्यथमान थी उथल पुथल कर रही थी और पर्वत भी प्रकुपित थे वे ऊपर आने की चेष्टा कर रहे थे फिर इन्द्र उत्तरीय ध्रुव[2] एवं सूर्य के आकर्षण से विद्युद्भरे पार्थिव भाग पर्वत भूवृत्त से ऊपर उठकर स्थिर हो गये और पृथिवी जल रूप से ठोस रूप में दीखने लगी। इस प्रकार उत्तर में पृथिवी भाग के खिंच जाने से दक्षिण में महागर्त हो गया और वे प्रारम्भ के आच्छादक जल केन्द्रिय आकर्षण से भूवृत्त को पूरा करने के लिये उस महागर्त में जा गिरे जो कि समुद्र रूप में प्रसिद्ध हो गया क्योंकि समुद्र भूवृत्त के सूत्र में वर्तमान है। या पृथिवी वृत्त के समतल में है अतएव समुद्र तल से ही पर्वत आदि प्रदेश की ऊंचाई मापी जाती है।[3] जल समतल बनाते हुए बहते हैं। यह वेद में कहा भी है- **यस्यामापः परिचराः समानीरहोरात्रे अप्रमादं क्षरन्ति।** अथर्व. 12.1.9

अर्थात् पृथिवी पर जल गतिशील 'समानीः' समधरातल बनाते हुए दिनरात निरन्तर बहते रहते हैं। जलों में समधरातल बनाने का स्वभाव है। बहते हुए जलों के सामने गड्ढा आ जावे तो उसे भरकर समधरातल (Level) बनाकर आगे बढ़ते हैं अतएव उस महागर्त तक पहुँच उसे भरकर समुद्र रूप में परिणत कर समधरातल बनाते हैं।

अथर्ववेद में उल्लेख है कि पृथ्वी पर समुद्र, झील(नद) और जल है।[1] समुद्र भी पृथ्वी पर है ऐसा यहाँ स्पष्ट होता है। इससे यह सिद्ध होता है कि जो एक भाग पृथिवी और तीन भाग जल की बात है वह पृथिवी के बाह्य पृष्ठ सम्बन्धी व्यवस्था है अर्थात् शेष तीन भागों पर समुद्र फैला हुआ है। समुद्र की गहराई अधिक से अधिक इकत्तीस हजार फुट अर्थात् लगभग छ: मील है परन्तु समुद्र से बहुत बड़ी है। समुद्र तो उसके बाह्य पृष्ठ पर ही फैला हुआ है।

समुद्र में वायु के कारण सदा आवर्त आते रहते हैं किन्तु ज्वारभाटा[5] चन्द्रमा के बढ़ने घटने के कारण आया करता है[6] परन्तु समुद्र से जलमय वायुएं (सूक्ष्म भाप या मानसून) सूर्य के कारण उठा करती हैं। वेद में कहा है-

उदीरयत मरुत: समुद्रतस्त्वेषो अर्को नभ उत्पातयाथ।

महऋषभस्य नदतो नभस्वतो वाश्रा आप: पृथिवीं तर्पयन्तु।। अथर्व. 4.15.5

अर्थात् समुद्र से हवाएं उठती हैं सूर्य के प्रति जल को उड़ाती हैं पुन: उनसे मेघ बनकर वृष्टिजल शब्द करते हुए पृथिवी को तृप्त करते हैं- सिञ्चित करते हैं। ऋग्वेद के अनुसार पृथिवी पर समुद्र अनेक हैं[7]। इससे ज्ञात होता है कि पृथिवी का अनेक समुद्रों से सम्बन्ध है।

पृथिवी जब जल के अन्दर से बाहर उभरी अर्थात् सर्वप्रथम पर्वतीय भूभाग के ऊपर से तथा दक्षिण में समुद्ररूप महागर्त की ओर जल प्रवाह के चलते रहने से[8] उत्तर में जो ऊँचा पर्वतीय भूभाग बाहर प्रकट हुआ उस पर प्रथम मनुष्य आदि जीव की सृष्टि हुई। हम प्रत्यक्ष देखते हैं जल में डूबी हुई भूमि का जो भाग जल के सूखते रहने से ऊपर उभरता है उसी पर घास, मच्छर, चींटी आदि की सृष्टि होती है। इस बात को आधुनिक विज्ञान भी स्वीकार करता है कि आरम्भिक जीव-सृष्टि कहीं ऊँचे स्थान पर ही हो सकती है और वह स्थान त्रिविष्टप (तिब्बत) हो सकता है। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भी सत्यार्थप्रकाश में आदि सृष्टि त्रिविष्टप अर्थात् तिब्बत में ही स्वीकार की है।[9] वेद में कहा है-

त्रय: सुपर्णा उपरस्य मायू नाकस्य पृष्ठे अधि विष्टपि श्रिता:।

स्वर्गा लोका अमृतेन विष्ठा इषमूर्ज यजमानाय दुह्राम्।। अथर्व. 18.4.4)

अर्थात् तीन अग्नियां- अग्नि-विद्युत्-सूर्य रूप तीन देवता जीवों के त्रिष्टप् अर्थात् प्रवेश स्थान में आश्रित हैं जिनमें दो विद्युत् और सूर्य तो उस सुखमय पृष्ठभूमि के उच्चपृष्ठ पर मेघ को बनाते हैं जहां कि सुख उगाने वाले दर्शनीय अग्नि आदि देव अपने अमृत धर्म से जीवन रूप यजमान के लिए अन्न-रस-शुक्रशोणित वीर्यरज का दोहन करते हैं।[10]

इस प्रकार वह उच्च प्रदेश 'त्रयाणां विष्टप्-त्रिविष्टपम्' अग्नि आदि तीनों प्रधान देवों का विष्टप् होने से त्रिविष्टप् है। नारायणोपनिषद् में भी कहा है-

उत्तमे शिखरे जाते भूम्यां पर्वतमूर्धनि।

ब्राह्मणेभ्योऽभ्यनुज्ञाता गच्छ देवियथासुखम्।।

स्तुतोमया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्ती पवने द्विजाता।

आयु: पृथिव्यां द्रविणं ब्रह्मवर्चसं मह्यं दत्त्वा प्रजातुं ब्रह्मलोकम्।।

(नारायणोप. 36)

अर्थात् पर्वतमूर्धा (हिमालय) के ऊंचे शिखर पर प्रकट हुए भूभाग में ब्राह्मणों आदि ऋषियों द्वारा आविर्भूत हुई वेदमाता देवी! संसार का सुख जिस प्रकार हो सके उस प्रकार तू संसार में फैल।' अस्तु!

अब यह देखना है कि उस समय प्रथम मनुष्य सृष्टि या जीव सृष्टि पृथिवीतल पर कैसे हुई? यह एक बड़े कौतुहल का विषय है क्योंकि उस समय माता-पिता तो थे ही नहीं। वास्तव में प्रारम्भ में बिना माता-पिता के मनुष्य आदि की अमैथुनी सृष्टि हुई। यह कोई असम्भव या अचम्भे की बात नहीं जीवनोत्पत्ति के प्रारम्भिक नियम की बात है। आजकल भी तो मैथुनी सृष्टि के अतिरिक्त अमैथुनी सृष्टि भी देखने में आती है। मनुष्य आदि जरायुज और अण्डज आदि प्राणियों की मैथुनी सृष्टि तथा कृमियों की अमैथुनी। अण्डजों में भी मेण्ढ़क आदि क्षुद्र जन्तुओं की भी वर्षा ऋतु में अमैथुनी सृष्टि होती है। मध्यकाल में समुद्र से निकले हुए छोटे-छोटे द्वीपों में जहां कि हाल में योरोप या भारत से जाकर मनुष्य बसे हैं ऐसे में निर्जन स्थानों में जरायुज सिंह, गौ, कुत्ता बिल्ली आदि पशु तो पाए गये हैं। वह इन मध्यकालीन द्वीपों में उक्त पशुओं की अमैथुनी सृष्टि ही हुई यह समझना चाहिए। इस प्रकार सृष्टि के प्रारम्भ में जरायुजों में प्रमुख मनुष्य सृष्टि भी अमैथुनी हुई यह यथावत् संभव है। आजकल मनुष्य सृष्टि अमैथुनी इसलिये नहीं होती कि पृथिवी की वह उत्पादनशक्ति नहीं रही जो पहिले थी। यह तो स्पष्ट ही है कि माता प्रारम्भ में अपने यौवन में योग्य सन्तान उत्पन्न करती है पुनः वह क्रमशः उससे अयोग्य निर्बल सन्तान जनती है और वृद्धा हो जाने पर तो अतीव निर्बल उत्पन्न करती है या उत्पन्न ही नहीं कर सकती। यही बात यहां जाननी चाहिये, प्रारम्भ में पृथिवी माता का यौवन काल होता है वह उस समय जीवों में सबसे योग्य मनुष्य जैसे सन्तान को उत्पन्न करती है पुनः उसकी शक्ति नष्ट होते होते आजकल केवल वर्षा ऋतु में ही मात्र क्षुद्र जन्तुओं की अमैथुनी सृष्टि उत्पन्न करने की शक्ति रह गई है आगे चलकर यह भी न्यून हो जाने या न जाने रहे ही न। ऐसा विद्वानों का मानना है।[11]

अब यह देखना है कि मनुष्य आदि उक्त अमैथुनी सृष्टि पृथिवी तल से कैसे हुई? इसके लिये वेद में कहा है-

उप सर्प मातरं भूमिमेतामुरुव्यचसं पृथिवीं सुशेवाम्।
ऊर्णम्रदा युवतिर्दक्षिणावत एषा त्वा पातु निर्ऋतेरुपस्थात्।।
उच्छ्वञ्चस्व पृथिवी मा निबाधथाः सूपायनास्मै सूपवञ्चना।
माता पुत्रं यथा सिचाऽभ्येनं भूम ऊर्णुहि।।
उच्छ्वञ्चमाना पृथिवी सु तिष्ठतु सहस्रं मित उप हि श्रयन्ताम्।
ते गृहासो घृतश्चुतो भवन्तु विश्वाहास्मै शरणाः सन्त्वत्र।।

ऋ. 10.18.10-12; अथर्व. 18.3.49-57

उपर्युक्त मन्त्रों में अथर्ववेद में कुछ पाठभेद मिलता है। जैसे-

1. ऊर्णम्रदाः पृथिवी दक्षिणावत(अथर्ववेद) = ऊर्णम्रदा युवति.(ऋग्.)
2. पातु प्रपथे पुरस्तात्(अथर्व.) = पातु निर्ऋतेरुपस्थात्(ऋग्.)
3. सूपायनास्मै भव सूपसर्पणा(अथर्व.) = सूपायनास्मै सूपवंचना(ऋग्.)

उपर्युक्त तीनों मन्त्रों का अर्थ स्वामी ब्रह्ममुनि ने इस प्रकार किया है-(1) **एताम् उरुव्यचसं सुशेवां भूमिं पृथिवीं मातरम् उपसर्प**= हे जीव! तू सृष्टि में जन्म पाने के लिये बहुविध जीवदेहों को प्रकट करने वाली सुखदायिनी इस पृथिवी भूमि रूप माता को प्राप्त हो। **दक्षिणवते- एषा युवतिः- ऊर्णम्रदाः**=बीजभाव से निज समर्पण करने वाले के लिए (त्यागो दक्षिणा - इति प्राणाग्निहोत्रोप. 4) यह युवति ऊन जैसी मृदु हो जाती है। **त्वा निर्ऋतेः उपस्थात् पातु**= तुझे विपत्ति के

आश्रय से बचावे। अथवा **पुरस्तात् प्रपथे त्वा पातु**= पूर्व प्रथम सृष्टि के पथाग्र पर तेरी रक्षा करे।

(2) **पृथिवी- अस्मै - उच्छ्वञ्चस्व मा निबाधथा: सूपायना सूपवञ्चना भव**= तथा हे पृथिवी! तू इस जीव के लिये पुलकित पृष्ठा- उफनी हुई हो जा[12] बाधा या रुकावट न डाल किन्तु इसके लिए भली प्रकार उपयुक्त और उसके उभरने के योग्य हो। **भूमे माता पुत्रं यथा सिचा- अभ्येनम्-ऊर्णुहि**= हे भूमि! माता जैसे पुत्र को दुग्धरस सेचन पार्श्व से आश्रय देती है ऐसे इसे भी आश्रय दे।

(3) **उच्छ्वञ्चमाना पृथिवी सुतिष्ठतु**= पुलकितपृष्ठा उफनी हुई पृथिवी भली प्रकार हो। उसके अन्दर, **मित: गृहास: सहस्रं हि उपश्रयन्ताम्** = जीव शरीर के निर्माण करने वाले गृहकोश-गर्भ कोश सहस्रों ही आश्रय देने वाले बने तैयार हों। **ते अस्मै घृतश्च्युत: स्योना: अत्र शरणा: सन्तु**= वे गर्भकोश-गर्भकोहे इसके लिए रसपूर्ण सुखकारक यहाँ शरण हों।

उपर्युक्त मन्त्रों का आशय यह है कि आरम्भ सृष्टि में जीवों की माता एक मात्र पृथिवी ही होती है उस समय मनुष्यों की भी अमैथुनी सृष्टि होती है, नाना भेदों से मनुष्य आदि का प्रादुर्भाव होता है। पृथिवी का बाह्यतल ऊन के समान मृदु (कोमल) हो जाता है तथा सान्द्र उफला हुआ पोला-सा बन जाता है, जिससे जीवगर्भ बढ़ सकें और फिर पूर्ण होते ही बाहर प्रकट करने में पृथिवी योग्य हो जाती है साथ ही बाहर प्रकट कर अपने रसभरे प्रदेश से उसका पालन करती है। अतएव उस समय जीव सब प्रकार से आहार रस ग्रहण करने में समर्थ अपनी कुमार अवस्था[13] में उत्पन्न होते हैं। कुछ काल तक पृथिवी की यह उफनी हुई स्थिति बनी रहती है। उसी स्थिति में असंख्य जीवगर्भ इकट्ठे रहते हैं जिनमें स्वाभाविक रसों से जीवों का पोषण होता है। जिस प्रकार वर्षा ऋतु में इन्द्रगोप(वीरबहूटी) आदि क्षुद्र जन्तु भी पृथिवी से बाहर अपनी कुमार अवस्था में ही प्रकट होते हैं। उस समय भी पृथिवी कुछ मृदु और पुलकित पृष्ठ- उफनी हुई हो जाती है। उस मृदु पुलकित स्तर में इन्द्रगोप आदि क्षुद्र जन्तुओं के गर्भ बनते हैं। पृथिवी गर्भ धारण करती है यह अथर्ववेद में अन्यत्र कहा भी है- 'यथेयं पृथिवी मही भूतानां गर्भमादधे।'[14] यहाँ पृथिवी का गर्भ धारण करना स्पष्ट है। पृथिवी जीवों के लिये औषधिरस रिसती है यह भी अथर्ववेद में बतलाया है- 'सा नो भूमिर्विसृजतां माता पुत्राय मे पय:'(2.1.10) अर्थात् वह भूमि माता मुझ पुत्र के लिये 'पय:' ओषधिरस रिसावे।'

पृथिवी पर नाना प्रकार के भिन्न-भिन्न भाषा वाले मनुष्य आदि प्राणी हुए ऐसा वेदों में वर्णन आता है।[15] हमारे द्वारा किये गये उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि पृथ्वी पर प्राणीजगत् की उत्पत्ति जड़संयोगजन्य (Spontaneous Generation) नहीं हुई 16 और न ही डार्विन के विकासवाद के अनुसार मनुष्य आदि जीव न ही उल्कापात द्वारा किसी लोकान्तर से आये। जीवोत्पत्ति विषयक वैदिक सिद्धान्तानुसार तो विश्व की संरचना में Coordination (समप्रयोग)पाया जाता है। इससे तो यह भी पता चल रहा है कि विश्व की सारी रचना किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए हो रही है।

पाद-टिप्पणियाँ

1. यो न: पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा।
   यो देवानां नामधा एक एव तं सम्प्रश्नं भुवनायन्त्यन्या।। (ऋ.10.82.3 ; यजु. 17.27)
2. वेद में उत्तर ध्रुव को इन्द्र और दक्षिण ध्रुव को यम कहते हैं। उत्तर ध्रुव रूप इन्द्र उत्तर में वर्तमान है और दक्षिण

ध्रुव रूप यम दक्षिण में वर्तमान है। ऋग्वेद(10.86) में इन्द्र शब्द उत्तर ध्रुव के लिए आया है इस सूक्त के प्रत्येक मन्त्र में कहा भी है "विश्वस्मादिन्द्र उत्तर:" इन्द्र विश्व के उत्तर में है। इससे उत्तर ध्रुव का नाम इन्द्र है यह स्पष्ट है। इन्द्र ध्रुव है इसकी पुष्टि में यह मन्त्र प्रमाण है- इन्द्रेहैव ध्रुवस्तिष्ठराष्ट्रमुधारय।(अथर्ववेद 6.87.2) अथर्ववेदीय बृहत्सर्वानुक्रमणी के अनुसार इस मन्त्र का देवता 'ध्रुव' है। इस वर्णन से भी यह सुतरां सिद्ध हो जाता है कि उत्तर ध्रुव इन्द्र है।

3. प्रियरत्न आर्ष, वैदिक ज्योतिष् शास्त्र, पृ. 209
4. यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो.(अथर्व.12.1.3)
5. तट की ओर जल का बढ़ाव ज्वार और तट से हटना या घटाव भाटा कहलाता है।
6. वेलादोलानिलचलं क्षोभोद्वेगसमुच्छ्रितम्।
   वीचीहस्तै: प्रचालितैर्नृत्यन्तमिव सर्वत:।।
   चन्द्रवृद्धिक्षयवशादुद्वतोर्मिसमाकुलम्।। म. भा. आदिपर्व 2.10-11
7. द्यौर्देवेभि: समुद्रै:(6.50.13)
8. दक्षिणप्रवणा भूमिर्दीक्षणत आपो वहन्ति, गोपथ. पू. 3.1
9. सत्यार्थप्रकाश, सप्तम समुल्लास, सम्पा. स्वा. वेदानन्द तीर्थ पृ. 193, आर्य प्रकाशन, दिल्ली
10. प्रियरत्न आर्ष, वैदिक ज्योतिष् शास्त्र, पृ. 212
11. वही, पृ. 214
12. उच्छ्वञ्चस्व-उच्छ्वञ्चमाना पुलकिता भव(सायण:)।
13. इस विषय में स्वामी दयानन्द का भी यह मानना है कि मनुष्य सृष्टि के आरम्भ में युवा ही पैदा हुए। क्योंकि जो बालक उत्पन्न करता तो उनके पालने के लिये दूसरे मनुष्य आवश्यक होते और जो वृद्धावस्था में बनाता तो मैथुनी सृष्टि न होती। इसलिये युवावस्था में सृष्टि की है। (सत्यार्थप्रकाश, सप्तम समु. पृ. 192, सम्पादक स्वामी वेदानन्द)

   स्वामी वेदानन्द ने सत्यार्थप्रकाश के उक्त प्रकरण में टिप्पणी देते हुए लिखा है कि आजकल के वैज्ञानिक भी ऐसा ही मानते हैं - बोस्टन नगर के स्मिथसोनियन इन्स्टीट्यूट के जीवनविज्ञानशास्त्र के अध्यक्ष डॉ. क्लार्क का कथन है- Man appeared able to think, walk and defend himself.
14. अथर्ववेद 5.25.2 और 6.17.1
15. जनं विभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं यथौकसम्।
    सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती।। (अथर्व. 12.1.45)
16. पं बुद्धदेव विद्यालंकार कृत 'त्रैतवाद' में श्री ए.आई.ओपारिन की पुस्तक 'The origin of life on the Earth' का पृ. 37 और 38.

....

* विज्ञान *



वैदिक साहित्ये सूक्ष्मजीव विज्ञानम्

डॉ0 सुधा शुक्ला संस्कृत एवम् प्राच्यभाषा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ

विशाले वैदिकवाङ्मये समुपवर्णितानां समेषां विषयाणां संख्यानमसम्भवमिति, नास्तितिरोहितं विपश्चिदपशिमेभ्य:। तेषु समेषु विषयेषु विषयत्रयस्य विवेचनमेव वैशिष्ट्यं विभर्तीति कृतेन निपुणनिभालेनेन ज्ञायते। ते च विषया: चिदचिदीश्वरा: सन्तीति दाढर्येन वक्तुं शक्यते। तेष्वेतुषु त्रिषु विषये सूक्ष्मजीवतत्त्व विज्ञानमेवात्रमया विवेचितं।

जीवतत्तवस्य सौक्ष्म्यं निरुपयन्ती वैदिकीवाग्वदति 'एषाऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्य:' इति श्वेताश्वेतरीया श्रुतिरप्यभिधत्ते 'बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च भागो जीव: स विज्ञेय: स चानन्त्याय कल्पते' इति। शरीरं जीवस्य स्थानं निर्दिशन्ती श्रुति राह-'हृदिह्येषात्मेति।' वाक्येनानेन ज्ञायते यदात्मा हृत्प्रदेशे तिष्ठति। तत्रैव स्थितोजीवो येन प्रकारेण गृहस्यैकदेशेस्थित: प्रदीप: सम्पूर्ण गृहं प्रकाशयति तेनैव प्रकारेण हृदि स्थितोजीवस्सम्पूर्णे शरीरे जायमानानां सुखदु:खादिकानामनुभवं करोति। सोऽयं जीव: स्वयम्प्रकाश आनन्दस्वरुप अणुरव्यक्त: अचिन्त्योनिरवयवो निर्विकार: ज्ञानाश्रय: प्रतिशरीरं प्रतिशरीरं भिन्नोभिन्न:, कर्त्ता योक्तां च विद्यते। ज्ञान स्वरूपोऽयमात्मा तेनैव प्रकारेण ज्ञानाश्रयो भवति येन प्रकारेण प्रकाशस्वरूपा: भवन्ति।

कतिसंख्याका: जीवस्यन्तीत्यनुयोगस्तु जीवानामनन्तत्वादेवानवकाशग्रस्त:। 'एषहि द्रष्टा, श्रोता घ्राता रसयिता मन्ता कर्त्ता विज्ञानात्मा पुरुष: इत्यादिका: श्रुतयो वदन्ति।

वैदिकवाङ्मये जलतत्त्वस्य उल्लेख: तस्य च तत्र तत्र विवेचितं महत्त्वम्

उपाध्याय मनोज ए. प्राच्यविद्यामन्दिरम्, महाराजा-सयाजिराव-विश्वविद्यालय:, वड़ोदरा, गुजरात

वैदिकवाङ्मये प्रकृते: विविधानि तत्त्वानि वर्णितानि तेषां च महत्त्वं सम्यक्तया निर्दिष्टम्। तेषु अग्नि:, वायु:, मरुत्, सूर्य:, द्यावा पृथिवी, सोम:, वनस्पतय:-इत्यादयो मुख्यरूपेण प्राप्यन्ते। तत्र जल-विषये सम्यक् चर्चा एवं तस्य महत्त्वस्य निरूपणम् अपि प्राप्यते। वेदेषु इन्द्रवरुणाग्निसूर्यमित्रमरुत्पर्जन्यसोमरुद्रवायु-आदिदेवतानां स्तुतय: वर्तन्ते। ता: स्तुतय: तु जलस्य प्राप्तये अपि। जलं तु महाभूतानां प्रमुखं जीवसृष्टे: प्रथमम् आश्रयं च मन्यते। तत्तु रसायणाना रस:, सस्यानाम् उत्पत्तिकारणं, सर्वजन्तूनां प्राण: च कथ्यते। साहित्ये जलस्य विविधानि रूपाणि कथ्यन्ते यथा ब्रह्मरूपजलम्, मधुरूपजलम्, अमृतरूपजलम्, प्राणरूपम्, रसरूपम् एवं द्रव्यरूपं जलम्।

वैदिकवाङ्मये जलस्य विविधा: प्रकारा: अपि वर्णिता:।

यथा ऋग्वेदे पञ्चप्रकारा: अथर्ववेदे च नव प्रकारा:।

शतपथब्राह्मणे सप्तदशविधानि जलानि कथितानि सन्ति।

यद्यपि परम्परानुसारं चतुर्दशलोका: सन्ति, तथापि त्रय: लोका: द्युलोक:, पृथ्वीलोक:, पाताललोक: च एव मुख्यरूपेण प्रसिद्धा: सन्ति। तस्मात् त्रिलोकानुसारेण वेदेषु वर्णिता: पुन: अन्यप्रकारा: यथा- (1)द्युलोकप्राप्तजलम्, (2) पृथिवीलोकत: प्राप्तम्, (3) भूतलत: प्राप्तं (भूगर्भीयं जलम्) वेदेषु जलस्य स्रोतांसि अपि वर्णितानि सन्ति। मेघ: पर्जन्य: वा तेषु एकतम: मुख्यस्रोत: कथ्यते। एवं जलविषये महत्त्वपूर्णं वैविध्यपूर्णं वैज्ञानिकं च वर्णनं वेदेषु प्राप्यते, तद्विषयेऽस्मिन् शोधपत्रे वेदोक्तदिशा विचार: प्रस्तूयते।

वैदिक-साहित्ये भौतिकी

डॉ॰ विजय कुमार कर्ण संस्कृत विभागाध्यक्ष विद्यान्त हिन्दू कॉलेज लखनऊ

विज्ञानविषय प्रतिपादका: मन्त्रा: अपि शतशो लभ्यते। तेषु बहव: मन्त्रा:, भौतिकविज्ञानं वर्णनयन्ति। वेदेषु वर्णितमस्ति यत् ऊर्जाया: नाशो न भवति तस्य केवलं रूपान्तरणमेव भवति तद्यथा-

'अग्ने.........त्मना शतिनं पुरुरूपम्'। ऋक् 2/2/9 'स्तीर्णा अस्य संहतो विश्वरूपा:'। ऋक् 3/1/7

'इमा हि त्वामूर्जो वर्धयन्ति वसूयव: सिन्धवो न क्षरन्त:'। ऋक् 2/11/1

सम्पूर्णा इयं शक्तिः निश्चयेन वर्धयन्ति एवञ्च पदार्थानां शक्तिसमुद्रः कदापि न क्षयं प्राप्नोति। अत्र इयम् ऊर्जा विश्वव्यापिनी वर्तते। वेदे वर्णिताः इन्द्र मित्र वरुण रुद्र शब्दाः ऊर्जायाः प्रतीकरुपमेव वर्तते। इयम् ऊर्जा निखिलमपि विश्वं व्याप्नोति अस्य विवरण उपलभ्यते मन्त्रेऽस्मिन्

वैदिकवाङ्मयानुसारं ब्रह्माण्डे सूर्यस्य गतिः स्थितिश्च

दिनेशः शोधच्छात्रः (Ph.D.) श्रीलालबहादुरशास्त्रिराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठम्, नव देहली

"सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनाम्।
त्रिनाभिचक्रमजरनर्व यत्रेमा विश्वा भुवनानि तस्थुः।।"

वैदिककाले ऋतूनां गणनाया आधारः सूर्य एवाऽऽसीत्। ऋतूनामेकः परिक्रमावधिरेव वर्षम्। यतोहि सूर्यो मासमेकपर्यन्तकराशौ भ्रमति। एवं मासद्वयेनैका ऋतुर्भवति। स सूर्य एव ऋतूनां नियमनं कृत्वा पृथिव्याः पूवादिदिशां निर्माति। यथोक्तं तत्र

"पूर्वाम नुप्रदिशं पार्थिवानामृतून् प्रशासद्विदधवनुष्ठु।"

ऋग्वेदस्य एकमेवमन्त्रभागः सूर्यस्य गतिः स्थितिश्च वैज्ञानिकरूपेण प्रदर्शयति। **"बृहती अध्वुढःसूर्यस्तपति"** सम्पूर्णगणितस्य मूलमस्ति एतत्। यदा सूर्यः बृहतीछन्दोपरि गमनं करोति। तदा दिनरात्रिमाने समाने भवतः। बृहती अर्थात् भूमध्यरेखा बृहतीरेखायां सूर्य अधिष्ठन् यदा विषुवतरेखात उत्तरं प्रतिगच्छति तदा मासद्वयपर्यन्तमेकस्मिन् छन्दसि एव सूर्यः तिष्ठति। अनेन एकस्य ऋतोर्निर्माणं भवति। एवं प्रकारेण उष्णिगादिछन्दसु गमने सति ग्रीष्मादि-ऋतूनां निर्माणं कथं भवति। अस्य विस्तृतरूपेण वर्णनमहं शोधकार्ये करिष्यामि।

वैदिककाले ज्योतिषशास्त्रीयगतिविधिविषयकसाहित्याऽभावेऽपि ग्रहनक्षत्रादिदर्शनपरम्परा विकसिताऽऽसीत्। भारतीय-ऋषिभिस्तु स्वदिव्यद्वारा नभांमण्डलानां पिण्डानां समस्ततत्वानि ज्ञायन्ते स्म।

अस्माकमृषिभिः योगाभ्यासबलेन स्वूसक्ष्मप्रज्ञया शरीराभ्यन्तमेव ब्रह्माण्डे सूर्यस्य स्थितेश्च सम्यग्दर्शनं कृतम्। **वैदिकवाङ्मये भगवतः सूर्यस्य समस्तभुवनाधाररूपेण ऋतूनां कारणरूपेण वायोश्च कारणरूपेण बहुषु स्थलेषु वर्णनमवाप्यते।** अस्यैव विषयस्य विस्तृतरूपेण वर्णनमहमस्मिन् शोधकार्ये करिष्ये। अलं विस्तरेण।

वेदेषु विमान-विद्या

डॉ. कन्हैयालालः पाराशरः पंजाबविश्वविद्यालयः संस्कृतसंस्थानम्, होशियारपुरम्(पंजाबः)

"वेदे सर्वं प्रतिष्ठितम्" इत्यस्ति सर्वेषां शास्त्राणां मान्यता। महर्षिणा दयानन्देनाऽपि आर्यसमाजस्य दशनियमेषु प्राचीनामेनामेव मान्यतां स्वकृतिः प्रदत्ता। कथितञ्च – "वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है।"(वेदः सर्वासां सत्यविद्यानां पुस्तकमिति) विद् ज्ञाने इति व्युत्पत्त्या 'वेद' शब्दस्य ज्ञानेन सह पर्यायता सिद्धयति। विज्ञान शब्दश्च क्रमबद्ध ज्ञानस्य सूचकोऽस्ति। अतश्च वेद-विज्ञानयोरस्ति स्वाभाविकः सम्बन्धः। वेदास्तु न केवलमतीतस्य प्रवक्तारोऽपितु भावीवैज्ञानिकाविष्काराणामपि पथप्रदर्शने वेदानां विशिष्टं महत्त्वं विद्यते। वेदानां नास्ति केवलं धार्मिकग्रन्थरूपेणैव मान्यता, प्रत्युत सर्वविधज्ञान-विज्ञानस्य मूलमपि वेदेषु विद्वद्भिः स्वीकृतमेव।

वेद प्रतिपादितार्षविमानविषयकं विवरणमद्य पूर्णरूपेण न प्राप्यते। तथापि- 'विशेषज्ञानं सामान्यज्ञान-पूर्वकम्।'

इति न्यायेन वेदेषु विमानविधाया अस्तित्वं सिद्धयति विमानविद्या यन्त्रविज्ञानान्तर्गताऽस्ति। यन्त्रस्य परिभाषा आचार्यैरेवं कृता- "पञ्चभूतानि स्वशक्त्या यद् यन्तुमीष्टे तद् यन्त्रम्।" विमानं शब्दे खण्डद्वयं स्तः। (क) वि इति (ख) मान इति। तत्र 'वि'शब्दः नास्ति उपसर्गवाचकोऽपितु पक्षिवाचकः। 'मान' शब्दश्च तुलनार्थकोऽस्ति। पक्षि वाचकस्य 'वि' शब्दस्य लक्षणया पक्षिमहि वाचकोऽर्थः गृह्यते। निम्न लिखितैरार्षवचनैरपि तथ्यस्यास्य पुष्टिर्भवति- त्रयः पवयो मधुवाहनो रथे.........।ऋ. 1.34.2 अनश्वो जातो अनभीषुरुक्थ्योरथास्त्रिचक्रः। ऋ.4.36.1 रथं ये चक्रुः सुवृतं सुचेतसोऽविह्वरन्तं मनसस्परिध्या। तं युञ्जाथा मनसो यो जवीयान् .... ऋ. 4.36.2 ....त्रिधातुना पतयोर्विन पर्णैः।। .. 1.183.1 महर्षिणा भरद्वाजेन स्वरचिते 'यन्त्रसर्वस्व' नामकरणस्य ग्रन्थस्य वैमादिनक प्रकरणारम्भे वेदत्रयीं प्रति निम्नलिखित शब्देषु आभारः प्रकटित- त्रयीहदयसन्दोह साररूपं.......वैमानिकप्रकरणं कथ्यते। वेदेषु विमानानां नैकप्रकारभेदाः

सविस्तरं वर्णिताः सन्ति। तद्यथा- त्रिकोण विमानम्, दिव्यरथः, स्वचालितविमानम्, भूमौगगने च समान वेगेन संचालितानि विमानानि मधुवाहनरथः, त्रिपुरा विमानम्। इत्यादयो भेदाः एषु त्रिपुरा विमाने त्रयो भागा आसन्। तत्र एकेन भागेन पृथिव्यां तस्य चालनम्, द्वितीयेन भागेन समुद्रेषु जलानाम् अन्तःभागे उपरि च, तृतीयेन भागेन अन्तरिक्षेऽपि संचालनं भवति स्म। प्रस्तूयमाने शोधपत्रे वेदमन्त्राणाम् उद्धरणपूर्वकं वेदेषु विमानविद्याया न केवलमस्तित्वम् अपितु प्रोन्नतस्वरूपं प्रतिपादितम् इति।

ब्राह्मणेष्वृतुविज्ञानम्

प्रो. बृजेशकुमारशुक्लः संस्कृतप्राकृतभाषाविभागः, लखनऊ वि.वि.

वैदिकवाङ्मयानुशीलनेन ज्ञायते यद् वेदेषु ब्राह्मणग्रन्थेषु च ऋतुविज्ञानस्य परम्परा वरीवर्त्ति। ऋग्वेदे ऋतुसम्बद्धवर्णनद्वारा निश्चप्रचमेव कथयितुं शक्यते यद् भारतवर्षे कदाचित्सर्वप्रथमं विज्ञानमेतत्प्रथितमभूत्। वैदिककाले वैज्ञानिकी-समवधारणा नितरां दरीदृश्यते। यजुर्वेदे लिखितं यद् वैदिका भुवनस्य नाभिं पृथिव्याः केन्द्रं वा, द्युलोकं पृथिवीमन्तरिक्षं सुष्ठु प्राप्यते। तैत्तिरीयसंहितायां षड्तूनां चर्चा समुपलभ्यते षड् वा ऋतवः संवत्सरः। तैत्तिरीयब्राह्मणे हेमनतशिशिरौ एकमेव ऋतुं गणयित्वा तत्रर्तूनां संख्या पञ्च स्वीकृता- **पञ्च वा ऋतवः संवत्सरः।** अन्यत्रापि द्वादशमासानां पञ्चर्तूनां कीर्तनं विहितम्- **द्वादशमासाः पञ्चर्तवो हेमन्तशिशिरयोः समासेन।** शतपथब्राह्मणे ऋतुद्वयस्यैकमृतुं स्वीकृत्य ग्रीष्मवर्षाशीताख्यास्त्रयः ऋतवः समुल्लिखिताः सन्ति। व्यावहारिकदृष्ट्या तैत्तिरीयब्राह्मणेऽपि ऋतुत्रयं निगदितम्। वास्तविकरूपेण ब्राह्मणग्रन्थेषु ऋतूनां संख्या षडेवाऽस्ति। तत्रोभाभ्यां मासाभ्यां सम्मिलिततया ऋतुरेको भवति। यथा-

1. मधुमाधवमासयोः - वसन्तर्तुः।, 2. शुक्रशुचिमासयोः - ग्रीष्मर्तुः। 3. नभोनभस्यमासयोः - वर्षर्तुः। 4. इषोर्जमासयोः - शरदृतुः। 5. सहस्सहस्यमासयोः - हेमन्तर्तुः। 6. तपस्तपस्यमासयोः - शिशिरर्तुः।

एतानि द्वादशमासानां वैदिकनामानि सन्ति। अत्र मध्वादीनां मासानां क्रमेण चैत्रवैशाखज्येष्ठााषाढश्रावणभाद्रपदाऽऽश्विनकार्तिकमार्गशीर्षपौषमाघफाल्गुनाख्यानि नामानि प्रचलितानीदानीं वर्तन्ते। सम्प्रति चैत्रवैशाखयोर्वसन्तादय ऋतवः भवन्तीति प्रथितम्।

वैदिकसाहित्ये भौतिकविज्ञानतत्त्वानि

डॉ. ललित कुमार गौडः कुरुक्षेत्रविश्वविद्यालयः कुरुक्षेत्रम्

वैदिकसाहित्यान्तर्गतमुपलब्धैर्मन्त्रैर्ज्ञायते यदिदं जगदशेषमेव भौतिकविज्ञानतत्त्वगर्भितं विद्यमानमस्ति। प्राचीनाः मन्त्रद्रष्टारः ऋषयः सृष्टेर्मूलभूतानामुपादानानां प्रकृतेश्च विभिन्नलीलाकारणगुणधर्माणां च वैज्ञानिकप्रक्रियया सम्यक्परिचिताः बभूवुः। परमेश्वरेण रचितानां पदार्थानां विचारः भौतिकविज्ञानादिनां समावेशो वर्तते। एवमेव रसायनशास्त्रादिनां सम्बन्धः सृष्टेः पदार्थैरप्यस्ति यस्तान्व्यावहारिकेषु प्रयोगेष्वानीय कार्याणि सिद्धानि सम्पादयति। आधुनिकभौतिकविज्ञानानुसारं सूर्यस्य सप्तरश्मयः यदा त्रिकोणीयदर्पणस्य माध्यमेन निर्गत्य प्रकीर्णाः भूत्वा सप्तवर्णेषु विभक्ताः जायन्ते सप्तवर्णानां सर्वाः सप्तानामेषां स्थाल्याः परिवर्तनेन श्वेतवर्णाः दृश्यन्ते। एतेषां सप्तवर्णानां तरणीसु या काचिद्यस्य वस्तुनः माध्यमेन निस्सरति, सा तद्वर्णैवावलोक्यते। यस्मात्काचिदपि रश्मिर्न निर्गच्छति सः पदार्थः कृष्णवर्णः दृष्टौ समायाति। यूरोपदेशे सिद्धान्तोऽयं सर्वप्रथमं न्यूटनमहोदयेनाभिज्ञातम्। तेन निर्धारितं यत् सूर्यस्य प्रकाशे सप्तवर्णाः गभस्तयः मिश्रिताः सन्ति, तेषां सम्मेलनेनैवातपः श्वेतः दृश्यते पृथग्भूताश्च सर्वाः रश्मयः स्वेषु-स्वेषु वर्णेष्वलोक्यन्ते। वर्षायाः पश्चान्नभसि सूर्यरश्मयः मेघानां जलबिन्दूनां निर्गमने सप्तवर्णेषु प्रस्फुटिताः भवन्ति तदैव च सम्पवर्णमिन्द्रधनुः दृग्गोचरं भवति। ऋग्वेदस्य प्रथममण्डलस्य पञ्चाशत्तमेन सूक्तेन प्रकरणमिदं सुस्पष्टं जायते। वैदिकाः ऋषयः गुरुत्वाकर्षणस्य सिद्धान्तेनापि सम्यक्परिचिताः आसन्। ऋग्वेदस्य मन्त्रे सूर्यः 'ग्रहमण्डलस्य स्थायी सर्वेषां ग्रहाणां स्वकक्षायां स्थापकः' उदीर्य गुरुत्वाकर्षणस्य सिद्धान्तः संकेतितः। सूर्यः नोदेति न चास्तङ्गच्छति, पृथ्वी स्वकीलाधारं भ्रमति, भ्रमणवशादेवास्याः भागः सूर्येण प्रकाशितः भवति। एकस्मिन् स्थले पृथिव्याः उष्णरूपस्य विवरणमुपलभ्यते आदित्यैः पृथ्वी अंगिरसेभ्यो दक्षिणायां प्रदत्ता, पृथिव्यै तपनं प्रदत्तं, तदनन्तरं पृथ्वी सिंही भूत्वा मुखं विस्फार्य मानवान् भक्षितुं धाविता। पृथिव्यास्तस्यामवस्थायां स्थानानि गर्तयुक्तान्युच्चावचान्यभवन्। इयमवस्था अथर्ववेदे पृथ्वी सूक्ते वर्णिताऽस्ति। 'ध्वनि ऊर्जा' सम्बद्धो

विषयोऽपि भौतिकविज्ञाने गण्यते। 'ध्वनि तरंग' विषयस्यापि वैदिकैः ऋषिभिः गम्भीरतया चिन्तनं विहितम्। एतदपि ऋषिभिर्वैदिकैर्घोषितं यन्मन्त्राः उदात्तादिषु स्वरेषु गीताः विविधप्रकारकान्प्रभावानुत्पादयन्ति। वैदिकविज्ञानं विद्युत् अपि अग्नेः रूपमेव मनुते। यथा 'इदं तदेव मेघगर्जनं येन स्तनयित्नोर्वर्तमानत्वात्।' वैदिकः वैश्वानरोऽपि विद्युदेव वर्तते। जलं विद्युतः सुचालकं काष्ठं च तस्य कुचालकमित्युदीर्य विद्युतः चालकत्वं संवाहकत्वं चेति विचारितमस्ति।

इत्थं वक्तुं शक्यते यद् वैदिकसाहित्ये भौतिकविज्ञानतत्त्वानि लक्ष्यीकृत्य ऋषिभिश्चिन्तनस्य व्यापकत्वं सम्पादितमासीत्।

वैदिकसाहित्ये वनस्पतिविज्ञानम्

डॉ. सुन्दरनारायण झा श्री ला.ब.शा.रा.सं.विद्यापीठम्, नई दिल्ली

वैदिकसाहित्ये यत्र जीवविज्ञान-भौतिकविज्ञान-रसायनविज्ञान-भूगर्भविज्ञान-अग्निविज्ञान-सूर्यविज्ञान-कृषिविज्ञान-वृष्टिविज्ञान-अन्तरिक्षविज्ञान-प्रौद्योगिकीविज्ञानादीनां विवेचनानि प्रस्तुतानि तत्रैव वनस्पतिविज्ञानमपि रहस्यामयत्वेन प्रतिपादितमस्ति। विज्ञानशब्दस्यार्थो भवति विशिष्टं ज्ञानं विज्ञानमिति। अर्थाज्जगति विद्यमानेषु भौतिकपदार्थेषु सूक्ष्मतत्त्वानामनुशीलनं वैज्ञानिकत्वम्। भौतिकपदार्थेषु वृक्षवनस्पतीनां विषये ऋगभिवदति- 'या ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा। शतं वो अम्ब धामानि सहस्रमुत वो रुहः।' (ऋ. 10. 91.1 2) इति। मन्त्रोऽस्मिन् वनस्पतय एवौषधिरूपेण व्याख्याताः। औषधिशब्दस्य निर्वचनं प्रस्तूयता निरुक्तकारेणोक्तम्- 'ओषं धयेति तत ओषधयः समभवन्' (श.प.ब्रा. 2.2.4.5) इति। इत्यनेन श्रुतिवचनेनेदं स्पष्टं भवति यद्यथा लोके माता शिशून् विविधप्रयत्नैरनेकविध सांसारिकदुःखैरभिरक्षति तथैव वनस्पतयोऽप्यस्मान् सर्वविधप्रयत्नैर्विविधाधिव्याधिभिर्दुःखैरक्षन्ति। तस्मान्मातृवदस्माकं पालकत्वादिमे मातर इत्याख्यायन्ते। तदुक्तं वेदे- 'ओषधीरिति मातरः'(ऋ. 10.97.4) इति। एवमुक्तप्रकारेण सर्वविधदुःखानि शमयित्वा प्राणिनां प्राणं रक्षन्ति तस्मादिमे प्राणरूपाश्चोक्ताः। तद्यथा- 'प्राणो वै वनस्पतिः'(ऐ.ब्रा. 2.4.10) इति।

इमे वृक्ष-वनस्पत्यौषधयः यत्र बहुलतयोपलभ्यन्ते तत् स्थानं वनमित्युच्यते। वनानि वृक्षाश्चास्माकं रक्षकाः, तदुक्तञ्चापि - 'अपि ओषधीरुत नोऽवन्तु; द्यौर्वना गिरयो वृक्षकेशाः' (ऋ. 5.41.11) इति। त एव पशूनां (जीवानां) पतयः तस्मादुक्तं श्रुतौ 'ओषध यो वै पशुपतिरिति' (श.प.ब्रा. 6.1.3.12)। वैज्ञानिकपरिभाषायां ऑक्सीजनतत्त्वबहुलाः आग्नेयतत्त्वप्रधानाश्च प्राणशक्तियुक्ताः कथ्यन्ते, हाइड्रोजनतत्त्वबहुलाः सोमीयतत्त्वप्रधानाश्चापानशक्तियुक्ताः गण्यन्ते। तस्मात् येषु वृक्षेषु प्राणशक्तेराधिक्यं भवति ते देवसदननाम्ना व्यवह्रियन्ते। तद्यथा- 'अश्वत्थो देवसदनः'(अथर्व. 6.95.1) इति तथा च 'यवे ह प्राण आहितोऽपानो ब्रीहिरुच्यते' (अ. 11.4.13) इति। एवन्नेष्वपि ऑक्सीजनतत्त्वप्रधानत्वं हाइड्रोजनतत्त्वप्रधानत्वञ्च व्याख्यातम्। विटामिन इति स्थाने प्राणापानयोः द्वयोः शक्त्योः वर्णनं वेदेषूपलभ्यते। एवमुक्तप्रकारेण वैदिकसाहित्ये वनस्पतिविज्ञानसम्बद्धाः विषयाः भूयिष्ठाः सन्ति वर्णितास्तेषां संक्षेपेणैवात्रातिलघुनिबन्धे प्रस्तुतिः शक्या तस्मादत्रैव विरमामीत्यलम्।

वैदिकसाहित्ये भौतिक विज्ञानम्

अनुराधा मिश्रा भ.आ.क.स्ना.महा.लखीमपुर खीरी

अहर्निशं यानिकान्यपि कार्याणि क्रियन्ते भारतीयपरम्परया तत्र सर्वत्र वैज्ञानिकांशाः विद्यन्ते। यद्यपि सर्वत्र संस्कृत वेदेषु, शास्त्रेषु, उपनिषत्सु उत संस्कृतवाङ्मये विभिन्नानां विज्ञानानां समावेशो दृश्यते तथापि भौतशास्त्रे कृतस्य अविष्कारस्य विषये कानिचन उदाहरणानि दीयन्ते यथा सूर्यस्य प्रकाशस्य गतिः विषये सर्वप्रथमं ऋग्वेदे उल्लिखितोस्ति यत् तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्यः विश्मामासि रोचनम्। (ऋ. सहिता. 1.50.4) इत्युक्ते मानो प्रकाशस्तु अतिशीघ्रमेव जगति भासते प्रकाशते च। सायणाचार्येण तु स्पष्टमेव उक्तं यत् 'तथा च स्मर्यते योजनानां सहस्रे द्वे द्वे शते द्वे च योजने। एकेन निमिषार्धेन क्रममाण नमोऽस्तुते।' (सा.भा.ऋ.)

अर्थात् सूर्यस्य रश्मयः 2202 योजनं अर्धनिमेषैव यात्रां कुर्वन्ति। सर मो. शिर विलियमस्य कथनानुसारेण 1 योजने 9मील मन्यते। अनेन प्रकारेण प्रकाशस्य गतिः 186413.22 मील प्रति सेकेण्ड निश्चितो भवति। आधुनिकाः वैज्ञानिकाः अपि 186300 मील

प्रति सेकेण्ड एव प्रमाणितवन्तः। अतः सायणाचार्येण यदुक्तमाहत्य तदेव सिद्धान्तरूपेण अधुनापि अंगीक्रियते। सायणाचार्यस्य कालस्तु पञ्चदशतमी शताब्दी वर्तते तथापि अस्माभिः विंशतितमस्य शताब्दवर्षस्य सिद्धान्तमिदं मन्यते। येन स्वस्येन ज्ञानस्य अवमाननं भवति।

गुरुत्वाकर्षण विषयेऽपि बहुधा वर्णनं दृश्यते यथा- 'गुरुत्वं जलभूम्योः पतनकर्मकारणम्। अप्रत्यक्षं पतनकर्मानमेयं संयोगप्रयत्नसंस्कारविरोधि अस्य चाबादि परमाणुरूपादिवन्नित्यत्व निष्पत्तयः(प्रशस्तपादभाष्यम्)। अथावयवानां गुरुत्वादेव तस्य पतनं तदवयवानामपि स्वावयवगुरुत्वात् पतनमिति सर्वत्र कार्ये तदुच्छेदः। अथत्यधिकरणेभ्यः स्वावयवगुरुत्वेभ्योऽवयवानां पतनासभवात् तेषु गुरुत्वं कल्प्यते तदा अवयविन्यपि कल्पनीयं न्यायस्य समानत्वात्। गुरुत्वाकर्षण शक्त्याः संकेतः नारदीसूक्तेऽपि प्राप्यते तथापि एतस्मिन् विषये स्पष्टोल्लेखः प्रश्नोपनिषदि प्राप्यते। तत्र उच्यते यत् धरायाः शक्ति मानवान् स्थातुम् अपानवायोः सहयोगं करोति। आदित्यो ह वै ब्राह्म प्राण उदयत्येष होनं चाक्षुषं प्राणमनुगृहानः। पृथिव्या या देवता सैषा पुरुषस्य अपानमष्टभ्यान्तरा यदाकाशःस समानो वायुव्यनिः। (प्रश्न. 3.8) एवं प्रकरेण वैदिकवाङ्मये सहस्राधिकेषु स्थानेषु साक्ष्यं प्राप्यते येन अभिज्ञायते यत् संस्कृत ग्रन्थेषु विज्ञानस्य विभिन्नानां शाखानां गहनमध्ययनं कृत्वा महर्षिभिः बहुपूर्वमेव लिखितम्। यस्य अनुकरणं कृत्वा सम्प्रति आधुनिकाः वैज्ञानिकाः अन्वेषणादिकञ्च कुर्वन्ति।

वैदिकवैमानिकाभियान्त्रिकी

कुलदीप शर्मा रा.सं.सं.(मानितविश्वविद्यालयः) लखनऊपरिसरः

वेदा यो वीनां पदमन्तरिक्षेण पतताम्। वेदा नावः समुद्रियाः(ऋ. 1.25.7) वैमानिकाभियांत्रिकी यांत्रिकक्षेत्रेस्वतिजटिलेति। अद्यत्वे यदि विमानं नाभविष्यत्तर्हि कपोलकल्पनामात्रैवैषाभविष्यत्। परन्तु वेदमालोच्य वैमानिकाभियांत्रिक्याः सुचिरत्वं पुरातनत्वमभिवक्तुं शक्यते। वायुप्रवाहतः उत्पन्नमूर्जं, सौरोर्जमितरेन्धनोर्ज चोपयुज्य सञ्चार्यमाणानि विमानान्यत्रासन्। यथोक्तं बोधानन्देन- **निर्मथ्य तद्वेदाम्बुधिं भरद्वाजो महामुनिः नवनीतं समुद्धृत्य यन्त्रसर्वस्वरूपकम्।।10।।**

वैदिक वाङ्मय में वस्त्रविज्ञान

डॉ. प्रज्ञा जोगेश जोशी व्याख्यात्री, महर्षिवेदविज्ञान अकादमी, अहमदाबाद, गुजरात

वस्त्र मानव संस्कृति एवं सभ्यता के परिचायक हैं। प्रारम्भिक काल से ही मनुष्य तन को ढकने के लिए प्रयत्नशील रहा है। इसके लिए उसने घास, पेड़, पौधे, पत्र, छाल, पशुओं के चर्म आदि का सहारा लिया है। कालान्तर में संस्कृति और सभ्यता के विकास के साथ ही मनुष्य की अभिरुचि एवं परिष्कृत प्रज्ञा ने उसे वस्त्रनिर्माण कला की ओर अग्रसर किया। वैदिक वाङ्मय मे वस्त्र के लिए वासस्, वसन्, अम्बर, पट, चीर, चीवर, चैल आदि शब्द प्रयुक्त हुए हैं। इसके अलावा अधिवासः, नीवि, द्रापिः, शामुल्यादि पद विशिष्ट वस्त्र के परिधान के द्योतक हैं। इन वस्त्रों को पांच प्रधान श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं-1. सूतीवस्त्र(कार्यासिकपट आदि), 2. रेशमी वस्त्र(कौशेय, क्षौम आदि), 3. ऊनी वस्त्र(आविक, कम्बल आदि), 4. चर्मवस्त्र(अजिनादि), 5. वल्कल वस्त्र(वल्कल, अर्जुनवृक्ष की छाल आदि)।

तीक्ष्ण सुई से वस्त्रों को अच्छी तरह तैयार करने का तथा फटे हुए कपड़े को पुनः उत्स्यूत(रफू) करने का प्रचलन भी उस समय था। न केवल वस्त्रों के रंग एवं बनावट में भिन्नता थी अपितु वस्त्र पर कई प्रकार से सजावट, शिल्पकाम भी होता था। वस्त्र बुनने से सम्बन्धित मौलिक सामग्री के निर्देश भी वेद में पाये जाते हैं। वस्त्रनिर्माण करनेवालों के लिए विभिन्न संज्ञाए भी प्रयुक्त की गई हैं।

शास्त्रग्रन्थों में निरूपित 64 कलाओं के अन्तर्गत सुचीवानकर्माणि (=सीना, पिरोना, जाल बुनना, सूत्रक्रीडा (=धागे से पशुपक्षियों के चित्र बनाना); दशवसनाङ्गराग(=दांत, वस्त्र और शरीर को रंग कर भव्य बनाना); नेपथ्यप्रयोगः (=वस्त्राभरण सज्जा), वस्त्रगोपनानि (=वस्त्रों के दोषों को छिपाने की कला) आदि वस्त्रसम्बन्धित कलाओं के निर्देश प्राप्त होते हैं।

इसके अतिरिक्त कपर्दी मुनि कृत 'पटसंस्काररत्नाकर' में विमानचालक एवं यात्रियों के ऋतुओं के अनुसार विभिन्न प्रकार

के पहिनने तथा ओढने के वस्त्रों का वर्णन प्राप्त होता है। इन वस्त्रों के आवश्यक संस्कार, उनके रंग और उनकी जाति के सन्दर्भ में पडनेवाल भेदों का सूचन किया गया है। ऐसे औषधियों के विभिन्न रसों में संस्कार कर सिद्ध किए गये वस्त्रों को धारण करने से विमानचालन की मेधा एवं धातु की वृद्धि होती है। जड़ता कम करती है, अंगों का रक्षण करती हैं तथा अवकाश में स्थित 25 विशशक्तियों से चमड़ी, मांस, मज्जा, अस्थि, स्नायु, रक्त, सिरा आदि बीजभूत तत्त्वों की रक्षा करती है।

बृहत्संहिता के 'वस्त्रच्छेदनलक्षणम्' अध्याय में अश्विनी आदि 27 नक्षत्रों में नूतन वस्त्र धारण करने से कौन-सा फल प्राप्त होती है इसकी चर्चा की गई है। इतना ही नहीं वस्त्र में कंक, कपोत, काक, मांसभक्षीपक्षी, शृगाल, गर्दभ, उष्ट्र, सर्पादि जैसे आकार के छेद पडे तो वस्त्रधारण करने वाले मनुष्य के लिए मृत्यु जैसा भय पैदा होता है, तथा वस्त्र में छत्र, ध्वज, स्वस्तिक, वर्धमान, बिल्ववृक्ष, कुम्भ, कमल तोरण आदि मंगलचिह्नों के आकार के छेद पडे तो मनुष्य को अतिशीघ्र लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। इस प्रकार की रोचक चर्चा की गई है।

इन सब निर्देशों से स्पष्ट रूप से ज्ञात है कि प्राचीन काल में वस्त्रविज्ञान पूर्ण रूप से विकसित था, जो हमारे महर्षियों के दीर्घकालिक अनुभव एवं प्रयोगों के परिणाम का परिचायक था। प्रस्तुत शोधलेख में वस्त्रविज्ञान विषयक विभिन्न पहलुओं पर सुदीर्घ चर्चा की गई है।

वैदिक वृष्टिविज्ञान

डॉ. सुधा गुप्ता रीडर, संस्कृत विभाग, जुहारी देवी गर्ल्स पी.जी. कालेज, कानपुर

वैदिक दृष्टि से वृष्टि के लिए द्युलोक, अन्तरिक्ष और पृथ्वी - इन तीनों लोकों का सहयोग अपेक्षित है-

दिवा यान्ति मरुतो भूम्याग्निः, अयं वातो अन्तरिक्षेण याति ।
अद्भिर्याति वरुणः समुद्रैः ......।। **ऋ. 1/161/14**

समुद्र से प्राप्त जल को पृथिवी अग्नि के द्वारा धूम रूप में ऊपर भेजती है। अन्तरिक्ष में वायु के सहयोग से मेघों की रचना होती है और मरुत् वृष्टि के कारण होते हैं। यज्ञ आदि के द्वारा ऊपर उठा हुआ धूम सूर्य-किरणों के प्रभाव से परे जाकर विद्युत-कण के रूप में परिवर्तित होता है और यही घनीभूत होकर मेघ बनता है।

वस्तुतः यज्ञाग्नि में आहुत द्रव्य विद्युतकणीभूत (Ionised) हो जाता है। विज्ञान के अनुसार किसी भी द्रव्य का कण (Particle) यदि थोड़ी सी भी तडित्शक्ति (Positive या Negative electricity) वहन करते हुए घूमे तो वही Charged Particle ही (Ion) आयन होता है। किसी भी तरल या वायवीय पदार्थ के कण यदि इसी प्रकार के वाहन बन जायें तो उस तरल या वायवीय पदार्थ को Ionised (तडित्-शक्तियुक्त) कहा जायेगा। यज्ञीय अग्निशिखाओं द्वारा दग्ध द्रव्य जब गैस बनकर ऊपर की ओर जाता है, तो उसके सूक्ष्मकण (Ion) तडित्शक्तियुक्त (Charged) हो जाते है। इन कणों में से कुछ 'धन' (Positive) तडित् और कुछ 'ऋण' (Negative) तडित् को वहन करते हुए बाहर निकलते है। ये दोनों धनात्मक और ऋणात्मक गैस ही क्रमशः ऑक्सीजन और हाइड्रोजन हैं, जिनके मिश्रण से जल बनता है। हाइड्रोजन के दो अणु और ऑक्सीजन के एक अणु के अनुपात से गैसों को मिलाने पर विद्युत् संचार होते ही जल बनता है। आकाश में स्वतः ही दोनों गैसों के मिश्रण का यह क्रम सदैव चलता रहता है और जल तैयार होता रहता है। ऋग्वेद में इन दोनों गैसों के लिए ही 'मित्र' और 'वरुण' शब्द का प्रयोग हुआ है :-

'मित्रं हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम् । धियं घृताचीं साधन्ता । -ऋग्. 1/2/7

यजुर्वेद और अथर्ववेद में भी कुछ इसी प्रकार का वर्णन प्राप्त होता है-

1. 'मरुतां पृषतीर्गच्छ, वशा पृश्निर्भूत्वा दिवं गच्छ, ततो नो वृष्टिमावह।'-यजु. 2/16
2. 'उदीरयत मरुतः समुद्रतस्त्वेषो अर्को नभ उत् पातयाथ । वाश्रा आपः पृथिवीं तर्पयन्तु ।।' - अथर्व. 4/15/5

सूर्य के ताप से समुद्री जल भाप के रूप में वायु (मरुत्) के द्वारा ऊ.पर ले जाया जाता है और वहाँ मेघ रूप में परिवर्तित होकर वृष्टि लाता है। इस प्रकार जल के कण भाप के रूप में संगठित होकर मरुत् के द्वारा आकाश में ऊपर जाते हैं। यजुर्वेद के अनुसार तो पृथिवी (वशा पृश्नि) अपने प्रतिनिधि के रूप में भाप रूप होकर ऊपर जाती है और वहाँ से वृष्टि लाती है।

ब्राह्मण और उपनिषदों में भी वृष्टि विषयक विस्तृत सामग्री प्राप्त होती है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार वृष्टि के चार प्रमुख सहायक हैं -

1. पुरोवात (पूर्वी हवा) 2. अभ्र (बादल) 3. विद्युत् 4. स्तनयित्नु (गर्जन) -(शत.1/5/2/18)

वृहदारण्यक और छान्दोग्य उपनिषद् अग्नि के तीन रूपों का वर्णन करते हुए तीनों लोकों के सहयोग से वर्षा का साङ्गोपाङ्ग वर्णन प्रस्तुत करती हैं। तीन अग्नि-रूप क्रमशः 1. द्युलोक में आदित्य (सूर्य) 2. अन्तरिक्ष में पर्जन्य (मेघ, विद्युत्) और 3. पृथिवी पर अग्नि है और वर्षा के उपकरण-वायु, अभ्र, विद्युत्, अशनि, घनगर्जन और सोमीय द्रव्य हैं, जो कि प्रत्येक अग्नि की समिधा, धूम, अर्चिस (लपट), अंगार, विस्फुलिंग (चिनगारी) तथा हव्य के रूप में वर्णित है -बृहदा. 6/2/9 तथा छान्दो. 5/4/5

भाप को मेघरूप में परिवर्तित होने में साढे छः महीने अर्थात् 195 दिन का समय लगता है । मेघों के गर्भाधान से लेकर प्रसव तक की इस अवधि में मेघ-भ्रूण का सम्यक् प्ररिपाक होने से वृष्टि उत्तम कोटि की होती है। अन्यथा गर्भपात व गर्भस्राव होने से अवृष्टि, अतिवृष्टि व उपलवृष्टि आदि हानिकारक वर्षा होती है।

पुरुष सूक्त में विश्व रचना विज्ञान

प्रियंका शुक्ला शोधच्छात्रा जुहारी देवी गर्ल्स पी.जी. कालेज, कानपुर

ऋग्वेद का पुरुष परम सत्ता का परिचय है। इसमें बताया गया है कि ईश्वर की रचना का मूल वह परमेश्वर है। उसने विराट् के रूप में अपने को प्रकट किया और इस संसार के स्थावर-जंगम स्वरूप का निर्माण किया। सृष्टि के अणु-परमाणु में वह पुरुष ही व्याप्त हो रहा है। उस पुरुष का एक चौथाई भाग यह दृष्टि-गोचर संसार है और उसका तीन चौथाई द्युलोक मे अमृत होकर स्थित है,

''पादोऽस्य विश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।''

सृष्टि में दृष्टि-गोचर ओर लौकिक इन्द्रियों से अगोचर जगत् ही सब वस्तुओं में उस परमेश्वर का ही वास और भूत तथा भव्य सभी कुछ उस परमेश्वर से ही परिपूर्ण होता है-

''पुरुष एवेदं सर्व यद्भूतं यच्च भाव्यम्।।''

इस शोध पत्र में इन्हीं सब तथ्यों को उद्घाटित करने का विचार किया जायेगा।

अथर्ववेद में वृष्टि-विज्ञान

विनीता सिंह अनुसन्धित्सु, अ.मु.वि., अलीगढ़

सृष्टि के आरम्भ में महासमुद्र के रूप में व्याप्त समुद्रीय जल वर्षा का जन्मदाता है। ऋग्वेद में इन्द्र द्वारा वृत्र नामक मेघ का हनन(वध) करके जलवृष्टि का उल्लेख मिलता है। यजुर्वेद में भी वृष्टि विज्ञान का संकेत मात्र उपलब्ध होता है। 'पर्जन्यो अभि वर्षतु' तथा 'मित्रावरुणौ त्वा वृष्ट्यताम्र' कहकर यज्ञों के द्वारा मंगलकारी जलवृष्टि हेतु मेघों की स्तुति की गयी है। मित्रावरुण युग्मदेव को वृष्टि का देवता कहा गया है। सायण भाष्य में इसका अर्थ 'प्राण और उदान वायु' प्रतिपादित किया गया है। ये दोनों गैसें जल के मूल या परमाणु कहे जा सकते हैं। आधुनिक काल में जल हाइड्रोजन और ऑक्सीजन दो गैसों का मिश्रण स्वीकार किया जाता है। उसी प्रकार मित्रावरुण देवता मिलकर जल की वृष्टि करते थे ऐसा प्रामाणिक माना जा सकता है। अथर्ववेद में (4.15) चतुर्थकाण्ड के पन्द्रहवें सूक्त में वृष्टि विज्ञान का विशद रूप वर्णित है। पूर्व दिशा में स्थिति मेघों द्वारा जल वृष्टि का स्पष्ट उल्लेख है। पृथ्वी को जलवृष्टि द्वारा अभिषिक्त करने हेतु मरुतों से प्रार्थना भी की गयी है। आधुनिक समय भी में समुद्र से उठी पूर्वी हवाओं के द्वारा मानसूनी वर्षा होती है ऐसा माना जाता है। गोपथ ब्राह्मण में भी मानसूनी वर्षा का वैज्ञानिक विवरण उपलब्ध होता है इसी प्रकार समुद्रजल को ऊपर की और प्रेरित कर गर्जना द्वारा जलवृष्टि और सूर्य की किरणों द्वारा सूक्ष्मीकृत करने का विधान भी अथर्ववेद में वर्णित है।

अथर्ववेद परिशिष्ट नामक ग्रन्थ में सद्योवृष्टि लक्षण विस्तृत रूप से प्रतिपादित है। यहाँ वर्षा वर्णन अथर्ववत् है। साथ ही सूर्य,

चन्द्र, पर्वत, आकाश व नक्षत्र के स्वरूप प्रकटित होने पर सद्योवृष्टि के अनुमान का भी विवेचन है। उदाहरणार्थ गोधूलि के समय रक्तवर्ण आकाश, इन्द्रधनुष, सूर्य चन्द्र के परितः मण्डल के आधार वृष्टि का अनुमान होता है। इसके विपरीत लक्षणों के उपस्थित होने पर अनावृष्टि का संकेत' होता है।

नीलरश्मि प्ररोहन्तः शाखावन्त इव द्रुमाः।

यत्र यत्र प्रदृश्यन्ते ध्रुवं तत्र प्रवर्षति।। अथर्ववेद प. 65.1.11

मत्स्य, गौओं का क्रीड़ा करते हुए गृहागमन भी सद्योवृष्टि का सूचक है। बिल में रहने वाले जलज और अजलज संतानों(पिपीलिका आदि का अण्डाकार संक्रमण जलवृष्टि का संचक है। अनावृष्टि होने पर पाक यज्ञ विधान द्वारा मरुतों की स्तुति का भी विधान है। अग्नि में अर्क इन्धन की आहुति से यज्ञ करने पर पर्जन्य बहुवर्षा देने वाला होता है-

समिधां वैतसीनां तु अग्नावर्केन्धनाहुते। अहोरात्रिकहोमः स्यात्पर्जन्यो बहुवर्षदः। अ.प. 65.3.3

इसके अतिरिक्त दुर्भिक्ष, अनावृष्टि काल में ऐन्द्री व वारुणी महाशान्ति यज्ञों का भी प्रावधान है। इस प्रकार अथर्ववेद में हमें वृष्टि विज्ञान का, स्पष्टतः वैज्ञानिक एवं विशद् रूप देखने को मिलता है। अथर्ववेद में सद्योवृष्टि का पूर्वानुमान एवं वर्षा न होने पर उसके लिए उपयुक्त व्यभिचारीय प्रक्रियाओं को भी समाहित किया गया है। यहाँ वर्तमान वृष्टि विज्ञान का मूल निहित है। वृष्टि विज्ञान की दृष्टि से अथर्ववेद अत्यन्त उपादेय है।

वेद और विज्ञान

वैभव शर्मा लखनऊ क्रिश्चियन कॉलेज, लखनऊ

वेद वह स्रोत हैं जिसमें सारा विज्ञान समाहित है। वेदों में जो लिखा है विज्ञान आज उन्हीं तथ्यों को सिद्ध कर रहा है। विज्ञान के अनुसार जगत यौगिकों का समुच्चय है जिनके मुख्य घटक इलैक्ट्रान, प्रोटान व न्यूट्रान है। हमारे वेदों में परमाणु की भिन्न-भिन्न क्रिया व रचना वर्णित हैं। ऋग्वेद के अनुसार परमाणु सप्तवर्गी है जिन्हें सप्त अर्धगर्भा भी कहा जाता है जिसका अर्थ अन्तरिम अवस्था, जो परमाणु अवस्था का द्योतक है। इसी प्रकार वेदों में सूर्य और सौर ऊर्जा के बारे में विस्तृत रूप से जानकारी मिलती है। वेदों के अनुसार सूर्य ऊर्जा का एकमात्र स्रोत है और सूर्य ऊर्जा का जगत उत्पादक है। विज्ञान इन्हीं सब तथ्यों को आज सिद्ध करता है और इन्हीं पर ऊर्जा के संरक्षण का नियम आधारित है। प्रस्तुत शोधपत्र में इन्हीं वैज्ञानिक तथ्यों की चर्चा की जायेगी।

वैदिककाले यज्ञसमिधायाः विज्ञानम्

डॉ. रीता त्रिवेदी सूरत 395001

पर्यावरण रक्षण संदर्भ में अमरिका की चेतावनी चिन्ताग्रस्त है। आज का विज्ञान और ग्लोबलवॉर्मिंग भी यहां चिन्ता की ओर सूचित करते हैं। परमपिता ने मानव रक्षण के लिए जो तीन आवरण की रचना की थी उसे प्रदूषण ने तीन जाल में बदल दिया है। नवभारत टाइम्स की रिपोर्ट का कहना है कि बडे शहर में मानव एक दिन में बीस सिगार का धुआँ पी जाता है। कैसे बचें इससे और कैसे बचाए हमारी आनेवाली पीढ़िओं को भी। ताकि मानव समाज स्वस्थ रह पाए।

क्या वैदिककाल में ऐसा कोई चिन्तन हुआ है जिससे मानव अधिक स्वस्था रह पाए। हमारे वैदिक ऋषियों ने या ऋषिविज्ञानियों ने धर्म में यज्ञ को अनिवार्य माना और विशेषकर दिन सन्धि या ऋतुसन्धि पर यज्ञ की विशेषता जताई क्योंकि उस दिन की ऊर्जाऐं औरदिनों से अलग होती हैं।

भारतीय संस्कृति का यह चिन्तन रहा है कि 'सर्पारिष्टसु शान्तिर्भवतु।' इसके माध्यम से यह कार्य किस तरह होता है यह संशोधन रसप्रद है। मैंने मेरे इस संशोधनपत्र में विज्ञान के कुछ एक विचार यज्ञ द्वारा किस तरह सिद्ध होते हैं यह दिखनाने का नम्र प्रयास किया है। हमारे आयुर्वेदाचार्यों के चिन्तन पर भी यज्ञप्रक्रिया खरी निकलती है। ऋतु के अनुसार अलग-अलग समिधाओं का विस्तृत चिन्तन पाया जाता है जिनका औषधमूल्य मावन के लिए हितकारी है। यज्ञ के मनोवैज्ञानिक चिन्तन का भी प्रकार है। इस

प्रकार विविध तरीकों से मैंने यहाँ यज्ञसमिधाओं की विज्ञान विषयक विचारणा को जांचने का उपक्रम किया है जो हमारे मनीषियों ने मानव कल्याण के लिए प्रस्तुत किया था। विशेषकर के जनसामान्य के आकृष्ट करने के लिए इसे धर्म के साथ रूढि से बान्ध दिया था। अस्तु।

अथर्ववेद में मशक-विज्ञान

डॉ. लखवीर सिंह संस्कृत विभाग, राजकीय कन्या महाविद्यालय, चण्डीगढ़
डॉ. शगनदीप कौर स्नातकोत्तर प्राणी विभाग, डी.ए.वी. महाविद्यालय, चण्डीगढ़

वेद विषयक महर्षि मनु का कथन- 'सर्ववेदात्प्रसिध्यति' तथा 'सर्वज्ञानमयो हि सः' सर्वथा सत्य एवं स्तुत्य है। क्योंकि वेदों का तलस्पर्शी अध्ययनोपरान्त यह पूर्ण-प्रामाणिक सिद्ध होता है कि उनमें आधुनिक विज्ञान से भी उदात्तर वैज्ञानिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन हुआ है। परन्तु वेदों में अन्यतम अथर्ववेद भूयसी विशिष्टता से युक्त है। क्योंकि ऋग्वेदादि अन्य तीनों वेद आमुष्मिक फल प्रदान करते हैं, जबकि अथर्ववेद ऐहिक फल देने वाला भी है। इस दृष्टि से इसका विषय-वैविध्य नितान्त विलक्षण है।

'भैष्यज्यानि सूक्तानि' प्रकरणान्तर्गत विभिन्न शारीरिकरोगों तथा रोगोत्पादक कृमियों का वर्णन करते हुए मशक(मच्छर) पर सविस्तार प्रकाश डाला गया है। यहाँ सतत-शरद्-ग्रैष्म-शीत-वर्षिक-तृतीयक इत्यादि ज्वर के प्रभेदों के साथ ही ज्वरोत्पादक मशक की शारीरिक रचना, प्रकृति तथा नियन्त्रण के उपयों पर भी चर्चा उपलब्ध होती है। इसके अतिरिक्त आश्चर्यजनक तथ्य तो यह है कि मानवीय चक्षुओं द्वारा अदृश्यमान, परन्तु सूक्ष्मदर्शी-यंत्र मात्र से ही दृष्टिगोचर होने वाले मलेरिया उत्पादक परजीवी के विभिन्न प्रकारों का उल्लेख भी प्राप्त होता है।

प्रस्तुत शोध-पत्र में अथर्ववेद में प्रतिपादित उक्त वैज्ञानिक विषय को आधुनिक विज्ञान की कसौटी के आधार पर परखा गया है।

वेद विज्ञान के सन्दर्भ में

कपिल कुमार हिन्दी विभाग, अ.मु.वि. अलीगढ़

वेद वाङ्मय का महत्त्व भारत में सदा से ही चला आ रहा है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने वेदों में अनेक वैज्ञानिक तथ्यों का आविष्कार करके यह सिद्ध कर दिया है कि वैदिक संस्कृति और सभ्यता ही समस्त भारतीय आचार विचारों का मूल स्रोत है। ऋषि दयानन्द ने 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' में वेदविषयविचारः प्रकरण में वेद के चार विषय लिखे हैं- विज्ञान, कर्म, उपासना और ज्ञान। अर्थात् वेदों मे चार काण्ड हैं- विज्ञानकाण्ड, कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड और ज्ञानकाण्ड। इनमें पहला विज्ञान विषय सबसे मुख्य है क्योंकि उसमें परमेश्वर से आरम्भ करके तृणपर्यन्त सभी विषयों का साक्षात् बोध होता है। महर्षि दयानन्द ने पुनः लिखा है- वेदों में दो विद्यायें हैं- परा और अपरा। अपरा विद्य वह है जिसमें पृथ्वी और तृण से लेकर प्रकृति सभी पदार्थों के गुण का ज्ञान प्राप्त करके ठीक-ठीक कार्य सिद्ध किया जाये। दूसरी परा विद्या है, इसमें सर्वशक्तिमान् ब्रह्म की यथावत् प्राप्ति होती है। इससे पता चलता है कि वेद के दो विषय हैं- अध्यात्म ज्ञान और भौतिक विज्ञान। अध्यात्म ज्ञान आत्मा-परमात्मा का बोध कराता है। भौतिक ज्ञान सभी प्राकृतिक पदार्थों के रहस्य का बोध कराकर प्राकृतिक पदार्थों के उपयोग का बोध मनुष्य को कराता है।

महर्षि दयानन्द ने 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' में विज्ञान के कुछ विषयों- विमानविद्या, नौविद्या, तारविद्या, वैद्यकविद्या आदि का संकेत स्पष्ट किया है कि वेदों में विविध विज्ञानों का वर्णन है। इनके अतिरिक्त खनिज विज्ञान, कृषि विज्ञान, पशुपालन विज्ञान, शिल्प, आयुध, पुल बनाना, गृह निर्माण, वस्त्र उद्योग आदि विविध विज्ञानों का विस्तृत संकेत प्राप्त होता है। इस प्रकार वेदों में अध्यात्म के साथ-साथ मानव जीवन से सम्बन्धित सभी प्रकार की आवश्यकता को पूरा करने के तथ्य परक साधन मिलते हैं। इस प्रस्तुत शोध पत्र में स्वामी दयानन्द सरस्वती के ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के आधार पर उपर्युक्त विज्ञान विषयों की विवेचना की जायेगी।

वैदिक संस्कृति में वनस्पति विज्ञान

विपिन कुमार शोधार्थी, वेदविभाग, गु.कां.वि.वि. हरिद्वार

वैदिक संस्कृति में औषधिशब्द का व्यापक अर्थ में प्रयोग हुआ है। इसमें सभी प्रकार के वृक्ष, वनस्पति आ जाते हैं। औषधि की सामान्य व्याख्या इस प्रकार है- 'ओषधय: फलपाकान्ता:' जिनके फल पकते हैं। सायण के अनुसार 'ओष: पाक: फलपाक: यासु धीयते इति ओषधय:'। अर्थात् जिनके फल पकते हैं उन्हें औषधि कहते हैं।

ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद में वृक्ष-वनस्पतियों की उपयोगिता एवं महत्त्व के विषय में विस्तृत विवरण प्राप्त होते हैं। वृक्ष मानव मात्र को प्राणवायु प्रदान करते हैं इसलिए ये मानव के रक्षक, पोषक और माता पिता हैं। ऐतरेय और कौषीतकी ब्राह्मण के अनुसार वनस्पतियां प्राण हैं।

यजुर्वेद में कहा गया है कि वृक्ष प्रदूषण करते हैं, इसलिए उन्हें शमिता (शमनकर्त्ता) प्रदूषण निरोधक कहा गया है। कौषितकी ब्राह्मण में एक बात और कही गयी है कि वृक्ष वनस्पति परमात्मा का उग्र रूप हैं जिससे ये रोग, रोगाणुओं आदि को नष्ट करते हैं, वही इनका संहार संसार का संहार है ये एक ओर रक्षक हैं, दूसारी और संहारक भी हैं, यही है वृक्षों का शिव और रुद्र रूप। वेदों में वृक्ष वनस्पतियों का वर्गीकरण किया गया है तथा उनके लाभ एवं उत्पत्ति स्थानों के भी उल्लेख प्राप्त होते हैं। प्रस्तुत शोधपत्र में **'वैदिक संस्कृति में वनस्पति विज्ञान'** पर प्रकाश डाला जायेगा।

ऋग्वेद में जैव विविधता और उसका संरक्षण

डॉ. नन्दिता सिंघवी व्याख्याता संस्कृत, राजकीय डूंगर महाविद्यालय बीकानेर(राजस्थान)

पृथ्वी पर व्याप्त जीवन की जैविक विविधता जैव विविधता कहलाती है। विश्व में जीव एवं पौधों की संख्या को एक से आठ करोड़ तक माना गया है, किन्तु लगभग पन्द्रह लाख जीव एवं पौधों को ही पहचाना गया है। वर्तमान में भारत में लगभग 50,000 प्रकार के पादप तथा 80,000 प्रकार के जीव-जन्तु पाये जाते हैं। वैज्ञानिक शोध के अनुसार मानवीय क्रियाओं के द्वारा प्रतिदिन 20 से 75 प्रजातियाँ विलुप्त हो रही हैं। इसके विपरीत ऋग्वैदिक काल जैव विविधता की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध रहा होगा। ऋग्वेद में विभिन्न पादपों एवं जीव-जन्तुओं का उल्लेख प्राप्त होता है। प्रस्तुत शोधपत्र में ऋग्वेद में प्रतिपादित जैव विविधता का अध्ययन प्रस्तुत किया जायेगा। जैव विविधता के नष्ट होने का पर्यावरण व अन्य क्रियाओं पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अत: ऋषि जैव विविधता के संरक्षण के प्रति विशेष सजग थे। अरण्यानी सूक्त(10.146) जैव विविधता के प्रति वैदिक आर्यों की प्रतिबद्धता का सुन्दर निदर्शन है। अरण्य ने जैव विविधता को बनाये रखने के लिए एक विशेष नीति निर्धारित की गई थी, जिसके फलस्वरूप अरण्य में रहने वाले वन्य पशु अपने वन्य क्षेत्र का अतिक्रमण नहीं करते थे और मानव भी वन्य क्षेत्र का अतिक्रमण नहीं करता था(वही, 10.146.5)। इसके अतिरिक्त औषधि सूक्त, मण्डूक सूक्त आदि सूक्तों के माध्यम से जैव विविधता के संरक्षण का प्रयास ऋग्वेद में दृष्टिगत होता है। वृक्षों और जीवों में देवत्व की परिकल्पना कर उन्हें नमन अर्चन द्वारा सुरक्षित रखा जाता था। अनेक सूक्तों के ऋषि व देवता वृक्ष व जीवों के नाम पर दृष्टिगत होते हैं, जो वृक्षों व जीवों की महत्ता को प्रतिपादित करते हैं। स्वयं के भोजन के निमित्त ऋग्वेद (4. 87.16) में पशु पक्षियों की हत्या पर प्रतिबन्ध लगाया गया है तथा जो व्यक्ति इस प्रकार का दुष्कृत करता हैं, उसे यातुधान कहा गया है।

विमान-विद्या का मूल स्रोत - वेद

लक्ष्मण कुमार गु.कां.वि.वि., हरिद्वार

वेद समस्त संस्कृत साहित्यान्तरिक्ष के देदीप्यमान नक्षत्र हैं। तथा समस्त विश्वसाहित्य के आधारस्तम्भ हैं। वेद ज्ञान-विज्ञान का वह समुद्र हैं जिसमें तीनों लोकके ज्ञानरूपी जल में विभिन्न-विधाओं के रूप मे बहुमूल्य रत्न विद्यमान हैं। जिसमें मनुष्य गोता लगाकर

बहुमूल्य विद्यारूपी रत्न का पाकर परमानन्द विभोर हो जाता है और परमात्मा का धन्यवाद करता है।

परमपिता परमात्मा ने संसार के प्राणिमात्र के लिये 'वेदों' के रूप में अमूल्य उपहार प्रदान किया है। जिसमें आध्यात्मिक-विद्या, योगविद्या, राजनैतिकविद्या, अर्थविद्या, संगीतविद्या, अग्निविद्या, वायुविद्या, अस्त्र शस्त्रविद्या, तार विद्या, वैद्यक-विद्या तथा शिल्पविद्या में नाव, विमानविद्याओं का अक्षय भण्डार है। वेदों में पूर्वोक्त 'विमानविद्या' के विषय में प्रचुर मात्रा में मन्त्र विद्यमान हैं जिनमें विमानविद्याकं विषय में वर्णन है। इन्हीं वेदों का आधार लेकर महर्षि भरद्वाज ऋषि ने बृहद्विमानशास्त्र की रचना कीथी। जिसमें भिन्न भिन्न विमानों का वर्णन आता है। जो पारे से चलता है और वही पारा जलने के बाद एक विशिष्ट यन्त्र के द्वारा पारे में परिवर्तित होता है। ऐसे विमानों की कल्पना भी अशक्य है वर्तमान समय में।

इसी प्रकार महर्षि दयानन्द ने भी अपनी 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' में भिन्न भिन्न विमानों का उल्लेख किया है। जिसके संदर्भ में उन्होंने ऋग्वेद के 11 मन्त्रों को प्रस्तुत किया है। इससे यही सिद्ध होताहै कि विमानविद्या का मूलस्रोत वेद ही है।

वेदों में वस्त्र निर्माण कला

श्रीमती अनुपमा कुमारी प्रवक्ता गृहविज्ञान, कानपुर विद्या मन्दिर महिला पी.जी. कॉलेज, कानपुर

वस्त्रों का मानव से अटूट सम्बन्ध है। वस्त्रों का मानव से पृथक् करना सम्भव नहीं है। वस्त्रों का सामाजिक मूल्य होने के साथ साथ मानव संस्कृति व सभ्यता का भी प्रतीक माना है। आदिम युग में मानव घास, लता, पत्ते, मृत जानवरों की खाल आदि अपने शरीर को मात्र आवृत्त कर संतुष्ट हो जाता था। परन्तु आज नित्य नये अनुसन्धान से आधुनिकतम रेशों से निर्मित परिधान से अपने रूप को आकर्षक बनाने में प्रयुक्त करता है और व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम मानता है जिससे उसके मूल्य प्रभावित होते हैं।

विदेशी चिंतक स्पेन्सर ने वस्त्र पहनने की भावना को शृंगारप्रियता से उद्भूत माना है। वैदिक काल द्वारा सूत कातने व कपड़ा बुनने का उल्लेख आता है। कपड़ा बुनने वालों को 'वय' कहा गया। 'पूषा' ऊनी कपड़ा बुनने वालों को कहा गया। अथर्ववेद में उल्लेख है कि यह कार्य प्रायः स्त्रियां किया करती थी। कपड़ा बुनने के स्थानों में वेमन(एलूम), खुड्डी, राछ यन्त्र का वर्णन है जिससे कपड़ा बनता था। 'सीस' सीसे के भार या लोहे का बोझ अर्थात् जो लपटने के चक्र पर लगाया जाता है जिससे ठीक प्रकार से कपड़ा लपेटा जा सके। 'तसर'(एशल्टर) शब्द नाल, घडकी, नली का बोधक है जो कपड़ा बुनने के काम आता है। खुड्डी के साथ वाली घूंटी को 'म्यूस' कहा गया है। सूत द्वारा कपड़ा तैयार करने वाले को वासोवायः 'वाय'(जुलाहा ए वीवर) कहा गया है।

यजुर्वेद में वृष्टि विज्ञान

डॉ. विजयकुमार वेदालङ्कार प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, हिन्दू कॉलेज, सोनीपत

वृष्टि विज्ञान वेद का एक प्रमुख विज्ञान है। इस विज्ञान का अन्तर्भाव वारुणी विद्या के अन्तर्गत है। इस विद्या की निष्पत्ति का आधार भी इसी विद्या का अंग हैं। वृष्टि का महत्त्व इसलिए है कि इसके बिना पृथ्वी पर जीवन स्थिर नहीं रह सकता है। वास्तव में जल तत्त्व अपनी अनेक स्थितियों, परिवर्तनों एवं रूपों से विश्व का पालन पोषण करता है। 'आपोवा इदमग्न आसीत्'- उपनिषद् का यह वाक्य जल की प्रधानता एवं उसकी प्राथमिकता का द्योतक है। वस्तुतः वृष्टि आनन्द रूपा है। 'शंयोरभि स्रवन्तु' के द्वारा भी परमात्मा से सुख की वृष्टि की कामना की जाती है। किन्तु यह वृष्टि तभी तक सुखकारक है जब तक वह हमारे लिए अनुकूलता संपादक है। यजुर्वेद में कहा गया है- 'निकामें-निकामें नः पर्जन्यो वर्षतु' अर्थात् हम जब-जब इच्छा करें अथवा हमें जब भी जलकी आवश्यकता हो, तब तब वेद्य बरसें। इसी प्रकार "पर्जन्यो अभिवर्षतु" भी सुख और शान्ति का हेतु है किन्तु यह अति की स्थिति में होने लगे तो उससे बचने का साधन ढूँढना आवश्यक है। यजुर्वेद के प्रथम अध्याय के 16वें मन्त्र में "वर्ष वृद्धम्" कहा गया है अर्थात् यज्ञ वृष्टि का वर्धक है। यज्ञ वर्षा का मुख्य साधन है। इसी प्रकार दूसरे अध्याय के 16वें मन्त्र में "मित्रा वरुणो त्वा वृष्ट्यावताम्" के द्वारा वर्षा के भूत, मित्र तथा वरुण देवताओं को बताते हुए उनके द्वारा वर्णन क्रिया होने और उससे संसार की रक्षा होने का संकेत

है। पुन: उन्हीं देवताओं को सम्बोधन करके कहा गया है- 'ततो नो वृष्टि मा वह' अर्थात् हमारे लिये वृष्टि को प्राप्त कराओ। इसका तात्पर्य है कि वर्षा कराने के लिए वेद, मित्र और वरुण देवताओं या दिव्य तत्त्वों का उपदेश करता है। ये दोनों दिव्य तत्त्व वर्षा के प्रधान भूत कारण हैं। इसीप्रकार "मरुतां पृषतीर्गच्छ" की आहुति के द्वारा वेद वृष्टि विज्ञान की सिद्धि का उपदेश देता है। यजुर्वेद के 15वें अध्याय के छठे मन्त्र में स्पष्ट उपदेश है कि - "विष्टम्भेन वृष्ट्या वृष्टिं जिन्व" अर्थात् वृष्टि के विष्टम्भन(विनाश) को रोकने के लिए वृष्टि को जीतो। इसी से अतिवृष्टि पर नियन्त्रण हो सकता है और संसार को सुखी बनाया जा सकता है। इसी प्रकार ऋग्वेद के पर्जन्य सूक्त और अथर्ववेद के वृष्टि सूक्त में भी वर्षा का बहुत सजीव चित्रण हुआ है। यज्ञ से वर्षा किस प्रकार होती है? अभी भी इस समस्या का समाधान वैदिक वृष्टि विज्ञान के क्षेत्र में पर्याप्त शोध की अपेक्षा रखता है।

वेदों में वनस्पति विज्ञान

अपर्णा कुमारी राजकीय सं. महाविद्यालय, रांची

वनस्पति भ्वादि 'वन्' धातु में अच् प्रत्यय के संयोग से निष्पन्न है 'वनति इति वनम्' तनादि गण में वन् धातु से उभय पद में इसका रूप वनोति और वनुते दोनों ही होता है। इसका अर्थ प्रार्थना करना भी होता है तो 'य दात् इतरं नैव चातको वनुते जलम्'। भर्तृहरि वन का अर्थ झाड़ी छोटे बड़े पौधों से भरा स्थल भी होता है। 'एको वास: पत्तने वा वने वा ।(भतृहरि- नीतिशतकम्)

वनस्पति वनस्य पति चन्द्रमा भी वन का अर्थ होता है वामन भगवान को उपनयन संस्कार मे दण्ड चन्द्रमा ने दिया था 'दण्ड: सोमो वनस्पति:(भागवत)।

ऋग्वेद के श्री के स्तवन में बिल्ववृक्ष को वनस्पति कहा गया है- 'वनस्पति वृक्षोऽस्ति विल्व:'। विल्वपत्र मधुमेह नाशक पकावेल पित्तनाशक और उदर के कीड़ों का विनाशक है। वनस्पति मानव के लिए अमृतमय प्रकृति का वरदान है यजुर्वेद के शान्ति अध्याय में 'वनस्पतय: शान्ति:' भी कह गया है। अर्थात् वनस्पति शान्ति पूर्वक जीवित रहकर कल्याण करते रहें।

विशेष पूर्ण निबन्ध में वनस्पति की उपादेयता की समीक्षा की जाएगी।

योग-वासिष्ठ में उल्लिखित ब्रह्माण्ड की संरचना तथा उसका विस्तार आधुनिक वैज्ञानिक अनुसन्धानों के परिप्रेक्ष्य में एक विश्लेषणात्मक समीक्षा

डॉ. सीमा वर्मा ज्योतिविज्ञान, लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ

ज्यों ज्यों आधुनिक विज्ञान विकसित हो रहा है, त्यों-त्यों भारत के प्राचीन संस्कृत वाङ्मय में उल्लिखित अनेक शास्त्रीय सिद्धान्त और मान्यतायें विज्ञान-सम्मत् सिद्ध होती जा रही हैं। योग-वासिष्ठ में महर्षि वासिष्ठ उल्लिखित सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की संरचना तथा उसके विस्तार का विवरण प्राप्त होता है। महर्षि वसिष्ठ ने अपने अनुभवों का अत्यन्त आश्चर्यजनक वर्णन किया है। अपने अनुभवों का विवरण देते हुए महर्षि वसिष्ठ ने कहा है कि 'मैंने चिन्तन किया कि चिदाकाश रूप होकर और उसके साथ एकरूपता को प्राप्त होकर आकाश के गुण, शब्द तथा उसके अर्थो का साक्षात्कार करुँ।' ऐसा विचार करके देह त्यागार्थ पद्मासन पर स्थित हुआ और समाधि लगाने के लिए नेत्रों को बंद किया। तदनन्तर क्रम से इसको भी त्याग कर मैं बुद्धिरूपता को प्राप्त हुआ और पुन: बुद्धिरूपता को भी त्यागकर चिदाकाश में जगज्जाल का दर्पण रूप हो गया। इसके पश्चात् मैं स्वभाव से आकाश रूपता को ऐसे प्राप्त हुआ, जैसे नदी आदि का जल समुद्ररूपता को तथा अल्प सुगन्ध महासुगन्ध रूपता को।

इसके अनन्तर उस दशा में प्राप्त चिदाकाश में मैंने अनेक त्रैलोक्यों के समूह, सैकड़ों जगत् और अगणित लक्ष्य ब्रह्माण्डों को देखा। अनेक ब्रह्माण्डों को उत्पन्न होते हुए, अनेक नष्ट होते हुए, अनेक वृद्धिशील तथा अनेक वर्तमान, अतीत और भविष्य ब्रह्माण्डों को भी मैंने देखा। परस्पर परलोकगामी तथा अन्तर्ध्यान आदि शक्ति से उत्पन्न सिद्धों को नगरों से संयुक्त तथा भिन्न-भिन्न प्रकार के महाभूत तथा भिन्न-भिन्न प्रकार की दिशाओं और पर्वतों के सहित अनेक ब्रह्माण्डों को मैंने देखा। इन अनन्त ब्रह्माण्डों में कहीं कहीं चन्द्रमण्डल उष्ण तथा सूर्यमण्डल शीतल भी अनुभूत होते थे। उस अनेक युगों के भेद में प्रकाशमान अनन्तकल्पों में मेरे

सदृश तथा वसिष्ठ नाम वाले और ब्रह्मा के पुत्र अनेक उत्तम मुनीश्वरों को मैंने देखा तथा रामावतार सहित बहत्तर त्रेतायुगों के भेद भी मैंने देखे एवं सैकड़ों सतयुग व द्वापर भी मैंने देखे। प्रस्तुत शोधपत्र में महर्षि वसिष्ठ द्वारा उल्लिखित उपरोक्त विवरणों की आधुनिक रेडियो टेलीस्कोप की सहायता से देखे गये ब्रह्माण्ड की संरचना तथा आधुनिक ब्रह्माण्ड वैज्ञानिक डा. जयन्त नारलीकर द्वारा लिखित ग्रन्थ The Structure of the Universe में उल्लिखित ब्रह्माण्ड की संरचना से सम्बन्धित विवरणों के परिप्रेक्ष्य में विश्लेषणात्मक समीक्षा प्रस्तुत की गयी है।

वेदों में वनस्पतियों की महत्ता

इरफान अहमद अलीगढ़

वैदिक वाङ्मय में वनस्पतियों की महत्ता स्थान-स्थान पर वर्णित है। ऋग्वेद के कई सूक्त वनस्पतियों से सम्बन्धित हैं। इसी वेद के एक मन्त्र में कहा गया है कि देवताओं ने सम्पूर्ण भूमण्डल पर वनस्पतियों का निर्माण तीन युगों में किया है-

या ओषधी पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा
मनै नु बभ्रूणामहं शत धामानि सप्त च।

वेदान्तसार की एक कारिका में उल्लेख आता है कि ब्रह्म ने चार प्रकार की सृष्टि(जरायुज, अण्डज, उद्भिज, और स्वेदज) की 'चतुर्विधानि शरीराणि तु जरायुजाण्डजोद्भिजस्वेदजाख्यानि।' 105

इनमें से उद्भिज नामक सृष्टि से वनस्पतियों की उत्पत्ति हुई। इससे स्पष्ट होता है कि ब्रह्म के अंश से वनस्पतियों की उत्पत्ति हुई यही कारण है कि ऋग्वेद में वनस्पतियों को परमेश्वर कहा गया है-

अञ्जन्ती त्वाम वरेदेवयन्तो वनस्पते मधुना देव्येन
यदूर्ध्वस्तिष्ठा द्रविणे धत्ताद् यद् वा क्षयो मातुरस्य उपस्थे।। 3.8.1

ऐतरेय ब्राह्मण में वनस्पतियों को सम्पूर्ण जीव जगत् को प्राण के रूप में उल्लेख(6.4) किया है। प्रस्तुत शोध पत्र में वनस्पतियों की महत्ता वेदों के सम्बन्ध में गवेषित की जायेगी।

अथर्ववेद का वनस्पति-जगत्

डॉ. बीना कुमारी गुप्ता प्रवाचक एवं अध्यक्ष, संस्कृत विभाग बैकुण्ठी देवी कन्या महाविद्यालय, आगरा

वनस्पति संसार प्रकृति की रहस्यमयता एवं विराटता का एक अनमोल खजाना है। वैज्ञानिकों की दृष्टि में वनस्पतियों का उद्भव दो अरब वर्ष पूर्व का माना गया है।

अथर्ववेद ब्रह्मविद्या ही नहीं, विश्वविद्या है। इसमें वनस्पतियों के स्वरूप, गुण, कर्म, उपयोग आदि का विशद् विवेचन है। ऋग्वेद (10.97.715) और यजुर्वेद(12.87) के अनुरूप अथर्ववेद में भी वनस्पतियों को चार वर्ग में विभक्त किया गया है- (1) वनस्पति, (2) वानस्पत्य, (3) वीरुध् और (4) औषधि। वनस्पतियों का उपयोग लौकिक कार्यों में तो होता ही है, इसका औषधीय प्रयोग कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। इसीलिये अथर्ववेद को यजुर्वेद अथवा आयुर्विज्ञान का मूल अथवा स्रोत माना गया है। अथर्ववेद में ऋषियों ने अपने सूक्ष्मावलोकन द्वारा वनस्पतियों के विज्ञान को समझा और उसका साक्षात्कार सभी को करने की चेष्टा की। अथर्ववेद का वनस्पति-जगत् आज भी वैज्ञानिकों के समक्ष शोधपरक चुनौति प्रस्तुतकर रहा है। अथर्ववेद में ऋषियों ने केवल वनस्पति-जगत् की बाह्य संरचना, प्रकार, रंग-रूप का ही वर्णन नहीं किया, अपितु औषधि-वनस्पति तथा दैनिक उपयोग वनस्पतियों के उत्पत्ति-स्थल तथा उनको अधिकाधिक लाभप्रद बनाने की दिशा में भी मार्ग प्रशस्त किया है। अथर्ववेद लौकिक जगत् का महनीय ग्रन्थ है। इस वेद में ऋषियों ने अनेक ऐसी विद्याओं यथा- कश्यपविवर्ण, मृतसंजीवनी, मृत्युञ्जय, सर्पविषनाशनम् आदि का उल्लेख किया है, जिन पर अनुसन्धान करने की आवश्यकता है। 'अथर्ववेद का वनस्पति-जगत्' शोध-पत्र मानव मात्र के लिये वनस्पतियों की उपादेयता के रहस्य को प्रकाशित एवं दिशा निर्देश करने में सक्षम होगा।

सरस् तथा सोम : वैदिक आलोक में

रेखा अग्रवाल (शोधच्छात्रा) वनस्थली विद्यापलीठ जिला टोंक राजस्थान

अति प्राचीन काल से ही वेदों को समझने का प्रयास होता रहा है। वेदों कों दुरूह बनाने में दो बातों का प्रमुख योगदान रहा है एक तो वेदों के आविर्भाव और उनकी व्याख्या के प्रयासों में प्रभूत कालान्तर है। दूसरे इस अन्तराल में मिथ्या धारणायें पनपती गई, व्यक्तिगत आग्रह बढ़ते गये और उन सबको सिद्ध करने के लिए प्रयोग होता रहा क्योंकि वेदों को सभी आस्तिकों ने सर्वोच्च प्रमाण माना हुआ है। खींचतान करके भी यथाकथन्चित् अपने मन्तव्य की पुष्टि वेद द्वारा करने का सबका आग्रह रहा है। निस्सन्देह 'वेदानां विश्वतोमुखत्वम्' प्रसिद्ध है और बहुत बार अनुभव भी किया जाता है। तो भी अद्यावधि उनमें निहित अर्थो को पूर्णरूपेण नहीं समझा जा सका है। ऐसा ही सरस् तथा सोम के अर्थो को समझने में हुआ है।

सनातन काल से आर्यो के घरों में सरस्वती की पूजा होती आ रही है किन्तु सरस्वती क्या है? और वह सरस् क्या था? जिसके आधार पर यह नाम पड़ा, इन बातों पर विचार करना आवश्यक है। ऋग्वेद में लगभग 40 बार सरस्वती शब्द का प्रयोग देखने को मिलता है। जहाँ इसे अंबितमा, नदीतमा एवं देवितमा कह कर पुकारा गया है। सरस्वती शब्द की व्युत्पत्ति देते समय सायण ने सरस् का अर्थ 'जल' किया है, किन्तु जल तो नदियों में प्राय: एक समान होता है, इसलिए यह उचित प्रतीत नहीं होता कि आर्यो ने जल की विशेषता के कारण सरस्वती की पूजा आरम्भ की।

ऋग्वेद में सोम का अनूठा वर्णन आता है, ऋग्वेद का नवम मण्डल तो बना ही सोम की अर्चना के लिए है। अभिषवार्थक, प्रेरणार्थक एवं उत्पादनार्थक 'सू' धातु से सोम की व्युत्पत्ति करने पर सोम शब्द का अत्यन्त मनोहारी एवं व्यापक अर्थ हमारे सम्मुख आता है, जो पेयपदार्थ से हटाकर हमें उस परब्रह्म ही ओर ले जाता है जिसके उपहित रूप से लीलामय विश्व का प्रभाव एवं प्रेरण हुआ।

इन्हीं दोनों तत्त्वों 'सरस्' तथा 'सोम' का वैदिक आलोक में विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत शोधपत्र का प्रयोजन है।

ऋग्वेद और अथर्ववेद के अनुसार विद्युत् विवेचन

पारस शास्त्री (शोधच्छात्र) जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

विद्युत् शब्द 'वि' विशेषण और 'द्युत्' धातु से निष्पन्न होता है। वेदों में इसके पर्याय- नेमि, हेति, नभ, पधि, सुक, वृक, वथ, वज्र, अर्क, अशनि, ह्लादिनी, शतधार, कुत्स, कुलिश, तुजस्वधिति, सायक, तिग्म आदि हैं।

ऋग्वेद में विद्युत् अति प्रकाश से प्रकट होने एवं चपलता के साथ प्रकाशित होने वाली, परस्पर पदार्थों को घिसने से उत्पन्न होने वाली, बिजली से चलने वाले रथों का वर्णन, मेघ के बिजली, वज्रपात, युद्ध के साधन, बिजली के लोहे से बनाये हुए अस्त्र-शस्त्रों का, आकाश भूमि एवं जल में चलने वाले विमानों का, द्युलोकरूप अग्नि, जन वर्षण करने वाली, आकर्षण शक्ति को धारण करने वाली, विद्युत् शक्ति वाले शस्त्रों का, मेघ मण्डल, द्युलोक और पृथ्वी को प्रदीप्त करने वाली, महाबलयुक्त, वायु के योग से उत्पन्न होने वाली, पृथ्वी में व्याप्त, अपने रूपों को प्रकाशित करने वाली, मेघ के अवयवों को छिन्न-भिन्न करने वाली, वृष्टि करके सब प्राणियों को सुखी बनाने वाली, सवर्ण के समान वर्णयुक्त तेज को दर्शाने वाली आदि गुणों का वर्णन आया है।

अथर्ववेद में गड़गड़ाहट की गर्जना से युक्त, भूमि पर उत्पन्न सभी औषधियों में गर्भ स्थापित करने वाली, विद्युत्, अपनी चमक एवं गड़गडाहट के साथ वायु को दिशाओं में प्रेरित करने वाली, जलप्रवाहकरके संसार को तृप्त करने वाली, ध्वनि करने वाली, मेघों में गर्जना उत्पन्न करने वाली, प्राण धारण करने वाली शक्ति, पानी को अपने अन्दर एकत्रित करके रखने और असमय से नीचे न गिरने वाली, वज्र का प्रहार करने वाली, रिपु नाशक, देवताओं का बाण अर्थात् देवता अपने शत्रुओं पर विद्युत् के वज्र प्रहार से नष्ट करते हैं। सर्वत्र व्याप्त होने वाली शक्ति है। इस प्रकार विद्युत् के अनेक प्रकार के गुणों का वर्णन वेदों में वर्णित है जिस में से ऋग्वेद औरअथर्ववेद में से विद्युत् के सभी धर्म-गुणों का विस्तार पूर्वक वर्णन शोधपत्र में किया जायेगा।

सार्वकालिक एवं सार्वभौमिक वैदिक नियम "ऋत"

डॉ. रामसिंह चौहान स.आचार्य, संस्कृत विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

ऋत प्रकृति की सार्वकालिक एवं सार्वभौमिक नियमबद्धता का प्रमुख आधार है। दैवीय शक्तियां ऋत का पालन करते हुए अपने कार्यों को संपादित करती है। वेद में ऋत, सत्य व गति के अस्तित्व का परिचायक है। देवता भी ऋत के नियमों का अतिक्रमण नहीं करते, यही कारण है कि आकाश, जल, पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्युलोक अदि प्राकृतिक शक्तियां देवरूप में वर्णित हैं तथा ऋत नियम से व्याप्त हैं।

ऋग्वेद में 'ऋत' की कल्पना एक विचार दर्शन है, ऋग्वेद में प्राप्त ऋत की अवधारणा को ऋग्वेद के दार्शनिक विचारों में सम्मिलित किया जा सकता है। ऋत- का अर्थ है 'नियम या व्यवस्था। ऋत् वह व्यवस्था है, वह नियम है जो सृष्टि के सभी पदार्थों में व्याप्त है और जिसके द्वारा ही सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र, तारे, दिन, रात आदि अपना कार्य नियम से, एक व्यवस्था में बंधे हुए होकर सतत् करते रहते हैं। विश्व का सम्पूर्णनियमन ऋत के द्वारा ही होता है। सृष्टि के प्रारम्भ में सर्वप्रथम ऋत तत्त्व ही था। ऋत् से ही जगत् का निर्माण हुआ है। देवता भी ऋत की व्यवस्था का अतिक्रमण नहीं कर सकते। ऋत सम्पूर्ण विश्व का नियामक है। सृष्टि के मूल में यही ऋत था

'ऋतं च सत्यं चाभीधात्तपसोऽध्यजायत' ऋग्वेद 10/190/10

निघण्टु के अनुसार सत्य(ऋत) के छः नाम हैं- बट्, श्रत, सत्र, अद्धा, इत्था और ऋत।

वैदिक साहित्य में सूर्यग्रह से सम्बन्धित तथ्यों का निरूपण

शोभित सिंह (शोधच्छात्र) ज्योतिर्विज्ञान विभाग, लखनऊ वि.वि. लखनऊ

वैदिक साहित्य में सूर्य को देवता के रूप में माना गया है। सूर्य ईश्वरीय विभूति है क्योंकि वह स्वयं प्रकाशमान ज्योति:स्वरूप ब्रह्माण्डनाय साक्षात् ब्रह्म की मूर्ति है। वास्तव में सूर्य की किरणों के संयोग से ही सम्पूर्ण संसार का जीवन रहता है। सम्पूर्ण नक्षत्र, ताराएँ तथा ग्रह आदि का प्रकाशक सूर्य ही है। समस्त रोगों को शमन करने का सामर्थ्य सूर्य में ही है। अत: पौराणिक काल में 'आरोग्यं भास्करादिच्छेत्' कहा जाने लगा था।

हिरण्यपाणि: सविता विचर्षरूर्भ द्यावापृथिवी अन्तरीयते।
अपामीवां बाधते वेति सूर्यममि कृष्णेन रजसा धामृणोति।।(ऋ. 1/35/9)

अर्थात् स्वर्णिम हाथ वाले सर्वद्रष्टा सूर्य आकाश और पृथिवी के मध्य गति करते हैं। वे रोगादि बाधाओं को मिटाकर अन्धकारनाशक तेज से आकाश को व्याप्त करते हैं।

वैदिक साहित्य के अलावा आधुनिक समय में विभिन्न साहित्य विधाओं में सूर्य से सम्बन्धित अनेक आख्यानों में अनेक तथ्य वर्णित किये गये हैं। प्रस्तुत शोध-पत्र में इन्हीं तथ्यों के आधार पर प्रस्तुतकर्त्ता के द्वारा सूर्य ग्रह से सम्बन्धित तथ्यों का निरूपण किया जायेगा।

वैदिक संहिताओं में सूर्य एवं सौर ऊर्जा

डॉ. योगेन्द्र कुमार भानु,(व्याख्याता-संस्कृत) महारानी श्री जया राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भरतपुर

वेद अतिशय ज्ञान के भण्डार हैं। महर्षि मनु ने वेद की ज्ञानातिशयता को 'सर्वज्ञानमयो हि स:' कह कर सिद्ध किया है, तो महर्षि स्वामी दयानन्द ने 'वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है।' के कथन से पुष्ट किया है। वेद का अलौकिक ज्ञान अनेक प्राकृतिक एवं सृष्टि के रहस्यों से परिपूर्ण है। इन रहस्यों में सूर्य का जन्म, स्थिति, स्वरूप एवं महत्त्व अन्यतम है।

सृष्टि के आधारभूत तत्त्वों में प्रमुख सूर्य के स्वरूप शक्ति व महत्त्व का वैज्ञानिक विवेचन वैदिक संहिताओं में उपलब्ध होता

है। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में सूर्य को चराचर जगत् की आत्मा कह गया है 'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'।

सूर्य की उत्पत्ति

सूर्य की उत्पत्ति के संदर्भ में ऋग्वेद में अनेक रहस्यों को उद्‌घाटित किया गया है। पुरुष सूक्त में सूर्य की उत्पत्ति पुरुष के नेत्रों से कही गई है 'चक्षुषो सूर्योऽजायत। ' ऋग्वेद में अन्यस्थलों पर इन्द्र, जल एवं हिरण्यगर्भ से सूर्य की उत्पत्ति का उल्लेख है। एक अन्य स्थल पर स्पष्ट रूप से सूर्य की उत्पत्ति नीहारिका मण्डल से बताई गई है।

सूर्य का स्वरूप

यजुर्वेद 9/3 में सूर्य के स्वरूप का वर्णन है। वहाँ कहा गया है कि सूर्य 1. 'अपां रसः', 2. अपां रसस्य यो रसः' इन दो तत्त्वों से मिलकर बना है।

ऋग्वेद के एक मन्त्र में 'नानासूर्याः' कहकर आकाशगंगा में विद्यमान सूर्यो की उपस्थिति की चर्चा है। वहाँ एक मन्त्र में सूर्य से पृथिवी की उत्पत्ति का भी निर्देश है। वैदिक मन्त्रों में सूर्य की आकर्षण शक्ति का अनेकशः उल्लेख प्राप्त होता है।

वैदिक संहिता में प्राप्त सूर्य की किरणों का स्वरूप, उनका प्रभाव और सौर ऊर्जा के रूप में उसके उपयोग का विश्लेषणात्मक विवेचन शोधपत्र में विस्तार से किय जानाप्रस्तावित है।

वेदों में सूर्य विज्ञान पुराणों के आलोक में

डॉ. शीतलाप्रसाद शुक्ल वरिष्ठव्याख्याता, श्री ला.ब.शा.रा.संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली

भगवान वेदव्यास ने यह उक्ति अक्षरशः सटीक कही है। वैदिकज्ञान विज्ञान को ठीक-ठीक परिभाषित करने का जो कार्य पुराणवाङ्‌मय करता है वह अप्रतिम है। वैदिक वाङ्‌मय में सूर्य विज्ञान का प्रतिपादन बड़े ही अनूठे ढंग से किया गया है। ब्रह्माण्डीय रचना में ऊर्जा के परमस्रोत के रूप में सूर्य ही प्रतिष्ठित है वह सारे जड़ चेतन क्रिया व्यापार का प्रवर्त है।

'सूर्यआत्मा जगतः तस्थुषश्च'

सूर्य के प्रकाश, ऊर्जा, परिणाम, संरचना तथा उसके विश्वव्यापार पर पड़ने वाले प्रभावों की काव्यात्मक चर्चा से वेद भरे पड़े हैं। पुराणों में इन ऋचाओं की बड़ी लालित्यपूर्ण व्याख्या की गई है। प्रस्तुत शोधालेख में मैंने सूर्यविज्ञान से सम्बद्ध वैदिक ऋचाओं की पौराणिक सन्दर्भों से विस्तृत विवेचना की है। इसके प्रकाशन से हमें वैदिक सूर्य विज्ञान को समझने में एक नई दिशा मिलेगी।

पर्यावरण एवं जल संरक्षण की वैदिक-वैज्ञानिक अवधारणा

डॉ. पुनीत बिसारिया नेहरू स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ललितपुर, उ.प्र.

डॉ. प्रणव, उपाधि स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पीलीभीत, उ.प्र.

स्वच्छ जल एवं स्वच्द परिवेश किसी भी सामाजिक वातावरण के पल्लवन एवं विकसन की अपरिहार्य आवश्यकता है। जीव-जन्तुओं हेतु अनुकूल परिस्थितियों में ही जीव-जन्तुओं का समाज पुष्पित-पल्लवित होताहै। अतः सामाजिक विकास में पर्यावरण तथा जल संरक्षण की अनिवार्यता को विस्मृत नहीं किया जा सकता। भारतीय दृष्टि चिरकाल से सम्पूर्ण प्राणियों एवं वनस्पतियों के कल्याण की आकांक्षा रखती आई है। यजुर्वेद का ऋषि सर्वत्र शान्ति की प्रार्थना करते हुए मानव जीवन तथा प्राकृतिक जीवन में अनुस्यूत एकता का दर्शन बहुत पहले कर चुका था। ऋग्वेद के नदी सूक्त एवं पृथ्वी सूक्त तथा अथर्ववेद का अरण्यानी सूक्त क्रमशः नदियों, पृथ्वी एवं वनस्पतियों के सरंक्षण एवं संवर्धन की कामना का संदेश देते हैं। 'यत्पिण्डे तद् ब्रह्माण्डे' सूक्ति भी पुरुष तथा प्रकृति के मध्य अन्योन्याश्रय सम्बन्ध की विज्ञानपुष्ट अवधारणा को बताती है। अथर्ववेद में कहा गया है कि अग्नि से धूम उत्पन्न होता है, धूम से बादल बनते हैं और बादलों से वर्षा होती है। यह तथ्य भी विज्ञान की कसौटी पर खरा उतग है। अथर्ववेद में जल की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए कहा गया है कि जिससे बढ़ने वाली वनस्पतियों आदि अपना जीवन प्राप्त करती हैं, वह जीवन का सत्त्व पृथ्वी पर नहीं है और न द्युलोक में है, अपितु अन्तरिक्ष में है तथा अन्तरिक्ष में संचार करने वाले मेघमण्डल में तेजस्वी, पवित्र और

शुद्ध जल है।

जिन मेघों में सूर्य दिखाई देता हो, जिनमें विद्युत रूपी अग्नि कभी व्यक्त और कभी गुप्त रूप से दिखाई देती हो, वह जल हमें शान्ति और आरोग्य देने वाला हो। यह तथ्य स्पष्ट रूप से बताता है कि शुद्ध एवं स्वच्छ जल ही हमें शान्ति और आरोग्य दे सकता है, जिसे विज्ञान भी स्वीकार करता है।

सुप्रसिद्ध इन्द्र-वृत्र आख्यान भी जल के महत्त्व को प्रतिपादित करता है। इन्द्र वर्षा के जल को बाधित करने वाले दैत्य वृत्रासुर का ऋषि दधीचि की सहायता से संहार करते हैं तथा स्वच्छ वारिधाराओं का धरती पर निर्बाध विचरण सुनिश्चित करते हैं। वैदिक ऋषि जल के औषधि स्वरूप से भी भली-भांति परिचित थे, सम्भवत: इसी कारण उन्होंने जल को शिवतम रस की संज्ञा दी थी। ऋग्वेद का ऋषि प्रार्थना करते हुए कहता है कि हे सृष्टि में विद्यमान जल ! तुम हमारे शरीर के लिए औषधि का कार्य करो ताकि हम निरोग रह कर चिरकाल तक सूर्य का दर्शन करते रहें, अर्थात् दीर्घायु हों।

स्पष्ट है कि वेदों में पर्यावरण सन्तुलन विशेषकर जल संरक्षण के प्रति ऋषि की तीव्र स्पृहा यत्र-तत्र परिलक्षित होती है। प्रस्तुत शोधपत्र में वैदिक काल में पर्यावरण एवं जल संरक्षण के प्रति ऋषियों की विज्ञानसम्मत दृष्टि की विवेचना की जायेगी। तथा कतिपय महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकालने का विनम्र प्रयत्न किया जायेगा।

वैदिक साहित्य में ऋतु-विज्ञान

डॉ. बच्चा भारती रा.सं.सं.(मानित विश्वविद्यालय)लखनऊ परिसर

वैदिक साहित्य में ऋतुओं का वर्णन किया गया है। य: शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तं, चत्वारिश्यां शरद्यन्वविन्दत्।। ऋक्. 2.12.11 उपर्युक्त मन्त्र में चत्वारिश्यां और शरदि (शरदऋतु) आधुनिक युग में मान्य सहज शब्दावलियां हैं जो ऋतु विज्ञान और काल निर्धारण का समन्वय प्रदर्शित करती हैं। ऋतुओं का पदार्थों की उपयोगितासे सीधा सम्बन्ध है। ऋतु का वैज्ञानिक महत्त्व निम्नलिखित मन्त्र से स्पष्ट होता है 'इन्द्र सोमं पिब ऋतुना त्वा विशंत्विन्दव:। मत्सरासस्तदोकस:।।' ऋक्. 1.15.1 उपर्युक्त मन्त्र में इन्द्र को समय पर सोमग्रहण करने के लिए कहा गया है। ऋतु विज्ञान का सहज परिचायक मन्त्र अधोलिखित है-

चतुर्भिसाकं नवतिं च नामभिश्चक्र नवृतं व्यतीन्रवीतिवपत्।
बृहच्छरीरो विभिमान: ऋक्वभिर्युवाकुमार: प्रत्येत्याहवम्।। ऋक्. 1.155.6

वेदों में शिल्प-कौशल्य

डॉ0 इन्दु शर्मा डी0लिट0 रीडर एवं अध्यक्षा, ड्राइंग एण्ड पेन्टिंग विभाग गुरू नानक गर्ल्स पी०जी० कालेज, सुन्दर नगर, कानपुर-208012

भारत की सभ्यता जितनी पुरानी है; भारतीय शिल्प-विज्ञान भी उतना ही पुराना है। आज जिसे हम तकनीकी विज्ञान कहते हैं; वैदिक काल में उसी को शिल्प-कौशल्य, कला-ज्ञान एवं शिल्पशास्त्र आदि नामों से अभिहीत किया गया। शिल्प की यथाविधि शिक्षा दी जाती थी। इसके ज्ञाता 'शिल्पी' या 'विश्वकर्मा' कहलाते थे। विश्वकर्मा अर्थात् 'विश्व' = 'प्रत्येक या समस्त', 'कर्मा' = 'कार्यों में कुशल व्यक्ति कहकर देव-तुल्य सम्मान दिया जाता था। 'मुण्डकोपनिषद' में तो इन्हें 'ब्रह्मवेत्ताओं से भी श्रेष्ठ कहा गया है।

'ऋभु' शब्द का प्रयोग भी वेदों में प्राप्त होता है। जो हस्त कुशल शिल्पी का द्योतक है। ये कुशल व्यक्ति वेदिकाओं का भव्य निर्माण करते थे, यज्ञों में अनेक पक्षियों की शक्ल के कुण्ड बनाते थे। उनके पंख, पुच्छ एवं चोंच आदि रूप उसी रंग के बनाये जाते थे; जैसे उन पक्षियों के होते हैं। इसके अतिरिक्त ध्वजा, पताका, तोरण एवं बंदनवारों से यज्ञवेदी, मण्डप और यज्ञ प्रदेश को इतना दिव्य चित्ताकर्षक और मोहक बनाया जाता था कि चक्षुओं की पूर्ण तृप्ति हो जाती थी।

वेद ग्रन्थों में कला के विपुल साक्ष्य प्रमाणित हैं। ऋग्वेद में चमड़े पर अग्निदेव का चित्र तथा यज्ञवेदियों के द्वार पर स्वर्णांकित नारी आकृतियों का उल्लेख विश्रुत व्याप्त है। वैदिक ऋषियों द्वारा उषा और रात्रि के प्रतिमा स्वरूप प्रतीकात्मक अंकन यज्ञशालाओं

के द्वारों पर उकेरने का सन्दर्भ प्राप्त हैं। इनके अतिरिक्त बुनाई, कढ़ाई, रथ बनाने की कला, गृह निर्माण आदि अनेकानेक कलाओं में दक्ष होने के प्रमाण मौजूद है। वेदों में 'नगरी' का उल्लेख भी प्राप्त है। "अष्टाचक्रा' नवद्वारा देवानां पूरयोध्या" (अथर्ववेद-10. 2-31) अर्थात् 'देवों की नगरी अयोध्या ऐसा कहा गया है; यह नगरी प्रकाशमान मनोहर और अपराजित है।

कुछ लोग इस प्रकार के वर्णनों का अध्यात्मिक अर्थ लगाते हैं। हम मानते है कि ये आध्यात्मिक वर्णन ही हैं; तो भी दृष्टान्त तो भौतिक अस्तित्व वाली नगरी का ही है; और यही पुष्ट प्रमाण है वेदों में वर्णित उच्च शिल्प-कौशल एवं शिल्प-विज्ञान के।

वैदिक साहित्य में विमान विज्ञान

चंद्रवाडिया दर्शना डी. एम.ए.एम.एड.म्युनि. आर्टस एन्ड कॉमर्स कॉलेज-उपलेटा

आज के समय में विमान जीतना महत्वपूर्ण है। उतना ही महत्वपूर्ण विज्ञान वैदिक काल में था। वेद में हमें भौतिक, आयुर्वेद रसायन, विमान विज्ञान आदि विज्ञान की बातें मिलती हैं।

विमान शब्द की व्युत्पत्ति- वि+मन्+धन, वि+मा+ल्युट् वा

अनुवादः व्योमयान (आकाश में भ्रमण करना) गुब्बारा उड़नखटोला आदि अर्थ महाकवि कहते हैं। किसी ने ऐसा भी कहा है। पक्षी के वेग के समान जिसकी गति हो उसे विमान कहते हैं।

वैदिक समय के विमानः-

वैदिक समय के विमान की हम बात करे तो ऋग्वेद, यजुर्वेद आदि में आकाशी रथ, अंतरिक्षनौका, अंतरिक्षयात्रा की बात आती है। वैदिककाल में विमान आकाश में विचरण करते थे।

त्रयः पवयो मधुवाहने रथे सोमस्य वेनामनुं.......विश्वईद्वियुः।

त्रयः स्कम्भासः स्कामितास आरंभे त्रिर्न यथास्त्रिवं शिवना दिवाः॥ (ऋग्वेद १/३/४/२)

ऋग्वेद के इस मंत्र पवन के समान वाले रथ की बात की है।

अग्निदेव की ऊर्जा चक्र में वैज्ञानिकता एवं प्रासंगिकता (ऋग्वेद के संदर्भ में)

डॉ० नन्दन भार्गव प्रवक्ता, रसायन शास्त्र, राजकीय महाविद्यालय, कोटा

ऋग्वेद के 250 से अधिक सूक्तों में अग्निदेव की स्तुति की गई है। प्रस्तुत शोधपत्र में अग्निदेव की ऊर्जा चक्र में वैज्ञानिका एवं प्रासंगिकता का अध्ययन किया गया है।

वृक्षोवपुः पितुमान्नित्य आ शये द्वितीयः मा सप्त शिवासु मातृषु।

तृतीयमस्य वृषभस्य दोहसे दशप्रतिमं जनयन्त योषयः। ऋग्. १/१४१/३

उपर्युक्त मन्त्र में अग्निदेव के तीन रूप वर्णित् हैं -

1. भौतिक अग्नि के रूप में वे अन्न को पकाने वाले और शरीर को पोषित करने वाले हैं।
2. सप्त लोकों के हितकारक मेघों में विद्युत् रुप में हैं।
3. बलशाली अग्निदेव रसों का दोहन करने वाले सूर्य के रूप में विद्यमान हैं।

समुद्र त्वानुमण अप्स्वन्तर्नुचक्षा ईधे दिवो अग्न ऊधन्।

तृतीय त्वा रजसि तस्थिवांसमपामुपस्थे महिषा अवर्धन्॥ ऋग्वेद १०/४५/३

वरुण देव न अग्नि को समुद्र जल के भीतर प्रज्वलित किया है जो कि वर्तमान में जल ऊर्जा' Hydrolic energy को इंगित करता है।

सूर्यदेव अग्नि को यज्ञ में प्रज्वलित करते हैं एवं अग्निदेव अपने तृतीयस्थान मेघमण्डल में वृष्टि उत्पादक विद्युत् अग्नि के रूप में स्थित हैं।

अबुध्ने राजा वरूणो वनस्योर्ध्वं स्तूपं ददते पूतदक्षः।

नीचीनाः स्थूरुपरि बुध्न एषाममे अन्तर्निहिता केतवः स्य॥ ऋ. १/२४/७

ऋग्वेद में सूर्य को अद्भुत ऊर्जा का महान् स्त्रोत माना गया है। एवं उसकी किरणों को प्रकाश शक्ति प्रदायिनी कहा है। अर्थात् अद्भुत शक्ति (Solar Energy) की ओर इंगित करता हैं जिस आज वैज्ञानिक स्वीकार कर प्रफुलित हैं। ऋग्वेद की विभिन्न ऋचाओं के जलविद्युत्, परमाणुविद्युत, नाभिकीय विखण्डन पद्धति से विद्युत उत्पादन में ऋग्वैदिक ऊर्जा (अग्निदेव) भूगर्भीय ताप विद्युत, वैज्ञानिक, अभियांत्रिकी, यज्ञ, हवि एवं प्रकाश ऊर्जा (अग्निदेव) द्वारा निर्मित चक्र की वैज्ञानिकता वं प्रासंगिकता को प्रस्तुत शोधपत्र में सिद्ध किय गया है।

वेदों में कीट विज्ञान

पी०सी०जोशी एवं नवीन चन्द जोशी जन्तु एवं पर्यावरण विज्ञान विभाग, गु.कां. वि. वि., हरिद्वार

कीट पृथ्वी पर सर्वत्र पाये जाते हैं, पृथ्वी की सतह पर एक वर्ग सेमी जगह भी ऐसी नहीं है जहाँ कीट न मिलें, वैज्ञानिकों द्वारा लगभग 15 लाख से भी अधिक कीटों को नाम दिया जा चुका हैं। कीट अपनी छह टांगों के कारण बिच्छुओं, मकड़ियों, सेंटीपीडो (शतपादों) और मिलीपीड़ों से एकदम अलग हैं, इस लक्षण के कारण संस्कृत में इन्हें घट्पदा (छहटांगों वाला) कहा गया है। अथर्ववेद में अनेक कीटों का उल्लेख मिलता है जिनमें प्रमुख कीट निम्न हैं।

1. पिपीलिका - मक्खी अथर्ववेद में यह चींटी के लिए प्रयुक्त शब्द है छान्दोग्योपनिषद् में पिपीलिका रूप मिलता है। बाद में पिपीलिका शब्द चींटी के लिए भी प्रयोग किया गया है।
2. भृङ् भड़ा- यह भोंरी के लिए प्रयुक्त शब्द है। काम की व्याप्ति के सन्दर्भ में भोंरों का उल्लेख आता है।
3. मक्षिका- मक्खी के लिए प्रयुक्त शब्द है। मख्खियों द्वारा शवाभक्षण किया जाता है ऋग्वेद में मक्खियों द्वारा घोड़े को खाने का वर्णन मिलता है।
4. मकक (मशक) मात्र अथर्ववेद में यह शब्द मिलता है।
5. शलभ (ट्रिडडी)' अथर्ववेद में इसे पतंग भी कहा गया है, यह एक कृषि विनाशक कीट है, यह जौं आदि धान्यों को खा जाता है।
6. उपजीक - उपजीक का अर्थ दीमक या वयी भी है। कुछ औषधियाँ समुद्र के अन्दर से निकाली जाती है। जिन्हें उपजीक (जलजीवी या गोताखोर) समुद्र से निकालते हैं।
7. अथर्ववेद में मधुमक्खियों द्वारा मधु को संग्रहित करने का वर्णन भी मिलता है।
8. अथर्ववेद में कुछ कीट जो कृषि विनाशक होते हैं उनका वर्णन भी मिलता है, जैसे (1) जम्म (घुन) (2) उपक्वस (अन्न खाने वाले) (3) व्यदवर (अन्न चट करने वाले) (4) तर्दापति वहापति (6) तृष्ट जम्भं (तेज दातों वाले) आदि।

नासदीय सूक्त का दार्शनिक एवं वैज्ञानिक विश्लेषण

डॉ० असीम श्रीवास्तव पुलिस अधीक्षक नगर, हरिद्वार

वेद भारतीय चिन्तनप्रक्रिया की आदिम कड़ियाँ हैं। बाह्य प्रकृति के प्रत्येक दृश्यमान् पदार्थ की सूक्ष्म विवेचना वेद में उपलब्ध है। सूर्य, चन्द्र जैसी प्राकृतिक शक्तियां हो या अग्नि, जल, वायु आदि पदार्थ या फिर जीवन और जगत् जैसे तत्त्व-सभी का वेद में कारीकी से वर्णन किया गया है। यदि दर्शनशास्त्र की शब्दावली में कहें तो वैदिक ऋषियों ने तत्त्वमीमांसा के क्षेत्र में अमूल्य योगदान

दिया है और कहीं-कहीं उन्होंने तत्त्वमीमांसा के क्रम में ऐसे विचार प्रस्तुत किये हैं जिनपर आधारित होकर आगे चलकर ज्ञानमीमांसा का भव्य महल खड़ा हो सका और जिनकी चरम परिणति उपनिषदों तथा ब्रह्मसूत्रों में दृष्टिगोचर होती है। इन्हीं विचारों में सबसे प्रमुख विचार है जगत्-सृष्टि की समस्या।

यह भौतिक संसार कब, कैसे और कहाँ से आया? इसके अस्तित्व में आने से पूर्व क्या था? क्या यह स्वयं उत्पन्न हुआ अथवा किसी ने इसका निर्माण किया? इसका अधिष्ठाता कौन है?- इन सभी सृष्टिविषयक प्रश्नों पर मनन करते-करते ही ऋषि परमेष्ठी के मन में जो विचार कौंधे वही नासदीय सूक्त के रूप में ऋग्वेद के दशम मण्डल में पठित हैं।

नासदीय सूक्त के सात मन्त्रों में सृष्टि के पहले की स्थिति से लेकर सृष्टि की शुरु होने तक की मीमांसा है। प्रथम मन्त्र सृष्टि के पूर्व की स्थिति को बताते हुए प्रश्न उठाता है, जो आगे के मन्त्रों में क्रमशः गम्भीर होता जाता है। जौ भौतिक जगत् हमारे समक्ष विद्यमान है, उसकी सृष्टि के पूर्व न तो सत् था और न ही असत्, न ही काल व आकाश। तो आखिर किस पदार्थ ने इस ब्रह्माण्ड को आच्छादित किया हुआ था, क्या वह (घनीभूत) जल था? इस अथाह जल में तप की महिमा से एक (अद्वितीय तत्त्व) उत्पन्न हुआ। हमारा भौतिक मन इस जगत्-सृष्टि-समस्या के प्रश्न का समाधान बाह्य प्रकृति में ढूँढने का प्रयास करता हुआ असफल रह जाता है। दिक्, काल, सत्, असत् जैसे विषय को छूते समय मन्त्रद्रष्टा ऋषि यद्यपि स्वसम्मत सृष्टि -रहस्य को प्रकट करता है, लेकिन फिर वह एक आशंका प्रकट कर देता है जो पुनः हमें समाधान के प्रति सशंकित कर देता है। वह कहता है कि कौन-सही-सही जानता है कि यह सृष्टि कहाँ से उत्पन्न हुई है और किसके आश्रित है? जो इस जगत् का परमाध्यक्ष परमेश्वर है पता नहीं वह भी इसके जन्म-स्थिति-लय को भली-भाँति जानता है अथवा नहीं?

लेकिन जगदुत्पत्तिविषयक यह प्रश्न और प्रयास महज कौतूहल और कोरी अटकलबाज़ी नहीं है। यह एक दार्शनिक मन की यथार्थ जिज्ञासा है, जो सृष्टि के रहस्यों को बाह्य प्रकृति के निरीक्षण से ढूँढने के स्थान पर शान्तचित्त होकर अन्तर्मन के गम्भीर मन्थन से उद्घाटित करने को उत्सुक है। इन मन्त्रों में दार्शनिक तथा वैज्ञानिक महत्त्व के विभिन्न सिद्धान्त तथा तथ्य किस प्रकार समाविष्ट हैं और विभिन्न दार्शनिक मतवाद जगदुत्पत्ति की अपनी व्याख्या एवं ब्रह्माण्ड उत्पत्ति की आधुनिक वैज्ञानिक मान्यताओं के लिए किस प्रकार इस सूक्त के ऋणी है, इसका विस्तृत विवेचन प्रस्तुत शोधपत्र में किया जाएगा।

वेदों में बिग बैंग (महाविस्फोट) रहस्य

Dr. Hemadri Sao Associaate Professor, School of Yoga and Health, Dev Sanskriti Vishwavidyalaya, Haridwar.

सृष्टि सृजन के आयोजन-प्रयोजन एवं विज्ञान को जानने की उत्कण्ठा ने चिर-प्राचीन काल से मानव चिन्तन को आन्दोलित-आलोड़ित किया है। इस रहस्य को जानने की जिज्ञासा ने मानव सभ्यता को बचपन से ही बौद्धिक विकास के साथ-साथ प्रायः समस्त दार्शनिक चिन्तन एवं अनगिन वैज्ञानिक प्रयोगों को दिशा-निर्देशन किया है। ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति कैसे हुई? इसमें जीवन कहाँ से आया, इसके रचयिता कौन हैं? ऐसे ही अनेकों और भी गूढ़ प्रश्न हैं, जिनके समाधान वैदिक ऋषियों ने अपनी साधना-समाधि में खोजे। वे आधुनिक बुद्धि को भले ही तथ्य आश्चर्यजनक लगे पर यह सत्य है कि अति प्राचीन काल में भारत के वैदिक महर्षि अपनी आध्यात्मिक क्षमताओं को विकसित करके ऐसे निष्कर्षों पर पहुंचे जो वर्तमान समय में विज्ञानवेत्ताओं द्वारा प्रस्तावित सृष्टि विज्ञान के विभिन्न मॉडलों के काफी अनुरुप है। वैदिक वाङ्मय में विशेष रुप से ऋग्वेद में ऐसे अनेकों प्रसंग छितरे पड़े हैं, जिनमें सृष्टि सृजन की वैज्ञानिक व्याख्या की गयी है। विज्ञान का बिग बैंग सिद्धान्त वेदों में वर्णित हिरण्यगर्भ एवं महदग्नि पिण्ड का ही पर्याय है। ऋग्वेद में इस शब्द को मार्तण्डम भी कहा है। मार्तण्डम का अर्थ है विस्फोट पिण्ड। महाविस्फोट के कारणों का ज्ञान विज्ञान नहीं मिलता है लेकिन ऋग्वेद में इन कारणों का स्पष्ट रुप से वर्णन किया गया है।

ऋग्वेद में बिग बैंग की घटना का सजीव चित्रण है। इस महान ऊर्जा यज्ञ में महान अग्नि ताण्डव हुआ था। इस अग्नि ताण्डव रुपी यज्ञ का द्रष्टा भाव ईश्वर था। आधुनिक ब्रह्माण्ड विज्ञान (कॉस्मोलॉजी) के तत्व ऋग्वेद में प्रतीकों के रुप में पाये जाते हैं। प्रस्तुत शोध अध्ययन का मुख्य उद्देश्य वेदों में पाए जाने वाले बिग बैंग रहस्य का वैज्ञानिक प्रतिपादन प्रस्तुत करना है।

मनोविज्ञान के परिदृश्य में वैदिक चिन्तन-एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

मदन पाल शोधार्थी हे.ब.गढ़. वि.वि.
राजू अधिकारी प्रवक्ता योग, देव संस्कृति वि. वि.
डॉ० मंजू पाण्डेय रीडर मनोविज्ञान. हे. नं. बहु. गढ़वाल वि. वि

'परिष्कृत आध्यात्म आज के युग की आवश्यकता है, सभी चिन्तक, विचारक, वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक इसकी आवश्यकता महसूस करने लगे हैं। यदि मानव परमात्मा का अविनाशी अंश है, तो आध्यात्म जीवन दृष्टि और जीवन शैली का समन्वय है (अखण्ड ज्योति)। अन्तस् चेतना को परिष्कृत और संवर्द्धित बनाने के लिए मंत्र विज्ञान को अपनाना मनोविज्ञान का मशवरा है। मनोविज्ञान व्यवहार की कुशलता और वेद वर्णित मंत्र अन्तस् को दृढ़ बना, एक सम्पूर्ण व्यक्तित्व गढ़ने में समर्थ है।

वेदों में समग्र जीवन दर्शन का बोध है। **सर्वज्ञानमयो हि सः (मनु० 27)** अर्थात् वेदों में सभी विद्याओं के सूत्र विद्यमान हैं। भारतीय संदर्भ में मनोविज्ञान वेद का एक व्यवहारिक पक्ष माना जा सकता है, क्योंकि प्रारम्भ में मनोविज्ञान को मन का विज्ञान फिर आत्मा का विज्ञान कहा गया और मन व आत्मा वेद के विषय है। आत्मन् का मनोविज्ञान हो या स्वः का मनोविज्ञान, ये व्यक्ति की नहीं बल्कि उसमें विद्यमान आत्मा (चेतना) का विश्लेषण करते हैं। सामवेद में कहा गया है-**"मनश्चिन्मन संस्पति"** अर्थात् मन की शक्तियों को जानकर उस पर शासन करें। वेदों में कहा गया है-**"अहमात्मा निराकारः सर्वव्यापी स्वभावतः"** अर्थात् मैं स्वभावतः निराकार तथा सर्वव्यापी आत्मा हूँ, इन्द्रियों तथा मन से परे मैं ज्योतिर्मय प्रज्ञा चेतना का सारतत्त्व हूँ। मनोविज्ञान भी चेतना और आत्मा की व्याख्या कर मन व आत्मा के द्वारा स्वः नियन्त्रण पर बल देता है। आधुनिक मनोविज्ञान मन, स्वः, आत्मा और चेतना जैसे तत्त्वों को साधकर उन्हें नियन्त्रित कर, शरीर को पुष्टता प्रदान कर, निर्विकार रूप से दीर्घायु जीने की बात करता है। जबकि वेद भी इसी के अनुसरण की प्रेरणा देते हैं। वेद में कहा गया है-हम सौ वर्ष तक देखें, सौ वर्ष तक सुनें, सौ वर्ष तक हमारी वाक शक्ति बनी रहे और सौ वर्ष तक जीयें, सौ वर्ष तक स्वावलम्बी बने रहें अर्थात् किसी के आश्रित न रहकर जीवित रहे, स्वस्थ स्थिति में रहें **(यजुर्वे-36/24)।**

आज का मनोविज्ञान वैदिक धारणाओं से परिपूर्ण है। जिसमें आध्यात्मिक, भावनात्मक, संवेदनात्मक, संवेगनात्मक और संज्ञानात्मक तत्त्वों का समावेश है।

भारत में वेदों के द्वारा जल के संरक्षण एवं संवर्धन का महत्व

उमेश भारती एवं पवन कुमार, जन्तु एवं पर्यावरण विज्ञान, विभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

जल एक बहुत महत्वपूर्ण पदार्थ है जिसे आज का मानव, जीवन के उपयोगी पदार्थों की तुलना में सबसे अधिक नष्ट करता जा रहा है वेदों में जल के सन्दर्भ में इस प्रकार बताया गया है कि **आदित्य पश्याम्युत वा शृषोभ्यामा घोषो गच्छति वाऽमारनायम्। मन्ये भेजानो अमृतस्य तर्हि हिरण्यवर्णा अतुपं यादवः।। (अर्थवेद 3:13:6)** अर्थवेद के अनुसार जल जीवन का एक आधारभूत तत्व है, आज जल जीवन की जैविक धरोहरों में से एक है। वेदों के अनुसार, पृथ्वी पर धरती, जीव-जन्तु एवं वृक्ष आदि की उत्पति भी जल से ही हुई है। जल की अनुपस्थिति में बोलना और सुनना सब ही व्यर्थ है। इस धरती पर बहुत-सा जल बड़े-बड़े हिम खण्डों में बंटा हुआ है जिसे अपनी आवश्यकता में लेना बहुत ही कठिन है। प्राकृतिक जल, जो कि वर्षा जल के रुप में तालाबों, पोखरों आदि में एकत्रित होता है जलीय जीव एवं पृथ्वी पर रहने वाले जन्तुओं का एकमात्र सहारा है। इसलिए हमें वेदों में लिखे मन्त्रों के निर्देशों के द्वारा 'वर्षा जल के संरक्षण के महत्व पर ध्यान देना चाहिए, ऋग्वेद, यजुर्वेद एवं अथर्ववेद में भी जल के विभिन्न रुपों का व्याख्यान, प्रयोग की अलग-अलग विधियाँ एवं जल के विभिन्न प्रकार के प्रपातों के संरक्षण एवं संवर्धन की महत्ता का वर्णन देखने को मिलता है। अतः जल संरक्षण का उद्देश्य न केवल जीव-जंतुओं से जुड़ा है अपितु सभी मानव जाति से जुड़ा है, इसलिए जल की उपयोगिता और संरक्षण उतना ही आवश्यक है जितना कि एक नवजात शिशु का उसके जन्म के बाद किया जाता है।

प्राचीन ग्रन्थों में जल की उपयोगिता एवं संरक्षण पर विवेचनात्मक तथ्य

उमेश भारती जन्तु एवं पर्यावरण विज्ञान विभाग, गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

जल जीवन का एक आधारभूत तत्व है। आज जल जीवन की जैविक धरोहरों में से एक है। 'ज' से 'जन्म 'ल' से 'लय' (मृत्यु), जन्म से लेकर लय अर्थात् मृत्यु तक व्यक्ति का जीवन जल ही है अतः सृष्टि का प्रत्येक तथ्य जल पर निर्भर करता है। जल ही जीवन है इसलिए, प्रत्येक धार्मिक ग्रन्थ में वेदों की तरह जल की उपयोगिता समझाई गई है। कुरान में बताया गया है कि 'पानी इंसान, जिन्दगी एवं फसल के लिए है उसकी हिफाजत करें और बांट कर काम में लें। बाईबल में बताया गया है कि ईश्वर की आत्मा तो पानी में विराजती है। गुरुग्रन्थ साहिब में कहा गया है कि रोको भाई रोको, पानी की बरबादी रोको। इन ग्रन्थों में जल का यह वर्णन स्पष्ट करता है कि जल पर सबका समान अधिकार है। प्राचीन काल में ऋषि मुनियों ने जल स्रोतों के उद्गम् स्थलों को ही तपस्या (ज्ञान का आत्मसाक्षात्) के लिए सर्वउपयुक्त स्थल माना एवं जल की उपयोगिता, स्वच्छता एवं संरक्षण के ज्ञान को अपने ग्रन्थों में उचित स्थान प्रदान किया। उनकी दूरदर्शी दृष्टि को मानव की दुर्बलताओं का ज्ञान था इसलिए ऋग्वेद, यजुर्वेद एवं अर्थवेद में भी जल के विभिन्न रुपों का वर्णन, प्रयोग की अलग-अलग व्याख्याएं एवं विभिन्न प्रकार से जल के संरक्षण एवं संवर्धन का उल्लेख प्राचीन ग्रन्थों से मिलता है।

वैदिक वाङ्मय में भौतिक विज्ञान
(जड़ एवं चेतन का विज्ञान)

डॉ० अनीता सेन गुप्ता एसोसिएट प्रोफेसर संस्कृत, ईश्वर शरण डिग्री कालेज, संघटक महाविद्यालय, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

यह भारत उन महान वेदों की भूमि है, जिनमें न केवल पूर्ण जीवन के उपयोगी सिद्धान्त बताए गए अपितु उन तथ्यों का भी प्रतिपादन किया गया, जिन्हें विज्ञान ने सत्य प्रतिपादित किया।

आर्ष विज्ञान तथा आधुनिक विज्ञान दोनों में ही जड़-चेतन का विज्ञान प्राप्त होता है। वेदों में एकमात्र आत्मतत्त्व को ही चेतन कहा गया जबकि शेष सभी सांसारिक पदार्थ जड़ है। जड़ों में भी ज्ञान का कभी अभाव नहीं होता। जड़ पदार्थ भी गतिशील है। इस लेख के द्वारा जड़-चेतन के प्राच्य विज्ञान को उद्घाटित करने का प्रयास किया गया है।

अथर्ववेद में प्राप्त वनस्पतियाँ तथा अनेक उपयोग

डॉ. सत्यदेव निगमालङ्कार, रीडर, श्रद्धानन्द वैदिक शोध संस्थान, गु.कां.वि.वि., हरिद्वार

अथर्ववेद में वनस्पतियों का विशाल भण्डार है। इस वेद को अथर्ववेद का आकर ग्रन्थ माना गया है। यतोहि इसमें अनेकों सूक्त तथा अनेकों मन्त्र वनस्पतियों के माध्यम से आयुर्वेद का ज्ञान कराते हुए स्वास्थ्य को प्रदान करने के नियम बताते हैं तथा वनस्पतियों के आन्तरिक गुण धर्मों की चर्चा करते हैं। ये वनस्पतियाँ चिकित्सा का प्रमुख साधन बनकर प्राणिमात्र हेतु जीवन रक्षक सिद्ध हुई हैं। इनके फल-फूल, पत्र, शाखा, छाल आदि से अनेकों प्रकार के रसायन निष्पन्न कर इनको औषधीय रूप प्रदान किया जाता है। आचार्य यास्क की औषधि पद की निरुक्ति का सार यही है कि **जो शरीर में शक्ति उत्पन्न कर उसे धारण करती है या जो दोषों को दूर करती है वह औषधि है।**

अथर्ववेद में वनस्पतियों की विशाल चर्चा है, इस वेद में बहुड़ा, दूब, मेषशृंगी, अत्सी, पीपली, अदृष्टदहनी, अपराजिता, कृमुक, अपामार्ग, सूर्यबेलापुष्प, अभ्रिखाता, अमरबेल, अश्वत्थ, अशोक, ईख, उदुम्बर, उर्वारुक, करीर, किंशुक, कुश, खदीर, खर्जूर, गोधूम, चणक, जम्बीर, दर्भ, पाठा, बदर, माष, यव, वंश आदि अनेक वनस्पतियों के नाम आये हैं, जिनमें औषधियों के गुणों के अतिरिक्त लाभ भी विद्यमान हैं। प्रस्तुत शोधपत्र में अथर्ववेद में प्राप्त अनेक वनस्पतियों के गुण औषधियों के ग्रन्थ के आधार से तथा उपयोग व्यवहार धर्म से वर्णित किये गये हैं।

THE CONCEPT OF WATER IN RIGVEDA

Dr. Chandni Saxena, Senior Lecturee Deptt. of History Juhari Devi Girls P.G. College, C.S.J.M. University, Kanpur

Water is an omnipresent element in all the ancient civilization of world. It is the upholder of all lives and is the saviour of everything living or dead on earth. Rig Veda therefore assigns an extremely elevated to place to it in its hymns. The Nasadiya Sukta consists of hymns related to the creation of the universe. In the begning there was no thing but theundsfferen tiated water in the universe. It was from here that the life on earth could begin. These waters are both terrestrial and celestial. The Rig Veda clearly assign an extremely evnerated place to the element of water and has several gods attributed to it. Apas, who is addressed in four Suktas, is the God of water. It cures the sickness and is the giver of health, wealth power , longevity and immortality.

Varuna, who is one of the most important Gods of Rig Veda and is the ruler of the world is said to be the regulator of the waters of the earth. Indra, who is the supreme god of Rig Veda and to whom 1028 hymns are devoted, is also related water. He along with gods Parjanya and Trit, is the god of rains. He liberated the waters from Vritra and set them free for the movement. The concept of water is definitely an extremely important one in Rig Veda and possesses a very high pedestal in it.

FIRE THE SUPREME SOURCE OF ENERGY IN THE VEDAS

Rekha R. Sharma, Reader, Deptt. Of Sanskrit, R.B.S. College, Agra (U.P.) India
Smriti Sharma Lecturer R.B.S. College Agara (U.P.) India

India is the oldest land known for rsi (sages) and krsi (agriculture). Rsis were the intellectuals of the society. They had strong will and perfect knowledge of the earth, sky, space, cosmos, ether and the vast beyond. They were genius, intuitive, hard-workers and ready to sacrifice everything to get energy, force power and strength for the well-being and prosperity of the mankind, rsi sa yo manur hitah Fire is the main source of energy. Fire is a kind of energy (Urjam patih). This ancient and supreme fire energy is available not only in the society of elite ones, but also in the masses, for consumption. Only because of this energy we can amass treasures. So, it can be said that fire is one and the sole ruler of this prosperous world of energy.

So this attempts is made to find out the sources of energy specially in the reference of fire as depicted by these sages in the Vedic stanzas.

ENLARGEMENT OF ANCIENT VEDIS (USING QUADCATIC EQUATIONS)

Padmavati Taneja Ph.D. Scholar, Gurukul Kangri University, Jwalapur, Haridwar
Dr. Nidhi Handa K.G.M., Gurukul Kangri University, Haridwar

In early vedic times for the performance of sacrifices certain vedis and agnis had to be constructed. Some of the main vedis include the Mahavedi, the Darsapurnamasa vedi, the Paitrki vedi, the sautramani vedi, the Uttara vedi and the Asvamedha vedi etc. The fire-alters were of two types, the nitya (or perpetual) and the kamya (or optional). The Kamya agnis intended for wish fulfillment included the syenacit, the alajacit, the dronacit, the Praugacit and so on. For making altars several methods of constructing a square on a given line have been given and for construction of rectilinear figures such as rectangle, isosceles trapezium (shape of Mahavedi) the squared relationship between the diagonal and two sides has been given at various places in the Subasutras.

MICROBIOLOGY IN RIGVEDA

Garima Arya Research Scholar, Deptt. of Botany & Microbiology, G.K.V., Haridwar

The subect of science has been dealt in a great aspect in Vedic literature. All Complete knowledge establish in vedas, and also says that "वेदे सर्व प्रतिष्ठितम्" that means every type of knowledge present in Vedas. Vedas have a great importancy in all area Viz-Microbiology, Chemistry, Physics, Mathematics Cosmology, Zoology, Botany, Technology etc. But, There fore Microbiology have their own importancy in Vedas.

In Righveda Microbs also known 'अदृष्टाः' and human body affected by them. (Righ-1.191.1)

These microbs are 07 various type live toxic, nontoxic, parasitic, saphrophytic, etc. Toxic or pathogenic microbs produced disease (Righ- 1.191.1) and activate favourable condition i.e. time of night and see the all world (Righ. 1.191.5) According to Righveda (10.163.6) pathogenic organism which infected the human body (Rig. 8.39.2). Therefore, vrious vedic technology used in India to destroy or killed the pathogenic microorganisms. In which one is the 'Agnihotra' ie. the smallest form of Vedichom. During Agnihotra total number of microorganisms dicreased (Navneet. etal 1998). According to Righveda (1.189.3) अग्ने त्वमस्मद् युयोध्यामीवा अग्निमित्रा अलभ्यमन्त कृष्टीः Arose sun killed the all pathogenic microorganism, so sun is also known "अपामीवाम्" Thus, the Righveda is also known the source of microbiology.

EFFECT OF VEDIC MATHEMATICS ON MODERN MATHEMATICS

Neelam Tyagi and Dr. A. B. Chandramouli, Meerut College, Meerut

Vedic Mathematics is the name given to the ancient system of Mathematics which was rediscovered from the Vedas between 1911 and 1918 by Sri Bharati Krsna Tirthaji (1884-1960). This paper present the effect of Vedic Mathematics on Modem Mathematics. It covers the effect of Vedic Mathematics on several Modem Mathematical terms including arithmetic, geometry (plane, co-ordinate), trigonometry, quadratic equations, factorization and even calculus. °In this paper we will show that all areas of Modem Mathematics,be it pure or applied, come under the effect of Vedic Mathematics. In this paper we will also describe the difference between Modem Mathematics and Vedic Mathematics. Vedic Mathematics is more effective than modem mathematics.

ELEMENTS OF PHYSICS IN THE RGVEDA

Dr. Sachidananda Mohapatra, Reader in Sanskrit, Govt. College Sundargarh (Orissa)

The Veda, being the vital force of the Aryans has been established as a light post and constant source of energy of the entire human race. From the saying of Manu, 'sarvajnanamayo hi sah' it is known that the Veda is the store-house of all knowledge like Religion, Ethics, Economics, Pol. Sc., Physics, Chemistry, Botany, Zoology, Astrology and Environmental Science etc.

So far as the scope of Physics is concerned, it covers subjects like Force, Motion, Energy, Power, Heat, Sound, Light, Magnetism, Electricity and Nuclear Energy etc. The roots of all these subjects can be traced to the Rgvedic and other, vedic verses which are developed later as Modern Physics. Here, in this paper an attempt is made to focus some light on this matter.

EVIDENCE OF GEOGRAPHICAL KNOWLEDGE IN VEDIC LITERATURE

Dr. Manashi Sharma Dept. of Sanskrit, M.D.K. Girls College Dibrugarh, Assam

From the study of the vedic leterature, we can come to know about the geographical situation reflected therein. The earliest references of geographical data are found in the Rgveda. References to mountains, rivers,

tribes, trees, animals and other geographical landmarks indicate that geographical knowledge was not lacking in Vedic period. The scholars even prepared the map of Vedic India with the help of the information available in those literature. With the help of various geographical references available in the Vedas it is known the Aryan civilization flourished in modern Afganisthan and Punjab and was shifting to North-west to eastern region in the later vedic period. The term Dvipa occurs in the Rgveda and other Vedic texts. The term probably indicated sandbanks and not any major land, island or continent as it does in the epics and purnas. No major geographical divisions of the earth are mentioned in Vedic literature. The term sapta sindhavah is mentioned several times. Many scholors think that Rgvedic Indians conceived a definite territory comprising the valley of some rivers.

The evidences available in the Vedas and other vedic literature are not of much help to know about the successive stages through which the states assumed territorial shape. Various tribes mentioned in the Rk-samhita underwent changes in the later Vedic period. Some old tribes became insignificant, some lost their identity while new tribes came into prominence. The five principle tribes of Samhita period namely Anus, Dryuhus, Purus, Turvasus, Yadus were wholly disappeared.

POSITIVE PARENTING AND KNOWLEDGE

Prof. (Dr.) Nivedita Jena, Professor of Psychology G.M. College, Sambalpur

The child is the hope of the parents Sarojini Naidu has a poem that reflects the parents "Sleep, O my little ones, sleep, yours is the golden tomorrow, yours are the hands that will reap." Mentally healthy parents bring up mentally healthy children. So, parents, first of all need to attend to their own mental health.

The Vedantic Psychologists including the Budha recognised three process as the sourcces of valid knowledge or vidya (a) pratyaksha or direct experience/perception of objective knowledge (b) Anumana or assumption, and (c) Agama/sabda or docs mented and or prescribed suggested by scriptures or the Guru Wisdome is the soul/spirit. So education of the vijnanamaya kosha, must involve training of the faculties of not only observation, attention, memory, mathematical judgement, logical thinking. and conferential reasoning, But also intuvtive/synthetic thinking. This synthetic thinking wll help in reaning child as a whole.

"Institution Yajna - An Ancient Science" ''यज्ञसंस्था - विज्ञानं हि पुरातनम्''

The Tradition Says: ''यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्मे'' ति The best act of human-being is yajna. The Geeta talkes of physical and mental yajnas at the length, but the Vedic karmakanda is mostaly a physical act which neds Vedi, Arani, Ajya and Vedic mentras too related to some deity. There we find a mantra in Punush sukta which reads as :

''यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्'' The Mantra paves a refined way of yajna i.e. a science of high level which can be understood by a person who attain a vison to understood, explain and perform the act to satisfy the supreme power and the deities related to it. It makes a researcher to be ready to go a longer scientific way for attainment of self and the maintenance of social peace. It will be an interesting research journey.

VARUNA IN RG VEDA: A SCIENTIFIC ANALYSIS

Dr. (Mrs.) A.R. Tripathi, Lucknow

In Rg Veda Varuna enjoys the inimitable position among deities. He has been eulogized indepndently in ten Hymns. Varuna is also invoked in twenty three Hymns jointly with Mitra, Indra, and Aditya. One may also find a good number of isolated references to Varuna scatterd throughout R.V. Varuna has been categorized as the god of heaven. Mostly he been presented as the upholder of Rta, Vrata and Dharma. The references reveal is a universal monarch, the controller of the cosmic law and caretaker of eash and every being. He supports the universe through his rays that are pointed downward. He regulates solar systems by guiding the movemrnt of all planets. In

planets, in many hymns he is described as the creator of Maya,god of water, ocean, night, plants and medicine. Varuna is also responsible for maintaining law and order among human beingts.

An analytical study of all these references that Varuna as a vedic god, has been recognized in two ways. Varuna as a god of cosmic order and a god of rthical order.

The symbolic and metaphoric way of outlining the different potentialities of Varuna as a cosmic god is an intuitive but direct experience of the seer poets. The literal interpretation of these hymns is incomplete as it involves much of intrinsic knowledge transcending the level of ordinary comprehension. The scientific visions of vedic seers are usually clothed in poetic images and symbols.

ISSUE & CHALLENGES IN COMPUTATIONAL DOCUMENTATION OF VEDIC LITERATURE

Umesh Kumar Singh, Girish Nath Jha, Jawaharlal Nehru University, 110067

This paper presents the issues and challenges in documenting heritage texts. Computer documentation of Sanskrit texts in general and Vedic texts in particular is being done by various language technology groups world over. Significant among these groups are - Maharishi University of Management, TITUS -(Thesaurus Indogermanischer Text- and Sprachmaterialien) Project, GRETIL(Gottingen Register of Electronic Texts in Indian Languages) project and Kyoto Archive. However, the task is not easy owing to several issues related to encoding and representation standards, accuracy pre-edited and post-edited texts, authenticity thereof, multi-scripting and availability of suitable technology following global standards. Online data provided by Maharshi's site does not support proper search. The textual resources provided by TITUS and GRETIL do not support random search and there is 1'10 Devanagari input mechanism in it. The OCR (Optical Character Recognition) tool developed by OlliiNer Hellwig (Berlin University) supports only certain kinds of texts and gives output in IAST. There are issues in recognition of the accent marks on vowels in this OCR tool. There are some tools developed for *laukika* Sanskrit at JNU at http://sanskrit.inu.ac.in and by several other groups at INRIA, France 1 and University of Hyderabad. However, they do not support the Vedic language. The paper will therefore discuss these issues with respect to the following- Survey of available online content and their limitations Survey of available tools and their limitations Importance and limits of unicode e-text Making of dynamic corpus Text encoding and representation as per global standards Development of search engines and other language processing tools.

VEDAS ON THE TOUCHSTONE OF MODERN SCIENCE

Dr. K.K. Sharma Principal, Maharaj Singh College, Sharanpur -247001

Vedas lay a basic foundation of man's quest to know pure and applied science. Of course, the scientific knowledge attained by the Rishies of Vedas was more or less abstract based on their self realization (Atma Anubhuti) in contrast to scientific pursuits of modem world based on the experiments only. Further, the basic building blocks of modem science are different than the concepts followed by Rishies in Vedas. However, there is no hesitation to acknowledge that the conclusions of Vedic scientific knowledge are same as established by modern science based on atomic, nuclear, solid state physics and quantum mechanism etc. in physical sciences and that based on cells, DNA, RNA and neurons etc. in life science.

The beauty of Vedic scientific knowledge is that it enunciates the intricated natural processes by assigning simple but small anecdotes assuming the 'potential energy sources' in nature as 'Devatas' with their peculiar powers and characteristics. The science of 'within' based on mind (Mana), intelligence (Buddhi) and soul (Atma) is much more advanced in Vedas which virtually has been untouched by modem science so far. In the present work a few phenomena based on evolution of universe, astronomy, aerodynamics, conservation of energy,

meteorology, thermal physics, botany, submarines & maritime warfare, civil Engineering, health care, surgery, vetenary science etc. have been cited from Rig Veda and their congruence with modem scientific principles have been shown. Many such Vedic puzzles open a door for further scientific investigations based on the fundamentals of modem science.

CHEMISTRY IN THE ATHARVAVEDA

Dr. Pushpa Malik Reader & Head, Deptt. of Sanskrit, Bhagwandeen Arya Kanya P.G. College Lakhimpur-Kheri(U.P.)

Chemistry is that branch of science which has enabled us to develop different kinds of food materials, synthetic clothes, medicines for curing various fatal diseases, tonics, insecticides, manures for improving crop-yield, products obtained from this branch of knowledge. In the ancient times, too, people succeeded in preparing different kinds of food articles, medicinal pripariations and clothes and had developed means of extracting metals from their ores. The only difference between the ancient chemistry (often called as Alchemy) and modern chemistry being the fact that in the alchemical age people knew only the 'how' of the chemical preparations, with in the modern chemical era both the 'how' and the 'why' of chemical productions are known. Because of this limitation the progress of chemistry in ancient times was not as rapid and as multifarious as in modern times. The European alchemy- the basis of modern chemistry- was started purely for materialistic gains, the aim before the European alchemists was to find an elixir of fight against death and to discover a touchstone which could transmute base metals into gold. The aim of the Vedic alchemists, on the other hand, did not end with achieving mastery over materials but it rather began from this pount to achieve a much bigger aim of religious and spiritual fulfillment.

Considerable chemical know how was developed in the Atharvavedic time wich is avident from medicinal and food preparations. Preparations of Soma juice, the divine drink of immortally, is vividly described. Besides this, madhu, madhuparka, amiksha, curd and sura etc. have also been mentioned. Different kinds of matals as used in utensils, ornaments and war weapons are reffered to in the Atharvaveda. This automatically means that people in the Atharvavedic period were conversant with the extraction of metals like gold, silver etc. from their ores.

In the present research paper all these issue will be discussed in detail.

BACTERIOLOGY IN THE VEDAS (Germs Theory)

Dr. Dinesh Chandra Shastri Deptt. of Veda, G.K.V. Haridwar

In the veda mantras, first we find five types of worm, namely-

1- **Drisht-** visible
2- **Adrisht-** invisible
3- **Kururu-** crawling on the earth
4- **Algandu-** poisonous our worms which are found on bed.
5- **Saluna-** Biting insects or the move rapidly.

According to the Atharvaveda Samhita we can categorised these worms into two groups

1- **Durnaman-** ill-famed
2- **Sunaman-** Non-harmful or good for body or who has the positive nature to the body.

I shall try to explain this **'Germs theory'** in detail in this research paper.

SCIENTIFIC TEMPER IN THE VEDAS

S.C.Goswami 67, Vaishali, Pitampura, Delhi-110034

'They who see but One in all the changing manifoldness of this universe, unto them belongs Eternal Truth,

unto none else' - is the conclusion of both the modern scientists and the sages of the Vedic age. Unity of Existence in thus the hallmark of both the Vedas and modern science. Billions of dollars are being spent in the 21st century to discover the elusive 'God -particle' which a Dirghatamas realized as the 'One which appears as many', thousands of years ago in the Rg Vedic age. Recent discocveries in the field of science suggest that the boundary line between the living and the non-living is non existence. The entire cosmos is interconnected, and interpenetrated with one consciousness which has no plural. The wave particle duality of matter and the inherent indeterminacy associated with it, the universal interconnectedness of matter at the deepest level in a most intimate and immediate manner as proved by the experimental verification of Bell's theorem, all point to oneness of existence. A natural corollary of this holistic approach is that we should seek solutions of local problems in a global manner. The artifical boundaries created on the basic of caste, creed, religion, nationality etc. would only lead to conflict and disharmony. The realization of the unity in the apparent diversity of nature is thus the key to conflict resolution. The apparently contradictory phenomena observed in nature are in fact the complementary aspects of the One Truth that appears as Many as declared in the Vedic corpus.

WIRELESS DATA TRANSMISSION IN VEDIC LITERATURE

Mr. Abhay Saxena Head, Dept. of Computer Science, Dev Sanskriti Vishwavidyalaya, Shantikunj, Haridwar

Vedas, the originator of all material, subtle and supera-mental knowledge can be defined as "Knowledge powerhouse". The science, technology, medicine, architecture, horticulture, astrology and what so ever the approach of this materialistic world can be thought are easily cited in the Vedas. The Vedic literature canvass is so vast that it may need billions of terabytes to get it on any form of media as data.

The computers were no more exceptions; they have also been got evenly balanced and recognition in Vedic literature. The "Chitragupta" (A god who keep tracks all the living and nonliving beings in this cosmos), or the super computer of God is having immense memory, enormous storage capacity and amazing microprocessor. The regular updation of millions of data of living beings is easily stored in the hard disk of Chitragupta with so much case. The activities (Karma) and the resultants (Karmafals) is just storing flawless with a separate data dictionary for every person on this earth. Just think of that voluminous databse, data extraction and data mining activites, moving of millions of files to and froo from the secondary storage to the main memory as well as the wonderful data connecticvity and the security of the God's computer. The God of knowledge (Lord Ganesha) is being moved with a help of mushakraj (similar as the computer {knowledge bank} moves with a digital mouse.)

The Bhagwad Geeta (an ancient vedic book), it shows the signs of wireless data transmission. The live commentary of the battle field of Kurukshetra by the Sanjay (minister of Kauravas) for the king Drathrastra is nothing but the wireless data transmission. The Sanjay had been equipped with the special power (wireless receptors and antennas). Surprisingly that data transmission mechanism was using dual mode data generators. The sender/receiving transponders firstly generates signals in the battle field and then transmitted to the receiving transponders which not only catches the signals but also produce the live visual impact on the audience (Dhratrastra).

ON THE EFFICIENCY OF THE DIGITAL COMPUTERS USING VEDIC MATHEMATICS

Dr. B.R.Gudagudi & G. B.Vinod Kumar

The efficiency of computer processing depends on "time" "space" (memory) and Energy Consumption .The effiency increases proportionally with the decrease in the processing time , memory space and energy

consumption. In this paper we propose certain mathematical logic based on Bhaskaracharyas method of multiplication and its adaptation to computer programming

The architecture is mapped in to the hardware platform comparison between the efficiency of present day computer processing and implementation of a new proposal. The paper gives bench marking results against present methods of multiplication and squaring. The complete work is classified in the following way .The first section gives introduction .the second section gives the details of mathematical aspects and logic .In the third section we propose computer adopted program. In the fourth section we propose computer architecture, comparison etc.

वेद, कुरआन और आधुनिक विज्ञान

डॉ. बी. नाज विभागाध्यक्ष संस्कृत, राजकीय महाविद्यालय, बिलासपुर (रामपुर)

अपौरुषेय एवं अनन्त ज्ञान के भण्डार वेद एवं कुरआन की ऋचाओं तथा आयतों में निहित ज्ञान व शिक्षायें सांकेतिक, प्रतीकात्मक, गूढ़ एवं परोक्ष है। इनमें विचारों की उर्वरता एवं भावों की गंभीरता परिलक्षित होती है। सृष्टि के प्रत्येक तत्त्व का विवेचन इन ग्रन्थों में मिलता है। सम्पूर्ण वेदों एवं कुरआन की परिकल्पना विज्ञान के समान रूपकों एवं प्रतीकों में की गयी है। आधुनिक खगोलशास्त्रियों के दशकों के गहन अध्ययन और प्रायोगिक आँकड़ों के अनुसार सृष्टि की संरचना से पूर्व सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड एक विशाल पिण्ड़ था। उसके बाद एक महाविस्फोट हुआ जिसके परिणामस्वरूप आकाशगंगा बनी इन आकाशगंगाओं से ही, बाद में सूर्य, चन्द्र, तारे, नक्षत्र, ग्रह आदि अस्तित्व में आये। आधुनिक वैज्ञानिकों के इस सिद्धान्त तथा हजारों वर्षों पूर्व अवतरित वेदों में वर्णित हिरण्यगर्भ एवं महद्ग्नि पिण्ड़ तथा कुरआन के 'प्रारम्भिक अवस्था में धरती एवं आकाश मिले हुये थे। हमने उन्हें विदीर्ण कर खण्ड-खण्ड कर दिया' के रूप में विद्यमान विचारों की समरूपता अपरिहार्य है।

वेदों एवं कुरआन में आधुनिक अनुसंधान की सीमाओं में न बँधते हुये प्रकृति एवं पदार्थ के रहस्यों को वैज्ञानिक एवं सांकेतिक रूप में उंजागर किया गया। वेदों एवं कुरआन में विज्ञान की विविध धारायें खगोल विज्ञान, भौतिकी, रसायन विज्ञान, जीव विज्ञान, भूगर्भ विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, जन्तु विज्ञान, शरीर विज्ञान, भ्रूण विज्ञान, सामान्य विज्ञान एवं आयुर्वेद के रूप में प्रवाहित हुई है।

ब्रह्म पुराण में सौर परिवार और सूर्योपस्थान

शिखा त्रिवेदी 10/20, सत्यनगर, रायबरेली

वैदिक धर्म के अनुसार देवता-देवियों की संख्या गणनातीत है। "हिन्दुओं के तैतीस कोटि देवता हैं।" इस कथन का तात्पर्य संख्या से नहीं है। इसका अर्थ है कि अगणित प्राणमय विभिन्न आकृतिपूर्ण यह जो सृष्टि है, उसकी उत्पत्ति स्थिति और 8लय के रूप में इसके पीछे कोई सर्वशक्तिमान् पुरुष है।

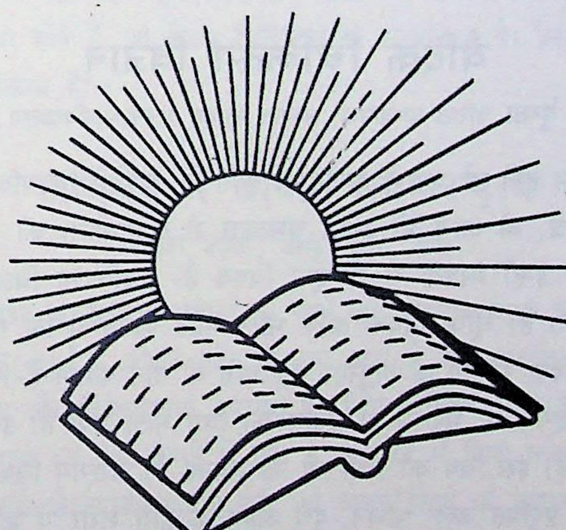
देवताओं देवियों के असंख्य नाम उसी की असंख्य नाम उसी की विभिन्न शक्तियों के वाहक मात्र हैं। वैदिक धर्म में बहुदेवतावाद की जो कल्पना की गयी है, वह सब उस सर्वशक्तिमान् के असंख्य रूपों की कल्पना मात्र है।

वेद कहते हैं कि वस्तुतः एक आत्मा की विश्वव्याप्त है। विभिन्न देवों में विभिन्नता रूप में गुण में है।, किन्तु मूल में नहीं है। मूल तत्त्व होने के बाद भी विभिन्न गुणों के परिप्रेक्ष्य में इसी का संख्यातीत संबोधन होता है। सभी रूपों में वह एक ही है।

सृष्टि के अनादि-काल से मनुष्य लोक और सौर मण्डल का सम्बन्ध अच्छेद्य है। सौर मण्डल में सूर्य, चन्द्र, आदि नवग्रह, त्रिदेव, साध्यदेव, मरुद्गण और सप्तर्षियों का निवास है। इन सबका पतिनिधित्व सूर्य देवता करते हैं। सभी उन्हीं का अनुसरण करते हैं। विश्व ब्रह्माण्ड में इस अचिन्त्य शक्ति के नियामक तेजोराशि भगवान भास्कर ही हैं।

विष्णु आकार के स्वामी हैं, अग्नि की महेश्वरी, वायु के सूर्य, पृथ्वी के विष्णु एवं जल के गणेश अधिदेवता हैं। अतएव इनके अस्तित्व के बिना पाञ्चभौतिक देह का अस्तित्व ही नहीं रह जाता।

* आयुर्वेद *



ऋग्वेद में उल्लिखित औषधि-विज्ञान

डॉ. संगीता शर्मा (सम्पादक) डोगरा कला संग्रहालय, जम्मू

यद्यपि ऋग्वेद में प्रत्येक विषयों का समावेश मिलता है तथापि इसमें नानारोग, रोगों के कारण, औषधि तथा अभुक्त औषधि के सेवन से अमुक रोग का प्रतिकार किया जा सकता है इत्यादि विषय भी मिलते हैं। ऋग्वेद काल में सैंकड़ों औषधियों के संग्रहकर्त्ता भिषजः सहस्रमुर्वी गभीरासुमतिस्तेस्तु (ऋग्वेद 1.24.9) औषधि रूप में ज्ञात लता-वनस्पतियाँ आदि भी स्वल्प नहीं थी अपितु हजारों की संख्या में थी। ऋग्वेद में औषधि के लिए 'माता' शब्द आया है। इन्हें तेजस्विनी और मातृवत् कहा गया है। औषधियों का स्वरूप, गुण प्रयोग आदि के ज्ञान के लिए ऋग्वेद का औषधि सूक्त महत्त्वपूर्ण है। इसमें औषधियों का शरीर में प्रविष्ट होने के बाद जिस प्रकार से अङ्ग-अङ्ग, पर्व-पर्व में फैलकर अपना प्रभाव डालते हुए कार्य करती हैं, इत्यादि का विशद् परिचय मिलता है। वीर्यवती औषधियों के सेवन से रोग के बीजों का विनाश होता है। औषधियों को ग्रहण कर रोगी की निर्बलता विनष्ट हो जाती है। औषधियाँ बलवान् पुरुष की भाँति सर्वाग स्थित रोग को समूल विनष्ट कर देती हैं। औषधियों से निवेदन किया गया है कि जिस रोगी के लिये उसे ग्रहण किया जाए, वह नाश को प्राप्त न हो। औषधि को गुणवती बनाकर उसका प्रयोग अधिक लाभप्रद है। बहुत-सी औषधियों को परस्पर मिश्रित कर देने से वे अधिक गुणवती होकर उपकारी बन जाती हैं। इस काल की प्रमुख औषधियों में पुष्पवती, प्रसूवरी, अपुष्पा, अफला, अवपतन्नीदि्व, देवी, धामनिशतम, परागाता, माध्वी, रुहः, सहस्रम, शतकृत्वः, रोमराजी, उर्जयन्ती, उदोजस् व सोमावती इत्यादि वर्णित हैं। ऋग्वेद कालीन व्यक्ति स्वस्थ एवं सुखी जीवन व्यतीत करने के लिए प्रयत्नशील रहा करते थे। वे बार-बार शतायु होने की कामना करते रहते थे। अतः रुद्र से तथा अश्विनौ से कल्याणकारी औषधियों की भी कामना की गयी है- स्तुतस्त्वं भेषजारास्यस्मे (ऋग्वेद 2.33.12)

वैदिक चिकित्सा विज्ञान

डॉ. विनोद कुमार गुप्ता वरिष्ठ प्राध्यापक, संस्कृत विभाग रा.स्ना.महाविद्यालय नई टिहरी, उत्तराखण्ड

अलोकसामान्यप्रतिभा का परिणाम होने के कारण अपौरुषेय कृति के रूप में विश्वविश्रुत वेद अक्षय ज्ञान-विज्ञान के स्रोत हैं। इनके गर्भ में ज्ञान-विज्ञान के वे सभी क्षेत्र, जो आज भी अपने चमत्कार से लोकमानस को चमत्कृत करने में समर्थ हैं, विद्यमान हैं। भले ही ये सूत्र रूप में ही क्यों न हों। इन्हीं विषयों में से एक विषय है- चिकित्सा विज्ञान। 'कित्रोगापायनयने' धातु से निष्पन्न 'चिकित्सा' शब्द का अर्थ रोगों की निवृत्ति है। चूँकि वैदिक ऋषि भलि-भाँति जानते थे कि यह शरीर रोगों का मन्दिर है। इसमें प्रायः आगन्तुक रोग उत्पन्न होते ही रहते हैं। वैदिक संहिता के अनुसार रोगोत्पत्ति के तीन कारण हैं-विषाणु, कीटाणु (कृमि), एवं त्रिदोष(वात पित्त एवं कफ)। वेदों में स्थावर एवं जङ्गम के भेद से दो प्रकार का विष माना गया है। इनमे स्थावर विष ओषधियों एवं पर्वतों में पाया जाता है। जिसे अभ्रिखत कहा गया है। इस विष को बेचा भी जा सकता है। जङ्गम विष सर्प, बिच्छू, मच्छर आदि में पाया जाता है। रोग का दूसरा कारण कीटाणु है, जो प्रदूषित जल, भोजन, दूध आदि के द्वारा शरीर में प्रविष्ट होकर रोग का उत्पादक है। तीसारा कारण वात, पित्त एवं कफ है इन्हें दूर करने के लिये ओषधालयों में वैद्य ओषधियों का निर्माण करते थे। चिकित्सकों को समूह बनाकर रोग के विषय में विचार-विमर्श करके रोगों के उपचार का संकेत प्राप्त होता है। शल्य चिकित्सा के माध्यम से रोगोपचार किया जाता था। शारीरिक चिकित्सा के साथ-साथ मानसिक एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य की चर्चा भी वैदिक ग्रन्थों में समुपलब्ध होतीहै। आज भौतिकवादी जीवन जीने के लिये माता-पिता की अपेक्षा पर खरे न उतरने वाले बच्चे अवसादग्रस्त हो जाते हैं। अतः अवसाद से मुक्त होने की ओर भी ध्यान दिया गया है। आध्यात्मिक स्वास्थ्य के सन्दर्भ में भावना करने की बाता कही गयी है। वैदिक काल में चिकित्सा विज्ञान की बृहद् प्रयोगशालायें हुआ करती थीं। जिसमें विविध रोगों की निवृत्ति के लिये ओषधियों का निर्माण होता था।

प्रकृत शोधपत्र में उक्त विषयक शोधात्मक दृष्टि के साथ-साथ निष्कर्ष रूप में कहा गया है कि आज के वैज्ञानिकों एवं एलोपैथिक चिकित्सकों को भी वैदिक चिकित्सा विज्ञान को निश्चित रूप से पढ़ना चाहिए तथा वेदों को आज की चिकित्सा पद्धति का उपजीव्य बताया गया है।

अथर्ववेद में आयुर्विज्ञान (कृमिविज्ञान)

डॉ. के.एम.त्रिवेदी संस्कृतविभाग, के.एस.के.वी. कच्छ यूनिवर्सिटी (गुजरात)

आयुर्वेद अथर्ववेद का उपवेद है, अत: उसमें आयुर्विज्ञान के मूलभूत सिद्धान्त स्वाभाविक रूप से ही विद्यमान है। आयुर्वेद का सिद्धान्त 'आहार, विहार, रोग के लक्षण, उनके उपचार के लिये औषधि' आदि की बातें अथर्ववेद में निहित हैं। यहाँ केवल जो कृमि हमारे उदर, आन्त्रपटल और दन्त आदि में रहते हैं, ऐसे कृमि जो हमारे स्वास्थ्य के लिये हानिकारक हैं उनका उद्भव और यदि उद्भूत हो तो नाश करने के उपाय अथर्ववेद में कहे गये हैं वे यहाँ निर्दिष्ट करने का उपक्रम किया जायेगा।

वैदिकसाहित्य में शल्यचिकित्साविज्ञान

सुप्रिया पाण्डेय (शोधच्छात्रा) संस्कृतविभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

वेद ज्ञान के अथाह भण्डार हैं। इनमें ज्ञान और विज्ञान की सभी विधाओं का उल्लेख है। अतएव मनु ने वेदों को सर्वज्ञानमय कहा है- 'सर्वज्ञानमयो हि स:' वेदों में विज्ञान की अनेक शाखायें रसायन, भौतिकी, जीवविज्ञान, अभियान्त्रिकी, भूगर्भविज्ञान, कृषिविज्ञान के साथ ही चिकित्सा विज्ञान का भी प्राचुर्य दृष्टिगोचर होता है, जिसकी दो मुख्य धाराएँ कायचिकित्साएवं शल्यचिकित्सा है।

सुश्रुतसंहिता के अनुसार शल्यचिकित्सा ही आदि चिकित्साशास्त्र है, क्योंकि मानव को सर्वप्रथम व्रण चिकित्सा की आवश्यकता हुई, मनुष्य जन्म के साथ ही ज्वर आदि शारीरिक व्याधियों का ग्रास नहीं होता, ये व्याधियाँ कालान्तर में आक्रमण करती हैं, परन्तु व्रण नवजात शिशु में नाभिनाल के गिरते ही उत्पन्न हो जाता है, जिसके उपचार के लिये शल्य चिकित्सा की आवश्यकता हुयी। वेदों तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में शल्यचिकित्सा से सम्बद्ध महत्त्वपूर्ण तथ्य प्राप्त होते हैं। ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में इसका विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है, इनमें अनेक ऐसे मन्त्र दृष्टिगोचर होते हैं, जो शल्य चिकित्सा से सम्बन्धित है। प्रस्तुतशोधपत्र में मैंने इसी विषय से सम्बद्ध विवरण को विवेचित करने का प्रयास किया है।

आयुर्वेद में वर्णित कौमारभृत्य

अनिल शर्मा, जम्मू वि.वि., जम्मू

स्वस्थ मनुष्य के स्वास्थ्य की रक्षा करना तथा रोगियों के रोगों का निवारण करने का नाम आयुर्वेद है। आयुर्वेद दो शब्दों से मिलकर बना है आयु और वेद, आयु का अर्थ है जीवन और वेद का अर्थ है ज्ञान अर्थात् जीवन का ज्ञान, आयुर्वेद विषय व्यापक है। इसमें रोगियों की पहचान उनके कारण और रोगोपनाशक उपचारों का विस्तृत विषय पाया जाता है। इस विस्तृत आयुर्वेद का विभाजन आठ भागों में उपलब्ध होता है। कौमारभृत्य उन आठ भागों में एक है आयुर्वेद में शिशु की देखभाल स्त्री के गर्भ से ही कैसे करनी है इसका विस्तार पूर्वक उल्लेख किया गया है। गर्भावस्था में स्त्री को अपने शिशु के स्वास्थ्य के लिए निद्रा, व्यायाम, शौच अथवा कौष्ठ शुद्धि के लिए उपाय करने चाहिए तथा इनका पूर्ण लाभ प्राप्त करना चाहिए अच्छा भोजन करना चाहिए और शिशु के जन्म के पश्चात् शिशु को प्रथम आहार के लिए कई प्रकार के लेप चटाने चाहिए। शिशु के जन्म के पश्चात् उसके रहने के लिए भी किसी स्थान की आवश्यकता होती है जिसका वर्णन कुमारागार के नाम से किया गया है। इस स्थान पर निर्माण वास्तुविद्या के मर्मज्ञ द्वारा करना चाहिए इसमें हर प्रकार की व्यवस्था होनी चाहिए। माता और शिशु को कदापि एक शय्या का प्रयोग नहीं करना चाहिए। शिशु के पहनने वाले वस्त्रों की स्वच्छता के लिए सुगन्धित द्रव्यों का प्रयोग करना चाहिए। शिशु की आयु तथा उसके अंगों की पूर्णता एवं अपूर्णता को ज्ञात करने के लिए उसके सम्पूर्ण अंगो का परीक्षण करना चाहिए।

शिशु को बाल्यावस्था में कई प्रकार के रोग ग्रस्त कर लेते हैं। उनमें मुख्य रोग, कर्ण रोग, वमन, ज्वर, अतिसार, कुंकर खासी पामा रोग, फक्क रोग आदि हैं। आयुर्वेद में इन रोगों के लक्षण तथा उपायों का वर्णन किया गया है।

वेदों में जल चिकित्सा

डा. (श्रीमती) निशा श्रीवास्तव सहा. प्राध्यापिका(शिक्षा संकाय) घनश्यामसिंह आर्य कन्या महाविद्यालय, दुर्ग (छ.ग.)

ज्ञान की अक्षय निधि वेदों में चिकित्सा विज्ञान के विविध विषयों का उल्लेख है। मानव जीवन की सुरक्षा के लिए प्रकृति के विभिन्न रूपों- अग्नि,जल, वृक्ष आदि के महत्त्व को प्रतिपादित किया गया है। ब्रह्माण्ड सृष्टि का प्रथम तत्त्व जल न केवल प्राणियों का जीवनाधार है, अपितु संसार में दृश्यमान समस्त चैतन्य का मूल भी है। स्वास्थ्य, धन, शक्ति, दीर्घायु और अमरत्त्व की प्राप्ति का हेतु जल ही है। वेदों के अनुसार जल ही अन्न, वनस्पति आदिका उतपादक, मनुष्यों के जीवन का साधन है, सभी औषधियों की औषधि है। जल से रोग निवारक और पुष्टिवर्द्धक पदार्थ उत्पन्न होते हैं। जल अपने रस से औषधियों को बढ़ाता है और उत्तम रसयुक्त जल के संयोग से रोगों का नाश होता है। जल के प्रयोग से प्राणों में दर्शन शक्ति श्रवण शक्ति, घोष ध्वन्यात्मक शब्द और वाक् वर्णात्मक शब्द बोलने की शक्ति होती है। ऋग्वेद में 1.23 से 16.23 तक जल चिकित्सा का विस्तृत वर्णन किया गया है। इसमें कहा गया है कि जैसे बन्धुजन अपने भाईयों के साथ अनुकूल आचरण करके सुख प्रदान करते हैं, वैसे ही ये रक्षा करने वाले जल ऊपर नीचे आते हुए मित्र के समान प्राणियों के सुखों का सम्पादन करते हैं। अथर्ववेद(6.58.2) में कहा गया है कि जल सम्बन्धी द्रव्य से (फोड़े) सींचो, सब ओर से सींचो। (जालाषेण) सुखकारक पदार्थ से पास से सींचो। (जालषम्) जल सुखों का समूह एवं तीक्ष्ण औषधि है। ऋग्वेद 7.49.1 से 4 जल के विविध स्रोतों जैसे अन्तरिक्ष जल, नदीय जल, खोदकर निकाले जानेवाले जल एवं समुद्र से प्राप्त देदीप्यमान जल से मानव जीवन की रक्षा की प्रार्थना की गई है। अथर्ववेद में भी वृष्टि की प्रार्थना एवं जल के गुणों का वर्णन किया गया है। जल ही सांसारिक पदार्थों की शुद्धि का निदान है। औषधियाँ सारभूत तत्त्वों से युक्त हैं। संसार में वृष्टि, नदी, कूप आदि का जल इसलिए है कि जिससे मनुष्य जल-चिकित्सा करके नीरोग हो सकें।

अष्टाङ्गायुर्वेद

सुषमा रानी (शोधच्छात्रा) संस्कृत विभाग पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़

महर्षि भारद्वाज ने आयुर्वेद को आठ अङ्गों में विभाजित किया और ये आठ चिकित्सा अङ्ग निम्न हैं- 1. शल्य, 2. शालाक्य, 3. काय-चिकित्सा, 4.भूत-विद्या, 5. कौमार, 6. अगदतंत्र, 7. रसायन, 8. बाजीकरण।

आयुर्वेद के प्रकाण्ड विद्वान्(वाग्भट्ट) ने चिकित्सा शास्त्र से सम्बन्धित अपने ग्रन्थ अष्टाङ्गहृदयम् में एक श्लोक कहा है-

नित्यं हिताहारविहारसेवी समीक्ष्यकारी विषयेष्वसक्तः।
दाता समः सत्यपरः क्षमावानाप्तोपसेवी च भवत्यरोगः।।

अर्थात् सदा हितकर आहार-विहार करने वालां, सोच समझकर काम करने वाला, विषयों में आसक्त न रहनें वाला, दानी, समत्व बुद्धि रखनें वाला, सत्यपरायण, क्षमाशील तथा यथार्थवादी, पुरुषों की सेवा करनें वाला व्यक्ति सदा रोगरहित रहता है। अतः आयुर्वेद में वर्णित अष्टाङ्ग चिकित्सा पूर्णतः मानव कल्याणकारी मानवहितकारिणी है।

अथर्ववेद में सौंदर्यवर्धक औषधियाँ

कुमारी अर्पणा(शोधच्छात्रा) संस्कृतविभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोटद्वार(गढ़वाल)

वैदिक काल में लोक का जीवन वनस्पतिमय था। इस कारण मनुष्य अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति वनस्पति के माध्यम से ही करता था। आहार तथा अन्य लौकिक उपयोग के अतिरिक्त औषधियों तथा वनस्पतियों का औषध रूप में प्रयोग महत्त्वपूर्ण था। जब से मनुष्य ने शरीर धारण किया, रोगों का प्रादुर्भाव हुआ और तभी से इस विघ्न के निराकरण के लिए औषध का प्रयोग हुआ। प्रयोग भेद से औषधियाँ चार प्रकार की मानी गयी हैं- आथर्वणीराङ्गिरसीर्दैवी मंनुष्यजा उत। औषधयः प्र जायन्ते यदा त्वं प्राण जिन्वसि।। (अथर्ववेद शौनकीय संहिता- 11.4.6) अथर्ववेद में सौन्दर्यवर्धक औषधियों का उल्लेख मिलता है यह बात 'मां पश्याम्' से सिद्ध होती है- इदं खनामि भेषजं मां पश्यमभिरोरुदम्। परायतो निवर्तनमायतः प्रतिनन्दनम्।। (अथर्ववेद- 7.38.1)

आत्मश्रृंगार मानव की स्वाभाविक वृत्तियों में से एक है। जिस प्रकार की सौंदर्यवर्धक औषधियाँ तत्कालीन समाज में प्रयुक्त

की जाती थीं। उनके ही परिवर्तित स्वरूप को आज हम दैनिक जीवन में प्रयुक्त करते हैं। शरीर को सौंदर्ययुक्त करने के लिये अथर्ववेद में वर्णित औषधियों का प्रयोग मानव जीवन को सुखमय बनाने में सहायक है।

अथर्ववेद में वर्णित औषधियों के नाम इस प्रकार हैं- केशवर्धनी, खदिर, गुग्गुल, तिल, दूर्वा, नलद(नलदी), पर्ण(पलाश), पारिभद्र, अश्वत्थ, शतावर, शमी, अभिरोरुद, ऋतावरी(ऋतजात), तलाश(तलाशा), पूतुद्रु, पुष्पा, बिस, रजनी, रामा,श्यामा आदि।

अथर्ववेद में वर्णित सौंदर्यवर्धक औषधियों का अथर्ववेद, परवर्ती आयुर्वेद साहित्य के आधार पर चिकित्सकीय विश्लेषण शोध-पत्र(सम्पूर्ण) में किया जायेगा।

कर्मसिद्धान्त : चरकसंहिता के परिप्रेक्ष्य में

पण्डया भारवि एन. (शोधच्छात्रा) महर्षि वेदविज्ञान अकादमी, अहमदाबाद, गुजरात

भारतीय चिन्तनप्रणाली सर्वदा इस विचार से अनुप्राणित रही है कि मनुष्य के जीवन में कर्म का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। मनुष्य का समग्रजीवन मरण और मरणोत्तरजीवन कर्मतन्तु से बंधा हुआ है। यह सर्वथा स्वाभाविक रही है क्योंकि कर्म प्रवृत्ति का पर्याय है, और प्रवृत्ति को संयोगपुरुष से जन्मवृद्धि जरामरण तथा रोगादि समस्त उपद्रवों का कारण कहा गया है(चरक. शारीर. 5.8)। न्यायसूत्र (1.1.2) में भी जन्म और दुःख का हेतु प्रवृत्ति को ही मानां गया है।

''कर्मजस्तु मतो जन्तुः कर्मजातस्तस्य चामयाः। न ह्यृते कर्मणो जन्म रोगाणां पुरुषस्य च।।'' अर्थात् प्राणी कर्म से उत्पन्न होने वाला माना गया है। उसके रोग भी कर्म से ही उत्पन्न होते हैं।कर्म के बिना तो पुरुष का जन्म हो सकता है और न उसके रोगों का। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश और आत्मा इन छः धातुओं का जो अपना-अपना लक्षण है वह स्वाभाविक है, किन्तु गर्भ के रूप में राशिपुरुष की उत्पत्ति के समय इन धातुओं का जो वियोग(विघटन) होता है, उसका हेतु पूर्वजन्म में किया गया कर्म ही है।

विश्व का इतिहास प्राणियों के जीवन और मरण का इतिहास है और जीवन तथा मरण कर्म के आश्रित हैं, अतः सम्पूर्ण विश्व कर्मसूत्र में बंधा हुआ है। विश्व के समस्त अतीत इतिवृत्त और वर्तमानकालिक घटनाओं का सूत्रधार यह कर्म ही है। इसी की पृष्ठभूमि में राष्ट्रों के उत्थान और पतन होते हैं, इसी के अनुशासन में महामारी तथा भूकम्पादि प्राकृतिक विपत्तियाँ आविर्भूत होती हैं और जनपदों का विध्वंस होता है। महर्षि चरक कहते हैं- 'वाप्वावादीनां यद वैगुण्यमुत्पद्यते, तस्य मूलमधर्मः, तन्मूलं वासत्कर्म पूर्वकृतम्।।'(विमान 3-24) अर्थात् 'जनदोद्ध्वंस के समय जल और वायु इत्यादि में जो विगुणता उत्पन्न हो जाती है उनका मूलकारण(जन्मान्तरकृत) अधर्म है, अथवा इसी जन्म में पहले जो असत्कर्म किए गए हैं, वे उस विगुणता के मूलकारण हैं।' इतना ही नहीं कर्म के भ्रूभंगमात्र से सृष्टि और प्रलय होते हैं।

जन्मान्तरोपार्जित कर्म से राशिपुरुष की उत्पत्ति होती है। उत्पन्न होकर उसके द्वारा नवीनकर्म किए जाते हैं, जो उसके अगले जन्म के कारण बनते हैं। इस प्रकार कर्म से पुरुष से कर्म की उत्पत्ति होती है। बीजांकुरन्याय से कर्म और पुरुष की यह परम्परा अनादि काल से चली आ रही हैं। इसलिए इनमें कौन पहले हुआ, यह प्रश्न नहीं बनता है। जिस प्रकार पुरुष की उत्पत्ति कर्म के आधीन है, उसी प्रकार कर्म की उत्पत्ति पुरुष के आधीन है। कर्म और कर्मफल (सुख-दुःख) राशिपुरुष के आश्रित रहते हैं। चरक कहते हैं- कर्म और उसका फल इसी राशिपुरुष में प्रतिष्ठित है, ज्ञान भी इसी में प्रतिष्ठित है। मोह-ममता, सुख-दुःख तथा जीवन-मरण सब इसी में प्रतिष्ठित हैं। इतना ही नहीं ज्वरादिक्लेश मनुष्य को अपने ही कर्मों से मिलते हैं। असत्यभाषण, कृतघ्नता, देवताओं की निन्दा, गुरुओं का अपमान, इस जन्म की पापक्रियाओं, पूर्वजन्मकृत कर्म और विरोधी अन्न- ये किलासनामक श्वित्र(श्वेतकुष्ठ) के हेतु हैं(चरक चिकित्सा. 7.177)। पापकर्म करनेवालों के उदररोग हो जाते हैं- -पापं कर्म कुर्वतामुदराण्युपजायन्ते''(चरकचि. 13.15)। जिसने स्वयं अशुभकर्मों का आचरण नहीं किया उसे न तो देवता, न गन्धर्व, न पिशाच, न राक्षस और न कोई दूसरा ही क्लेश पहुँचा सकता है(चरक निदान 7.22.23)

संक्षेप में प्रस्तुत शोधलेख में चरकसंहिता के परिप्रेक्ष्य में कर्म सिद्धान्त के अन्तर्गत कर्मफल की अनिवार्यता, दैव(अदृष्ट कर्म) और पौरुष(दृष्ट कर्म), कालमृत्यु और अकालमृत्यु आदि की सुदीर्घ चर्चा की गई है।

आयुर्वेद के अनुसार मधुमेह रोग के लक्षण, निदान और उपाय

सविता सिंह (शोधच्छात्रा) जम्मू वि.वि., जम्मू

समग्र विश्व में आज भारत के आयुर्वेद के प्रति श्रद्धा, निष्ठा व जिज्ञासा बढ़ रही है। क्योंकि श्रेष्ठ जीवन-पद्धति का जो ज्ञान आयुर्वेद ने इस विश्व को दिया है, वह अद्वितीय है। अन्य चिकित्सा पद्धतियाँ केवल रोग तक ही सीमित हैं, लेकिन आयुर्वेद ने जीवन के सभी पहलुओं को छुआ है।

आहारचारचेष्टासु सुखार्थी प्रेत्यचेह च।
परं प्रयत्नमातिष्ठेद् बुद्धिमान हित सेवते।। उद्धृत आ.नि.पृ.5

वर्तमान काल में मधुमेह रोग 80 प्रतिशत को हो चुका है और आज तक एलोपैथिक में भी ऐसी दवाईयाँ नहीं आई जो इस रोग को जड़ से नष्ट कर दे इसलिए मधुमेह रोगियों को आयुर्वेद में बताई गई चिकित्सा प्रणाली को अपनाते हुए उन उत्तम औषधि यों का प्रयोग करना चाहिए जिनका वर्णन आज से सहस्र वर्ष पूर्व ऋषियों, मुनियों ने आयुर्वेद में किया था, क्योंकि उन्होंने कहा है कि उचित उपचार एवं पथ्यपालन से असहाय मधुमेह रोग भी नष्ट हो सकता है।

अथर्ववेद में विविध रोग एवं उपचार

डॉ. सुनीता शर्मा व्याख्याता (संस्कृत) राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपुर, राजस्थान

वेद ज्ञान विज्ञान के भण्डार हैं विश्व में इनसे प्राचीन कोई साहित्य उपलब्ध नहीं है। आयुर्वेद विज्ञान भी वेद का ही उपवेद है। सम्प्रति अथर्ववेद की शौनक शाखा प्रचलित है जिसमें 20 काण्ड हैं। 1200 मन्त्र ऐसे हैं जो ऋग्वेद और अथर्ववेद में समानता रखते हैं सत्यता और मनोवैज्ञानिकता से सम्बन्धित सूक्तों की संख्या 90, स्वास्थ्य और उपचार के लिए 153 सूक्तों एवं शरीरविज्ञान से सम्बन्धित 215 सूक्तों का वर्णन प्राप्त होता है।

भारतीय प्राचीन साहित्य में चिकित्सा विज्ञान के लिए सर्वप्रथम ग्रन्थ 'अथर्ववेद' ही है। मनुष्य पूर्णायु, उत्तम और तेजस्वी होकर जीवित रहे, अथर्ववेद का यही उद्देश्य है। अथर्ववेद में अनेक स्थानों पर रोगनिवृत्ति सम्बन्धी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। अथर्ववेद का अर्थ है थर्व रहित, संशय रहित ज्ञान, जिसमें कोई संदेह की गुंजाइश न हो। अथर्ववेद के विभिन्न ग्रन्थों में अनेक नाम उपलब्ध होते हैं। यथा- अथर्ववेद, अथर्वाङ्गिरावेद, अङ्गिरसवेद, ब्रह्मवेद, भृग्वङ्गिरोवेद, छन्दोवेद, महीवेद, क्षात्रवेद एवं भैषज्य वेद।

अथर्ववेद के अनेक नाम इस वेद के व्यापक एवं विराट् स्वरूप का बोध कराने में समर्थ है। अथर्ववेद में शोक, मोह, भयजनक आधिव्याधियों के निवारण के लिए भैषज्य विद्या, शरीरगत अन्य दुःसाध्य रोगों के लिए औषधि विज्ञान का विशद वर्णन है। मनुष्य के आत्मिक, बौद्धिक, मानसिक और शारीरिक सभी प्रकार के विकास के लिए अथर्ववेद में गहन एवं सूक्ष्म चर्चाएँ हैं। प्राण एक जीवनी शक्ति है। प्राण विद्या से हृदय रोग, मूर्छारोग आदि असाध्य रोग दूर किये जा सकते हैं। अथर्ववेद के लिए सृष्टि में कोई असाध्य रोग नहीं है। हस्ताभिमर्षण द्वारा विद्युत् शक्ति का संचार करके हाइ-ब्लडप्रेशर, दिल के दौरे या वज्राघात पर तत्काल प्रभाव डाला जा सकता है। महौषधियों के नाम गुण और प्रयोग कीविधियां भी अथर्ववेद में दी गई हैं। विभिन्न प्रकार की मणियों द्वारा भी चिकित्सा का वर्णन अथर्व वेद में प्राप्त होता है। अथर्ववेद में यज्ञ-चिकित्सा, औषधि-चिकित्सा, प्राणायामादि दैवी चिकित्साओं का वर्णन भी प्राप्त होता है। सम्प्रति अथर्ववेदोक्त चिकित्सा का उपयोग आज भी कितना लाभकारी है इस क्षेत्र में प्रायोगिक अनुसंधान करना अत्यन्त उपादेय होगा। वर्तमान समय में दूषित पर्यावरण विभिन्न रोगों का मूलकारण है प्रस्तुत शोधपत्र में हृदय, त्वचा, केश, ज्वरचिकित्सा, राजयक्ष्मा, कुष्ठ, पीलिया, रक्ताल्पता, सन्धिवात, गठिया आदि रोगों एवं उनके उपचार साथ ही स्वस्थ रहने, आरोग्य और दीर्घायु के उपाय आदि का वर्णन अथर्ववेदोक्त मन्त्रों से किया जायेगा तथा प्रचलित चिकित्सा प्रणालियों से साम्यता असाम्यता को भी परिलक्षित किया जायेगा।

वैदिक साहित्य में आयुर्वेद

कु. अनीता राघव, हिन्दी तथा भाषा विज्ञान विद्या पीठ, आगरा

वैदिक चिकित्सा-शास्त्र आयुर्वेद प्राचीन से प्राचीनतम है और यह वेद के साथ सम्बन्धित है। आयु का ज्ञान ही आयुर्वेद है अर्थात् शरीर इन्द्रिय मन तथा आत्मा का योग ही आयु है इस आयु सम्बन्धी प्रत्येक ज्ञेय विषयक ज्ञान को ही आयुर्वेद कहते हैं।

आयुर्वेद के आठ अङ्ग बताये हैं जो इस प्रकार हैं- 1. शल्य( ), 2. शालाक्य, 3. काय चिकित्सा, 4. अगदतन्त्र, 5. भूतविद्या, 6. कौमारभृत्य, 7. रसायन, 8. वाजीकरण।

आयुर्वेद को अथर्ववेद या ऋग्वेद का उपवेद या पंचमवेद अथवा पुण्यतम वेद भी कहा गया है। यह चिकित्साशास्त्र के साथ-साथ दर्शनशास्त्र भी है। इसमें आयु से सम्बन्धित समस्त ज्ञान होने के कारण इसे आयुर्वेद जीवन का विज्ञान कहना अधिक युक्ति संगत है। यह शाश्वत (अनादि एवं अनन्त) विज्ञान है। इसके द्वारा इहलौकिक एवं पारलौकिक दु:खों की निवृत्ति तथा समस्त प्राणियों का कल्याण सम्भव है अत: इसका आदर करना समस्त व्यक्तियों का कर्त्तव्य है- **'आयुर्वेदोपदेशेषु विधेय:'**। (अ.ह.सू. 1.2) वेदों में विशेषकर अथर्ववेद में आयुर्वेद के विषय यत्र-तत्र बिखरे पड़े रहने के कारण अष्टांग - आयुर्वेद के विभागरूपेण वर्गीकरण का अभाव परिलक्षित होता है, पर जो भी सामग्री सूत्ररूप उपलब्ध है, उसी का उपबृंहण होता चला गया। चरक आदि संहिता-ग्रन्थों में इसका परिष्कृत रूप दिखलायी देता है। अथर्ववेद के सूत्र ग्रन्थ, कौशिक सूत्र में अथर्ववेदीय भैषज्यसामग्री का विनियोग स्पष्टरूप से प्राप्त होता है। इस प्रकार आयुर्वेद की वेदमूलकता सर्वथा स्पष्ट है।

प्रस्तुत शोध-पत्र में वैदिक साहित्य में आयुर्वेद की महत्ता को दिखाने का प्रयास किया गया है।

वेदों में प्रतिपाद्य आयुर्वेद

हिमानी गर्ग (साहित्याचार्य) ऋषिकुल विद्यापीठ, ब्रह्मचर्याश्रम, हरिद्वार

आयुर्वेद की परिभाषा महर्षि चरक ने इस प्रकार दी है- **'आयुर्वेदयति इति आयुर्वेद:'** अर्थात् जो आयु का ज्ञान कराता है, उसे आयुर्वेद कहते हैं। महर्षि चरक ने आयुर्वेद को शाश्वत विज्ञान माना है। तथा इसकी शाश्वतता सिद्ध करते हुए सूत्रस्थान में लिखा है- **'सोऽयमायुर्वेद: शाश्वतो निर्दिश्यते, अनादित्वात्, स्वभावसंसिद्धलक्षणत्वात्, भावस्वभावनित्यत्वाच्च।'** च.सू 30.26

आयुर्वेद वह शास्त्र है जो जीवन की उत्कृष्टता को व्याधियों से मुक्त करने वाली औषधियों का ज्ञान प्राप्त कराता है। वेद आयुर्वेद के मुख्य स्रोत हैं। वेदों के माध्यम से ही आयुर्वेद का ज्ञान सम्पूर्ण विश्व में प्रसारित हुआ है। अथर्ववेद को **'भैषज'** अर्थात् 'भिषग्वेद' कहा गया है। गोपथ ब्राह्मण में कहा गया है - **'येऽथर्वाण: तद् भेषजम्'** अर्थात् जो अथर्वा हैं वह भेषज हैं। यही अथर्वा मुख्य रूप से अथर्ववेद में प्रतिपादित हैं इसलिए यह आयुर्वेद से मुख्य रूप से सम्बन्धित हैं।

वैदिक युग में हजारों औषधियों का ज्ञान था और अष्टाङ्ग आयुर्वेद के ज्ञाता पृथक्-पृथक् चिकित्साविधियों के प्रयोग करने वाले अनेक चिकित्सक थे। वेदों में आयुर्वेद के सभी अंगो की चमत्कारी चिकित्सा का अल्पाधिक मात्रा में उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद मे औषधियों के सम्बन्ध में इस प्रकार से वर्णन किया गया है- 'या ओषधी: पूर्वाजाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा। मनैतु बभ्रुणामहमशतं धामानि सप्त च।। ऋ.वे. 10.97.1 अथर्ववेद में शारीरशास्त्र, औषधी एवं चिकित्सा के विविध अंगों एवं विधियों का वर्णन प्रचुरता से मिलता है। इसलिए चरक और सुश्रुत ने आयुर्वेद को अथर्ववेद का उपवेद बताया है। महर्षि चरक ने आयुर्वेद का सम्बन्ध चारों वेदों से करते हुए अथर्ववेद से विशेष सम्बन्ध स्थापित किया है। 'आर्थवणीरांगिरसी दैवीर्मनुष्यजा उत। ओषधय: प्रजायन्ते यदा त्वं प्राण जिन्वसि।। वैदिक मन्त्रों में 360 अस्थियों का उल्लेख मिलता है। मन्त्रों में सैकड़ों, हजारों सिराओं एवं धमनियों का उल्लेख मिलता है। अत: वैदिक वाङ्मय में आयुर्वेद सम्बन्धी अनेकानेक विषयों के मिलने से यह सुनिश्चित प्रतीत होता है कि भारतीय भैषज्य विद्या अर्थात् आयुर्वेद का ज्ञान वैदिक युग में व्यापक रूप से फैल चुका था और इस विद्या को अतिशय गौरव पूर्ण स्थान प्राप्त था। अत: आयुर्वेद का मूल स्रोत वैदिक साहित्य ही है।

ऋग्वेद में चिकित्सा विज्ञान

गौरव कुमार, शोधच्छात्र- गु.कां.वि.वि., हरिद्वार

'चिकित्सा' शब्द का पर्याय 'आयुर्वेद' माना जाता है। चिकित्सा या आयुर्वेद द्वारा ही मनुष्य दीर्घ-आयु प्राप्त करता है। यह आयु शरीर, इन्द्रिय, मन और आत्मा इन चारों का संयोग है। आयु का सम्बन्ध केवल शरीर से नहीं है और इसका ज्ञान भी आयुर्वेद नहीं है। परन्तु इन चारों का ज्ञान जिस विद्या या शिल्प से प्राप्त किया जाता है वह आयुर्वेद है। इस दृष्टि से आत्मा और मन सम्बन्धि ज्ञान भी प्राचीन मत में आयुर्वेद है- 'आयुरस्मिन् विद्यतेऽनेन वाऽऽयुर्विन्दतीत्यायुर्वेदः' शरीर आत्मा का भोगायतन पंच भूत - विकारात्मक है। इन्द्रियां भोग का साधन हैं। मन अन्तःकरण है, आत्मा मोक्ष या ज्ञान प्राप्त करने वाला। इन चारों का अदृष्ट कर्मवश से जो संयोग होता है वही आयु है। इसके लिए हित-अहित, सुख-दुख का ज्ञान तथा आयु का मान जहाँ कहीं हो, उसे आयुर्वेद कहते हैं।

वेद मन्त्रों में देवतावाद है। इसमें अश्विनौ देवता भी आते है। अश्विनौ कुमारों का मुख्य सम्बन्ध चिकित्सा से था। वे मुख्यतः देवताओं के चिकित्सक थे अन्य चिकित्सक के रूप में रुद्र का नाम भी अ ाता है। रुद्र को चिकित्सकों में श्रेष्ठतम चिकित्सक कहा गया है। रुद्र से औषधि की याचना की गयी है। उस समय चिकित्सा अनेक प्रकार से की जाती थी। जिसमें मुख्यतः औषधीय चिकित्सा शल्य चिकित्सा, जल चिकित्सा, सौर चिकित्सा, वायु चिकित्सा, मानस चिकित्सा तथा हवन चिकित्सा आदि प्रचलित थी।

वेदों में विषम ज्वर(मलेरिया) व उसका निदान

पंकज सैनी व बी.डी. जोशी, जन्तु एवं पर्यावरण विज्ञान विभाग, गु.कां. विश्वविद्यालय, हरिद्वार

भारतीय वैदिक संस्कृति न केवल ज्ञान विज्ञान के लिये जानी जाती है बल्कि वह अपने आप में प्रकृति के समस्त गूढ़ रहस्यों को भी संजोये हुए है। जहाँ पूरे विश्व के वैज्ञानिक एवं चिकित्सक मलेरिया व उससे सम्बन्धित तथ्यों पर शोध-कार्य में लगे हैं, वहीं हमारे प्राचीन मीषियों ने वेदों में मलेरिया व उसके निदान को विस्तृत रूप में उल्लिखित किया है।

वेदों में ज्वर के लिए तक्मा पद आया है, जिसका अर्थ है- जीवन को कष्ट व दुःख देने वाला।

यः स्यादनियतात् कालात् शीतोष्णाभ्यां तथैव च।
वेतश्चापि विषमो ज्वरः स विषमः स्मृतः।। (माधव)

इन पंक्तियों में मलेरिया ज्वर के सभी लक्षणों को इंगित करते हुए उसकी उत्पत्ति के कारण को भी समझाया गया है।

वेदों में मलेरिया को उनके परजीवियों के अनुरूप भी विभाजित किया गया है। -*प्लाज्मोडियम ओवेल*' से होने वाले मलेरिया को 'सन्ततः सततोऽन्येद्युस्तृतीयकचतुर्थकौ' तृतीयक ज्वर बताना मुनियों और मनीषियों के विस्तृत ज्ञान को इंगित करता है। वेदों में वर्णित ज्ञान के अनुसार यज्ञाग्नि द्वारा इस ज्वर द्वारा इस ज्वर और इसके सहकारी शिरःपीड़ा और अंगो मे दर्द आदि को दूर किया जा सकता है।

'अङ्गेः अङ्गैः शोचिषा शिश्रयाणां नमस्यन्तस्त्वा हविषाविधेम।(अथर्ववेद 1.12.2)

मलेरिया पीड़ित व्यक्ति को रोगमुक्त करने हेतु वेदों में कुछ औषधियों का वर्णन भी मिलता है।

'आशरिकं विशरिकं बलासं पृष्ट्यामयम्।
तक्मानं विश्वशारदमरसां जंगिडस्करत्।।(अथर्व.19.34.10)

इस सूक्त में मलेरिया व पसलियों के अन्य ज्वर के निदान हेतु उल्लेख मिलता है।

यत् त्वं शीतोऽथो रूरः सहकासाऽवेपयः।
भीमास्ते तक्मन् हेतयस्ताभिः स्म परिवृङ्ग्धि नः।। त तीयकं वितृतीयं सदन्दिमुत शारदम्।
तक्मानं शीतं रूरं ग्रैष्मं नाशय वार्षिकम्।।(अथर्व. 5.22.10)

अथर्ववेद में उल्लिखित इस मन्त्र मे यज्ञाग्नि द्वारा भी सभी प्रकार के ज्वरों के उन्मूलन का उल्लेख मिलता है।

वाल्मीकि रामायण में आयुर्वेदीय तत्त्व

विजय शर्मा एवं बी.डी. जोशी, जन्तु एवं पर्यावरण विज्ञान विभाग, गुरुकुल कांगड़ी वि.वि. हरिद्वार

प्रस्तुत आलेख में श्रीमद्वाल्मीकि रामायण में उल्लिखित तत्कालीन चिकित्सा पद्धति की विवेचना की गई है। वाल्मीकि रामायण के अध्ययन से तत्कालीन समाज की उत्कृष्ट चिकित्सा पद्धति व राजाओं द्वारा वैद्यों को सम्मानित करने व विशेष स्थान देने की व्यवस्था संज्ञान में आती है। तत्कालीन वैद्य आयुर्वेद विज्ञान के पारंगत थे और अपनी रसायन शालाओं में औषधीय पादपों से औषधियों का निर्माण किया करते थे। राम-रावण युद्ध के समय लक्ष्मण जी के मूर्छित होने पर वैद्यराज सुषेण द्वारा संजीवनी बूटी का उल्लेख करना, तत्कालीन वैद्यों की औषधीय पादपों के अमूल्य ज्ञान को दर्शाता है।

रामायण में महर्षि वाल्मीकि ने उल्लेख किया है कि तत्कानीन राज्य में जनता निरोग रहती थी। मनुष्य दीर्घायु में ही मृत्यु को प्राप्त होते थे। महिलाएं 'अरोग प्रसवा' होती थी। **अनामयश्च मर्त्यानां साग्रो मासो गतो ह्ययम्।। जीर्णानामपि सत्वानां मृत्युर्नायाति राघव। अरोगप्रसवा नार्यो वपुष्मन्तो हि मानवा:।।** अत: स्पष्ट है कि रामायणकालीन भारत की चिकित्सा पद्धति नितान्त सफल थी। इसी का ही इस आलेख में उल्लेख किया जायेगा।

ऋग्वेद के परिप्रेक्ष्य मे रोग-निवारण

सपना देवी (शोधच्छात्रा) हिमांचल प्रदेश वि.वि., शिमला

मनुष्य को आरोग्य कैसे प्राप्त हो? ऋग्वेद में इसका समुचित विवेचन है। ऋग्वेद के औषधी सूक्त में विभिन्न औषधियों तथा उनके कार्य प्रकार पर प्रकाश डाला गया है। इस सूक्त के प्रथम मन्त्र में मनुष्य की उत्पत्ति से पूर्व ही औषधियों की उत्पत्ति का निर्देश है। ऋग्वेद में रोग निवारण हेतु देवताओं की स्तुति से लेकर औषधियों द्वारा चिकित्सा का वर्णन मिलता है। ऋग्वेद के अनेक सूक्तों के देवता चिकित्सा से सम्बन्धित होने के साथ-साथ 'देवानां भिषजौ- के रूप में भी स्वीकार्य हैं। देवों से रोग को शान्त करने वाली औषधियों की याचना की गई है। ऋग्वेद में देवों द्वारा शरीर के समस्त रोगों जैसे रोगी व्यक्ति के शरीर से रोग को पृथक् करने का वर्णन भी है। यथा- **'अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तिभि:।'** ऋग्वेद में अश्विनी कुमार आरोग्य, दीर्घायु के प्रदाता तथा विपन्नों के सहायकगण होने से दिव्य भिषग् भी कहे गये हैं। ये अश्विनी कुमार अपनी चिकित्सा से रोगों की शान्ति करते हैं। रुद्र को ऋग्वेद में वैद्यों के मूर्धन्य माना और उन्हें औषधी का शासक माना है क्योंकि वह औषधियों को अपने पास रखते हैं। रुद्र की औषधियों के उपचार से लोग सौ वर्ष तक जीने की इच्छा रखते हैं। ऋग्वेद में सौर चिकित्सा का भी वर्णन मिलता है कि उदय होते हुए सूर्य की अवरक्त किरणों में विलक्षण जीवनी शक्ति होती है। और इसमें रोगों को नष्ट करने की अद्भुत क्षमता है। यह सूर्य मानवों को आरोग्य, दीर्घायु एवं समग्र सुख प्रदान करता है। सूर्य देव को ऋग्वेद में हृदय विशेषज्ञ कहते हुए प्रार्थना की गई है कि वे हृदय रोग को नष्ट करें। ऋग्वेद में वायु को गुणकारी ओषधी माना है और उससे आयु को बढ़ाने की कामना की गई है। ऋग्वेद में स्पर्श चिकित्सा का भी बोध होता है। अत: निष्कर्ष में कहा जा सकता है कि ऋग्वेद में रोग-निवारण हेतु पर्याप्त विवेचन किया गया है जो मानव शरीर को स्वस्थ रखने में सक्षम है।

अथर्ववेद में आयुर्वेद का स्थान

पूजा शर्मा(शोधच्छात्रा) संस्कृत विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

वृक्ष-वनस्पति प्राणी आदि समस्त संजीवों का ज्ञान आयुर्वेद प्रदान करता है। चारों वेदों में अथर्ववेद को मानव जीवन से सर्वाधिक सम्बद्ध दिखाई देता है। अथर्ववेद मेंअभिचार एवं उपचार मन्त्रों का संकलन है। अथर्ववेद ऐहिक और आमुष्मिक दोनों प्रकार के फलों को देने वाला है। अथर्ववेदमें अनेक प्रकार के रोग दोष औषधि चिकित्सा के यथोचित सेवन से दूर होते है। चारों वेदों की आत्मा आयुर्वेद है। उसका वर्णन अधिकतर अथर्ववेद में किया गया है। अथर्ववेद में आयुर्वेद की प्रधानता तो है ही पर अन्य वेदों में भी

इसका विशेष महत्त्व है।

'आयुर्वेदं नामोपाङ्गमथर्ववेदस्य' आयुर्वेद शास्त्र के पढ़ने से, रोग के पैदा होने के कारण, स्वस्थ होने के लक्षण, रोगों के परिचय के लक्षण, रोगनाशक औषधियाँ, स्वास्थ्य के हित के लिए व आतुरहित औषधियों का ज्ञान होता है। आयुर्वेद शास्त्र रोगी के लिए परम समादणीय है। यह शास्त्र सर्वदा अविनाशी और परमपुण्यजनक है। मनुष्य के लिए अपेक्षित सम्पूर्ण निरोग रहने का भण्डार आयुर्वेद है। आयुर्वेद विश्व की प्राचीनतम चिकित्सा पद्धति या भारत की अमूल्य सांस्कृतिक धरोहर है। आयुर्वेद की उत्पत्ति सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा से मानी गई है। सृष्टि उत्पन्न करने से पहले ही ब्रह्मा ने अथर्ववेद के उपांग आयुर्वेदका निर्माण सहस्र अध्यायों में किया है। आयुर्वेद की उत्पत्ति का यथार्थ समय निश्चित करना हमारे लिए सर्वथा असम्भव ही है। वेदों में इसका उल्लेख है इसलिए आयुर्वेद के वेदों के समय की उत्पत्ति मानी जा सकती है। अथर्ववेदीय सूक्तों के वर्गीकरण में अनेक कठिनाइयाँ हैं। रोगों के नामों का अर्थ प्रायः संदिग्ध है और अभिचारों में कई असम्बद्ध रोगों को एककर दिया गयाहै। मनुष्य पूर्णायु तक निरोगी, उत्तम और तेजस्वी होकर जीवित रहें, अथर्ववेद का यही उद्देश्य है। सम्पूर्ण विवरण शोध पत्र में द्रष्टव्य होगा।

सूर्य-चिकित्सा

डॉ. निरञ्जन साहु प्राचार्य, व.उ. राजकीय विद्यालय, अजमेर

अथर्ववेद का उपाङ्गभूत आयुर्वेद है। प्राकृतिक चिकित्सा में सूर्यचिकित्सा का विशेष स्थान है। वेदों में भी सूर्य चिकित्सा पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। अथर्ववेद संहिता में रोग, शत्रु और प्रतिपक्षी के निवारण के लिए अनेक मन्त्र हैं। सूर्यकिरण चिकित्सा और वर्णचिकित्सा भी अथर्ववेद में प्राप्त होती है। सूर्य से वर्णवाली गण्डमाला, रामामणी, असूतिका, शल्य, कासश्लेष्मादि, कृमिनाश, कामला, ह्रदयरोग, पीलिया आदि रोग नष्ट होते हैं। यही शरीर के अधिकांश अंग जैसे कि पैर, जानु, श्रोणी, कंधा, मस्तक, कपाल, ह्रदय आदि से सम्बन्धित रोगों को उदीयमान सूर्यरश्मियों द्वारा दूर करने का वर्णन है। सूर्य की सात रश्मियाँ विभिन्न रोगों को दूर करने में समर्थ हैं। उदित होते हुए सूर्य के लालवर्ण के सेवन तथा लालवर्ण की(कपिला) गाय का दूध पीने से रोगनिवृत्ति होकर दीर्घ-आयुत्व की प्राप्ति होती है। सूर्य-किरणों द्वारा विटामिन-डी की उत्पत्ति होती है जिससे शरीर में कैल्शियम तथा फास्फोरस का निर्माण होता है जो कि हड्डियों एवं दाँत की मजबूती के लिए महत्त्वपूर्ण है। शास्त्रों मे सूर्य-स्नान का भी महत्त्व है। सूर्य-नारायण की कृपा द्वारा साम्ब एवं मयूर के स्वास्थ्य लाभ की घटना विश्व-विख्यात है। इस प्रकार इस लेख में सूर्य-चिकित्सा पर विस्तार से चर्चा की गई है।

अथर्ववेद का उपाङ्ग आयुर्वेद

डॉ. माधुरी गुप्ता म.प्र. राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, चित्तौड़गढ़ (राज.)

चार वेद हैं और चार ही उपवेद हैं। प्राचीनकाल में आयुर्वेद अथर्ववेद का उपवेद माना गया था। जैसा कि स्वयं सुश्रुत ने सुश्रुतसंहिता में कहा है कि - आयुर्वेद अथर्ववेदका उपाङ्ग है।

अथर्ववेद को भेषज अर्थात् भिषग्वेद भी कहते हैं। स्वामीदयानन्द ने आयुर्वेद को ऋग्वेद का उपवेद स्वीकार किया है। आर. ए.एस.आई.ए.एस. जेसी उंच्च-स्तरीय प्रशासनिक परीक्षाओं में भी इसे ऋग्वेद के उपवेद रूप में प्रसारित किया जा रहा है।

इस निबन्ध में इसे अन्तःसाक्ष्य एवं बाह्यसाक्ष्यों द्वारा अथर्ववेद का उपवेद सिद्ध करने का प्रयास किया गया है। डॉ. कपिलदेव द्विवेदी अपनी पुस्तक 'वेदों में आयुर्वेद' में भी आयुर्वेद को अथर्ववेद का उपाङ्ग मानते हैं। उनके अनुसार ऋग्वेद मे 67, यजुर्वेद में 82 और अथर्ववेद में 288 वनस्पतियों का उल्लेख है।

वर्तमान में बाबा रामदेव भी इसे अथर्ववेद का उपवेद स्वीकार करते हैं। स्वामी दयानन्द स्वयं सत्यता के पोषक थे। आर्यसमाज कीस्थापना के प्रसङ्ग में उन्होंने कहा है कि मेरी कोई गलती अगर पाई जाए तो युक्तिपूर्वक परीक्षा करके उसे सुधार लेना।

इस लेख का प्रयोजन स्वामी दयानन्द को गलतसिद्ध करना नहीं वरन् सत्य की स्थापना करना है।

वेदों में आयुर्वेद - एक परिचय

डॉ. पीयूष बाला जम्मू वि.वि., जम्मू

भारत की प्राचीन सभ्यता पर दृष्टिपात करें तो ज्ञात होताहै कि भारत की प्राचीन, सभ्य, सुसंस्कृत व उन्नत संस्कृति आर्यों की थी। पारिभाषिक अर्थ में आर्य-सस्कृति का चिकित्सा विज्ञान आयुर्वेद कहलाता है। आयुर्वेद का लक्षण चरक ने इस प्रकार दिया है- 'आयुर्वेदयति इति आयुर्वेद:' जो आयु का ज्ञान कराए, वह आयुर्वेदी कहलाता है। आयुर्वेद का इतिहास उस काल से प्रारम्भ होता है, जिस काल से आयु की सत्ता व उसके सम्बन्ध में विचार अथवा ज्ञान प्राप्त होता है। भारतीय संस्कृति के आधार स्तम्भ वेद हैं। वेदों में सभी प्रकार का ज्ञान व विज्ञान निहित है। यह निर्विवाद सत्य है कि विश्व के उपलब्ध साहित्य में ऋग्वेद सबसे प्राचीन है, अत: संसार का जो पश्चात् अथर्ववेद में समाविष्ट चिकित्सा सामग्री सबसे प्राचीन मानी जाती है। आयुर्वेद आयु का वेद है। आयु का प्रचलित पर्याय जीवन है। शरीर व जीव का संयोग जीवन कहलाता है, तथा इस संयोग रूप जीवन से संयुक्त कालकी संज्ञा आयु है।

वेद ज्ञान को कहते हैं अर्थात् जीवन का सर्वांगीण ज्ञान कराने वाला विज्ञान आयुर्वेद कहलाता है। अत: जिस प्रकार जिसके यहाँ औषधि एकत्र होती है, उस विद्वान् व्यक्ति को भिषक् कहते हैं, वह राक्षसों का नाश करने वाला और रोगों को दूर करने वाला हहोता है। जिस प्रकार आयुर्वेद अथवा चिकित्सा सम्बन्धी ज्ञान का विकास हुआ, उसी प्रकार उनका वर्गीकृत रूप प्रस्तुत करने और उनकी पृथक् शाखा का विस्तारपूर्वक विश्लेषण करने की आवश्यकता अनुभव होने लगी। इसी से ऋषियों द्वारा आयुर्वेद की स्वतन्त्र संहिता व तन्त्र बनाये जाने तक आयुर्वेद को आठ भागों में विभाजित किया जा चुका है, इसको आयुर्वेद के 8 अंग(अष्टांग आयुर्वेद) कहा गया है। इनमे सम्पूर्ण चिकित्सा विज्ञान का समावेश होता है। ये आठ अंग हैं-
1. काय चिकित्सा, 2. शल्य चिकित्सा, 3. शालाक्य चिकित्सा, 4. कौमार भृत्य, 5. भूतविधा, 6. अगदतन्त्र, 7. रसायन चिकित्सा और 8. वाजीकरण चिकित्सा। इस प्रकार सर्वज्ञानमय वेद ही आयुर्वेद चिकित्सा का मूल स्रोत है। आचार्य सुश्रुत ने आयुर्वेद को अथर्ववेद के रूपमें माना है। कश्यप ने आयुर्वेद को ही पञ्चम वेद माना है।

वेदों में आयुर्वेद

कु. अनुज(शोधच्छात्रा) वेद विभाग, गुरुकुल कांगड़ी वि.वि. हरिद्वार

रोगों को दूर कर जीवन को निरोग और दीर्घ बनाना आयुर्वेद का मुख्य लक्ष्य है, जिसका उत्स वेद है। गोपथ ब्राह्मण में भेषज को अथर्व कहा गया है- येऽथर्वाणस्तद् भेषजम्(1.3.4) जो अथर्वा है वह भेषज है। निरुक्त में भेषज का पर्याय 'प्रतिषेध' है। 'थर्वतिश्चरतिकर्मा तत्प्रतिषेध:' (निरुक्त 11.19) थर्बति का अर्थ है गति । औषध बढ़ते हुए रोग को रोकती है, इसलिए उसे अथर्वा कहते हैं। वैदिक मन्त्रों में तीन सौ साठ अस्थियों का उल्लेख है। मन्त्रों में सैकड़ों हजारों शिराओं और धमनियों के उल्लेख से यह प्रतीत होताहै कि वैदिक काल के ऋषियों को इनका ज्ञान था(शतपथ ब्राह्मण में तीन सौ साठ अस्थियों का वर्णन मिलता है)। कीथ और मैक्डॉनल आदि ने भी लिखा है कि वैदिक कालीन भारतीय लोगों की अभिरूचि बहुत पहले ही शरीर शास्त्र के महत्त्वपूर्ण प्रश्नों की ओर आकृष्ट हो गई थी। 'वसन्त जी रेले' ने वैदिक मन्त्रों मेंआये हुए आन्तरिक नाड़ी चक्र तथा उनके अधिष्ठातृ देवों के विषय में बहुत सुन्दर प्रकाश डाला है। इस शोध पत्र में उक्त विषय को सप्रमाण विवेचित किया जायेगा।

वेदों में आयुर्वेद : एक चिन्तन की रूप-रेखा

बलबीर सिंह शास्त्री शोधच्छात्र गु. कां. वि.वि., हरिद्वार

1. यज्ञरूप परमेश्वर से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद की उत्पत्ति।
2. वेदों में शरीर रचना के तत्त्वों का उल्लेख तथा भौतिक शरीर के निर्माण के कारक।
3. शरीर निर्माण के पांच तत्त्वों से ही शरीर के रोगों का निदान।

4. वेदों में शक्ति संचय और आरोग्य की कामना।
5. जल से शरीर की चिकित्सा संबंधी वर्णन।
6. वेदों में गोमूत्र से व्यक्तियों के अनेक रोगों का निदान
7. सूर्य के प्रकाश, सूर्य की किरणों से मनुष्य शरीर के रोगों का इलाज संबन्धी वर्णन।
8. वेदों में वायु के द्वारा शरीर के विभिन्न रोगों का उपचार।
9. वेदों में वायु के द्वारा शरीर में अतुल शक्ति उत्पन्न करने का उपाय।
10. वेदों में पृश्निपर्णी नामक औषध से शरीर में अतुल शक्ति का संचार तथारोगों का निदान।
11. वेदों में अजाश्रृंग से अनेक रोगों का निदान।
12. वेदों में अन्नादि के द्वारा शरीर के रोगों का निदान।

वैदिक कालीन चिकित्सा पद्धति और उसकी प्रासंगिकता

अचला सोनकर प्रवक्ता(इतिहास), दयानन्द गर्ल्स कॉलेज, कानपुर

वर्तमान समय में आधुनिक चिकित्सा प्रणाली व तकनीक अपने चरमोत्कर्ष पर है। परन्तु काल की सीमा से परे प्राचीन वैदिक चिकित्सा पद्धति आज भी मानव के न केवल शारीरिक रोगों बल्कि मानसिक व्याधियों के निवारण में उसे चुनौती देती दिखाई देती है। यदि विषय के ज्ञान का प्रयोग वर्तमान समाज में उपयोगी सिद्ध होगा, तभी वह भविष्य हेतु सुरक्षित रह पाएगा और सन्दर्भ में हम वैदिक कालीन औषधीय ज्ञान की उपयोगिता का परीक्षण करेंगे।

चिकित्सा का सम्बन्ध यद्यपि अथर्ववेद से अधिक है तथापि अन्य वेदों में भी इस विषय के मन्त्र हैं। ऋग्वेद सबसे प्रथम माना जाता है, इसलिए इसमें आयु से सम्बन्धित मन्त्रों का होना स्वाभाविक है। इन मन्त्रों में सामान्यतः प्राकृतिक वस्तुओं से स्वास्थ्य की प्राप्ति का उल्लेख है और वह भी पृथक्-पृथक् रूप में। दो या अधिक वनस्पतियों का मिश्रण नहीं मिलता। इससे स्पष्ट है कि यह ज्ञान प्रारम्भिक था।

यजुर्वेद में औषधियों का उपयोग यज्ञकर्म तथा स्वास्थ्य के लिए विशेष होता था। वेद में औषधियों को राज्ञी कहा गयाहै।

अथर्ववेदमें वनस्पतियों का स्पष्ट नामोल्लेख कृमि सम्बन्धी जानकारी, शल्य चिकित्सा आदि विषय मिलते हैं। अथर्ववेद में कुछ वनस्पतियों का उल्लेख नाम से है। इनमें कुछ औषधियां स्पष्ट हैं और बहुत सी अनिर्णीत हैं। वनस्पतियों का उल्लेख अलग-अलग स्वतन्त्र रूप में ही मिलता है, इनका प्रयोग मिश्रित रूप में नहीं किया जाता था।

रोग शान्ति के लिए वेद में प्राकृतिक औषधियों के रूप में सूर्य, चन्द्र, अग्नि, मारुत और जल का वर्णन किया गयाहै। वेदों में ही यह उल्लिखित है कि मनुष्य शरीर पांच तत्त्वों से निर्मित है अर्थात् भूमि, जल, वायु, आकाश और अग्नि। चूँकि मानव शरीर का निर्माण इन्हीं तत्त्वों से हुआ है तो यदि शरीर में किसी प्रकार की व्याधि उत्पन्न होती है तो उनका उपचार इन्हीं तत्त्वों के द्वारा करना सम्भव है।

इन्हीं अमूल्य वैदिक ग्रन्थों और उनमें वर्णित चिकित्सा पद्धतियों और औषधियों की वर्तमान में व्याधि निवारण में उपयोगिता इस शोधपत्र का केन्द्र बिन्दु है।

अथर्ववेद में आयुर्वेद

मौ. अखलाक(शोधार्थी) हिन्दी विभाग, अ.मु.वि.वि. अलीगढ़

वेदों की संख्या मूलतः चारहै। इनमें से अथर्ववेद आयुर्वेद की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। अथर्ववेद में आयुर्वेद सम्बन्धी प्रकरण प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते हैं।

जिस शास्त्र में हित आयु, अहित आयु, सुख आयु, दुख आयु इन चार प्रकार की आयु के लिए हित-अहित आयु का मान

(प्रमाण तथा अप्रमाण) और आयु का स्वरूप प्रतिपादित हो वह आयुर्वेद कहलाता है। आयुर्वेद समुद्र के समान गम्भीर तथा आकाश के समान विस्तृत है जिसका प्रयोजन स्वस्थ पुरुष के स्वास्थ्य की रक्षा करना और व्याधि से पीड़ित मनुष्य के विकारों (रोगों) का शमन करना है।

स्वस्थ मनुष्य के लिए आयुर्वेद में दिनचर्या, निशाचर्या और ऋतुचर्या तथा तदनुसार आहार विहार का विधान बताया गया है और जो उसके अनुसार आचरण करता है वह निश्चय ही स्वस्थ रहता है। अथर्ववेद में प्रभूत मात्रा में आयुर्वेदीय विषयों का वर्णन होने से उसे अथर्ववेद का उपवेद कहा गया है। सुश्रुत संहिता, अष्टांग संग्रह तथा चरक-संहिता के वचनों से स्पष्ट है कि आयुर्वेद अथर्ववेद का उपवेद है।

अथर्ववेद में वनस्पतियों का स्पष्ट नामोल्लेख, कृमि सम्बन्धी जानकारी, शल्यचिकित्सा और प्रसूति विज्ञान आदि विषय मिलते हैं। अथर्ववेद का सम्बन्ध मनुष्य जीवन के साथ क्रियात्मक रूप में होने के कारण आयुर्वेद का सम्बन्ध अथर्ववेद से विशेष है।

विभिन्न ग्रन्थों के अनेक वचनों से स्पष्ट है कि आयुर्वेद का वेदों के साथ निकटतम सम्बन्ध है तथा उसे उपवेद के रूप स्वीकार किया गया है। अतः आयुर्वेद को वेदस्वरूप मानने या उसका वेदत्व स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

अग्निपुराण एवं गरुड पुराण में पुनर्नवा

डॉ. नन्दिता सिंघवी वरिष्ठव्याख्याता(संस्कृत), राज. स्ना. डूंगर महा. बीकानेर

सुदर्शन व्यास राज. स्ना. डूंगर महा. बीकानेर

पुनर्नवा का बहुवर्षायु क्षुप भारतवर्ष में वर्षा ऋतु में सब जगह उत्पन्न होता है। फलों के पक जाने पर यह सूख जाती है परन्तु मूल भूमि में पड़ा रहता है, वर्षा में पानी पड़ते ही पुनः हरी हो जाती है, अतः इसे 'पुनर्नवा' और 'वर्षाभू' कहते हैं।

यह श्वेत और लाल दो प्रकार की होती है। इसका लैटिन नाम Boerhavia diffusa linn है। भावप्रकाश निघण्टु (गुडूच्यादिवर्ग, 234, 236) केअनुसार श्वेत पुनर्नवा के संस्कृत नाम हैं- पुनर्नव, श्वेतमूल, शोथघ्नी, दीर्घपत्रिका, और लाल पुनर्नवा के संस्कृत नाम हैं- रक्तपुनर्नवा, रक्तपुष्पा, शिलाटिका, शोथघ्नी, क्षुद्रवर्षाभू, वृषकेतु और कठिल्लक। भावप्रकाश निघण्टु (गुडूच्यादि वर्ग 235, 237) के अनुसार श्वेत पुनर्नवा चरपरी (कटु), कसैली, अत्यन्त अग्निप्रदीपक और पाण्डु रोग, सूजन, वायु, विष, कफ, ब्रघ्न तथा उदर रोगनाशक है। रक्त पुनर्नवा कडवी, पाक में चरपरी, शीतल, हल्की, वातकारक, ग्राही और कफपित्त तथा रुधिरविकार नाशक है। गांवों में पुनर्नवा अधिकता से उत्पन्न होता है इसलिए इसका प्रयोग औषधि के रूप में किया जाता है। अग्नि पुराण एवं गरुड पुराण में पुनर्नवा का अनेक रोगों के निवारण में प्रयोग वर्णित है। यथा-

1. पुनर्नवा के क्वाथ एवं कल्क से सिद्ध किया गया घृत शोथरोग का विनाश करने में समर्थ होता है- ग.पु. 170.65।
2. बला, पुनर्नवा, एरण्डी, बृहतीद्वय, कण्टकारी और गोखरू का क्वाथ, हींग और सैंधा नमक मिलाकर पान करने से वातशूल विनष्ट हो जाता है।- वही 170.46
3. चावल के पानी में मिलाकर पीसे हुए श्वेतफल वाले पुनर्नवा का रस सर्पदंश के विष को दूर करता है। वही 172.20
4. दशमूल, गुडूचि, हरड़, देवदारु और पुनर्नवा का क्वाथ ज्वर और विद्रधि को शान्त करता है।- अग्निपुराण 285.33।

आयुर्वेद में धातु-प्रयोग

आरती गुप्ता (शोधच्छात्रा) संस्कृत विभाग, जम्मू वि.वि. जम्मू

आयुर्वेद वह शास्त्र है, जिसके द्वारा मनुष्य अपनी आयु को प्राप्त करता है। अथर्ववेद का उपवेद आयुर्वेद है। आयुर्वेद की संज्ञा पञ्चम वेद में हुई है। आयुर्वेद में प्रत्येक रोग का वर्णन हुआ है एवं उन रोगों के नाश के लिए औषधि रूप में रसायन का प्रयोग हुआ है।

जो दवा स्वस्थ पुरुष के ओज को बढ़ाती है, चातुर के रोग को दूर करती है तथा बुढ़ापा रूप व्याधि को दूर करती है, उसे

रसायन कहते हैं। रसायन शब्द दो शब्दों से बना है- रस और आयन। रस शब्द शरीर के रक्तादि धातुओं का बोध कराता है, अयन शब्द 'आप्यायन' का बोध कराता है, जिससे अभिप्राय है, वह सब उपाय जिनसे शरीर को विशेष लाभ प्राप्त हो। रसायन के अन्तर्गत आने वाली धातु भस्म का प्रयोग आयुर्वेद में रोगनाशक औषधि रूप में विस्तृत रूप से प्राप्त होता है। चरकसंहिता में सुवर्ण, पञ्चलोह, लोहमल, सिकता, मनःशिला, हरताल, मषि, लवण, गौरिक एवं अञ्जन की गणना भौम द्रव्यों में की गई है। एवं इनकी भस्म का प्रयोग औषधिरूप में हुआ है। सुश्रुत संहिता में त्रपु, पारद, अयस्कान्त आदि धातुओं का प्रयोग हुआ है, अष्टांगहृदयम् में अनेक धातुओं, रत्नों एवं अन्य खनिज द्रव्यों का वर्णनहुआ है, तथा शिलाजुत रसायन, धाज्यादि रसायन योग, लोहभस्मादि रसायन, शिलाजत्वादि रसायन में धातुओं की भस्म का प्रयोग हुआ है। काश्यप संहिता में भी सुवर्णप्राशन रसायन में स्वर्णभस्म एवं अक्षिरोग नाश के लिए सुवर्णभस्म, ताम्रभस्म आदि का प्रयोग हुआ है। अतः आयुर्वेद के ग्रन्थों में रोगनाशक के लिए अनेक रसायन में धातुभस्म का प्रयोग औषधिरूप में प्राप्त होता है, एवं प्रस्तुत शोधपत्र में इस विषय पर प्रकाश डाला जा रहा है।

शल्यचिकित्सा में प्रयुक्त औषध-द्रव्यों का वानस्पतिक विश्लेषण

कु. विमलेश सचान(शोधच्छात्रा) राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय कोटद्वार(गढ़वाल)

मानव प्रकृति से जितना दूर भागने का प्रयत्न करेगा उतना ही रोग एवं कष्टों से ग्रसित होगा। मानव का निर्माण प्रकृति की सन्तुलित क्रियाओं पर ही आधारित है आहार तथा अन्य लौकिक उपयोग के अतिरिक्त वनस्पतियों का औषध-रूप में प्रयोग महत्त्वपूर्ण है। जब से मनुष्य ने शरीर धारण किया रोगों का प्रादुर्भाव हुआ और तब से ही विघ्नों के निराकरण के लिए औषध का प्रारम्भ हुआ। औषधियाँ मानव जीवन के लिए अमृत हैं। अनेक रूप में वे मानव को लाभ पहुँचाती हैं काष्ठ फूल फल आदि के द्वारा वे मानव जाति के आच्छादन भरण-पोषण के निमित्त हैं वे ही मानव के लिए आरोग्यकर भैषज्य प्रदान कर उनका दुख भी दूर करती हैं।

विज्ञान के इस युग में आज भी आयुर्वेद लोकप्रिय है उसकी अपनी सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक विशेषताएँ भारत के जन मन में बस गयी हैं। यह आयुर्वेद की जनोपयोगी- प्रायोगिक मान्यता के आधार पर प्रमाणित है। विश्व की अन्य पद्धतियाँ यद्यपि अपने चरमोत्कर्ष पर हैं फिर भी आयुर्वेद ने इस नवीन वैज्ञानिक युग में अपना विशेष स्थान बनाया है। वैदिक साहित्य एवं कतिपय आयुर्वैदिक ग्रन्थों के आधार पर प्रस्तुत शोधपत्र को विषय बनाया गया है।

शल्य चिकित्सा में प्रयुक्त कुछ औषधियों के नाम इस प्रकार से हैं-

भद्रा, गुग्गुल, क्षुद्रपनस, बाँस, रोहिणी, लाक्षा अर्जुन, प्रियंगु, पाठा, विशल्या, शिलाची, कुश आदि औषधि का अर्थ ही वेदना को दूर करने वाली वस्तु है। ऋग्वेद में एक स्थान पर ओषधियों के विषय में कहा गया है कि हे मातृरूप औषधियों! तुम्हारे सैकड़ों जन्म स्थान हैं और तुम्हारे सहस्रों अंकुर पौधे हैं और तुम सब अनेक कर्म सामर्थ्यों से युक्त हो। तुम मुझे आरोग्य प्रदान करो।

शतं वो अम्ब धामानि सहस्रमुत वा रुहः।
अधा शतक्रत्वो यूथ मिमं मे अगदं कृत।। (ऋ. 10.97.2)

वेदों में वृक्षों का संवर्धन

डॉ. विरमा कुमारी शर्मा दिल्ली वि.वि., दिल्ली

नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यः (यजु. 16/17) वेद में वृक्षों की ही नहीं वरन् उनसे सम्बद्ध वनों, ओषधियों, आरण्यकों आदिकी स्तुति की गई है। ऋग्वेद में ओषधि सूक्त(10/97) है जिसमें 23 मन्त्र हैं। वृक्षों की महत्ता वायु के शुद्धिकरण और प्राणियों के खाद्य हेतु सर्वविदित है। पृथिवी से उत्पन्न हुई अनेक ओषधियाँ, फल, फूल, पत्ते, मूल, गोंद, रबर आदि पदार्थ हमारे उपयोग में आते हैं। वृक्षों का प्रभाव अच्छी वर्षा पर पड़ता है। आज पर्यावरण प्रदूषण विश्व के सम्मुख संकट बना हुआ है। वैदिक ऋषियों ने इस सत्य को समझते हुए ओषधियों को उनकी दिव्यता एवं पोषण विषयक गुणों के आश्रित माता के समान आदरणीय माना। याचक की प्रार्थना है, ओषधियाँ, अपनी रोग-निवारण क्षमता से उसके रोग का उपचार कर पूर्णतया निरोगी बना दें। इनके सौ जन्म-स्थान, हजारों प्रोह

कर्म और प्रभाव हैं। वैसे तो हजारों प्रकार के वृक्ष उपलब्ध होते हैं। अश्वत्थ वृक्ष हिन्दुओं का बहु पूज्य है। इसकी उपयोगिता वानस्पतिक गुणों एवं पर्यावरण संरक्षकत्व के कारण ही है। अथर्ववेदमें इसे 'देवसदन' माना है। दूषित वायु मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु है। उसे दूर करने की सामर्थ्य 'अश्वत्थ' में है। अश्वत्थ अर्थात् बल में स्थित। पीपल का वृक्ष सर्वत्र दर्शनीय है, पलाश का प्रायः नहीं। ओषधि यॉं जिसके सम्पूर्ण शरीर में आश्रय लेती हैं। उसके रोग को ऐसे दूर कर देती है, जैसे कोई शक्तिशाली राजा चोर को देश से निकाल देता है। ऋषि की पृथिवी जड़ों को नष्ट न करें। यज्ञ के निमित्त और पशुओं के भोजनादि हेतु भी वृक्षों के कुछ हिस्सों को काटना पड़ता है, तो भी समूल उन्मूलन न किया जाए। वृक्षादि वनस्पतियों का अस्तित्त्व उनके हरे-भरे रूप में है। उचित देखभाल और प्राकृतिक अनुशासन के अभाव में वृक्ष क्षतिग्रस्त हो जाते हैं, अथवा समग्र रूप में विनष्ट हो सकते हैं। हमें पर्यावरण में बढ़ते प्रदूषण को रोकने हेतु वृक्ष एवं ओषधि सम्पदा की देखभाल तथा संवर्धन की आवश्यकता है।

अथर्ववेद में हस्तस्पर्श-चिकित्सा (रेकी) : एक अनुशीलन

डॉ. गीता शुक्ला रीडर, संस्कृत विभाग, भ.दी.आ.क. स्नातकोत्तर महविद्यालय, लखीमपुरखीरी

शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ये जो ज्ञानेन्द्रियों के विषय हैं, ये कुछ अद्भुत ही प्रेरणादायक है। इनमें से स्पर्श का सम्बन्ध 'त्वक्' इन्द्रिय से है। पंचतत्त्वों में से वायु ही अनुभूति (त्वक् के माध्यम से) स्पर्श द्वारा ही होती है।

वेद में वायु को संतापहारक व रोग-निवारक देव कहा गया है- आवात वाहि भेषजं वात वाहि यद्रपः। त्वं हि विश्वभेजं देवानां दूत ईयसे।। अथर्व. 4.13.3 चरणस्पर्श के प्रत्युत्तर स्वरूप सिर अथवा पीठ पर हाथ रखकर आशीर्वाद कहना, माँ द्वारा बच्चे को सहलाना थपथपाना व पुचकारना, गुरु द्वारा शिष्यों अथवा पिता द्वारा पुत्र को पीठ ठोककर शाबासी दिया जाना आदि क्रियाकलाप हस्तस्पर्श का ही उदाहरण हैं। इसी प्रकार किसी के आगमन पर हाथ मिलाना, गले लगाना तथा स्वागतवचन कहना आदि को सामान्य रूप से 'रेकी' कह सकते हैं। उल्लेखनीय है कि स्पर्श के साथ प्रेरणास्पद वाक्यों के प्रयोग से उत्साह द्विगुणित होकर आनन्द व स्फूर्ति का संचार करता है।

जापानी भाषा के शब्द 'रेकी( )' को शाब्दिक अर्थ है 'सर्वव्यापी जीवन शक्ति'। यह शक्ति दुनिया की सर्वोच्च शक्ति है। रेकी कोई धर्म, पंथ या वर्ग नहीं है। और न ही तन्त्र-मन्त्र व सम्मोहन आदि से इसका कोई सम्बन्ध है।

हजारों वर्ष पूर्व भारत में गहन चिन्तन के परिणाम स्वरूप इस ज्ञान का उपयोग तन मन व आत्मा के उत्थान को स्थापित करते हुए एकात्मकता की भावना की ओर ले जाने के लिए किया गया। प्राचीन संस्कृति में यह विद्या बहुत कम व्यक्तियों को ही प्राप्त थी तथा इस गुप्तविद्या को मौखिक परम्परा द्वारा सुरक्षित रखा गया।

जापान के एक विश्वविद्यालय के प्रधान आचार्य 'डॉ. मिकाओ उसुई' से एक बार उनके एक शिष्य ने प्रश्न किया कि- 'क्या धार्मिक ग्रन्थों में 'हीलिंग टच' अर्थात् 'हाथ लगाने से रोगमुक्ति' का वर्णन उपलब्ध होता है? डॉ उसुई इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सके अतः उन्होंने प्रधान आचार्य पद का त्याग दिया तथा लक्ष्य बनाया और सतत् प्रयत्न के पश्चात् इस विधि के द्वारा स्वयं को व दूसरों को रोगमुक्त किया।

वेद ने कई शताब्दियों पूर्व ही यह विद्या प्रकाशित की थी। ऋषि-मुनि अभ्यास के द्वारा रोगियों को आरोग्य प्रदान किया करते थे। आज भी मनुष्य इसे प्राप्त कर के इसका लाभ उठा सकता है। आज कल यह विद्या 'मेसोरिज्म' के नाम से विख्यात है। और यह शब्द एकयूरोपियन 'मेस्सर' के नाम से बना है। एक मन्त्र जिसमें 'रेकी' का वर्णन है उद्धृत है-

अयं में हस्तो भगवानयं मे भगवत्तरः।
अयं मे विश्वभेषजोऽयं शिवाभिमर्शनः।। अथर्व. 4.13.6

अर्थात् 'यह मेरा हाथ सामर्थ्यशाली है और मेरा दूसरा हाथ तो अधिक ही प्रभावशाली है। मेरे इस एक हाथ में सब रोग दूर करने वाली शक्तियाँ हैं और दूसरे हाथ में मंगल करने का धर्म है।'

इसी प्रकार अन्य मन्त्र भी हैं जिन्हें शोध-पत्र में सविस्तार वर्णित किया गया है। जैसे एलोपैथ, आयुर्वेद, होम्योपैथ, एक्यूपंचर तथा पंचतत्त्वों से चिकित्सा आदि चिकित्सा विधियाँ है वैसे ही रेकी भी एक चिकित्सा-विधि है।

शतपथ ब्राह्मण में उदुम्बर

डॉ. नन्दिता सिंघवी व्याख्याता, संस्कृत, राजकीय डूंगर महाविद्यालय, बीकानेर(राजस्थान)
रविन्द्र कुमार आचार्य एम.ए.(संस्कृत), बीकानेर

उदुम्बर के वृक्ष बड़े विशाल एवं हर प्रकार की उत्तम भूमि में भारत में प्रायः सभी जगह पाये जाते हैं। यह क्षीरीवृक्ष सर्वदा हरित रहने वाला लगभग दस मीटर ऊंचा होता है। इसकी छाल रक्ताभ धूसर होती है। इसके पत्ते तीन चार इंच लम्बे, डेढ़ से तीन इंच तक चौड़े लटवाकर भालाकार, किंचित् तीक्ष्णाग्र, तीन शिराओं से युक्त स्निग्ध एवं चमकीले होते हैं। इसके पत्ते से मिलते जुलते होते हैं किन्तु उनसे कुछ छोटे होते हैं। इसके पुष्प गुप्तरूपेण, सूक्ष्म, पुष्पकर्णिकान्तर्गत होते हैं। यह यज्ञिय वृक्ष है, जिसका शतपथ ब्राह्मण में अत्यधिक वर्णन मिलता है। ऋग्वेद संहिता तथा यजुर्वेद संहिता में यह नाम अज्ञात हैं, किन्तु अथर्ववेद संहिता में इसे महान् व भद्र वृक्षा माना गया है:- महान् भद्र उदुम्बरः(20.136.15)। अथर्ववेद (19.31.1-14) के 14 मन्त्रों में औदुम्बरमणि का अत्यधिक माहात्म्य वर्णित है। उदुम्बर, जन्तु फल, यज्ञांग, हेमदुग्धक- ये गूलर के संस्कृत नाम हैं(भावप्रकाश निघण्टु, वटादिवर्ग, 8)। उदुम्बर के तीन भेद पाये जाते हैं- प्रथम, यज्ञोदुम्बर, द्वितीय नदी उदुम्बर और तृतीय काकोदुम्बर।

शतपथ ब्राह्मण के अनुसार उदुम्बर ऊर्क स्वरूप है। ऊर्क् का नाम ही अन्न है- अन्नं वा ऽ ऊर्गुदुम्बरः। वस्तुतः ऊर्क् अन्न का कार्य हैं पं. मोतीलाल शास्त्री(शतपथ ब्राह्म तृतीयकाण्डान्तर्गत, द्वितीय खण्ड, पृ. 157) के अनुसार- ऊर्क् रस दिव्यलोक की वस्तु है। ऊर्क् रस यदि ज्यादा हो जाता है तो दिव्याकर्षण की अधिकता के कारण पार्थित आकर्षण कमजोर हो जाता है अतएव हम हल्के हो जाते हैं। अम्बर आकाश को कहते हैं। चूंकि ऊर्क् से ऊँचे आकाश कीओर हमारी आत्मा खिंच जाती है। हमारे में एक प्रकार कीऐसी स्फूर्ति आ जाती ह, जिसके आ जाने से हम उछलते रहते हैं। हमारी आत्मा ऊँची उठ रहती है। अतएव इस रस को उदुम्बर कहते हैं। परोक्षप्रिय देवता उदुम्बर को ही उदुम्बर कहा करते हैं। यह उदुम्बर प्राण- ऊर्क् प्राण चूंकि गूलर के पक्ष में रहता है, अतएव गूलर को औदुम्बर कहा जाता है। विश्व में जितनी भी वनस्पतियाँ हैं, उन सबमें ऊर्क् प्राण रहता है, परन्तु गूलर में बहुत ही अधिक मात्रा में रहता है। शतपथ ब्राह्मण में भी इसे सभी वनस्पतियों का प्रतीक कहा गया है- **अथो सर्वऽएते वनस्पतयः यदुदुम्बरः। सर्वे वाऽएवं वनस्पतयो यन्तुमर्हन्ति**(6.7.1.13)। उदुम्बर प्रजापति का अपना वृक्ष हैं(वही, 4.6.18)।

उदुम्बर की उत्पत्ति के सम्बन्ध में प्राप्त एक उपाख्यान के अनुसार जब सभी इतर वृक्षों ने असुरों का पक्ष लिया, तब उदुम्बर अकेला देवों के पक्ष में रहा(वही, 6.6.3.2)

वेदों में सूर्यदेव और आरोग्य

डॉ. इन्दु तिवारी रीडर(संस्कृत), डी.एस.एन. कॉलेज, उन्नाव

संस्कृत वाङ्मय में सूर्यदेव का स्थान अप्रतिम है। समस्त वेद, पुराण, स्मृति, रामायण, महाभारतादि ग्रन्थ भगवान भास्कर की महिमा से परिप्लुत हैं। 'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च', 'आदित्यो ह वै प्राणः', 'सर्वदेवमयो रविः', कालाचक्रप्रणेतारं श्री सूर्यनारायणम्' आदि वैदिक एवं धर्मशास्त्रीय वचनों के आलोक में यह कहना सर्वथा उपयुक्त होगा कि चराचर विश्व की सत्ता सूर्यतत्त्व से ही है। 'आरोग्यं भास्करादिच्छेत्' से स्वतः ही यह विदित होता है कि सूर्य आरोग्य प्रदान करने वाले देवता हैं। मानसिक और बाह्य दोनों रोगों की निवृत्ति सूर्योपासना से हो जाती है। सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद में स्पष्ट प्रमाण हैं कि सूर्य के प्रकाश से रोगोत्पादक जन्तु नष्ट हो जाते हैं। पुराणों में भी सूर्याराधना से आरोग्यलाभ के वर्णन हैं। स्वस्थ जीवन के लिए सूर्य की आवश्यकता एवं महत्ता को देखकर ही हमारे ऋषियों एवं मुनियों ने सूर्योपासना और सूर्य नमस्कार आदि का विधान किया था। आधुनिक चिकित्साशास्त्रियों ने भी सूर्य की स्वास्थ्यदायिनी शक्ति को पहचानकर उसका चिकित्सा की दृष्टि से अनेक प्रकार से प्रयोग किया है। पाश्चात्य देशों ने भी इस पद्धति के गुणों को अपनाया है। उपर्युक्त अतिसंक्षिप्त विवेचन के परिप्रेक्ष्य में यही कहना समीचीन प्रतीत होता है कि आरोग्य प्रदाता भगवान भास्कर की उपासना मानव मात्र के लिये नितान्त वाञ्छनीय है।

अथर्ववेद में आयुर्वेद का महत्व

डॉ. किरन त्रिपाठी जुहारी देवी गर्ल्स पो.ग्रे. कालेज कानपुर

डॉ. रामानुज त्रिपाठी रीडर(हिन्दीविभाग), डी.एस.एन.पीजी. कॉलेज उन्नाव

आयुर्वेद के प्रमुख आचार्य चरक एवं सुश्रुत ने आयुर्वेद को 'अथर्ववेद' का उपवेद माना है। अथर्ववेद के यथार्थ ज्ञान के लिए आयुर्वेद का ज्ञान परमावश्यक है और ये दोनों अन्योन्याश्रित जैसे हैं। अथर्ववेद में मानव के शतायु होने का उल्लेख अनेक बार किया गया है और यह भी बताया गया है कि शतायु होने के साथ ही उसका जीवन नीरोग और स्वस्थ हो। इसके लिए भोजन, जल, दूध आदि सभी भोज्य तथा पेय वस्तुएँ निर्दोष एवं विषहीन हों-''यदश्नासि यत् पिबसि ....अत्रम अविषं कृणोमि।'' अथर्ववेद में वैद्य या चिकित्सक के कर्तव्य को रेखांकित करते हुए लिखा गया है कि वह रोगों का निवारण करे उनके विस्तार और सीमा को घटावे, ओषधि निर्माण करे और उससे मनुष्यों और पशुओं आदि का जीवन निरोग रखे। अथर्ववेद में चिकित्सालयों के साथ-साथ ओषधियों का विस्तार से वर्णन एवं वर्गीकरण किया गया है-इनमें से रंग, रूप और आकार भेद के आधार पर प्रमुख हैं। इनकी उत्पत्ति, पहाड़, समतल भूमि, नदी, तालाब, समुद्र आदि विविध स्थानों में बतलाई गई।

अथर्ववेद में शरीर को सुन्दर गृह मानते हुए इसका निर्माण तीन धातुओं- वात, पित्त, कफ से माना गया है। आयुर्वेद का मुख्य उद्देश्य यह है कि शरीर को त्रिविध (आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक) तापों से मुक्त किया जाय। अथर्ववेद में पित्त का उल्लेख अनेक मंत्रों में मिलता है। अथर्ववेद में जल चिकित्सा के अन्तर्गत जल को स्वयं ओषधि बतलाया गया है। इसे सर्वोत्तम वैद्य मानते हुए इसके सही उपयोग से सभी तरह के वंश परम्परागत रोग भी नष्ट किये जा सकते हैं। अथर्ववेद में सूर्य एवं चन्द्र चिकित्सा को भी विशेष महत्व दिया गया है। इन चिकित्साओं के अतिरिक्त यज्ञ, शल्य, सर्प, कृमि और मानसिक रोग चिकित्सा आदि का वर्णन भी मिलता है। अथर्ववेद में एक पत्थर (फिटकिरी) का उल्लेख है, जो सभी तरह के घाव को ठीक करने में उपयोगी है। खून रोकने के लिए 'विषाणका' ओषधि का वर्णन है। पीपर के गुणों का उल्लेख भी अथर्ववेद में मिलता है- यह जीवनदान देने में समर्थ है और वातरोग, उन्माद, कफनाशक, खाँसी, उदर विकार, बुखार, बवासीर, गठिया और दर्द आदि में विशेष लाभदायक है जिसका वर्णन भावप्रकाश निघण्टु में मिलता है।

समग्र रूप से अनुशीलन करने पर अथर्ववेद, आयुर्वेद का विशद् वेद सिद्ध होता है। इसमें जीवन विद्या के असंख्य मंत्र हैं, जिन्हें मानव जीवन को नीरोग बनाने के लिए उपयोग में लाया जा सकता है और आयुर्वेद विषयक गहनतम शोध भी किया जा सकता है। निष्कर्ष रूप में यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि 'अथर्ववेद' आयुर्वेद की अक्षय निधि है और वैदिक साहित्य में निदान एवं चिकित्सा दोनों दृष्टियों से यह वेद महत्वपूर्ण हैं।

वेदों में आयुर्वेद

प्रो. दक्षा जंरिवत प्रजापति श्रीमति सद्गुणा सी.यु.आर्ट्स कॉलेज फोर गर्ल्स अहमदाबाद, गुजरात

आयुर्वेद का मुख्य लक्ष्य रोगों को नीरोग और दीर्घ बनाना है। जिसका उत्स वेद है। गोपथब्राह्मण में भेषज को अथर्व कहा गयाहै येऽथर्वाणस्तद् भेषजम्(1.3.4) जो अथर्वा है वह भेषज है। निरुक्त में भेषज का एक पर्याय प्रतिषेध है। थर्वतिश्चरति कर्मा तत्प्रतिषेधः (निरुक्त 11.19) थर्वति का अर्थ है गति। औषध बढते हुए रोग को रोकतीहै। इसलिए उसे 'अथर्वा' कहते हैं। अथर्ववेद के नामकरण का भी यही कारण है। यही अथर्वा मुखरूप से अथर्ववेद में प्रतिपादित है, भेषज से अमृतत्त्व की प्राप्ति होती है, और वही ब्रह्मपद (निर्वाण) है।

वस्तुतः आयुर्वेद अथर्ववेद का उपवेद है। अथर्ववेद दान, स्वस्त्य, बलि, मंगल, होम, नियम, प्रायश्चित आदि के द्वारा देवव्यपाश्रय-चिकित्सा का विधान तथारोगनाशक वनस्पतियों के विधियों, प्रयोगों द्वारा युक्तिव्यप्राश्रय चिकित्सा का उपदेश करता है। आचार्य चरक एवं सुश्रुत ने आयुर्वेद को अथर्ववेद के रूप में माना है, पर 'कश्यप' ने आयुर्वेद को ही पंचम वेद कहा है, क्योंकि वेद आयुर्वेद पर ही आश्रित है। किसी भी वेद के अध्येता या वेदांग के अध्येता जब वेदना से आक्रान्त होते हैं, तब आयुर्वेद की ही

शरण में जाते हैं। आयुर्वेद धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का मूल है, क्योंकि स्वस्थ पुरुष ही धार्मिक या लौकिक क्रियाओं का सम्पादन कर सकता है और स्वास्थ्य प्रदान करने में आयुर्वेद ही समर्थ है। जिस प्रकार दक्षिण हाथ में पांच अंगुलियों में अंगूठा उनका अधिपति और प्रधान होता है, उसी प्रकार ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद से भिन्न 'आयुर्वेद' पंचम वेद है। आयुर्वेद को पंचम वेद मानने अथवा वेदों को आयुर्वेद पर आश्रित मानने की परोक्ष व्यवस्था यही है कि वेदों में आयुर्वेद की प्रचुर सामग्री है।

अथर्ववेद के सैंकड़ों सूक्तों के मन्त्र आयुर्वेद से सम्बन्ध है। इसमें त्रिदोषवाद, शरीर में अग्नि की स्थिति, पाचनक्रिया शरीर के अंग-प्रत्यंग के नाम, रोगों के नाम, कृमियों के विस्तृत वर्णन, कृमिघ्न औषधियों का निर्देश, चिकित्सा के विविध प्रकार देवव्यपाश्रय युक्ति-व्यपाश्रय आदि, विष-विज्ञान के विषय, शल्य, शलाक्य, भूतविद्या, रसायन, वाजीकरण, द्रव्यगुण के विषय एवं वनस्पतियों का विशद् रूप में वर्णन किया गया है। वेदों में अश्वमेध यज्ञ के समय 'भेषज-विद्या' सम्बन्धी आख्यान का ज्ञान होना भेषज विद्या के महत्त्व को प्रतिपादित करता है।

वैदिक मन्त्रों में तीन सौ आठ अस्थियों का उल्लेख है। मन्त्रों में सैकड़ों हजारों शिराओं और धमनियों के उल्लेख से यह प्रतीत होता है कि वैदिक काल से ऋषियों को इनका ज्ञान था। कीथ और मेक्डोनल आदि ने भी लिखा है कि वैदिक कालीन भारतीय लोगों की अभिरुचि बहुत पहले ही शरीरशास्त्र के महत्त्वपूर्ण प्रश्नों की ओर आकृष्ट हो गई थी।

संक्षेप प्रस्तुत शोधलेख में आयुर्वेद के अन्तर्गत शल्यचिकित्सा, वायुचिकित्सा, जल चिकित्सा, अग्नि एवं सूर्य चिकित्सा आदि के बारे में वेदों में दर्शाए गए संदर्भो के आधार पर सविस्तार चर्चा की गई है।

आयुर्वेद और स्वास्थ्य

डॉ. आचार्य ब्रह्मदत्त आर्य आर्ष गुरुकुल, पूर्व मिदनापुर (पश्चिम बंगाल)

आप्त वाक्य है शतायुर्वैपुरुषः। हम कम से कम सौ वर्ष तक स्वस्थ निरोग एवं प्रसन्नता पूर्वक जीवन धारण करें। मा पुरा जरसो मृथाः। अथर्ववेद....... बुढ़ापा से पहले न मरें। किन्तु हम विषयों में अति योग, अनायोग, मिथ्यायोग के कारण शरीर को अतिशीघ्र रोगग्रस्त बना लेते हैं और सारा जीवन दुःखी होकर जीते हैं। महर्षि चरक ने यद्यपि सभी रोगों का मूल कारण प्रज्ञा अपराध को स्वीकार किया है। **प्रज्ञापराधो हि मूलं रोगाणाम्।** किन्तु उन रोगों के मूल ने अप्रशस्त आहार विहार का भी कारण मानते हैं। जिससे त्रिदोष (वात-पित्त-कफ) कुपित होकर विविध रोगों को उत्पन्न कर लेते हैं। आयुर्वेद में (1) आगन्तुक, (2) शारीरिक, (3) मानसिक, (4) स्वाभाविक रोगों की चर्चा आयी है। स्वाभाविक रोग अर्थात् भूख, प्यास, निद्रा, बुढ़ापा, मृत्यु आदि माना गया है। यद्यपि बुढ़ापा और मृत्यु से हम बच नहीं पायेंगे, किन्तु हम अकाल मृत्यु से अवश्य बच सकते हैं, जिसके लिये आयुर्वेद में वर्णित आचरणीय अनाचरणीय, पथ्य-अपथ्य के नियम तथा व्याधि ग्रस्त होने पर बुद्धि पूर्वक औषधोपचार द्वारा शरीर को स्वस्थ रख सकते हैं एवं आध्यात्मिक ज्ञान, शास्त्र-विज्ञान, धीरता, स्थिर-प्रज्ञता, स्मरण शक्ति और समाधि से मन को एकाग्र करके मन को स्वस्थ रख सकते हैं। यही आयुर्वेद का मूल तात्पर्य है।

वेदों में आयुर्विज्ञान

प्रो. एम. डी. दवे, संस्कृत विभागाध्यक्ष, तोलाणी आर्टस् एण्ड सायन्स कॉलेज, आदिपुर, गुजरात

वेद अनेक विद्याओं का भण्डार है विविध विद्याओं की तरह वेदों में आयुर्विज्ञान या चिकित्सा विज्ञान का भी पर्याप्त वर्णन मिलता है। अथर्ववेद को आयुर्वेद या भेषवेद आदि नामों से भी जाना जाता है अथर्ववेद में आयुर्वेद की विषय वस्तु प्रचुर मात्रा में प्राप्त होती है। आयुर्वेद को अथर्ववेद का उपवेद माना गया है।

वैदिक ऋषि आयुषवृद्धि के लिये अनेकत्र निर्देश करते हैं। शुद्ध आचार विचार एवं आहार व्यवहार से निरोगता पूर्वक दीर्घायु को प्राप्त किया जा सकता है और यदि कोई रोग हो ही जाय तो औषधियों द्वारा उसका निराकरण किया जा सकता है ऋग्वेद के निम्नलिखित मंत्र में आयुर्वेद के तत्त्वों एवं सिद्धांतों का उत्पादन किया गया है।

त्रिनो अस्विना दिव्यानी भेषजा त्रि: पार्थिवानी त्रिरुदत्त मदभ्या:।
ओमानं शर्योर्ममकाय सूनवे त्रिधातु शर्म वहतं शुभस्पती।।

इस मंत्र में शरीर की वात पित एवं कफ नामक त्रिधातुओं का एवं वनस्पति तथा लोह स्वर्ण आदि धातुओं से रोग निवारण की बात कही गयी है। चिकित्सा विज्ञान का मूल आधार शरीर विज्ञान है। चिकित्सा करने हेतु चिकित्सक को व्यक्ति के शारीरिक अंगों, उनकी बनावट एवं उनकी विशिष्ट क्रियाओं का ज्ञान होना आवश्यक है। अथर्ववेद के दसवें काण्ड में पार्ष्णी नामक सूक्त की 33 ऋचाओं में प्रश्नोत्तर के रुप में संपूर्ण मानव शरीर की रचना को इतने सुंदर तरीके से व्यक्त किया गया है कि मानो किसी मानव शरीर का अस्थि पंजर सामने रखकर उसकी एक-एक अस्थियों का वर्णन किया जा रहा है। पार्ष्णी सूक्त मानव शरीर रचना का अद्‌भुत वैज्ञानिक विवरण प्रस्तुत करता है अथर्ववेद में दसम् कांड के आठवें सूत्र का चौथा मंत्र शरीर की 360 अस्थियों का उल्लेख करता है। प्रस्तुत शोधपत्र में विस्तार से उक्त विषय पर प्रकाश डाला जायेगा।

अथर्ववेद में औषधीय तत्वों का विवेचन

डॉ0 संजय कुमार चतुर्वेदी सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी

अथर्ववेद में प्रसंगवश ही अनेक तत्वों की चर्चा हुई है अत: जो औषधिविज्ञान के तथ्यों का विवेचन तत्कालीन श्रुतियों के औषधि-विषयक गहन बोधि का निर्देशन मात्र है। इतना ही नहीं वास्तव में हमारी वर्तमान चिकित्सा प्रणाली शरीर के अंग प्रत्यंग तथा नाड़ी विज्ञान, अंग की औषधियों, पेड़-पौधों तथा उनके गुण दोष जो कुछ वर्तमान में उपलब्ध है ये सभी अथर्वगिंरस परम्परा पर ही अवलम्बित है। वेदकालीन औषधिविज्ञान पूर्णतया विकसित था। फिर भी कुछ औषधियां सन्दिग्ध है जिनका निर्णय अभी तक नहीं हो सकता। ऐसी औषधि के लिए विद्वान् वैद्यों के लिए हमारे लिए खोज की बात है।

अथर्ववेद अन्य वेदों की भांति मात्र ईश्वर वाणी है। इसके अधिकांश सूक्त, उपात्य, उदार, धार्मिक एवं आध्यात्मिक है। अथर्ववेद एक दृष्टि से पावन, पुनीत एवं जनकल्याणत्मक है।

वैदिक साहित्य में आयुर्वेद

निधि गोस्वामी (शोधच्छात्रा) काशी हिन्दू वि.वि., वाराणसी

आयुर्वेद आयु का शास्त्र है जिसमें आयु सम्बन्धी जो ज्ञान हो वह आयुर्वेद है। आयुर्वेद के सम्बन्ध में ये धारणा प्राचीन काल से चली आ रही है कि ये शाश्वत और अनादि है। इसकी पुष्टि के लिये अनेक तर्क दिये जाते हैं तथा इसी क्रम में ब्रह्मा के द्वारा आयुर्वेद का स्मरण करके उसे व्यवस्थित रूप से उपनिषद किया जिसे ब्रह्म संहिता के निर्माण के रूप में जाना जाता हैं इन्होंने यह ज्ञान प्रजापति को दिया, प्रजापति ने अश्विनीकुमारों को उन्होंने इन्द्र को तथा इन्द्र ने भारद्वाज को दिया इसे आयुर्वेद परम्परा के नाम से जाना जाता है। वैदिक काल एवं संहिता काल आयुर्वेदीय स्वरूप की व्यवस्था का काल था। एतएव आयुर्वेद ज्ञान सृष्टि के प्रारम्भ से ही परम्परा के माध्यम से निरन्तर प्रवाहित होता आ रहा है। आयुर्वेद का स्मरण सृष्टि के प्रथम उपदेष्टा 'ब्रह्मा' ने किया है। 'ब्रह्मा स्मृत्वायुषो वेदं' ...।

आचार्य चरक ने आयुर्वेद के शाश्वता के तीन कारण दिये हैं -- (क) अनादित्व, (ख) स्वभा व नित्यत्व एवं (ग) स्वभावसंसिद्धलक्षणत्त्व। आयुर्वेद में यद्यपि शरीर विज्ञान की विधियाँ बताई गई है तथापि उसकी आयु सहस्त्रों वर्ष प्राचीन है। ऋग्वेद में आयुर्वेद के जन्मदाता दिवोदास, भारद्वाज और अश्विनी कुमार आदि प्राचीन आचार्यों एवं परम ऋषियों का उल्लेख प्राप्त होता है। (ऋग्वेद 1/12/16) काश्यप संहिता में आयुर्वेद का उद्‌भव अर्थोपनिषद के रूप में कहा गया है। ऋक्, यजु, साम और अथर्व चारों वेदों में आयुर्वेद सम्बन्धी विवरण प्राप्त होते हैं जिसमें विशेष औषधियां के बारे में वर्णन किया गया है। अथर्ववेद में अन्य सभी वेदों की अपेक्षा विस्तृत और विभक्त रूप से आयुर्वेद का वर्णन प्राप्त होता है। इसलिए इसे अथर्ववेद का उपवेद मानते हैं तथा इसी में विशेष भक्ति, रूचि दिखाने का उपदेश दिया गया है।

तत्र भिषजा पृष्ठनैवं चतुर्णाक्सामयजुर्थव वेदानामात्मनेऽथर्ववेदे भक्तिरादेश्या....। (च० सू० ३०/३१)

अतएव आयुर्वेदीय सभी सम्बद्ध होने के कारण विशेष उपमा से अलंकृत है।

वेदों में स्त्री एवं पुरुष गुप्तरोग-चिकित्सा

डॉ. नीरज शास्त्री, गु.कां.वि.वि.हरिद्वार

मनुष्य सुख चाहता है और सुख का साधन शरीर है। अथर्ववेद कहता है कि - प्राणी मात्र को बलवान और रुचिकर इन्द्रियों का यह शरीर अत्यन्त प्रिय है। अन्त में उसकी मृत्यु अवश्य होनी है। परन्तु पूर्ण आयु के भोगे बिना न किसी को मरना चाहिए और न कोई मरना चाहता है। सबकी यही इच्छा रहती है कि मैं पूर्ण आयु को प्राप्त करूँ। आयु का उपयोग और उपभोग करना स्वाभाविक है। मनुष्य की पूर्ण आयु सौ वर्ष और इससे भी अधिक हो सकती है। इस शोधपत्र में हम आयु का ह्रास करने वाले, स्त्री एवं पुरुषों के गुप्तरोगों की चिकित्सा का वर्णन शोध पत्र वाचन के समय करेंगे।

वेद, अवेस्ता और सोम-औषधि

उमेश कुमार सिंह जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली

वेद विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ माने जाते हैं तथा अवेस्ता को भी प्राचीनतम ग्रन्थों में ही सम्मिलित किया जाता है। वेद और अवेस्ता के प्रतिपाद्य विषय भी पर्याप्त समानता रखते हैं। वेदों के मित्र, सूर्य, चन्द्र, त्रित, सोम, अर्यमा और नासत्य आदि देवता अवेस्ता में भी स्तुत्य माने गए हैं। सोम और सूर्य पर अवेस्ता में कई सूक्त पाए जाते हैं जिनसे यह प्रतीत होता है कि दोनों ही ग्रन्थों का प्रणयन समान स्थान और समान काल में हुआ होगा। वेदों के प्रचार-प्रसार का क्षेत्र जहाँ पर आर्यावर्त था वहीं अवेस्ता का प्रसार वर्तमान ईरान में था। सम्भव है कि दोनों ही धर्मग्रन्थों से सम्बन्धित मानव समाज का विकास हड़प्पा सभ्यता में ही हुआ हो किन्तु इन समानताओं के साथ अनेक विषमताएँ भी प्राप्त होती हैं जिनसे वेद और अवेस्ता के बीच भारी विरोधाभास उत्पन्न हो जाता है। वेद में देवों की स्तुति की गई है और असुरों को हेय माना गया है तो वहीं अवेस्ता में असुर की स्तुति की गई है और देवों-देवियों को निन्द्य माना गया है। एक को देवसंस्कृति का तो दूसरे को असुर संस्कृति का उपासक माना जा सकता है। किन्तु वैदिक दृष्टि में देव और असुर दोनों में कोई अन्तर नहीं है अपितु दोनों ही एक दूसरे के पर्यायवाची माने गए हैं। सोम के विषय में भी वेद और अवेस्ता दोनों एकमत हैं तथा दोनों ही सोम के दिव्य स्वरूप को स्वीकार करते हैं। सोम का महत्त्व आयुर्वेद तथा वेद दोनों मे ही अत्यधिक है। ऋग्वेद में इन्द्र और अग्नि के पश्चात् सोम की ही सर्वाधिक स्तुति हुई है। ऋग्वेद में जहाँ पर इन्द्र के ऊपर 250, अग्नि पर 200 सूक्त प्राप्त होते हैं वहीं सोम को लक्ष्य करके 150 सूक्त मिलते हैं। यह संख्या अन्य देवताओं पर प्राप्त होने वाले सूक्तों से अधिक है। ऋग्वेद का पूरा नवम् मण्डल सोम को ही समर्पित है तथा अधिकांश ऋषियों के द्वारा सोम की स्तुति भी की गई है। जातक कथाओं में सोम का उल्लेख वृक्ष के रूप में किया गया है तथा इसे ''सोमरुक्ख'' की संज्ञा दी गई है। सुश्रुत संहिता में सोम लता के रूप में कहा गया है। सोम की व्यापकता इतनी अधिक है कि इसका वर्णन अवेस्ता में भी बहुशः मिलता है तथा वेदों के ही समान कई सूक्तों में स्तुति की गई है। अवेस्ता में भी सोम को औषधियों का पति स्वीकार किया गया है। इसी परम्परा को आगे बढ़ाते हुए आयुर्वेद में भी सोम को एक दिव्य औषधि माना गया है तथा आचार्य सुश्रुत नें उसके चौबीस भेद बतलाए हैं-

ब्रह्मादयोऽसृजन् पूर्वममृतं सोम संज्ञितम् । जरामृत्युविनाशाय विधानं तस्य वक्ष्यते ।।
एक एव खलु भगवान् सोमः स्थाननामाकृतिवीर्यविशेषैश्चतुर्विंशतिधा भिद्यते ।।

सुश्रुत.चिकित्सास्थान, २९,३-४

इस प्रकार प्रस्तुत शोधपत्र में सोम औषधि के वैदिक स्वरूप, अवेस्ता में उसके विषय में प्राप्त सामग्री तथा उसके आयुर्वैदिक पक्ष पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

आयुर्वेद की वैज्ञानिकता एवं विशिष्टता

डॉ. सुरेश चन्द्र त्यागी गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर, हरिद्वार।

विज्ञान सार्वभौम, सार्वदेशिक एवं सार्वकालिक होता है। आयुर्वेद 'आयु के विज्ञान' का शास्त्र है। चरक एवं सुश्रुत के अनुसार यह विज्ञान, जगत् को पञ्चभौतिक मानकर चलता है। आयुर्वेद के मौलिक सिद्धान्त, पंच महाभूत, त्रिदोष, रस-गुण-वीर्य-विपाक आदि सभी का आधार विज्ञान है। आयुर्वेद रोग को समूल नष्ट करता है। यह मानव की सम्पूर्ण समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करते वाला 'विज्ञान' है।

आयुर्वेद स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य-संरक्षण तथा रुग्ण व्यक्ति को व्याधि मुक्त करने का ही कार्य नहीं करता, अपितु वह एक सर्वोच्च दर्शन है, जो आध्यात्मिक आधिभौतिक तथा आधिदैविक तापों से सर्वथा विमुक्त होने का पथप्रदर्शन भी करता है। इसकी सीमाओं को रेखाङ्कित नहीं किया जा सकता है। त्रिकालज्ञ आप्त महर्षियों ने आयुर्वेद की अनेक शाखा-प्रशाखाओं का विस्तार किया। जैसे- आयुर्वेद, मानवायुर्वेद, वृक्षायुर्वेद आदि अनेक शाखाओं में विस्तीर्ण है। इसकी कतिपय उल्लेखनीय विशेषताएँ निम्नवत् हैं-

1. यह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के मूल आरोग्य का प्रदाता है।
2. आयुर्वेद स्वस्थ पुरुष के स्वास्थ्य संरक्षण को प्रथम लक्ष्य मानता है।
3. इसमें 'पुरुष' को शरीर के मूल आधार पर प्रतिष्ठित माना गया है।
4. यह मैत्री, करुणा, और प्रेम के प्रशस्त पथ का निर्देशन करता है।
5. आयुर्वेद में जनपदोध्वंस(महामारी) से बचने के अकाट्य उपदेश हैं।
6. यह सदाचार को जीवन की पृष्ठभूमि मानकर 'आचार रसायन' का निर्देशक है।
7. आयुर्वेद समदोष, समाग्नि, समधातुमलक्रिय और प्रसन्नात्मेन्द्रियमन पुरुष को ही स्वस्थ मानता है।

अथर्ववेद विषचिकित्सा

डॉ० अहिल्या नायक हरिद्वार

ज्ञानविज्ञानमयअथर्ववेदे अनेकचिकित्सापद्धतयः प्रतिपादिताः तासु विज़चिकित्सा अन्यतमा। अत्र विज़चिकित्सायाः अनेके निवारणेपायाः विवश्ताः। विज़ं त्रिविधं स्थावरं जंगमं कृत्रिमञ्च। उक्तञ्चापि-"स्थावरं जंगमं कृत्रिमं चापि यद्विज़म्।" अथर्ववेदे विविध ोज़धिभिः, मन्त्रैः, बन्धनैः, आश्वासनैः जलै, वाद्ययन्त्रैः जंगमविज़स्थावरविज़ैः, भेदनचूज़णैः वमनरेचकचिकित्साभिः, अपरविज़ैः, अग्निदग्धसर्पमारणसर्पप्रति प्रत्यावर्त्तनैः, स्वात्मबलैः मणिधारणेष्ठच स्थावरजंगमकृत्रिमविज़ं दूरीकर्त्तु ष्टाक्यते। अथर्ववेदस्य मन्त्रैः ज्ञायते यत् विविधसर्पविज़चिकित्सा उपर्युक्तोपायैः निवारयितुं ष्टाक्यते।

आयुर्वेदो अथर्ववेदे

विनोद कुमार डोबरियालः (छात्रः) भगवानदास संस्कृत महाविद्यालयः, हरिद्वार

"यत्रायुषो हिताहितं विचार्यते येन दीर्घायुश्च प्राप्यते तदायुर्वेद" इति सुश्रुतः। उभावचार्यो चरकसुश्रुतौ अथर्ववेदस्योपाङ्गमिति आयुर्वेदं स्वीकुरुतः। अनेन ज्ञायते यदायुर्वेदाथर्ववेदयोः घनिष्ठस्सम्बन्धो वर्तते। अथर्ववेद-यथार्थज्ञानायायुर्वेदज्ञानमनिवार्यमिति।

अथर्ववेदे शतायुर्विषये नैकधोल्लेखस्समुपलभ्यते, अपि च जीवनं नीरोगी स्वस्थञ्च स्यादित्यस्मिन् विषयेऽपि प्राप्यते। मनुष्यः पूर्णायुर्जीवेदित्यथर्वोद्देश्यं लिखितञ्च-

सर्वमायुर्जीव्यासम् (अ. 19. 69. 1)

वेद उपदिशति- भोजनजलदुग्धादयो भोज्यपेयपदार्था निर्दोषा विषहीनाश्च स्युः। व्याधीनां कारणं विषमिति स्वीक्रियते, यद्विषयुक्तोऽशः स एव व्याधिजीवाणुरूपेण शरीरे प्रविश्य व्याधिञ्जनयति।

वैदिकरोगनिवारणसूक्तस्य तत्त्वमीमांसा

डॉ. प्रभातरञ्जनमहापात्रः आचार्य-अद्वैतवेदान्तविभागः श्रीजगन्नाथसंस्कृतविश्वविद्यालयः श्रीविहारः, पुरी

वेदः सर्वज्ञानमयः सर्वविद्याधारभूतः प्रदीपवत् सर्वार्थवद्योतकः शब्दमयब्राह्मणः साक्षात्प्रतीकाः। विद सत्तायां, विद्ज्ञाने, विदविचारणे, विद्लृ लाभे इत्येतेभ्यः धातुभ्यः निष्पन्नोऽयं वेदशब्दः। प्रत्यक्षेणानुमित्या वा योऽर्थः अवगन्तुं शक्यते तं वेदेनैव विदन्ति तद्विदः। उक्तं चाचार्यैः-

'प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न विद्यते

एनं विदन्ति वेदेन तस्मात् वेदस्य वेदता' इति परमात्मनः साक्षान्निश्वासभूतोऽयं वेदः इति बृहदारण्यकोपनिषद् घोषयति। यस्य निःश्वसितं वेदाः' इति सायणाचार्यस्याभिमतम्। वेदेषु नानाविधानि सूक्तानि विद्यन्ते। वैदिक मन्त्रसमूह एवं सूक्तमित्यभिधीयते। 'संपूर्ण ऋषिवाक्यं तु सूक्तमित्यभिधीयते' इति बृहद्देवतायां स्पष्टम्।

विद्यमानेषु नानाविधलोकोपयोगिकल्याणकारकवैदिकसूक्तेषु रोगनिवारणसूक्तमन्यतमम्। 'अतत्वाभिनिवेशोहि महान् रोगः' इति आयुर्वेदविदामभ्युपगमः। तद्रोनिवारणार्थं वैदिकरागनिवारणसूक्ताध्ययनोपायः प्रकृष्टतमः। ऋग्वेददशममण्डलस्य सप्तत्रिंशदुत्तरैकशतसंख्याकं सूक्तं 'रोगनिवारणसूक्तमिति अभिधीयते। वैदिकदेवा दिव्यजीवनप्रदायकाः। भूमण्डले प्रवहमानो वायुः साक्षाद्देवदूततुल्य औषधीनामागारः। जलमपि साक्षादौषधमेव सर्वरोगविनाशकम्। शब्दमयोऽयं वेदमन्त्रं सर्वविधरोगविनाशकः। तथाहि ऋङ्मन्त्रः-

'आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद्रूपः।
त्वं हि विश्वभेषजो देवानां दूत ईयसे (10.137.3)

वैदिकसाहित्ये प्राकृतिकचिकित्साविज्ञानम्

कृष्णमुरारीमणित्रिपाठी (शोधच्छात्रः) श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठम्, नवदेहली

प्रकृतिः मनुष्येभ्यः अनुकूलमस्ति। प्रकृतेः सर्वाणि तत्त्वानि पृथिवीजलतेजवायुसूर्यचन्द्रादीनि येन केनापि प्रकारेण मनुष्याणां हितसाधकानि सन्ति। तेषु तत्त्वेष्वपि सूर्यालेकस्य योगदानम् अतिमहत्त्वपूर्णं विद्यते।

वेदेषु सूर्यालोकात् चिकित्सायाः विस्तृतं वर्णनमुपलभ्यते। अस्य चराचरजगतः आत्मा सूर्य एव विद्यते। उपनिषत्ष्वपि सूर्यः मानवजगतः प्राण अस्ति इति कथ्यते। सूर्यात् रोगाणां नाशो भवति। सूर्यः रोगान् निराकृत्य बुद्धिं शुद्धयति। ज्ञानस्य अभिवृद्धिञ्च करोति। सूर्यदेवः सर्वेभ्यः रोगेभ्यः मुक्तिं ददाति। अनुकूलं फलं च प्रददाति। सूर्यकिरणचिकित्साः अनेकविधाः सन्ति। सूर्यकिरणचिकित्सा, सूर्यचिकित्सा, सूर्यरूपचिकित्सा च। सूर्यकिरणानां शरीरोपरि साक्षात्सम्बन्धो भवति। तस्यां चिकित्सायां जलस्य, शर्करायाः, तैलस्य, घृतस्य च प्रयोगो भवति। अस्याः चिकित्सायाः विस्तृतं वर्णनं शोधपत्रे करिष्यामि।

वायुमधिकृत्य याः चिकित्साः भवन्ति। याषां वर्णनं वेदेषु उपलभ्यते। ताषां चिकित्सानां वर्णनं मम शोधपत्रे भविष्यति। अग्नि चिकित्सा, जल-चिकित्सा, मृत-चिकित्सा, यज्ञ-चिकित्सा, मानस-चिकित्सा अथवा मनोवैज्ञानिकचिकित्सा, मन्त्रचिकित्सा, हस्तचिकित्सा उपचारचिकित्सा चेत्यादीनां प्रभृतीनां वर्णनं यथा वेदेषु उपलभ्यते तथैव सप्रमाणं शोधपत्रे करिष्यामि।

वैदिकः सोमस्तत्स्वरूपं च

डॉ. प्रशस्यमित्रशास्त्री फीरोजगांधी-कालेज, रायबरेली

वेदसंहितासु ब्राह्मणग्रन्थेषु च ब्रह्म सोमस्य समुल्लेखः कृतो वर्तते। प्रायशो वेदभाष्यकाराः 'सोम' शब्देन तथाविधं लताविशेषमेव मन्यन्ते यत् खलु मदकारकं भवति। पाश्चात्यवेदानुवादकास्तदनुयायिनो भारतीया विद्वांसश्चाऽपि सोमशब्दस्यार्थं मदकारकं सुरापदार्थमेव कुर्वन्ति।

यद्यपि सत्यमेवैतत् यत् आयुर्वेदस्य सुश्रुतापि-ग्रन्थेषु चन्द्रमसा सह 'सोम' संज्ञकस्य लताविशेषस्य सम्बन्धः स्थापितो वर्तते

साम्प्रतिकं काले तु सोमलताया दुर्लभता तु वर्तते एव परन्तु प्राचीनेऽपि काले सोमलता दुर्लभा बभूव ये न सोमस्य स्थाने 'पूतीक' नाम्नस्तृणस्य प्रयोगविधानम् उपलभ्यते। यथा चोक्तमपि ताण्ड्यब्राह्मणे 'यदि सोमं न विन्देयु: पूतीकान् अभिषुणुयु:।'(9.5.3) परन्तु वैदिक मन्त्राणां व्यापक विवेचनेन स्पष्टं प्रतीयते यत् 'सोम' शब्दस्य अर्थगौरवं व्यापकत्वं च ततोऽप्यधिकं वर्तते। 'अपाम सोममृता अभूय:, अगन्म ज्योतिरविदाम देवान्'' (ऋ. 8.48.3) इति मन्ये सोम शब्द: ब्रह्मज्ञानवाची। ब्रह्मज्ञानमयं रसमधिगम्यैव मानवा जरा-मरणादि भयान्मुक्ता: सन्त: सोमरूपात्मकम् औषधमप्राप्य सर्वथा निर्भया विमुक्ताश्च ज्ञायन्ते। तस्मादेवोक्तं गीतायामपि- 'ज्ञानाग्नि: सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन'' (4.36)।

सुरा-सोमयोर्भेदं निरूपयन् शतपथ ब्राह्मणमपि स्पष्टं कथयति- 'सत्यं श्रीर्ज्योतिश्च सोमस्य रूपम्'' तथा च 'अनृत: पाप्मा तम: सुरा'' अत एव सोमेनसह सुराया: सम्बन्धस्थापनम् अनुचितमेव। आध्यात्मिकदृष्ट्या 'सोम' शब्द: परमेश्वरस्यैव वाचको यथा- 'सोमो हि प्रजापति:' (माध्य.शतपथ 5.1.5.26) ''यो वै विष्णु: स सोम:'' (मा. शत. 3.3.4.29) इत्यादि।

सुप्रसिद्धेन वेदभाष्यकारेण स्वामिना दयानन्देन चाऽपि स्वकीये वेदभाष्ये सोमशब्दस्य नानाविधान् अर्थान्- तद्यथा ''प्रेरक: विद्वान्''(ऋग्भाष्य 6.38.4) सोमलतानि समूरस:(ऋग्भाष्य 1.18.4) ''धर्मप्रेरक:'' (ऋग्भाष्य 1.111.9) ''शरीरात्मबलम्'' (यजुर्भाष्य 38.29) इत्यादि निरूप्य ''सोम: परमेश्वर:'' (यजुर्भाष्य 4.20) इति अर्थमपि प्रयच्छन् 'सोम' शब्दस्य परमेश्वर वाचकत्वं प्रकटीकुर्वन् तच्छब्दस्याऽर्थव्यापकतां प्रकटीकरोति।।

PHYSICO-CHEMICAL CHARACTERISATIOSN OF MEDICINALLY IMPORTANT RHIZOMES OF TWO *ALPINIA* SPECIES USED IN AYURVEDIC PREPARATIONS

Durvesh K. Tyagi, Nikhil Kumar, Pragya Agrawal and A.K. Indrayan
Department of Chemistry, Gurulul Kangri University, Haridwar

Rhizomes of two, comparatively less popular, indigenous Plants Alpinia Calcarata and Alpinia Allughas have high medicinal value. Extracts of these rhizomes have been prepared in solvents of different polaritise and refactive index, optical rotation, acid value, iodine value saponification value etc. and presence of biologically important group of compounds have been investigated and reported to correlate the medicinal and other usefulness of rhizomes.

EFFICACY OF SHALLAKI (BOSWELLIA SERRATA) IN THE MANAGEMENT OF SANDHIVATA VIS-A-VIS OSTEOARTHRITIS

P.K. Gupta, Sanjukta Sen Gupta, H.M. Chandola, S.N. Vyas
Institute for Post Graduate Teaching andResearch In Ayurveda GAU, Jamnagar

Sandhigata-vata is described under Vatavyadhi in all the Samhita and Sangraha Granthas. In old age all Dhatus become ksheena leading to Vata prakopa to make indiividual prone to many diseases, the sandhigata-vata stands top in the list. Charaka was first to describe separately 'Sandhigata-anila' but it is not included under the 80 ty pes of Nanatmaja vatavyadhi. Vagbhata has considered vata vyadhi as a challenging disease, it is number one cause of disability in industrialized countries. Osteo arthritis is the most common degenerative joint disease begins asymptomatically in middle age. Almost all person by age 40, have some pathological changes in weight bearing joints in female 25% and male 16%. In this study 84 patients who fulfilled diagnostic criteria of sandhigata-vata were selected and divided into three groups.

In case of improvement of objective parameters, statistical analysis showed that trial theraphy (all three groups) has not shown any change in haematological and biochemical parameters.

APPLIED STUDY ON JARA IE AGEING AND ROLE OF PANCHGAVYA

Dr. Nisha Parmar 2nd year MD Scholar IPGT and RA GAU, Jamnagar

Today the 21st century is witnessing a gradual decline in fertility and with increase in life expectancy; the society will need grapple with issues of longevity. Because the leading cause of mortality among aged people comprise respiratory, heart diseases, cancer and stokes. Significant cause of morbidity among this group is chronic inflammatory and degenerative conditions such as arthritis, diabetes, osteoporosis, depressing, psychiatric disorders and age related urinary problems. This is the common world health scenario of Jaravastha.

बाल्यं वृद्धिश्छविर्मेधा त्वग्दृष्टिः शुक्रविक्रमौ। बुद्धिः कर्मेन्द्रियं चेतो जीवितं दशतो हसेत्।। (SA. Pu. 6/62)

Some decline conditions are but natural. According to Acharya Sarangdhar Balya (childhood,) Vridhi (growth), Chhavi (well structured and beauty), Medha (Power of retention), Twak (Luster of skin), Drasti (vision), Sukra (Sexual Potency) Vikram (Working capacity), Budhi (Intelligence) and Strength of Karmendriya (all motor activities) are decline or ends serially at the end of first to tenth decade of Life.

Panchgavya is a term used in ancient texts to refer the five important components obtained from cow orgin Viz. Milk, Curd, Ghrita, Unine and Dung. Each one of the five components have been ascribed several therapeutic uses in ayurvedic texts. The Panchgavya components are either used along or in combination for the treatment of diseases.

In this area people doesn't get real panchgavya, as we now that milk is conceder as a complete diet our Acrya used Go Ghrita for treatment. But we could not found purity. So I hope I can give same persuasive to people.

PRINCIPLES OF FOOD

Dr. K.V. Joshi Dharwad, Research-Scholar, Bansthali University, Bansthali

Food is the source of energy to the whole system of of the body. The regular supply of the food activates the physical system and even a smallest defect in food brings disorder in the health of the body. The three qualities viz. *Sattva, RaJas, Tamas* are the constituents of the body and they are activated and some times overpowered by the related food.

A man becomes very active and energetic if he has the sattva Guna as predominent. If a person, after reading something understands the same and enjoys the meaning it is the effect of Sattva Guna. The Second quality is Rajas. It is very fickle. It encourages and stimulates everything if it is predominant. This predominance is caused by the food related to this quality. The third quality is Tamas. It is always noted by the dullness of a man, dullwittedness, laziness ans such things of delaying nature. It always prevents a man from doing good and keeps him in veiled.

MANAGEMENT OF MADHUMEHA WITH MEDOGHANA RASAYANA

Dr. K.S. Singh M.D. Scholar, Sri Gulab Kunverba AyurvedaVishavidyalaya (Foreign Course) Jamnanagar
Dr. Dyuti R. Dave Lecturer
Dr. M.S. Baghel Director, I.P.G.T. & R.A., Jamnagar

Diabetes mellitus is the fastest growing disase in the world, with 230 million people already affected. It is the world's leading cause of heart disease, stroke, blindness, Kidney disease and lower limb amputation. As incidence of Diabetes is five times higher among Asians, by 2025 every fifth Diabetic in the world would be an Indian. To explore better treatment prospects in Ayrveda the study was carried out using Medoghna Rasayana following the holistic approach of Ayurveda to reduce the agongy of the Diabetics. The study was carried out in two groups comprising a total of 35 patients. The analysis of the results of this study revealed that both the Therepies

provided siginificant relief in the chief complaints as well as associated signs and symptoms and in Dushti of Dosha, Dushya and Srotasa. On the basis of this study, it can be said the Medoghna Rasayana Vati can be a good complementary medicine for the patients who are not getting good relief only modern medicine.

ORIGIN OF THE SCIENCE OF MEDICINE

Dr. Sharda Chaturvedi, Prof. in linguistics Deptt. of Mod. Lang & Linguistics S.S. University, Varanasi- 221002

The early founders of Science never claimed to be labeled as scientists. Science as it is known today with all its disciplines never existed before. All beginnings are obscure whether owing to their minuteness or their apparent insignificance. The sources of history can only be tracked at a foot place. India's discovery to the west has been a great event. The origin of comparative philology dates from the time when European scholars became acquainted with the ancient language of India.

What is true of language is also true of the subject matter to be conveyed through the vehicle of speech. To the great people, who spoke this language, it was given to create the principle of Progress. That people was the Aryan. One might rightly say, that except the blind force of Nature, Nothing moves in this world, which is not Atyan in its origin. The seekers of truth always collaborated in the pursuit of Knowledge, and India never lacked being in these collaborations. India during her earliest times realized that the Veda of knowledge could only be acquired with the help of the Vedangas and Upangas which include various disciplines of science or philosophy. Among the six well known systtems of Indian philosophy, the Nyaya deals with logic, the Vaisesikas with predicable substance and attributes and the Samkhya with evolution . At the close of the nineteenth century Dayananda for the first time drew attention of the modern world to the fact that one should look to be Vedic period not only to the metaphysics of this country but for the first knownledge of such subjects of positive nature as are covered by sciences, and he referred to India's rich heritage in this connection.

APAMARGA IN THE VEDIC CANONS

Dr. K.B. Archak Reader P.G. Dept. of Sanskrit Karnatak University, Dharwad

The purpose of this paper is to higlight the importance of *Apamarga,* a kind of plant in its ritual, mythical and religious perspectives. The plants referred to in the Vedic texts are of paramount value to the mankind. People during Vedic age were solely dependent on the natural resources for their subsitence. Through the performance of sacrifices, they were obtaining promised fruits like riches, food, cattle, offspring, long life and happiness in the next world. The *Apamarga* is small herb belonging to the family of Amaranthaceae and is used for various medicinal purpose. The kausitaki Sutra 8.16 enumerates this plant in the context of magico-religious beliefs. This apotrapaic plant *Apamarga* is highly eulogized in the Atharva Veda 4.17.8 Herein it is said to wipe out Ksetriya disease. In a mythical account, the *Apamarga* is said to have removed the demons. The *Atharva* hymn VII. 65 deals with charms by means of Apamarga against the courses and consequences of the sinful deels. The Kausitaki Sutra 46.69 as purificatory charmn to wipe off sinful acts.

PALASH VRIKSHA IN VEDIC TRADITION

Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi Lecturer, Department of Sanskrit, Ranchi College, Ranchi

In Atharvaveda trees are described as lords of the forests and can deliver humankind from sin (11/6/1). Among numbers of plants mentioned in the Vedic Literature, Palash (*Butea monosperma*) is highly revered. It finds mention as Parna in Rigaveda and Atharvaveda. It is significant from both cultural and medicinal point of view. It is considered sacred because of the tri-foliate formation of its leaves, which represents the Holy trinity with vishun in the middle, Brahma on the left and Shiva on the right. It is also considered to be incarnation of Brahma.

It is a common practice to use the leaves of the tree in ceremonies connected with the blessings of calves to ensure their becoming good milkers. In Taitiriya Samhita its origin is supposed to be from Gayatri along with Soma. The tree has been termed as Brahmavriksha in Vedas. Flowers of Palash are deeply associated with Lord Shiva and Goddess Durga. It has also been termed as the king of trees. It plays a vital role in various Hindu Sanskars. The staff placed in the hands of Brahman boy at the time of 'Upnayan Sanskar' (Thread ceremony) is made of its wood. It is one of siginifaction samidhas used in Vedic Yajnas. Not only this, from its wood are made utensils used for sacred purposes. In Rigaveda, its description is found as a decorating flower for marriage charitos. Palash bhasma is used for maintaining the effects of moon in the horoscope, Palash possesse astringent diuretic, depurative aphrodisiac and tonic properties. A ccording to Atharvaveda extract of Palash's stem is benefical for sperms and helps securing conception. It also mention that it gives strengh, energy, oj and inspiration to the body and the age of hundred years can be attained by its fluid. It abolishes the Arishta (Bad foetal symptoms) from the body. It is also used in curing ulcers, piles, worms, cough, leprosy, blood disorders, thirst related problems anal disorders.

CHEMISTRY OF NATRUAL FOODS VERSUS THE ROLE OF TRACE ELEMENTS AND ANTIOXIDANTS

Dr. Shailendra Prakash Madhwal, Deptt. of Chemistry Govt. Post Graduate College, Kotdwara- 246149 (U.K.)

Vegetable and fruits are the most flavoursome economical and nutrient dense foods around including they are packed with plant chemicals that can improve the immune response of the living beings. There are lots of disorders that can be prevented and cured by the selecting natural foods which are rich in minerals, vitamins, trace elements, vital nutrients and other substances which have positive value regarding human system. The fruits is very useful for those who are allergic to certain foods and who suffer in consequence from skin rashes or digestive disorders or asthma. Trace elements are essential for the survival of the living organism, these elements which are required for physiological function in very small amounts that vary for different organisms. The treatment of anaemia with iron and the association of iodine deficiency with goiter marked these as the only two trace elements recognised as essential for living beings. Antioxidants are reducing agents which are added to the drugs or other pharmaceuticals to prevent their oxidation through oxidative processes. The antioxidants themselves or their reduction products should not be toxic and harmful to the human body. They should be physiologically and chemically compatible also they should be chemically inert.

ROLE OF RASAYANA IN OLD AGE

Kundan Chaudhuri Ph.D. scholar Deptt. of Kayachikitsa, Gujarat Ayurved University, Jamnagar

Ayurveda is a sacred science of life. It has considered aged or elderly as jara or Vardhakya, a natural disease. It has disease causes, signs and symptoms of Jararoga and its treatment in a very clear way. Jara roga can be incorporated in Geriatrics in modern parlance which is a branch of medicine concerned especially with the problems of ageing and diseases of the elderly people.

We age, various types of geriatric diseases such as cardiovascular diseases, hypertension, musculoskeletal diseases, back pain, diseases of the foot, neurologic diseases, infectious diseases, respiratory diseases, oral diseases, gastrointestinal disorders, endocrine/ metabolic diseases, gynecological diseases, disorders of sexual function, hematologic diseases, renal diseases, prostate diseases, and dermatologic diseases etc emerage. Rasayana drugs increase immunity power and vitality as well as can increase clarity of sense organs and restore youthfulness and can act as antioxidant agent. In view of this, the department of Ayush has launched a national campaign for Geriatric health to attain the objective of healthy ageing.

SOLUTION OF CONSTANTLY MERGING HAZARDIOUS DISEASES OF PRESENT ERA THROUGH FIFTH VEDA (AYURVEDA)

Dr. Yamini Tripathi*, Dr. Akash Chandra Tripathi**
*Dept of Striroga & Prasuti, I.P.G. and R.A. Jamnagar** Persuing Ph-D. S.S.U. Varanasi (U.P.)

Vedas – the treasure of knowledge, the complete science, concern with every aspect of life, gives more emphasis on health, dictate methods of attaining Arogya through its fifth veda-Ayurveda which is upanga of Atharvaveda. Though health is dealt in all four Vedas but it is the main part of Atharvaveda. "Rigavedayajuravedasamavedaatarvavedaibhya panchamoayamayurveda " (Kashyapa samhita) The main goal of Ayurveda is to make people physically, mentally, spiritually, and socially healthy. "Samadosha s maagnischa damadhathu malakriya. Prasanaatmaindriyamanaah awasthyaityaabhidiyate" (Su. Sutra. 15/48).

A CRITICAL REVIEW ON ETIOPATHOGENESIS OF DEPRESSION IN AYURVEDA

V.D. Vaishnavi Tengse, M.D. (3rd year) I.P.G.T. & R.A. Deptt. of Kayachikitsa, Jamnagar

A depressive disorder is a "whole body" illness involving individual's body] mood, and thoughts. The incidence of depression is high on as World Health Organization reports facts, depression as the leading cause of disability measured by YLDs and the 4th leading contributor to the global burden of disease (DALYs) in 2000. In India, prevalence of all psychiatric disorder is 65.4 per 1000 population out of which total 51% i.e. 31.2 per 1000 population is affected by depressive illness. Charaka, Sushruta highlighted conditions as *Vishada* and *Avasada* having resemblance with depression. ***'Vishado Rogavardhananam Agrya.'*** First principle regarding Psycho-neuro-immunology in Ayurveda, thus Serum Cortisol which has its effect on immunity is investigated in depressed patients as a biomarker for depression in the present research. The study concludes that Vishada and Avasada are presentation of same disease.

Keywords: Vishada, Avasada, prevalence, Serum cortisol, etiology, rating scale.

IMPORTANCE OF AYURVEDOKTA RITUCHARYA IN THE PRESENT ERA

Abhishek Y Patalia, Dr. Rajagopala S., Dr. V.K. Kori, Dr. K.S. Patel
Kaumarabhritya Department, I.P.G.T. & R.A. Gujarat Ayurveda University, Jamnagar

Ayurveda has mentioned two goals- one is to maintain healthy status of healthy person and other is to cure the disease of ill person, in other words these are preventive and curative aspect of Ayurveda. A yurveda has given more emphasis on the Aachara Rasayana etc.

Now a day nobody follows Ritucharya properly.So people get lifestyle diseases like Hypertension, Diabetes Mellitus' metabolic disorders like hyperlipidaemia, obesity; psychological problems like stress, depression acute infectious diseases like hepatitis, vomiting and diarrhoea, worm infestation and epidemics like chikungunya, swine flu etc. and as their consequences, immunity gets hampered. To conquer these diseases, one should follow Ritucharya strictly. Even the modern medicine has now come to the conclusion that lifestyle modification is the one and only measure in reducing the incidence of these diseases and the use of long term therapeutics is uncalled for. It is achieved by sinscerely following principles of Ayurveda.

The details of the same will be presented in the seminar.

AYURVEDIC PERSPECTIVES FOR HEALTHY PROGENY

Apexa Vyas, Rajagopala S, V.K. Kori, K.S. Patel Kaumarabhritya Department, I.P.G.T. & R.A. Gujarat Ayur. Uni., Jamnagar

The increased pace of life, the changing lifestly etc. have contributed a good number of diseases to the

mankind. The diseases once eradicated are coming back with much virulence.

Ayurveda has considered such problems in detail with due emphasis and suggested various measure to avoid them. The regimen described in classics start well before conception. Atulya gotriya vivah, sukra artav suddhi, Punshavan etc. are the topics favouring this concept described at different places in the texts. It has been postulateds that the wellbeing of the four essential components for conception (Garbha samagri) viz. Ritu, Kshetra, Ambu and Bija is mandatory for a healthy progeny. Proper following of the Garbhini Paricharya (antenatal care)- do's and don'ts, in terms of diet, activities, life style etc. during the period of pregnancy will contribute for the same purpose. The concept of good healthy and intelligent progeny and how to get the same with details will discussed in the full paper.

A CRITICAL SURVEY OF THE CONCEPT OF EUTHANASIA IN INDIAN TRADITION

Dev Singh, Research Scholar, Deptt. of Philosophy, Gurukul Kangri Vishwavidyalaya Haridwar,

The term 'euthanasia' is a compound of two Greek words 'eu' and 'thanatos'meaning literally 'a good death'. Today euthanasia is generally understood to mean the bringing about of a good death. It is known as mercy-killing where- one person ends the life of another person for his or her sake and wish. The euthanasia has its two aspects 'active euthanasia' and 'passive euthanasia'. In the light of the general conception of euthanasia. we would like to critically examine the heroic death and death by fire as self-willed death in the Vedic Period: euthanasia in the form of self-willed death to ensure escape from the cycle of birth and death came into vogue in the Upanisadic and Brahmanical ages; the Jaina idea of liberation imbedded in SALLEKHANA that is the custom of fasting to death; In CARAKASAMHITA. Caraka advises physicians to develop an attitude of indifference towards those nearing death (Prakrtisth) i.e. Passive euthanasia; In Buddhism, the meditation on death for actual Self willed death i.e. and aspect of euthanasia: In Hinduism. equivalent to Sallekhana is PRA YOPA VESANA. i.e. abstaining from food and awaiting in a sitting posture to the approach of death e.g. Savarkar in 1966, and Vinoba Bhave in 1982 died in this manner; self-willed death by a Yogi or JIVANMUKTA (enlightened one); the custom of dying at a TIRTHA STI-I1\NA (holy place) in Hinduism; the heroic death in the Mahabharat: the practice of SAT! in the form of self-willed mass dearth (JOHAR) in the medieval and some instances in the modern period also.

These are some of the different aspect of the euthanasia in Indian Tradition which I want to discuss in the present Csontext of euthanasia in my paper.

PSYCHOTHERAPIES IN ATHARVA VEDA

Dr. Shyam Lata Juyal, Reader, **Nidhi Sharma,** Research scholar, Deppt. of Psycho., K.G.M, G.K.V.V., Haridwar.

Atharva Veda occupies a unique position among the four Vedas. Firstly, because the other three Vedas deal with matters of other world, the gods, the nature and supernatural, while Atharva Veda is more wordly. It seeks to solve the problems of this world and its common people. It deals with topic like leading a long and healthy life, to avoid sorrow, to ward off illness, .to vanquish or win over the enemy, etc. Secondly, the central theme of Atharva Veda is Mana or mind. Thirdly, Atharva Veda contains what is now known as Ayurveda, and Ayurveda is actually regarded as a sub-section or Upveda of Atharva Veda.

Atharva Veda contains the first ever record in history, of mental disease like unmad, apasmar etc. Atharva Veda deals with many subjects, and therapeutics is only one of many subjects dealt with. Abnormal behaviour and its treatment is one of the many subjects. The aim of Atharva Veda, as declared, is the welfare of humanity. It helps men to live a rich and full life upto hundred years and then attain Brahma. Thus rules and regulations are given to live a full healthy life, and in this context come the diseases and the ways to ward off the diseases. Therapies both mental and herbal are suggested. It is in this context that therapeutics comes under the scope of Atharva Veda.

COMPARATIVE EFFICACY OF TWO PLANTS EXTRACTS WITH PHYTOCHEMICAL INGREDIENTS AGAINST RHIPICEPHALUS MICROPLUS: IN VITRO

Arvind Kumar, Animal Health Division Central Institute for Research On Goats Makhdoom, P.O.FARAH-281122 (Mathura) U.P.

Ectoparasites are the major problem of animals causing production losses due to their heavy tick infestation can decrease the production of meat and milk. Chemical acaricide widely used to control infestation of ticks, however development of drug resistant, durg residue in mill and meat their toxicity are common Problem in human beings, which disadvantage of chemotherapy. Alternative therapy particularly herbal formulation offered an effective alternative to chemical acaricide in management of many livestock diseases. Keeping in mind all these factsnt prese study is designed to find out Comparative Efficacy of Two Plants extracts with photochemical ingredients against Rhipicephalus microplus : in vitro Two plants Ricinic communis (leaves) and Kurchi (Holerrhena antidysentrica)

A COMPARATIVE STUDY OF HANSA MANDURA AND PHALATRIKADI KWATHA IN THE MANAGEMENT OF PANDU W.S.R. TO IRON DEFICIENCY ANAEMIA

Dr. Madhuri G. Vyas, Dr. A. R. Dave, Prof. V. D. Shukla Institute of P.G. Research in Ayur. G.A.U. Jamnagar

PANDU ROGA can be effectivly compared with Anaemia on the ground of its similar signs s symptoms like panduta as pallor, Shrama as Dypnoea on exertion, Bhrma sa Vertigo. Pindikodveshtana as pain in calf muscle etc. pandu means a disease characterized by pallor of body which strikingly resembles with Anaemia of modem science. The term Anaemia can be broadly taken under the umbrella of pandu but it must be bear iin mind that Anaemia is not exavtly Pandu because Anaemia is a only reduction of Hb % level or PCV and may also be precipitated by the presence of abnoemal Haemoglobin, but Pandu doesn't reflect as only deficiency in the blood's ability to supply tissue and organs with adequate oxygen as fount in Anaemia. It involves Rasa and Rakta Dhatu (अल्प रकतां अल्प मदस्को नि:सार शिथिलेन्द्रय. च चि 16/6) in pathogesis and affect Meda Dhatu and Ojas also (अव्ये अपि ओजसो गुणा: व्रजन्ति क्षयं अत्यर्थाा. च चि 16/8)

In Ayurveda, Pandu is considered as a specific disease with its own pathogensis and treatment. Thus an attempt has been made to study the disease Pandu Roga according to Ayurvdic text in the parlance of Iron Deficiency Anaemia. Total 40 Patients were registered in the study and were randomly divided in to two groups.

PANDU W.S.R. TO IRON DEFICIENCY ANAEMIA

Dr. Monica Agrawal, Dr. A.B. Thakar, Institute for Post Graduate Teaching and Research In Ayurveda, G.A.U. Jamnagar

Ayurveda is enriched with variety of clinical presentations, each having a broad umbrell of Systemic disorder degri bed in modern scueencs and Amonh them pantu is Rasa pradoshja vikara described by Acharya Charaka (Cha. Su. 28/9). Here Pandu is co-related with Anaemia. According to survey, 30% adult males, 45% adult females,80% pregnant females and 60% children in India are suffering from Anaemia and especially from Iron deficiency Anaemia. Modern Medicine can effectively treat Acute Anaemia, but still the pitfall for management of chronic deficiency anemia exists. This type of chronic disease can be managed by Ayurveda succesfully. Langhana is coined as the best treatment for Rasa as well as Rakta prodoshaja vikara prescribed by Acharya Charaka (Ch.su.24/18). It is having ten types including 4 tyles of Samshuddhi (Vamana, Virechana, Niruha, Nasya.) (Ch. Su. 22/18). Apart from this, while describing the management of Pandu, Acharya Charaka gives due emphasis on Urdhava and Adhoshodhana. In Pandu roga there is mainly vitiation of Pitta Dosha and Virechana is considered as the best therapy for it. (A.H. su. 1/48). So, Virechana is selected as Shodhana therapy.

MANAS PRAKRITI IN MANAS ROGA WITH SPECIAL REFERENCE TO CHARAK SYSTEMS OF MEDICINE IN AYURVEDA

Dr. Gopal Ch. Nanda, Asst. Director (Ayurveda CRI) Unit-1, Bhubaneswar-9

Ayurveda the holistic science has got its existence form time immemorial with its super cosmic theory. The evolution of creatures with the ommipresence of soul is witnessed through a lot of theorem in vedic literature. Ayurveda, the essence of Atharvaveda also bears the concept buried in itself. Human being the superior creations of the universe is only due to it s development of physic power to its inlimited extension but is being detoriated/ deviated of the faculty felt gradually. The sheers of Ayurveda have evaluated and classified the variations basing on the trigeneal faculty of mind or mana. The variations have extended to the prevue of thinking process with the innumerable creation of super mind. The paper specifically deals with categories of mental of a human being upto a level of understanding for proper evaluation before planning therapeutic measures as described by Maharashi Charak in Ayurveda.

AAMVATA AND IMPROPER POST-PARTUM MANAGEMENT (PRASUTAAPCHAR)

Dr. Nakul A Jethva, Dr. V. D. Shukla, Dr. Anup Thaker, Institute for P.G. Tea. & Research In Ayurveda G. A. U. Jamnagar

Rheumatoid arthritis (RA) is chronic multi system disease of unknown cause. It could be taken as aamvata as per its clinical presentation. It has been suggested that RA might be a manifestation of the response to an infectious agent in a genetically susceptible host. Women are affected three times more than men. Female gender is a risk factor and this susceptibility is incrased during post partum and breast feeding. The main cause behind this increased risk is improper post partum managemant. Today women are advised to take normal diet after 3 to 5 hours after normal delivery. According to ayurveda, after normal delivery, body is full of aam and Kleda. so the normal routing diet is not properly digested aam vruddhi takes place. When proper external stimulation is delivered, diseases like rheumatoid arthritis etc auto immune diseases manifest. In ayurveda, Brihadtrayi samhita has give stage and stepwise management of postpartum. Panchkola yavagu etc are until body become niraam. Then after normal diet, snehapana etc are advisable.

CONCEPTUAL STUDY OF AGNI IN VEDIC SCIENCE AND AYURVEDA

Dr. Piyush Pampaniya, Dr. D. H. Pandya Institute for Post Graduate Teaching & Research In Ayurveda,G.A.U.Jamnagar

The Agni play very important role in the maintence of homeostasis in the body as well as in the universe. In vedic time the agni has several meanings like Vaishvaamar, Jaataveda, Vadavaanala, etc. Those words have their own properties for their meaning more related to biosphere. In Ayurveda same thing is mentioned by aacharya Carak for healthy preson and protection form diseases. The eternal principal of ayurvedic treatment is based on Kayachikitsa, here Kayachikitsa word is made of two words. Kaya and chikitsa. Kaya means a way for treatment of Agni. This Kayagni is further classified in jatharagni, Panchamahabhutagni and Saptadhatvagni. In this era, we can correlate it with bile, enzymes etc.

PHARMACOGNOSTICAL STUDY ON VARIETIES OF A TRADITIONAL AYURVEDIC DRUG GUNJA (ABRUS PRECATORIUS LINN.)

Preeti Pandya, R.N. Acharya, T.N. Pandya, M.G. Chauhan, Gujarat Ayurved University, Jamnagar.

Adrus precatorius Linn. (Fabaceae), commonly known as Gunja is a reputed traditional medicinal drug used for the treatment of hair falling many other diseases. Most of the traditional medicines are plant based drugs.

In the world of medicinal plants, there are so many different types of morphological, microscopical phytoschmical variations in characters found in the same species of medicinal of medicinal plants, which may influence the effect of the drug. Gunja also exhibit such variations. A study has been carried out on black and white varieties seeds of Adrus precatorius Linn. to differentiate it. Morphologically, few variation were founded especially in legumes seeds of black variety in the comparison to white variety. Microscopically the differences were found in palisade, and pigment layer, no. of layers of spool shaped cells and parenchyma cells in testa layer with their specific coloration and the other diagnostic charcters like, group of fibres, thick walled paranchymatous cells with aleurone grains and fregment of tracheids were founded in both varieties. Histochemical study also reveals the difference in pigmentation. preliminary phytochemical study also indicates the presence of Anthocyanin pigments in black variety seeds.

A CLINICAL STUDY ON AMRUTA BHALLATAK AVLEHA AND KARANJADI LEPA IN EKKUSHTHA W.S.R TO PSORIASIS

Dr. (Mrs) Alankruta R. Dave, Dr. Charmi S. Mehta, Prof V D. Shukla, G. A. U , Jamnagar

This achievement of Ayurveda is mode of treatment is because of its complete independent and unique fundamental approach towards the treatment. According to Charaka, the Kushtha which does not sweat, which is extensively spread and resembles in the form of fishscale is known as Ekakushtha . According to Shushruta, in which the skin becomes black and pink colour is Known Ekakushtha. Psoriasis is among the most wide spread chronic frequently recurring disease of the skin characterized by accelerated epidermal turnover and hyperplasia. In the preaent study, total 64 patients were selected form O.P.D s I.P.D. of I..P.G.T. s R.A. hospital Jamnagar. They were treated in two groups as under for 90 days with 90 days follow up. Highly significant results were obtained by the therapy.

A COMPARATIVE CLINICAL STUDY OF RAKTAMOKSHANA BY JALOUKAVACHARANA AND SHIRAVEDHANA IN DSISEASE VICHARCHIKA W.S.R. ECZEMA

Dr. Hiren N Raval, Dept of panchakarma, IPG RA Jamnagar

Panchakarma is the important part of Ayurveda. As a Sodhana Raktamokshana, included in Panchakarma. There are different methods given for Raktamokshana is consider as a Ardh chikitsa in classics its practice is very less. The different methods are vanished form practice due to lack of experience and practical changes during time. Rakta has its own importance in pathogenesis and manifestation of diseases Kusth where as Dushya Rakta play a major role in manifestation so in the treatment, Raktamokshana Play important role so the effort has been made in this study. Generated data of the study will evaluate its efficacy and establish practical method of rakta mokshana. Total 18 patients were registered in the study and detail of the study will be given in full research paper.

Keyword : Jalaukavacharana, Shiravedhana, Vicharchika,

GUDUCHI SATAVA - Classical Review

Dr. Kishor G Satani Scholar, **Dr. Hitesh Vyas** Sr, Lecturer, I.P.G.T. & R.A. Jamnagar. (Gujarat)

Guduchi (Tinospora Cordifolia) is one of the marveleous reguvinator drug in Ayurveda. Now a days, it s antioxidant and other properties also defined by experimental study. Satva Kalpana of Herbal Drugs is the Milestone in the developement of Ayurvedic pharmaceutics. It'is an Extraction procedure of whole drug.In this global era it has great important due to higher palatability and more efficacy in minimum dose. Guduchi Satva is useful in various diseases like, Jwara, Pandu, Kamla, Prameha, Vata rakta, Skin diseases stc. There are so many references of Guduchi Satva are quoted in many Ayurvedic classical Texts and their detail will be given in Full paper.

STUDY ON UNIQUE CONCEPT AND APPLIED APPROACH OF VRKSAYURVEDA BREAKTHROUGH OF VEDIC SCIENCES OF INDIA

Dr. Gyanendra pandey Gujarat Ayurved Universtiy, Jamnagar-361008 (Gujarat), India

Ttere is most wide scope of Ayurveda, the science of life, originated form ancient vedic sources in India, earning credit of a pioneer medical science of world. The multi-dimensional objectives are well-evident by the major aresa covered by Ayurveda, Such as human beings, plant and animal kingdoms, and in other way Ayurveda entails the consideration of all the materials in environment and daily life routine, by making thought on their health, life, development and their medical utilization forbetterment for betterment of creatures and healthy living.

In this series Ayurveda includes includes various other divisons or branches-other Astangayurveda (eigth majordisciplines of medical science)- and relevanth Vrksayurveda may be undertaken for re-orientation as essential area for studies and utilization for scientific benefit as they are mostly naglected for proper researches in view of their exploration of oriental sources, present relevance, appraisal in global scenario, influenced by advancemant of science and technology and assessment of observations of investigation and their findings, for over all advantage of human and non-human (animals and plant etc.), components of the universe by exploring exhaustively and re-validationg data recorded form most ancient knowledge of traditional source with their scientific evaluation and utility for development in the field of Vrksayurveda. Therefore, the concept, fundamentals and practice of Vrksayurveda as a science of plant life introduced alongwith their major oriental sources including Indology. Need, significance and applied utility of researches on scientific frammework Vrksayurveda are given consideration.

THE POSITION OF AYURVEDIC MEDICINE IN INDIAN MEDICAL SCIENCE

Madhumita Barthakur (Goswami) Lecturer (Sr. Scale) Dibru College Dibrugarh-786001, Assam

Ayurveda **(the science of life)** is a system of traditional medicine native to India. and Practiced in other prats of the world as a form of alternative medicine. In Sanskrit, the word Ayurveda comprises the words ayus, meaning life and veda, meaning science., The Ayurvdic science cinsiders earth to be made of five basic elements: ether, earth, fire, water and air. The fine balancing between these elements forms the basis of human health, and any tipping of the balance causes disease, pain and even death. In Ayurveda, observation is the basis of diagnosis. A good Ayurveda phsician will feel the patien's pulse; observe their smell, look at overall appearance, quality of voice and their thoughts in words. it is long years of work and experiance that bestow this kind of observation. Ayurveda has survived the test of time, and proved itself. In fact, ancient Chinese and some other oriental traditional heling systems function in similar ways. The best Ayurvedic vaidya (Doctor) depands on his senses and intuition; both of which have, of course, been trained to observe and ascertain.

A CLINICAL STUDY ON BHRINGARAJADI DHRITA RASAYANA IN THE MANAGAEMENT OF PREMATURE AGEING

Dr ILa Tanng Institute for Post Graduate Teaching and Research in Ayurveda Gujarat Ayurved University, Jamnagar

Ageing tends to vary in different age groups by genetic factors, dietary habits, socioeconomic conditions, life style, occurrence of diseases etc. The ageing involves every dimension of one's factors that keep people healthy as they grow clder. In Ayurveda, decade, wise ageing process has been described. It has two types: Kalaja jara (Timely ageing), which may be delayed by appropriate measure Akalaja jara (Premature ageing), which is somewhat reversible by Rasayana therapy. The present study with efficacy of Bhringarajadi Ghrita Rasayana (Eclipta alba, Sesamum orientale Linn. Emblica officinalis Gaertn., Sugar, Cow's ghee), which has shown significant improvement on various clinical parameters relaters relatrd to premature ageing. The ingredients of this formulation

have proven adaptogenic, antioxidant, free radical scavenger, immunomodulator properties.

ROLE OF DIETETICS S LIFESTYLE IN THE ETIOPATHAGENSIS OF HYPERTENSION IN GERIATRIC POPULATION - A SURVEY SYUDY

Dr V.D. Madhavi, Institute for Post Graduate Teaching and Research in Ayurveda Gujarat Ayurved Jamnagar

India now has the 2nd largest aged population in the world. In 2001 there 77 million old people in India it is anticipated that by 2021 it will reach 137 million. Due to the age related changes, blood pressure reses with advance in the age in both men and women. Hypertension is seen more in old age. The various dietary factors, different aspects of the lifestyle like, physical activity, psychological stresses etc. could contribute to hypertension or affects its treatment. The present survey study supports the facts described in Ayurveda that the dietary etiological factors such as Vidahi Ahara (70%), Abhishyandi bhojya (70%), Adhik Lavana sevana (68%), Bhuktva-Diva-Praswapanam (78%) are causing the vitiation of Rakta Dhatu as well as Pitta Dosha in the body leading to disorders like hypertension. The etiological factors observed in the present study can have the role in the pathogenesis of hypertension s can be used as guidelines for prevention as well as deciding the Ayurvedic principles of management for hypertension.

AN ASSESSMENT OF THE AFFECTIVITY OF SELECTED YOGIC AND NATUROPATHIC PROCESSES ON HYPERTENSION

Dr. Jitesh Institute for Post Graduate Teaching & Research in Ayurveda, G. A.U. Jamnagar

From the vedic era different processes were in practiced; one of them is Yoga, second One which broadly used is Ayurved. Both the sciences have its ownprinciples. Naturopathy is now a day's developed in all over world but the roots were in Vedas and ayurved. here few observations are given. Yoga and Nature cure are natural constructive method of treatment which aimed at removing the basic cause of the bisease without any intake of drugs and having no side effects and are aimed at balancing the constituents, improving the hypertension and removing psychological factors like stress, anxiety etc. in case of psychological treatment Yoga showed better results and in case of physical treatment Naturopathy results were good; highly significant results on insomnia and obesity and significant relief in heabache, vomiting, palpitating, numbness, and forgetfulness. Also as per ama-naram criteria, Yogic procedures give better relief in Ama group of patients and Naturopathy give betterrelief in Niram group of patients.

ROLE OF PATHYADYA VATAKA AND VIDANGADI LEPA IN THE MANAGEMENT OF PSORIASIS

Dr. Manish Sharma, Institute for Post Graduate Teaching s Research in Ayurveda, G. A. U. Jamnagar

Kushtha is a condition described in Ayurveda in which mostly chronic type of skin diseases are included. It is further classified into Mahakushtha and Kshudra, Ekkushtha has described into Kshudra Kushtha having Vata-Kapha involvement (Acharya Charaka). Ekkushtha is compared with psoriasis due to its maximum resemblance with it. It is a papulosquamous disorder of the skin, characterized by sharply befined erythematosquamous lesions. It is notoriously chronic and is well known for its coures of remission and exacerbation. Modern medical science treats psoriasis with PUVA and corticosteroids. But the therapy give serious side effects like Kidney failure, bone marrow depletion etc. To combat with such serious effects need of safe remedy was felt and this study was designed.Present study has divided into two groups. The poper discusses methodology and results of the sludy.

EFFECT OF TULSI TABLET ON TAMAKSHWASA W.S.R TO BROPNCHIAL ASTHAMA

Dr. Vimal, R. Joshi, Charanjeet, S. Mehata, Dr. Paltagiri, R.K. Parjapai
Institute for Post Graduate Teaching s Research in Ayurveda, G. A. U. Jamnagar

Asthma remains one of the commonest breathing problems across the world. Despite advancemnts in the managament of Asthna there is worsening of morsening of morsening of morbidity and mortality in Asthma. a chronic obstructive disease. In Ayurveda, Acharya Charak has bescrbed classical features of Tamak Shwasa like Teevra Vega Shwasa (Rapid respiration). prana Prapidaka Shwasa (severe dyspnoea), Ghurghurakam (wheezing sound), Asino Labhte Saukhyam (orthopnoea) etc which closaly match with Bronchial Asthama. Acharya Charaka has described the Tulsi in Shwasahara Mahakashaya. Today, many researches are bring done for the management of Tamskshwasa, but Tulsi is One such herb, whish is easily available and identifiable by all. Hence, in the present study Tulsi was studied for its swashashar effect. Tulsi has Qualities like katutikta rasa, laghu and ruksha guna, ushna neerya and deepana pachana karma. The present study showedth encouraging results of Tulsi in management of tamakshwasa.

A COMPARATIVE STUDY OF *APAMARGA KSHARATAILA PREPARED WITH DIFFERENT DRAVA ANS KALKA DRAVYA*

Miss Hitaba Gohil, Dr. P.K. Prajapati Jamnagar

Apamargakshar taila is widely used in badhirya and karma roga. Generally other, Tails and Ghritas have been prepared by using the Kalka (paste) and Drava dravya (liquid media usally Swarasa or Kwatha). But Apamarga Kshara taila is prepared by using *Apamarga kshara drava* (the alkali which is get after dissolved in water after obtained it by burning, dissolving and filtration of same plant). Therefore to evaluate the drava dravya during the prepartion, the Taila were prepared in different samples by using fresh and dry paste of Apamarga along with Swarasa and Kwatha of Apamarga. All the samples tested through various snalytical Parametere Ph, Acid Value iodin Value, Saporification etc. At last it was dound that i.e. Apamarga Kshara taila preparedby fresh Kalka and ksharajala was found better and it was also found easy pharmaceutical procedure.

Key words: Kalka.Kshara & Kshara Drava, Swarasa, Decoction, taila.

CONCEPT OF SHODHAN IN AYURVEDA W.S.R. TO TAMRA SHODHANA

Chandrashekhar Jagtap, B.J. Patgiri, P.K. Prajapati. Dept. of Rasahastra & Bhaishjyakalpana, I.P.G.T. & R.A, G.A.U., Jamnagar

Ayurveda, the life science of Indian tradition, is considered to be upveda of the forth Veda i.e. Atharveda. Rasa shastra is the integral part of Ayurveda which deals with the herbo-mineralo-metallic drug prseparations which are highly effective in minimum dosage forms. But these preparations may also cause some untoward effects if not used cautiously. To avoid these untoward effects Seers have mentioned the Shodhana of the raw materials used in these preparations. Various methods of Shodhana have been mentioned in classics. Tamra (Copper) is one such highly effectivfe metal which is used in many therapeutic preparations. Tamra can be used in thera peutics only after its Shodhana of Tamra has been mentioned in specific media which also has some role in nullifying the tosic effects. In the present study, three batches of marketed Tamra (99%) each weighing 500g were taken and purified before analysis. The details of study will be presented in techical sessions.

Key: Ayurveda, Shodhana, Tamra.

RASAYANA EFFECT OF GUDUCHI W.S.R. TO ITS IMMUNOMODULATORY EFFECT

Mayur Barve, Bharati Umretia, B.J. Patgiri, P.K. Prajapati, B. Ravishankar, Jamnagar

Ayurveda, the ancient system of medicine, is the upveda of Atharvaveda. It deals mainly with the previentive,

promotive, protective as well as therapeutic aspects of disease. Rasayana, an integral part of Astanga Ayurveda, in one of the crucial and important segments of this evet existing science. It has been noted in classics about the benefits of rasayana that it helps our body to build a strong immune power, so that our body can cope up in many adverse conditions. Guduchi (*Tinospora cordifolia* Wild Miers.) is one of the well known Ayurvedic drug, familiar for its rasayana properties. Amongst the various properties included in rasayana, Immunomodulation property is very vital importance. Present study was undertaken on two samples of Gudchi Ghana, one classically prepared from kwatha and other procured from the market, to evaluate their immunomodulatory effect.The obtained results showed siginificant immunomodulatory activity of Guduchi Ghana prepared by kwatha classically. The details of the study will be presented in the technical sessions.

Key words: Ayurveda, Rasayana, Guduchi, Immunomodulation.

ROLE OF SAMSKARAS W.S.R. TO ASTHASAMSKARAS OF PARADA IN AYURVEDA

Shraddha N. Dhundi, B.J. Patgiri, P.K. Prajapati, Jamnagar

Samskaaro Hi Nama Gunantaradhanam Uchate. (Ch. Vi. 1/21) Samskara is a kind of procedure, which increases and improves the basic qualities of the drugs, eliminating their ill actions, if actions, if any. different types of Samaskaras have been referred in classics with an intention to incorporate desired therapeutic changes. In Rasashashtra, Ashtasamskaras of Parada plays a vital role not as very specific Shodhana procedure, but also has imperative role in inducing increased therapeutic properties. In the present Rasaushadhi in their usage is a matter of concern owing to their metallic percentages. The paper is aimed. To prove analytical changes occurred after 8 specific Samskaras like specific gravity reduced from 14 to 13.5 and changes in Ash value also. To Show the improvement in analytical, therapeutic value of Ashtasamskarita Parada. The focus will be made on proving the post samskara modifications in Parada in terms at analytical, pharmaceutical and therapeutic levels.

Key words: Samskaras, Parada, Rasaushadhi.

PHARMACEUTICAL STANDARDIZATION OF SAMEERA PANNAGA RASA- A PILOT STUDY

Mayur Mashru, Galib, P.K. Prajapati, Jamnagar

Ayurvedic Pharmaceutics deals with manufacturing of drugs different sources like herbal, mineral, metal and marine etc. these formulations occupied a siginificant seat in healthcare system throughout the globe. Particularly, the formulations with herbal origin occupied highest position and welcomed by the global population. But metallic/mineral preparations are equally emphasized through the ages in healthcare systems in ancient Ayurvedic classics, which have become a matter of concern in present scenario because of some other reasons. Sameera Pannaga Rasa, one of such preparations, has been referred in classics with therapeutic attributes particularly in disorders of Vata kaphaj disorders. Few studies have been carried out at different PG centers in India but, encouraging results have not been observed. Considering this, a pilot study has been done in the laboratory of IPGT & RA, with an intention to develop Standard Manufacturing Methods for the dosage from. Details will be discussed during the technical sessions.

Key words: Ayurveda, Sameera Pannaga Rasa,Vata Kaphaja disorders, Mineral preparations.

THERAPEUTIC EFFECTS OF SUNRAYS

Dr. Smita Talwar Sr. Lecturer Deptt. of H.S.C. G.D. College, Alwar

Yenema vishwa bhuvnani tasuh Tath shatram Balmojashch Jatam (Taittriya aranyakam- 3.11) The world is due to the sun of God. The living begings get their strength and energy from him. The fact that Sun is the source of energy was well known to Indians from vedic period. Matsyapurana reveals arogyam bhaskaradichet that means

worship of The sun (surya upasana) leads to attain good health. San te shesharnh kapalani hridyasay ch yo vidhuh. Udyannditya rashmibhih sheshano rogmaninshoangbhedamshishamh 1/8/22 i.e. The risen Sun with its rays combat headache, chest pain and other ailments. When health of the Sun rays penetrates in the skin, the problem of pyrexia does not arise. In Ayurved, the causes of disease is regarded as imbalance of vatt, pitt and kapha.This principle is similar to our treatment of colours. In hormony with Ayurved, the following is given, To remove too much vat, use green colour. Too much cold & kapha, use yellow, orange & red colour. Too much heat or pitta, use blue, violet or indigo colour. This therapy is also known as colour-therapy, chromo-therapy etc. Various materials viz. water, oil, sugar, glycerine etc are treated with sun rays kept in different coloured bottles & diseases are treated accordingly.

PHARMACEUTICAL STANDARDIZATION OF VISWAMITRA KAALA SNEHA

Dr. Himanshi Navadhare, Kunal Maniyar, Dr. B.J. Patgiri, Dr. P.K. Prajapati, Jamnagar

Narikela *(Coeus nueifera* Linn) is well known plant species used in our day to day life. Oil extract from its shell is mentioned in Aryabhishak as Vishawamitra Kapala Sneha and attributed with wide range of therapeutic properties in different skin ailments like Dadru (Eczema, Psoriasis) etc. This formulation is also said in Siddha literature. Till date pharmaceutical and analytical standards of the formulation have not been attempted. Thus, in this present study, Vishwamitra Kapala Sneha is prepared by three mèthods i.e. as per the reference mentioned in Aryabhishaka, Siddha literature, method developed by Gujarat Ayurved Pharmacy. The samples were analyzed on various physicochemical parameters for developing standards for these formulations. The method being followed at the Pharmacy, is found to yield much final product, but the obtained product by the reference Aryabhishak found to be viable in Analytical studies. Complete details will be presented during the technical sessions.

Key Words: Narikela, Sneha, Dadru, Arya Bhishaka, Ayurveda.

STUDY OF PHYSICO-CHEMICAL CHARACTERSTICS OF MEDICINALLY USEFUL ALPINIA SPECIOSA RHIZOME

Nitin Kumar Agrawal and A. K. Indrayan, Department of Chemistry, Gurukula Kangri University, Hardwar

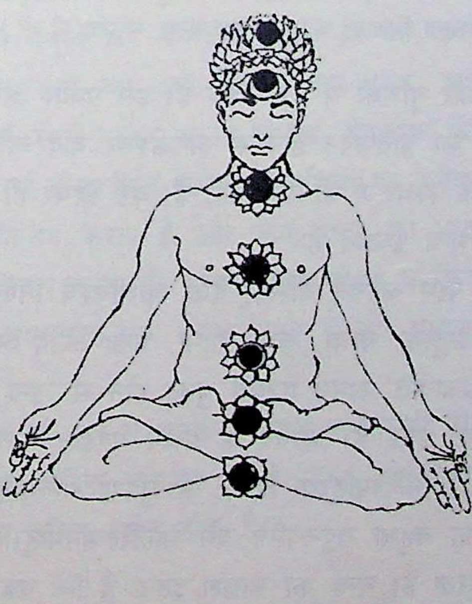
The rhizome of plant Alpinia speciosa, i.e., Chatiun is prescribed in Ayurveda as medicinally useful. The characterization of rhizome has been carried out to specify it. Study of refractive index, optical rotationm, pH, acid value, saponification value and iodine value etc. has been carried out. The presence of various natural product compounds has also been determined.

रोगों की चिकित्सा में अवचेतनमन की प्रमुख भूमिका-एक अध्ययन

डॉ. विपिन कुमार पाण्डेय, रीडर एवं विभागाध्यक्ष क्रियाशरीर विभाग, रा.आ.कॉलेज. गु.कां. हरिद्वार

भारतीय दर्शन के अनुसार सृष्टि की उत्पत्ति के समय राजस अहंकार की सहायता से सात्विक अहंकार से मन की उत्पत्ति हुई है, तथा आयुर्वेद के अनुसार, सृष्टि की उत्पत्ति का आदि कारण स्वयं कारण रहित सत्व, रज तथा तम गुणों से युक्त अव्यक्त है। अव्यक्त से ही त्रिगुणात्मक जगत की उत्पत्ति हुई है। आयुर्वेद शास्त्र में दोषों के दो प्रकार बताये गये हैं- "वायुः पित्तं कफश्चोक्तः शारीरोदोषसंग्रहः। मानसः पुनरुद्दिष्टो रजश्च तम एव च।। (च.सू. 1.56) उपरोक्त शारीरिक एवं मानसिक दोष आयुर्वेद में सभी रोगों के कारण माने गये हैं।

योग
अध्यात्म
दर्शन
मनोविज्ञान



यजुर्वेद में मन की शक्तियों का वर्णन

कु. मेघना (शोधच्छात्रा) मनोविज्ञानविभाग, एम.के.पी.(पी.जी.) कालेज, देहरादून (उत्तराखण्ड)

धर्म अर्थ काम और मोक्ष ये चार पुरुषार्थ मानव जीवन के लक्ष्य माने गये हैं। बाह्य इन्द्रियों के माध्यम से अन्तर्निहित सूक्ष्म तत्व की दिशा में मन एकाग्रचित्त होकर अग्रसर होता है। इन सूत्रों को उलट कर देखें(मोक्ष, काम, अर्थ और धर्म) तो विदित होगा कि वैदिक ऋषि ने सूक्ष्म तत्त्व के साक्षात्कार की दिशा में वाह्य इन्द्रियों की अक्षमता को लक्ष्य कर अन्य उपाय तलाशा। स्वानुभव से उसने प्रायोगिक प्रक्रिया(ध्यान, चिन्तन, मनन) द्वारा अतीन्द्रिय मन की शक्तियों को पहचाना और उसी माध्यम से सूक्ष्म तत्त्वज्ञान प्राप्त करने में सफल हुआ।

यज्ञ कर्मकाण्ड का अतिरेक होने पर उपनिषदों ने आध्यात्मिक पक्ष पर विशेष बल दिया और वेद का वैज्ञानिक पक्ष दब सा गया किन्तु मनोविज्ञान का संबन्ध आध्यात्म से बना रहा। मन्त्र विज्ञान को ही मनोविज्ञान कहा गया है। मन्त्र शब्द 'मन' धातु से निष्पन्न है। मन्त्र का अर्थ चिन्तन, मनन और ध्यान से ही खुल पाता है। यह मनन छन्दों से आच्छादित है जो आच्छादन करे वह छन्द है।

मन की शक्तियों पर यजुर्वेद के अध्याय 34 में 6 मन्त्र आये हैं। जिन्हें शिव संकल्प मन्त्र कहते हैं। हमारा मन शिव (कल्याणकारी) संकल्प वाला बने। इस मन में तीव्र वेग है। कर्म प्रेरक शक्तियां है चेतना है, धृति है, तीनों कालों का ज्ञान है। तीनों वेद इसी में प्रतिष्ठित हैं और यह हृदय में स्थित है। इसमें मन को भी चारों वेदों का आश्रय स्थल माना गया है। हमारा मस्तिष्क विश्व के द्युलोक का ही अंश है यदि सम्यक् उपासना की जाये तो हम अपने मन या मस्तिष्क को द्यावा से जोड़ सकते हैं। ऋचायें परम व्योम में हैं और हमारे मस्तिष्क के भीतर हृदयाकाश में भी है। यह मन तेजस्वी इन्द्रियों का प्रवर्तक, यज्ञों में आदरणीय भाव से सुशोभित, समस्त प्राणियों के अन्तःकरण मे अमर प्रकाश ज्योति स्वरूप, अविनाशी त्रिकालदर्शी, वैदिक ऋचाओं से प्रतिष्ठित, जरारहित, अतिवेगवान तथा कल्याणकारी शुभ संकल्पों से युक्त है।

मनुष्य का मन यदि शिव संकल्पशील रहे तो शरीर की यात्रा निर्विरोध उर्ध्वगामी रहेगी। मनुष्य का मन ही यज्ञ(कर्म) में बाधा डालता है अतः इसके परिष्कार हेतु सतत् प्रयत्नशील रहना चाहिये। 'मनसा जुहोमि' अर्थात् मन से पड़ी हुई आहुति ही मन को निर्मल बनाती है।

वेदों में एकेश्वरवाद

डॉ.(श्रीमती) मनोरमा गुप्ता अध्यक्षा- संस्कृत विभाग, कानपुर विद्यामन्दिर महिला(पी.जी.) महाविद्यालय, स्वरूपनगर, कानपुर

8 वसु, 11रुद्र, 12 आदित्य तथा द्यावा और पृथिवी ये 33 देवता हैं। इस प्रकार अनेक देवता हैं जिनका स्वरूप वर्णन वेदों में मिलता है। जिन्हें देखकर वेद में बहुदेवतावाद का प्रतिपादन होने से अनेकेश्वर वाद की भ्रान्ति हो जाती है। वस्तुतः ईश्वर को ही देवों का अधिदेव कहा गया है। सभी देवता एक ईश्वर में ही समाविष्ट हैं। वह ईश्वर ही अक्षर, सर्वव्यापी है। देवपदवाच्य विष्णु, इन्द्र आदि उसी पर आश्रित हैं। ऋग्वेद का यह मन्त्र द्रष्टव्य है-

''ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधिविश्वे निषेदुः''

जैसे एक ही व्यक्ति गुण और कर्म के अनुसार चाचा, बाबा, मामा, भ्राता आदि अनेक रूप और नाम से पुकारा जाता है। उसी प्रकार ईश्वर संसार का अधिपति होने से 'प्रजापति' समग्र ऐश्वर्य युक्त होने से 'इन्द्र' सर्वत्र व्यापक होने 'विष्णु' और दुष्टों को रुलाने से 'रुद्र' आदि अनेक नामों से अभिहित होता है। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में एक मन्त्र आया है-

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहु।।

यह मन्त्र एकेश्वरवाद का डिंडिमघोष करता है। मन्त्र का सारांश इतना है कि वह ईश्वर एक है। इन्द्र, मित्र, वरुण आदि नाम उसी ईश्वर के हैं। ''एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति'' यह मन्त्रांश बहुत प्रसिद्ध है। 'एकम्' पद से ईश्वर का ग्रहण होता है। 'सद्विप्रा'

पद आप्त पुरुष का द्योतक है। ''बहुधा'' पद 'अनेक प्रकार से' इस अर्थ को द्योतित करता है। भाव यह है कि ईश्वर है तो एक ही, किन्तु विद्वान् लोग उसे अनेक नामों और अनेक प्रकार से पुकारते हैं, जानते हैं और वर्णन करते हैं।

वेदों में भगवत्तत्त्व की विवेचना

डॉ. शील निगम अध्यक्ष- संस्कृत विभाग, डी.जी. कालेज, कानपुर

वेदों में भगवत्तत्त्व का वर्णन ब्रह्म, पुरुष, आत्मा, महद् ब्रह्म, तुरीय ब्रह्म, गुप्त, परमधाम, देव, भुवनपति, बृहस्पति, विष्णुरुद्र, अग्नि, इन्द्र, मित्र, वरुण, अर्यमा, मय, आदित्य आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। वेदों में भगवान् शब्द के साथ साथ 'भगवः भगवन् भगवन्तः, भगवद्भ्यः, भगवन्ती भगवती आदि शब्दों का प्रयोग भगवान् शब्द के स्थान पर किया गया है। इन प्रयोगों से भगवत्तत्त्व पर तथा भगवान् के लिये प्रयुक्त सभी पक्षों पर अत्यन्त विशद् प्रकाश पड़ता है।

भगवान् का भग देवता रूप में वर्णन करते हुए ऋग्वेद में कहा गया है-

भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः।
भग प्रणो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम॥

(ऋ. 7.41.3)

प्रकृष्ट मार्ग से ले चलने वाले हे भगदेव! सत्यरूपी ऐश्वर्य वाले सत्यसिद्धि के प्रदाता भग-रूप भगवन् अपनी इस प्रसिद्धि दिव्य प्रज्ञा का दान करते हुए आप हमारा रक्षण और संवर्द्धन करिये तथा अपनी चिद् रश्मियों और अध्यात्म शक्तियों से हमारा विकास कीजिये। आपकी दैवी शक्तियों से हम दिव्यशक्ति से युक्त हों। अथर्ववेद में ब्रह्म शब्द के द्वारा भगवत्तत्त्व का वर्णन किया गया है। वेदों के अधिकांश मन्त्रों में पुरुष के रूप में भगवत्तत्त्व का निरूपण किया गया है।

पाप का अर्थ तथा निर्वचन(वैदिक साहित्य के सन्दर्भ में)

जितेन्द्र कुमार अध्यक्ष संस्कृत विभाग, दयानन्द महाविद्यालय, अजमेर

प्रकृत विषय पर चिन्तन का मूल उत्स मत्स्य न्याय की अवधारणा से प्रारम्भ होता है। प्रकृति में विशेषतः स्वाभाविक रूप में दृष्टिगोचर है। छोटी मछली बड़ी मछली का भोजन बन जाती है, छटपटा कर प्राण त्याग देती है। मानव में नैसर्गिक रूप से यह प्रवृत्ति परिव्याप्त है। इस प्रकृति और प्रवृत्ति पर अंकुश लगाने के लिए वैदिक वाङ्मय में अनेक प्रकार के भय एवं प्रलोभनों का वर्णन प्राप्त होता है। भय और प्रलोभन मनुष्य की जन्मजात प्रवृत्ति है। वह दण्ड से बचने का सतत प्रयत्न करता है तथा पुरस्कार को पाने की सदैव इच्छा रखता है। इसी को धर्म-अधर्म, पाप-पुण्य, शुभ-अशुभ, भद्र-दुरित्, सुकृत्-दुष्कृत्, अच्छा-बुरा, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य, परिणामात्मक रूप में स्वर्ग-नरक, जन्नत-दोजख, देवलोक-पितृलोक, सूर्यलोक-चन्द्रलोक इत्यादि अनेक नामों से अभिहित किया जाता है। सम्पूर्ण जगत् का केन्द्र बिन्दु मानव है। पृथिवी पर अनेक प्रकार के प्राणियों में मनुष्य ही एकमात्र ऐसा प्राणी है जो बुद्धि का उपयोग करता है, चिन्तन करता है और वाक् तत्त्व का प्रयोग करता है। मनुष्य ही विधि-निषेध, धर्म-अधर्म, करणीय-अकरणीय, पुण्य-पापादि पर विचार करता हे। इनको अपने जीवन में क्रियान्वित करता है और इन सब का विवेचन भी करता है। भारतीय संस्कृति में पाप-पुण्य की अवधारणा एक रोचक प्रसङ्ग है और समाज के प्रत्येक वर्ग के व्यक्तियों के जीवन को प्रभावित करती है।

वैदिक साहित्य को शब्द प्रमाण के रूप में भारतीय समाज सर्वसम्मति से स्वीकार करता है। अतः पाप-पुण्य विषयक चिन्तन की अविकल धारा का उद्गम स्थल भी वैदिक वाङ्मय ही है। उक्त शीर्षकगत सर्वप्रथम पाप के शाब्दिक अर्थ, भावात्मक प्रभाव तथा शास्त्रीय निर्वचन पर विचार करना उचित प्रतीत होता है।

वैदिक वाङ्मय मे पुनर्जन्म की अवधारणा

सुभाष चन्द्र (शोधच्छात्र)

पुनर्जन्म का अर्थ है मृत्यु के बाद पुनः जीवन ग्रहण करना। भारतीय दर्शन में स्पष्टतया दो प्रकार की विचारधारायें हैं- 1. भौतिकवादी विचारधारा और 2. आध्यात्मिक विचारधारा। भौतिकवादी विचारकों के अनुसार मृत्यु की जीवन का अन्त है। शरीरान्त के बाद कुछ भी अवशेष नहीं रह जाता है। भौतिक तत्त्वों की ही परमार्थ सत्ता है। भौतिक तत्त्वों के सम्मिश्रण से ही संसार की सब वस्तुएँ बनती हैं। चैतन्य भी जड़ पदार्थों के सम्मिश्रण की एक विशेष अवस्था है।

किन्तु आध्यात्मिक विचारधारा के अनुसार मृत्यु ही जीवन का अन्त नहीं है। बल्कि मृत्यु के बाद भी जीव का अस्तित्व बना रहता है। इन विचारकों का मत है कि जीव मृत्यु के बाद भी जन्म ग्रहण करता है। पुनर्जन्म की यह मान्यता आत्मा की सत्ता को स्वीकार करती है। इस शोध पत्र में वैदिक वाङ्मय के आधार पर पुनर्जन्म की अवधारणा को स्पष्ट किया जायेगा।

श्रीमद्भगवद्गीता में अनेक स्थानों पर यह बताया गया है कि जीवात्मा की न तो मृत्यु होती हैं और न जन्म।

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।।

संस्कृत-वाङ्मय में सृष्टिप्रक्रिया

तेज प्रकाश गुप्त (शोधच्छात्र) प्राच्य संस्कृत विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

सर्ग आदि के साथ ही पापों का नाश करने वाली सृष्टि-स्थित एवं प्रलय रूप भगवान् विष्णु की सनातन क्रीड़ा का वर्णन, नरनारायण-रूप में उपास्य व वासुदेव प्रकाशस्वरूप परमात्मा परब्रह्म और देवाधिदेव हैं तथा इस जगत् की सृष्टि-स्थिति एवं प्रलय के कर्त्ता हैं। यह सब जो कुछ दृष्ट-अदृष्ट है, उन भगवान् का ही व्यक्त और अव्यक्त स्वरूप है।' उन परमात्मा परमेश्वर का आदि और अन्त नहीं है, उन्हीं परमेश्वर से अव्यक्त प्रकृति से बुद्धि, बुद्धि से मन, मन से आकाश, आकाश से वायु, वायु से तेज, तेज से जल और जल से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई है। जैसा कि तैत्तिरीय ब्राह्मण में भी कहा गया है कि प्रजापति के अश्रु-जल के समुद्र में गिरने से पृथ्वी बनी। कालान्त से अन्तरिक्ष और द्युलोक बने प्रजापति के सघन भाग से असुरों की सृष्टि हुई। पुनः प्रजापति ने तपस्या की, जिससे मनुष्यों, देवों और ऋतुओं की सृष्टि हुई। इस प्रक्रिया में मन का योगदान सर्वाधिक रहा- **'असतोऽधि मनोऽसृज्यत। मनः प्रजापतिम सृजतप्रजापतिः प्रजाः असृजत।'** इसके पश्चात् हिरण्मय अण्ड उत्पन्न हुआ उस अण्ड में वे प्रभु स्वयं प्रविष्ट होकर जगत् की सृष्टि के लिए सर्वप्रथम शरीर धारण करते हैं। तदनन्तर चतुर्मुख ब्रह्मा के रूप में शरीर धारण कर रजो गुण के आश्रय से उन्हीं देव ने इस चराचर विश्व की सृष्टि की। शेष इस विषय पर विस्तृत चर्चा शोधपत्र में प्रस्तुत की गयी है।

ऋग्वैदिक आध्यात्मिक ऋचाएँः तत्त्वचिन्तन के परिप्रेक्ष्य में

डॉ. माधवी उपाध्याय विभागाध्यक्ष, संस्कृत विभाग, गुजरात आर्ट्स एण्ड कामर्स कालेज, गुजरात

भारतीय तत्त्वचिन्तन की गंगोत्री का प्रवहण वेद वाङ्मय से ही प्रारम्भत होता है। समस्त विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद में भी तत्त्वचिन्तन का निरूपण सुप्राप्य है। 'तास्त्रिविधा ऋचः' कहकर महर्षि यास्क 'आध्यात्मिक ऋचाओं' के रूप में व्याख्यान करते हैं, उन ऋचाओं का अनुशीलन तत्त्वचिन्तन के परिप्रेक्ष्य में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। प्रस्तुत शोधपत्र में इन ऋचाओं का तथा इस संकल्पना का अनुशीलन करके इस के गहन, रहस्यमय तथा नितान्त सत्य ऐसे अर्थ-सलील में अवगाहन का प्रयास किया गया है। और हमारी तत्त्वचिन्तन परम्परा में उसका अपूर्व और अद्वितीय स्थान सिद्ध किया गया है। तथा उसकी सत्यता भी सिद्ध की गई है।

भारतीय दार्शनिक परिप्रेक्ष्य में वैदिक साहित्य- एक चिन्तन

रेनू सिंह शोधच्छात्रा, संस्कृतविभाग, फिरोज़ गाँधी कालेज, रायबरेली

सम्पूर्ण भारतीय दार्शनिक-चिन्तन वैदिकसाहित्य का प्रतिफल है वेदों से जो कुछ भी उपनिषदों में आया है वह विशुद्ध भारतीय ऋषियों के दार्शनिक तप:भूत मानस पटल पर जो आध्यात्मिकधारा अविरल प्रवरहित हुई वह वैदिक -मन्त्रों एवं संहिताओं में आबद्ध है वेदों के तलस्पर्शी अध्ययन से पता चलता है कि जो कुछ वेदों में अंकुरित है वह पुष्पित एवं पल्लवित होकर विशाल वृक्ष के रूप में उपनिषदों में प्राप्त होता है।भारतीय दार्शनिक चिन्तन में वेदों के गुणों के गौरव का गान सदा के लिये किया जा रहा है। वेदान्तर कालीन साहित्य में ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद, वेदाङ्ग, दर्शन, स्मृति आदि ग्रन्थों में वेदों को ईश्वरकृत और अपौरुषेय मानकर। वेदों के मन्त्रों की व्याख्या बहुत प्राचीनकाल से की जाती है तथा अनेक विद्वानों ने इनके अर्थों को प्रकाशित करने का प्रयास किया है परन्तु मन्त्रों के अर्थो को अभिव्यक्त करने में वे एकमत नहीं हो सके।

भारतीय दार्शनिक भारतीय परम्पराओं के अनुसार वेदों को ईश्वरीय ज्ञान माना जाता है। वैदिक ज्ञान नित्य है एवं सृष्टि की रचना के आदि में ईश्वर ने वैदिक ज्ञान का आविर्भाव किया है वेदान्त दर्शन के अनुसार वेद अनादि और अपौरुषेय ज्ञान है जो प्रलय के बाद भी बना रहता है एवं सृष्टि के आदि में पुन: ईश्वरीय ज्ञान द्वारा आविर्भूत होता है जिस प्रकार ईश्वर अनादि, अनन्त और अविनश्वर है उसी प्रकार ईश्वरीय ज्ञान वेद भी अनादि अनन्त और अवनश्वर है सृष्टि की रचना होने पर ईश्वर द्वारा यह ईश्वरीय ज्ञान ऋषियों के हृदयों में प्रकाशित होता है।

वेदों में प्रतिबिम्बित तेजस्वी जीवनवाद

डॉ. मनसुख के. मोलिया रीडर, संस्कृत भवन, सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, राजकोट(गुजरात)

किसी भी प्रजा का जीवन के प्रति अभिगम ही उसके वर्तमान का आधार और भविष्य का नियन्ता होता है। आजकल बहुधा ध्यान दिया जाता है कि हमारे प्राचीन साहित्य में अध्यात्म के विकास की ओर अधिक ध्यान दिया है लेकिन व्यवहारपरक जीवन के प्रति उपेक्षा रखी गई है। भारतीय चिन्तन प्रारब्धवाद को प्रेरित करता है ऐसी भी मान्यता है, जो बिल्कुल निराधार है। हमारे वैदिक साहित्य में मनीषी ऋषियों का मनुष्य के जीवन के प्रति विधायक और तेजस्वी दृष्टिकोण प्राय: सर्वत्र पाया जाता है। वैदिक ऋषियों ने कभी भी मनुष्य को निर्बल और नि:सहाय बनाने वाली विचारधारा का पुरस्कार नहीं किया है।

सुदीर्घ और स्वस्थ जीवन की कामना, दृढ़ मनोबल से आपत्ति से लड़ने की उत्कट अभिलाषा, जीवन को सुन्दर रीति से यापन करने की महेच्छा, जीवन के आंतरिक और बाह्य शत्रुओं को फटकारने की युयुत्सुवृत्ति, शत्रुओं पर विजय पाने की आकांक्षा इत्यादि बातों से जीवन के प्रति तेजस्वी दृष्टि का प्रमाण मिलता है। कहीं भी मनुष्य होने के लिए पामर भाव या पापवृत्ति का दर्शन नहीं होता है। समग्र मनुष्य जाति को आर्यत्व के पथ पर ले जाने की दुर्दम्य अभीप्सा में जीवन के प्रति समादर और उत्सा झलकता है।

वैदिक संहिताओं में सौ शरद काल तक जीने की प्रार्थना अनेक बार की गई है। ईशावास्योपनिषद् नाम से प्रसिद्ध यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय में कर्म करते हुए शतायु की कामना व्यक्त हुई है। स्वस्थ शरीर के लिए स्वस्थ मन और बुद्धि अनिवार्य है। गायत्री मन्त्र में बुद्धि को सम्प्रेरित करने के लिए प्रार्थना की गई है। अनेक मन्त्रों में वर्चस्, मन्यु, रयि, वीर सन्तति, अविजित पौरुष, साहस, वीर्य, ओजस् आदि की प्राप्ति के लिए प्रार्थना की गई है। यजुर्वेद का राष्ट्र सूक्त वैदिक प्रजा की जीवनपरक सोच का उत्तम उदाहरण है। 'अयं मे हस्तो भगवान्' उद्गार में अपने जीवन और प्रारब्ध तक का स्वयं निर्माण करने की बुलन्द घोषणा गूँज रही है। आधुनिक मानसशास्त्रीय चिन्तन में मनुष्य की दो वृत्तियाँ बताई गई हैं, जीवनवृत्ति और मृत्युवृत्ति। समग्र वैदिक साहित्य का आकलन करते हुए हमें भारतीय प्रजा की तेजस्वी जीवनवृत्ति का दर्शन होता है।?

शिवसंकल्पसूक्त और न्याय-वैशेषिक का मनस् तत्त्व

डॉ. अनीता राजपाल एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, हिन्दू महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली-110007

जगत् के दृश्यमान पदार्थो के ज्ञान का साधन चक्षुरादि इन्द्रियाँ हैं। इन्द्रियों का स्वभाव है कि वे बाह्य पदार्थों की ओर प्रवृत्त होती हैं। वेद, उपनिषदों में इन इन्द्रियों को शरीर रूप रथ में जुते हुए घोड़े कहा गया है। इन घोड़ों को नियन्त्रित करने वाला मन है, जिसे लगाम कहा गया है। ये इन्द्रियाँ रूपी घोड़े एक साथ बाह्य विषयों की ओर दोड़ते हैं परन्तु एक साथ सभी कार्यो को उपलब्ध नहीं करा सकते। मन रूपी लगाम के द्वारा नियन्त्रित करने पर ही इन्द्रियाँ स्व स्व विषय में प्रवृत्त होती हैं। इसीलिए शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है- 'मनसा ह्येव पश्यति, मनसा श्रृणोति' अर्थात् मन के प्रेरित करने पर ही चक्षुरादि इन्द्रिय देखने मे तथा श्रवणेन्द्रियाँ शब्द को सुन पाती हैं। प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया में मन की अनिवार्यता को देखकर ही मन का पृथक् विवेचन किया गया है। ब्राह्मण ग्रन्थों में तथा उपनिषदों में मन के गुण, धर्म, स्वरूप और कार्यो का विशद विवेचन किया गया है। शुक्ल यजुर्वेद के 34वें अध्याय के प्रथम छः मन्त्र 'शिवसंकल्पसूत्र' के नाम से जाने जाते हैं। इसमें मनस् तत्त्व का ज्ञानात्मक और क्रियात्मक रूप प्रस्तुत किया गया है।

यजुर्वेद के भाष्यकार उव्वट और महीधर ने इस सूक्त में निरूपित मन के ज्ञानात्मक स्वरूप की व्याख्या न्याय-वैशेषिक दर्शन में स्वीकृत ज्ञान की प्रक्रिया के आधार पर की है। शिवसंकल्पसूक्त के प्रथम मन्त्र के 'ज्योतिषां ज्योतिरेक:' की व्याख्या करते हुए महीधर का कहना है कि 'ज्योतिषां' अर्थात् श्रोत्रादि इन्द्रियों की 'ज्योति:' अर्थात् मन है। आत्मा मन से संयुक्त होता है, मन इन्द्रिय से, इन्द्रिय अर्थ से तदनन्तर वस्तु का प्रत्यक्ष होता है। ज्ञानोत्पत्ति की यह प्रक्रिया न्याय-वैशेषिक में कही गयी है। मन के संयोग के बिना इन्द्रियाँ अपने विषय में प्रवृत्त ही नहीं हो सकती इसलिए मन को 'ज्योतिषां ज्योति:' कहा गया है। महर्षि गौतम प्रदत्त प्रत्यक्ष के लक्षण के प्रथम पद 'इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानम्' की व्याख्या में इस प्रक्रिया को स्पष्ट किया है। इसी प्रकार न्याय-वैशेषिक दर्शन में मन को अन्तरिन्द्रिय माना गया है जो शिवसंकल्पसूक्त के दूसरे मन्त्र में प्रयुक्त 'अन्त:' पद का ही विशदीकरण है। इसी प्रकार 'परिगृहीतम्' 'तदु सुप्तस्य तथैवेति' आदि पद नव्य न्याय में भूत भविष्य के पदार्थो के प्रत्यक्ष के लिए स्वीकृत 'योगज' नामक अलौकिक सन्निकर्ष के रूप में तथा स्वप्न के स्वरूप, उसके भेदादि के रूप में व्याख्येय हैं।

वैदिक दर्शन में चेतना की अवधारणा

डॉ. नितिश दुबे रीडर दर्शन विभाग, डी.ए.वी. कालेज, कानपुर

ऋग्वेद में जहाँ आत्मा को सर्वप्रधान रूप में स्वीकार किया गया है, वहीं उपनिषदों में उसे केवल मानवीय स्वरूप के अर्थो में ही ग्रहण किया गया है। आत्मा की संज्ञा एक प्रकार का नाम है जिसे विभिन्न युगों में विभिन्न विषय वस्तुओं के साथ संयुक्त किया गया है। आत्मा के सिद्धान्त का केवल विषय वस्तु ही नवीन नहीं है, बल्कि वह चिन्तन की भी एक नई विधि प्रस्तुत करता है। आत्मा का वास्तविक स्वरूप सच्चिदानन्द है। चित् और आनन्द की धारणाओं पर यद्यपि विभिन्न विधियों से पहुंचा गया है, किन्तु अन्त में परम गुणों की तरह उनका तादात्म्य कर दिया जाता है। शुद्ध व पूर्ण चेतना का आनन्द से भेद नहीं किया जा सकता है। आनन्द वही है जो भूमन् है। श्रेष्ठतम् आत्मा स्वयं आनन्द है, क्योंकि उसकी कोई आवश्यकता, आकांक्षा नहीं, कोई तनाव, कोई बन्धन उसमें नहीं और अन्ततः उसका कोई द्वितीय भी नहीं है। ब्रह्म अनुभवाश्रित चेतना से पूर्णतया भिन्न तथा अति चेतना की अंतिमावस्था की तरह, आनन्द का स्वरूप ही है। वह आनन्द ही है।

उपनिषदों तथा सांख्य, योग और अद्वैत वेदान्त की दर्शन प्रणालियों में भी चेतना की धारणा तथा उसका प्रतिपादन एक ऐसी स्वनिर्भर और नित्य सत्ता के रूप में हुआ है जो पूर्णतया विभेदरहित है, समग्र रूप से सक्रिय है, विशुद्ध ज्ञान की तरह अस्तित्व में रहने में समर्थ है, विषय वस्तु-रहित शुद्ध प्रकाश है।

श्वेताश्वतर में ब्रह्म की उभयरूपता

डॉ. बबीता शर्मा प्रवाचिका- कन्या गुरुकुल महाविद्यालय, हरिद्वार

श्वेताश्वतर उपनिषद् ब्रह्म के स्वरूप प्रतिपादन में कृतकार्य है। वहाँ ब्रह्म के दोनों रूप प्रोक्त हैं सगुण भी और निर्गुण भी, एक भी और त्रिविध भी , सूक्ष्म भी और महान् भी एक देशीय भी और विभु भी तथा सेन्द्रिय भी और निरिन्द्रिय भी तथा साथ ही आकारवान् भी और आकारहीन भी। ऐसे में जिज्ञासु की बुद्धि का किसी निष्कर्ष पर न पहुँच पाना स्वाभाविक ही है। पहले ब्रह्म की उभयरूपता का विवेचन करना और पुनः उसकी सत्यता की समीक्षा करना ही इस शोधपत्र में हमारा लक्ष्य है।

वैदिक साहित्य में षोडश संस्कार

भरतकुमार नगाभाई जादव (रिसर्चफैलो) श्री सोमनाथ सं.यूनि. वेरावल(गुजरात)

वेद मानव जाति का आदि ग्रन्थ हैं। चतुर्विध पुरुषार्थ का आदि शिक्षक हैं। सहस्रों वर्षो से वैदिक शिक्षा ही मनुष्यमात्र का कल्याण कर रही है। वेद मानव जाति का जीवन है शक्तिस्रोत है। प्रकाश-स्तम्भ है। ऋषि मुनियों ने मानव जीवन का गहन अध्ययन करके हमारे पूर्ण अर्थात् मन, शरीर एवं आत्मा के सम्पूर्ण विकास के लिए नियमों की रचना की जिनको हम जीवनचर्या नियम कहते हैं। संस्कार इसी जीवनचर्या का मुख्य अंग है। 'संस्कार' शब्द का अर्थ है, सम्(अच्छी तरह)+ कृ(करना) (1) शरीर आदि का शृंगार (2) नये गुणों का आधान(संस्करणं गुणान्तराधानम्) है। इस दूसरे अर्थानुसर वैदिक समय में जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त किये जानेवाले जो विभिन्न 16 संस्कार हैं- 1. गर्भाधान, 2. पुंसवन, 3. सीमन्तोन्नयन, 4. जातकर्म, 5. नामकरण, 6. निष्क्रमण, 7. अन्नप्राशन, 8. चूडाकर्म, 9. कर्णवेध, 10. विद्यारम्भ, 11. उपनयन, 12. वेदारम्भ, 13. केशान्त, 14. समावर्तन, 15. विवाह, 16. अन्त्येष्टि संस्कार।

यह सर्वमान्य संस्कारों की संख्या 16 है, संस्कारों का सम्बन्ध सम्पूर्ण जीवन से था और है। अतः किसी भी संस्कृति को पूर्ण रूपसे समझने के लिए संस्कारों का अध्ययन महत्त्वपूर्ण है। समाज विज्ञान की दृष्टि से भी संस्कारों का अध्ययन बड़ा महत्त्व रखता है। हिन्दुओं की सामाजिक व्यवस्था की दृढता के पीछे उनके जीवन के नियमित और अनिवार्य संस्कार हैं।

वैदिक अद्वैतवाद

प्रशान्त राठौर (शोध-छात्र) गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

ऋग्वेद में धर्म के त्रिविध स्तर का विवरण पाया जाता है, जिसका प्रारम्भ बहुदेवतावाद में होता है तथा अन्त अद्वैतवाद में होता है। एकेश्वरवाद बहुदेवतावाद तथा अद्वैतवाद के मध्य एक कड़ी का काम करता है। इन तीनों स्तरों में तार्किक सम्बन्ध दिखाई देता है। ऋग्वेद का अद्वैतवाद दो सूक्तों पर केन्द्रित है। ये है- पुरुष सूक्त और नासदीय सूक्त। पुरुष सूक्त में परम पुरुष की महिमा का उल्लेख हुआ है। इसमें सम्पूर्ण जगत् को एक रूप में देखा गया है तथा मूल सत्ता की एकात्मकता पर बल दिया गया है।

अद्वैतवाद का सशक्त उदाहरण (ऋ. 10.129) नासदीय सूक्त में पाया जाता है, जिसे भारतीय विचारधारा का पुष्प कहकर प्रतिष्ठित किया गया है। यहाँ निर्गुण ब्रह्म की झलक मिलती है। अद्वैतवाद की यह अनुभूति अतुलनीय है। इसके लिये वैदिक ऋषियों को अनन्त काल तक श्रद्धा से स्मरण किया जायेगा। 'उस समय न सत् था और न असत्। पृथ्वी भी नहीं थी तथा आकाश भी नहीं था तथा न उससे ऊपर का व्योम(स्वर्ग)। आवरण भी कहाँ था?..... उस समय मृत्यु नहीं थी, अमरता भी नहीं थी। रात और दिन का भेद भी नहीं था। वायु शून्य और श्वास प्रश्वास युक्त केवल ब्रह्म थे। उसके अतिरिक्त और कुछ नहीं था। सृष्टि के प्रथम अंधकार से अन्धकार ढका था। ....प्रकृति तत्त्व को कौन जानता है? कौन उसका वर्णन करे? यह सृष्टि कहाँ से उत्पन्न हुई? देवता लोग इन सृष्टियों के अनन्तर उत्पन्न हुए हैं। कहाँ से सृष्टि हुई- यह कौन जानता है?.......... किसने सृष्टि की और किसने नहीं की, यह सब वे ही जाने जो इनके स्वामी परम धर्म में रहते हैं। हो सकता है कि वे सभी ये सब नहीं जानते हों।'

इस सूक्त में अद्वैतवादी विचारधारा का मूल दिखाई देता है। इस सूक्त को विश्वसाहित्य की अनुपम निधि के रूप में स्वीकारा

गयाहै। इस सूक्त में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति एक मूल कारण से बतलाई तथा उस मूल कारण के स्वरूप को भी रेखांकित करने की चेष्टा की गई है।

स्वामी दयानन्द का वैदिक दर्शन

क्षिप्रा गौतम (शोधच्छात्रा) संस्कृतविभाग, गुरुकुल कां.वि.वि. हरिद्वार

दयानन्द जी ने वेदों में निहित उच्चतर, नैतिक, आध्यात्मिक मूल्यों, दार्शनिक तत्त्वों, सामाजिक हित की दृष्टिसे विहित विधानों की विवेचना से युक्त रहस्यों का स्वयं भी दर्शन किया तथा इस दिव्य, ज्ञान के महनीय एवं उदात्त प्रतिपाद्य से मानव जाति को परिचित कराया। दयानन्द जी ने वेदों में निहित दार्शनिक तत्त्वों को दर्शाया है, उन सब तथ्यों को मैं अपने बृहद् शोध पत्र में विस्तृत रूप से प्रस्तुत करना चाहूँगी।

वेदों में मोक्ष का स्वरूप

प्रशान्त कुमार (शोधच्छात्र) दर्शनशास्त्रविभाग गुरुकुल कां.वि.वि. हरिद्वार

वेद भारतीय संस्कृति एवं ज्ञान विज्ञान के मूल स्रोत हैं। वेदों में ही समस्त विद्याओं का विकास माना गया है। प्रस्तुत शोधलेख में वेदों में मोक्ष के स्वरूप पर विचार किया गया है।

मोक्षण अर्थावाली 'मुच्लृ' धातु से निष्पन्न मोक्ष का अर्थ 'छूटना' अथवा मुक्त होना है। प्रकृतिजन्य शरीर आदि के बन्धन से या जन्म-मरण के चक्र से विमुक्त होना ही मोक्ष का तात्पर्य है। वैदिक संहिताओं में मोक्ष का साक्षात् प्रयोग नहीं हुआ परन्तु क्रियारूप में मोक्ष प्रयोग हुआ 'मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्'(ऋ. 67.59.12 ; यजु. 3.60 पूर्वार्द्ध)। वैदिक संहिताओं में मोक्षवाची 'अमृतत्व' का सर्वाधिक प्रयोग मिलता है। मोक्ष को ऋग्वेद में 'सर्वोत्पादक सकल कल्याणसाधक परमात्मा योगयज्ञसाधक निष्काम महात्माओं के लिए पहले सेवनीय सर्वोत्तम भाग 'मोक्ष' को प्रदान करता है, उनके सभी ओर से बन्धनों को खोल देता है और उन्हें मनुष्योचित अनुकूल वृत्तिवाले साधन देता है (ऋग्वेद 4.54.2)। इस प्रकार वैदिक मतानुसार 'सब प्रकार के बन्धनों से मुक्त होना ही मुक्ति है।

यजुर्वेद में भी मृत्यु के बन्धन से अथवा मृत्युशरीर के बन्धन से छूट जाना ही मुक्ति है। यजुर्वेद में ब्रह्मज्ञान(वेदों के ज्ञान) से प्राप्त मुक्ति से 'मृत्यु को लांघ जाना' बताया है(यजु. 30.18) वेद ज्ञान के द्वारा जीवात्मा, प्रकृति एवं निजस्वरूप को ज्ञानकर अविद्या के कारणों का विनाश करके, जन्म के हेतु कर्मफल के मूल को समाप्त कर लेता है तो जन्म मरण रूप बन्धन से परान्तकाल के लिए छूट जाता है एवं परमानन्द का उपभोग करता है, इसे मुक्ति कहते हैं। जो परमेश्वर की वेद द्वारा दी गयी आज्ञा के अनुकूल चलते हैं, वे मोक्ष सुख को प्राप्त करते हैं।

वेदों में भक्ति-तत्त्व

डॉ. राजेश सी. व्यास सेठ पी.टी. आदर्श कॉलेज, गोधरा गुजरात

वेदों के सम्बन्ध में कुछ गलत धारणाएँ फैली हुई हैं। कुछ लोगों का कहना है कि वेदों में भक्ति-प्रेरक बातों का समावेश नहीं है। वस्तुतः वेद ही भक्ति के आदि स्रोत है। वैदिक महर्षियों की दृष्टि मूलतः आध्यात्मिक है। ऋक् की स्तुति हो चाहे साम का संगीत सबका लक्ष्य मात्र अध्यात्म-ईश्वर-साक्षात्कार ही है। वेदों में भिन्न-भिन्न स्थान पर बिखरे भक्ति मन्त्रों की और ध्यान खींचकर वेदों में रहे भक्ति तत्त्वों को दिखाने का नम्र प्रयत्न प्रस्तुत लेख में किया गया है।

वेदों में तत्त्व चिन्तन

डॉ. सोहनपाल सिंह आर्य एसो.प्रोफेसर, दर्शनशास्त्रविभाग, गु.कां.वि.वि. हरिद्वार

मैं कौन हूँ ? संसार से मेरा क्या सम्बन्ध है? मेरा संसार में आने, होने का वास्तविक उद्देश्य क्यों है? यह संसार किस तत्त्व सत्ताओं से बना है? संसार के निर्माण का कोई प्रयोजन भी है? और क्या कोई निर्माता सत्ता सृष्टि के मूल में निहित है? अथवा यह अनेक भिन्न-भिन्न परमाणुओं/ऊर्जा की यान्त्रिक गतियों एवं परिवर्तनों का परिणाम-विकास मात्र है। और क्यों सृष्टि का अस्तित्व वर्तमान रूप में हमारे समक्ष विद्यमान हैं? जगत् की मूल सत्ताओं का स्वरूप क्या है? इनका परस्पर संयोग/संयोजन सकारण/सप्रयोजन हैं अथवा नहीं? इत्यादि इस तरह के अनेक दार्शनिक प्रश्न हर किसी तत्त्व जिज्ञासु, विचारशील मस्तिष्क में समय-समय पर उठते रहे हैं और चिन्तन की घनीभूत तथा व्यापक परम्परा से जुड़कर विभिन्न दार्शनिक धाराओं के रूप में दार्शनिक चिन्तन मनन की विषय वस्तु बनते रहे हैं जो तत्त्व चिन्तन परम्परा के अन्तर्गत विभिन्न नामों से जाने जाते हैं। दर्शन की भाषा में कहें तो वे सभी तात्त्विक विचार-धारायें आध्यात्मवाद, भौतिकवाद, समन्वयवाद, द्वैतवाद, त्रैतवाद, अनेकत्ववाद-आध्यात्मिक, भौतिक और तटस्थ बहुत्ववाद आदि अनेक नामों से जाने जाते हैं।

उपर्युक्त वादों और तात्त्विक प्रश्नों के आलोक में प्राचीन वैदिक वाङ्मय की क्या स्थिति है? यह प्रस्तुत शोध निबन्ध का मुख्य चिन्तनीय विषय है। विषय प्रतिपादन में सुविधा और बोधगम्य की दृष्टि से इसे निम्न दो आधारों पर व्याख्यायित किया गया है।
(1) वेदों के अन्तरंग प्रमाणों के आधार पर मूल वैदिक चिन्तन को प्रस्तुत करना।
(2) वेदेतर अन्य परवर्ती साहित्य के आलोक में वैदिक चिन्तन को प्रस्तुत करना।

उपर्युक्त दोनों आधारों पर आगे बढ़ते हुए तथा प्रसंग आधुनिक प्रमुख वैदिक विद्वानों के मतों का भी तार्किक परीक्षण प्रस्तुत शोधलेखमें यथा प्रसंग प्रस्तुत किया गया है। परन्तु इन सब के मूल में वैदिक साक्षी को सर्वोपरि स्थान दिया गया हे। वैदिक चिन्तन के सम्बन्ध में किसी सर्व सम्मत विचार नवनीत तक पहुँचने के लिए इसके अलावा अन्य कोई निरापद मार्ग भी नहीं है? यह शोध कर्त्ता का निजी मन्तव्य भी है। जो प्रस्तुत आलेख पर कार्य करते हुए और अधिक सुपुष्ट भी हुआ है।

अस्तु प्रस्तुत शोध आलेख के मूल में निहित तत्त्व दृष्टि तथा चिन्तन पद्धति का उल्लेख करते हुए इस ओर भी यहाँ संकेत करना आवश्यक है कि उक्त शोध आलेख निम्न भागों में विभाजित करते हुए पूर्ण किया है- (1) वेदों में विभिन्न तात्त्विक प्रश्न, (2) वेदों में विभिन्न दार्शनिक मतों/ वादों का प्रतिवादन (3) वैदिक चिन्तन का समीक्षात्मक निष्कर्ष।

स्वामी दयानन्दसरस्वतीकृत ऋग्वेदभाष्य में इन्द्र का आधिभौतिक स्वरूप

डॉ. राजेश कुमार सहा. आचार्य, संस्कृतविभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

ऋग्वेद का चतुर्थांश भाग इन्द्र की स्तुतिपरक मन्त्रों से युक्त है। इन्द्र यद्यपि निरुक्त सम्प्रदाय में अन्तरिक्ष स्थानीय देवता माना जाता है तथापि दयानन्द ने इन्द्र पद की आध्यात्मिक, आधिदैविक एवं आधिभौतिक रूप से व्याख्या की है। जिससे इन्द्र पद का अर्थ भी सतत् प्रक्रिया भेद से भिन्न-भिन्न किया गया है। दयानन्द के ऋग्वेदभाष्य में इन्द्र नाम की वस्तु कोई एक ही विशेष आकृति या स्वरूप वाली वस्तु है ऐसा प्रतीत नहीं होताहै। मन्त्रों में इन्द्र विविध प्रकार से स्तुत्य है तथा वह अनेक वस्तुओं और अर्थों का वाचक है। स्वामी दयानन्द का उद्देश्य अपने भाष्य में वेदार्थ को लोक व्यवहारोपयोगी स्वरूप में प्रस्तुत करना रहा है। अतः उनके वैदिक शब्दों के अर्थ निरुक्त की निर्वचन पद्धति और यौगिक प्रक्रिया से निष्पन्न है। इसलिये ऋग्वेदभाष्य में इन्द्रादि देवतावाचक शब्द भी प्रकरण तथा प्रसंग के अनुसार नाना अर्थों के वाचक माने गये हैं।

स्वामी दयानन्द ने ऋग्वेदभाष्य में इन्द्र पद को परमेश्वर, सूर्य वायु, प्राण, विद्युत्, ऐश्वर्यवान् व्यक्ति तथा ऐश्वर्य के अर्थों में व्याख्यायित कियाहै। उन्होंने आध्यात्मिक, आधिदेविक एवं आधिभौतिक इन त्रिविध प्रक्रियाओं में मन्त्रभाष्य किया है और भिन्न-भिन्न मन्त्रों में इन्द्र पद को भिन्नार्थक सिद्ध किया है।

'भूतानि अधिकृत्य प्रवृत्तम् अधि भूतम्, अधिभूते भवम् आधिभौतिकम्' इस व्युत्पत्ति के अनुसार भूतों अर्थात् प्राणियों-मनुष्यादियों

से सम्बन्ध रखने वाला पक्ष आधिभौतिक पक्ष है। इन्द्र शब्दका आधिभौतिक अर्थ भाष्य के अनुसार राजा, शासक, सेनापति, लोकनायक आदि रूपों में अभिव्यक्त हुआ है। शाब्दिक व्युत्पत्ति के अनुसार इन्द्र शब्द से परमैश्वर्यवान्, स्वामी, विदारक अर्थात् शत्रुनाशक इत्यादि अर्थों का ग्रहण होने से भी इन्द्र को शासक, राजा, प्रजापालक आदि के रूप में माना गया है, क्योंकि वैदिक शब्द रूढ़ नहीं, अपितु यौगिक माने जाते हैं।

ऋग्वेदभाष्यमें आधिभौतिक स्वरूप की दृष्टि से इन्द्र शब्द मनुष्यों में श्रेष्ठ, अग्रणी, वीर, कुशल नेता, शत्रुदलनाशक, न्यायकारी, प्रजापालक, शासक आदि अर्थों का वाचक है।

इन्द्र के सम्बन्ध में सोमरस का पान करने, विविध प्रकार के भोजनों को खाने तथा अन्य सांसारिक भौगेश्वर्यों को भोगने एवं सेवन करने का वर्णन ऋग्वेदभाष्य में बहुश: वर्णित है। आधिभौतिक प्रक्रिया का जब अवलम्बन किया जाता है, तो इन्द्र का यह खानपान और ऐश्वर्योपभोग कोई अलौकिक बात नहीं रह जाती, क्योंकि शरीरधारी ही खानपान आदि क्रियाओं को करने में समर्थ हैं। अत: इन्द्र का स्वरूप भी आधिभौतिक अर्थात् मानवीय मानने पर ही इस प्रकार के मन्त्रों की संगति लगायी जा सकती है।

वेदों में ऋत की अवधारणा : एक दार्शनिक विवेचन

डॉ. विपिन कुमार नीरज प्रवक्ता, दर्शनशास्त्रविभाग, डॉ. अम्बेडकर डिग्री कॉलेज, मेरठ

भारतीय ज्ञान-विज्ञान, कला-साहित्य एवं धर्म, सभ्यता, संस्कृति इत्यादि समस्त तत्त्वों का उद्‌गम स्रोत एवं आधारभूत ग्रन्थ प्राय: वेद को ही माना जाता है। अत: यह कहना उचित होगा कि अन्य तत्त्वों की भांति नीति या आचार का प्रथम उन्मेष भी हमें ऋग्वेद में ही प्राप्त होता है।

वैदिक काल में मूल्य के दृष्टिकोण से 'धर्म' और 'ऋत' दोनों ही शब्दों का प्रचलन था तथापि ऋत की धारणा केन्द्रीय ध ारणा थी। ऋग्वेद में 'ऋत' शबद अनेक बार प्रयुक्त हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि ऋत का सिद्धान्त सर्वप्रथम ऋग्वेद में ही आया है।

वैदिक संहिताओं में विश्व की शाश्वत नैतिक व्यवस्था की अपूर्व व्यवस्था पायी जातीहै। यह जगत् एक नैतिक शाश्वत व्यवस्था है जो अनादि एवं अनन्त है। यही नैतिक व्यवस्था धर्म की उत्पत्ति का मूल है। ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद एवं अथर्ववेद में जगत् की नैतिक व्यवस्था को 'ऋत' की संज्ञा से पुकारा गया है। ऋत को मीमांसा दर्शन में 'अपूर्व' और न्याय दर्शन में 'अदृष्ट' की संज्ञा दी गयी है। वैदिक ऋषियों के दृष्टिकोण से ऋत सृष्टि का आदि एवं धारक तत्त्व है। समस्त ईश्वररीय नियम ऋत कहलाते हैं। विश्व की सुव्यवस्था एवं प्रतिष्ठा के मूल में 'ऋत' ही विद्यमान है। ऋत की सत्ता के कारण ही विषमता के स्थान पर समता तथा अशान्ति की जगह शान्ति का साम्राज्य सम्भव होता है।

अत: स्पष्ट है कि 'ऋत' मानव जगत् में उन समस्त नैतिक मूल्यों एवं आदर्शों का अधिष्ठाता है जो मानवीय जीवन के प्रेरक हैं तथा जिन पर सभ्य एवं सुसंस्कृत समाज प्रतिष्ठित है। वैदिक कालीन सत्यनिष्ठ, नैतिकतापरायण एवं अनुशासनबद्ध समाज का संचालन ऋत के आधार पर ही होता था।

प्रस्तुत शोध-पत्र 'ऋत' की अवधारणा को उसके सही अर्थों में समझने तथा वर्तमान विश्व-व्यवस्था के सन्दर्भ में इसकी महता को उजागर करने का प्रयास है।

वेदों में जल तत्त्व की अवधारणा

डॉ. शुभा बाजपेयी रीडर- हिन्दी विभाग, डी.एस.एन. कॉलेज, उन्नाव

वेदों में कहा गया है कि पृथ्वी माता है तथा पर्जन्य मित्र, सूर्य, चन्द्र एवं वरुण पिता हैं। वरुण जल के देवता हैं और जल ही जीवन है। इस शोधपत्र में जल तत्त्व पर प्रकाश डालना ही अभिप्रेत है।

जल हर प्राणी हेतु अत्यावश्यक ही नहीं, अपितु अनिवार्य है। उसकी उपादेयता से सभी परिचित हैं। जल का नाम अमृत है।

जल औषधि है, रोगनाशक है सब रोगों का निदान है।

जिस जल द्वारा समस्त प्राणियों का पोषण होता है। उसी के द्वारा पृथ्वी माँ का ममत्व प्रकट होता है अतः यह प्रार्थना की गई है कि अनेक जल धाराओं वाली माँ भूमि हमारे लिये जल रूपी दूध का दोहन करे।

जल सम्पन्न भूमि मुझे शक्ति सम्पन्न बनाये, ऐसी कामना की गई है। यह भी कामना की गई है कि मातृभूमि शुद्ध जल प्रवाहित करे।

हे मातृभूमि ! आप हमारे शरीर के लिये स्वच्छ जल प्रवाहित करें। हमारे शरीर से उतरा हुआ जल हमारा अनिष्ट चाहने वालों के समीप जाये। हे भूमि ! पावन शक्ति से हम स्वयं को पवित्र मानते हैं।

जल एक नैसर्गिक उपादान है। जिसके अभाव में जीवन का सारस्य नष्ट हो जाता है। यही जल सुख और प्रसन्नता का आधार है अतः यह प्रार्थना की गई है कि यह भूमि अपने जलीय रसों का पान कराये।

'यस्यां समुद्रः उतसिन्धुरापो ! सा नो भूमिः पूर्वपेयेदधातु।

आधुनिक सन्दर्भ में देखें तो आज शुद्ध पेयजल की समस्या, उसके संरक्षण की समस्या सर्वाधिक ज्वलन्त समस्या है। जल की शुद्धता पर तो वैदिक ऋषियों ने स्वयं कहा था-

'हिरण्यवर्णाः शुचयः पावका यासु जातः सविता यास्वग्निः।
यां अग्निं दधिरे सुवर्णास्ति न आपः शं स्योना भवन्तु।।

हमारे ऋषि-गण जल के आदिकालीन स्रोतों से पूर्णतः परिचित थे। जल के स्रोत संक्षेप से इस प्रकार हैं- 1. रेतीले प्रदेश में प्राप्त जल, 2. वर्षा से प्राप्त होने वाला जल, 3. नदी या समुद्र से प्राप्त होने वाला जल, 4. जलमय क्षेत्र में प्राप्त जल, 5. कुओं, सरोवरों में प्राप्त जल।

नासदीय सूक्त में वर्णित सृष्टि के रहस्य

डॉ. लता शर्मा व्याख्याता(संस्कृत) गौरी देवी राजकीय महिला महाविद्यालय अलवर(राज.)

यद्यपि नासदीय सूक्त में कुल सात ही मन्त्र कथित हैं किन्तु केवल सात ही मन्त्रों में अनन्त प्रातिभ मेधा सम्पन्न मन्त्र-द्रष्टा ऋषि ने इस विशाल सृष्टि के गूढ़तम रहस्यों को प्रत्यक्ष कर दिया। एतदर्थ ही यह सूक्त सृष्टि-सूक्त के रूप में भी जाना जाता है। ब्रह्मका मूल स्वरूप, सृष्टि की कारणभूता माया का स्वरूप, ब्रह्म व माया परस्पर सम्बन्ध, पुनः सृष्टि की उत्पत्ति का उपादान कारण और अन्ततः उसका ज्ञाता कौन है ? ये सभी मूल प्रश्न इस सूक्त में सूत्र रूप में अनुसन्धानित हैं। सृष्टि-उत्पत्ति के इस रहस्य को नासदीय सूक्त में जिस प्रकार वर्णित किया गयाहै उसे हम तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं। प्रथमतः सृष्टि से पूर्व की स्थिति वर्णित है। जहाँ सत्-असत्, भोक्ता-भोग्य, मृत्यु-अमरत्व, देश ओर काल की भी सत्ता नहीं थी-

न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत् प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किं चनास।।

द्वितीयतः- सृष्टि की प्रक्रिया वर्णित है जहाँ ईश्वर के मन में सिसृक्षा हुई और सृष्टि उत्पन्न हुई-

'कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्।'

तृतीय भाग में- सृष्टि की दुर्ज्ञेयता अभिव्यक्त होती है कि सृष्टि के रहस्य को कौन जानता है? देवता और ब्रह्मादि भी इस गूढ़ रहस्य को नहीं जानते क्योंकि उनकी उत्पत्ति भी पश्चात्वर्ती है। यथार्थतः इस रहस्य का ज्ञाता मात्र सच्चिदानन्दघन, स्वप्रकाश परमब्रह्म ही है।

इस प्रक्रिया में कतिपय गूढ़ एवं विचारणीय प्रश्न भी उठते हैं यथा- किसी भी बाह्य व्यवधानात्मक तत्त्व की सत्ता न रहने पर सृष्टि के लिए आवश्यक निमित्त और उपादान कारण क्या है? माया की सत्ता व स्वरूप क्या है? सृष्टि दुर्ज्ञेय क्यों है? इन सभी प्रश्नों का समाधान प्रकृत सूक्त में निहित है।

नासदीय सूक्त में वर्णित ब्रह्म के विवर्त रूप में कथित इस जगत् की सृष्टि-प्रक्रिया और स्वरूप के सिद्धान्त का पल्लवन तैत्तिरीयोपनिषद्, बृहदारण्यकोपनिषद्, शाण्डिल्योपनिषद्, कठरुद्रोपनिषद्,महाभारत आदि सम्पूर्ण परवर्ती परम्परा में दिखाई देता है। सम्पूर्ण अद्वैत वेदान्त दर्शन इसी सूक्त की पृष्ठभूमि पर आसीन दृष्टिगत होता है।

अन्ततः महत्त्वपूर्ण अभिव्यक्ति यह है कि सृष्टि की सत्ता से ब्रह्म की ही सत्ता प्रमाणित होती है। मूलतः इन सृष्टिपरक श्रुतियों का तात्पर्य सृष्टिमें सन्निहित न होकर स्रष्टा की एकमात्र सत्ता और स्वरूप प्रतिपादन में ही सन्निहित है। यही नासदीय सूक्त के अन्तिम मन्त्र का सार है।

द्रव्यं कर्म च कालश्च स्वभावो जीव एव च।
वासुदेवात्परो ब्रह्मन्न चाऽन्योऽर्थोऽस्ति तत्त्वतः।

प्रस्तुत शोध-आलेख में नासदीय सूक्त का इस दृष्टि से विश्लेषण अपेक्षित है। जो वेद एवं भारत-भूमि को आध्यात्मिक गुरु के पद पर प्रतिष्ठित करने का आधार बना।

शुक्लयजुर्वेद में सोमतत्त्व

सञ्जीव कुमार पाण्डेय (शोधच्छात्र) वेद विभाग, सं.वि.ध.वि.संकाय, काशी हिन्दू वि.वि.

सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय ज्ञान एवं विज्ञान का विशालतम भण्डार है। इसी वेदरूपी ज्ञान के द्वारा हमारे आर्ष ऋषियों ने सृष्टि के उत्पत्ति में कारणभूत तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त किया।

ब्रह्माण्ड में व्याप्त सभी चेतनाचेतन पदार्थ के उत्पन्न होने तथा समाप्त होने में दो हि तत्त्वों की प्रधानता दृष्टिगोचर होती है। 'अग्नीषोमात्मकं जगत्।' अग्नि और सोम के संयोग से ही यह सृष्टि उत्पन्न होती है। अर्थात् अग्नि में सोम की आहुति होने के कारण यह प्रकृति निरन्तर गतिशील है। मानव के शरीर में भी यही प्रक्रिया निरन्तर होती रहती है। जग अग्नि और सोम में सम भाव रहता है, तो यह सृष्टि उत्पन्न होती है और विषमावस्था में ह्रास होती है। शुक्लयजुर्वेद में सोम से सम्बन्धित अनेकों मन्त्र प्राप्त होते हैं जो सोम के गूढ तत्त्वों के विषय में ज्ञान प्रदान करते हैं।

शोधपत्र में सोमतत्त्व के विषय में विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया जायेगा जो आज के वैज्ञानिक युग में सामाजिक एवं शैक्षणिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी है।

संहिताओं में दार्शनिक विचार

इन्दु शर्मा (शोधच्छात्रा) चौ. चरण सिंह वि.वि., मेरठ

इन संहिताओं में दार्शनिक चिन्तन ऋषियों के स्वतन्त्र चिन्तन हैं। उनमें कुछ दार्शनिक सिद्धान्तों के पुष्ट बीज अवश्य उपलब्ध होते हैं, मुख्य रूप से अद्वैतवाद के।

भारतीय दर्शन की प्रमुख विशेषता है एकता एवं अनेकता तथा अनेकता में एकता की दृष्टि। इस दृष्टि का प्रमुख आधार ऋग्वेद में 'कं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' के अन्तर्गत स्पष्ट रूप से मिलता है। पुरुषसूक्त और नासदीयसूक्त का ऋग्वैदिक दार्शनिक दृष्टि से बहुत महत्त्व है। दोनों ही सूक्तों में सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में विचार मिलते हैं।

संहिताओं में दार्शनिक विचार करते समय वाक् सूक्त को विस्मृत नहीं किया जा सकता। क्योंकि वाक्सूक्त में वाक् का समस्त जगत् के अधिष्ठान के रूप में वर्णन किया गया है। इस प्रकार ऋग्वेद में ब्रह्म का विभिन्न रूपों में वर्णन मिलता है। ऋग्वेद में माया सम्बन्धी विचार भी प्राप्त होते हैं। लगभग 75मन्त्रों में माया शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में हुआ है।

सामवेद में भी परमतत्त्व के विषय में पर्याप्त दार्शनिक विचार मिलते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण ने तो गीता में स्वयं को ही कहा है कि 'वेदानां सामवेदोऽस्मि'। सामवेद में वेदान्त के परमतत्त्व ब्रह्म को सत्यरूप वाला कहा गया है। ब्रह्म की एकमात्र सत्यता अद्वैत वेदान्त का प्राण ही है। इसके अतिरिक्त सामवेद के एक मन्त्र में सृष्टि के आदिकारण के रूप में परब्रह्म की चर्चा भी प्राप्त होती

है। यजुर्वेद में भी दार्शनिक चिन्तन अनेक स्थलों पर मिलता है। यजुर्वेद का 40वाँ अध्याय इसका ज्वलन्त प्रमाण है। यजुर्वेद में ब्रह्म शब्द का प्रयोग कहीं परमात्मा, कहीं ब्रह्मा, कहीं ब्राह्मण और कहीं प्रजापति के लिए किया गया है। माया का भी प्रयोग यजुर्वेद में प्राय: 'प्रज्ञा' अर्थ में हुआ है। अथर्ववेद संहिता भी दार्शनिक विचारों से परिपूरित है। इसमें कहा गया है कि परब्रह्म सत्य, ज्ञानादि लक्षण वाला है और वह सभी प्राणियों के हृदय में स्थित है। इसी में एक स्थल पर मायाशक्तिसम्पन्न ब्रह्म का भी वर्णन प्राप्त होता है।

इस प्रकार चारों संहिताओं में समग्र रूप से ब्रह्म, जगत् और मायाजैसे महत्त्वपूर्ण तत्त्वों पर दार्शनिक विचार पर्याप्त रूप से प्राप्त होते हैं। यही कारण है कि प्राचीन वेदों को दार्शनिक चिन्तनधारा का मूल उत्स कहा जाता है।

कर्मयोग का वैदिक मूलमन्त्र- 'चरैवेति चरैवेति'

डॉ. पुष्पा गुप्ता स्वस्तिक कुञ्ज, रोहिणी दिल्ली

ऐतरेय ब्राह्मण के शुनः शेप आख्यान से उद्धृत 'चरैवेति चरैवेति- चलते ही रहो चलते ही रहो' यह वैदिक उद्घोष 'गागर में सागर भरने' की भाँति वैदिक संस्कृति, वैदिक सभ्यता, वैदिक आस्था, वैदिक मान्यताओं इत्यादि पर प्रभूत प्रकाश डालता है।

वैदिक संस्कृति कर्मप्रधान संस्कृति है। वहाँ परिश्रम करके, संघर्ष करके है कुछ प्राप्त करने की कामना की गई है। इन्द्रसूक्त में स्पष्ट कहा गयाहै-

संगृभाय पुरुशतोभयाहस्त्या वसु शिशीहि(ऋ. 1.81.7)

इस मन्त्रांश में इन्द्र से धन प्रदान की प्रार्थना की गई है परन्तु वह धन पैना होना चाहिए। निस्सन्देह संघर्षजन्य, परिश्रमजन्य धन ही पैना धन है।

अक्षसूक्त में कटु मधुर अनेक प्रकार के विविध अनुभव प्राप्त करके जुआरी इसी निष्कर्ष पर पहुँचता है कि उचित ढंग से अर्जित धन में ही मनुष्य को वास्तविक आनन्द की प्राप्ति होती है। वहीं पर उसे मानसिक एवं पारिवारिक दोनों का सुख प्राप्त होता है-

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।

देवता भी उन्हीं की सहायता करते हैं जो अपनी सहायता स्वयं करते हैं 'इन्द्र इच्चरतः सखा' उद्यमी मनुष्य कीसफलता सुनिश्चित है।

यज्ञ भी कर्म का ही प्रतीक है। शतपथ ब्राह्मण के 'अग्निहोत्रावयवोपासनाप्रकार:' अंश में जीवन रूपी यात्रा को सुनियमित, सुव्यवस्थित ढंग से चलाना ही वास्तविक अग्निहोत्र बतलाया गया है।

पुनः शुनःशेप आख्यान में कर्म की महत्ता प्रतिपादित करते हुए अर्थात् कर्म न करने वाले को कलियुग के समान, निद्रा त्याग करतेहुए अर्थात् कार्य करने का विचार करते हुए को द्वापर के समान, उठकर खड़े होते हुए अर्थात् कर्म करने के लिए तत्पर होते हुए को त्रेता के समान तथा चलते हुए अर्थात् कार्य में प्रवृत्त हुए को सतयुग के समान बतलाया गया है।

कलिः शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः।
उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृतं समपद्यते चरंश्चरैवेति चरैवेति।।

वहाँ सोट्टङ्क कहा गया है 'नानाश्रान्ताय श्रीरस्तीति।'

अपने शोधपत्र में मेरे द्वारा इस तथ्य को उजागर करने का प्रयास किया गया है कि वैदिक संस्कृति सत्यकार्यों में प्रवृत्त रहते हुए, अभ्युदय निःश्रेयस् दोनों को जीवन में आत्मसात् करते हुए जीवन व्यतीत करने का मूलमन्त्र मनुष्य को सिखाती है।

वेदों में मनोविज्ञान विवेचन

डॉ. मोहम्मद शरीफ रीडर- संस्कृत विभाग, अलीगढ़ मुस्तिलम विश्वविद्यालय, अलीगढ़

वर्तमान समय में मन की जिस एकाग्रता के लिये साइकोलॉजीकल थेरेपी की महत्ता का अनुभव किया जा रहा है उस मन

पर वेदों में ऋषियों ने सहस्रों वर्ष पूर्व दर्शन दे दिया है। यजुर्वेद में 'तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु' कह कर 6 मन्त्रों के माध्यम से मन की विशेषता दर्शायी है। मन के कल्याणकारी संकल्प होने की कामना की है। मन का दृढ़ संकल्प होना आवश्यक है, अन्यथा बिना दृढ़ संकल्प के यज्ञ नहीं किया जा सकता, फिर यज्ञ कदापि फलदायी नहीं हो सकते। काठक संहिता में मन में ऋक्, साम और यजु तीनों को प्रतिष्ठित बताया गया है- 'यस्मिन्नृचः सामयजूँषि यस्मिन्प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः' (काठक संहिता 1.3.4.9.10) साम विधान ब्राह्मण में मन को प्रजापति कहा गया - (मनो हि प्रजापति) (साम विधान ब्राह्मण 1.1.4)। अथर्व वेद के (6.4.1) मन्त्र में मन के विषय में स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है- 'मनसे चेतसे धिय आकूतय उत्त चित्तये। मत्यै श्रुताय चक्षसे विधेय हविषा वयम्।' - मन्त्र के द्वारा संवेदना प्रेरणा, चेतना, चिन्तन ध्यान, अनुभूति संवेग और मनन शक्ति आदि मानसिक तत्त्वों का विवेचन प्राप्त होता है। इस प्रकार से भारतीय मनोविज्ञान का बीजारोपण वेदों में निहित है। आरम्भ कालान्तर में भारतीय वेदशास्त्रसम्मत विशुद्ध प्राच्य दृष्टिकोण को आधार मानकर प्रश्नोपनिषद तथा महर्षि पतञ्जलि ने मन का व्यापक अध्ययन कर मनोविज्ञान का विस्तृत विवेचन किया है।

वैदिक साहित्य में मनोविज्ञान

डॉ. अर्चना कुमारी दुबे प्रवक्ता- संस्कृत, वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान

वैदिक संहिताओं में मनस् पद का ऋग्वेद में लगभग 238, यजुर्वेद संहिता में 82, सामवेद मे 21 एवं अथर्ववेद में प्रायः 164 बार प्रयोग हुआ है।

मनीषियों द्वारा मण्डित इन मनस् तत्त्वों का यजुर्वेद के 34 वें अध्याय के प्रथम छः मन्त्रों में मन का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण शिव संकल्प सूक्त में अनूठे ढंग से विश्लेषित किया गया। वैदिक विनियोग की प्रक्रिया में सर्वप्रथम मानसिक संकल्प होता है, तदनन्तर मन्त्रोच्चारण और उसके साथ सम्बन्धित क्रियाएँ होती है- **युञ्जानः प्रथमं मनस्तत्त्वाय सविता धियः।** ब्रह्मज्ञान के लिए सर्वप्रथम अपने मन को ईश्वर में युक्त करते हैं-

युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे। युञ्जानः प्रथमं मनः, युञ्जते मन उत युञ्जते धियः।

यत्प्रज्ञान-मुतचेतोधृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।

यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते, तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु।।

चित्ति- सामान्य ज्ञान, ज्ञान- विशिष्ट ज्ञान, प्रज्ञान- उत्कृष्ट ज्ञान, यह मन त्रिगुणात्मक ज्ञान से सम्पन्न है। इसी मनस्तत्त्व की शक्ति से हम अपने सम्पूर्ण क्रिया कलाप संचालित करते हैं।

धृति यहाँ पर धैर्य(Controlling Power) है, चेतः (Computer Memory Power) है। जिससे जब खोलिए स्मरण आ जाता है। मन चंचल होता है। उसे स्थिर बनाने की आवश्यकता है। मन की चंचल स्थिति को एक वैज्ञानिक सिद्धान्त के माध्यम से समझा जा सकता है। मन नाभिक केन्द्रीय शक्ति है, मन के चारों ओर इलेक्ट्रोन के विचार प्रवाहित होते रहते हैं और केन्द्रक मन इन विचारों को नियन्त्रित करता है। किरलियान नामक वैज्ञानिक ने एक अति संवेदनशील फोटोग्राफी का आविष्कार किया है जो व्यक्ति के मस्तिष्क के चारों ओर फैले हुए आभामण्डल का रंग व विस्तार बताता है। यह आभामण्डल(इलैक्ट्रोडायनेमिक फिल्ड) मनुष्य, पशु, पक्षी ही नहीं, अपितु वृक्ष के चारों ओर भी होता है। जो जितना तेजस्वी होगा, उतना ही दूसरों को प्रभावित करेगा। जब मनुष्य मरता है तब वह आभामण्डल क्षीण होने लगता है। पूर्ण विसर्जित होने में उसे तीन दिन लगते हैं।

किरलियान की फोटोग्राफी जिस रहस्य को आज सिद्ध कर रही है उसे भारत के योगी प्राचीन काल से जानते हैं। भगवान् राम, भगवान् श्रीकृष्ण, महात्मा बुद्ध, चैतन्य एवं अन्य महापुरुषों के मस्तक के पीछे प्रकाश का वृत्त बनाया जाता है जो इस आभामण्डल की ही सूचना देता है। वैज्ञानिकों, अन्वेषकों एवं दार्शनिकों ने जो भी नूतन ज्ञान-विज्ञान प्रदान किए वह इस मनस् तत्त्व के शिव संकल्प रूप का परिणाम है।

वैदिक सृष्टि प्रक्रिया एवं आधुनिक विज्ञान

डॉ. अंजना शर्मा प्रवक्ता- संस्कृतदर्शन एवं वैदिक अध्ययन विभाग, वनस्थली विद्यापीठ राजस्थान

वैदिक काल से अद्यावधि पर्यन्त सृष्टिसंरचना के रहस्य को जानने की उत्कण्ठा मानव की अन्तर्चेतना में रही है-

कुत आजाता कुत इयं विसृष्टि:?
किमावरी कुह कस्य शर्मन्नम्भ:।
किमासीद्गहनं गभीरम्।।(ऋ. 1.129.1)

सृष्टि रचना कैसे हुई, कब हुई, इसका रचयिता कौन है? इत्यादि विषयक जिज्ञासा ने सम्पूर्ण वैदिक पौरोणिक, दार्शनिक चिन्तन एवं वैज्ञानिक प्रयोगों को दिशा निर्देशित किया है। अत: वेद, पुराण, दर्शन, विज्ञान- सर्वत्र सृष्टि संरचना के रहस्य को उद्घाटित करने का प्रयास किया गया है। विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ वेद सृष्टि संरचना की वैज्ञानिक दृष्टि से व्याख्या करते हैं। वैदिक ऋषियों ने अपनी आध्यात्मिक क्षमताओं के आधार पर सृष्टि के सम्बन्ध में जिन निष्कर्षों की स्थापना की है, वे आधुनिक विज्ञानवेत्ताओं द्वारा प्रस्तावित सृष्टि विज्ञान के विभिन्न मॉडलों के बहुत अनुरूप हैं। जैसे वैदिक सिद्धान्तानुसार सृष्टि के मूल में एक परमतत्व है। **''पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्''**(ऋ. 10.90.2)। सम्पूर्ण सृष्टि उसी से उत्पन्न होती है और उसी में लय को प्राप्त होती है। इसी प्रकार विज्ञान की मान्यतानुसार सम्पूर्ण सृष्टि ऊर्जा का ही विभिन्न रूप है। सृष्टि में जो कुछ भी दृश्यमान है, वह सब ऊर्जा ही है। वेदों के परमतत्त्व और विज्ञान की ऊर्जा में कहीं कोई विरोधाभास नहीं है। इसी प्रकार वैदिक मान्यतानुसार सृष्टि प्रक्रिया सूक्ष्म से स्थूल की ओर बढ़ती है- आकाश, वायु, अग्नि, जल- **'खं वायुर्ज्योतिराप: पृथिवी विश्वस्य धारिणी'**(मुण्डकोपनिषत् 2.1.3)। यही मत प्राय: विज्ञान का है। वैज्ञानिकों के अनुसार सर्वप्रथम सूक्ष्म सर्वव्यापी विकिरण उत्पन्न होते हैं। तदनन्तर उन विकिरणों से गैसीय अवस्था अर्थात् वायु और उसके अग्निपिण्ड उत्पन्न हुआ। उसके बाद तरल अवस्था जल(द्रव) की आयी- इस प्रकार सृष्टि रचना के सम्बन्ध में वैदिक सिद्धान्त पूर्णत: वैज्ञानिक है। आधुनिक विज्ञान के सन्दर्भ में वैदिक सृष्टिप्रक्रिया का वर्णन करना ही प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य है।

वेदों में मनोविज्ञान

श्री रमेश सिंह, एसोसिएट प्रोफेसर, शारीरिक-शिक्षा रा.सं.सं.(मानित विश्वविद्यालय) जम्मू

वेद शब्द 'विद् ज्ञाने' धातु से निष्पन्न है जिसका अर्थ है शाश्वत यथार्थ ज्ञान। यह शाश्वत यथार्थ ज्ञान चार भागों में विभक्त है- ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। ज्ञान को परमात्मा से समाहित हमारे उपनिषद् ग्रन्थ करते हैं और ज्ञान और परमात्मा के मध्य सन्निधान काल को हम मन के रूप में स्वीकार करते हैं। मन रूपी मध्यस्थ ज्ञान जब विशिष्ट ज्ञान में व्यवहृत होता है तो यह मनोविज्ञान कहलाता है। वेदों में मनोविज्ञान की जो रूपरेखा प्रस्तुत की गयी है, उसका कुछ विकसित रूप ब्राह्मण ग्रन्थों और उपनिषदों में प्राप्त होता है। ब्राह्मण ग्रन्थों और उपनिषदों में मन का शास्त्रीय रूप प्रस्तुत किया गया है। ब्राह्मण ग्रन्थों में मन को ब्रह्म कहा गया है, वह सर्वशक्तिमान् है और परमात्मा का स्वरूप है, अत: ब्रह्म है। मन सृष्टि का कर्त्ता है, अत: उसे ब्रह्म कहा गया है।

अथर्ववेद के निम्नलिखित मन्त्र में सूत्र रूप में मनोविज्ञान के सभी विषयों का उल्लेख किया गया है।

मनसे चेतसे धिय आकूतय उत चित्तये।
मत्यै श्रुताय चक्षसे विधेम हविषा वयम्।

इस मन्त्र में 'मनसे' के द्वारा संवेदना और प्रेरणा का ग्रहण है। चेतसे के द्वारा अनुभूति और संवेग का ग्रहण है। 'चित्तये' के द्वारा चित्त के धर्म का स्मरण और तदभावरूप में विस्मरण का ग्रहण है। 'मत्यै' के द्वारा बुद्धि अभिप्रेत है। 'श्रुताय' के द्वारा श्रवण, पठन एवं शिक्षण का ग्रहण है। 'चक्षसे' के द्वारा चक्षु कार्य दर्शन या प्रत्यक्षीकरण अभिप्रेत है।

वेदों में मनोविज्ञान की अवधारणा

रेखा शर्मा(शोधार्थी) अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़

अथर्ववेद में मनुष्य में निहित बहुविध मानसिक और आन्तरिक शक्तियों का चित्रण प्राप्त है मन चेतस्, मेघा, आकृति, चित्त, भाति, चक्षु, अपान, प्राण तथा सरस्वती देवी, इन शक्तियों की प्राप्ति और वृद्धि की कामना अथर्ववेद की ऋचाओं में की गई हैं।

वैदिक संहिताओं में मानव मन से सम्बन्धित समस्त पक्षों का विशद् विवेचन किया गया है। वैदिक मनोविज्ञान आध्यात्मिक चेतना से परिपूर्ण है, जो मनुष्य को पूर्णता प्रदान करता है। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार के समग्र दोषों को दूर कर इनका परिष्कार करता है, इसलिए यह सर्वथा वरेण्य है। विस्तार से वर्णन शोधपत्र में किया जायेगा।

वैदिक साहित्य में मनोविज्ञान

डॉ. मनुप्रताप सिंह एम.जे.पी.रूहेलखण्ड वि.वि. बरेली

वेदों में मनोविज्ञान की जो रूपरेखा प्रस्तुत की गई है,उसका कुछ विकसित रूप ब्राह्मणग्रन्थों और उपनिषदों में प्राप्त होता है। जिस प्रकार वर्तमान समय में मनोविज्ञान का विश्लेषणात्मक अध्ययन हो रहा है, उतना विस्तृत और व्यापक अध्ययन प्राचीन समय में प्राप्त नहीं होता है। ब्राह्मणग्रन्थों और उपनिषदों में मन के गुण,धर्म, स्वरूप और कार्य की समीक्षा है। इनका ही यहाँ पर संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

ब्राह्मणों में मन को ब्रह्म कहा गया है(गोपथ ब्रा. 1.2.11) यह सर्वशक्तिमान् है और परमात्मा का स्वरूप है, अतः ब्रह्म है। मन सृष्टि का कर्त्ता है, अतः उसे ब्रह्मा कहा गया है।(गोपथ ब्रा. 1.2.11) इसी कर्तृत्व के आधार पर उसे प्रजापति या सृष्टि-निर्माता बताया गया है।(तैत्ति 3.7.1.2) मन की कल्पना से ही यह सारा संसार है। मन जैसा चाहता है, वैसा होता है, अतः उसे सर्वम्(सब कुछ) कहा गया है।(गोपथ ब्रा. 1.2.15) मन की शक्ति अनन्त है, अतः उस अनन्त और अपरिमित कहा गया है।(शत. 14.6.1.11) मन की दिव्य शक्तियों के कारण उसे देव बताया गया है।(गोपथ ब्रा. 1.2.11) मन में प्रेरणा शक्ति है, अतः उसे अग्नि कहा गया है।(शत.10.1.2.3) मन कल्पनाओं और शक्तियो का अथाह भण्डार है, अतः उसे समुद्र बताया गया है(शत. 7.5.2.52) मन विचारों का भण्डार है, महानदी है और उसका प्रकाशन वाणी के द्वारा होता है, अतः वाणी को मन की नहर कहा गया है। (जैमिनीय उप. ब्रा. 1.58.3)

मन प्रजापति या ब्रह्म का विशिष्ट शरीर है। (ऐत. ब्रा. 5.25) मन का ही काम है कि यह नाना प्रकार की सृष्टि-रचना करता है। मन और वाणी का असाधारण सम्बन्ध है। जो मन सोचता है, अर्थात् मन ही आत्मा के सब काम करता है।(शत. 6.7.1.21) मन प्राणों का अधिपति है। मन जिस प्रकार प्राणों को आदेश देता है, उसी प्रकार प्राण चलते हैं। (शत. 14.3.2.3) इसका अभिप्राय यह है कि मन के आदेशानुसार स्नायु-मण्डल एवं रक्त-प्रवाह का संचालन होता है। समस्त प्रत्यक्षीकरण का काम मन करता है। मन ही देखता है, मन ही सुनता है।(शत. 14.4.3.8)

शतपथ ब्राह्मण में बहुत महत्त्वपूर्ण बात की गई है कि ये सभी तत्त्व मन के ही विभिन्न रूप हैं- काम(इच्छा), संकल्प(विचार), विचिकित्सा(ऊहापोह, सन्देह), श्रद्धा, अश्रद्धा, धृति(धैर्य), अधृति(अधीरता), ह्री(लज्जा), धी (ज्ञान), भी(भय, डर, आतंक)। (शत. 14.4.3.9)

योगदर्शन में प्राणायाम

विवेक कुमार सिंह प्रवक्ता- शारीरिक शिक्षा, आर्यावर्त इन्स्टीट्यूट आफ हायर एजुकेशन, लखनऊ

प्राणायाम दो शब्दों के योग से बना है, प्राण+आयाम, यहाँ प्राण का अर्थ श्वास, जीवन शक्ति से तथा आयाम का अर्थ निग्रह या नियन्त्रण से है। इस प्रकार प्राणवायु को नियन्त्रण करने को प्राणायाम कहते हैं। महर्षि पतञ्जलि ने प्राणायाम की परिभाषा इस प्रकार दी है- **'तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेद: प्राणायाम:।**योगसूत्र- 2.49 आसन के सिद्ध हो जाने पर श्वास और प्रश्वास की गति के अवरोध हो जाने का नाम प्राणायाम है। बाहरी वायु का भीतर प्रवेश करना श्वास और भीतर की वायु को बाहर निकालना प्रश्वास है। इन दोनों को रोकने का नाम प्राणायाम है। प्राणायाम बाह्यवृत्ति (रेचक) अन्त:वृत्ति(पूरक) और स्तम्भवृत्ति (कुम्भक) के भेद से तीन प्रकार का होता है। प्राणायाम के अभ्यास से ज्ञान रूपी प्रकाश पर पड़ा हुआ आवरण नष्ट हो जाता है तथा मन की ध ारणाओं में योग्यता आती है। अर्थात् प्राणायाम के अभ्यास से मन धारण के योग्य हो जाता है।

वेदों में मानवीय चेतना

डॉ. लता गर्ग रीडर एवं अध्यक्ष- संस्कृतविभाग मुन्नालाल एवं जयनारायण खेमका गर्ल्स कालेज, सहारनपुर

'मानवीय चेतना' संयुक्त सामासिक शब्द है। जिसका अर्थ है- इकाई के रूप में अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखने वाले मूर्त और सजीव मानव की वह अन्त: प्रेरित मानसिक संचेतन शक्ति जिसका सम्बन्ध मनुष्य के अपने विचारों, प्रभावों, संकल्पों, अनुभूतियों, संवेदनाओं आदि से होता है परन्तु इसकी अभिव्यक्ति अन्य प्राणियों के प्रति सम्वेदना, सहानुभूति, ममता, दया, करुणा, परोपकार आदि के रूप में होती है। जिसका विकास मनुष्यत्व को जाग्रत करने, सहअस्तित्व, सहबन्धुत्व की प्रेरणा के लिये होता है। इस दृष्टि से चेतना शब्द, बुद्धि, मन और ज्ञान का वाचक होते हुए भी बुद्धि और मन के स्वच्छ और उदात्तीकरण का भाव लिये हुए है। मन और बुद्धि के स्वच्छ और उदात्त होने पर मनुष्य में भोग प्रधान जीवन से ऊपर उठकर अमृतत्व का विकास होने लगता है। इस भाव के विकसित होने पर सम्पूर्ण पृथ्वी के मनुष्य अपने हो जाते हैं। अपने--पराये का भेद मिट जाता है।

वैदिक ऋषियों का प्रयत्न भी मन और बुद्धि को निर्मल तथा सुसंस्कृत करने के द्वारा मनुष्य के आत्मिक तथा आन्तरिक आचरण को उन्नत करते हुए उसके चरित्रबल को सुदृढ़ बनाना था। इसलिये उन्होंने कुछ आचारों, नियमों, मर्यादाओं आदि का विध ान किया। ऋग्वेद में एक स्थल पर कहा गया है कि मानव जीवन के सफल यापन के लिये सात मर्यादाएँ बताई गई हैं।

इस प्रकार वैदिक मनीषियों ने मानवीय चेतना के रूप में व्यक्तिगत शुद्धता और उदात्तता के माध्यम से समष्टिगत शुद्धता तथा उदात्तता का प्रयास किया और यही वह शक्ति है जो सारे संसार को धारण किये हुए है।

भारतीय चिन्तन परम्परा में मानवीय चेतना का मूल आध्यात्मिक चेतना में निहित है जहाँ सभी प्राणी इस एक परमात्मतत्त्व के ही अंश हैं। जहाँ मनुष्य की सम्पूर्ण सत्ता को परमात्मा से अविच्छिन्न माना गया है। इसलिये सभी प्राणियों को आत्मवत् समझते हुए सबका कल्याण करना मानवीय चेतना का परिणाम है।

ऐतरेय आरण्यक मे प्राणविद्या

डॉ. हेतल एम. पाण्डेय संस्कृत विभाग, स्कूल ऑफ लैंगुएज; गुजरात यूनिवर्सिटी, अहमदाबाद

हमारी वैदिकसंहिताओं में विशेषत: ऋक् तथा अथर्ववेद की संहिताओं में इस विद्या का सम्मुलेख सबसे पहले किया गया मिलता है। विद्वानों से यह अपरिचित नहीं कि उपनिषदों में प्राणविद्या भरी पड़ी है, परन्तु उपनिषदों में नहीं प्रत्युत आरण्यक तथा संहिताओं में इस विद्या का यथेष्ट वर्णन उपलब्ध होता है।

प्राणोपासना की विद्या हमारी सम्पत्ति है। प्राण के वास्तविक महत्त्व को समझना, इस शरीर तथा वाह्य जगत् में उसके सच्चे कार्य तथा व्यापक प्रभाव को परखना, तथा किसी देवता का आरोप कर उसकी उपासना करना- ये सब सिद्धान्त इस भारत भूमि पर

ही हमारे पूर्वजों की सात्त्विक वृद्धि तथा उर्वर मस्तिष्क के कारण ही प्राचीन काल मे उत्पन्न हुए तथा अब भी हमें किसी न किसी प में दृष्टिगोचर होते है।

'सर्वं हीदं प्राणेनावृत्तम्।'' इस समस्त विश्व के देव, मनुष्य तथा पशु आदि समग्र प्राणी प्राणवायु द्वारा व्याप्त हैं। प्राण अमृत प है। जब तक उसका देह में वास, यह शरीर मृत्यु को प्राप्त नहीं होता। इस सिद्धान्त की पुष्टि एवं प्राण की श्रेष्ठता प्रतिपादित करने के अनन्तर उसकी उपासना के प्रकार का विस्तृत वर्णन इस आरण्यक में किया गया है। ''सोऽयमाकाशः प्राणेन बृहत्या विष्टब्धः, तद्यथायमाकाशः प्राणेन बृहत्या विष्टब्ध एवं सर्वाणि भूतानि आपिपीलिकाम्यः प्राणेन बृहत्या विष्टब्धानीत्येवं विद्यात्।।''(ऐत. आर. 2.1.6)

प्रस्तुत लेख में प्राण की महिमा, प्राण की ध्यान-विधि, प्राण की श्रेष्ठता को ऐतरेय आरण्यक में कैसे प्रस्तुत किया है उसका ससन्दर्भ एवं सोदाहरण बताने का यत्न किया है।

वेदों में योगविद्या

अक्षय कुमार गौड शोधच्छात्र(दर्शन विभाग) गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

योग भारतीय जीवन पद्धति का एक अति विशिष्ट अंग है और वेद भारतीय संस्कृति का सबसे प्राचीन ग्रन्थ है। सृष्टि के आरम्भ में अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा चार ऋषियों को परमात्मा ने वेदों का ज्ञान प्रदान किया, साथ ही योग विद्या का भी वर्णन किया। उन ऋषियों ने भी वैदिक मन्त्रों के दर्शन से पूर्व योग साधना अवश्य की होगी, इसलिए वेदों में कई जगह पर योग की चर्चा की गई है। वेद विश्व के ज्ञान-विज्ञान के भण्डार हैं। वेदों का मुख्य प्रतिपाद्य विषय आध्यात्मिक उन्नति करना है। इसके लिए यज्ञ, उपासना, पूजा व अन्य कर्मकाण्डों का वर्णन किया गया है। इन सबसे पूर्व योग साधना का विधान किया गया है। इसी सन्दर्भ में ऋग्वेद में कहा गया है कि विद्वानों का कोई भी कार्य बिना योग के पूर्ण (सिद्ध) नहीं होता। इस बात से यह सिद्ध होता है कि वेदों में योग विद्या को कितना महत्त्व दिया गया है।

वेदों में योग

गौरव मलिक(शोधच्छात्र) दर्शनशास्त्र विभाग, गुरुकुल कां.वि.वि. हरिद्वार

आधुनिक युग में योग की उपयोगिता दिनप्रतिदिन बढ़ती जा रही है। स्वास्थ्य संरक्षण, आरोग्य संवर्धन के अतिरिक्त शरीर सौष्ठव, सौन्दर्य में निखार जैसे महत्त्वपूर्ण व्यावहारिक क्षेत्रों में योग की मांग जिस तीव्रता से बढ़ रही है उसी अनुपात में योग के वास्तविक स्वरूप एवं आधार की खोज सम्बन्धी आवश्यकता भी दिनप्रतिदिन सामने आ रही हैं।

प्रस्तुत शोधलेख का लेखन इसी आश्यकता के दृष्टिगत किया गया है।इस निबन्ध में यह दर्शाया गयाहै कि योग विद्या का मूलस्रोत चारों वेदों में मिलता है। वैदिक संहिताओं में योग, युक्त, युञ्जान जैसे अनेक योगपरक शब्द दृष्टिगोचर होते हैं। इसके अतिरिक्त योगविद्या के वास्तविक अभिप्राय को अभिव्यक्त करने वाले अनेक शब्द भी विभिन्न वेदग्रन्थों में दृष्टिगोचर होते हैं जिसका वर्णन मैंने प्रस्तुत निबन्ध में विस्तारपूर्वक दिया है। इसके अतिरिक्त जैसा कि हम जानते हैं योग के विविध प्रकार योग सम्बन्धी ग्रन्थों में दृष्टिगोचर होते हैं। यथा- अष्टांगयोग, क्रियायोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग एवं कर्मयोग आदि शोधकर्त्ता ने अपने प्रस्तुत आलेख में योग सम्बन्धी विभिन्न प्रकारों का अध्ययन करते हुए यह पाया है कि इन सभी योगसाधनाओं का मूलस्रोत वेदों में मन्त्ररूप में निहित है। जिनका परवर्ती योगप्रदीकि साहित्य उपनिषद्, दर्शनसूत्र ग्रन्थ, भगवद्गीता एवं हठयोग प्रदीपिका आदि में विस्तृत रूप से वर्णन हुआ है। प्रस्तुत शोध निबन्ध में इन सभी का संदर्भ सहित उल्लेख किया गया है।

योग द्वारा प्रादुर्भूत कुण्डलिनी शक्ति की मीमांसा

पूनम शर्मा(शोधच्छात्रा) संस्कृतविभाग, जम्मूविश्वविद्यालय, जम्मू

यौगिक प्रक्रिया द्वारा जब मनुष्य अपनी साधना में लीन हो जाता है तथा ध्यान की चरमावस्था पर पहुँचता है तब साधक के अन्तस् में चक्रों का जागरण होता है। यह चक्र हैं- मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्धी, आज्ञा तथा सहस्रार। यह चक्र मानव शरीर के अधोभाग से लेकर उर्ध्वभाग तक पाए जाते हैं। इन चक्रों में मूलाधार चक्र का स्थान मेरुदण्ड में गुदा के समीप होता है जबकि स्वाधिष्ठान चक्र का स्थान गुप्ताङ्ग की जड़ के थोड़ा ऊपर होता है। मणिपूरक चक्र की अवस्थिति जहाँ नाभि के पीछे मेरुदण्ड के भीतर सुषुम्ना में मिलती है। वहीं अनाहत चक्र की अवस्थिति हृदय के समीप होती है जबकि विशुद्धि चक्र की स्थिति कण्ठ प्रदेश की जड़ में एवं आज्ञा चक्र की स्थिति त्रिपुटी के मध्य पाई जाती है। तथा सहस्रार चक्र का स्थान शिरोर्ध्व स्थित मस्तिष्क में योगीजन स्वीकार करते हैं। यह सभी चक्र तब तक उल्टे रूप में होते हैं जब तक कुण्डलिनी शक्ति जागृत नहीं होती। वास्तव मे यह कुण्डलिनी शक्ति चण्डी, चामुण्डा, दुर्गा, उमा, महामाया आदि नामों से व्यवहृत विविध प्रकार की देवियो का ही अपर रूप है। यह कुण्डलिनी शक्ति सम्पूर्ण जगत् की स्वामिनी है जो कि साधक के अन्तस् में स्थित मूलाधार चक्र में सुषुप्तावस्था में रहती है तथा सभी चक्रों के भेदन के अनन्तर ही जागृत होती है। कुण्डलिनी शक्ति जब सहस्रार चक्र में पहुँचती है। वहीं उसका लय होता है, तब साधक के अन्तस् में सनिहित सभी चक्र कमलदल के रूप में सीधे हो जाते हैं और वह ब्रह्म का साक्षात्कार कर असीम परमानन्द की अनुभूति करते हुए जगत की समस्त वस्तुओं को हाथ में रखे आँवले की भांति जान लेता है।

इस प्रकार यदि यौगिक विधाओं को विधि विधान से अपनाया जाये, तो साधक स्वयं के साथ-साथ दूसरों के हित अनहित एवं भूत, भविष्य तथा वर्तमान को जान लेने की शक्ति अर्जित कर सकता है। योग द्वारा प्रादुर्भूत कुण्डलिनी शक्ति का विस्तृत विवेचन शोधपत्र में विस्तारसे विवेचित किया गया है।

अथर्व-वैदिक मनश्चिकित्सा

डॉ. नीलम त्रिवेदी उपाचार्य- संस्कृतविभाग, दयानन्द गर्ल्स पी.जी. कॉलेज, कानपुर

मनश्चिकित्सा का अर्थ है मानसिक रोगों का उपचार करना। मनश्चिकित्सा विज्ञान की नवीनतम देनहै। यह चिकित्सा मानव जाति के लिए एक मूल्यवान् विज्ञान है। इस चिकित्सा पद्धति का विस्तृत उल्लख हमारे प्राचीन ग्रन्थ अथर्ववेद में मिलता है। मानसिक रोगियों की चिकित्सा कार्य का प्रारम्भ भारत में ईसा से 3 शताब्दी पूर्व ही प्रारम्भ हो गया था। अथर्ववेद के अनुसार मानसिक व्यक्तित्व का निर्माण सत्व, रज एवं तम वृत्तियों से होता है। ये गुण जन्म से व्यक्ति के मानस में निहित होते हैं इन गुणों में वृद्धि या न्यूनता आने पर अनेक दोष उत्पन्न हो जाते हैं, जो कि मानसिक जीवन में असामान्यता ला देते हैं। अथर्ववेद में मानसिक रोगों को दो श्रेणी में रखा गया है, पहली श्रेणी है उन्माद, दूसरी श्रेणी में उन रोगों को रखा गयाहै जिनसे प्रक्रियाओं में दोष आ जाता है जैसे क्रोध, मोह, शोक, ईर्ष्या व दु:स्वप्न। अथर्ववेदीय मनश्चिकित्सा की मुख्य विधि मन्त्र विद्या, उतरण, आश्वासन, दिव्य चिकित्सा, गमन, विरोध भावना, चित्तप्रसन्न, चिकित्सा, पुनर्शिक्षण और विचारणा, योग चिकित्सा आदि हैं। अथर्ववेदीय मनश्चिकित्सा पद्धति उपयोगी एवं वैज्ञानिक है। हमारे प्राचीन ग्रन्थों में इस दिशा में भविष्य के लिये सुझाव व सभावनायें उपलब्ध हैं। यदि इन ग्रन्थों का उचित एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण से अध्ययन किया जाय तो निश्चय ही हम आधुनिक मानसिक चिकित्सा पद्धतियों में पर्याप्त सुधार कर सकते हैं। यही इस शोध का विषय है जिसका विस्तार से वर्णन किया जायेगा।

छात्राओं के तनाव और शारीरिक वजन के उपचार में योग की भूमिका

डॉ. रीता भल्ला योग विभाग, एच.पी. यूनिवर्सिटी, शिमला

तनाव आधुनिक समाज की एक बड़ी समस्या है। लगभग 40 प्रतिशत रोगों का कारण यही तनाव है। कुछ मनोवैज्ञानिक तनाव

को उद्‌दीपक कारणों के रूप में समझते हुए कहते हैं कि कोई घटना यापरिस्थिति जो व्यक्ति का असाधारण अनुक्रिया करने के लिए बाध्य करती है तनाव कहलाती है। जैसे भूकम्प, नौकरी का छूटना, प्रियजनों की मृत्यु आदि। ऐसे भौतिक, सामाजिक तथा पर्यावरणीय कारकों जो तनाव उत्पन्न करते हैं आसंधक कहा जाता है। तनाव को प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिकों ने परिभाषित किया है, जिस में प्रमुख है Hans, Baron, Morgau, Kinngulixe, Folkman, and Lazarus आदि। तनाव उत्पन्न होने के कारणों पर गहन अध्ययन वैज्ञानिकों द्वारा किया गया जिनमें प्रमुख निम्नलिखित है- तनावपूर्ण जीवन की घटना, प्रेरकों का संघर्ष, दिन प्रतिदिन की उलझन, कार्य उत्पन्न तनाव, पर्यावरणी स्रोत।

तनाव के दो प्रकार के लक्षण माने गये हैं- (क) मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रियाएं (ख) दैहिक क्रियाएं। मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रियाएं दो प्रकार की हैं- संज्ञानात्मक सिद्धान्त और संविगिक अनुक्रियाएं। इससे एकाग्रता की क्षमता कम हो जाती है , जिसके फलस्वरूप चिन्ता उत्पन्न होती है, यह ऐसी संविगिक अवस्था है जिससे डर, आशंकाएं, परेशानी आदि की प्रधानता होती है जिसे दो प्रकार की मानी गई है- सामान्य और स्नायुविकृत। यह चिन्ता क्रोध एवं आक्रमकता को उत्पन्न करने में सहायक है। बच्चों में अधिक पाई गई है, जब उन्हें लक्ष्य वस्तु तक पहुँचने से रोक दिया जाता है तो उनमें कुण्ठा पैदा होती है। दैहिक प्रतिक्रियाएं पेट की गड़बड़ी, हृदय गति की असमानता, श्वसन गति में परिवर्तन आदि होते हैं।

तनाव का प्रतिबल जीवन का एक मुख्य तत्त्व है। सचमुच में व्यक्ति के भीतर सोये हुए क्षमताओं को जागृत करने के लिए तनाव साधारण मात्रा में कम से कम अवश्य मौजूद हो परन्तु अधिक मात्रा से होने पर व्यक्ति पर कुप्रभाव पड़ता है। मनोवैज्ञानिकों द्वारा किये गये अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि यह तीन प्रकार का होता है- (1) समायोजनात्मक कार्यक्षमता में कमी, (2) समायोजी क्षमताओ का समाप्त होना और शारीरिक तन्त्रों पर कुप्रभाव। छात्र इन सभी प्रकार के तनावों से ग्रस्त रहते हैं। आजकल की शिक्षा प्रणाली बहुत जटिल है जिस कारण बच्चों में तनाव, चिन्ता बहुत हद तक बढ़ जाती है वह दिमागी रूप से पेरशान रहते हैं जिस कारण उनकी स्मरण शक्ति, सहनशीलता, बुद्धि, धैर्य आदि में कमी आ जाती है। मनोवैज्ञानिकों ने शैक्षिक चिन्ता के तीन कारण बतलाये हैं- (1) मनोवैज्ञानिक कारण (2) शारीरिक कारण और (3) पर्यावरणीय कारण। यह कारण उनमें कुण्ठा, ईर्ष्या, द्वन्द्व, संकोच आलस्य, उदासी अनिद्रा आदि कुप्रभाव होते हैं और चिन्ता के लक्षण अक्सर शरीर पर भी दिखाई देने लगते हैं। अधिक तनाव का असर खान-पान में भी परिवर्तन ला देता है। व्यक्ति अत्यधिक खाने लगता है या बिल्कुल नहीं खाता इस अवस्था को Eating Disorder कहते हैं। इस कारण बच्चों में B.P. Low होना, पसीने छूटने लगना, चक्कर आना और कभी-कभी बेहोशी की स्थिति भी आ सकती है। इस कारणों से उनके शारीरिक बजन पर भी असर पड़ता है जब उस मापदण्डों से भार अत्यधिक हो जाता है तो ऊपर बतलाये गये कारण भी होते हैं जिस को ठीक करने में योग सहायक सिद्ध होता है।

वैदिक वाङ्मय में योगतत्त्व - एक परिशीलन

कु. दीप्ति शर्मा(शोधच्छात्रा) कन्या गुरुकुल महाविद्यालय, हरिद्वार

वैदिक साहित्य से लेकर उपनिषद् काल तक तथा उपनिषद् काल से लेकर आधुनिक काल तक जहाँ कहीं भी हम योग का नाम सुनते हैं उसके आधार में मात्र वैदिक वाङ्मय को ही आधारशिला कहा जा सकता है। प्रथमत: योग वह नींव है जिसके ऊपर इस शरीर रूपी भवन का निर्माण करके उसे फलता-फूलता देखते हैं। योग शब्द से तात्पर्य मुख्यत: एक से अनेक चीजों को संयमित करना है जैसे साधारण भाषा में दो और दो को जोड़ देने से उनका योग चार होता है इसी प्रकार योग मे भी कई वस्तुओं को संयमित करके जीवन को सदुपयोगी बनाते हैं। प्राचीन समय में इसी के माध्यम से ऋषि लोग एक स्थान पर स्थित होकर भी सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का साक्षात्कार कर लिया करते थे।उपरोक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि योगविद्या का मूल स्रोत वैदिक वाङ्मय ही है और वेदों में योग पूर्णत: निहित है।

वेदों में योगतत्त्व और उसका परवर्ती साहित्य पर प्रभाव

संजय सिंह (शोधच्छात्र) दर्शन विभाग, गुरुकुल कां.वि.वि. हरिद्वार

वेद संसार के प्राचीनतम ग्रन्थ हैं। स्थूलतया देखने पर वैदिक संहिताओं में यज्ञ एवं स्तुति की प्रधानता प्रतीत होती है। किन्तु वेदमन्त्रों के मूल में योग के बीज विद्यमान हैं। विज्ञानभिक्षु कहते हैं कि सभी वेदों के अर्थ का सार व्यास के योगभाष्य में निहित है वास्तव में वेदों का प्रकटीकरण ही अपने आप में योगसाधना के उच्चतम अभ्यास का फल है।

वेदों में जिस प्रकार ब्रह्मज्ञान को जीवन का लक्ष्य बताया गया है वस्तुतः उसका साधन योग ही है। वेदों में अनेक स्थानों पर योग साधना के भिन्न-भिन्न पक्षों को उजागर किया गया है। मन के नियमन के साथ यम नियम ध्यान तथा प्राणविद्या जैसे विषयों का वेदों में उल्लेख है। जिनका बाद के दार्शनिक साहित्य पर अत्यन्त गहरा प्रभाव रहा है।

उपनिषदों की ब्रह्मविद्या की साम्यता वेदोक्त ब्रह्मविद्या से की जा सकती है। गीता में वर्णित कर्मसिद्धान्त भी वेदों के कर्मसिद्धान्त की ही सरल व्याख्या है। महर्षि पतंजलि की योगसूत्र में वर्णित साधना पद्धति भी वेदों से सम्बद्ध है। यद्यपि सायण, उव्वट तथा महीधर जैसे भाष्यकारों ने वेदों में, सही भाष्य न कर पाने के कारण, हिंसा और अश्लीलता पायी है किन्तु ऋषि दयानन्द कृत भाष्य से वेद अहिंसा के पोषक सिद्ध होती है तथा जैन व बौद्ध दर्शनों के सत्य, अहिंसा आदि व्रतों से वेदोक्त सत्य, अहिंसा की साम्यता प्रदर्शित होती है। पुराणों तथा नाथ योगपरम्परा में भी यत्र-तत्र वेदोक्त शरीर रचना से साम्यता यहीं दर्शाती है कि वेद में वर्णित ब्रह्मविद्या एवं योग तत्त्व ही उत्तरवर्ती अन्य परम्पराओं में सरलीकृत हुआ है।

पतञ्जलिप्रोक्त यम का वैदिक आधार

गुलाब सिंह (शोधच्छात्र) दर्शन विभाग, गुरुकुल कां.वि.वि. हरिद्वार

भारतीय दार्शनिक साहित्य में सर्वप्रथम एवं सर्वोच्च स्थान वेदों को प्राप्त है। वेदों को समस्त ज्ञान-विज्ञान का मूल स्रोत माना गया है। ऐसा माना जाता है कि लोक में जितनी भी विद्याएं प्रचलित हैं, उन सभी के मूलसूत्र वेदों में बीजरूप में विद्यमान हैं। प्रस्तुत शोध-आलेख में इसी विचार से प्रेरणा प्राप्त करते हुए महर्षि पतञ्जलि द्वारा प्रतिपादित यमों का वैदिक आधार खोजने का प्रयास किया गया है।

महर्षि पतञ्जलि के अनुसार यम पाँच हैं- अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह। इन पाँचों यमों का विवेचन वेदों में किसी एक मन्त्र या सूक्त में व्यवस्थित रूप से तो प्राप्त नहीं होता, परन्तु विभिन्न प्रकरणों एवं प्रसंगों के अनुसार अलग-अलग स्थलों पर इन सभी का विवेचन प्राप्त होता है। अहिंसा के विषय में ऋग्वेद कहा गया है कि, 'सौमरूप परमात्मा की इच्छा करने वाले मनुष्यों! तुम किसी की हिंसा मत करो(ऋग्वेद 7.32.9)। 'हिंसक वृत्ति वाला मनुष्य मोक्षरूपी अनुपम सम्पदा को कदापि नहीं पा सकता (ऋ. 7.32.21)। सत्य के विषय में वेद में कहा गयाहै कि 'जैसा ज्ञान आत्मां में वर्तमान है, वैसा मन में तथा जैसा मन में है वैसा वाणी से कहना सत्य है(ऋ5.44.6)। इसी प्रकार वेद में चोरी करने को नीचकर्म बताया गया है तथा अपराधी को कारागार में डालने तथा शारीरिक दण्ड देने का आदेश किया गया है(यजु. 30.5)। इसी प्रकार यमों से सम्बन्धित अन्य अनेकों सन्दर्भ वेदों में विद्यमान हैं जिनका विस्तृत विवेचन शोधालेख में किया गया है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि पतंजलि द्वारा प्रतिपादित यमों को वेदों का सुदृढ़ आधार प्राप्त है तथा इससे भारतीय दार्शनिकों की इस धारणा को भी पर्याप्त बल मिलता है कि समस्त ज्ञान-विज्ञान का मूल वेदों में विद्यमान है।

उपनिषद् वाङ्मय में योगतत्त्व : एक विवेचन

डॉ. नरेश कुमार प्रोजैक्ट फैलो, वेदविभाग, गुरुकुल कां.वि.वि. हरिद्वार

योग शब्द दिवादिगण की 'युज समाधौ' धातु से घञ् प्रत्यय के योग से निष्पन्न माना गया है। युज धातु का अर्थ है समाधि

और समाधि का अर्थ होता है भगवान् के साथ जुड़ जाना या संयुक्त होजाना। इस प्रकार ब्रह्म और जीव का एक हो जाना ही योग है। प्राचीन काल से ही भारत में योग को मुक्ति/कैवल्य का साधन माना जाता रहा है, इस कारण प्राचीन ग्रन्थों यथा वेदों एवं वैदिकवाङ्मय में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान दिखाई पड़ता है। वेद समस्त ज्ञान के आदि स्रोत हैं। संसार की कोई भी ऐसी विद्या नहीं जिसका वर्णन वैदिक वाङ्मय में न हुआ हो सभी विद्याओं में योगविद्या दु:खनिवृत्ति का मुख्य एवं उत्कृष्ट हेतु है। योग मानव के व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास के लिए परमावश्यक है। महर्षि पतंजलि ने योगदर्शन के **योगश्चित्तवृत्तिनिरोध:** सूत्र 1.2 में चित्त की वृत्तियों को रोकने का नाम ही योग(समाधि) प्रतिपादित किया है। योगी जनों की कामनाओं का उत्पतन अर्थात् उत्क्रमण होता है और संसारी व्यक्तियों की आत्माओं का अवक्रमण हुआ करता है। महर्षि पतंजलि के अनुसार वास्तविक योग का अर्थ तो चित्तवृत्तियों का निरोध करने के लिए यम, नियम, आसन प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि का नियमित अनुष्ठान करना है। कठोपनिषद् में योग को परिभाषित करते हुए कहा गया है-

यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।
बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहु: परमां गतिम्।।
तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम्।
अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ।।(कठोपनिषद् 2.3.10-11)

वैदिक साहित्य से लेकर उनषिद् काल तक तथा उनषिद् काल से लेकर आधुनिक काल तक जहाँ कहीं भी हम योग का नाम सुनते हैं उसके आधार में मात्र वैदिक वाङ्मय को ही आधारशिला कहा जा सकता है। प्राचीन समय में इसी के माध्यम से ऋषि लोग एक स्थान पर स्थित होकर भी सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का साक्षात्कार कर लिया करते थे।उपरोक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि योगविद्या का मूल स्रोत वैदिक वाङ्मय विशेषत: उपनिषद् वाङ्मय में योगतत्त्व पूर्णत: निहित है।

वैदिक साहित्य में योग और मनोविज्ञान

महेश कुमार मैनाली, पवमान सुवेदी(शोधच्छात्र) योगविभाग, गुरुकुल काङ्गड़ी वि.वि. हरिद्वार

सम्पूर्ण वैदिक साहित्य में मनोविज्ञान भरा पड़ा है। चारों वेद, उपवेद, वेदाङ्ग, उपाङ्ग, आरण्यक, स्मृति, उपनिषदादि में यत्र-तत्र यौगिक एवं मनोवैज्ञानिक अवधारणाएं सुस्पष्टरूपेण प्राप्त होती हैं। यों तो वैदिक साहित्य में न केवल सैद्धान्तिक ज्ञान की चर्चाएं हैं, अपितु व्यवहारिक(क्रियात्मक) ज्ञान भी समाविष्ट है। उस क्रियात्मक ज्ञान को हम योग कह सकते हैं। योग स्वतन्त्र दर्शन और सम्पूर्ण मनोविज्ञान है। योग मनोविज्ञान का प्रायोगिक अंश है। जिसकी सहायता से हम अपनी मनोवृत्तियों को नियन्त्रित कर अपने लक्ष्य को सहज ही प्राप्त कर सकते हैं।

मनोवैज्ञानिक अध्ययन दार्शनिक अध्ययन से सर्वथा अलग नहीं है। वैसे तो मनोविज्ञान का अलग अस्तित्व का इतिहास ज्यादा पुराना नहीं है, लम्बी अवधि तक यह भी दर्शनशास्त्र का ही अभिन्न हिस्सा रहा है। वर्तमानआधुनिक पाश्चात्य मनोविज्ञान की अवध -ारणा है कि मन को दबाने से विविध प्रकार की मानसिक समस्याएँ शुरू होने लगती हैं। Modern Psychologists तो यहाँ तक कहते हैं कि सभी प्रकार की शारीरिक एवं मानसिक रोगों का मूल कारण अस्वस्थ एवं कुष्ठाग्रस्त मन है। अत: मन को कभी दबाना नहीं चाहिए। **वैदिक यौगिक मनोविज्ञान** उपरोक्त सिद्धान्त को तो स्वीकार करता ही है, साथ ही एक कदम और आगे बढ़कर कहता है कि - 'मन को दबाओ मत, लेकिन स्वतन्त्र भी छोड़ो नहीं। इसका रूपान्तरण करों।' धीरे-धीरे पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक भी वैदिक यौगिक मनोविज्ञान की ओर ही बढ़रहे हैं। **डॉ. जोसेफ मॉर्फी, डॉ. विक्टर फ्रैंकल, डेनियल गोमैन** जैसे आधुनिक मनोविज्ञान के दिग्गज विद्वानों की वर्तमान कृतियाँ इसके प्रमाण हैं।

अस्तु उपर्युक्त शीर्षक के अन्तर्गत प्रस्तुत शोधपत्र में वैदिक साहित्य में कहाँ-कहाँ और कैसी-कैसी यौगिक एवं मनोवैज्ञानिक अवधारणाएँ अभिव्यक्त की गई है? आधुनिक पाश्चात्य मनोविज्ञान तथा वैदिक यौगिक मनोविज्ञान में किस प्रकार की सामंजस्यता है? और हमारे जीवन में इसका प्रभावकारी उपयोग कैसे हो सकता है? इस विषय में संक्षेपत: परन्तु सूत्रबद्ध रूप में चर्चाएँ की गई हैं।

उपनिषदों में प्राणविद्या

शालिनी सिंह(शोधच्छात्रा) बैसवारा पी.जी.कॉलेज, लालगंज, रायबरेली

धर्म और संस्कृति के प्राणतत्त्व स्वरूप वेदों का साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है। वेद विश्वसाहित्य कीसबसे प्राचीनतम उपलब्ध साहित्य है। तप के द्वार 'अभयज्योति' के रूप में परमतत्त्व का साक्षात्कार करके ऋषियों ने उसको वेदमन्त्रों के रूप में व्यक्त किया। ऋषियों ने उस परम तत्त्व को संहिताओं ब्राह्मणों और आरण्यकों से क्रमशः विकसित करते हुये उपनिषदों तक पहुँचाया।

कठोपनिषद्, प्रश्नोपनिषद्, माण्डूक्योपनिषद्, तैत्तिरीयोपनिषद्, बृहदारण्यकोपनिषद् में प्राण के विषय मे बृहत् विश्लेषण है। जीवन के क्रम में मृत्यु एक ऐसी अवस्था है जो प्राण का अस्तित्व सिद्ध करती है। प्राण जीवन की संचारण शक्ति है। इसके अस्तित्व के बिना जीवन का क्रम ही निरर्थक है। तैत्तिरीयोपनिषद् में कहा गया है कि 'प्राणो हि भूतानामायु:।' अर्थात् प्राण ही प्राणियों की आयु(जीवन) है। प्रश्नोपनिषद् में वर्णित है कि-

'यह प्राण अग्नि है, यह सूर्य है, यह मेघ है, यही इन्द्र और वायु है तथा यह देव ही पृथ्वी, चन्द्रमा और जो कुछ सत्, असत् एवं अमृत है, वह सब कुछ है।' मानव भी समस्त क्रियायें इस प्राण तत्त्व पर पूर्णता से आधारित हैं। कठोपनिषद् में प्राणायाम का वर्णन करते हुए कहा गया है कि 'जो प्राण को ऊपर ले जाता है और अपान को नीचे, हृदय के मध्य रहने वाले उस प्राण की सभी देवता उपासना करते हैं।

प्रस्तुत शोधपत्र मे प्राणोपासना, इसकी उत्पत्ति तथा इसके स्वरूप का विवेचन किया जायेगा।

आयुर्वेद एवं योग की मनुष्य जीवन में महत्ता

डॉ. वंदना जोशी राजनीतिविज्ञान विभाग, सेठ ज्ञानीराम बंशीधर पोद्दार कॉलेज, झुंझुनू(राजस्थान)

आयुर्वेद की मान्यता है कि मानव शरीर का निर्माण पाँच तत्त्वों से हुआ है। जल, अग्नि, वायु, आकाश व पृथ्वी।

आयुर्वेद की दृढ़ मान्यता है कि मनुष्य जीवन के संतुलित संचालन के लिए आवश्यक है कि तीन तत्त्वों का शरीर में पूर्ण संतुलन बने रहना चाहिए - वात, पित्त एवं कफ। आयुर्वेद के अनुसार जब-जब शरीर में इन तीनों तत्त्वों का संतुलन बिगड़ता है, उस समय ही व्याधि जन्म लेती है।

आयुर्वेद में रोग निदान के अन्तर्गत मुख्य आठ उपायों का उल्लेख किया गया है जिनको अष्टांग सिद्धान्त कहा जाता है।

वर्तमान में भारत में पुन: आयुर्वेद एवं योग को प्रमाणित करने के लिए बाबा रामदेव ने महत्त्वपूर्ण जन आन्दोलन प्रारम्भ किया हुआ है। अनेकों व्याधियों से ग्रसित लोग योग एवं प्राणायाम के प्रयोग से लाभकारी हुए हैं। प्राणायाम में वह शक्ति है जो मनुष्य की समस्त व्याधियों का जड़ से निदान करती है। प्राणायाम में अनुलोम-विलोम मनुष्य के हृदय एवं फेफड़ों से संबन्धित समस्त रोगों का निदान करता है। साथ ही कपालभाति सम्पूर्ण शरीर की आन्तरिक व्याधियों को समाप्त करता है। योग के साथ बाबा रामदेव केन्सर जैसे असाध्य रोग के लिए गेहूँ के जुआरें के प्रयोग पर बल देते हैं।

साररूप में हम कह सकते हैं कि आयुर्वेद एवं योग ऐसे उपाय हैं जो शारीरिक व्याधियों को जड़ से समाप्त करते हैं एवं यदि व्यक्ति नियमित रूप से योग एवं प्राणायाम को अपने जीवन का अभिन्न अंग बना ले तो वह अपने जीवन में सदैव निरोगी रह सकता है एवं चिरायु को प्राप्त कर सकता है।

ज्योतिर्विज्ञान में षट्चक्रों की रचना

डॉ. नरेश दीक्षित लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

शरीर के विभिन्न ग्रन्थि-स्थलों पर योगियों ने चक्रों की कल्पना की है जो जीवात्मा का परमात्मा में विलीन होने के साधन किं वा मोक्ष के द्वार हैं। इन चक्रों की संख्या 6 है, जिन्हें क्रमशः मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत विशुद्ध और आज्ञा चक्र

कहते हैं। इन चक्रों से होकर ही महाशक्ति कुण्डलिनी का सहस्रार में गमन सम्भव होता है। ये सारे चक्र सुषुम्ना के मार्ग में स्थित हैं, **इड़ा, पिङ्गला ओर सुषुम्ना**-ये तीनों नाड़ियाँ भ्रूमध्य में मिलती हैं जहाँ आज्ञा चक्र की संरचना करती है। यही योगियों का 'तीर्थराज' है। साधना-मार्ग के योगी सर्वप्रथम यहीं पर ध्यान (स्नान) करके पवित्र होकर साधना पथ पर अग्रसर होते हैं। इन चक्रों का प्रस्तुत शोधपत्र में विवेचन किया जायेगा।

नासदीय सूक्त-मीमांसा

आचार्या सुष्मिता पाण्डेय शास्त्री प्रतापगढ़ (उ.प्र.)-230001

ऋग्वेदान्तर्गत दशम मण्डल का एक सौ उन्तीसवां 'नासदीयसूक्त' है। इसमें सात मन्त्र हैं, जिनको सात सन्दर्भों में विभक्त किया जा सकता है। **'मायाशेषसंदर्भ'** के अन्तर्गत प्रथम मन्त्र को, 'मायाश्रयस्वप्रकाश-परब्रह्मशेषसन्दर्भ' के अन्तर्गत द्वितीय मन्त्र को, 'स्रष्टव्यपर्यालोचनसन्दर्भ' के अन्तर्गत तृतीय मन्त्र को, 'सिसृक्षासंदर्भ' के अन्तर्गत चतुर्थ मन्त्र को, 'सर्गक्रम-दुर्लक्ष्यतासन्दर्भ' के अन्तर्गत पञ्चम मन्त्र को, 'जगत्कारण-दुर्लक्ष्यतासन्दर्भ' के अन्तर्गत षष्ठ मन्त्र को और 'दुर्धरदुर्विज्ञेयतासंदर्भ' के अन्तर्गत सप्तम मन्त्र को गुम्फित करना उपयुक्त है।

ध्यान रहे, नासदीयसूक्त में विविक्षावशात् माया को नौ नामों से अभिहित किया गया है-1. न सत्, 2. न असत्, 3. स्वधा, 4. तमस्, 5. तुच्छ, 6. आभु, 7. असत् 8. मनस् और 9. परव्योम। परमात्मा का मन मायारूप है। परमव्योम का अर्थ जहां सच्चिदानन्दरूप परमात्मा है, वहां 'यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन्' (तैत्तिरीयोपनिषद् 2.7) की शैली में अव्याकृतसंज्ञक माया भी है। कठरुद्रोपनिषद् (10-11) ने भी माया को परमव्योम माना है-

संसारे च गुहावाच्ये मायाज्ञानादिसंज्ञके।
निहितं ब्रह्म यो वेद परमे व्योम्नि संज्ञिते।
सोऽश्नुते सकलान् कामान् क्रमेणैव द्विजोत्तमः।।

नासदीयसूक्त में विवक्षावशात् ब्रह्म को 1.आनीदवात और 2. अध्यक्ष इन दो नामों से अभिहित किया गया है। जीव को रेतोधा और प्रयति(प्रयतिता) इन दो नामों से अभिहित किया गया है। जगत् को स्वधा, सत्, बिसर्जन और विसृष्टि इन चार नामों से अभिहित किया गया है।

विश्वोत्पत्ति के मूल- दशवाद

डॉ. सत्य प्रकाश दुबे निदेशक, पण्डित मधुसूदन ओझा शोध प्रकोष्ठ, संस्कृत विभाग, जयनारायण व्यास वि.वि. जोधपुर(राज.)

वेदों में अन्तर्हित विज्ञान को उद्घाटित करने के उद्देश्य से पण्डित मधुसूदन ओझा रचित ग्रन्थों में 'दशवादरहस्यम्' प्रमुख हैं। लघुकलेवर वाले इस ग्रन्थ में पण्डित ओझा ने वेद को विश्वविज्ञान की संज्ञा देते हुए यह कहा है कि वेद मन्त्रों में विश्वोत्पत्ति का रहस्य अति दुर्बोध प्रतीकात्मक भाषा में सूत्रशैली में निबद्ध है। उन्होंने 'नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं.........' नासदीय सूक्त के मन्त्रों में निहित सृष्टि-उत्पत्ति विषयक समस्त प्राचीन मतों को दश भागों में व्यवस्थित कर दिया है-

श्रुतः श्रुतिभ्यः सदसत्प्रवादो रजःप्रवादश्च बहुप्रसिद्धः।
व्योमापरावावरणप्रवादश्चाम्भः प्रवादोऽमृतमृत्युवादः।।
वादस्त्वहोरात्र कृतश्च दैवः सन्देहवादोऽथ विनिर्णयात्मा।
सिद्धान्तवादश्च तदन्तरन्येऽप्यनेकवादा इति तान् वदामः।।

अर्थात् 1. सदसद्वाद, 2. रजोवाद, 3. व्योमवाद, 4. अपरवाद, 5. आवरणवाद, 6. अम्भोवाद, 7. अमृतमृत्युवाद, 8. अहोरात्रवाद, 9. दैववाद तथा 10. संशयवाद। ये दशवाद क्या है? इनका स्वरूप क्या है? तथा किस तरह ये विश्व की उत्पत्ति के मूल हैं? इनका सप्रमाण विवेचन इस शोध आलेख का प्रतिपाद्य है।

वेदान्त में काल का स्वरूप

कु.आराधना(शोधच्छात्रा) छत्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर

प्रस्तुत निबन्ध में छात्रा द्वारा "वेदान्त में काल का स्वरूप" वर्णन किया जाएगा, जिसकी संक्षेपिका इस प्रकार है।

वेदान्त वेदों के बिकास की कड़ी है। वैदिक साहित्य को जानना होतो वेदान्त को जानना अत्यन्त आवश्यक है। वेदान्त में जो कुछ भी है सब वेदों से आया है। वेदान्त में वेदों के ज्ञान का सार उपस्थित है। इसकी विचारधारा वैदिक ऋषियों के चिन्तन और मनन की अन्तिम परिणति है। वैदिक धर्म के पुराने आख्यान को वेद तथा नवीन आख्यान को वेदान्त कहते है। इसमें जो सूक्ष्म चिन्तन व चेतना है उसका मूल कारण वेद ही है। इसकी शब्दावलि वेदों से ही ली गई है। अत: वेद व वेदान्त का पारस्परिक सम्बन्ध इतना घनिष्ट है। कि इनके मध्य किसी भी विभाजन रेखा को निश्चित कर पाना अत्यन्त कठिन है।

वेदान्त में अनेकों विद्याओं का आगार उपस्थित है जैसे ज्ञान, कर्मविद्या, योगविद्या, पञ्चाग्निविद्या, विराटविद्या, देवविद्या, नक्षत्रविद्या, भूतविद्या तथा यज्ञविद्या से भी अत्यधिक विद्याओं का ज्ञान प्राप्त होता है। प्रस्तुत विषय में काल का स्वरूप प्रस्तुत किया जाएगा जिसका वर्णन वेदान्तों में विस्तृत रूप से किया गया है। सृष्टि रचना के विषय में बताया जाएगा कि सभी जीवों की उत्पत्ति का कारण यह काल ही है। काल को ईश्वर कहा गया है। जो जीवों की उत्पत्ति तथा विनाश करता है, यह काल अविनाशी है और भूत, वर्तमान व भविष्य में विद्यमान रहता है। काल का विषय प्राचीन काल से ही हमारे वैदिक ग्रन्थों में केन्द्र बिन्दु रहा है क्योंकि वैदिक काल में किये जाने वाले सभी यज्ञ, हवन इत्यादि उचित काल, मास, दिन, शुक्लपक्ष व कृष्णपक्ष का ध्यान रखते हुए शुभ मुहूर्त में किये जाते थे जिनसे उनका फल भी पूर्ण फलीभूत होता था। वेदान्त में हमें काल के जिन अवयवों का ज्ञान प्राप्त होता है वे ही संवत्सर काल की बारह आकृतियाँ, मास, अहोरात्र, काल की सोलह कलाएँ है। इन सभी की व्याख्या इस शोध कार्य में प्रस्तुत की जाएगी।

वेदों में विश्वबन्धुत्व के यौगिक सूत्र

आचार्य दयासागर प्रधान, छत्तीसगढ़ प्रान्तीय आर्यप्रतिनिधि सभा दयानन्द परिसर, आर्यनगर, दुर्ग(छ.ग.)

विश्वबन्धुत्व के सर्वोच्च आदर्श को प्रतिमित और प्रतिष्ठापित करने के कारण ही वेद विश्ववन्द्य है, विश्वग्राह्य है और अत: विश्वबन्धुत्व का प्रथम और अन्तिम संदेशवाहक है।

जो सम्पूर्ण विश्व को मानववाद का सन्देश देकर मानव और मानव के बीच आदर्श प्रेम, सद्भाव, सद्बुद्धि, सहानुभूति, समदर्शिता आदिगुणों का विकास और प्रकाश करे वही विश्वबन्धु है। वेद मानव मात्र को यही पाठ सृष्टि के आदि से पढ़ाता आया है और विश्वबन्धुओं का निर्माण भी करता आ रहा है।

वेदों का पूर्ण प्रमाण मानने वाला, आस्तिक दर्शनों की पंक्ति में अग्रगण्य 'दर्शन' महर्षि पतञ्जलि प्रणीत 'योगदर्शन' है। जिसके सूत्र योगसूत्र कहे जाते हैं। योगसूत्रों ने व्यक्तिकल्याण का एक सर्वोच्च उपाय बताया है कि व्यक्ति को विश्वबन्धुत्व होना आवश्यक है अन्यथा उसका चित्त प्रसन्न नहीं हो सकता। वे स्पष्ट लिखते हैं कि **मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदु:खपुण्यापुण्यविषयाणां भावनात्तश्चित्तप्रसादनम्।** अर्थात् सुखी मनुष्यो के साथ मैत्री, दु:खियों के साथ करुणा, शुभकर्म करने वालों के साथ मुदिता और अशुभकर्म करने वालों के साथ उपेक्षा का व्यवहार करने से चित्त प्रसन्न रहता है। यह पाठ महर्षि पतञ्जलि ने वेदों से प्राप्त किया था। वेदों में अनेकत्र मैत्री भावना को जागरित करने के मन्त्र मिलते हैं, जिनका विस्तार से शोध लेख में वर्णन किया जायेगा।

दैवीय महाशक्ति एवं वैज्ञानिक साधना के रूप में गायत्री महामन्त्र

डॉ. बबिता सिंह प्रवक्ता-संस्कृतविभाग, चौ.चरण सिंह पी.जी. कॉलेज हैवरा इटावा।

ओम् भूर्भुव: स्व: तत्सवितुर्वरेण्यं। भर्गोदेवस्य धीमहि धियो यो न: प्रचोदयात्।।

उपरोक्त गायत्री महामंत्र सनातन अनादि काल का मंत्र है। पुराणों में वर्णन आया है कि ब्रह्मा जी को आकाशवाणी से गायत्री मन्त्र प्राप्त हुआ। साथ ही यह आदेश मिला कि इसकी साधना से सृष्टि निर्माण की शक्ति प्राप्त होगी। ब्रह्मा जी ने दीर्घ काल तक तपस्या की तभी वह सृष्टि रचना करने में समर्थ हो सके। एक बार भगवती पार्वती ने महादेव जी से पूछा कि हे जगदीश्वर! आप किस योग की साधना किया करते हैं, जिससे आपको अनेक प्रकार की उच्च शक्तियाँ प्राप्त हुई हैं। तो शिव जी कहते है कि मैं गायत्री योग की साधना करता हूँ। गायत्री चारों वेदों की जननी हैं इस पृथ्वी पर इसे आदि शक्ति स्वीकार किया गया है। सभी प्रकार की यौगिक साधनाओं को मूलाधार भी गायत्री को स्वीकार किया जाता है।

श्रीमद्भागवत के 10वें स्कन्ध में महात्मा शुक देव जी महाराज परीक्षित को बताते हैं कि श्रीकृष्ण भगवान् की दिनचर्या साधना से ही प्रारम्भ होती थी। वह ब्रह्म मुहूर्त में उठकर रोज गायत्री मन्त्र का जप व यज्ञ करते थे। उन्हें गायत्री साधना में इतना अटूट विश्वास था कि जब रुक्मणी जी ने उनसे निवेदन किया कि हमारे विवाह को कई वर्ष हो चुके हैं किन्तु अभी तक पुत्ररत्न की प्राप्ति नहीं हुई और यह जानना चाहा कि श्रेष्ठ सन्तान उत्पन्न करने के लिये क्या साधन अपनाना पड़ेगा। तब श्रीकृष्ण बताते हैं कि हमें बद्रिकाश्रम जाकर गायत्री तप करना होगा। परिणाम स्वरूप दैवीय गुणों से परिपूर्ण पुत्र प्रद्युम्न की उन्हें प्राप्ति हुई। इस साधना से योगेश्वर श्रीकृष्ण सबको यह बताना चाहते हैं कि विश्व के महानतम कार्यों को सम्पादित करने की क्षमता गायत्री मन्त्र में है। महाभारत के अनुशासन पर्व में युधिष्ठिर भीष्म पितामह से शान्ति, रक्षा एवं शत्रु विनाशक मन्त्र की जानकारी चाहते हैं तो उन्हें गायत्री महामन्त्र के जप करने की सलाह पितामह देते हैं।

गायत्री मन्त्र में 24 अक्षर आते हैं। मस्तिष्क हमारे शरीर और मन का नियन्त्रण केन्द्र है। इसके मूल से 24 ज्ञान तन्तु निकलते हैं। जो हमारे शरीर में फैल जाते हैं। यही शरीर की समस्त क्रियाओं का संचालन करते हैं। इन ज्ञानतन्तुओं का गायत्री मन्त्र का उच्चारण किया जाता है। तो उसकी झंकार से यह ज्ञान तन्तु सशक्त होते हैं और निरन्तर क्रियाशील रहते हैं। जिससे साधक हर क्षेत्र में दक्षता प्राप्त करता हुआ प्रगति पथ पर अग्रसर होता है। इस प्रकार गायत्री मन्त्र का जप एक वैज्ञानिक साधना है। जिससे मानव जीवन का कायाकल्प होता है।

श्री सर्वेश्वर-मीमांसा

सविता सुमन अध्यापिका(प्राच्यविद्या) रा.रो.इ.स्तरीय विद्यालय, समस्तीपुर (बिहार)

वेद, उपनिषद् आदि समस्त निगमागम में ऐसा एक महान शब्द 'श्रीसर्वेश्वर' है जिसका उच्चारण करते ही साधक को सर्वोच्च परमात्मतत्त्व की झाँकी हो जाती है। एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ एषोऽन्तर्याम्येष योनिः सर्वस्य प्रभवाप्ययो हि भूतानाम् (माण्डूक्य. 6)

अभिप्राय यह है कि यही सर्वेश्वर प्रभु हैं, जो चराचर के शासक और भूत-भविष्य-वर्तमान (कालत्रय) कालत्र में बाहर-भीतर की समस्त वस्तु और भावों के ज्ञाता हैं। अतएव ये ही अन्तर्यामी हैं और ये ही प्रभु समस्त चराचर के उपादान ओर समस्त भूत प्राणियों के निमित्तकारण तथा संहारक भी ये ही हैं।

वेदेषु यत्किमपि गुप्तमनन्ततत्त्वं,ब्रह्मत्सत्पुरुषशब्दमुखैर्विनीतम्।
नत्वेह निगुर्णमशेषगुणाश्रययं तं, सर्वेश्वरं श्रुतिगिरा सुविभावयामि।।

प्रतिपाद्य विषय पर विस्तृत विवेचन शोध-पत्र का उद्देश्य है।

उपनिषत्तत्व-विमर्श

डॉ. जगन्नाथ झा सेवानिवृत्त प्रधानाध्यापक, शुभंकरपुर, दरभंगा।

उपनिषद् ही भारतीय संस्कृति के प्राणस्वरूप हैं। इसी से भारतीय संस्कृति को आर्य-संस्कृति कहा जाता है। समस्त वेदों का जो चरमसत्य है वही उपनिषदो में समुज्ज्वलरूप में प्रकट है।

उपनिषदों के ऋषियों ने यह उपलब्ध किया कि ब्रह्म केवल बुद्धि का एक अनधिगम्य चरम आदर्श नहीं है एक

अवाङ्मनसगोचर अश्रेय, किन्तु आकांक्षणीय तत्त्वमात्र ही नहीं है ब्रह्म प्रत्यक्ष सत्य है। 'यत्किञ्च जगत्यां जगत्' है ब्रह्म विश्वनिवासी नर नारीमात्र को ऊँचे स्वर से पुकारकर उपनिषद् के ऋषियों ने कहा-श्रृण्वन्तु विश्व अमृतस्य पुत्रा:।' देखो तुम जिस जगत् में निवास करते हो, उसका यथार्थ स्वरूप देखो- ब्रह्मवेदममृतं पुरस्ताद् ब्रह्म पश्चाद् ब्रह्मदक्षिणतश्चोत्तरेण।

अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम्।(मुण्डक. 2/2/11)

अमृतस्वरूप ब्रह्म ही इस विश्व के रूप लीला करता हुआ हमारे सामने, पीछे, दाहिने, बायें, ऊपर-नीचे सर्वत्र प्रसारित हो रहा है। ब्रह्म ही इस विश्व का यथार्थ स्वरूप है और ब्रह्म ही सर्वश्रेष्ठ वरणीय है। भवसागरसंतरण हेतु दिव्य नौका के रूप में उपनिषद् का अनुशीलन अनिवार्य है।

'उपनिषादयति सर्वानर्थकरसंसारं विनाशयति, संसारकारणभूतामविद्यां च शिथिलयति, ब्रह्म च गमयति इति उपनिषद्।'

जो समस्त अनर्थों को उत्पन्न करने वाले संसार का नाश करती , संसार की कारणभूत अविद्या को शिथिल करती तथा ब्रह्म की प्राप्ति कराती है, वह उपनिषद् है। प्रस्तुत शोधपत्र में विशद्चर्चा हमारा उद्देश्य है।

शिवसंकल्प ऋषि का मनस्तत्त्व चिन्तन

कैलाश चन्द्र(शोधच्छात्र) संस्कृतविभाग, दिल्लीविश्वविद्यालय, दिल्ली

मन का विषय बहुत व्यापक है, क्योंकि इसमें सभी चेतन प्राणियों के व्यवहार का अध्ययन होता है और प्राणियों के व्यवहार का विस्तार अपरिमित है।

मनस्तत्त्व वर्णन

शुक्ल यजुर्वेद के 34वें अध्याय के प्रथम मन्त्रषट्क में यत्-तत् इन सर्वनामद्वय का प्रयोग विशेष चिन्तनीय है क्योंकि उससे मन का कर्तृत्व, करणत्व और आधारत्व स्पष्ट होता है। एक पञ्चमी भी अभाव के अर्थ को व्यक्त करती है। इसमें जहाँ-जहाँ यत् आया है वहाँ-वहाँ उसकी क्या विभक्ति है जरा निरीक्षण करें। जैसे-यत् (प्रथमाविभक्ति) का प्रयोग छ: बार हुआ है। येन (तृतीयान्त पद का) प्रयोग तीन बार हुआ है। यस्मात् (पञ्चमी) का प्रयोग एक बार तथा यस्मिन्(सप्तमी) का प्रयोग तीन बार हुआ है।

ज्ञानी का ज्ञान: प्रतिनिधान

कुमारी श्वेता श्रीवास्तव लखनऊ

तात्त्विक दृष्टि से ज्ञान परमतत्त्व का स्वरूप है। पर व्यावहारिक दृष्टि से हम ज्ञान को एक प्रक्रिया के रूप में ले सकते हैं जिसे जीव सम्पन्न करता है। विशुद्धात्मा तो ज्ञान से अभिन्न है पर जीवात्मा को बाह्य संसार को जानने के लिए प्रक्रिया करने की आवश्यकता होती है। ज्ञान व्यक्ति के सर्वांगीण विकास को परिलक्षित करता है और व्यक्ति की उपयोगिता उसकी स्वयं की योग्यता पर आधारित होती है। यदि ज्ञान को उपयोगी नहीं बनाया जा सकता तो वह ज्ञान व्यर्थ है ज्ञान की उपयोगिता व्यक्ति को सक्षम बनाना है उसका सर्वांगीण विकास करना है। वेदों की शिक्षा यही ज्ञान देती है। वह व्यक्ति को आत्म चिन्तन की प्रक्रिया सिखाती है और उसे आत्म स्वरूप को जानने की ओर प्रेरित करती है। यदि हम हैं हमारे माता-पिता है और उनके भी माता-पिता हैं तो अन्तत: हमें मानना होगा कि सबका पिता वह ब्रह्म अवश्यहै। उसे जानना ही स्वयं को जानना है और स्वयं को जानना सम्पूर्णता है। आदि श्री शंकराचार्य की 'ज्ञानमीमांसा' हमें यह अन्त:दृष्टि प्रदान करती है। जो समस्त विरोधों को आत्मसात कर 'अद्वैत' को परिभाषित करती है। प्रस्तुत आलेख का उद्देश्य नि:श्रेयस् की प्राप्ति के उन साधनों को विश्लेषित करना है। जिन्हें आदि श्रीशंकराचार्य ने अपने ज्ञान-मार्ग के रूप में निर्देशित किया है। जिन तथ्यों का यहाँ विश्लेषण किया गयाह है वे तथ्य हैं- साधनचतुष्टय, बहिरंग साधन, अन्तरंग साधन, आत्मनिष्ठवादिता, वस्तुनिष्ठवादिता तथाप्रतिनिधानवादिता, और अन्त में ज्ञानमार्ग से तात्पर्य। यहाँ स्वयं प्रस्तुतकर्ता ने कुछ प्रश्नों को उठाया है और उनका उत्तर देने का भी प्रयास किया है। प्रथम प्रश्न प्रसंगतया सभी तथ्यों के अनन्तर उत्पन्न भेदों से सन्दर्भित है। क्या इनमें गुणात्मक रूप से भिन्नता है या ये भी मात्र स्तर में भिन्न हैं ? दूसरा प्रश्न है कि शंकराचार्य की ज्ञानमीमांसा और प्राचीन

ज्ञानमीमांसीय पद्धति में क्या समानता है ? तीसरा प्रश्न, शंकराचार्य 'ज्ञान-कर्म-समुच्चय' के अथवा 'ज्ञानकर्मभक्ति' समुच्च के इनमें से किसके प्रति सहयोगात्मक दृष्टि रखते हैं? इस व्याख्या में मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि जहाँ तक निःश्रेयस् की प्राप्ति के मार्ग से बात सम्बन्धित है वहाँ सर्वाधिक उचित यही कहना होगा कि शंकराचार्य जो कि विशुद्ध ज्ञानमार्गी कहे जाते हैं उनके लिए 'ज्ञान-कर्म भक्ति-समुच्चय' को प्राप्त करने के लिए 'ज्ञान-कर्म-समुच्चय' महज मार्ग प्रशस्त करता है। क्योंकि 'ज्ञान-कर्म-भक्ति-समुच्चय' ज्ञान मार्ग का अन्तिम पड़ाव है। और चौथा व अन्तिम प्रश्न कि क्या शंकराचार्य का ज्ञानमीमांसीय प्रतिनिधानवाद पुरे भारतीय दर्शन के इतिहास में अपने आप में एकमात्र विशिष्ट स्थान रखता है ?

वेदों में भक्तियोग का स्वरूप

रुचि मिश्रा(शोधच्छात्रा) लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

सृष्टि के आदि में परमात्मा ने जो ज्ञान, अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा इन चार ऋषियों के अन्तःकरण में प्रस्फुटित किया वही वेद नाम से अभिहित है। चार ऋषियों के अन्दर इस ज्ञान के प्रस्फुरण होने से ऋग्, यजु, साम और अथर्ववेद नाम से तथा ज्ञान, कर्म और उपासना इन तीनों मार्गों का निर्देश करते हैं। वैदिक भक्ति के तीन सोपान हैं- स्तुति, प्रार्थना और उपासना। स्तुति में प्रभु के गुणों का कीर्तन होता है प्रार्थना में प्रभु से पापों के प्रक्षालन और पुण्य की प्राप्ति के लिए याचना की जाती है। ज्ञान हमें लक्ष्य का बोध कराता है कर्म उस स्थल तक पहुंचाता है और उपासना उस लक्ष्य के उप अर्थात् समीप आसन अर्थात् आसीन कर देती है। अतः भक्ति के ही ये तीन अंग स्तुति, प्रार्थना और उपासना, वेदत्रयी द्वारा प्रतिपादित ज्ञान कर्म एवं उपासना के त्रिमार्ग का रूप धारण कर लेते हैं। भक्ति तीनों मार्गों की पावन त्रिवेणी का संगम है। ज्ञान और कर्म सम्पत्ति का प्रभु -अनुग्रह के साथ सामंजस्य ही वैदिक भक्ति का आदर्श है।

योग-सुखमय जीवन का स्वर्णिम पथ

डॉ. अनीता गुप्ता लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

आत्मपरिशोधन और विराट्पुरुष से मिलन की प्रक्रिया ही योग है। प्राचीन ऋषियों की अपूर्व अन्तर्दृष्टि, प्रतिभा एवं ज्ञान का मूल इसी में निहित है। योग की महत्ता एवं इसमें बताई गई प्रक्रियाओं का वर्णन वेदों, स्मृति व पुराणों में प्रचुरता से मिलता है। समस्त योग साधन एक मात्र अपौरुषेय वेदों पर ही आधारित हैं। ऋग्वेद में योगाभ्यास सूचक मन्त्र बहुलता से उपलब्ध होते हैं, जबकि यजुर्वेद में यौगिक प्रक्रियाओं के द्वारा परम ज्ञान प्राप्ति के पूर्णतया संकेत मिलते हैं, तथा सामवेद में योग परम्परा में परमात्मा के दर्शन एवं ज्ञान प्राप्ति पर बल दिया गया है। अथर्ववेद में भी योग को मुक्ति का साधन माना गया है तथा योगी पुरुषों की तपस्या की सफलता के लिये कामना-प्रार्थना की गयी है। वेदों की ही भाँति ब्राह्मणों एवं आरण्यकों में भी योग संबद्ध वर्णनों की कमी नहीं है।

आज वर्तमान मानव ने स्वयं को विस्मृत कर दिया है। जड़ पदार्थों के अरण्य में मानवीय चेतना भी मूढ़ हो गयी है। यह मूढ़ता ही तो है कि कोई एक नहीं हम सभी अचेतन और निःस्तब्ध से हैं। समाज, समुदाय और प्रशासन मिल कर भी इस समस्या का समाधान नहीं खोज पा रहा है। यदि समस्यायें मानवजनित हो तो समाधान भी उसी की चेतना में मिलेंगे। यही दार्शनिक सत्य वैदिक चिन्तन-यात्रा में पग-पग पर प्रकट हुआ है। केवल योग-साधना के तत्त्व दर्शन को जानकर ही मनुष्य स्वयं को प्राप्त कर सकता है। योग ज्ञान ही उसे मानसिक और आध्यात्मिक शान्ति प्रदान कर सकता है। योग साधना का नियमन ही मनुष्य को पुष्पित पल्लवित कर विकास की ओर अग्रसर कर मानवीय गुणों का विकास (स्वास्थ्य, सौन्दर्य, प्रतिभा) करने में सहायक है।

प्रस्तुत शोधपत्र में योग के प्राचीन महात्म्य को दृष्टिगत करते हुए वर्तमान युग में उसकी उपादेयता की चर्चा की गयी है। वर्तमान युग की समस्त आधि-व्याधियों का उपचार योग के द्वारा सम्भव है, इसकी विस्तृत विवेचना वैदिक साहित्य के परिप्रेक्ष्य को अंगीकृत करते हुए अर्वाचीन संदर्भ में शोधपत्र में प्रस्तुत की जायेगी।

अमृतनाद उपनिषद् - एक अध्ययन(योगशास्त्रीय तत्त्वों के आधार पर)

राम हरीश मौर्य (शोधच्छात्र) वेदविभाग, गु.कां.वि.वि.हरिद्वार

अमृतनाद उपनिषद् का योग शास्त्रीय उपनिषदों में महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस उपनिषद् में योग के छः तत्त्वों - प्रत्याहार, ध्यान, प्राणायाम, धारणा, तर्क तथा समाधि का निरूपण किया गया है। तथा पाँच प्राणों के रंगों का वर्णन किया गया है। जबकि योगशास्त्र में योग के आठ तत्त्वों - यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा ध्यान और समाधि को बताया गया है। मेरे शोध परक कार्य का उद्देश्य है कि योग शास्त्रीय तत्त्वों और अमृतनादोपनिषद् में वर्णित तत्त्वों के भेद के क्या कारण हैं। यह विशेष अध्ययन से ही ज्ञात हो सकेगा।

याज्ञवल्क्योपनिषद् - एक अध्ययन

डॉ. अमित कुमार पाण्डेय दी.द.उ.गोरखपुर वि.वि.

याज्ञवल्क्योपनिषद्, शुक्लयजुर्वेद से सम्बन्धित है। इसमें राजा जनक और याज्ञवल्क्य का संवाद वर्णित है, जिसमें संन्यास-धर्म की विस्तार से विवेचना की गयी है। संन्यास-धर्म की जिज्ञासा रखने वाले राजा जनक से याज्ञवल्क्य जी ने कहा कि ब्रह्मचारी के बाद गृहस्थ, गृहस्थ के बाद वानप्रस्थ,वानप्रस्थ के बाद संन्यास का क्रम है, किन्तु भाव प्रवणता की स्थिति में वैराग्य भाव की प्रचुरता की स्थिति में कभी भी संन्यास लिया जा सकता है। संन्यास ग्रहण करने वाले शिखा यज्ञोपवीत आदि के त्याग का विधान है। यज्ञोपवीत के बिना ब्राह्मण कैसे कहा जायेगा ? इसका उत्तर देते हुए याज्ञवल्क्य जी ने कहा कि ऊँ कार ही संन्यासी का यज्ञोपवीत होता है। आगे क्रमशः संन्यासी के गुणों, आचार, विचार आदि की विस्तृत विवेचना की गई है। साथ ही संन्यासी को उसके पथ से विचलित करने वाली स्त्री के दोष या वीभत्स चित्रण भी किया गया है। सन्तान भी दुःखदायी ही होती है। यह कहते हुए संन्यासी को लोभ मोह, काम, क्रोध से बचने का निर्देश किया है। अन्त में संन्यासी को जितेन्द्रिय बने रहने की सलाह देते हुए उसे अपने एक मात्र लक्ष्य 'परब्रह्म' के चिन्तन-मनन करने का निर्देश है क्योंकि इसी से उसे मोक्ष की प्राप्ति होना सम्भव है।

शुक्ल यजुर्वेद के सप्तम अध्याय में वर्णित योग विद्या और उसकी उपादेयता

डॉ. विजेन्द्र कुमार तोमर के.डी.पी.जी. कॉलेज मवाना मेरठ

योगविद्या का मूल स्रोत- संहिताएँ हैं। योग के अष्टाँगों- यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणाध्यान और समाधि का विशद् विवेचन चारों वेदों में मिल जाता है। यथा- प्राणायाम(अथर्व 11.4.1), अष्टांगयोग(अथर्व. 6.91.1), समाधि से सुखलाभ(यजु. 11.2), सुषुम्ना नाड़ी से योगाभ्यास(यजु. 12.67), धारणा(साम. 6.18), अहिंसा(यजु. 16.3, 113.42,43,47), सत्य(ऋ. 10.37.2) अस्तेय(यजु. 4.21), ब्रह्मचर्य (ऋ. 10.190.4, 5), अपरिग्रह (यजु. 35.10), स्वाध्याय(ऋ. 9.67.31) आदि। इसके अतिरिक्त योग का फलितार्थ- ईश्वर प्राप्ति (यजु. 40.7), योग की आवश्यकता (ऋ. 1.18.17), चित्तवृत्तियों का ईश्वर में लीनता(ऋ. 1.71.7), परमात्मा की भक्ति मित्रता की मधुरता(ऋ. 8.68.1), अन्नमय कोष से आनन्दमय कोष की प्राप्ति(अथर्व. 4.14.3) योगी का आनन्दानुभूति(अथर्व. 10.2.31), विवेकख्याति, ऋतम्भरा प्रज्ञा, सिद्धियाँ(साम. 301.201.31), देवयान पथ (अथर्व. 2.34.5), और परमात्मा को पाकर जन्म-मरण के दुःख से मुक्ति(यजु. 31.18) आदि का भी वेदों में विशद् वर्णन मिलता है। योगविद्या का विकास ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषदों से होता हुआ योगदर्शन-योगसूत्रों पर चरम निदर्शन को प्राप्त हुआ। योग की उपनिषदों का एक पृथक् विशद् वर्गीकरण हुआ और उनका चिन्तन चरम पराकाष्ठा को प्राप्त हुआ। योगविद्या के चरम निदर्शन रूप महर्षि पतञ्जलि के योगदर्शन के ग्रन्थ 'योगसूत्र' से पूर्व अनेक योग के ऋषियों - आचार्यों यथा- हिरण्यगर्भ, कपिल, महेश्वर, सनत्कुमार, विवस्वान्, नारद, प्रजापति, बृहस्पति, विवक्सेन, जैगीषव्य, असितदेवल, मार्कण्डेय, वसिष्ठ, दत्तात्रेय, जनक, याज्ञवल्क्य, कृष्णद्वैपायन, वेदव्यास, जैमिनी और योगिराज श्रीकृष्ण आदि का भी बड़ा योगदान रहा है। इस पर गहन विवेचना की आवश्यकता है।

वेदों में भक्ति की अवधारणा

नवदीप गुप्ता गुरुनानक देव यूनिवर्सिटी अमृतसर

वैदिक धर्म भारत में धार्मिक विश्वासों की सबसे प्राचीन प्रणाली है, जिसने इस उपमहाद्वीप में प्रकट होने वाली धार्मिक प्रवृत्तियों और दार्शनिक शिक्षाओं पर गहनतम प्रभाव डाला है। वेद ज्ञान तथा विज्ञान का अनादि भण्डार है। भारतीय धर्म एवं दर्शन के मूलभूत सिद्धान्तों का उद्‌गम-स्थल वेद ही हैं। वेदों के सम्बन्ध में कई प्रकार की मिथ्या और भ्रान्त धारणाएँ प्रचलित हैं। इनमें एक यह भी है कि वेदों में भक्ति-प्रेरक भावनाएं उतनी विशद नहीं हैं, जितनी अन्य ग्रन्थों में विशेषतः मध्यकालीन भक्तों की वाणी में हैं। वेद वस्तुतः भक्ति के आदि स्रोत हैं। यदि हम भक्ति का स्वरूप समझ लें तो वेदों में वर्णित भक्ति तत्त्व को समझने में सुगमता होगी। भक्ति शब्द 'भज्सेवायाम्' धातु से 'क्तिन्' प्रत्यय लगाकर सिद्ध होता है। भक्ति हृदय की उस भावना का नाम है, जिसमें साधक जहां एक ओर पूर्णभाव से ब्रह्म द्वारा रचित इस समस्त सृष्टि के प्रति सेवा की भावना रखने वाला हो।

दृते दृ ँह मा मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणिभूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्याहं चक्षुषासर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।। (यजु. 36.18)

वैदिक भक्ति की एक और विशेषता है, जिसका मध्यकाल में लोप हो गया। वेद में ऐसा कोई मन्त्र नहीं है, जिसमें उपासक अथवा भक्त अपने को अधम, नीच, पापी, खल, दुष्ट तथा पतित इत्यादि कहे अथवा परमात्मा को किसी प्रकार का उपालम्भ दे। इसका कारण यह है कि वेद में 'भक्ति' के साथ 'शक्ति' का सतत और अविच्छिन्न सम्बन्ध माना है। वेद के द्वारा प्रभु यह आदेश देते हैं कि निर्बल और अशक्त आत्मा सच्चा भक्त नहीं बन सकता । वेद का भक्त कितना सशक्त एवं कितना आत्मविश्वासी है, यह निम्नलिखित मन्त्र से पता चलता है- 'कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः।'(अथर्व. 7.50.8) अर्थात् मेरे दायें हथ में कार्य शक्ति है और बायें हाथ में विजय है। भक्ति ही सबसे श्रेष्ठ है, इस सत्य को भक्तराज नारद जी ने इन शब्दों द्वारा स्वीकार किया है- 'त्रिसत्यस्य भक्तिरेव गरीयसी।' अर्थात् तीनों सत्यों में भक्ति ही श्रेष्ठ है।

छान्दोग्योपनिषद् के आरुणि-श्वेतकेतुसंवाद में जीव और ब्रह्म की एकता का स्वरूप

डॉ० मधु श्रीवास्तव रीडर, संस्कृत-विभाग, एम.एम.एच.कॉलेज, गाजियाबाद

समस्त उपनिषदों का प्रमुख विषय जीव और ब्रह्म की एकता का प्रतिपादन करना है। श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में श्रीकृष्ण ब्रह्मतत्त्व या आत्मतत्त्व को सब प्राणियों में अन्तर्यामीरूप से सिथत, सब वेदों द्वारा जानने योग्य, वेदान्त का कर्ता और वेदों को जानने वाला कहा गया है-(गीता 15/15)। छान्दोग्योपनिषद् के छठे अध्याय में पिता आरुणि और पुत्र श्वेतकेतु के संवाद के माध्यम से जीव और आत्मा की एकरूपता का साङ्गोपाङ्ग तथा तर्कपूर्ण ढंग से निरूपण हुआ है।

यह दृश्यमान जगत् आरम्भ में एकमात्र अद्वितीय सत् था 'सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्'-(छा० 6/2/1) और सत्संज्ञक अणिमा (आत्मा) से यह समस्त जगत् आत्मवान् है-'ऐतदात्म्यमिंद सर्वम्'-(छा० 6/8/7)। इस आत्मतत्त्व का आचार्य से सम्यक् उपदेश प्राप्त हो जाने पर अश्रुत श्रुत हो जाता है, बिना विचारा हुआ विचारा हुआ हो जाता है और बिना जाना हुआ विशेषरुप से जाना हुआ हो जाता है-(छा० 6/1/3)। यह उसी प्रकार से है जैसे लोक में घट आदि के कारणभूत एक मृत्पिण्ड का ज्ञान हो जाने पर उसके विकारभूत सम्पूर्ण मृत्तिका के कार्यसमूह का ज्ञान हो जाता है और विकार (कार्य) रुप में जो विभिन्न प्रतीति होती है वह तो केवल वाणी पर अवलम्बित नाममात्र है, सत्य वस्तु तो मृत्तिका ही है। इसी भाव को गीता में 'ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः (गीता 15/7)'- इस रुप में व्यक्त किया गया है। ग्रहण किये गये अन्न, जल और तेज-ये देवता ही त्रिवृत्-त्रिवृत् होकर क्रमशः मन, प्राण तथा वाक् रुप होते हैं। जिस समय यह 'पुरुष' 'सोता है' ऐसा कहा जाता है उस समय यह सत् से सम्पन्न हो जाता है अर्थात् अपने स्वरुप को प्राप्त हो जाता है। मरण को प्राप्त होते पुरुष की वाणी मन में लीन हो जाती है, मन प्राण में, प्राण तेज में और तेज परदेवता में लीन हो जाता है। इस प्रकार जीवनधारण और प्राणान्त का यह अत्यन्त वैज्ञानिक वर्णन छान्दोग्य में प्राप्त है।

आत्मतत्त्व आनन्दस्वरुप है तथा नित्यप्राप्त होने पर भी अज्ञानवशात् अप्राप्त जैसा हो जाता है। गुरु के उपदेश से 'ग्रीवास्थग्रैवेयकन्याय' से इसकी प्राप्ति का कथन किया जाता है। उद्दालक आरुणि अपने पुत्र श्वेतकेतु को 'तत्त्वमसि' इस महावाक्य के उपदेश द्वारा आत्मतत्त्व का बोध कराते हैं-'तत्त्वमसि श्वेतकेतो'-(6/8/7 इत्यादि)। नदी, वृक्ष, लवण, चोर इत्यादि के विभिन्न दृष्टान्तों द्वारा उपदेश दिये जाने पर श्वेतकेतु आत्मतत्त्व को पूर्णत: समझ जाता है। संवादरुप यह कथा दृष्टान्त है और जीव तथा आत्मा की एकता का प्रतिपादन होना ही दार्ष्टान्तिक है।

ऋग्वेद की सृष्टि-प्रक्रिया का दार्शनिक विवेचन

डॉ0 मधु बाला सिन्हा व्याख्यात्री संस्कृत, "आनन्द निकेतन", शिवपुर मार्ग, महेन्द्रू, पटना

मन्त्रद्रष्टा ऋषियों ने अपने अन्तश्चक्षु से सृष्टि की उत्पत्ति का दर्शन कर अपने निष्कर्षों को सूक्त के माध्यम से अभिव्यक्त किया था। यद्यपि सृष्टि की उत्पत्ति तथा विकास विषयक ऋषियों के चिन्तन में पृथक्-पृथक् विचार व्यक्त हुए हैं किन्तु समग्र रूप से देखने पर उनमें कोई अन्तर नहीं मिलता। वस्तुत: ये ऋषियों की विभिन्न अवस्थाओं के चिन्तन के परिणाम हैं। ऋग्वेद में सृष्टि से सम्बद्ध सूक्तों को दार्शनिक सूक्त कहा जाता है क्योंकि इनमें सृष्टि-प्रक्रिया के वर्णन के क्रम में गूढ़ दार्शनिक तत्त्वों की झलक मिलती है। इन सूक्तों में प्रमुख है-पुरुष सूक्त (10.9), नासदीय सूक्त (10.129), हिरण्यगर्भसूक्त (10.121) तथा वाक्सूक्त (10. 125)

पुरुषसूक्त को "सर्वेश्वरवाद" का स्थापक कहा जा सकता है। "पुरुष एवेदं सर्व यद् भूतं यच्च भव्यम्" (10.90.2) में स्पष्ट कहा गया है कि यह सब कुछ-भूत, भविष्यत् और वर्तमान-पुरुष है। यहाँ काल ही पुरुष, फलत: कालकृत जगत् पुरुषरूप है। इस प्रकार पुरुष जगत् का उपादान कारण तथा निमित्त कारण-दोनों ही है।

नासदीय सूक्त में सृष्टि की उत्पत्ति से पहले का विशद वर्णन है। उस समय न सत् था न असत्, न मृत्यु थी और न अमरत्व, न अन्तरिक्ष था और अन्तरिक्ष से परे भी जो कुछ है वह भी नहीं था, रात्रि और दिन का ज्ञान भी नहीं था। केवल ब्रह्म तत्त्व ही अविभक्त रूप में विद्यमान था। उससे भिन्न अथवा परे कुछ भी नहीं था। इस प्रकार नासदीय सूक्त में इस संसरणशील जगत् के मूल पर विचार किया गया है।

पुन: हिरण्यगर्भसूक्त संसार के नियामक परमात्मा का हिरण्यगर्भ के रूप में वर्णन करता है। परमात्मा का यह रूप सृष्टि की उत्पत्ति से भी पूर्व उत्पन्न हुआ था। वही सृष्टि का एकमात्र स्वामी है। इस सूक्त में हिरण्यगर्भ रूप प्रजापति सहित सम्पूर्ण विश्व को गर्भ में धारण करने वाले सर्वत्र व्याप्त "बृहती आप:" का उल्लेख है (10.121.7)। प्रजापति ने पृथ्वी लोक, द्युलोक तथा आनन्द प्रदान करने वाले जलों को उत्पन्न किया-"यश्चापश्चन्द्रा बृहतीर्जजान" (10.121.9) यहाँ उत्पन्न-उंतपादकभाव है, क्योंकि "बृहती आप:" के उत्पन्न होने का वर्णन है। साथ ही बृहती आप: द्वारा जगत् को व्याप्त करने का भी उल्लेख है। इसी में सत्त्व-रजस्-तमस् की साम्यावस्था है, यही सांख्य की प्रकृति है जिससे सृष्टि का आरम्भ होता है।

वाक्सूक्त में वाक् देवी अपना महात्म्य बतलाती हुई अपने को सर्वोपरि कहती हैं-मैं रुद्रों, वसुओं, आदित्यों, विश्वदेवों, मित्र, इन्दु, वरुण तथा दोनों अश्विनी देवताओं को धारण करती हूँ। मैं ही सारे लोकों को उत्पन्न करती हुई वायु के समान व्याप्त हूँ। इस सूक्त में वाक् देवी का जगत् के कारण रूप ब्रह्म के साथ तादात्म्य लक्षित होता है।

इस प्रकार इन सूक्तों में 'एकदेववाद' से ऊपर उठकर 'एकतत्त्ववाद' का विशद् रूप प्रकट होता है-एं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति। यह "सत्" लिंग-भेद से परे अनिर्वाच्य तत्त्व है जो ऋग्वेद की दार्शनिक महत्ता का परिचायक है।

उपनिषदों के दार्शनिक तत्त्व

डॉ0 सरोज नौटियाल कन्या गुरुकुल महाविद्यालय, देहरादून

उपनिषद् सनातन दार्शनिक ज्ञान के मूल स्रोत हैं। वे केवल प्रखरतम बुद्धि के परिणाम ही नहीं अपितु प्राचीन ऋषियों की

अनुमति के फल हैं। भारतीय तत्त्वज्ञान एवं धार्मिक सिद्धान्तों के मूलस्रोत इन उपनिषदों में अनेक एसे मौलिक विचार एवं उपदेश हैं जो आज भी मानव की दार्शनिक जिज्ञासा को शान्त करने एवं सत्य का दर्शन कराने में समर्थ हैं।

उपनिषदों में दार्शनिक तत्त्वों का विवेचन श्रेष्ठतम रूप से विद्यमान है। असंख्य प्राणियों की इच्छा के अनन्त विषयों को धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चार भागों में विभक्त जा सकता है। इन चार पुरुषार्थो में परम नि:श्रेयस रूप मोक्ष ही मनुष्य का अंतिम लक्ष्य है-यह सुनिश्चित हैं। ब्रह्म, जीव, जगत्, माया, मोक्ष आदि दार्शनिक तत्त्वों का विवेचन मुख्य रूप से उपनिषदों में किया गया है। यह समस्त दृश्यमान जगत् ब्रह्म का एक रूप है और ब्रह्म उस जगत् का मूल कारण है। इसी ब्रह्म के कारण जगत् की सृष्टि एंव प्रलय होती है।

वेद विद्या के चरम सिद्धान्त 'एकमेव' द्वितीयं ब्रह्मं, 'नेहनानास्ति किंचन' का प्रतिपादन कर उपनिषद् जीव को अल्पज्ञान से अनन्तज्ञान की ओर ले जाती है यही उपनिषद् के दार्शनिक तत्त्व ज्ञानोपदेश का सारांश है।

ऋग्वेद, बौद्ध दर्शन और त्रिक साहित्य में आत्मा का स्वरुप-एक विवेचन

डॉ0 वाहिद नसरु सहायक प्रोफेसर, मध्य एशियाई अध्ययन केन्द्र, कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर, काश्मीर

सभी आस्तिक और नास्तिक भारतीय दर्शन वेदों के आधीन हैं। नास्तिक दर्शनों की आधार शिला भी वेद ही हैं। प्रत्येक पूर्ववर्ती दर्शन अपने परवर्ती दर्शन पर अपना प्रभाव स्पष्ट रूप से रखता है। वेदों और वेदों की प्रामाणिकता को स्वीकार न करने वाला नास्तिक बौद्ध दर्शन तथा वेदों की प्रामाणिकता को स्वीकार करने वाला आस्तिक त्रिक साहित्य (काश्मीर शैव दर्शन) इन तीनों दर्शनों में आत्मा का गूढ़ रहस्य वर्णित किया गया है। ऋग्वेद का प्रथम और दशम् मण्डल में तथा बौद्ध दर्शन के 'महापरिनिर्वाण' सूत्र के अनुसार 'सर्वक्षणिकम्' और 'सर्वअनात्मकम्' में चेतन आत्मा को भी नित्य और सास्वत द्रव्य नहीं माना गया है। और वसुगुप्त के 'शिव सूत्र' जो काश्मीर शैव दर्शन की आधार शिला हैं प्रत्येक सूत्र ही 'चैतन्यमात्मा' है जो आत्मा को चैतन्य मानता है। इस कारण उपर्युक्त तीनों दर्शनों के आधार पर आत्मा का विशद विवेचना करना प्रस्तुत शोध पत्र का मुख्य विषय है।

वर्तमान सन्दर्भ में योग की भूमिका

डॉ0 योगेश्वर दत्त योग विभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

प्राचीन काल में योग साधना जितनी महत्त्वपूर्ण और कल्याणकारी थी, उससे कहीं अधिक इसका महत्त्व वर्तमान सन्दर्भ में है। आज का मनुष्य समाज और राष्ट्र पहले की अपेक्षा अधिक सन्तप्त और दु:खी है। यद्यपि आज विश्व में वैज्ञानिक प्रगति चरम सीमा पर हैं, वैज्ञानिक उपकरणों ने मानव जीवन को अधिक सुविधा सम्पन्न और भौतिक दृष्टि से समृद्धिशाली बना दिया है किन्तु ये सभी समृद्धियाँ मनुष्य को शान्ति और सन्तोष प्रदान नहीं कर सकीं। मनुष्य का जीवन दिन-प्रतिदिन अशान्त और असन्तुष्ट होता जा रहा है। सन्तोष के बिना तीनों लोकों की सम्पत्तियाँ भी मनुष्य के लिए थोड़ी पड़ जाती हैं। ज्यों-ज्यों भोग-तृष्णा बढ़ती है त्यों-त्यों सुख शान्ति घटती जाती है। क्योंकि सुख और शान्ति भौतिक विषयों के भोग में नहीं है। वास्तविक सुख और शान्ति तो भोगों की निवृत्ति में हैं, भोगों से निवृत्ति केवल योग साधना से ही हो सकती है।

यह बड़े सन्तोष का विषय हैं कि आज मनुष्य योगसाधना की ओर पुन: प्रवृत्त हो रहा है। सदियों के बाद मनुष्य योग-साधना के महत्त्व को पुन: पहचानने लगा है। आज भारत में ही नहीं अपितु विश्व में योग का प्रचार-प्रसार बढ़ रहा है। यह परिवर्तन अकस्मात् नहीं हुआ अपितु यह परिवर्तन स्वाभाविक है। भोग की चरम सीमा पर पहुंचकर निवर्तन तो आवश्यक है। आज नहीं तो कल मनुष्य को वापिस लौटना ही है। क्योंकि दूसरा कोई उपाय नहीं है। श्रुति कहती हैं कि उस आत्मा को जानकर ही मृत्यु को पार किया जा सकता है। "नान्य: पन्था विद्यतेऽयनाय:" अन्य कोई उपाय नहीं है।

वर्तमान सन्दर्भ में योग साधना के अभ्यास से मनुष्य को क्या-क्या लाभ हो सकते हैं और वह कौन-कौन से संकटों पर विजय प्राप्त कर सकता है इस पर हम इस शोध पत्र में विचार करेंगे।

वेदों में योग-एक परिचय

डॉ0 जे0के0 गोदियाल हे०नं०ब०ग० केन्द्रीय वि०वि०, श्रीनगर, ग० यू०के०

वेदों में व वैदिक वाङ्मय में योग, त्याग, तपस्या एवं तपोवन को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है। सम्पूर्ण जगत् को ईश्वरमय मानते हुए त्यागपूर्वक योगमय जीवन जीने का सन्देश वेद एवं वैदिक साहित्य का उद्घोष है। इसमें लोभ को कोई स्थान नहीं। मानव जीवन के सन्तुलन के लिए योग पुरातन अनिवार्यता आज और भी अधिक उपयोगी व प्रासंगिक है। वर्तमान में संपूर्ण विश्व को, लोभ एवं भौतिक-सुख-शांति की चाह में असंतुलित कर दिया है। ऐसी स्थिति में योग ही सन्तुलन का सेतु बन सकता है क्योंकि प्रत्येक स्थिति में मानव-जीवन में समत्व स्थापित करना ही योग का परम उद्देश्य है। यही समत्व स्वस्थ जीवन का आधार है। समस्त भारतीय दर्शनों का चरम लक्ष्य त्रिविध दु:खों की निवृत्ति है जिसका एकमात्र साधन योग है। आत्मिक शान्ति के लिए योग की अनिवार्यता प्रागैतिहासिक है। इसी कारण पुराण साहित्य भी योग माहात्म्य को व्यक्त करते हुए कहता है-

स्वाध्यायात् योगमासीत् योगः स्वाध्याय मा मनेत्।

स्वाध्याय योग सम्पत्या परमात्मा प्रकाशते॥

वेद एवं वैदिक साहित्य में प्रतिपादित इस योग विद्या पर एक विहङ्गम दृष्टि डालना इस शोध-पत्र का मुख्य प्रतिपाद्य है।

वेद वैदिक दर्शन और भूमंडलीकरण

सुशान्त कुमार

समस्त भारतीय वाङ्मय का आदि स्रोत वेद है। वेद शब्द से जहाँ चार मंत्र-संहिताओं का ही ज्ञान होता है, वहीं वैदिक शब्द से वेद विषयक बहुविध सामग्री का बोध होता है। वैदिक विषयक बहुविध सामग्री के साहित्य में ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, षडवेदांग आदि होता है। प्राचीनता की दृष्टि से ऋग्वेद को विश्व साहित्य का पहला ग्रंथ माना जा सकता है। वेद के पश्चात् भारतीय वाङ्मय में वेदों की व्याख्या के दो रूप उपलब्ध होती है।

(1) कर्म काण्डात्मक

(2) ज्ञानात्मक

कर्म काण्ड का प्रतिपादन ब्राह्मण ग्रंथों में हुआ और ज्ञानात्मक व्याख्या उपनिषदों में उपलब्ध होता है।

भारतीय दर्शन परम्परा अति प्राचीन है। भारतीय चिन्तन के मूल स्रोत के रूप में भी वेद को ही निर्विवाद रूप में माना जा सकता है। वेदों के दर्शन पर चिन्तन करते हुए कई निष्कर्ष भी निकाले गए हैं। वेद मानव जीवन की समस्त समस्याओं पर अपना दर्शन चिन्तन प्रस्तुत करता है। वेद केवल मोक्ष तक ले जाने की बात नहीं करता बल्कि समाज की समस्याओं का निराकरण प्रस्तुत करता है। वेद और उपनिषद एक स्थान पर रखकर समन्वयात्मक दृष्टि से अवलोकन किया जाय तो यथार्थवाद के मुखरित होने की जानकारी मिलती है। समस्त ब्रह्ममाण्ड की उत्पत्ति का आदि कारण ब्रह्म है जैसा कि वेदान्त दर्शन में स्पष्ट कहा गया है कि जिसके द्वारा इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का जन्म, स्थिति, प्रलय होता है, उसी का नाम ब्रह्म है। वेदों में 'ऋत्' के विषय में बहुत अधिक लिखा है। यह "ऋत्" त्रिकालबाधित नियम के रूप में माना जाता है। "ऋत्" एक ऐसे सदाचार के मानदण्ड को प्रस्तुत है जो कि सार्वभौमिक है, सर्वकालिक है। वर्तमान परिदृश्य में यह बात कही जा रही है कि भारत के अर्थव्यवस्था का भूमंडलीकरण हो रहा है या भारत भूमंडलीकरण का भाग बन चुका है। वैस भी भूमंडलीकरण बहुत ही अधिक प्रचलित शब्द हो गया है।

प्रस्तुत आलेख 'वेद वैदिक संस्कृति और भूमंडलीकरण' वेद और वैदिक संस्कृत तथा भूमंडलीकरण के काल का सम्यक विश्लेषण तथा सामाजिक सांस्कृतिक चित्र को प्रस्तुत करने का एक विनम्र प्रयास है।

वैदिक वाङ्मय में वर्णित देवताओं पर पण्डितराज कृत स्तोत्र ग्रन्थों का दार्शनिक अध्ययन

विनय कुमार त्रिपाठी शोधच्छात्र इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

प्रस्तुत शोध पत्र में पण्डितराज जगन्नाथ के समस्त लहरियों का दार्शनिक विश्लेषण किया गया है। जिससे उनके काव्यगत सौन्दर्य के साथ-साथ उनके दार्शनिक तत्त्वों का भी ज्ञान हो सके। शोधपत्र का उपसंहार पण्डितराज कृत सूर्यलहरी के एक स्तोत्र से किया जा रहा है जिसका आशय इस प्रकार है- 'अपने सुधा लहरी में सूर्य को कल्पवृक्ष मानते हुए उन्होंने कहा है कि जिस वृक्ष का मूल शुद्ध ब्रह्म है जिसका आलवाल प्रकृति या, माया से, संबलित है और जिसके कर किरणें उसकी अतिशय बढ़ती हुई स्वर्णमयी शाखाएं है तथा आरुण्य के विकास से युक्त पल्लवों का विलास है। नील आकाश भ्रमरों की माला है धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष सरस फल समूह हैं। वह शोभा सम्पन्न सूर्याख्य कल्पवृक्ष हमारे तुम्हारे सबके वांछित अर्थों का सतत निरन्तर वितीर्ण करें।

उपनिषदों में योगदर्शन सिद्धान्त विमर्श

कु० आकांक्षा शुक्ला दिल्ली

ईश, केन, कठ, बृहदारण्यक, छान्दोग्य उपनिषदों में योग का पर्याप्त विकास मिलता है। ईशोपनिषद् में कर्मयोग का वर्णन उपलब्ध होता है। छान्दोग्य उपनिषद में ध्यान को चित्त से श्रेष्ठ बताते हुए मन से ध्यान करने का निर्देश कर अप्रमत्त हो स्तुति करने का वर्णन मिलता है तो कठ में इन्द्रियों की स्थिरता को योग कहा गया है। कठोपनिपषद् में योगाभ्यास का वर्णन करते हुए प्रणव-ध्यान और आध्यात्मिक-प्रमन्थन की प्रक्रिया का वर्णन मिलता है। मुण्डकोपनिषद् में प्रमाद रहित होकर प्रणवरूपी धनुष पर आत्मा रूपी शर का सन्धान कर ब्रहमरूपी लक्ष्य की बींधने का आदेश है। बृहदारण्यकोपनिषद् में भी आत्मदर्शन के लिए समाधि को अनिवार्य रूप से प्रतिपादित किया है।

तस्मादेवं विच्छान्तो दान्त ऊपरातस्तितिक्षुः

समाहितो भुत्वा आत्मन्येवात्मानं पश्यति। (बृहदारण्यकोपनिषद् 4.4.23)

श्वेताश्वेतरोपनिषद् भी योग की मुक्त कंठ से प्रशंसा करती है।

योगप्रवृत्तिं प्रथमा वदन्दि (श्वेताश्वेतरोपनिषद् 2.13)

न तस्य रोगो न जरा न मृत्यु प्राप्तस्य

योगाग्निमयं शरीरम् (श्वेताश्वेतरोपनिषद् 2.12)

प्रस्तुत शोधपत्र में उपनिषददों में योगदर्शन के बारे में विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

पुरुषसूक्त में तत्त्वज्ञान

जाडा कनाभाई रत्नाभाई सौराष्ट्र युनिवर्सिटी, राजकोट

ऋग्वेद के 10.90 'पुरुषसूक्त' में परवर्ती साहित्य के तत्त्वज्ञान का बीज निहित है। ऋग्वेद के इस सूक्तम् में तत्त्वज्ञान का सुयोग्य ढंग से वर्णन हुआ है। सृष्टि की उत्पत्ति, उसका कर्ता इत्यादि विषयो की मीमांसा पुरुषसूक्त में की गई है। इस सूक्त केआरम्भ के सर्वव्याप्त परमतत्त्व के विषयो में विचार-विमर्श किया गया है। इसे उपनिषद् ब्रह्म कहते हैं। यहाँ ब्रह्म का पुरुष के रूप वर्णन है। सबसे पहले सृष्टि के कर्ता परमपुरुष ही विद्यमान थे। ऋग्वेद में जगत् की उत्पत्ति के विषय में जो सूक्त होते है, वे अद्वितीय है। इन सूक्तो में सृष्टि की प्रक्रिया चार वेदो का आविर्भाव, देवताओं का निर्माण, मनुष्य या सामाजिक व्यवस्था का निर्माण, प्राणि सृष्टि का निर्माण आदि वर्णन मिलता है। जिन की उत्पत्ति विराट पुरुष से हुई है। सृष्टि का मूलतः रचनाकार पुरुष है, जिसके सभी

अंग सृष्टि के विभिन्न अंग बन जाते हुई। सृष्टिरूपी यज्ञ में पुरुष की बलि दी जाती है। यह विराट पुरुष हजारो मुखों, मस्तको और आँखोवाला है। उसने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को व्याप्त कर लिया है। वह भूत व भविष्य का स्वामी है। उसी पुरुष से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र की उत्पत्ति हुई। वसंत आदि ऋतुएँ, ऋक्-यजुस्-साम उसी से उत्पन्न हुए। उसके एक चतुर्थांश में समस्त लोक है तथा उसके तीन भाग ऊपर अमरलोक में स्थित है। वह एक चतुर्थांश में स्थावर और जंगम रूप में सर्वक व्याप्त है। मैकडोनल महोदय के अनुसार सर्वेश्वरवाद के मूल बीज इसी सूक्त में अन्तर्निहित है। ग्रिस्वाल्ड के मतानुसार परवर्ती एकेश्वरवाद का मूलस्त्रोत भी यही सूक्त है, जो आगे चलकर अद्वैत वेदान्त के 'सर्व खल्विदं ब्रह्म' के रूप में प्रतिष्ठित हुआ है।

उपनिषदों में निरुपित योग

डॉ० धनंजय कुमार सिंह, डॉ० प्रतिमा खोस्या व्याख्याता (संस्कृत)
बाबूशोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर (राज.)

योग शब्द मनोनिरोध का वाचक है (योगश्चित्तवृत्तिनिरोध:) और मनोनिरोध के बिना ज्ञान, आदि सत्कर्म सभी व्यर्थ होते हैं। अतएव परम पुरुषार्थ के प्रतिपादक उपनिषदादि में योग शब्द का प्रयोग दोनों अर्थो में प्रयुक्त होता है और इसी आशय की पूर्ति के लिए प्राय: सभी उपनिषदों में योग का प्रधान रूप से वर्णन है। ''सायुज्यमुक्ति'' को ही उपनिषदों में वास्तविक मुक्ति कहा गया है। इस मुक्ति की प्राप्ति जैसे ज्ञान और पराभक्ति से होती है, ठीक वैसे ही योग से भी होती है, इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है। श्वेताश्तरोपनिषद् के द्वितीय अध्याय में योग का वर्णन करते हुए कहा गया है। ''लघुत्वमारोग्यमलोलुपत्वं वर्णप्रसाद स्वर सौष्ठवंच गन्ध: शुभो मुत्रपुरीषमल्पं योगप्रवृतिं प्रथमां वदन्ति।। (श्वेत. 2/1013)

योग के साधक को फल का निर्देश भी यहाँ प्राप्त होता है। 'न तस्य रोगो न जरा न मृत्यु:

प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्। (श्वेत. 2/92) कठोपनिषद् के अन्तर्गत भी योग से अमृतपद की प्राप्ति बताई गई है- ''अध्यात्मयोगाधिगतेन देवं मत्वाधीरो हर्षशोकौ जहाति।।'' (कठ. 9/2/12)

बृहदारण्यकोपनिषद् में भी योग का विशद वर्णन मिलता है-

पराचेतना के सूत्र स्वरुप-वेद

डॉ. रामप्रकाश शर्मा 'सरस', दिल्ली

भारतीय परम्परा के अनुसार वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। धर्म-विषय में वेद ही स्वत: प्रमाण हैं और दूसरे अन्य ग्रन्थ परत: प्रमाण।

महर्षि स्वामी दयानन्द द्वारा वेदों को अपौरुषेय कहा गया है अर्थात् ये पुरुषों के द्वारा रचित नहीं है। 'वेद' ज्ञान के भण्डार हैं, जिन्हें ऋषियों ने अपनी अन्त: प्रज्ञा से प्रकट किया है। विशाल वैदिक साहित्य चार भागों में विभक्त हैं। संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषद्। संहिताओं में वैदिक स्तुतियां संगृहीत हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों में मन्त्रों की व्याख्या है। आरण्यक ग्रन्थों में लोकसेवा से सम्बन्धित विधि विधान हैं। (उपनिषदों में अध्यात्म-ज्ञान है।)

भारतीय धर्म, संस्कृति एवं सभ्यता का भव्य प्रासाद जिस दृढ़ आधारशिला पर प्रतिष्ठित है, उसे वेद के नाम से जाना जाता है। भारतीय आचार-विचार, रहन-सहन तथा धर्म-कर्म को भली प्रकार से समझने के लिए वेदों का ज्ञान बहुत आवश्यक है। संपूर्ण धर्म-कर्म के मूल तथा यथार्थ कर्तव्य-ज्ञान की जिज्ञासा रखने वालों के लिए वेद सर्वश्रेष्ठ प्रमाण हैं। महर्षि मनु महाराज की मनुस्मृति में उक्त **वेदोऽखिलो धर्ममूलम्' तथा 'धर्म जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुति:'** जैसे वचन इसी रहस्य का उद्‌घाटन करते हैं। वस्तुत वेद शाश्वत ज्ञानराशि के समुच्चय हैं, जिसे साक्षात्कृतधर्मा ऋषियों ने अपने प्रतिभा चक्षु से देखा है-अनुभव किया है।

वेदों में ब्रह्मतत्त्व

कुलदीप पन्त शोधच्छात्र, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

हम आस्तिक भारतवासी ईश्वर के निर्गुण स्वरुप को ब्रह्मतत्त्व, भगवततत्त्व, परमात्मतत्त्व आदि नामों से संबोधित करते हैं। तत्त्व का भाव है-यथार्थ या सार वस्तु। उसे देखना, समझना तथा विचार करना 'तत्त्वदर्शन' कहलाता है और जो इसे ठीक-ठाक देखता और समझता है वही तत्त्वदर्शी है। भगवत्तत्त्वदर्शन का सीधा अर्थ है-भगवान् के भाव को समझना और उसे देखना या विचार करना। यह सारी सृष्टि भगवान् की ही बनाई हुई है। संसार में हम जो भी कुछ देखते हैं वह समस्त रचना भगवान् की है और श्रीभगवान् उन पदार्थो को बनाकर उन सभी वस्तुओं में अंदर ही अंदर प्रविष्ट है। ईशोपनिषद् का प्रथम मंत्र कहता है कि-'अखिल ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी हम देखते हैं वे सभी वस्तुएँ भगवान् में व्याप्त हैं।'

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।

वेदेषु अद्वैत तत्त्वविमर्शः

तारादत्त अवस्थी ऋषि संस्कृत महाविद्यालयः खड़खड़ी हरिद्वारम् (उत्तराखण्डः)

भारतीय संस्कृतेः धर्मस्य च मूलं वेदाः।धर्मस्य स्वरुपं प्रतिपादपद्‌भिः सिद्धसारस्वतीकैर्मनीषीभिः वेदाः एव प्रमाणत्त्वेन अङ्गीकृताः यथा-

वेद प्रणिहितोधर्मो ह्य धर्मस्तद् विपर्ययः।
वेदो नारायणः साक्षात् स्वयम्भूरितिशुश्रुमः।।

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्मेतिश्रुतिवाक्यमविकलमेव। किन्नाम अद्वैतदर्शनम्-द्वयोभावोद्विता द्वितैव द्वैतम् न द्वैतमद्वैतम्। वेदेषु बहवीनाम् विद्यानाम् सन्निवेशोऽस्ति। उक्तं च भूतं भव्यं भविष्यञ्च सर्व वेदे प्रतिष्ठितम्। सम्प्रति यावत्यः समस्या विलसन्ति मानवानां पुरतः तासां सर्वासां समाधानाय वेद एव जागर्ति प्रभवति समर्थयते च। ज्ञानराशिर्वेदाः इति ववतुं शक्यते, अतः वेदः खलु अशेष परिज्ञानप्रदं शास्वतीकमपौरूषेयं शास्त्रम्। वेदादेव सर्वे लोकाः प्रवर्तन्ते ततएव जगतः समुत्पत्तिः तदुवतं भगवता भर्तृहरिणा-

यः कश्चिद् कस्यचिद् धर्मोमनुनापरिकीर्तितः।
स सर्वोऽभि हितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि सः।।

यत्र हि द्वैतं एव भवति तदितर इतरं पश्यति यत्र त्वस्य सर्व आत्मैव अभूत् यथा-निष्कलं निष्क्रियम् निरवक्ष्यं निरञ्जनम्।

वैदिक वाङ्मय में आत्मदर्शन

डॉ० तुलसी देवी रीडर-संस्कृत विभाग, महात्मा गाँधी बालिका पी.जी. कॉलेज, फिरोजाबाद (उ0प्र0)

जीवन भौतिक और आध्यात्मिक तत्वों का मिश्रण है। भौतिक सृष्टि का मूल 'प्रकृति' है और प्रकृति निर्मित शरीर को जीवन्त बनाने वाला 'आत्म-तत्व' है। 'सांख्य' ने सृष्टि के मूल तत्वों-प्रकृति और पुरुष के संयोग को पंगु-अन्धवत् संयोग माना है।

तात्पर्य यह है कि जिन दो मूल तत्वों से सृजन की प्रक्रिया पूर्ण होती है, उनमें से एक (भौतिक तत्व) जड़ है और दूसरा चेतन। जड़ में दर्शन की सामर्थ्य नहीं है। देखने वाला 'आत्मा' है, क्योंकि वह चेतन है। आत्मा के दर्शन का आत्मा से पृथक कोई साधन नहीं है। दृष्टा 'स्व' में उत्तर जाये। अपने स्वरूप में स्थित हो जाये। शरीर में रहने वाला अशरीरी आत्मा सूक्ष्म और गुह्यतम है। अतएव, वैदिक वाङ्मय में परोक्ष अर्थात् अन्तरात्मन् पुरूष को अनुभूति-गम्य बनाने के लिये आभ्यन्तरदृष्टि विकसित करने की प्रक्रिया स्वीकार की गयी है। इसके लिये ध्यानात्मक अभ्यास को अपरिहार्य माना गया है-

"युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे" यजुर्वेद-11.2

ऋग्वेद में प्रकृति के पर्याय

डॉ० अनुराग शुक्ल वरिष्ठप्रवक्ता एवम् अध्यक्ष, संस्कृतविभाग, म०मा०स्वा०महा०, कालाकाँकर, प्रतापगढ़ (उ0प्र0)

अनादि विभु तथा जगत्कार्य के प्रति उपादान कारणस्वरूप प्रकृति के लिए ऋग्वेद में अनेक पद प्रयुक्त हुए हैं। इनमें सर्वाधिक प्रसिद्धनपद **'माया'** है जो लगभग पचहत्तर बार विभिन्न विभक्तियों में प्रवृत्त हुआ है। निघण्टु में इसे प्रज्ञा के एकादश पर्यायों में स्थान प्राप्त है। **'स्वधा'** पद से प्रकृति का वाचन नासदीय सूक्त में विशेषरूप से हुआ है जहाँ उसे परमेश्वर से भिन्न, प्रकृतिरूप, कारणस्वरूप तथा भोग्या होने के कारण अपकृष्ट कहा गया है। अमर्त्यजीव इसी स्वधा से गृभीत होकर उत्कृष्टापकृष्ट गति करता है। **'अदिति'** सार्वभौमिक सर्वावृत्त प्रकृति का मूर्तरूप है इसीलिए वह **'अदीना देवमाता'** है। यह दृश्यादृश्य भोग्यरूप जगत् अदिति है जो जीवात्मा को व्यक्त करती है तथा उसी के लिए दुही जाती है।

प्रकृति का त्रिगुणात्मक रुप ऋग्वेद में **'त्रिधातु'** पद से अभिव्यक्त किया गया है। ये धातुत्रय स्वयं परमात्मा द्वारा सर्वत्र संस्थापित है अतएव **'त्रितेषु निगूढं'** है। अविभागापन्न तथा सद्रूप कारण में लीन प्रकृति के निमित्त नासदीयसूक्त में **'सलिल'**, **'तमस्'** तथा **'तुच्छ्य'** पदों का व्यवहार हुआ है-

तम आसीत्तमसा गूढमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्।
तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिनाजायतैकम्।।- ऋ० 10/129/3 ।।

ये तीनों ही पद प्रकृति की लयावस्था के बोधक हैं। सलिल **'सद्भावे लीनम्'** अर्थात् सद्रूप कारण में लीन प्रकृति है जो कि सूर्य-चन्द्रादि प्रकाश के भौतिक साधनों की अनुपस्थिति में 'तमस्' अर्थात् अन्धकाररूप है। यही प्रकृति अत्यन्त सूक्ष्म तथा सतत गतिशील होने के कारण 'तुच्छ्य' है। लयावस्था के अनन्तर सर्गावस्था में प्रकृति **'आभु'** पदवाच्य होती है। **'आ समन्ताद्भवतीत्याभुः'** निष्पत्ति के अनुसार यह पद कार्यभूत व्यक्त जगत् का वाचक है।

वेदों में प्राणायाम

कमल किशोर (एम.ए. विज्ञान) शोधच्छात्र देवसंस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वेदों में प्राणायाम का महत्व पूर्ण स्थान है इसकी उपयोगिता वैदिक संहिताओं तथा अन्य आध्यात्मिक शास्त्रों में प्रदर्शित की गई है। विधिपूर्वक किये गये प्राणायाम से दोषों का नाश होता है। संध्या उपासना में तीनों समय तीन बार अर्थात् कल नौ बार प्राणायाम करने की विधि है। मन प्राण वायु से उच्च है, क्योंकि वायु मन का अनुसरण करता है, परन्तु मन प्राण वायु का अनुसरण नहीं करता। काम क्रोध से उत्तेजित होने पर श्वास की गति तीव्र हो जाती है और मन शांत होने पर प्राण भी शांत हो जाता है। प्राणायाम की उपयोगिता दो प्रकार से वर्णित है। 1.शारीरिक विकास के लिए 2. आध्यात्मिक विकास के लिए और उसी प्रकार सृष्टि भी दो प्रकार की है 1.जड़ अर्थात् परमाणुमयी 2.चैतन्य अर्थात् प्राणमयी। अखिल विश्व में जिस प्रकार परमाणुओं के संयोग-वियोग से विविध प्रकार के दृश्य उपस्थित होते रहते हैं, उसी प्रकार चैतन्य प्राण-सत्ता की हलचलों से चैतन्य जगत की विविध घटनाएँ घटित होती है। जैसे वायु सर्वत्र विद्यमान है उसी प्रकार वायु से भी असंख्य गुना सूक्ष्य चैतन्य प्राण तत्व व्याप्त है इस प्राण तत्व को जो जितनी मात्रा में धारण कर लेता है उसकी आन्तरिक स्थिति उतनी ही बलवान हो जाती है। आत्म-तेज, शूरता, दृढ़ता, सहनशीलता, धैर्य सरीखे गुण प्राण शक्ति के परिचायक है। जिस प्रक्रिया द्वारा विश्वमयी प्राण तत्व को खींच कर धारण करते हैं उसे प्राणायाम कहा जाता है। जिस प्रकार जल की धारा को रोक कर विद्युत उत्पन्न करते हैं। उसी प्रकार श्वास प्रश्वास के माध्यम से प्राण शक्ति अर्जित करते हैं।

सांख्यदर्शन का वैदिक आधार

प्रो. ज्ञानप्रकाश शास्त्री श्रद्धानन्द वैदिक शोध संस्थान, गु.कां. वि.वि., हरिद्वार

आचार्य मनु का स्पष्ट मन्तव्य है कि वेद समस्त ज्ञान-विज्ञान का मूल है,[1] वह सर्वज्ञानमय है[2]। कहने का आशय यह है कि वेद में सम्पूर्ण ज्ञान-विज्ञान विद्यमान है। वेद भगवान् स्वयं कहते हैं कि जो भी सुविज्ञान है, वह लोगों को जानने के लिये है, सत् और असत परस्पर विरोधी हैं। इनमें से सत् अर्थात ऋजु अर्थात् जो सरल है, उसकी प्रभु रक्षा करते हैं, जबकि असत् का वह नाश करते हैं।[3] यहाँ सत् और असत् का प्रतिपादन किया गया है। वेद की दृष्टि में सत् वह है, जिसका कभी अभाव नहीं होता है। सांख्य में भी सत् वह है, जिसका रूपान्तरण भले ही हो जाए, परन्तु अभाव न हो, वह सत् है। इसी तथ्य को सांख्य में सत्कार्यवाद के नाम से अभिहित किया गया है।[4]

नासदीयसूक्ते विद्यमाना दार्शनकता

वाला भीमसीभाई एच. सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, राजकोट

वेदात् प्रादुर्भूतायां संस्भारतीयसंस्कृतौ सर्वेषां विषयानां निरूपणं लक्ष्यतेऽस्माभिः। भारतीयसंस्कृतेः मूलाधारभूतेषु वेदेषु कर्मकाण्ड-यज्ञयागदयश्च तत्त्वचितनं परिदृश्येतेऽस्माभिः। वेदेषु प्रायशः स्तुतिय कर्मकाण्डविषयकानि सूक्तानि सन्ति। तदुपरान्तमपि तत्त्वचिंतनयुक्तानि सूक्तानि सन्ति। तदुपरान्तमपि तत्त्वचिंतनयुक्तानि सूक्तानि ऋग्वेदऽपि वयं लक्ष्यामेह। कालक्रमानुसारं पश्यामश्चेदृग्वेदे दसमण्डलानि सन्ति। तेषु प्रथमं दशमं चार्वाचीनं मन्येते भारतीय संस्कृतौ भृशं यज्ञयागादीनां महत्त्वे वर्धितऽस्माकमृषिमुनयः आत्मचिंतनेनन तादृशं तत्त्वं मृगयितुं प्रारब्धवन्तः यद् निखिलमिदं ब्रह्माण्डं प्रचालयति। अस्यैव विषयस्य निरूपणं वयं दार्शनिकशब्देन जानीमः। सूक्तान्यिमानि दार्शनिकानि ऋग्वेदे दशममण्डले वर्तन्ते। यत्र पुरूषसूक्तम् (10-40) हिरण्यगर्भसूक्तम् (10/21) नासदीयसूक्तम् (10-129) अस्यवामीयसूक्तम् (1-164) इत्यादिषु सूक्तेषु तत्त्वचिंतनविचाराः प्रगटीकृताः। सूक्तेषु अमीषु सृष्टरामम्भे किमासीत्? सद् वा असद्। सृष्टिः कथं समुत्पन्ना? अद्वैतवर्णनम्-एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति (1, 164, 46) सर्वे विचाराः वयमवगच्छामः।

कठोपनिषद् में परा विद्या के गूढ़ तत्व

डॉ. रोशनी संस्कृत विभाग, रा.ना.महा0 जयहरीखाल, पौड़ी गढ़वाल (उत्तराखण्ड)

भारतीय संस्कृति के प्रणभूत उपनिषदों में संगोपांग रूप से परा-विद्या अर्थात् ब्रह्म ज्ञान के गूढ़ तत्व निहित है धर्मर्थकाममोक्ष पुरूषार्थ चतुष्ट्य में मोक्ष की प्राप्ति ही भारतीय जीवन की प्रबल भावना रही है, और मोक्ष कोई देहसमाप्ति की प्रक्रिया नहीं है अपितु ब्रह्मपद में विलीन हो जाना ही मोक्ष है। यह गूढ़ रहस्य यद्यपि समस्त उपनिषदों में पूर्ण या आंशिक रूप से समाहित है किन्तु कठोपनिषद् में पूर्ण रूप से सरल सहज भाषा में संवलित है। प्रेय मार्ग से श्रेय मार्ग की श्रेष्ठता प्रतिपादित करके आध्यात्मिक ज्ञान एवं ब्रह्मज्ञान की ओर मानव को प्रोत्साहित करना ही कठोपनिषद् का विषय है सांसारिक भोग विषयों की नश्वरता दिखाकर आत्मज्ञान के साधनों से मृत्यु के पार अमरता को प्राप्त करने का एकमात्र साधन भी श्रेय मार्ग का अनुसरण ही है। किन्तु श्रेय मार्ग पर चलना चाकू की धार पर चलना है अतः अविद्या के नाश के उपरान्त ही मानव के लिए यह सम्भव है। उपनिषद् का अभ्युदय इस समय हुआ जब भारत-भूमि पर वैदिक संहिता और ब्राह्मण ग्रन्थों का वर्चस्व था, मनुष्य यज्ञादि के द्वारा स्वर्गिक सुखों को प्राप्त करने की स्पृहा करता था ये सुख लौकिक सुखों की अपेक्षा दीर्घकालिक तो होते थे, किन्तु थे नश्वर ही। यही भावना चिन्तन के मार्ग से उपनिषद में परिस्फुटित हुई। चिन्तन से ही यह गूढ़ रहस्य सामने आया कि जन्म-मरण का एक मात्र कारण अविद्या है इसी अविद्या के कारण मनुष्य श्रेय मार्ग की उपेक्षा करके मृत्यु सागर में ले जाने वाले मोह के मार्ग को प्राप्त कर लेता है अतः परा विद्या से ही अविद्या को नष्ट कर इन्द्रियों पर विजय पाकर मानव ब्रह्मतत्व को प्राप्त कर सकता है। ध्यातव्य है कि सम्पूर्ण विषय का गुम्फन मरण ध र्म के अमरत्व की ओर है, ब्रह्मप्राप्ति की ओर है।

यदा सर्वे प्रभिद्यन्ते हृदयस्येह ग्रन्थयः। अथ मर्त्योऽमृतोभवति अत्र ब्रह्मसमश्नुते।।

वैदिक साधना पद्धति-समग्र योग

डॉ० ईश्वर भारद्वाज प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, मानवचेतना एवं योगविज्ञान विभाग, गु. कां. वि. वि., हरिद्वार

वेद समस्त ज्ञान विज्ञान का स्रोत है। विभिन्न अनुसंधानों द्वारा वेद की उपादेयता लोक व परलोक दोनों के लिए सिद्ध हो चुकी है। वेद ही हमें परमपुरुषार्थ मोक्ष, कैवल्य, मुक्ति, अपवर्ग प्राप्त कराने के लिए श्रेज्ठ साधनापथ को आलोकित करता है। वैदिक ऋज़ियों ने निर्विवाद रुप से जिस पथ की ओर इंगित किया है, वही एक मार्ग है-योग। इसके अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं है-'नान्य: पन्था: विद्यतेऽयनाय' (यजुर्वेद-3.118)। वेद में योग के विभिन्न प्रकारों-ज्ञान, भक्ति, कर्म का समन्वित रुप ही मुख्य साधना मार्ग कहा गया है। यजुर्वेद (40/14) कहता है-'विद्ययाऽमश्तमष्नुते'। केनोपनिजद् भी कहती है-'विद्ययाविन्दतेऽमष्टतम्' (2/4)। ज्ञान की श्रेज़ठता के साथ-साथ भक्ति की अपरिहार्यता भी चाहिए। जब साधक प्रभुभक्ति में स्वयं को भूल पाता है तब वह भोग-भोगकर भी परमधाम को प्राप्त कर लेता है (अथर्व 4/33/1-4 तथा 19/71/1) यह भक्ति ज्ञान के बिना प्राप्त नहीं होती। दोनों ज्ञान व भक्ति बिना कर्म के अधूरे हैं। कर्म योग की साधना में यज्ञादि अनुष्ठान का वर्णन यजुर्वेद में विस्तार से प्राप्त होता है (अध्याय 21)। वेद में अभ्युदय तथा नि:श्रेयस दोनों के लिए यज्ञ की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है किन्तु कर्मयोग की साधना अनासक्ति पूर्वक कर्म करने पर ही सिद्ध होती है। अनासक्त कर्म ही चतुर्थ कोटि के कर्म (अष्ठुक्लाकृज़्ण) हैं जो कर्ता को फल नहीं देते। तभी संस्कारों का क्षय होने पर मोक्ष की स्थिति प्राप्त होती है। उक्त तीनों का समन्वित रुप (ज्ञान-कर्म-उपासना समुच्चय) ही महर्ज़ि दयानन्द की साधना पद्धति रही है। तत्त्वज्ञान होने पर संसार में विरक्ति तथा ईश्वर में आसक्ति होती है जिसके लिए वह कर्म (अज़्टांग योग, क्रियायोग साधना, अभ्यास वैराग्य साधना अपना ईष्ठवर प्रतिधान रूप समर्पण भाव) को अपनाकर निजलक्ष्य की प्राप्ति में संलग्न होता है। ईष्ठवर में अटूट विश्वास उसके मार्ग का संबल बनता है तथा यह अंतिम लक्ष्य मोक्ष को सहज ही प्राप्त कर लेता है। अत: वैदिक साधना समग्र योग की साधना ही है जिसके द्वारा साधक का कल्याण अवष्ठयम्भावी है। इस पत्र के माध्यम से वैदिक साधना पद्धति के इस समन्वित रुप पर प्रकाष्ठा डाला गया है।

वेदों में योगविद्या का वर्णन

प्रमोदकुमार गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर हरिद्वार (उत्तराखण्ड)

योग ष्टाब्द संस्कृत की युज्समाधौ धातु से बना है, जिसका अर्थ समाधि और मिलाना है। जिसमें मन को भलीभांति समाहित किया जाए उसे समाधि और आत्मा परमात्मा के मेल को योग कहते हैं। कार्यो को निज़्काम भाव से फल की इच्छा न रखकर कर्त्तव्यभाव से करना ही योग हैं।

भारतीय दर्ष्ठन में योगविद्या का विष्ठोज़ महत्व है। इस विद्या का चिन्तन तथा अध्ययन हमारे प्राचीन ऋज़ि-मुनियों ने किया था। उतना ष्टायद ही किसी अन्य देष्ठा के विद्वानों ने किया होगा। सच तो यह है कि योगविद्या हमारी अपनी सम्पत्ति है। योग क महत्व को समझना इस ष्टारीर तथा बाह्य जगत् में उसके सच्चे कार्य तथा व्यापक प्रभाव को परखना है।

क्योंकि हमारी वैदिक संहिताओं में विष्ठोज़त: ऋक्, यजु, साम, अथर्ववेद में योगविद्या उल्लेख सबसे पहले किया गया है। ऋग्वेद में योग का वर्णन करते हुए कहा है।

यस्मादष्टते न सिध्यति यज्ञो विपष्ठिचतष्ठचन।
स धीनां योग मिन्वति। ऋ.1 म.26 सू.7 म

अर्थात् योग बिना विद्वान का भी कोई यज्ञ कर्म सिद्ध नहीं होता वह योग क्या है जो चित्तवष्टत्तियों का निरोध है वह कर्तव्य कर्ममात्र में व्याप्त है। सच्चे हृदय से विनीत प्रार्थी भक्त के ऊपर ही ईष्ठवर अनुकम्पा करते हैं, अत: निर्विघ्न चतुर्विध योग सिद्धि के निमित्त ईष्ठवर की प्रार्थना का वह मन्त्र जिसके द्वारा साधक भगवान को अपनी ओर आकृज़्ट कर सके।

सृष्टि रचना तथा पद्धति

डॉ० हरिहर प्रसाद, गोरखपुर

इस शोध अध्ययन में सृष्टि का जन्म, स्थिति, प्रलय और परमात्मा, जीव, प्रकृति के स्वरुप तथा आज के वैज्ञानिक दृष्टिकोण से उनकी तुलना किया गया है। सृष्टि में तीन कारण, परमात्मा, आत्मा और प्रकृति स्वयभू: है। परमात्मा का स्वरूप सूक्ष्म और अनन्त दोनों है; आत्मा का स्वरूप सूक्ष्म है; प्रकृति का स्वरूप प्रलय काल में सूक्ष्म और स्थिति काल अर्थात् सृष्टि में स्थूल रूप है।

शरीर में जब तक आत्मा रहती है, पिण्ड में व्यवस्थित हलचल चलती रहती है। आत्मा जब ़रीर से निकल जाती है तब शरीर शान्त हो जाता है। इसी प्रकार सृष्टि के कण-कण में चेतन शक्ति परमात्मा विराजमान है जिससे सृष्टि के सभी हलचल व्यवस्थित ढंग से चल रहे हैं। अगर आत्मा को समझ लेते हैं तो परमात्मा का भी ज्ञान हो जाता है और प्रकृति के सूक्ष्म रूप का भी ज्ञान हो जाता है। प्रलय काल में सृष्टि प्रलय में विलीन रहती है। उस समय अन्धकार में आवृत, रात्रि रूप में जानने अयोग्य परमात्मा के सम्मुख आच्छादित रहती है। जब परमात्मा को कारण रूप में सृष्टि की उत्पत्ति के लिए कामना होती है तब वह तप करता है और 'मिथुन' अर्थात् एक जोड़े को जिसका नाम रयि और प्राण है को उत्पन्न करता है। फिर इस द्वितत्व से नानात्व होता है और सृष्टि के उत्पन्न होने की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। आज का विज्ञान भी 'मिथुन', द्वियत्व सिद्धान्त को हर रचना में स्वीकार करता है। सृष्टि में एक धनात्मक ़क्ति और दूसरा ऋणात्म शक्ति है। इलेक्ट्रान, प्रोट्रान को रयि तथा प्राण कह सकते हैं। इलेक्ट्रान और प्रोट्रान से न्यूट्रान, अणु और फिर विभिन्न प्रकार के अणु संयोग करके वस्तु बनाते हैं। यहां द्वित्व से नानात्व होता है। सृष्टि में बहुत्व है। सृष्टि रचना के बारे में वैज्ञानिक दृष्टिकोण इस प्रकार है-प्रकृति को इकट्ठा करके ़क्ति से दबाकर लगभग शून्य आयतन में समेट लिया जाता है। इस प्रकार असीम धनत्व और असीम तापमान उत्पन्न होता है फिर प्रकृति में महाविस्फोट होता है। तत्पश्चात् ताप तेजी से गिरता है। प्रोट्रान, न्यूट्रान आगे चलकर न्यूकिलिआई बनते हैं। करीब 5 लाख वर्ष पश्चात् इलेक्ट्रान और न्यूकिलिआई मिलकर परमाणु अणु बनते हैं और पदार्थ बनने लगते हैं। परन्तु महाविस्फोट सम्बन्धित अनेक प्रश्न अनुत्तरित है; अनुसंधान चल रहा है। महाविस्फोट के समय असीम ताप और असीम ऊर्जा की जगह वेद परमात्मा के तप की बात करता है। ऋग्वेद का मंत्र-ऋतंच सत्यञ्चा-भीद्धान्तपसोऽध्यजायत् अर्थात् परमात्मा अनन्त ज्ञानमय सामर्थ्य से तप द्वारा अनन्त ऊर्जा पैदा करता है। तब प्रकृति में एक व्यवस्थित हलचल होने लगता है। परमात्मा ऋत और सत्य अर्थात् द्वित्व के प्रयोग से बहुत्व बनाता है और अव्यक्त प्रकृति व्यक्त की ओर प्रवृत्ति होती है। सृष्टि रचना के लिए विज्ञान और वेद दोनों प्रकृति में अग्नि तत्व और अनन्त ऊर्जा की बात करते हैं। रयि और प्राण, द्वित्व के सिद्धान्त को भी मानते हैं। विज्ञान ब्लैक-होल के रुप में प्रलय की अंधकार रात्रि में विश्वास करता है। उस समय सूर्य, चन्द्र और तारे सिकुड़ कर गुरूत्वीय बल के कारण ब्लैक-होल में सिमट जाते हैं। सृष्टि प्रकृति रुप में आ जाती है। वैदिक अनुसंधान परमात्मा, आत्मा, प्रकृति और सृष्टि की खोज में बहुत आगे है। आज के वैज्ञानिक को अभी बहुत कुछ करना शेष है।

वैदिक साहित्ये त्रैतवादविवेचनम् (महर्षि दयानन्द परिप्रेक्ष्ये)

सालिकरामः विद्यालंकार शोधछात्र, संस्कृत विभाग गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार (उत्तराखण्ड)

वैदिकवाङ्मये उपनिषत्साहित्यस्यातिविशिष्टं स्थानं स्वीक्रीयते। वेदाः हि उपनिषदाम् उद्भावकाः ब्रह्मविद्यायाः सरलसुबोधभावेन प्रकटिकरणमेवोपनिषदां प्रतिपाद्यदम्। वस्तुतः आख्यानैः उपनिषदामुपदेशाः ब्रह्मविद्या जिज्ञासवे सुग्राह्यः भवन्ति। यद्यपि जगति 108 उपनिषेदामवधारण विद्यते परन्तु आसु केवलमेका दशोपनिषदः एव प्राधान्येन स्वीक्रीयते विद्वद्‌भिः। आसु सर्वासु उपनिषत्सु ब्रह्मजीवप्रकृतिनां विवेचनं विस्तारेण विहीतम्। यथा निम्नलिखिते मन्त्रे ईश्वरजीवप्रकृतिपां त्रयाणामपि सत्ता सुस्पष्टतया वर्ण्यते-

द्वा सुपर्णा सयुजा सखायौ समानं वृक्षं परिषस्व जाते। तयोरन्यः पिप्पलं स्वादवत्यनश्नन्नश्न्योऽभिचकशीति।।

रूपकालंकारेण प्रतिपादितमिदं त्रैतवादतत्वं उपनिषत्सु यत्र तत्र सर्वत्र समुपलभ्यते। उपनिषदां ज्ञानेन तदाचरणेन तदाचरणेन च जिज्ञासु मोक्षं भजते। अध्यात्मस्य यादृक् विवेचनम् उपनिषत्सु न तादृगन्यत्र क्वचित् दरीदृश्यते।

वैदिक सांख्यदर्शन के विविध आयाम

वेदनिधि प्रवक्ता विवेकानन्द महाविद्यालय दिल्ली विश्वविद्यालय

भारतीय दर्शनों में सांख्य दर्शन का महत्व अद्वितीय है। न केवल अपनी अत्यन्त प्राचीनता के कारण न केवल भारतीय वाङ्मय और विचारधारा पर अपने विस्तृत और अमिट प्रभाव के कारण अपितु वास्तविक अर्थों में किसी भी दार्शनिक प्रस्थान के लिए आवश्यक गहरी आध्यात्मिक दृष्टिकोण के कारण भी इसका महत्व स्पष्ट है। दुःख निवृत्ति के उपाय पर चिन्तन के रुप में सांख्य की ृाश्वत उपादेयता एवं ग्राह्यता अक्षुण्य है।

वेदों एवं उपनिषदों में स्पष्ट रुप से सांख्य की विचारधारा दृष्टिगत होती है। वैदिक विचारधारा में जो सृष्टि प्रक्रिया स्वीकार की गई है, वह सांख्य से अनुप्राणित है। प्रस्तुत ृोध प्रबन्ध निम्न बिन्दुओं पर विचार किया गया है। (1) प्रकृति (2) पुरुष (3) सृष्टि की उत्पत्ति के लिए इन दोनों का संयोग (4) सृष्टि प्रक्रिया : प्रकृति - महत् -अहंकार -पंचतन्मात्र - दस इन्द्रियाँ एवं मन पंच महाभूत (5) सूक्ष्मशरीर : विविधमत। (6) प्रत्यय सर्ग एवं तन्मात्र सर्ग दोनों की आवश्यकता। (7) त्रिविध दुःख एवं उसके निवृत्ति के उपाय एवं मार्ग (8) मुक्ति : जीवन्मुक्ति एवं विदेहमुक्ति।

वैदिकसाहित्ये योगविद्या

डॉ0 शशिकान्त द्विवेदी प्रवक्ता वैदिकदर्शन विभाग, संस्कृतविभाग धर्मविज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-5

किं वैदिकसाहित्ये योगविद्या वर्तते वेति जिज्ञासामाश्रित्य मनसि यत् कोलाहलं जायते तस्य प्रशमनाय पत्रमाध्यमेन यच्चिन्तनं मया विहितं तदेव मतिदेशकालावच्छेदेनात्र निरूप्यते। सम्प्रति आंग्लभाषाभाषिणां प्रभावात् योगशब्दः (Yoga) इति आंग्लभाषायाः पदे रूढो दृश्यते, तथा च अर्थस्तु अष्टांगयोगे एकांगत्वस्यासनस्यैव निरूपणं वा कदाचितदासनेन सह प्राणायामस्य निरूपणं इति जानन्ति आधुनिकाः। परन्तु वेदविहितयोगविद्यायां तु योगपदश्रवणसमनन्तरमेव तस्यार्थबोधस्तु समाधिरिति भवति। यथा पतंजलिकृतसूत्रस्य भाष्यकारः व्यासः, अथ योगानुशासनम् इति प्रथमसूत्रस्य भाष्यावसरे प्रतिपादयति-योगः, समाधिः स च सार्वभौमश्चित्तस्य धर्मः।

सम्प्रति विचार्यतेऽयं योगो वेदमूलको न वेति। सर्वं वेदात्प्रसिध्यतीत्युक्तिमाश्रित्य सर्वशब्दग्राह्यान्तर्गतो योगोऽपि वेदमूलक एवेति सर्वेषां वेदप्रमाणिकानां सिद्धान्तः। वैदिकानामाग्रहस्तु वेदस्सर्वविद्यामूलमिति, परन्तु न हि वेदे वेदेषु वा सर्वविषयाणां कार्त्स्न्येन विवेचनमित्यप्यवधेयमेव।

पत्रेऽस्मिन् संक्षेपेण **"वेदप्रतिपादितयोगविद्यायाः स्वरूपं, योगस्य कानि कानि तत्त्वानि वैदिकसाहित्यात् प्राप्तानि कानि ऋषिभिः स्वयमेव ऊहितानि, कानि तत्त्वानि किंचित् विपरिवर्त्य पश्चाद ऋषिभिः स्वग्रन्थे निबद्धानि,"** इत्याद्यनेकस्थलानां विवेचनं मया विहितम्।

कर्त्तव्य आत्मसंस्कारो यमेन नियमेन च

डॉ. कमलेशमिश्रः उपाचार्यः स्ना.न्यायदर्शनविभागस्य, श्रीजगन्नाथसंस्कृतविश्वविद्यालये, श्रीविहारे पुरीस्थे

संसाराङ्गारेषु विपच्यमानानां सर्वस्य द्रष्टृणां सर्वस्य भोक्तृणां सर्वज्ञानां सर्वानुभाविनां जीवात्मनां सकलावरणविगमात्मनिःश्रेयसाधिगमायात्मसंस्कारो योगनियमाभ्यां योगशास्त्रज्ञातव्याध्यात्मविध्युपायैश्च कर्त्तव्य इति महर्षेरक्षपादस्याशयः। न्यायसूत्रभाष्यकारेणाधर्महानस्य धर्मोपचयस्य चात्मसंस्कारत्वं, चतुराश्रमिणां समानधर्मसाधनस्य यमत्वं विशिष्टधर्मसाधनस्य च नियमत्वं प्रत्ययादि। सर्वाश्रमिणां निषिद्धकर्मानाचरणस्य साधारणधर्मत्वेन शास्त्रेषूपदेशान्निवृत्तिपरकयमस्य योगाङ्गेष्वन्यतमस्यात्मसंस्कारमूलस्य प्रतिपत्तिर्निरुपद्रवा।

वृत्तिकारविश्वनाथेन यमपदेन यमपञ्चकस्य नियमपदेन च नियमपञ्चकस्य योगदर्शनोक्तस्य गृहीतत्वाद् वेदप्रामाण्यरक्षाव्रतेऽक्षपादप्रणीते न्यायदर्शनेऽपि योगप्रभावातिशयोऽचिन्त्यः। योगाभ्यासजनितो धर्मो जन्मान्तरेऽप्यनुवर्त्तते। न च योगशास्त्रविधिना आत्मसंस्काराप्तौ न्यायशास्त्र निष्प्रयोजनतेति वाच्यम्, 'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्य' इत्यादिश्रुतेः।

योगाङ्गयमनियमाभ्यां मुमुक्षूणामपवर्गप्राप्तौ योग्यता जायत इति चिकीर्षितप्रबन्धात्मेति।

मीमांसाशास्त्रे वर्णित-विनियोगविधेः षट्प्रमाणानां स्वरूप-विमर्शः

डॉ. नारायणप्रसादभट्टराई ऋषिकेश

अङ्गस्य तथा सम्बन्धस्य ज्ञापकविधिः विनियोगविधिः। यथा 'दध्ना जुहोति' अत्र दधिद्वारा होमं कुर्यात् - इदं वाक्यं तृतीया विभक्त्या सूच्यमानस्य अङ्गभावतः दध्नः होमसम्बन्धस्य विधानं करोति। अतः दध्ना होमं भावयेदिति वाक्यस्य अर्थो भवति।

गुणविधौ धातोरर्थः साध्यरूपेण अन्वितो भवति। यत्र-तत्र आश्रयरूपेणापि ग्रहणं भवति यथा 'दध्ना इन्द्रियकामस्य जुहुयात्' सदृशे वाक्ये, यत्र अर्थो भविष्यति दधिरूपकरणेन इन्द्रियं भावयेत्। इदं स्वाभाविकम् अस्ति यतः विनियोगः विधेः कार्यमेव यागस्य अङ्मानाम् अवबोधार्थ भवति। अङ्गानि अङ्गिन एवं साधकानि भवन्ति, अतः अङ्गी तदर्थञ्च उपयोगिनि वस्तूनि साधनानि सन्ति।

विनियोगविधौ अङ्गस्य साध्यस्य प्राप्तिः केनाप्यन्येन वाक्येन अपेक्षिता न अस्ति, अपितु धातोरर्थ एव साध्यस्य कार्य करोति। अत्र कर्मणः अथवा साध्यस्यार्थः व्याकरणसम्मतं नास्ति, अत्र कर्म यागस्य वाचकम्, यद्वस्तुतः 'यज्' अथवा 'हु' धातोरर्थः भवति, यथा 'दध्ना जुहाति' अत्र तृतीयाविभक्त्यन्तं दधि अङ्गमस्ति। जुहोति इत्यत्र 'हु' धातुः तथा तिप्प्रत्यय वर्तमानौस्तः। हु इत्यस्यार्थः होमः भवति। स एव शोधपत्रे मीमांसाशास्त्रे वर्णितविनियोगविधौ सहायकानि षट्प्रमाणनि प्रस्तुताः सन्ति। ते च सन्ति श्रुति-लिङ्-वाक्य-प्रकरण-स्थान-समाख्यारूपाणि। एतत्सहकृतेन अनेन विधिनाङ्गत्वं परोद्देशप्रवृत्तकृतिसाध्यत्वरूपं पारार्थ्यापरपर्यायं ज्ञाप्यते। निरपेक्षो रवः श्रुति। सा च त्रिविधा- विधात्री, अभिधात्री, विनियोक्त्री च। तत्राऽद्यालिङ्गाद्यात्मिकका। द्वितीया व्रीह्यादिश्रुतिः। यस्य च शब्दश्रवणादेव सम्बन्धः प्रतीयते सा विनियोक्त्री। (अर्थसंग्रहः)

वेदेषु मनोविज्ञानम्

डॉ. योगिनी हिमांशु व्यासः गांधीनगरम् गुजरातः

विश्वहितसंपादकाः शुभाशुभनिदर्शकाः ज्ञानालोकप्रसारकाः वेदाः विविधज्ञानविज्ञानराशयः सन्ति। सम्प्रति जगति वैज्ञानिकाः विषयाः दृश्यन्ते, तेषां सर्वेषां चर्चा वेदेषु दरीदृश्यते। वेदेषु वैदिकसाहित्येषु च भौतिक-रसायन-वनस्पति-शिल्प-कृषि-गणित-पर्यावरण-भूगर्भादीनां वैज्ञानिकविषयाणां वर्णनं विवेचनं वा बहुषु स्थलेषु दृश्यते। पवित्रतमोऽयं भारतदेशः कर्मभूमिरिति चिरात्परिगण्यते। देशसमाजान्तर्गतैरनुष्ठीयमानं कर्मैव कारणम्। कायेन मनसा वाचा चोच्चावचनानि कर्माणि मानवैः क्रियन्ते। तानि दुष्कृतान्यपि भवेयुस्सुकृतान्यपि। 'मनोविज्ञानम्' तु वास्तविकरूपेण मनसि जायमानानां विचाराणां विज्ञानमस्ति। शुक्ल यजुर्वेदस्य सुप्रसिद्धे सूक्ते 'तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु' इति मन्त्र द्वारा मनसः शिवसंकल्पस्य भावना प्रदर्शिता।

अष्टाङ्गयोगस्य स्वरूपप्रयोजनविवेचनम्

डॉ. सुखमयभट्टाचार्यः योगविज्ञानमहाविद्यालयः, शिलचरः

युगान्ते अन्तर्हितान् वेदान् महर्षयस्तपसा लेभिरे। एतेन गम्यते एव युगान्तान्तर्हितवेदतत्त्वसमुद्धारे योगदर्शनोपदिष्टा तपस्यैव कारणम्। चतुष्पदाः गौः क्षीरं क्षरति। चतुष्पदा योगभारती ब्रह्मानन्दं राति। प्रतिमानिर्माणात्प्राक् तदाधारनिर्माणं भवति। परम्परया स्वाभीप्सितसकलयोगसिद्धये साक्षाद् ब्रह्मस्वरूपतावाप्तये च योगदर्शनमनन्यशरणम्। अङ्गादिव्यज्यमानासु प्रतिमासु अनायासध्यानगम्यता यथा स्यात् तथाङ्गोपेतं योगतत्त्वं विवेचनाविधौ भवत्येव सुगमम्। यमनियमासानप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानीति सूत्रयित्वा पतञ्जलिपादेनालोचनसौकर्य्यार्थं वैज्ञानिकी आदर्शपद्धतिरेका व्यवस्थापिता। वस्तुतः सूत्रेणानेन ब्रह्मधामान्तं देवयानं विनिर्मितम्। यमादिप्रत्याहारान्तं पञ्चकं वाह्यसाधनम्। धारणादिसमाध्यन्तमाभ्यन्तरसाधनम्। यमनिमाभ्यामधिकारितोपदिष्टा। यमो मानवता- आदर्शसामाजिकचरितम्। मनुप्रोक्तं संक्षिप्तमानवतालक्षणं प्रायेण पतञ्जलिप्रोक्तं यमलक्षणम्। व्यष्टिसमाजयोरादर्शो व्यतिकरोऽत्रोपदिष्टः। हठयोगप्रदीपिकादौ यमस्य दश लक्षणानि प्रदत्तानि। मनुना च मानवतालक्षणे अहिंसा सम्यम् अस्तेयमिति यमस्य लक्षणत्रयं स्वीकृतम्। ब्रह्मचर्य्यापरिग्रहस्थले तु तेन शौचमिन्द्रियनिग्रह इत्युक्तम्। मन्ये सामाजिकचरितनिर्माणे यमस्य पञ्चलक्षणमेव सम्यक्। नियमो निजव्यवहारपरिशीलनम्। यमसिद्धये

नियमानुशीलमावश्यकम्। हठयोगप्रदीपिकादौ नियमस्यापि दश लक्षणानि प्रदत्तानि। अत्रापि आत्मस्वभावनिर्माणे पतञ्जलिप्रोक्तं नियमलक्षणं लक्षणानुगतं दोषवर्जितञ्च प्रतिभाति।

केन योगोऽभ्यसनीयः? यस्यास्ति यमनियमानुसृतिः। एतन्नियमाकरणे महिषासुररावणादीनां पुनराविर्भावे संशयः कुतः। जगत्परिवारणमभिप्रेतञ्चेतद् ब्रह्माभ्यागमनञ्च मुख्यं लक्ष्यं चेत्तदा योगिभिः सदा यमनियमावभ्यसनीयौ। सद्गुणाकरो जनः समाजोपकृतये भवति। सन्मार्गनियन्त्रितः सुकृतपरायणो धर्मशीलः स्वभावगुणेनैव विनयी भवति। 'अधार्मिकास्तु पाषण्डाः।' षडङ्गयोगे यमनियमयोरनुल्लेखेऽपि योगाधिकारिता सयत्नं निश्चेतव्या। आसनम् अवस्थानम् सुखावस्थानम्। स्वस्थे शरीरे एवैतत् सम्भवति। अनेकाङ्गोपेतस्य शरीरस्य स्वाभाविकक्रियाकारित्वसिद्धये क्रियाशीलानां तद्गतयन्त्राणां स्वस्थानेष्ववस्थानमावश्यकम्। कस्य कस्मिन् स्थाने अवस्थितिस्तदवगतये व्यवच्छेदविद्यायास्तथा शरीरतत्त्वस्य ज्ञानमावश्यकम्। कन्दमूलस्य स्वल्पापि स्थानविमुच्यतिः सर्वप्रकारां शरीरक्रियां व्याहन्ति। मेरुदण्डस्यास्य स्थितिरपि परीक्षणीया। षट्कर्मणा शरीरशाधनञ्च कार्य्यम्। विष्णुना पृथिवी धृता। पृथिव्या लोका धृताः। शरीरञ्च मेरुदण्डेन तथा कन्दमूलेन धृतम्। स्वेषु स्वेषु स्थानेषु एव सर्वेष्ववयवेषु स्थितेषु आसनक्रिया- माध्याकर्षणक्रिया सुसम्पन्नाः भवति। सुस्थिते एव शरीरे दार्ढ्याय आसनाभ्यसनम्। आसनेन सह मुद्रा चाभ्यसनीया। ततः प्राणायामः। घेरण्डसंहितायामादौ प्रत्याहारप्रसङ्गोऽवतारितः। प्रत्याहारेण धैर्य्यं प्राणायामेन लाघवमिति कथितम्। अपि तु दृश्यते शरीरस्य लघुत्वसिद्धौ मनसश्च स्थैरर्य्ये विषयवैराग्यं सुखसाध्यं भवति। शरीरस्य तु स्थैर्य्यं मुद्रया भवति। चित्तस्थैर्य्यं तथा शरीरस्य लघुत्वं प्राणायामसाध्यम्। अतः प्राणायामस्यादौ प्रत्याहारस्य च पश्चात्परिगणनं युक्तं भवति। प्राणायामः परं तपः। 'चले वाते चलं चित्तं निश्चले निश्चलं भवेत्।' निष्कुम्भकस्वल्पकुम्भक-समकुम्भव-अधिकुम्भकभेदेन यद्यपि प्राणायामस्य चतुर्धा स्थितिः तथापि राजयोगे श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदस्वरूपः अधिककुम्भकगर्भितः प्राणायामोऽभ्युपेतः। आयुष्कामेण राजयोगप्राणायामोऽभ्यस्यते। कुम्भकरहिते प्रमाणाधिकश्वासक्षये आयुर्नश्यति। प्रत्याहारः इन्द्रियाणां विषयभोगविरतिः। बाह्यविषयतः चित्ते अवगते विषयवैराग्यं सम्पद्यते। आभ्यन्तरयोगे प्रवेशनात् प्राक् प्रत्याहारसिद्धिरावश्यकी। ततः ध्येयचिन्तनरूपचेष्टारूपा धारणा करणीया। धारणा चित्तस्थितिकरणप्रयासः। द्वादशप्राणायामाकालं यावन्मनो ध्येयलग्नं भवति तदा एका धारणा भवति। ध्यानं ध्येये अवस्थानम्। तच्च द्वादशधारणाकालं यावच्चेत् तदा ध्यानपदवाच्यं भवेत्। ततः त्रिपुटीशून्यः समाधिर्भवति। असम्प्रज्ञातसमाधौ ध्येयमात्रं शिष्यते। जीवात्मनः परमात्मरूपेणपरिणमनमेव समाधिफलम्। हेय-हेयहेतु-हान-हानोपायरूपव्यूहचतुष्टयमाधारीकृत्य योगशास्त्रे एकान्ततोऽत्यन्ततश्च दुःखोच्छेदसाधनं क्रियते अहं ब्रह्मास्मीति अपरोक्षसाक्षात्कारश्चास्वाद्यते। अष्टाङ्गयोगमधिकृत्य शोधपत्रे आलोचनं विधास्यते।

वेदेषु प्राणतत्त्वम्-प्राणस्य स्वरूपं महिमा च

डॉ. जयदत्त उप्रेती अल्मोड़ा

प्रोपसर्गपूर्वकाद् अन प्राणने इत्यस्माद्धातोः कर्तरि अचप्रत्यये णत्वे च कृते प्राणशब्दो निष्पद्यते। 'प्रकर्षेण अनिति स्वयं चेष्टत इति प्राणः' इति सायणाचार्यः, ऐतरेयारण्यकभाष्ये निगदति। सामान्यतः प्राणो वायुरिति लोके प्रसिद्धिः। प्राणिनां श्वासोच्छ्वासाभ्यां प्रतीयमानो वा पदार्थः प्राणः। जीव प्राणधारणे, जीवति प्राणान् धारयति, इति कथनेनापि जीवितस्य प्राणिनो मुख्यं लक्षणं चिह्नं वा तदीयप्राणो भवतीति विदितमेव समेषां जनानाम्। परं तेषां प्राणस्य तात्त्विकं स्वरूपं तस्य भेदप्रभेदा वा अविदिता एव भवन्ति। अतोऽस्य विषयस्य सविस्तरं विवेचनं वेदादिशास्त्राधारेण विश्ववेदसम्मेलने शोधपत्रप्रवाचनावसरे करिष्यते। साम्प्रतं तु संक्षेपेण शोधपत्रोक्तविषयवैशिष्ट्यमिह प्रस्तूयते। तदत्र वैदिकवाङ्मये प्राणशब्दो बहुष्वर्थेषु प्रयुज्यते। तेषु प्राणानामपि प्राणस्य परब्रह्मणः परमेश्वरस्य प्राधान्यं सर्वत्र निगदितमस्ति। अन्ये प्राणपदार्थाः सन्ति- हृदिस्थो वायुः, जीवात्मा, सूर्यः, उत्तरायणम्, शुक्लपक्षः, दिनम्, अन्नं चेति। तत्र प्राणस्य परमेश्वरार्थकत्वे वेदादिशास्त्रोक्तप्रमाणानाम् इत्युदाहरणानि द्रष्टव्यार्हा। प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे। यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन् सर्वं प्रतिष्ठितम्। प्राणः प्रजा अनुवस्ते पिता पुत्रमिव प्रियम्। प्राणो ह सर्वस्येश्वरो यच्च न। (अथर्ववेद 11.4.1.10) प्राणस्येदं वशे सर्वं त्रिदिवे यत्प्रतिष्ठितम्। मातेव पुत्रान् रक्षस्व श्रीश्च प्रज्ञां च विधेहि नः।।, स उ प्राणस्य प्राणः। यत्प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्राणीयते तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते।। केनोपनिषद, 1.2.8 यदिदं जगत्सर्वं प्राण एजति निःसृतम्। (कठोपनिषद् 2.3.2) एतमग्निं वदन्त्येके मनुमन्ये प्रजापतिम्। इन्द्रलोके परे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम्। (मनुस्मृतिः 2.123) अतएव प्राणः, प्राणस्तथानुगमात् (ब्रह्मसूत्रम् 1.1.23,28) इति।

अथ गर्भस्थशिशोर्देहपिण्डे जीवात्मनः प्रवेशमन्वेव यो वायुः हृदये प्रविशति गर्भवासकाले, जन्मनि यावज्जीवनं च जीवेनसम्बद्धः

शरीरे च सर्वांगेषु व्याप्तस्तिष्ठति सोपि प्राणनाम्ना विख्यातः सर्वविदितश्च। तस्यैकस्यैव प्राणस्य शरीरे विभिन्नांगेषु विभिन्नकार्यकारणाद्धेतोः विभिन्ननामानि सन्ति। तत्र प्राणस्य मुख्यतः पंचभेदा इत्थं वर्ण्यन्ते- हृदि प्राणो गुदेऽपानः समानो नाभिसंस्थितः। उदानो कण्ठदेशस्थः व्यानः सर्वशरीरगः।। इति ऐतरेयारण्यके तु अधिकस्पष्टतयोक्तमेतत्। 'स एष पुरुषः पंचविधस्तस्य .... यः प्राणः स वायुः। स एष वायुः पंचविधः प्राणोऽपानो व्यान उदानःसमानः.... हृदयादूर्ध्वं संचरन् वायुः प्राणः । अधोद्वारे संचरन्नपानः। सर्वासु नाडीषु व्याप्य वर्तमानो व्यानः। जीवोत्क्रान्त्यादिकं कर्तुमूर्ध्वभागे कण्ठेऽवस्थितः उदानः। अन्नपाने साम्येन कृत्स्नशरीरे नेतुं नाभिसमीपेऽवस्थितः समानः ।(ऐतरेयरण्यके सायणभाष्यम् 3.3.15)इति। एषां पंचविधवायूनामवान्तरभेदा अपि भवन्ति, ते च नागकूर्मकृकलदेवदत्तधनञ्जयाभिधाः पंच सन्ति। चक्षुर्निमेषोन्मेष-निद्रा वमनोद्गार-हिक्कितानि तत्कर्माण्युच्यन्ते। अथ सूर्यरुपप्राणविषये उच्यते, 'आदित्यो ह वै बाह्यः प्राणः उदयत्येष हुयेन चाक्षुषं प्राणमनुगृह्णानः।', 'स एष वैश्वानरो विश्वरूपः प्राणोऽनिरुदयते। तदेतदृचाभ्युक्तम्-विश्वरूपं हरिणं जातवेदसं परायणं ज्योतिरेकं तपन्तम्। सहस्ररश्मिःशतधा वर्तमानः प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः।। (प्रश्नोपनिषद् 3.8, 1.7-8) प्रश्नोपनिषदः षष्ठे प्रश्ने याषां षोडशकलानां वर्णनमस्ति तासु प्राणः प्राथम्येन परिगणितः, ताश्चान्तःशरीरे पुरुषे प्रभवन्ति। तेनोभौ जीव ईश्वरश्च षोडशिनावुच्येते। इति।

संस्कृत वाङ्मये मनोविज्ञानम्

प्रो. लोकमान्यमिश्रः रा.सं.सं.(मानितविश्वविद्यालयः) लखनऊपरिसरः

मनोविज्ञानं नाम नूतनं शास्त्रं वर्तते। वर्तमानकाले प्रचलितेऽस्मिन् मनोविज्ञानशास्त्रे विद्यमानानां तत्त्वानां विद्यमानता वैदिकवाङ्मये लौकिकवाङ्मये च दरीदृश्यते। तद्यथा मनसः शिवसंकल्पत्वं ऋग्वैदिके सूक्ते प्रतिपादितं वर्तते। भद्रं कर्णेभिरित्यादिभिर्मन्त्रैः शारीरकं स्वास्थ्यं वेदे प्रार्थितं वर्तते। उपनिषत्साहित्ये कोशानां जाग्रदाद्यवस्थानां सूक्ष्मं विवेचनं कृतं वर्तते। लौकिके संस्कृतवाङ्मये मनोदशानां, बुद्धिभेदानां व्यक्तिवस्य प्रभेदानाञ्च निरूपणं स्फुटं विलसति। संस्कृतवाङ्मये प्रतिष्ठितैः मनोविज्ञानतत्त्वैः साम्प्रतिकस्य मनोविज्ञानस्याभिवृद्धिर्भवितुमर्हतीति।

ऋग्वेदे सृष्ट्युत्पत्तिकारणं जलम्

कु.दीपाली जैन, कन्यागुरुकुल महा., हरिद्वारम्

नास्ति कश्चिद् सन्देहः यत् जलप्रकृतेः अद्भुत् बहुमूल्योपकारोऽस्ति तथा भूमेः ऊपरि अमितमात्रायामुपलभ्यते। भूम्याः लगभग 2/3 भूः भागः जलमग्नमस्ति शेषं 1/3 भूः भागस्थलमस्ति, स्थलभागे जीवनचारीणां विकासार्थ जलमहत्त्वपूर्णमस्ति। वर्षायाः जलं भूमौ एवागत्य वन वृक्ष, वनस्पति, जीवानाञ्च उत्पादकं भवति।

तेजतः जलोत्पत्तिः भवति, परन्तु अत्रापि अनेके मतभेदाः प्राप्यन्ते। तैत्तिरीयछान्दोग्योपनिषदनुसारं च तेजतः जलस्योत्पत्तिरभवत्। "स प्रजापतिब्रह्मैव प्रथमममसृजत त्रयीमेव विद्याम्। ब्रह्मास्य सर्वस्य प्रतिष्ठा। तस्यां प्रतिष्ठितः सोऽपोऽसृजत वाच एव लोकात्। वागेवास्य सासृजत? अस्यानुसारं प्रजापतिना प्रथमं त्रयी ब्राह्मणः (वाक्) सृजनमकरोत्। स त्रयी ब्रह्मैव सर्वेषां प्रतिष्ठा अस्ति, अस्यां प्रतिष्ठायां प्रतिष्ठितं भूत्वा तेन ब्रह्मणा वाक्लोकतः अपि जलोत्पत्ति कृतम्। अर्थात् एतानि जलानि (वाक्) अस्यविकाराः सन्ति। विषयेऽस्मिन् ऋग्वेदे प्राप्यते- **प्रजापतिर्मध्यमिता रराणो विश्वैर्देवैः पितृभिः संविदानः। शिवा सतीभ्यं नो गोष्ठाकस्तात्सां वयं प्रजया सं सदेय।।**

अस्यानुसारं एते ब्रह्मणः विकाराः सन्ति। एवं तैत्तिरीयश्रुतिक्रमे विरोधः प्रतीयते। विषयेऽस्मिन् दृष्टव्यमस्ति यत् एतानि जलानि ब्रह्मलोक रूपे उक्तम्। भूतरूपाणि जलानि अन्यानि सन्ति। अयं भूतस्य प्रकरणमस्ति एवं प्रकरणेऽस्मिन् तेजतः यो जलोत्पत्तिः उक्तम् सा भौतिक जलस्य कृते अस्ति। अस्यास्तिरिक्तं वाग्लोकत यो जलस्य सृजनमुच्यते तस्यभिप्रायः अपूर्वसृष्ट्या सह अस्ति। तत्र वागेव जलरूपे परिणता अभवत् प्रारम्भे जलसृष्टिविषये मनुः लिखति यत् प्रजापतिना विविधप्रजायाः सृष्टे इच्छया अभिधानं कृत्वा स्वशरीरतः आदौ जलस्यैव सृष्टिः कृता। **सोऽभिध्याय शरीरात् स्यात् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजा।? अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत्।।**

वैदिक साहित्य में योगविज्ञान

डॉ. महेश चन्द्र ध्यानी प्रभारी परिसर, उत्तराखण्ड संस्कृत विश्वविद्यालय, हरिद्वार

पुरुषार्थ सिद्धि का सर्वशास्त्र सम्मत मार्ग है योगसाधना। चित्त की एकाग्रता के बिना तो कुछ भी सम्भव नहीं है। जिस प्रकार भाषा के ज्ञान के लिये पाणिनीय व्याकरण सर्वशास्त्रोपरक माना जाता है, प्रमाण ज्ञान के लिये न्यायशास्त्र सर्वदर्शनोपकारक माना जाता है। उसी प्रकार पतंजलि प्रणीत योगसूत्र समस्त मनोभिलाषियों का उपकारक स्वीकार किया जाता है। **'काणादं पाणिनीयं च सर्वशास्त्रोपकारकम्।'** शास्त्र पद का प्रयोग योग विद्या के लिये अधिक सार्थक सिद्ध होता है शास्त्र उसी को कहा जाता है जो शुभ कार्य में प्रवृत्त कराये और निषिद्ध कर्मों से निवृत्ति कराये। श्लोकवार्तिक में कहा गया है-

प्रवृत्तिर्वा निवृत्तिर्वा नित्येन कृतकेन वा। पुंसां येनोपदिश्येत् तच्छास्त्रमभिधीयते।।

योगशास्त्र से बड़ा कोई प्रवृत्तिनिवत्तिबोधक अन्य नहीं हो सकता, यह शास्त्र दुःख हेतु रूप क्लिष्ट वृत्तियों से निवृत्ति करता है।

वेदों में योग तत्त्व

डॉ. सुरेन्द्र कुमार त्यागी मानवचेतना एवं योगविज्ञान विभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

भारतीय संस्कृति में वेदों का महत्त्व सर्व विदित है। हमारी उपासना के इष्ट देव गण, हमारे मस्तिष्क को प्रेरित करने वाली विचार धारा, हमारे संस्कारों की दिशा देने वाली पद्धति इन सबका आदि स्रोत वेद ही हैं। वेदों में सभी प्रकार के सत्य ज्ञान के बीज उपस्थित हैं। महर्षि दयानन्द भी कहते हैं कि वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। इसी लिए योग विद्या के तत्त्व बीज भी वेदों में ही विद्यमान है। वैदिक काल में तो योग भारतीय समाज में एक जीवन पद्धति के रूप में प्रचलित था। उसका अलग से अभ्यास करने की आवश्यकता नहीं थी। उस समय भारतीयों का प्रत्येक कर्म योगमय ही होता था।

गीता में यज्ञ, दान और तप इन तीनों को अनिवार्य रूप से पालन करने योग्य माना है क्योंकि ये अन्तःकरण को पवित्र करने वाले हैं। वेदों में इनमें से यज्ञ को प्रधानता दी गयी है। क्योंकि दान और तप दोनों यज्ञ के अन्तर्गत ही आ जाते हैं।

QUEST FOR INNER PEACE IN BHATTACHARYA'S "A DREAM IN HAWAII"

Dr. Manjusha Kaushik, Lecturer of English, K.G.M. (G.K.U.) Hardwar

The present paper shows the importance of inner peace in human life. In the novel, Yogananda plays an important role and guide the American people through the vedantic Knowledge becauce vedas are the store husse of Knowledge of vari as science and ant. Knowledge acts as a pathfinder leading man to the state of absolute peace. The main action of the novel is rooted in the Indian soul and the entire plot of the novel hovers around around vedantic philosophy, Indian culture and Yogic practices. Material and intellectual pursuits are enough to satisfy human quest. The spiritual satisfaction is their inner and real need.

INFLUENCE OF VEDAS ON SPIRITUAL POETRY OF SRI AUROBINDO

Dr. Shashi Bala Tiwari, Reader in English Dept. Govt. Degre College Akbarpur, Kanpur Dehat

Sri Aurpbindo was a political and social rebel and in the process of transformation to a sage delineated highly inspiring supramental pathways to the future and Indian resurgence. He always conscious of the spiritual vedic reality, each of his works, whether it is lyric, epic or dramatic poetry is replete with this consci ousness. Sri Aurobindo is in the lineage of Valmiki, Danti, Croethe and Miltons that's why he justified the ways of God to man.

Savitri a cosmos poem' is an epic a soul, a poem of 'higher planes' a legend and a symbol. the word Savitri

itself means 'spiritual ecstasy. In the Veda Sarita is the God of illumination 'Savitri' therefore, also means something descendant from Sun or belonging to the Sun, energy, Creative force. Sarvitri is the incarnation of the Divine mother. Similarly other peoms Trana, Shiva, jivanmukta, Transformation and Nirvana rings a long the Vedic influence in poetry od Sri Aurobindo.

ROLE OF YOGA IN REDUCING ANXIETY AMONG WOMEN SUFFERING FROM ARTHRITIS

Smt. Suman Pandey[1], Smt. Seema Ghosh[2]
Reader, Education Department Juhari Devi Girls P.G. College, Kanpurs[1]
Sr. Lecturer Physical Education Juhari Devi Girls P.G. College, Kanpur[2]

In Bhagvad Gita, Yoga is assumed as a state of equanimity at psychic level, which makes life free of stress so that one can perform his best in an effective manner. Many psychologists on the basis of their experiences found that Yoga is an effective instrument of modification of human behaviour.

A study was undertaken to investigate the effect Yoga is reducing anxiety among patients suffering from severe arthritis. For this purpose 30 patients suffering from arthritis were selected from three Yoga centers. Hindi version of Cattell's Anxiety Scale Questionnaire by S.D. Kapoor was administered in two sittings, i.e. before and after one month of different Yogic practices. Results revealed significant reduction in ansiety level after yogic practices. It shows that regular practice of Asans and other Yogic practices not only improves movement in joints, cures different kinds of arthritis problems but also causes remarkable reduction in anxiety and hypertension.

CONCEPT OF ASTANGA - YOGA IN THE PURANAS

Dr. N.C. Panda Reader, VVBIS&IS, Panjab University, Hoshiarpur (Pb)-146021

Puranas are the treasure house of various sacred wisdom. These are indispensable for understanding the rich cultural heritage cultural heritage of India, since they are imbibed the spirit of the Vedas. The Yoga Sutra (II.29) of Patanjali enumerates the eight angas (parts) of Yoga, such as : 'Yama-niyama-asna-pranayama-pratyahara-dharana-dhyana-samadhayo' stavangani'.

Restraint, observance, posture, breath-control, abstraction, concentration, meditation and spiritual absorption are eight component parts of yoga. These eight parts of yoga have been clearly discussed in the Puranas. The Maha Puranas, viz. Agni, Markandeya, Kurma, Visnu, Narada, etc. have elaborated Astanga yoga in a very lucid way. This paper will highlight various aspects of Astanga yoga as discussed in the Puranas.

CONCEPT OF DEPRIVATION IN VEDIC PERIOD

Dr. Suchitra Mitra, Reader, Dept. Of Sanskrit, University of Allahabad, Allahabad

Generally, deprivation means disadvantage i.e., it refers to the conditions which are resiponsible for lack of fulfillment of need. it is another way of saying that if a person is inconvenced to fulfill his needs he may be said to be a deprived person according to deprivation. They fufill their basic needs through invocation of God. Vedic people modern psychalogy. In ancient tirnevedic people also had thing own concept of belived that protaction of God is neeeded to enjoy a happy life. May wealthy Indra as our good protector, Lord of all treasures favour us with succour. But people who denounce vedas do not perform reliougs rites. It is also said in Vedas that all mental Confusion and evil reactions in a person arise when he is deprived of his basic reqirments, as it is said in Vedas "Poverty, hunger and thirst of every kind enter the body as a home.(AV XI /8/ 21) More over man is afraid of the unknown and dreads his enemies; he is also fearful of disease and death which is lurking every where. Since he is afraid of these things he prayed to God - release me from the course's plague and woe that comes from varuna. Free me from Yama's fetter, from sin and offence against the God.(Rgv. X/97/16)

Hence, deprivation can be signified in the sense of suffering. It can be Compared with the Sanskrit word which is conceptualized in the sense if loss, bereavments or hindrance. Here it is an importent point to note that basically one major emotion which is closly associated with these verbal with appellations can be said as misery. Because wherevere there is a cry of - sufferings and pains like death or obstuctions accompanying the humen condition there is a misery. We therefor must educate the deprived not to be sinful. Like Vedic period, in modern timesa also we need God's protection. Proper education combats narrow thinking, evil doing and prepare every deprived person to bear poverty, misery, adversity and every handships patiently. As the sage of Katha Upanisada say - Life pilgrimage is uphill task. the climb is hard and trying. Only austere life is capable of this arduous Task"

DEV-TANTRA (SUPERNATURAL MACHINERY) IN RIG VED

Dr. Anjana Trivedi Reader & Head, Dept. of English K.V.M.P.G. College, Kanpur

The place and position of Dev-Tantra(gods) in Indian Culture is Supreme. They have been attributed different names in the Rig Ved. The Term Apah has been used for water. Water is deseribed in feminine gender, plural number as goddesses and mothers; They are self existemt and pure, named as punana, Divya, Sravnid,Khanitrima, Swayamjah. Agni and Moon are another gods wto are born of Apah. Varuna and Mitra. Known as Sindhupati, are also assosiated with water. They drive away human sins and follies. Abhidhunya and Vritra control the flow of river at their will. Varun is the god of water and is pure annd protector of seasons. Indra, in Rigved is the most glorious and valiant god, protecting the truth. Trita is also connected with Varun and it disposes off the sins of mankind.

Apart form all these Dev Tantra mentioned in Rig Ved there is conceived the presence of a unique entity who preserves, protects and governs the whole creation. The vedic Rishies have stretched their imagination by speculating and exploring the unexplooed reign of Orgin of naivebse and Srishti. The search is still on ....

ATHARVA AND PSYCHOLOGY

Dr. Shyam Lata Juyal Reader, **Anu Dandona** Research Scholar, K.G.M. Gurukul Kangri University, Haridwar.

Atharva veda deals with diseases both mental and physical, their symptoms, diagnosis and prevention and also. Atharva Veda presents a detailed description of the life style of a early stage of human society, which hus just entered the agricultyral stage. They want to conquer the enemies, to ward off painful chronic diseases like TB (Yakshma) to off evil spirits from the newly born infants and thier mothers, and also to woo ladies. Pandit Bhagwat Sharma Upadhyay, in hindi Vishwakosh, saya, The stree in Atharva Veda is not so much on the use of karma kanda or the rituals, as on doing right or wrong, high or low, do-s and don ts, popular beliefs, and tendencies of life. From this point of view, the importance of Atharva Veda is much more, for the historian, than of the other three Vedas. The first references to puranas, history, gathas etc. found here. This Veda also points to many such traditions which are not only older than Rig Veda, but really go back to very very old times.

YOGA AND HUMAN HEALTH

Naresh Kumar Lecturer, Rayat College of Physical Education, Railmayra, SBS Nagar

What WHO saying today about health Acharya Sushruta said it about 5000 years before. The Co-Relation of dimension of health by WHO and Sushruta is Physical= Smadosha, Samagni. Samadhatumalakriya, Prasannendriya, Prasannendriya, Prasannamanah. Spiritual=Prasannatma and if same is Co-related with yoga then Chittarvrutti Nirodhah=Prasannatma. Karmasu Kaushalam= samadosha, Samagni, Samadhatumalakriyah. Samatvam= Prasanna Manaindriyam. Dukha Samyoga Viyoga= Prasanna Manendriyam. Pranapanayoh Aikyam=

Samadosha, Samagni, Samaghatumalakriyah. Now we will see the relation of yoga school and health hatha Yoga= Physical Aspect, Raja Yoga=Psychological Aspect, Karma Yoga= Occupational Aspect, Kriya Yoga= Psycho-Spiritual Aspect, Bhakti Yoga= Spiritual Aspect, Jnana Yoga= Knowledge-intellectual Aspect, Mantra-yantra-tantra Yoga=Ritualistic Aspect, Nada Yoga= Acoustic Aspect, Laya Yoga= Bio-Rhythmic Aspect. The means of Yoga is Integration of physical level with psychological level and Psychological level with Spiritual level and intrgration of all the levels with omnipresent level.

YOGA IN THE VEDAS

Dr. H. Kumar Kaul, Director Arya Educational Institutions, Barnala

The Rigveda Samhita advises us to unite our mind through the process of yoga with Brahman, the Absolute Reality. is mentioned that a person follows the path for gaining control over mind and senses. (Quoted original Mantra V. Bh.1) Further in one of the prayers to Indra, the vedic sages seam to be aware of all types of yoga and they seek blessing of foreceful Indra or master of sanses (Quoted original Meantra VII) the Mantra of Rigveda Samhita (Quoted original Mantri V:35) Implies different types of Yoga related to all sapects of human Existence. The metaphysical referance Given in Rigvida with two brids sitting on a tree(Quoted original Mantra 1:33:164). The Atharveda is the most important for the study of Yoga. Some of the Mantras of this veda refer to some of the aspects of Yoga System. They lay emphasis in the Vital Energy Worhing within the Individual as well as in the whole universe. (Original Manit Quoted Yayueveda1;3; 1;2) The description of Eight Cirrcles and ning gates in human body is clearly given in Atharveda (Quoted original Mantra 1:11; 10:12; 12:32) Besides in the Mantra It is said that there is golden shreath in the human body that covers the Divine Light which can be visualized by mental eyes. In the golden sheath there are three spokes settled in three ways. This golden sheath is mytstical which can be realized by Yogis in their state of their perfection. These mystical spoken may be Interpreted as resabindus. Pranavidya is the essence of practical yoga and a complete Sukta has been devoted to the description of the prana in the Atharveda. Thus Yoga, the science and the art of perfect art health has come down to us form the Vedas.

NASDEEYA SUKTA OF RGVED - A VISIONARY STUDY

Prof. Haresh A Joshi 'Bhaktipark' Plot No-2256-C/6, Phoolwadichowk,Hill Drive, Bhavnagar (Gujarat).

The word 'Darshan' is derived from the infinitive verb Drushya (Pashya). 'Darshan' means that through which we can see thoroughly. The importance of 'Darshan' is undoubtedly accepted in Indian philosophy. Out of all five senses, the visionary sense is of prime importance for direct perception in the process 'Darshan'. In philosophy, 'Darshan' means to see and to know. However, Rgved is not the volume of 'Darshan' Yet, the seeds of numberless philosophical ideas could be traced out from this volume.Even Aacharya Shankar cited statements form Rgved like इन्द्रो मायाभिः पुरूरूप ईयते for his reference.

नासदासीन्नो सदासीन्तदानीन्नासीद्रजोनो व्योमा परोयत्किमावरीवः
कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद् गहनं गभीरम् ११ १०.१२९.१

Rigved is divided intoten sections Known as Mandals. Mandal No-10,Sukta No-129 is identified as Nasadeeya Sukta in while, disussing about the creation of the world, a Rishi tells that there was no Asat nor Sat at that time. There was no cosmos, nor the sky beyond that. Who covered us in such a situation? Where was the divine and where did it shelter? Was there deep and serious water indeed? There was no death, but nothing was immortal. From where was this world born? Who Knows about its creation? Will the Providence of the world residing in the heaven be aware when this world was created or not ?

'MADHUVIDYA' MENTIONED IN 'ISHA SUKTA'

Madhu Sharma, Research Student, Department of Sanskrit, Aligarh Muslim University, Aligarh

There is gatha of Dadhyang Astharvan in the Richas of Rigveda. Dadhyang is the seer of 'Madhuvidya.' However, no Richa of found in Rigveda. Dadhyang Rishi is the author of final five chapters of 'Yajurveda'. As per the index of 'Yajurveda' ऋचं वाचम् पंचाध्यायी दध्यङ् आथर्वणो ददर्श......... Rucham Vacham is Shanti Patha. Afterwards in three chapters we come across across the art of creation of the world and there is the description of Madhuvidya in last chapter Isha Sukta. Beginning form hymn number-9 to 14, Rishi Deerghatama of the Sukta informs about Madhuvidya as follows: विद्याम् चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते।।।4।। The meaning of the hymn mentioned above denotes that a Knowledgeable person combines classical learning with practical knowledge and knows the results of both. Such a person overcomes sorrows, poverty and even death with the help of Avidya and becomes immortal through Vedic-vidya. It means both Vidya and Avidya combined together help gaining Atmadarshan and very thing is Madhuvidya.

EFFECTS OF TRANSCENDENTAL MEDITATION ON MENTAL HEALTH ON YOUNGER PERSONS

Dr. Charu Sharma Lecturer, Dev Sanskriti V.V., Haridwar (U.K.)

Background:- Yogic Intervention particularly the Mantra Meditation is a mental practice to put the body and mind into a state of relaxation and cheerfulness. The method was shown to reduce anxiety and stress in previous reports. This study investigates its beneficial impact in enhancing mental health in younger persons. **Methods:-** A before-after clinical trial was conducted to evaluate the effect of a one month meditation course on mental health of participants who were enrolled into the study by accidental sampling. Mental health status scale by Gireesan and Sam Sananda Raj (1988) was administered. **Results:-** Age of participants was 18-25. Mental health scores improved significantly after the meditation course. The difference was also significant of the population studied. **Conclusion:-** Mantra Meditation may improve mental health of young population. Mantra Meditation found to be an effective method of relaxation, as indicated by a shift of the autonomic balance toward parasympathetic activity in Yoga practitioners.

PERSONALITY DEVELOPMENT AND YOGA

B.R. Solanki, Lecturer, Amarli (RAJ.)

We can devide man's personality in four parts or personality has 4 important dimensions.

Physical, Mental, Imotional or Moral and spiritual dimensions.

If man wanted to develop their entire personality than it can develps by these four fields. It goes parellel in these four fields.

Yoga is system to live life peacefully and healthy. It is one of our ancient system of India. Yoga not only maintains our mental status but also increases our courtesy. It is the media to develop our entire personality.

Today we are living in the eye of modern era. Modern culture and people are believing in the impressive personality.

They are always duzzled by the outlook or the external personality of human.

So In the research paper I will try to light on that concept deeply.

YOGA: A SILVER LINING IN THE GLOBAL CONTEMPORARY THOUGHT PROCESS

Anjana Kaul, Lecturer, Himgiri Nabh Vishwavidyalaya, DehraDun

Yoga has become a very important part of the contemporary human psyche and reflects a turning point in age old belief of all religions to look within for the emancipation of the self and an overall quest of his for wellbeing. The paper in tracing the Vedanta thought process outlines the lives of the Great Modern Indian Yogis of the immediate past who have fashioned this impetus to the psychology of the modern man to move away from the external to the interior the world over.

प्राणायाम से शरीरस्थ पञ्च वायु रोग निराकरण

विजय कुमार (शोधच्छात्र) चौ.चरण सिंह विश्वविद्यालय मेरठ

आत्मा का सीधा सम्बन्ध प्राण से है क्योंकि आत्मा के बिना प्राण नहीं और प्राण के बिना आत्मा नहीं अर्थात् उपनिषदों में भी कहा है कि वाक्, प्राण, और मन की समष्टि आत्मा है। आत्मा को शुद्ध रखने के लिए योगाभ्यास करना होता है योगाभ्यास के बिना बुद्धि और बुद्धि के बिना धन व आत्मा की शुद्धि नहीं होती है। अत: वेदों में योगांगों की महत्ता बताई गई। अथर्ववेद में अष्टयोगांगों का वर्णन मिलता है जिनमें प्राणायाम प्रमुख रूप से प्रसिद्ध योगांग है जिसका आत्मा से साक्षात्कार होता है। प्राणायाम के विभिन्न रूप हैं। प्राण शक्ति शरीर के अन्दर विद्यमान सभी रोगों को नष्ट करती है। तथा प्राणायाम से शुद्ध वायु फेफड़ों के अन्दर पहुंचकर दुषित वायु को बाहर निकालती है। तथा प्रदूषित रक्त को शुद्ध करती है। इस प्रकार अनेक तथ्यों कों इस शोधपत्र में रखा जाएगा। जिनसे शरीरस्थ रोगों की निवृत्ति संभव है।

नासदीयसूक्त में दार्शनिकता

डॉ. लेखराज शर्मावरिष्ठ व्याख्याता दर्शन विभाग, सनातन ध. के. आ. संकृत महाविद्यालय उहगी

विश्व की सत्ता, विश्व का अधिष्ठान तथा विश्व की जटिल संरचना के साथ साथ विश्व के नियन्ता सूत्रधार के सम्बन्ध में भी सार्वभौम स्तर पर मानवीय जिज्ञासा का उदय हुआ। विश्व क्या है? क्यों है? कैसे है? इन प्रश्नों का उत्तर देना जितना विकट रहा है उतनी ही रोमांचकारी है इस जिज्ञासा की अनन्त कथा। ऋग्वेद के "नासदीय सूक्त" में इस जिज्ञासा का प्राचीनतम रूप मिलता है। इस सूक्त के विभिन्न मन्त्रों में यह विश्व क्या है? क्यों है? किस कारण से है? प्रभृति की सार्वभौत चिन्तन के क्षेत्र में सर्वप्रथम प्रस्तुति ऋग्वेद में ही पाई जाती है।

पुरूरवा-उर्वशी संवाद मे चेतना विज्ञान

डॉ. सी.पी. त्रिवेदी, इन्दौर

महाकवि कालिदास की अमर कृति विक्रमोर्वशियम् का आधार ऋग्वेद का पुरूरवा उर्वशी संवाद हैं। यह कथा संवाद काठक ब्राह्मण, शतपथ ब्राह्मण, बृहद्देवता, सर्वानुक्रमणी, महाभारत एवं पुराणों आदि मे भी उल्लेखित है। इससे ऋग्वेदीय सूक्त के विकास का बोंध होता है। विक्रमोर्वशियम् में तथा अन्य कथानकों में एक तथ्य मुख्य रूप से परिलक्षित होता है, पुरूरवा का विरह-विलाप, जिसे अलग अलग ढंग से प्रस्तुत किया गया है। अर्थात सृष्टि कहाँ से आई? जीवन क्या है? सृष्टि के कार्य किस प्रकार से सम्पन्न होते है? **मनुष्य मे चेतना कहाँ से आती है, और मृत्यु के पश्चात कहाँ चली जाती है?** यह पृथ्वी पर मानव सभ्यता के विकास के साथ अनादि काल से मनुष्य की जिज्ञासा और खोज का विषय रहा है। इसी प्रकार की जिज्ञासा और खोज हजारो वर्ष पूर्व वैदिक सभ्यता मे परिलक्षित होती है। यह एक ध्यान देने योग्य बात है कि वैदिक रूपको मे शब्द संकेत का कार्य करते है तथा आगे का अर्थ और प्रश्न का हल छात्र को खोजना है। जिसका उपयोग सिर्फ उस विषय का ज्ञाता ही कर सकता है। अर्थात वैदिक ऋचाओं के शब्द संकेत खोजी प्रकृति के वैज्ञानिको के लिए है। एतदर्थ वैदिक ऋचाओं के अर्थ का अधिकार जन साधारण को नही दिया गया। इनके अर्थ और संकेतो का ज्ञान न होने के कारण ही इन्हे कतिपय विद्वानो ने ग्वालो के गीत कह दिया। जिसमे उनका दोष नहीं है।

पर्यावरण-संरक्षण



पर्यावरण की समस्या तथा वेदों में इसका समाधान

राजकुमार (शोधच्छात्र) अमृतसर

पर्यावरण विषय वर्तमान वैज्ञानिक युग का सर्वाधिक चर्चित बिन्दु ही नहीं अपितु मानव जीवन पर मँडराते हुए संकट का अनिवार्य विषय बन गया है। आज विश्वस्तर पर होने वाले पृथ्वी-शिखर सम्मेलन, परमाणु आयुध-अप्रसार संधि एवं पर्यावरण शिक्षा इस दुष्परिणामों से उबरने और भावी विनाश से बचने हेतु किये जा रहे प्रयत्न हैं। इन प्रयत्नों में मानव की शान्त-सन्तुलित जीवन जीने की आकांक्षा छटपटा रही है। किन्तु यह प्रयत्न तब तक सार्थक नहीं हो सकता जब तक स्वयं मनुष्य इसको सुधारने के लिए वचनबद्ध नहीं हो जाता। भारत के प्रख्यात मनीषी डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् ने कहा था, 'मानव ने पक्षी की तरह उड़ना सीख लिया, मछली की तरह सागर में तैरना सीख लिया परन्तु मनुष्य की तरह पृथिवी पर जीना उसे अभी तक नहीं आया,' आज का पर्यावरण संकट आधुनिक औद्योगिक युग की देन है। इस युग में मानव की बढ़ती हुई भोग लिप्सा के कारण प्राकृतिक संसाधनों का अन्ध ाधुन्ध दोहन हो रहा है और देने के नाम पर प्रदूषण के अतिरिक्त कुछ नहीं मिलता। वैदिक काल में जिन प्राकृतिक तत्त्वों अर्थात् पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश को देवता माना जाता था, आज उन्हीं को मनुष्य प्रदूषित कर रहा है।

'अथर्ववेद में इसके समाधान हेतु इन तत्त्वों की शुद्धि की बात की है-

> द्रुपदादिव मुमुत्तान: स्विन्त: स्नातवा मलादिव।
> पूतं पवित्रेणेवाज्यं विश्वे शुम्भुन्तु मैनस:।। (अ. 6.115.3)

वृक्षों के अभाव के कारण पर्यावरण की अनेक समस्याएं आती हैं अत: इनके निवारण हेतु अथर्ववेद में कहा गया है कि यह सम्पूर्ण हरे-भरे पर्वत, जंगल, इत्यादि नहीं काटने चाहिए क्योंकि यह तो सबका कल्याण करने वाले हैं। 'गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽरण्यं ते पृथिविस्योनमस्तु।। (अ. 12.1.11)

जलीय पारिस्थितिकी विज्ञान एवं वैदिक साहित्य

डॉ. समीरकुमार पाण्डेय, सुल्तानपुर

प्रस्तुत शोधपत्र में प्रमित: पारिस्थितिकी तन्त्र की अवधारणा को स्पष्ट करते हुये यह निरूपित किया गया है कि पारिस्थितिकी तन्त्र के अन्तर्गत ऊर्जा प्रवाह, पोषण स्तर, पदार्थों का पुनर्चक्रण, सहनशीलता की समी, वनस्पतियों के क्रमानुगत परिवर्तन आदि संकल्पनाओं का नियोजन आता है। पारिस्थितिकी तथा समुदाय पारिस्थितिकी का अध्ययन किया जाता है। विज्ञानियों ने सममुदाय पारिस्थितिकी के अन्तर्गत जलीय पारिस्थितिकी का वर्णन किया है। जलीय पारिस्थितिकी की वैज्ञानिक विवेचना करने के अनन्तर वर्तमान काल में जलीय पारिस्थितिकी में उत्पन्न प्रदूषणों की व्याख्या की गयी है। अनेक प्रामाणों से यह सिद्ध करने का उपक्रम किया गया है कि जल प्रदूषण के अनेक स्रोत हैं तथा नगरों का गन्दा जल और मलमूत्र, कारखानों से निकली हुई सामग्री जैस रसायन, गन्दा जल आदि।

कीटनाशक रसायन, रासायनिक उर्वरक तथा जलयानों के रिसाव से निकला पैट्रोल आदि जल को प्रदूषित कर रहे हैं। जलीय पारिस्थितिकी के बिगड़ते स्वरूप पर तथ्यपूर्ण गम्भीर चिन्तन करने के अनन्तर वैदिक वाङ्मय में उन तत्त्वों के अन्वेषण का गुरुतर प्रयत्न किया गया है जिनसे वर्तमान प्रदूषित जलीय पारिस्थितिकी में सुधार लाया जा सके। ऋग्वेद के ऋषि की मान्यता है कि जल अत्यन्त कल्याणकारक है। जैसे माता पुत्र का कल्याण करती है, वैसे जल कल्याण करता है। जल को प्राप्त कर जीवन प्रोन्नत-प्रफुल्लित हो जाता है। इस प्रकार जल अमृतस्वरूप है, जीवनी शक्ति है तथा सब औषधियों का रस है। शोधपत्र का निष्कर्ष है कि वैदिक वाङ्मय में जलीय पारिस्थितिकी के सूत्र एवं स्रोत निबद्ध हैं जो आज भी पूर्ववत् उपयोगी हैं।

वेदों में पर्यावरण-संरक्षण

डॉ. कृष्णा रंगा(रीडर) कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

पर्यावरण समस्या के समाधान में यदि संस्कृत-साहित्य के अथाह समुद्र में हम गोता लगाए तो ज्ञात होगा कि संस्कृत मनीषियों ने हजारों वर्ष पूर्व अपने चिन्तन में इस समस्या के समाधान में अनेक बातें कहीं हैं। वे केवल वर्णन के लिए ही प्रकृति चित्रण ही नहीं करते अपितु अप्रत्यक्ष रूप से मानव का प्रकृति के साथ सम्बन्ध स्थापित करने के लिए कहते हैं। जब प्रकृति और मानव का सम्बन्ध स्थापित हो जाएगा तो वे स्वयं इसकी रक्षा करने के लिए तैयार हो जाएंगे। हमें आवश्यकता है प्रकृति के उन तत्त्वों को खोजने और प्रयोग करने की। इन्हीं तत्त्वों को मैंने अपने शोध पत्र का विषय बनाया है।

वन संरक्षण : वैदिक एवं आधुनिक सन्दर्भ

डॉ. अर्चना श्रीवास्तव महिला महाविद्यालय किदवईनगर, कानपुर

वनों के कटाव से अनेक प्राकृतिक आपदाएँ जैसे- सूनामी सदृश प्रलयंकारी बाढ़, सूखा, भूमिकटाव, भूस्खलन, ग्लोबल वार्मिंग, ग्लेशियरों का पिंघलना, पेय जल एवं धरती के नीचे के जलस्तर का निरन्तर कम होना, जलवायु परिवर्तन जैसी अनेकानेक भीषण समस्यायें विकराल रूप धारण करके पृथ्वी पर जीवन के समक्ष एक भीषण चुनौती के रूप में उपस्थित हैं।

केवल मानव ही नहीं, वन्य-प्राणी एवं पशु-पक्षी भी वृक्षों एवं वनों के अभाव में त्रस्त हो रहे हैं। वस्तुतः-प्रकृति के प्रति सघन आत्मीयता एवं अगाध श्रद्धा अनादि काल से मानव-मन ने अनुभव किया है। सहस्रों वर्ष पूर्व वैदिक मनीषियों की दृष्टि पर्यावरण के महत्त की ओर थी। उस युग में शिक्षा, शोध, तपस्या एवं चिन्तन के केंद्र वनों के सुरम्य वातावरण होते थे। मनुष्य एवं प्रकृति के अन्योन्याश्रित सम्बन्ध को गहराई से समझने वाले ऋषियों के विचार, उनका दृष्टिकोण निःसन्देह ज्ञातव्य एवं अनुकरणीय है। प्रकृतिपूजक वैदिक ऋषियों ने मानव जीवन के आधार एवं प्रतिपालक होने के कारण प्रकृति के समस्त अवयवों में ईश्वर की सत्ता को स्वीकार किया तथा वृक्षों को देवत्त्व से विभूषित करते हुए **नमो वृक्षेभ्यः**(यजुर्वेद, 16.17), **वृक्षाणां पतये नमः**(यजुर्वेद ,16. 18), **ओषधीनां पतये नमः**(यजुर्वेद 16.19), **वनानां पतये नमः**(यजुर्वेद, 16.18) कह कर उनकी स्तुति की ।

वैज्ञानिकों के अनुसार एक औसत आकार का वृक्ष एक वर्ष में हमें एक टन ऑक्सीजन प्रदान करता है, सघन वृक्षों के झुण्ड(500 वर्गमीटर वन क्षेत्र) तापक्रम को 5 सेण्टीग्रेड तक कम कर सकते हैं तथा विकिरण एवं ध्वनि-प्रदूषण को 10 से 14 प्रतिशत तक रोकने में समर्थ है। अनुसन्धानों के आधार पर आज हमारे वैज्ञानिक जिस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं, वनों एवं वृक्षों की महत्ता को समझने वाले वैदिक मनीषी **'स्वधिते न हिंसीत्'** (यजुर्वेद, 4.1) कहकर वृक्ष को न काटने तथा उनकी सतत रक्षा के लिए अनेक स्थलों पर निर्देश देते हैं- 'पृथिवी देव यजन्योषध्यास्ते मूलं मा हिंसिषम्' (यजुर्वेद, 1.25)।

ऋग्वेद का सम्पूर्ण नवम मण्डल अर्थात् सोम-सूक्त, अरण्यानी सूक्त एवं अथर्ववेद के पृथिवी सूक्त इत्यादि के बारम्बार एक ही उद्घोष सुनाई देता है कि हमारी भूमि हरी-भरी रहे तथा स्वास्थ्यवर्धक औषधियों, वनस्पतियों से सदा परिपूर्ण रहे एव हमारे लिए सुखदायिनी हो- **प्रजापतिः पृथिवीं विश्वगर्भामाशामाशां रण्यां न कृणोतु** (अथर्ववेद, 12.43), **गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽरण्यं ते पृथिवी स्योनमस्तु**(अथर्ववेद, 12.11), **यस्यां वृक्षा वानस्पत्या ध्रुवस्तिष्ठन्ति विश्वहाः। पृथिवीं विश्वधायसं धृतामच्छावदामसि।।**(अथर्ववेद, 12.22)

वन एवं वृक्षों के विशाल संसार प्रकृति के विराट स्वरूप एवं रहस्यमयता का अनुभव कराते हैं। ऋग्वेद में उल्लेख है कि पृथ्वी वृक्ष से उत्पन्न हुई है- 'भू अज्ञे उत्तानपदः। बृहदारण्यक उपनिषद मं वृक्ष का दृष्टान्त देकर पुरुष (परब्रह्म) की व्याख्या की गयी है। पुरुष का स्वरूप भी वृक्ष जैसा है।

वेद एवं उपनिषद् साहित्य मे अनेक पुष्ट प्रमाण उपलब्ध होते हैं, जिनसे पर्यावरण की सुरक्षा के लिए सजग वैदिक ऋषि वन, वृक्ष एवं वनस्पतियों के संरक्षण हेतु प्रयत्नशील दिखलाई देते हैं। पृथ्वी पर जीवन की सुरक्षा हेतु वन संरक्षण, संवर्धन एवं वनीकरण की नितान्त आवश्यकता है और इस हेतु वैदिक ऋषियों के उपदेशों की प्रासंगिकता सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक है।

वैदिक साहित्य और पर्यावरण चिन्तन

डॉ. हेमा देवरानी राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर (राज.)

सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय पर्यावरण चेतना का संवाहक रहा है। जब तक पृथ्वी वृक्षों और पहाड़ों से युक्त जंगलों से सम्पन्न रहेगी, तब तक वह मानव की सन्तानों का पालन-पोषण करती रहेगी। मनुष्य की आवश्यकताओं का सम्बन्ध पर्यावरण से ही है। पर्यावरण का सीधा सम्बन्ध प्रकृति से ही है। वस्तुत: परि तथा आङ् उपसर्गपूर्वक परणार्थक वृङ् तथा वृञ् धातुओं से ल्युट् प्रत्यय के योग से निष्पन्न पर्यावरण पद का अभिप्राय है- 'परित: सम्यक् वृणाति आच्छादयति जगदिति पर्यावरणम्।' वेदों में पर्यावरण का संकेत 'वृतावृता' (अ.वे. 10.1.30), 'परिवृता'(अ.वे. 10.8.31), 'पर्यभवत्'(अ.वे. 10.2.18)। इन शब्दों से विदित होता है। पर्यावरण के अन्तर्गत भूमि, जल, वायु, अग्नि(ताप), आकाश, सभी जीव-जन्तु, पेड़-पौधे, वनस्पतियों एवं औषधियाँ सम्मिलित हैं।

हमारे ऋषि मुनियों ने प्राकृतिक सन्तुलन को बनाने के लिए प्रकृति के प्रत्येक अंग में शान्ति की महत्ता पर बल दिया है। भारतीय सांस्कृतिक परम्परा में प्रकृति की उपासना और सौन्दर्य-साधना के स्वर मुखरित हुए हैं। वैदिक प्रार्थनाओं का क्षेत्र कितना विस्तृत और विशाल है यजुर्वेद में प्रार्थना की गई है-

ओम् द्यौ: शान्तिरन्तरिक्षं शान्ति: पृथिवी शान्तिरापशान्तिरोषधय: शान्तिर्वनस्पतय: शान्तिर्विश्वे देवा: शान्ति ब्रह्म शान्ति: सर्व शान्ति: शान्तिरेव शान्ति: सा मा शान्तिरेधि।

अर्थात् मेरे लिए द्युलोक, अन्तरिक्षलोक और पृथिवी-लोक सुख शान्ति दायक हों, जल औषधियां और वनस्पतियाँ शान्ति देने वाली हों, समस्त देवता, ब्रह्म और सब कुछ शान्ति प्रद हों। जो शान्ति विश्व और सर्वत्र फैली हुई है, वह मुझे प्राप्त हो। मैं बराबर शान्ति का अनुभव करूँ।'

(ऋग्वेद 10.186.1) में प्रार्थना की गई है। यह वायु हमारे हृदयों के लिए कल्याणकारी और सुखकारी औषधि के रूप में होकर बहे और हमारे लिए दीर्घ आयु का सम्पादन करें। किसी भी स्थिति में जल, वृक्ष तथा वनस्पतियों को हानि न पहुंचायी जाय। 'मनुस्मृति' में पर्यावरण शुचिता पर विशेष ध्यान देते हुए पृथ्वी को 'माता' संबोधित किया गया है, ओजोन परत के सम्बन्ध में भी वेदों में चर्चा हुई हैं, 'ध्वनि प्रदूषण' के निवारण के लिए महत्त्वपूर्ण मन्त्रों में उपदेश दिये गये हैं।

वेदों में पर्यावरणीय जागरूकता

डॉ. अरुण मिश्र शा.मा. बाई महिला महा. जबलपुर(मध्यप्रदेश)।

वेदों में व्यक्ति की समुन्नति की ही चर्चा नहीं है अपितु सम्पूर्ण प्राणिमात्र, पादप वनस्पतियों के रक्षण के लिए भी प्रेरक उद्धरण दिये गये हैं। प्रदूषण मुक्त वातावरण की संरचना में वृक्षों की अहं भूमिका भी असंदिग्ध है। वृक्षों की उदारता के बारे में कहा गया है कि 'वृक्षों' में जो फल लगते हैं वे दूसरों के उपयोग के लिए होते हैं। ऋषियों ने, आयुर्वेदाचार्यों ने अनेक औषधियों की खोज वृक्षों से की है अत: वृक्ष महान् हैं, जीवनदायी हैं।

पर्यावरण जागरूकता वेदों का गुण है, तभी तो प्रदूषण की समस्या का समाधान हमें वेद में ही प्राप्त होता है- वृक्ष, वनस्पति तथा औषधि के माध्यम से हम प्रदूषण मुक्त परिवेश बना सकते हैं। वेदों में वृक्ष को प्राकृतिक सन्तुलन बनाये रखने वाला बताया गया है।

यज्ञ का विधान यजुर्वेद में बताया गया है कि यज्ञ करके हम प्रदूषण को दूर कर सकते हैं।'अयं यज्ञो विश्वस्य भुवनस्य नाभि:।' यज्ञ संसार का पोषक, प्राणदाता, जीवनदाता हैं। वेदों में पर्यावरण का चिन्तन कई रूपों में हुआ है।

'अथर्ववेद' का 'पृथ्वीसूक्त' पूरी तरह से पर्यावरणीय चेतना पर आधारित है।

वेदों में सभी पर्यावरणीय प्रदूषणों से आत्यन्तिक निवृत्ति सहज एवं सरल ही सम्भव है।

डॉ. शरद मिश्र ने 'अथर्ववेद' के पृथ्वीसूक्त का काव्यानुवाद बड़े ही सरस तथा सहजाभिव्यक्ति से अपनी कृति 'पृथ्वीसूक्त गाथा' में की है। इसमें वैदिक पर्यावरण संरक्षण की ओर कवि ने वेदों की बात कविता से की है।

वेद जीवन देने वालों के प्रति कृतज्ञता सिखलाते हैं। उस शक्ति के प्रति जिसने सारी सृष्टि कोबनाया है वेद उसके प्रति कृतज्ञ रहने की बात करते हैं। पर्यावरणीय चेतना के सन्दर्भ में यदि दृष्टि डालें तो वेद में पर्यावरण को संरक्षित करने के उपाय हैं।

वर्तमान में जब हमारा पर्यावरण प्रदूषित हो गया है हमें वेदों के परिज्ञान को जन-जन तक पहुँचाना होगा। पेड़ पौधों की रक्षा कर हमें मानव जीवन बचाना होगा। वेदों में दर्शाये गये उपायों से हम आज भी प्रदूषण की समस्या से बच सकते हैं।

वैदिक वाङ्मय में प्रतिपादित पर्यावरण सुरक्षा की अवधारणा

डॉ. गया प्रसाद दुबे श्रीगांधी महाविद्यालय घोखारा, रायबरेली

पृथ्वी के चारों तरफ फैला वैविध्यपूर्ण आवरण पर्यावरण है। किसी भी देश की समृद्धि पर्यावरण सन्तुलन पर निर्भर करती है। वर्तमान वैज्ञानिक और तकनीकी विकास की धारा में प्रवाहमान मानव सम्प्रति पर्यावरण नष्ट कर रहा है, जो सम्पूर्ण सृष्टि के लिये महासंकट बन सकता है।

हमारे प्राचीन-ऋषियों ने पर्यावरण संरक्षण के जिन उपायों को प्रदर्शित किया आज यह संभव नहीं हो पा रहा है। वैदिक काल में पर्यावरणीय तत्त्वों पृथ्वी, जल, तेज, वायु, अग्नि एवं वनस्पतियों को देवरूप में कल्पना कर मन्त्रों द्वारा उनकी अर्चना करते हुए प्राकृतिक स्रोतों की सुरक्षा की गयी है। पर्यावरण सुरक्षा का यज्ञीय विधान लौकिक एवं पारलौकिक दोनों प्रकार की शुद्धि की गयी है। यज्ञीय अग्नि की उष्मा वाष्प रूप में मेघों द्वारा गृहीत होकर जलरूप में वृष्टि करते हुए सम्पूर्ण पृथ्वी को धनधान्य से परिपूर्ण करती है। पर्जन्य, मित्र, वरुण, चन्द्र और सूर्य पर्यावरण के मूल रक्षक हैं। ऋग्वेद में अन्तरिक्ष के 'यम' का द्वार कहा गया है। औषधि और वनस्पतियाँ मानव के स्वास्थ्य रूपी धन के रक्षक हैं। (ऋग्वेद 7.34.23) सोम को 'रक्षोहा' कहा गया है। (ऋग्वेद 9.37.3, 9.67.20) क्योंकि सोमपान से रोग वायरस और वैक्टीरिया दूर हो जाते है।

अखण्ड ब्रह्माण्ड में शुद्ध वायु जल मानव जीवन के लिये अपरिहार्य है। वर्तमान में मानवकृत वनस्पति जगत् के विनाश से परिस्थिति की असन्तुलन एवं भीषण पर्यावरणीय समस्याएं उत्पन्न हुई हैं। आज सम्पूर्ण विश्व इस समस्या पर चिन्तन मनन कर रहा है। किन्तु कोई कारगर हल प्राप्त नहीं हो सका। परन्तु हमारे ऋषियों ने ऋग्वेद की ऋचाओं (1.90.6.57) में इस महासमस्या का समाधान आज से वर्षों पूर्व प्रस्तुत किया है। आज आवश्यकता केवल उसे कार्यरूप में लाने की है।

इस सम्पूर्ण आलेख में उक्त समस्या से जुड़े प्रत्येक बिन्दु पर विचार कर वैदिक साहित्य की ऋचाओं से उसका समाधान ढूढ़ने का प्रयास किया गया है।

पर्यावरण संरक्षण की औपनिषत्की-भावना

डॉ. मीरा द्विवेदी वनस्थली विद्यापीठ वनस्थली(टोंक) राजस्थान

उपनिषत्साहित्य अपने दार्शनिक और आध्यात्मिक चिन्तन के कारण वैदिक द्रष्टाओं की ज्ञानपिपासा का चूडान्त निदर्शन है। इनकी चिन्तनधारा भौतिक प्रगति के विपरीत अन्तर्मुखी आध्यात्मिक प्रगति का प्रतिनिधित्व करती है। वर्तमान पर्यावरण समस्या एवं वैश्विक तापवृद्धि साम्प्रतिक भौतिकवादी सभ्यता जन्य रुग्णता का निवारण किया जा सकता है।

उपनिषत्साहित्य में इस पर्यावरणीय समस्या के समाधानार्थ पदे-पदे प्रचुर सामग्री प्राप्त होती है। यथा- 'सर्व खल्विदं ब्रह्म, अहं ब्रह्मास्मि' आदि महावाक्यों की मूल संवेदना के अनुसार जीवनजगत् समस्त तत्त्व ब्रह्म रूप ही है। ब्रह्म स्वयं ब्रह्म को कैसे प्रदूषित कर सकता है। यह औपनिषत्की भावना जीवजगत् में निज प्रतिबिम्ब का दर्शन करती है। ऐसी स्थिति मे जगत् (पर्यावरण) को प्रदूषित करने का तात्पर्य है स्वयं को विकारग्रस्त बनाना। प्रकृति के कण-कण में स्वयं का अस्तित्व और स्वयं में जगत् का सन्दर्शन ही औपनिषत्की पर्यावरण भावना का मूल है। इसे पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी की ब्रह्मात्मिका दृष्टि भी कह सकते हैं। इस दृष्टि के सार्वजनिक विकास से ही पर्यावरण संरक्षण की दिशा में सार्थक प्रयास सम्भव है। प्रस्तुत शोधपत्र में उपनिषत् साहित्य के आलोक में पर्यावरण संरक्षण की चेतना का समुन्मीलन किया जायेगा।

पर्यावरणीय संकट के समापन में वैदिक वाङ्मय का योगदान

डॉ. नरेन्द्र कुमार सुल्तानपुर (उ.प्र.)

पर्यावरण एवं जीव का घनिष्ठ पारस्परिक सम्बन्ध होता है। जीव समुदाय की सत्ता एव सफलता में पर्यावरण का विशेष योगदान होता है। प्राचीन काल का मानव प्रकृति का पूजक था। दूसरे शब्दों में प्राकृतिक पदार्थो, भौतिक पदार्थो के प्रति श्रद्धा एवं अपनत्व का भाव रखता था। मानव अपने जीवन-यापन भर के लिए प्राकृतिक उपादानों का दोहन अथवा उपयोग करता था, किन्तु वैश्वीकरण, उदारीकरण तथा बाजारीकरण के नाम पर प्राकृतिक संसाधनों का शोषण प्रारम्भ हो गया। मानव प्रकृति को अपवित्र करता जा रहा है। स्थिति यह हो गयी है कि जीवन समुदाय तथा पर्यावरण के मध्य रिश्ते में खटास आने लगी। प्राकृतिक प्रकोप बढ़ने लगे। मानवता के समक्ष अस्तित्व का संकट खडा हो चुका है। जीव समुदाय तथा पर्यावरण का पारस्परिक सामंजस्य रहने से ही मानवता सुरक्षित रह पायेगी।

पर्यावरण विज्ञानियों ने धरती के बिगड़ते पर्यावरण पर अनेक स्तरों से चिन्ता प्रकट की है। हमारा पर्यावरण अनेक रूपों में प्रदूषित हो रहा है, जिसमें प्रमुख है- जल तथा वायु विषयक प्रदूषण। यतः वैदिक ऋषि प्रकृति पूजक रहा है अतः उसके श्रीमुख से निःसृत वाणी में पर्यावरण विषयक शुद्धता के अनेक महत्त्वपूर्ण सूत्र हैं जो आज भी प्रासङ्गिक हैं। यदि वैदिक वाङ्मय में सन्निहित पर्यावरण विषयक मान्यताओं का अनुपालन सुनिश्चित हो जाय तो असन्दिग्ध रूप से पञ्चमहाभूतों - क्षिति, जल, पावक, गगन तथा समीर की शुद्धता सुनिश्चित रह सकेगी। प्रस्तुत शोधपत्र में वैदिक वाङ्मय के उन अंशों की समीक्षा की गयी है जिनमें जल तथा वायु विषयक पर्यावरण की पवित्रता पर बल दिया गया है।

वैदिक वाङ्मय में पर्यावरण चेतना

शत्रुघ्न कुमार पाण्डेय मार्खम कालेज ऑफ कॉमर्स विनोबा भावे विश्वविद्यालय, हजारीबाग (झारखण्ड)

पर्यावरण सुरक्षा मानव एवं पृथ्वी के अस्तित्व से जुड़ी दुनिया की सबसे अहम् और ज्वलन्त समस्या है। इस समस्या और इसके निदान के प्रति सूक्ष्म अवलोकन एवं बृहद् दृष्टि से वेद भरे पड़े हैं। वेदों में न केवल पर्यावरण के सभी पहलुओं पर चौकन्नी नजर है, बल्कि इसकी रक्षा एवं महत्त्व को भी स्पष्ट किया गया है। पर्यावरण के विविध रूपों को देवत्व का प्रतीक मानकर आह्वान के साथ मानव कल्याण के लिए उसकी उपादेयता निरूपित की गयी है, जिसका उद्देश्य स्वास्थ्य और स्वच्छ पर्यावरण को अगली पीढ़ी तक ले जाना है, ताकि 'सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः' का विश्व समाज स्थापित हो सके।

वेदों में पर्यावरण को वायु, जल, ध्वनि, खाद्य तथा मिट्टी, वनस्पति, वन संपदा व पशु-पक्षी संरक्षण में बांटकर इनके संरक्षण पर जोर है। वेदों में प्रकृति और पुरुष का संबन्ध एक दूसरे पर आधारित है। वेदों में पर्यावरण की रक्षा को पूजा का महत्त्वपूर्ण अंग माना गया है(अथर्ववेद 10.7.32)। प्रकृति के सभी तत्वों का सम्यक् निरूपण वेदों में समुपलब्ध है। ध्वनि प्रदूषण से बचने के लिए वार्त्ता के समय धीमा एवं मीठा बोलने के लिए कहा गया है(अथर्ववेद 3.30.3)। शुद्ध वायु के महत्त्व का भी सविस्तार वर्णन वेदों में है(ऋग्वेद 10.186.1 एवं 10.137.4)। वन एवं वृक्षों से प्राप्त होने वाले लाभ का वर्णन भी वेदों में है (यजुर्वेद 16.18-20)। वेदों में शुद्ध जल से भरा जलाशय आवश्यक माना है। जल को प्राण, कांति, पौरुष, बल एवं अमरता की ओर ले जाने वाला कहा गया है(अथर्ववेद 3.12.5)। पृथ्वी को चराचर प्राणियों का आश्रयस्थली मानकर उसकी उर्वरा शक्ति बढ़ाने पर पर्याप्त मंत्र वेदों में हैं। मिट्टी प्रदूषण को दूर करने के उपाय भी वेदों में हैं। मन्त्रों में पृथ्वी को माता कहा गया है(अथर्ववेद 12.1.12)। हमारी पृथ्वी कैसी हो, इसका भी वर्णन वेदों में है(अथर्ववेद 12.1.11)। पर्यावरण के शुद्धि में यज्ञ का महत्त्व है और यह अम्ल वर्षा को नियंत्रित करने में सहायक है। यज्ञ समस्त भुवनों का केन्द्र है और पृथ्वी को धारण किये हुए है(शुक्ल यजुर्वेद 23.11एवं अथर्ववेद 9.10.14)। वेदों में गाय के दूध, गोबर, मूत्र, घृत और दधि को परम पावन, आरोग्यप्रद, बलवर्धक और आण्विक विकरण के प्रभाव से सुरक्षित रखने वाला माना गया है(अथर्ववेद 4.21.6 एवं शुक्ल यजुर्वेद 1.4, 3.20)।

वेदों में पर्यावरण संरक्षण विषयक अवधारणा

डॉ. (श्रीमती) पुष्पा अवस्थी आचार्य, संस्कृत विभाग कुमाऊँ विश्वविद्यालय एस.एस.जे. परिसर, अल्मोड़ा

प्राकृतिक और सामाजिक द्विविध पर्यावरण होता है। सामाजिक पर्यावरण मानव निर्मित होता है। प्राकृतिक पर्यावरण प्राणि मात्र को ईश्वर की अमूल्य देन है।

पर्यावरण के अन्तर्गत प्रमुख रूप से भूमि, जल, वायु, सौर ऊर्जा, पशु-पक्षी, वन वृक्ष वनस्पति आदि का ग्रहण किया जाता है। आज विश्व के समक्ष एक ज्वलन्त एवं अति विकराल समस्या इसी प्राकृतिक पर्यावरण को सुरक्षित एवं संवर्धित करने की है। नाना प्रकार के प्रदूषणों के कारण प्रकृति के ये तत्त्व शनैः शनैः विनाश की ओर अग्रसर हो रहे हैं। इनके क्षरण के साथ ही प्राणिमात्र का अस्तित्त्व भी संकट में है। यदि हम अपने पर्यावरण को बचाने के लिए कृतसंकल्प हैं तो हमें वेदों में वर्णित पर्यावरण संरक्षण विषयक अवधारणा को व्यावहारिक स्वरूप देना होगा। यह एक ध्रुव सत्य है कि पर्यावरण की सुरक्षा एवं समृद्धि से ही मनुष्य का जीवन एवं मानव सभ्यता संस्कृति सतत् गतिशील रह सकते हैं।

ऋक् यजु साम एवं अथर्व इन चारों वेदों में पर्यावरण के विभिन्न तत्त्वों के विषय में जो चिन्तन मनन किया गया है वह नितान्त तर्कसंगत है। वैदिक सभ्यता एवं संस्कृति का विकास प्रकृति की गोद में हुआ। अतः हमारे पूर्व जनों ने पर्यावरण के विभिन्न अंगों को समीप से एवं गहराई से जाना समझा और पुनः उनका तर्क संगत विवेचन वेदों में प्रस्तुत किया। इसलिए वैदिक मन्त्र पुरातन पर्यावरणविदों के तथ्यपरक विचार हैं। वेदों ने पर्यावरण संरक्षण हेतु मनोवैज्ञानिक उपाय अपनाया। पर्यावरण के विभिन्न अंगो यथा भूमि, जल, वायु, सूर्य, वृक्ष-वनस्पति-वन तथा विविध प्रकार के पशु पक्षी इन सभी को देवत्व प्रदान करते हुए उनकी स्तुतिपरक नाना सूक्त वेदों में कहे गए हैं। इस प्रकार पर्यावरण को मनुष्य की आस्था से जोड़कर वेदों में उसके संरक्षण हेतु दृढ़ उपाय किए गये।

वर्तमान पर्यावरण असंतुलन और वैदिक कालीन पर्यावरण संचेतना

डॉ. प्रतिभा त्रिपाठी रीडर एवं विभागाध्यक्ष प्रशिक्षण विभाग, सतीशचन्द्र कालेज, बलिया (उ.प्र)

डॉ. अवधेश नारायण तिवारी हण्डिया पी.जी. कालेज हण्डिया, इलाहाबाद

वैदिक ऋषियों ने हमारी संस्कृति में पर्यावरण को अत्यन्त महत्त्व दिया है।उन्होंने जल बरसाने वाले पर्जन्य को पिता, अन्न, फल आदि वनों को प्रदान करने वाली वसुन्धरा को माता तथा जीवों को पुत्र माना है। भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों रूपों में यह सिद्ध है उसी से हम अपने पालन की कामना करते हैं।(अथर्ववेद)

वैदिक काल को अरण्य संस्कृति का स्वर्णकाल कहा जाता था, उन दिनों वन देवी अरण्यानी की अर्चना अनिवार्य थी। वनदेवी प्रकृति की पर्याय मानी जाती थी। सम्पूर्ण विश्व एक है.. पर्यावरण को जीवजगत् का अभिन्न रूप मानने की अवधारणा आध्यात्मिक तथा धार्मिक रूप से हमें वैदिक काल से ही वेदों, उपनिषदों और स्मृतियों के माध्यम से मिलती है। ऋग्वेद का पुरुषसूक्त जो सृष्टि की प्रक्रिया का वर्णन करता है, में मानव के विस्तृत जीवन को प्रकृति का अभिन्न और अविभाज्य अंग माना है।

प्राचीन वैदिक ऋषियों ने प्रकृति के समस्त उपादानों में देवत्व का दर्शन किया है उनकी वंदना और अभ्यर्थना की है। सूर्य को सभी गतिमान तथा गतिहीन चीजों की आत्मा माना है(ऋग्वेद 115)

आज मानव द्वारा प्रकृति से छेड़छाड़ का ही दुष्परिणाम भूकम्प, हिमस्खलन, भूस्खलन, सूखा, बाढ़, मरुस्थलीकरण, वैश्विक ताप वृद्धि, शारीरिक, मानसिक विकलांगता के रूप में हमारे सामने है। यदि हमें इन सभी समस्याओं का निराकरण करना है तो प्राचीन वैदिक ऋषि मुनियों द्वारा निर्देशित मार्गों का अनुसरण करना होगा तभी हमारा और प्रकृति का अस्तित्व बच सकता है।

रेडियो-सक्रियता-प्रदूषण से मुक्ति के वैदिक उपाय

कु. बिन्दिया रत्नम्(शोधच्छात्रा) रसायन विभाग, देवनागरी पी.जी.कॉलेज मेरठ, उत्तर प्रदेश

अंतरिक्ष किरणों द्वारा उत्पन्न या प्रकृति में पाये जाने वाले रेडियो-सक्रिय पदार्थों द्वारा उत्पन्न रेडियो-सक्रिय (ऐल्फा-बीटा-गामा) अवयवों से जो पर्यावरण-प्रदूषण होता है उसका पेड़-पौधों, जीव-जन्तुओं तथा मनुष्यों पर कोई हानिकारक प्रभाव नहीं पड़ता है, किन्तु मनुष्य द्वारा कृत्रिम विधियों से उत्पन्न रेडियो-सक्रियता-प्रदूषण मानवों आदि की सहनशक्ति से अधिक होने पर, उसका प्रभाव भयावह होता है। गोदुग्ध इस प्रकार के प्रदूषण का अच्छा प्रतिरोधक है। गौ के गोबर से लिपे-पुते भवन में रेडियो-सक्रियता-प्रदूषण करने वाले इन अवयवों का अग्निहोत्र-यज्ञ द्वारा समापन होने से, इनके द्वारा उत्पन्न पर्यावरण-प्रदूषण समाप्त हो जाता है। वेद में, इसीलिए, गाय और यज्ञ की बहुत प्रशंसा-महिमा का वर्णन किया गया है।

पर्यावरण चेतना

डॉ. कुलदीप तिवारी सदस्य- एस.आर.जी. बेसिक शिक्षा उत्तर-प्रदेश

मानव, प्रकृति का सहज खिलौना है। माता समान प्रकृति की गोद में पल बढ़कर ही वह बड़ा हुआ है। आदि काल से ही मानव व प्रकृति का अटूट सम्बन्ध रहा है। सभ्यता के विकास में पर्यावरण ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। हमारे देश में वैदिक काल से ही वेदों द्वारा जल, पृथ्वी, वायु, अग्नि, वनस्पति अन्तरिक्ष आदि के प्रति असीम श्रद्धा प्रकट करने पर अत्यधिक बल दिया गया है। श्री कृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता के अध्याय 7 में अर्जुन को स्पष्ट किया है-

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनोबुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा।4।
अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृति विद्धि मे पराम्।
जीव भूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्।5।

पर्यावरण संरक्षण की दिशा में वृक्षारोपण को वैदिक काल से विशेष मान्यता प्राप्त रही है। पाराशर ऋषि के अनुसार-

दश कूप समोवापी दशव्यापी समोहृदः।
दशहृद समः पुत्रः दशपुत्र समोद्रुमः।।

अर्थात् दस कुओं के बनाने के बराबर एक बावड़ी, दस बावड़ी खुदाने के बराबर एक तालाब, दस तालाब खुदाने के बराबर एक पुत्र या शिष्य को धर्म परायण बनाना व दस समाज सेवी पुत्रों के बराबर एक वृक्ष लगाने का पुण्य होता है।

पर्यावरण के प्रति इतनी समृद्धि विरासत व समझ होते हुए भी आज हम भौतिकवादी, महत्त्वाकांक्षी और अतिवादी दृष्टिकोण के कारण प्रकृति की इस अनमोल धरोहर के साथ खिलवाड़ कर रहे हैं। हमारे द्वारा पर्यावरण के अविवेकपूर्ण संदोहन से ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन व ओजोनपरत क्षरण बढ़ रहा है। परिणाम स्वरूप, पृथ्वी का तापमान बढ़ रहा है। जिससे ग्लेशियर तीव्र गति से पिघल रहे हैं। भूमि बंजर हो रही है। वायु में कार्बन डाई ऑक्साइड की मात्रा बढ़ रहीं है। यह सभी प्रलयकारी लक्षण प्रतीत हो रहे हैं। हमें सावधान होना होगा और प्रभावी प्रयासों से पुनः स्वस्थ पर्यावरण की प्राप्ति के लक्ष्य को प्राप्त करने में अपना यथा सम्भव योगदान देना होगा।

वैदिक साहित्य में पर्यावरण चेतना

डॉ. राजा एन. काथड रीडर, संस्कृत भवन, सौराष्ट्र विश्वविद्यालय राजकोट(गुजरात)

मानव संस्कृति के प्राचीन ग्रन्थ वेद की ऋचाओं में द्रष्टा ऋषि ने सृष्टि के मूलभूत तथ्यों के साथ पर्यावरणचेतना को प्रकट की हैं। विश्व के समस्त प्राणीमात्र के लिए स्वच्छ पर्यावरण अति आवश्यक है। अतः हमारे ऋषि-मुनि आदिकाल से पर्यावरण के

प्रति सचेत थे। वैदिक साहित्य में पर्यावरण के सभी अवयवों के प्रति आदरभाव व्यक्त किया गया है। इतना ही नहीं अग्नि, वायु, आकाश, जल, पृथिवी को देवता का रूप देकर जन मानव में उसके प्रति आदरभाव उत्पन्न करने का अद्भुत कार्य किया है। "माता भूमि: पुत्रोऽहं पृथिव्या:।" पृथिवी को माता कहकर पूजा गया है और संसार को शस्य सम्पन्न और निवास के योग्य बनाने वाले पर्जन्य को पिता कहकर प्रार्थना की गयी है। "पर्जन्य: पिता स उ न: पिपर्तु।"

समग्र वैदिक साहित्य में पर्यावरण चेतना का निरूपण भिन्न-भिन्न जगह पर किया गया है। हमारी सृष्टि पञ्चमहाभूतों से निर्मित हुई है। ये पञ्चमहाभूत कल्याणकारी होंगे तभी पर्यावरण की उपयोगिता सिद्ध होगी। पर्यावरण संरक्षण के अन्तर्गत नदी-पर्वत-वन्य जीव जन्तु आदि का संरक्षण करना आवश्यक है। अथर्ववेद का मन्त्र पर्यावरण संरक्षण चेतना को प्रकट करता है-

यते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु।
मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पितम्।।

इस शोध पत्र में वैदिक साहित्य में निरूपित पर्यावरण चेतना के प्रगटीकरण को प्रस्तुत करके मानवजीवन के साथ उसका पारस्परिक संबन्ध को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

वैदिक पर्यावरण में वायु

डॉ. नीलम श्रीवास्तव रीडर, संस्कृत, ज्वाला देवी वि.म.स्ना.महा., कानपुर

यद्यपि वैदिक संहिताओं में 'पर्यावरण' शब्द की प्राप्ति का उल्लेख किसी ने भी नहीं किया है, किन्तु इसका यह आशय कदापि नहीं है कि वैदिक ऋषि प्रकृति के विभिन्न उपादानों के पर्यावरणीय महत्त्व का सूक्ष्मता से अपरिचित थे। वैदिक ऋषियों ने न केवल प्रकृति के विभिन्न रूपों के पर्यावरणीय महत्त्व का सूक्ष्मता से निरीक्षण किया है, अपितु इनके संरक्षण के उपायों को भी संकेतित किया है। पर्यावरण की आधुनिक परिभाषा के अनुसार भौतिक पर्यावरण के प्रकार 'वायु' को वेदों में अत्यन्त महत्त्व दिया गया है। वेदों में वायु के विभिन्न रूपों का विभिन्न अभिधानों से उल्लेख प्राप्त होता है। यथा- शोधक वात और उसके देवता वायु को 'पवमान' की संज्ञा दी गयी है- 'व्यार्त्या पवमानो विशतु: पापकृत्यया'। इसी प्रकार मरुत् वर्षावाहक वायुदेवता है- 'मरुद्भि: प्रच्युता मेघा वर्षन्तु पृथिवीमनु(अथर्ववेद)' । वात, वायु, अनिल, मातरिश्वा आदि वायु के ही अनेक रूप हैं।

प्रस्तुत शोध-पत्र में वेदों में उपलब्ध वायु के स्वरूप और उसके पर्यावरणीय महत्त्व पर प्रकाश डालने के साथ शुद्ध वायु की उपलब्धता तथा वायु शोधन के उपायों को उद्घाटित करने का प्रयत्न किया जायेगा।

अथर्ववेद में भूमि सूक्त एवं पर्यावरण

मूलचन्द प्रवक्ता-संस्कृत, रा.लो. महाविद्यालय चूरू

अथर्ववेद के बारहवें काण्ड का प्रथम सूक्त भूमि सूक्त (पृथिवी सूक्त) के नाम से विख्यात है। पृथिवी सूक्त का पूर्ण सारांश इसके बारहवें मन्त्र के 'माता भूमि: पुत्रोऽहं पृथिव्या:' शब्दों में प्रतिपादित है। यह पृथिवी हमें सर्वस्व देने वाली है और इसका संरक्षण करना हम जीवधारियों का कर्त्तव्य है। यह सत्य है कि यदि यह पृथिवी तथा जैवमण्डल सुरक्षित है तो इस पर आधृत जीवन भी सुरक्षित है। यह पृथिवी क्या है? भूमि क्या है? तथा जैव मण्डल क्या है? स्थल जल तथा वायुमण्डल से युक्त मण्डल जैवमण्डल कहलाता है। स्थलमण्डल और जलमण्डल से युक्त संयुक्त रूप से यह पृथिवी है। यह विस्तृत है तथा भूमि इसकी अपेक्षा छोटी है तथा जीवों द्वारा प्रयोज्यं है। यही कारण है कि भूमि को माता कहा गया है और ऋषि ने स्वयं को पृथिवी का पुत्र कहा है। क्योंकि उसके ऊपर सम्पूर्ण पृथिवी अर्थात् जैवमण्डल की सुरक्षा का भार है, न कि अंशरूप में विद्यमान केवल मात्र भूमि की सुरक्षा का।

यहाँ अथर्ववेद में (12.1.53) में स्पष्ट बताया गया है कि

द्यौश्च म इदं पृथिवी चान्तरिक्षं च मे व्यच:।
अग्नि: सूर्य आपो मेधां विश्वे देवाश्च सं ददु:।।

तीन मण्डल कौन-कौन से हैं तथा उनकी शक्तियाँ क्या हैं? पुनश्च उनके संरक्षण के ज्ञान को पाने के लिए भी ऋषि आतुर हैं

यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः।
यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत् सा नो भूमिः पूर्वपेये दधातु।।

इस पृथिवी पर समुद्र तथा नदियाँ और अनेक जलधाराएँ, प्रवाहित होती हैं, इस पृथिवी पर बभ्रू, काली तथा लाल रंग की मिट्टी की परतें हिम से आच्छादित ऊँची चोटियों वाले पर्वत, अरण्य, इसके वक्षस्थल में सोने तथा हीरे जैसी सम्पत्ति तथा इस पर मनुष्य, पशुपक्षी आदि सभी दो पैर तथा चार पैर वालों का वास है। सम्पूर्ण प्राणी जगत् इसी भूमि पर तो श्वास लेता है। इसी पृथिवी पर वृक्ष तथा वनस्पतियाँ है। चट्टानों, पत्थरों तथा धूल-मिट्टी से भी हुई यह भूमि नमन योग्य है।

पर्यावरण संरक्षण एवं धर्म

प्रेरिका अग्रवाल (शोधच्छात्रा) संस्कृत एवं प्राकृतभाषा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ

धर्म पर्यावरण संरक्षण में बहुत उपयोगी है। सुखी एवं स्वस्थ जीवन और पर्यावरण के लिये धर्म का पालन अत्यावश्यक है क्योंकि धर्म पालन से प्राणियों के हित की रक्षा होती है और समाज में बौद्धिक और शारीरिक शक्तियों का सदुपयोग होता है। चरक संहिता में कहा गया है- सामुदायिक स्वास्थ्य के लिए देशकाल और पंचमहाभूतों के गुणों में जो कमी हो रही है वह धर्माचरण में कमी का परिणाम है। सामान्य रूप से धर्म का स्वरूप है- अपने कर्तव्यों का पालन करना। प्राचीन ऋषियों ने धर्म के लिए कहा है कि जिन सदाचरणों से मनुष्य उन्नति करे और कल्याण को सिद्ध करे वही धर्म है। अपने लिए जो दुखद हो वैसा आचरण दूसरों के लिए न करना ही धर्म है। मनुष्य का धार्मिक आचरण तीन प्रकार का हो सकता है- स्वयं के प्रति, समाज के प्रति और प्रकृति के प्रति। स्वयं का आध्यात्मिक एवं शारीरिक विकास स्वयं के प्रति धर्म है। सामाजिक व्यवस्था का पालन करना समाज के प्रति धर्म है तथा प्रकृति के नियमों का पालन करना प्रकृति के प्रति धर्म है। इन तीनों धर्मों की विसंगति से उत्पन्न अधर्म ही पर्यावरण प्रदूषण का कारण बनता है। शास्त्रों में कहा गया है- **'धर्मो रक्षति रक्षितः'** अर्थात् जो धर्म की रक्षा करता है धर्म उसकी रक्षा करता है। बुद्धिमान् तथा विवेकशील मनुष्य सदैव प्रकृति तथा मानव के बीच के अन्योन्याश्रित सम्बन्ध में सन्तुलन बनाए रखते हैं।

वायु प्रदूषण का वैदिक समाधान

डॉ. ए.बी.चन्द्रमौलि रीडर, गणित विभाग, मेरठ कॉलेज, मेरठ (उ.प्र.)

यजुर्वेद के 'शान्तिमन्त्र' ओम् द्यौ शान्ति.........' में प्रकृति के नौ अंगों- द्यौ, अन्तरिक्ष, पृथिवी, आपः, ओषधि, वनस्पति, विश्वेदेवा, ब्रह्म, सर्व(शेष) में शान्ति बनाये रखने का उपदेश दिया है। इनमें शान्ति का अर्थ है- इनका सन्तुलन बनाये रखना। इनको प्रदूषित होने से बचाना। आधुनिक विज्ञान ने पर्यावरण-प्रदूषण के पांच (वायु, जल, मृत्तिका, ध्वनि तथा रेडियो- सक्रियता सम्बन्धी) अंग माने हैं। यजुर्वेद के उपर्युक्त अवशिष्ट चार अंगों के महत्त्व से विज्ञान अभी अनभिज्ञ है। भविष्य में विज्ञान की उन्नति के साथ उसे इन शेष चारों अंगों का महत्त्व भी पता लग जायेगा। वेद के अनुसार यज्ञ करना, वनों की सुरक्षा करना, नये वृक्ष लगाना, धूप का उपयोग, चाय-तम्बाकू आदि मादक द्रव्यों के उत्पादन व सेवन से बचना, वायु में देवत्व का भाव रखना तथा जीवन के दृष्टिकोण को सही दिशा में मोड़ने से वायु-प्रदूषण आदि की समस्या का समाधान सम्भव है।

वैदिक साहित्य में तीर्थ यात्रा, पर्यटन एवं पर्यावरण

सुधांशु कौशिक व बी.डी. जोशी जन्तु एवं पर्यावरण विज्ञान विभाग, गुरुकुल कांगड़ी वि.वि. हरिद्वार

प्रस्तुत आलेख में वैदिक सन्दर्भ में तीर्थ यात्रा तथा उसके महत्त्व का उल्लेख किया गया है। भारत में तीर्थ यात्रा का प्रचलन

प्राचीन काल से ही रहा है। प्राचीन काल में ये यात्राएं देवस्थानों, प्राकृतिक स्थलों तथा आत्मसन्तुष्टि के लिये की जाती थीं। परन्तु तीर्थ यात्रा का बदलता स्वरूप न सिर्फ मनुष्य के लिये बल्कि पर्यावरण के लिये भी एक बड़ा खतरा है तीर्थ का शाब्दिक अर्थ होता है 'पवित्र करने वाला'। तीर्थ को हम निम्न प्रकार से भी परिभाषित कर सकते हैं-

सत्यं तीर्थं क्षमा तीर्थं तीर्थमिन्द्रियविग्रह:।
सर्वभूतदया तीर्थं क्षमा तीर्थमार्जवमेव च।।
ज्ञानं तीर्थं दमस्तीर्थं संतोषस्तीर्थमुच्यते।
ब्रह्मचर्यं परं तीर्थं तीर्थं च प्रियवादिता।।

इन सुन्दर पंक्तियों में तीर्थ की महत्ता बताते हुए कहा गया है कि सत्य, क्षमा, इन्द्रियों पर नियन्त्रण, दया सरलता, ज्ञान धैर्य, तप आदि सब तीर्थ हैं। तीर्थों में भी सबसे श्रेष्ठ तीर्थ है अन्त:करण की आत्यन्तिक विशुद्धि। जबकि पर्यटन तीर्थ यात्रा का बदला हुआ स्वरूप है जिसमें पर्यटक अपनी मौजमस्ती या आत्मशान्ति के लिये यात्रा करता है। यह स्थल तीर्थ स्थल भी हो सकते हैं अथवा अन्य भी। परन्तु तीर्थ यात्रा के सभी प्राचीन धार्मिक, सामाजिक नियम धीरे-धीरे समाप्त हो रहे हैं। यदि परिवर्तन की यही गति रही तो तीर्थ यात्रायें सिर्फ पर्यटन बनकर ही रह जायेगी। बढ़ते पर्यटन ने तीर्थ यात्रा काअर्थ ही बदल दिया है जिन यात्राओं में प्राचीन काल में वाहनों का प्रयोग वर्जित होता था तथा पाप समझा जाता था वहीं पर्यटन आज वाहनों का अंधाधुंध प्रयोग हो रहा है इनमें वाहनों से निकलने वाली कार्बन मोनोक्साइ(co) कार्बनडाइऑक्साइड(co_2) आदि जहरीली गैस मानव व पेड पौधों के लिये अत्यन्त हानिकारक है जो कि पर्यावरण के लिये एक बड़ा खतरा है। वहीं दूसरी ओर बढ़ते पर्यावरण के दूष्प्रभाव में जैव विविधता का ह्रास भी शामिल है। यह अति आवश्यक है कि इस बढते पर्यटन के लिये कुछ नियमों का विस्तार किया जाये जो कि परिस्थितिक मित्र हो।

वेदों में पर्यावरण चेतना

देवेन्द्रपाल सिंह तोमर प्रवक्ता, समाजशास्त्र, जनता वैदिक कॉलेज बडौत (बागपत)

वेदों में पर्यावरण चेतना इस विषय पर पर्याप्त सामग्री मिलती है। पृथ्वी, जल, वायु और आकाश की शुद्धि और इनको प्रदूषण से बचाने का अनेक मन्त्रों में निर्देश है। पर्यावरण के संघटक तत्त्व कौन से हैं? विश्व के रक्षक तत्त्व कौन से हैं? तथा पर्यावरण की शुद्धि किस प्रकार हो सकती है? तथा पर्यावरण संरक्षण की क्या विधियां हैं? आदि विषयों पर जो संदर्भ प्राप्त होते हैं उनका विवरण वेदमन्त्रों में मिलता है। अथर्ववेद में 'आपो वाता ओषधय:' कहकर यह निर्देश दिया गया है कि पर्यावरण की रक्षा-हेतु वयु की शुद्धि पर ध्यान देना अनिवार्य है। अथर्ववेद में ही वायु और सूर्य के महत्त्व का वर्णन करते हुए कहा गया है कि तुम दोनों संसार के रक्षक हो। तुम अन्तरिक्ष में व्याप्त हो। तुम ही सभी प्रकार के रोगों को नष्ट करते हो(अथर्ववेद 4.5.1-7)। वेदों में वायुमण्डल की शुद्धि के लिए द्यावापृथिवी के संरक्षण पर विशेष बल दिया है। द्यावापृथिवी में सूर्य आदि लोक अन्तरिक्ष और पृथिवी तीनों का समावेश है।

भारत के ऋषियों द्वारा व्याख्यायित वेदों एवं परवर्ती पुराणों व धार्मिक ग्रन्थों मे पर्यावरण का सुन्दर चित्रण हमें प्राप्त होता है। मानव जीवन से पर्यावरण का घनिष्ठ सम्बन्ध है। वैदिक मानव शतवर्ष तक स्वस्थ रहकर जीने की कामना से ओत-प्रोत रहता था जो आदर्श पर्यावरण की कल्पना का अंग है। अत: वेद के अनुसार पर्यावरण संरक्षण के लिये प्राकृतिक पदार्थो की यथाशक्ति सुरक्षा अत्यावश्यक हैं। वेदों की प्रकृति और मनुष्य के मञ्जुल सामञ्जस्य के वर्णन को प्रस्तुत करना ही प्रस्तुत शोध-पत्र का आधार है।

वैदिक अग्निहोत्र और पर्यावरण

श्रीमती गायत्री आचार्या सरस्वती कन्या महाविद्यालय, तारानगर(चूरू) राजस्थान
अरुण कुमार आचार्य (शोधच्छात्र)राजकीय स्ना. महाविद्यालयकिशनगढ़(अजमेर) राज.

वैदिक अग्निहोत्र और पर्यावरण का अतिप्राचीन काल से सुन्दर समन्वय रहा है। प्रजापति ने यज्ञ सहित प्रजा की सृष्टि की और कहा कि मानव यज्ञरूपी साधन के द्वारा हविष्यान्न प्रदन कर अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र, इन्द्र, वसु, वरुण आदि देवताओं को पुष्ट करे। जिससे प्रकृतिभूत इन्द्रादि देवता पुष्ट होकर मानव का प्राकृतिक आपदाओं से संरक्षण प्रदान कर ऋतुओं के अनुसार यथासमय वर्षा आदि करते हैं। धनधान्य से परिपूर्ण होकर मानव परस्पर कल्याण को प्राप्त होते हैं। स्वयंभू ने यज्ञ के लिए ही मनुष्यों की सृष्टि करके कहा है- 'यज्ञ सबका कल्याण करने वाला है, अतः यज्ञ में तत्पर रहो। गीता में भी कहा है कि- 'तुम लोग इस यज्ञ के द्वारा देवताओं को उन्नत करो और वे देवता भी तुम लोगों को उन्नत करें। इस तरह निःस्वार्थ भाव से एक दूसरे को उन्नत करते हुए तुम लोग परम कल्याण को प्राप्त हो जाओ।'

अतः यज्ञ के द्वारा हम सभी पदार्थों की कामना करते हैं, जो मानव जीवन के लिए आवश्यक हैं। आदान प्रदान की यह प्रक्रिया लोक व वेद दोनों में देखी जाती है। कृषिकार्य में जब हम एक बीज का वपन करते हैं, तो उसके सहस्र गुण प्राप्त होते हैं। सूर्य समुद्र से वाष्प द्वारा जल ग्रहण कर सहस्र गुणी वृष्टि कर धरती को धन धान्य से परिपूर्ण करता है। इसी प्रकार जब हम देवों को हवि प्रदान कर पुष्ट करते हैं तब वे हमारी कामनाओं को पूर्ण करते हुए काम्य वस्तु प्रदान करते हैं।

जिस प्रकार शरीर की जठराग्नि से मुख मार्ग से हविष्यान्न प्रदान कर उससे बने रस द्वारा सम्पूर्ण शरीरावयवों को पुष्ट करते हैं, उसी प्रकार यज्ञकुण्ड की अग्नि मे दी गई हवि मूलप्रकृति को पुष्ट करती है। शतपथ ब्राह्मण में यज्ञ को प्रजा का पालक तथा रक्षक बताते हुए कहा गया है- अग्नि से धूम, धूम से मेघ और मेघों से वृष्टि होती है।

'अग्नेर्वैधूमो जायते धूमादभ्रमभ्रमाद् वृष्टिः'

पुराणों में तो यहाँ तक कहा गया है कि 'देवताओं के निमित्त यज्ञ न होने से अन्न का क्षय होता है, बादल नष्ट होते हैं, बादलों के नष्ट होने से वर्षा नहीं होती है, वर्षा के अभाव में मनुष्यों के लिये भोजन की कमी हो जाती है जिससे सम्पूर्ण संसार अकाल से पीडित हो जाता है।'

वैदिकसाहित्य में पर्यावरणविज्ञान

डॉ. रामेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी उपाचार्य एवं विभागाध्यक्ष(संस्कृत) रा.ग्रा.परास्नातक महा. पुखरायाँ, कानपुर(देहात)

वैदिक साहित्य आर्यजाति का वह साहित्य है जिसमें विश्व का सम्पूर्ण ज्ञान समाविष्ट है। 'वेदात्सर्व प्रसिद्ध्यति', 'सर्व ज्ञानमयो हि सः' एवं 'वेदे सर्व प्रतिष्ठितम्' आदि सूक्तियाँ इस बात की द्योतक हैं कि वह ज्ञान चाहे यज्ञविज्ञान हो, ज्योतिषविज्ञान हो, सृष्टिविज्ञान हो, प्राणविज्ञान हो, मनोविज्ञान हो, भौतिक विज्ञान हो, रसायनविज्ञान हो, वनस्पतिविज्ञान हो, जीवविज्ञान हो, वास्तु विज्ञान हो, गणित हो, कृषिविज्ञान हो, आयुर्विज्ञान हो, चाहे वह पर्यावरणविज्ञान हो इन सभी का मूलाधार वेद है। 'जीवेम शरदः शतम्' की भावना से वैदिक ऋषियों ने पर्यावरण के प्रत्येक घटक तत्त्वों पृथिवी, जल, वायु, वनस्पतियों तथा ओषधियों का संरक्षण, संवर्धन एवं शोधन हेतु प्रभूत उपाय सुझाये हैं।

इक्कीसवीं सदी में विश्व को पर्यावरण की समस्या से जूझना पड़ रहा है। सामाजिक, सांस्कृतिक भौतिक एवं जैविक आदि स्तरों पर मानव के लिए यह समस्या एक विभीषिका बन गयी है। विश्व की अनेक जटिल एवं गम्भीर समस्यायों के समाधान में वैदिक वाङ्मय का ज्ञान अतीव उपयोगी एवं प्रासंगिक है। वेद पर्यावरण चेतना एवं चिन्तन के प्रणेता हैं। पर्यावरण के संरक्षण एवं शुद्धिकरण की आधारभूत अवधारणायें वेदों में प्रस्फुटित हुई हैं। मानव को भूमितत्त्व से अन्न व सारे खाद्य पदार्थ, जलतत्त्व से जीवनी शक्ति, अग्नितत्त्व से ताप, ऊष्मा, गति और विकास, वायुतत्त्व से प्राण-शक्ति तथाआकाशतत्त्व से शब्द-शक्ति, ध्वनि तरंगें एवं संवेदनायें प्राप्त होती हैं। जीवजन्तु, पेड़-पौधे, वनस्पतियाँ व ओषधियाँ वातावरण को संतुलित रखने में महत्त्वपूर्ण योगदान करती हैं। यदि इनमें

से कोई भी तत्त्व प्रदूषित होता है तो जीव-जगत् पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसीलिए वैदिक ऋषियों ने पर्यावरण की शुद्धि हेतु प्रकृति के प्रत्येक तत्त्वों में शान्ति की कामनाकी थी।

वैदिक वाङ्मय में पर्यावरण के संघटक तत्त्वों के सन्दर्भ में गहन विचार-विमर्श किया गया है। पृथिवी, जल, वायु, तथा आकाश आदि की शुद्धि एवं इनको प्रदूषण से बचाने का उल्लेख वैदिक मन्त्रों में किया गया है।

वेदों में पर्यावरण चेतना

योगेन्द्र कुमार शास्त्री (शोधच्छात्र) संस्कृतविभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

मानव के मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य को प्रथमदृष्ट्या प्रभावित करने वाला घटक उसके आस-पास का वातावरण होता है, जिसके शुद्धिकरण एवं परिवर्तन हेतु ऋषियों में पर्याप्त चेतनता दिखाई पड़ती है। वेदार्थ के सम्यक् अनुशीलन से ज्ञात होता है कि समस्त पर्यावरण चेतना का मूल स्रोत वेद ही हैं। प्राचीन काल से मानव तथा मानवेतर प्राणी प्रकृति के सहचर रहे हैं, प्राकृतिक पर्यावरण के सान्निध्य में समस्त प्राणी का जीवनचक्र घूमता रहता है। पर्यावरण वायु, जल, भूमि, वनस्पति, पेड़-पौधे, प्रदूषण मृत्तिका, ध्वनि प्रदूषण एवं पशु और मानव सब मिलकर बनाते हैं। विगत करोड़ों वर्ष पूर्व से, जब से मानव, पशु, पक्षी, अन्य जीव और जीवाणु उपभोक्ता बनकर आये, तबसे पृथ्वी का यह चक्र निरन्तर और अबाधगति से चला आ रहा था जिसको जितनी आवश्यकता थी वह उन्हें मिलता रहा और प्रकृति आगे के लिए अपने में और उत्पन्न करके संरक्षित कर लेती है। पर्यावरण प्रदूषणों को समाप्त करने हेतु यजुर्वेद के उपाय अद्भुत और अलौकिक हैं। प्रदूषण से बचने के लिए ही वैदिक ऋषियों ने पर्वतों का सान्निध्य तथा नदियों के सङ्गमों को चुना। ऋषियों ने प्रकृति की इस प्रकार से व्याख्या की कि प्रदूषण की समस्या ही उत्पन्न न हों 'माताभूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्या:'(अथर्व. 12.1.12) कह कर भूमि का माता के तुल्य संरक्षण करने का उपदेश दिया है। ऋग्वेद एवं अथर्ववेद के अश्विनौ सूक्तों में पर्यावरण सन्तुलन के सूक्त मधुविद्या के रूप उभर कर सामने आये हैं।

पर्यावरण संरक्षण में आपः तत्त्व का प्रातिष्ठ्य

डॉ. रूपकिशोर शास्त्री रीडर- वेदविभाग, गुरुकुल काङ्गड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

जिस पृथिवीलोक पर प्राणीजगत् अपने-अपने कार्यव्यापार में सन्नद्ध है, वह सभी दिशाओं में विराजमान् पृथिवी-जल-वायु-सूर्य-चन्द्रमा-नक्षत्रगण औरअन्तरिक्षादि देवतत्त्वों से आवृत्त है। इन समस्त देवतत्त्वों को वेद का ऋषि स्नेहवृष्टिसम्पन्ना अम्ब- माताएँ मानते हुए उनसे समस्त दिशाओं में संरक्षण की याचना करता है। वेद एवं ब्रह्मवेत्ता ऋषिजन भलीभाँति अवगत एवं सावधान रहे हैं कि ये देवतत्त्व ही प्रकृति के सन्तुलनकर्त्ता एवं जीवजगत् के संरक्षक हैं। यह सच है कि जैव एवं वानस्पतिक जगत् के लिए जलीय पर्यावरण की अहर्निश मूल आवश्यकता एवं भूमिका है, इस दृष्टि से वेदों में प्रचुर मात्रा में इसका उल्लेख मिलता है। प्रकृति एवं सृष्टि के संरक्षण व पालनार्थ प्रधान तत्त्वों मे जल का प्रामुख्य असन्दिग्ध है। अतः वेद ने जल को भैषज्य रूप में माहात्म्य प्रदान किया है। इसको **अमीवचातनी, आपः सर्वस्य भेषजीः** तथा वाः इत्यादि पदावली से स्मरण किया है। उक्त तथ्यों की विवेचनापेक्षया आपःतत्त्व का पिण्डगत एवं ब्रह्माण्डगत अथवा व्यष्टिगत दृष्टि से इसके प्रातिष्ठ्य की उक्त शोधपत्र में मीमांसा की गई है।

पर्यावरण और प्रदूषण

डॉ. अम्बरीष कुमार शास्त्री एसो. प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, संस्कृतविभाग ज.ने. पी.जी.कॉलेज, बाराबंकी, (उ.प्र.)

पर्यावरण शब्द को बहुत व्यापक अर्थ में स्वीकार किया जाता है। इस प्रकार हमारे चारों ओर जो आवरण है उसी को पर्यावरण के रूप में स्वीकार करते हैं। हमारे चारों ओर भूमि, वायु, जल, आकाश, वृक्ष आदि सभी पर्यावरण के घटक हैं। प्रदूषण, वायु जल भूमि में अवान्छित, भौतिक, रासायनिक परिवर्तन होते हैं। जो प्राणिमात्र के स्वास्थ्य, सुरक्षा एवं कल्याण के लिए हानिकारक होते हैं।

वेद हमें सन्देश देते हैं कि व्यक्ति शुद्ध पर्यावरण में रहता हुआ सौ वर्षों तक जीवित रहे, वेद निर्दिष्ट मार्ग का अनुगमन करे तो आज का प्रदूषित पर्यावरण शुद्ध हो सकता है इसलिए वैदिक वाङ्मय को तथा वैदिक वाङ्मय संरक्षण को विश्वकल्याण की आधारभित्ति माना गया है। हमारे वेदों में पर्यावरण से सम्बन्धित अनेक उपायों का वर्णन प्राप्त होता है। वेदों को सृष्टि विज्ञान का मुख्य ग्रन्थ माना गया है। वैदिक युग में आर्यो, ऋषियों ने पर्यावरण के समस्त महत्त्वपूर्ण अवयवों- सूर्य, जल, वायु, अग्नि, पृथिवी, पशु-पक्षी वनस्पतियों की आराधनाओं का विधान किया। पर्यावरण के मूल अवयवों की दैवीय शक्तियों के रूप में प्रार्थनाएं की जिससे वे मानव के प्रति अनुकूल एवं शान्त हो अर्थात् शुद्ध एवं सन्तुलित रूप में प्राप्त हो।

अथर्ववेद के एक मन्त्र में पर्यावरण की शुद्धि का वर्णन करते हुए कहा गया है कि जहाँ पर्यावरण शुद्ध रहता है, वहाँ मनुष्य एवं सभी पशु-पक्षी सुखपूर्वक जीवनयापन करते हैं। मन्त्र मं पर्यावरण के लिए परिधि शब्द और पूर्ण शुद्धि हेतु ब्रह्मशब्द है-

'सर्वो वै तत्र जीवति गौरश्वः पुरुषः पशुः। यत्रेदं ब्रह्मक्रियते परिधिर्जीवनाय कम्।।

पर्यावरण संरक्षण में वेदों की भूमिका

डॉ. आशा रानी पाण्डेय रीडर(संस्कृतविभाग) डी.एस.एन. कॉलेज, उन्नाव

हिन्दू धर्म में जो यह मान्यता प्रचलित है कि यह शरीर पंचतत्त्वात्मक है तो यहाँ यह स्पष्ट कर देना चाहती हूँ कि केवल मानव शरीर ही नहीं वरन् सम्पूर्ण पर्यावरण पंचमहाभूतों अग्नि, जल, आकाश, वायु और तेजस् से ही विनिर्मित है इसीलिये वैदिक मानव और उनके अग्रचेता ऋषियों ने सृष्टि के कारण भूत तत्त्वों को दैव श्रेणी में रखकर उनका स्तवन और आराधन किया था। उसका निहितार्थ यही था कि जब पर्यावरण का निर्माण करने वाले घटक भूमि, जल, अग्नि वायु आदि प्रसन्न और सुस्थ रहेंगे तो मानव के परितः स्थित पर्यावरण भी स्वस्थ एवं जीवनानुकूल रहेगा। रोग, दोष, संताप मानव शरीर और समाज से दूर रहेंगे।

वैदिक ऋषियों ने जहाँ यज्ञों द्वारा वातावरण, जो कि व्यापक पर्यावरण का एक अंश मात्र है, को प्रदूषण मुक्त रखने का अनूठा उपाय सोचा था। वहीं 'तन्मे मनः शिव संकल्प मस्तु' कहकर मनोविकारों के शमन का उपाय भी बताया था।

जिस 'आक्सीजन' की प्राणवाही शक्ति से पश्चिम का वैज्ञानिक सत्रहवीं शताब्दी में परिचित हो पाया था। उसकी जीवनीशक्ति से प्राणदायिनी ऊर्जा से, अमृतत्वसे, वैदिक ऋषि 'वायु' के रूप में ईसा से हजारों साल पूर्व से परिचित थे। तभी तो आर्ष कण्ठ से वायु की वन्दना हेतु निम्न स्वर फूट उठे थे- **'यद दो वात् ते ग्रहे, अमृतस्य निधिर्हतः ततो नो देहि जीवसे'**।

वैदिक ऋषि सम्पूर्ण प्रकृति की अनुकूलता की कामना से उन सभी कार्यो से बचने तथा अपने अनुयायियों को ऐसे कार्यकरने का निषेध करते थे जिनसे प्रकृति और पर्यावरण का सन्तुलन बिगड़े वैदिक पद्धति में असंतुलन का नाम हिंसा और संतुलन का अर्थ शान्ति माना गया है। इसीलिए वैदिक ऋषि निर्देश देता रहा है-**'मापो ओषधी हिन्सीः अन्तरिक्षं मा हिंसी'** आदि अर्थात् जल को गन्दा (प्रदूषित) न करो। यहाँ अन्तरिक्ष प्रदूषण का तात्पर्य पर्यावरण में विषैली गैसें, तथा अभद्र वाणी के प्रयोग से होने वाले प्रदूषण से माना जा सकता है। जिसके शमनार्थ वैदिक मानव यज्ञ और मन्त्रादि का प्रयोग करते थे।

वेदों में हजारों वर्ष पूर्व मनुष्य के विषय में प्रकृति और पर्यावरण के विषय में जो कुछ कहा गया है निःसन्देह वह आज भी अत्यधिक उपयोगी एवं व्यवहारिक है तथा समाज को जागरूक रखने के लिये महत्त्वपूर्ण है। वास्तव में यदि पर्यावरण परिशोधन के लिये प्राचीन ऋषि चिन्तन को जन सामान्य के चिन्तन में उतारा जा सके तो पर्यावरण की शुद्धता के साथ-साथ कर्तव्य की निकृष्टता तथा चिन्तन की भ्रष्टता का परिष्कार भी संभाव्य है।

वेदों में पर्यावरण की अवधारणा

डॉ. मुरली मनोहर द्विवेदी रीडर, संस्कृत विभाग महामति प्राणनाथ महाविद्यालय, मऊ चित्रकूट

डॉ. संतोष कुमार चतुर्वेदी वरिष्ठ प्रवक्ता, इतिहास विभाग, महामति प्राणनाथ महाविद्यालय, मऊ चित्रकूट

वेद शब्दका अर्थ है ज्ञान। इसीलिए वेद को 'सर्वज्ञानमयो हि सः' कहा गया है। अर्थात् वेदों में वह समस्त ज्ञान सन्निविष्ट

है, जो मानव के लिए आवश्यक और कल्याणकारी है 'भूतं भव्यं भविष्यच्च सर्वं वेदात् प्रसिध्यति।' वर्तमानयुग में सर्वत्र पर्यावरण सम्बन्धी चर्चा हो रही है। तथा उसके संरक्षण के समाधान खोजे जा रहे हैं। वेदों में पर्यावरणीय तत्त्व, जल, वायु, वन, अन्तरिक्ष आदि की चर्चा प्रभूत रूप में प्राप्त होती है तथा सर्वांग स्वस्थ रहते हुए सौ वर्ष जीने की कामना की गयी है। सूर्य, अग्नि, वनस्पतियाँ, औषधियाँ, शुद्ध वायु और जल ही स्वस्थ और दीर्घ जीवन के कारक हैं इसी लिए वैदिक ऋषियों ने इन कारणों की अनेकत्र भूरिशः स्तुति की है। इन स्तुतियों से प्रकारान्तर जल, वायु आदि शुद्धता, पवित्रता बनाये रखने की ही कामना प्रकट होती है। जल सृष्टि का आद्य महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। जल, नदी, मेघ आदि का प्रभूत वर्णन जल के महत्त्व और पावनत्व की भाावना प्रकट करता है। वायु प्राणों का आधार है। प्राण का अर्थ ही है -'श्वास-प्रश्वास लेना'। यज्ञ का अनुष्ठान वायु का शोधक और रोगों कानाशक है।

वायु की शुद्धि का सर्वोत्कृष्ट कार्य, यज्ञ-विधान है। वेदों में यज्ञ को सृष्टि का आधार कहा गया है। इसका प्रभाव हमें सभी धर्मग्रन्थों, पुराणों और संस्कृत साहित्य में भी प्राप्त होता है। यज्ञ के प्रभाव को जानने के लिए इस समय अनेकों प्रयोग चल रहे हैं और उनका यथावर्णित परिणाम भी प्राप्त हो रहा है। वैदिक वाङ्मय में नित्य पंचमहायज्ञों, नित्यहोम का विधान इसी दृष्टि से किया गया है- माताभूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः' और पृथ्वी के वनों, पर्वतों ,पशुओं, नदियों, आदि का वर्णन पर्यावरण की शुद्धता की दृष्टि से ही किया गया है।

इस प्रकार समस्त वैदिक वाङ्मय में पर्यावरण के अनिवार्य अंगभूता जल, वायु, औषधियाँ आदि अनेक प्रकार से स्तुत और वर्णित हैं। प्रस्तौत्य शोधपत्र में इन्हीं बिन्दुओं परविवेचन किया जायेगा।

वेदों में पर्यावरण

रजनी महीनीया(शोधच्छात्रा) संस्कृतविभाग, जम्मू विश्वविद्यालय

वैदिक ऋषियों ने जीवनऔर पर्यावरण के सम्बन्ध का ज्ञान रखते हुए देवी शक्तियों से प्रार्थना की है जिससे इन समस्त देवी-शक्तियों का सान्निध्य और संरक्षण प्राप्त हो सके।

अथर्ववेद के कुछ मन्त्रों में पृथ्वी, पशुओं आदि की स्तुति सुख देने के लिए की गई है। इस प्रकार के अनेकों मन्त्र वेदों में पर्यावरण की धारणा को स्पष्ट करते है। वैदिक ऋषियों ने पर्यावरण संरक्षण हेतु ज्ञान वेदों में दिया है। पर्यावरण संरक्षण की धारणा वैदिक काल से ही चली आ रही है। स्मृतिकाल में पर्यावरण सम्बन्धी धारणा उत्कृष्ट रूप में उपलब्ध होती है।

धर्मसूत्रों में भूमि-शुद्धि, शौच और अहिंसा केप्रति धारणा उपलब्ध होती है। गौतम धर्मसूत्र में शास्त्रविहित शौच नियमों का पालन करने का उल्लेख मिलता है। धर्मसूत्रों के उपरान्त उपनिषदों में भी पर्यावरण की धारणा उपलब्ध होतीहै। उपनिषदों में सत्य, धर्म, समृद्धि, स्वाध्याय, एकात्म दर्शन और आत्मकल्याण करते हुए प्रमाद(आलस्य) न करने की अति उत्तम धारणा पाई जाती है। यही अन्तिम आदेश-उपदेश वेद रहस्य एवं शिक्षा है। इसी आदर्श को भविष्य के जीवन में सर्वदा रखने का उपदेश दिया है।

वैदिक साहित्य में पर्यावरण चिन्तन

रेखा जैन(शोधच्छात्रा) संस्कृतविभाग, अलगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ

पर्यावरण एवं जीवसमुदाय का घनिष्ठ एवं पारस्परिक सम्बन्ध है। जीवसमुदाय की सफलता में पर्यावरण का विशेष योगदान है। वेदों के अधिकांश सूक्त पर्यावरणीय संस्कृति से परिचित कराते हैं। वैदिक ऋषियों ने जीवन मात्र के कल्याणार्थ पर्यावरण का महत्त्व और उसकी रक्षा, प्रकृति के प्रति सन्निकटता रोगों के उपचार एवं स्वास्थ्य-सम्बन्धी अनेक उपयोगी तत्त्वों को प्रकाशित किया। वेदों में पंच महाभूतों की देवताओं के माध्यम से अनेक सूक्तों में स्तुति की गयी है। अथर्ववेद में पृथ्वी को माता- माताभूमिःपुत्रोऽहं पृथिव्याः' तथा जलवर्षक मेघों को पिता स्वरूप मानकर उनको पूजा गया है। वेदों एवं परवर्ती साहित्य में पर्यावरा का सुन्दर चित्रण मिलता है।

पर्यावरण का कोई भी भाग जब प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से जीवित प्रजापति के कल्याण में बाधक होता है, उसे प्रदूषण कहते हैं। वेदो में पर्यावरण संरक्षण की पर्याप्त सामग्री प्राप्त होती है। उनमें पर्यावरण को अनेक वर्गो में विभाजित किया है, यथा- 1. जल,

2. वायु, 3. ध्वनि, 4. भूमि, 5. औषधि। यही नहीं इनमें सामंजस्य बनाये रखने की प्रार्थना भी की गयी है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि पर्यावरण प्रदूषण जन्य ज्वलन्त समस्याओं का इस पत्र में वेदों को आधार बनाकर समाधान करने का प्रयास किया गया है।

वैदिक वाङ्मय में पर्यावरणीय प्रसंग

डॉ. संजय कुमार सिंह असि. प्रोफेसर(भूगोल) तिलक महाविद्यालय औरैया(उ.प्र.)

प्रस्तुत शोधपत्रके माध्यम से वैदिक ऋचाओं में बिखरे पड़े पर्यावरणीय संदर्भों के विवेचन का लाघव प्रयास किया गयाहै। ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में परमपुरुष से इस सृष्टि के आविर्भाव का वर्णन है। पूर्ण ब्रह्म ने आत्मक्रीड़नार्थ इस वैविध्यपूर्ण विलक्षण सृष्टि का सृजन किया है। यही ब्रह्म इस जगत् का संवर्धन-संरक्षण भी करता है और पुनः इस जगत् का अपने में उपसंहार भी कर लेता है। इसी ने वन-उपवन, नदी-पर्वतों, वायुमण्डल, जीव, मानव आदि की सृष्टि की है। अथर्ववेद के पृथ्वीसूक्त में भूमि को 'विश्व का भरणपोषण करने वाली, धनों की खान, सबको प्रतिष्ठित करने वाली, सुवर्णादि को धारण करने वाली तथा जगत् को बसाने वाली पृथ्वी के प्रति मातृभाव हमारी संस्कृति की विशेषता है। वेद की ऋचा कहती है- माताभूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः'। सूर्य पूरी पृथ्वी एवं इसके जीवमण्डल के ऊर्जा का एक मात्र स्रोत है। इसके बिना जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। इसकी महत्ता के चलते वैदिक ऋषियों नें इस विशाल विश्व में सूर्य को वही स्थान दिया है जो शरीर के आत्मा का है। ऋग्वेद का उद्घोष है- 'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च' (ऋ. 1/115/2)। वेदों में वायुमण्डल की शुचित के साथ ही जल के शुद्धिकरण पर विशेष बल दिया गया है। इसके अतिरिक्त वनों एवं वन्यजीवों के संरक्षण तथा संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग का संदेश भी वैदिक ग्रन्थों में भरपूर है। आदर्श जीवन एवं समाज के लिये ईशोपनिषद् त्यागपूर्ण भोग तथा लोभ रहित जीवन का संदेश देते हैं- 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।'

वेदों में पर्यावरण

सचिन कुमार(शोधच्छात्र) हिन्दीविभाग, अ.मु.वि.वि., अलीगढ़

वैदिक वाङ्मय में पर्यावरण संरक्षण की भावना सर्वत्र व्याप्त है। वेदों में वायुमण्डल को शुद्ध करने एवं वायु प्रदूषण को रोकने की दृष्टि से यज्ञ करने का विधान किया गया है, यज्ञ सभी देवताओं की आत्मा है- 'सर्वेषां देवानामात्मा यद् यज्ञः।' यज्ञ से देव शक्तियों का संवर्धन होता है देवताओं के संतुष्ट और तृप्त होने पर ही यज्ञ फल की प्राप्ति होती हैं- 'तृप्तेषु सर्वदेवेषु यज्वा यज्ञफलं लभेत्।'

वेदों में वायुमण्डल को शुद्ध करने एवं वायुमण्डल को रोकने की दृष्टि से नियमित रूप से यज्ञ कराने का विधान बतलाया गया है- 'यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म।' वैदिक शान्तिपाठ तो पर्यावरण साधना का शाश्वत उद्घोष है'-

ओम् द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्ति।

वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवा शान्तिर्ब्रह्मशान्तिः सर्व शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मां शान्तिरेधि।। यजु. 36/171

ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में पशु-पक्षी मनुष्यादि जीवों, सूर्य-चन्द्रादि देवों की उत्पत्ति यज्ञ से ही बतलायी गयी है। यज्ञ सर्वत्र सकल कल्याण कारक तथा सकल सृष्टि संरक्षक है। इसलिए यह हमारी संस्कृति का आराध्य इष्ट रहा है।

वेदों में पर्यावरण चिन्तन

शिशिर कुमार पाण्डेय(शोधच्छात्र) संस्कृत विभाग, राँची झारखण्ड

भारत के मनीषियों ने हजारों वर्ष पूर्व मानव-जीवन के कल्याणार्थ पर्यावरण का महत्त्व और उसकी रक्षा, प्रकृति से सान्निध्य, संवेदनशीलता, रोगों के उपचार तथा स्वास्थ्य-सम्बन्धी अनेक उपयोगी तत्त्व निकाले थे। वेदकालीन समाज में न केवल पर्यावरण के सभी पहलुओं पर चौकन्नी दृष्टि थी, वरन् उसकी रक्षा और महत्त्व को भी स्पष्ट किया गया था। उन लोगों की भी दृष्टि पर्यावरण

प्रदूषण की ओर थी, अतः उन्होने प्रत्यक्ष या परोक्षरूप से पर्यावरण की रक्षा की और समाज का ध्यान इस ओर आकर्षित किया था। वे भूमि को ईश्वर का रूप ही मानते थे। पर्यावरण की रक्षा पूजा का एक अविभाज्य अंग था।

यस्य भूमिः प्रमाऽन्तरिक्षमुतोदरम्।

दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः।।(अथर्व. 10.17.32)

अर्थात् "भूमि जिसकी पाद स्थानीय है और अन्तरिक्ष उदर के समान है तथा द्युलोक जिसका मस्तक है। उन सबसे बड़े ब्रह्म को नमस्कार है।"

वेदों में पर्यावरण को विभिन्न वर्गों में विभाजित किया जा सकता है जैसे- वायु, जल, ध्वनि, खाद्य, मिट्टी वनस्पति, वनसम्पदा, पशुपक्षी संरक्षण आदि।

वेदों में पर्यावरण

राजीव कुमार त्रिपाठी संस्कृतविभाग, इ.वि.वि. इलाहाबाद

आज विश्व का सर्वाधिक चर्चित और चिन्तनीय विषय पर्यावरण है। पर्यावरण प्रदूषण विश्व की प्रमुख समस्या है। पर्यावरण के घटक तत्त्व हैं- वायु, जल, भूमि, वृक्ष एवं वनस्पतियाँ। अथर्ववेद में सर्वप्रथम जलवायु के अतिरिक्त ओषधि या वृक्ष वनस्पतियों को पर्यावरण का घटक तत्त्व बताया गया है। वेद में इन तत्त्वों को छन्दस् कहा गया है। छन्दस् का अर्थ है आवरक या पर्यावरण। जल, थल, वायु और समाज का वह अवांछनीय परिवर्तन जो मानव तथा उससे सम्बन्धित जीव धारियों को हानि पहुँचाता है प्रदूषण कहलाता है। वैदिक ऋषियों ने पर्यावरणप्रदूषण को रोकने केलिए जलवायु और वृक्ष वनस्पतियों को प्रमुख साधन बताया है।

वैदिक साहित्य में वर्णित पर्यावरण चेतना

वैशाली श्रीवास्तव हिन्दी विभाग, फीरोज गाँधी कालेज, रायबरेली

पर्यावरण के प्रति भारतीय मनीषा आदिकाल से ही सचेत रही है। हमारे ऋषि महर्षियों ने प्रकृति के गूढ रहस्यों को जानने का प्रयास किया और वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि यह सृष्टि पंच महाभूतों-पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश के सामंजस्य से बनी है। वैदिक ऋषियों ने समस्त प्राकृतिक शक्तियों की महिमा में मुक्तकंठ से स्तुतिगान किया है।

अध्यात्मवादी वैदिक ऋषि पूर्णतः पर्यावरण प्रदूषणमुक्त धरा की कल्पना करता है, जहाँ प्रत्येक प्राणी को ऐसा अनुभव हो जैसे सम्पूर्ण वायुमंडल मधु की वर्षा कर रहा है। यह द्युलोक, ये सूर्य-चंद्र, ये दिन-रात सभी मधुमय हैं। नदियाँ मधु की धारा प्रवाहित कर रही हैं। समस्त वनस्पतियाँ और औषधियां हमारे लिए पृथ्वी का अमृत-तत्व संचित करती हैं। 'प्रातः स्मरण' में हम प्रतिदिन गंधवती पृथ्वी, रसमय जल, सुखद स्पर्शयुक्त वायु, तेजस्वी अग्नि और शब्द-गुण संपन्न आकाश की कामना करते हैं 'वैदिक शांतिपाठ' इसी पवित्र कल्पना से परिपूर्ण एक महत्वपूर्ण अभिलेख है जिसमें वर्णित है कि इस पर्यावरण का प्रत्येक तत्व शांतिदायक हो।

ध्वनि प्रदूषण के विषय में भी हमारे मनीषियों की जागरूकता प्रशंसनीय है। वेदों में कहा गया है कि मनुष्य को आचरण की मर्यादा निर्धारित करके ही ध्वनि का प्रयोग करना चाहिए अन्यथा असंयमित ध्वनि प्रयोग पर्यावरण प्रदूषण की सृष्टि करता है। अतः वह मधुर मंद ध्वनि में बोले एवं सुमधुर, कर्णप्रिय संगीत का आनंद लें, यही श्रेयस्कर है -

वस्तुतः प्राचीनकाल में ही हमारे वेदों में संपूर्ण पर्यावरण चेतना पर ध्यान इंगित किया गया है। पृथ्वी, वायु, जल, अग्नि, आकाश की स्वच्छता व सुप्रयोग के साथ ध्वनि प्रदूषण पर भी ध्यान दिया गया है साथ ही वैचारिक प्रदूषण दूर करने के लिए जीवन मूल्यों और आदर्शों की स्थापना पर बल दिया है। आधुनिकता के नाम पर पर्यावरण की अवमानना हमारी एक आदत सी बन गई है। प्रकृति विजय का स्वप्न देखते-देखते हम यह भूल गए हैं कि मनुष्य प्रकृति पुत्र है। आज आवश्यकता इस बात की है कि हम अपने वैदिक ऋषि-मनीषियों के सुविचारित एवं सुचिंतित पर्यावरण-संरक्षण के मार्ग पर चलकर प्रकृति से तादात्म्य स्थापित करें क्योंकि वेदों की वैज्ञानिकता ओर सार्वभौमिकता सुप्रमाणित है।

ऋग्वेदिक पंचतत्त्वों की स्तुति तथा पर्यावरण

डॉ. शालिनी अग्रवाल प्रवक्ता- जुहारी देवी गर्ल्स पी.जी. कॉलेज, कानपुर

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में समस्त विश्व के समक्ष ग्लोबल वार्मिंग की समस्या एक ज्वलंत तथा विनाशकारी समस्या के रूप में साक्षात् विद्यमान है तथा हर क्षेत्र में प्रयास जारी है कि कैसे इस समस्या से विश्व को उबारा जा सके। ऐसी भयावह स्थिति में जब हम प्राचीनतम ऋग्वेद का अध्ययन करते हैं तो स्पष्ट होता है कि वैदिक ऋषियों ने इन्हीं विपदाओं से विश्व का बचाने के लिए समस्त प्राकृतिक शक्तियों के नाम पर सूक्तों(अग्निसूक्त, पृथ्वी सूक्त इत्यादि) का नामकरण कर हम सभी को उनकी महत्ता से अवगत कराने का तथा उनके प्रति यज्ञ द्वारा कृतज्ञता व्यक्त करने का विधान स्थापित कर दिया था।

वैदिक वाङ्मय में सम्पूर्ण सामाजिक तथा सांस्कृतिक गतिविधियों का केन्द्र बिन्दु यज्ञ ही स्वीकृत था। तत्कालीन व्यक्ति के जीवन के प्रत्येक कार्य में यज्ञ ही श्रेष्ठ कर्म निर्धारित किया गया था।

यह अकाट्य सत्य है कि मानव का जीवन पशुओं तथा पेड़ पौधों पर पूर्ण रूपेण आश्रित है। पेड़, पौधों एवं पशुओं का जीवन वर्षा पर अवलम्बित है क्योंकि वर्षा के द्वारा ही प्रकृति स्वस्थ होती है और मानव मात्र के लिए दूध, फल इत्यादि की उत्पत्ति में सहायक होती है। यज्ञ का महत्त्व इसलिए भी है कि यह वर्षा में सहायक है। शतपथ ब्राह्मण का वचन है कि 'अग्नि से धूम, धूम से बादल तथा बादलों से वृष्टि होती है।' मनु स्मृतिकार ने यज्ञीय पदार्थों के लाभों पर लिखा है कि 'अग्नि में डाली हुई हवि सूर्य की किरणों में पहुंचती है तथा सूर्य की किरणों से वृष्टि होती है और बरसात से अन्न तथा अन्न से प्रजा की उत्पत्ति होती है।'

वस्तुत: यह मानव मात्र की अकृतज्ञता ही है कि वह अपने कुकृत्यों के द्वारा जीवनदायिनी प्रकृति को क्षतिग्रस्त कर रहा है। आज आवश्यकता है कि पुन: वैदिक यज्ञीय विधानों की स्थापना की ताकि हम अपने पूर्वजों के भांति ही शुद्ध तथा आनन्ददायक वातावरण में श्वास लेकर पर्यावरण के निर्माण में सहायक सिद्ध हो सकें यदि हम ऐसा करने की प्रेरणा से मानव मात्र को आन्दोलित करने में सक्षम हो सकें तो **सर्वे सुखिनः भवन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः** का वैदिक जयघोष वास्तविक रूप में प्रभाव में आ सकेगा।

पर्यावरण-संरक्षण में वैदिक साहित्य की प्रासंगिकता

डॉ. निरपेन्द्र कुमार सिन्हा प्रवक्ता- समाजशास्त्र विभाग चौ.चरणसिंह पी.जी. कॉलेज, हैवरा, इटावा(उ.प्र.)

पर्यावरण के प्रति भारतीय मनीषी आदिकाल से ही सचेत रहे है। हमारे ऋषि-मुनियों ने प्रकृति के गूढ़ रहस्यों को जानने का प्रयास किया और वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि यह सृष्टि पंचमहाभूतों-पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश के सामंजस्य से बनी है। वैदिक ऋषियों ने अपने साहित्य में समस्त प्राकृतिक शक्तियों की महिमा को मुक्तकण्ठ से स्तुतिगान द्वारा प्रस्तुत किया है।

भारतीय सांस्कृतिक परम्परा का शुभारम्भ ही वनों से हुआ इसी कारण हमारी प्राचीन संस्कृति आरण्यक या तपोवनी संस्कृति के नाम से जानी जाती है। भारतीय वाङ्मय वेद, पुराण से लेकर लौकिक संस्कृत-साहित्य, महाकाव्य एवं नाटकों में प्रकृति-चित्रण के साथ पर्यावरण संरक्षण के प्रति अत्यन्त जागरूकता थी। वैदिक से ही मनुष्य के जीवन में पर्यावरण का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। पयार्वरण के विभिन्न घटकों यथा वनस्पति के लिए तो ऋग्वेद में अनेक सूक्त(1.90, 1.91, 10.97) प्राप्त होते हैं, जिनमें पर्यावरण की महिमा एवं आवश्यकता की प्रचुर जानकारी मिली है। 'वानस्पत्य' नामक सूक्त में वनस्पति को देवता माना गया है। ऋग्वेद में वनस्पति और वृक्षों को न काटने का परामर्श है पर हानिकारक घास(स्वास्थ्य के लिए हानिकारक) को काटने की सलाह दी गई है।

'मा काकम्वीरमुद्वृहो वनस्पतिम्। अशस्वतीर्वि हि नीनशः।। (ऋग्वेद 6.48.16)

अत: उपरोक्त से स्पष्ट है कि आज आवश्यकता इस बात की है कि हम अपने पूर्वज ऋषि-मुनियों के सुविचारित एवं सुचिंतित पर्यावरण-संरक्षण के मार्ग पर चलकर प्रकृति के तादात्म्य स्थापित करें, जैसा वैदिक साहित्यों में भी वर्णित है जो प्रासंगिक है। उन्होंने अपने चिन्तन के आधार पर हमें दोनों मार्गों का परिचय कराया है। पर्यावरण संरक्षण से ही मानव-समाज का सरंक्षण संभव है। अन्यथा प्रलय की ओर हमारा उन्मुख होना निश्चित है। वस्तुत: प्रकृति-पोषण में ही हमारा श्रेयस् और कल्याण निहित है।

वेदों में पर्यावरण चिन्तन

उमेश कुमार शर्मा सांडाला जयपुर

वेद अनन्त ज्ञानरूप, सार्वभौमिक, सार्वकालिक, सार्वग्राही और स्वतः सिद्ध है। वेद सम्पूर्ण जीवनदर्शन है, ज्ञान की विविध विध ाओं से युक्त हैं। वेद ज्ञान के वे अजस्र स्रोत हैं, जो विश्व की अनेक जटिल व गम्भीर समस्याओं के समाधान हेतु प्रासंगिक हैं। पर्यावरण सम्बन्धी आधारभूत अवधारणाओं का प्रथम दिग्दर्शन वैदिक-वाङ्मय में होता है इस आर्ष ज्ञान में प्रकृति के शाश्वत नियमों पर आध ारित पर्यावरण चिन्तन प्रच्छन्न एवं प्रत्यक्ष रूप से सर्वत्र परिलक्षित है।

बीसवीं शती के अन्तिम चरण से विश्व को पर्यावरण समस्या से जूझना पड़ रहा है। सामाजिक, सांस्कृतिक, भौतिक और जैविक आदि स्तरों पर मानव के लिए यह समस्या एक विभीषिका बनती जा रही है। विकसित एवं विकासशील देश पर्यावरण संरक्षण प्रयोजनार्थ प्रचुर धन व्यय कर रहे हैं। पृथ्वी सम्मेलन जैस अन्तर्राष्ट्रीय आयोजन कर रहे हैं। अभिनव अनुसंधान हो रहे हैं। ये समग्र प्रयास एवं आधुनिक विज्ञान पर्यावरणीय समस्याओं का निराकरण नहीं कर सके हैं। ऐसी विकट स्थिति में पर्यावरणीय समस्याओं के समाधान हेतु वैदिक वाङ्मय का विशिष्ट परिशीलन अति प्रासंगिक है। पर्यावरण के भौतिक एवं सांस्कृतिक पक्ष के संरक्षण हेतु जो मूलभूत अवधारणायें वैदिक वाङ्मय में प्रस्थापित हुई हैं उनमें यजुर्वेद की राष्ट्रीय प्रार्थना में- 'आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो' इत्यादि में वनस्पतियों, औषधियों के फलने-फूलने की कामना की गई है। वन/वृक्षों की पुत्रवत् रक्षा करने के निर्देश वेद में मिलते हैं। अथर्ववेद के भूमि-सूक्त में पदे-पदे वृक्षों के रक्षण एवं भूमि के खनन को रोकने का निर्देश है। पदे-पदे वन, औषधि एवं कृषि के महत्त्व का वर्णन पर्यावरण की रक्षा का ही द्योतक है। इन सबका विवेचन प्रस्तुत शोध-पत्र में किया गया है।

वेदों में पर्यावरण

आचार्य देवांशु कुमार सिंह 'शास्त्री' जयप्रकाश विश्वविद्यालय छपड़ा (बिहार)

मनुष्य एवं अन्य प्राणी जगत् वृक्ष-वनस्पतियों के चारों ओर पञ्चमहाभूतों की अवस्थिति ही पर्यावरण है। जब ये समृद्ध होते हैं तो हमें जीवन एवं निरोगता प्रदान करते हैं और जब ये दूषित हो जाते हैं तो हमारी चिन्ता का विषय बन जाते हैं। आज औद्योगिक युग में पर्यावरण का उपयोग अपने स्वार्थ के लिए मनुष्यों द्वारा किया जाता है, जिससे पर्यावरण की समस्या पूरे विश्व में विकराल रूप ले चुकी है। वैदिक काल में सृष्टि साम्यावस्था में थी। ऋषियों ने प्रकृति की इस प्रकार से व्याख्या की है कि प्रदूषण की समस्या ही उत्पन्न न हो-'माताभूमिः पुत्रोऽपृथिव्याः।'(अथर्ववेद- 12.1.12) अथर्ववेद में पूरा सूक्त ही पृथ्वी को समर्पित है। वृक्ष या वनस्पतियां पृथ्वी की उर्वरा शक्ति बढ़ाने तथा वर्षा में सहायक हैं। अतः वनस्पतियों को बढ़ाने की बात कही गयी है- 'वनस्पति वनआस्था पयध्वम्।' (ऋग्वेद 10.101.11) वेदों में वनस्पतियों को शान्ति का कारण भी बताया गया है- 'वनस्पति शमितारम्'(यजुर्वेद 28.10) वेदों में पर्यावरण के सभी घटकों तथा पर्यावरण प्रदूषण के निवारण की बात भी कही गयी है, पर्यावरण की शुद्धता के लिए यज्ञों की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। वेद हमारे पथप्रदर्शक ही नहीं जीवन भाग्य-विधाता हैं, उनमें ऋषियों-मुनियों ने जिस प्रकार से पर्यावरण की व्याख्या की है वह प्रादेशिक स्तर पर, राष्ट्रिय स्तर पर तथा वैश्विक स्तर पर आज भी प्रासंगिक है। वेद में पर्यावरण के समस्या के समाधान की ओर संकेत है- ' यत् ते भूमिं विश्वनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु।' (अथर्ववेद 12.1.37)

वेदों में पर्यावरण की अवधारणा

डॉ. रेनू तिवारी डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी रा.महा.भदोही

वेद ज्ञान के भण्डार हैं। इसमें विज्ञान के भी मूलभूत संकेत यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। ज्ञान-विज्ञान के प्रत्येक रहस्य का मूल प्राच्य ही नहीं अपितु आधुनिक विद्वान भी इसमें खोजते हैं। वेदार्थ परम्परा में मुख्यतया वेद मन्त्रों का अर्थ विभिन्न श्रौतयागों के प्रसंग में किया गया है। इन यागों के मूल में ऋषियों की पर्यावरण चेतना ही है। वेदार्थ अनुशीलन से ज्ञात होता है कि पर्यावरण चेतना के

भी मूल स्रोत वेद ही हैं। ऋषियों ने प्रकृति के प्रत्येक अंग में शान्ति की अपेक्षा की है और उनके माध्यम से मधुर लोक जीवन की अभिव्यक्ति प्रस्तुत की है।पर्यावरण शब्द 'परि' एवं 'आङ्' उपसर्ग पूर्वक 'वृ' धातु से ल्युट् प्रत्यय के योग से निष्पन्न है। इसका सामान्य अर्थ है हमारे चारों ओर का वातावरण, जिसमें हम आवृत्त हैं पर्यावरण कहलाता है। इसके अन्तर्गत वायुमण्डल, स्थल मण्डल एवं जल मण्डल के सभी भौतिक तथा रासायनिक तत्त्व एवं समस्त जीवन-जगत् और सभी प्रकार के पेड़-पौधे सम्मिलित हैं। विश्वकोष में पर्यावरण को भौतिक एवं जैविक तत्त्वों से निर्मित स्वीकार किया गया है। भौतिक पर्यावरण में वायु, मृदा, जल, प्रकाश और ताप तथा जैविक पर्यावरण में समस्त जीव-जन्तु एवं वृक्ष वनस्पतियां परिगणित हैं। वैदिक ऋचाओं में पर्यावरण संरक्षण के सम्बन्ध में ऋषियों ने पर्याप्त विवेचन प्रस्तुत किये हैं। पृथ्वी, जल, वायु और आकाश की शुद्धि और इनको प्रदूषण से मुक्त करने के लिये अनेक उपाय वैदिक मन्त्रों में निहित हैं। अथर्ववेद के अनुसार, जल, वायु और औषधियाँ ये तीन पर्यावरण के संघटक तत्त्व हैं। अथर्ववेद में पर्वत, जल, वायु, पर्जन्य और अग्नि को पर्यावरण शोधक तत्त्व के रूप में वर्णित किया है क्योंकि ये प्रदूषण को नष्ट करते हैं। ऋग्वेद में द्यावा-पृथ्वी, औषधियाँ, वायु, मेघ, नदी, वन, पर्वत, सूर्य, उषा और अग्नि इन ग्यारह पर्यावरण शोधक तत्त्वों की चर्चा है। अथर्ववेद में पर्यावरण शुद्धि के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुये कहा गया है कि जहाँ पर्यावरण शुद्ध रहता है वहाँ मनुष्य, पशु-पक्षी आदि सभी सुखपूर्वक जीवित रहते हैं।

वेदों में पर्यावरण

डॉ. अश्विनी कुमार शुक्ल बाराबंकी उ.प्र.

यद्यपि जीवन का परमलक्ष्य ईश्वरप्राप्ति अथवा ब्रह्मसाक्षात्कार है, किन्तु उसका सहायक भौतिक जगत् है। ऋषियों ने नदियों के तट पर तथा पर्वतों की गुफाओं का सेवन करके ही दिव्य शक्ति प्राप्त की है-

उपहरे गिरीणां संगमे च नदीनां धिया विप्रो अजायत।। यजु. 26.5

इससे प्रतीत होता है कि अध्यात्म साधना के लिए भी विशुद्ध वातावरण की अपेक्षा है। वस्तुतः शुद्ध वातावरण से ही मनुष्य सुख-शान्ति प्राप्त कर सकता है। मनुष्य का निर्माण ही अग्नि, जल, पृथ्वी, आकाश, वायु इन पंचतत्त्वों से हुआ है। इस दृष्टि से वैदिक साहित्य में क्रान्तिद्रष्टा ऋषियों ने इन वायु, जल आदि विभिन्न तत्त्वों का सूक्ष्मता पूर्वक चिन्तन मनन किया तथा उनकी अनुकूलता बनी रहे इसका वेदों के माध्यम से उपदेश दिया है। ये समस्त तत्त्व ही हमारा पर्यावरण है। शाब्दिक दृष्टि से पर्यावरण का अर्थ है- परि+ आवरण। परि से तात्पर्य, चारों तरफ तथा आवरण काय अर्थ आच्छान है। अर्थात् जिन तत्त्वों से हम चारों ओर से घिरे हुए हैं अथवा हमारे चारों ओर जो तत्त्व हैं वे हमारा पर्यावरण हैं। यजुर्वेद के एक बहुचर्चित मन्त्र में जिन तत्त्वों का उल्लेख किया गया है, उन्हें हम पर्यावरण की एक परिभाषा मान सकते हैं। इसमें द्यौः अन्तरिक्ष, पृथ्वी, जल, औषधि, वनस्पति, विश्वदेव, ब्रह्म आदि से शान्ति की प्राप्ति हो, ऐसी कामना की गई है-

ओम् द्यौ शान्तिः अन्तरिक्षं शान्तिꣳ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिब्रह्म शान्तिः सर्वꣳ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि। यजुर्वेद 36.17)

इससे यह प्रतीत होता है कि हमारे पर्यावरण के निर्माण में जल, अग्नि आदि की महत्त्वपूर्ण भूमिका है-

निश्चय ही पर्यावरण की परिशुद्धि के लिए प्रकृति में उसके सहायक तत्त्व विद्यमान हैं, जिनके द्वारा उसका परिशोधन होता रहता है। किन्तु दुर्भाग्य है कि मनुष्य ने जो प्रदूषण फैलाया है उसका संशोधन करने में प्रकृति भी असफल हो रही है। इसका कारण है कि पर्यावरण प्रदूषण के वृक्ष वनस्पति आदि जो शामक तत्त्व हैं उनका वह अविचारित उच्छेदन कर रहा है। परिणामस्वरूप प्रदूषण बढ़ रहा है। प्रकृत शोधपत्र में वेदों में पर्यावरण का स्वरूप, तत्त्व, पर्यावरण के निर्माण में उनका योगदानं, प्रदूषण उसके कारण तथा निवारण के वैदिक उपाय विषय पर विचार किया गया है।

पर्यावरण संरक्षण में वेदों की उपादेयता - ऋग्वेद के विशेष संदर्भ में

डॉ. सरोज बिल्लोर व डॉ. दिलीप बिल्लोरे माता जीजाबाई शा. कन्या स्नातकोत्तर महाविद्याय मोती तबेला इन्दौर (म.प्र.)

वैदिक संस्कृति सभी जीवों में शिव तत्त्व को देखती है। अच्छे-बुरे का ज्ञान इसी तत्त्व के माध्यम से ज्ञात करवाती है। संसार को पंचमहाभूत के आधार पर समझाया गया है और उसमें ऊर्जा तत्त्व अग्नि का विशेष स्थान है इसी अग्नि तत्त्व को कालांतर में ऊर्जा कहा है जो सूर्य से प्राप्त होती है। ज्योतिष शास्त्र में भी सूर्य को अग्नि प्रमुख माना गया है। पेड़-पौधों, जीव-जन्तुओं चाहे वे सूक्ष्म हों या बड़े आकार के हों सभी को गतिमान रखने का आधार ऊर्जा को माना गया है। पेड़-पौधों, जीव-जन्तुओं जल तत्त्व भूमि, जिनके बगैर सृष्टि पर जीवन संभव नहीं है। ईश्वर के रूप में पूजन कर विशिष्ट स्थान पर स्थापित किया है। यह हमें इंगित करता है कि भारतीय संस्कृति में जीव-निर्जीव, अन्तरिक्ष आदि को पूजनीय मानकर इनके संरक्षण की बात कही गई है। वर्तमान समय में आधुनिक विचारधारा के लोगों ने अपने आपको प्रकृति से ऊपर उठकर प्रकृति पर विजय प्राप्त करने की जो नाकाम कोशिश की है अपने आपको प्रकृति से अलग करने का सोध को आगे जाकर पर्यावरण व्यवस्था को दूषित किया है। प्रस्तुत शोधपत्र में इन्हीं बातों को उद्धृत किया गया है।

यजुर्वेद में पर्यावरण चिन्तन

डॉ. सन्तकुमार मिश्र हापुड, गाजियाबाद(उ.प्र.)

यजुर्वेद में अनेक ऐसे उद्धरण प्राप्त होते हैं जिनसे पता चलता है कि वेदकालीन समाज पर्यावरण के प्रति कितना चिन्तित था। आज पर्यावरण प्रदूषण का प्रमुख कारण असत्य का आचरण एवं उससे प्राप्त धन का लालच है। यजुर्वेद में कहा गया है- मेरा सत्यव्रताचरण सफल हो, प्रभो मैं सत्य का आचरण करूँगा(1.5)। इसी प्रकार कहा गया है- हम प्रत्येक व्यक्ति के प्रति हर समय सद्व्यवहार करें(यजु. 1.5)। हमारी वाणी को मधुर तथा बुद्धि को पवित्र कीजिये (यजु. 30.1)। जिस प्रकार सब मुझे तथा मैं सबको मित्रवत् देखूँ, ऐसा निश्चय प्रदान कीजिये(यजु. 40.16)। हमारे दुराचरण छुड़ा सदाचरण प्रदान कीजिये(यजु. 32.3)। उस परमात्मा के दिये का उपयोग कर किसी के धन का लालच मत कर(यजु. 40.1)। ऐश्वर्य प्राप्ति हेतु हमें उस अच्छे मार्गों पर चलाइए(यजु. 40. 16)। जैसे परमश्वर हम सबको बुद्धि देवें वैसे ही तुम सबको भी दें(यजु. 32.15)। वेद कहते हैं कि राष्ट्र को चाहिए कि वह सबसे पहले अपने अन्तर्गत घुसे हुए दुष्ट मनुष्य को ढूँढे, जाने और उनको न्याय द्वारा दण्ड से शिक्षा दे(ऋ. 1.51.8, 1.33.4, 7.56.19, 8.70.11)। इतना ही नहीं वेदों में सुराज्य के लिए राज्य में ज्ञान, विद्या, सभ्यता, सदाचार व आस्तिकता का प्रचार करना अवश्यक बताया गया है।

अन्त में यही कहा जा सकता है कि प्रस्तुत शोधपत्र के माध्यम से यह विवेचित करने का प्रयास किया गया है कि वर्तमान समय में पर्यावरण प्रदूषण से अपने अस्तित्व के लिए संघर्षरत पृथ्वी को केवल वेदों की शिक्षा व उसके पालन द्वारा ही पुनः प्रदूषण मुक्त करके उसे, पर्यावरण एवं सभी को सुरक्षित रखा जा सकता है।

वेदों में पर्यावरण-संरक्षण

डॉ. पंकज त्रिवेदी पी.एन.आर. शाह महिला आर्ट्स एण्ड कॉमर्स कॉलेज, पलीताना, गुजरात

पर्यावरण की समस्या के समाधान के विषय में हमारे वेदों में जो चिन्तन है उससे अनेक महत्त्वपूर्ण उपाय हमें मिलते हैं। वेद हमारी संस्कृति के मूलाधार हैं। अतः किसी भी समस्या का हल हमें वेदों से मिलने की सम्भावना अधिक है। हमें आवश्यकता है वेदों के विभिन्न पहलुओं को समाज में उजागर करने की प्रस्तुत शोध लेख का यही नम्र प्रयास रहा है। वेद की ऋचाओं से ये ज्ञात होता है कि हमारे मनीषियों ने प्रकृति और संस्कृति के साहचर्यको सबसे पहले पहचाना और लोककल्याण के लिए इसका उपयोग भी किया है।

वेदों में पर्यावरण शिक्षा

डॉ. ज्योत्सना सक्सेना डी.डब्लू. टी. कॉलेज, देहरादून

डॉ. गीतिका मेहरोत्रा पेसलवीड कॉलेज, देहरादून

वेदों के साथ साथ प्रकृतिवादी चिन्तन भी पर्यावरण को पवित्र व पूज्य मानता है तथा मानव को ही उसकी शुचिता नष्ट करने का दोषी मानता है। वेदों को पर्यावरण व प्रकृति के प्रति आदर, संवेदनशीलता तथा प्रेमभाव प्रदर्शित होता है।

"हिरयस्ते पर्वत: -हिमवन्तोऽरण्यते पृथ्वी स्योनयत्सु"- अथर्ववेद

अर्थात् हे पृथ्वी! तेरे पर्वत, तेरे हिमवृत, शल्प, तेरे अरण्य सुखदायक हैं। अथर्ववेद में ही एक स्थान पर कहा गया है-

"यावत तेभि पश्यामि भूमे सूर्योणमेदिना। तावन्ये, चक्षुर्भ मेष्टोतरा मतुरां समाम्।।" अर्थात् हे भूमि! प्रकाशित सूर्य के साथ जब तक तेरी ओर देखता रहूँ तब तक वर्ष वर्षान्तर तक मेरी दृष्टि क्षीण न हो। वैदिककाल में मानव पर्यावरण तथा स्वयं के गहन रिश्तों पर विश्वास करता था परन्तु वर्तमान विज्ञान एवं सूचना प्रौद्योगिकी के युग में यह विश्वास डगमगा गया है। आज मानव प्रकृति पर अंकुश लगाने स्वयं का प्रभुत्व जमाने में लगा है। वह प्राकृतिक पर्यावरण को पृथक मानने लगा है। यही कारण है कि वह प्रकृति के निहित कार्यो में हस्तक्षेप तथा पर्यावरण के साथ छेड़छाड़ करने में संकोच नहीं करता। प्राचीन समय में प्राकृतिक शक्तियाँ वन्दनीय थीं उनको आघात पहुँचाना धर्म विरोधी आचरण समझा जाता था। यह भाव पर्यावरण संतुलन को दृढ़ता प्रदान करता था। यजुर्वेद में- 'ओम् शान्ति', 'अन्तरिक्षं शान्ति', पाठ- पृथ्वी, वनस्पति, औषधि व समस्त ब्रह्माण्ड में शान्ति की प्रार्थना से पर्यावरण की महत्ता व उसके संरक्षण की ओर संकेत किया गया है। उस ऋषि मनीषी जीवन शैली में मानव प्रकृति से आवश्यकता भर वस्तु ही ग्रहण करता था। वेदों में मानव को प्रकृति से अभिन्न रूप से जोड़ते हुए कहा गया है- 'प्रकृति को मित्र की भाँति समझो, माँ के समान आदर दो, पिता की भाँति आज्ञापालन करो तथा प्रिय बालक के रूप में उसका पालन पोषण करो।

स्पष्ट है वेदों में वर्णित सूत्र पर्यावरण संरक्षण हेतु पर्याप्त ज्ञान उपलब्ध कराते हैं। पर्यावरण विज्ञान प्रदूषण समाप्त करके शुद्धता प्रदान करने का ज्ञान व विधि उपलब्ध कराता है। यदि मनुष्य प्रकृति का संरक्षण करे तो प्रकृति स्वयं ही अपनी रक्षा करने में सक्षम है। आवश्यकता है मनुष्य को अपनी महत्त्वाकांक्षाओं पर लगाम लगाने की तथा शहरीकरण की प्रक्रिया में अपूरणीय क्षति रोकने की। डॉ. विद्यानिवास मिश्र ने सत्य ही कहा है- "प्रकृति का संरक्षण हम सबका पावन कर्तव्य है। हमें प्रकृति का उतना ही विदोहन करना चाहिए, जिससे उसका संतुलन न बिगड़े। यदि मानव अब भी नहीं चेता तो हमारा विनाश निश्चित है।"

ऋग्वेदीय ऋचाओं में पर्यावरण चेतना

पूजा राजपूत संस्कृत विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

अन्तरिक्ष, पर्वत, नदी, तड़ाग, वन, जल आदि के शुद्धि एवं कल्याणकारी बने रहने की चिन्ता ऋग्वेदीय ऋचाओं में स्पष्ट रुप से व्यक्त होती हैं। जैसे- शंनोपवित्र शमुअस्तु वायु-अन्तरिक्ष में कल्याणकारी हवा चलती रहे। शन्न: पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शन्न: सिन्धव: समुसन्त्वाप: ये पर्वत ध्रुव रहें, उनकी तोड़फोड़ न की जाए, जिससे ये हमारे लिए लाभकारी बने रहें। प्राचीन ऋषियों ने पर्यावरण के सन्दर्भ में निम्नलिखित भावनाएँ प्रदर्शित की हैं कि संसार में वायु मधुर बहें, नदियाँ मधु, औषधियाँ मधुर उत्पन्न हों। रात मधुर हो, प्रभात मधुर हो और हमारा पिता द्यौ मधुर हो। वनस्पतियाँ मधुर हों। सूर्य मधुर हो और गायें मधुर हों। सघन वृक्ष-वनस्पतियाँ युद्ध के समय सैनिकों की रक्षा करती हैं। सीमा पर सघन वृक्ष-वनस्पतियों का संरोपण पर्यावरण की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। कूप, नदी या सरोवरादि के जल को प्रदूषित करना निन्दनीय माना जाता है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में ऋग्वेदीय ऋचाओं के अन्तर्गत पर्यावरण-चेतना पर प्रकाश डाला जा रहा है।

वेदों में पर्यावरण एवं संरक्षण

श्रीमती ऋचा पंडित, शोधच्छात्रा महारानी लक्ष्मीबाई शासकीय उत्कृष्ट महाविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)

वेदों का अध्ययन कर मानव अपने जीवन की सार्थकता को भलीभांति समझ सकता है और वेदों के अध्ययन से ही व्यक्ति में गंभीरता, विचारों में पवित्रता आएगी। आधुनिक युग में व्यक्ति जितना अधिक स्वार्थी होकर आंगे बढ़ने के प्रयास कर रहा है उतना ही उसके लिए एक घातक बात है क्योंकि उसकी इसी दोहन शोषण की प्रवृत्ति ने पर्यावरण में असंतुलन पैदा करने की स्थिति को प्रोत्साहित किया है। वेदों में पर्यावरण चेतना की ओर ध्यानाकर्षित किया जाए तो स्पष्ट होता है कि संपूर्ण वेद ही पर्यावरण युक्त हैं कितने व्यापक ढंग से प्रकृति के संपूर्ण अंगों की स्तुति की गई। वर्तमान युग में पर्यावरण स्वच्छता के लिए स्तुति करना तो दूर उसके विषय में जानने तक की इच्छा नहीं है ध्यातव्य है कि वेद में वृक्षों, पशुओं, वनस्पति, नदी, पर्वत, जल, वायु, सूर्य, पृथ्वी, चंद्रमा, उषा, पूषा आदि की स्तुति कर संपूर्ण जगत की रक्षा करने के लिए विधिवत ढंग से उनको देवता मानकर आवाहन किया गया है और उनका विधिवत तरीके से आदर सत्कार किया है आज प्रत्येक मानव को जरुरत है कि वह इन महानतम् ग्रंथ 'वेदों' का परिशीलन करें और अपने अंतःकरण और वाह्यकरण को स्वच्छ बनाने व शुद्ध करने का प्रयत्न करना चाहिए वेदों में कहा गया है कि वेद ही संपूर्ण ज्ञान का आधार है-

'भूतं भव्यं भविष्यंच सर्व वेदात प्रसिध्यति।'

वेद जैसे ग्रंथों में सम्पूर्ण प्रकृति को देवता स्वरुप माना गया है। सभी का आवाहन ऐसे यज्ञ को संपूर्ण करने के लिए किया जिसका उद्देश्य संपूर्ण पर्यावरण को शुद्ध करने, प्राणी जगत की रक्षा करने व समस्त मानव समुदाय का उत्थान व कल्याण की भावना से किया गया है और प्रत्येक को देव स्वरुप मानकर विशेष स्थान दिया गया है और उनके महत्वपूर्ण कार्य व गुण का उल्लेख किया गया है। प्रस्तुत शोधालेख में वेदों की इसी पर्यावरण चेतना को विस्तृत आयाम देने का उपक्रम किया गया है।

वैदिक पर्यावरण विज्ञान

डॉ० पुरुषोत्तम शर्मा प्रोफेसर, स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

चारों वेदों में पर्यावरण संरक्षण विषय पर पर्याप्त सामग्री उपलब्ध होती है। पृथ्वी, जल, वायु तथा आकाश की शुद्धि और इनको प्रदूषण से बचाने का अनेक मन्त्रों में उल्लेख है। अथर्ववेद में उल्लेख है कि "आपो वाता ओषधयः तान्येकस्मिन् भुवन अर्पितानि।" अर्थात् पर्यावरण के संघटक तत्त्व तीन हैं-जल, वायु और औषधियाँ। ये पृथ्वी को घेरे हुए हैं और मानवमात्र को प्रसन्नता देते हैं। प्रत्येक लोक को ये तत्त्व जीवन रक्षा के लिए दिए गये हैं। जल और वायु को ही साधारणतया पर्यावरण का प्रमुख घटक माना जाता है किन्तु सर्वप्रथम वनस्पतियों के महत्त्व पर प्रकाश डालने का श्रेय वेदों को ही है।

मेघदूत में वर्णित पर्यावरण का विवेचन

बलवीर आर्य (बिश्नोई) (शोधार्थी)संस्कृत विभाग, गु० कां० वि० वि०, हरिद्वार

महाकवि कालिदास ने अपने मेघदूत नामक गीतिकात्य में पर्यावरण के समवाहक अनेक तथ्यों का विवेचन किया है। रामगिरि पर्वत से लेकर विंध्याचल पर्वत तक एवं हिमालय पर्वत का वर्णन करने के साथ-साथ उन्होंने अनेक नदियों, झीलों (वापि), वृक्षों, लताओं, उद्यानों एवं विविध पक्षियों का भी विवेचन किया है जो निःसंदेह पर्यावरण के संरक्षण में अपना योगदान देते हैं। इस प्रकार से महाकवि कालिदास को पर्यावरण से अत्यधिक सहानुभूति है। वे न केवल उससे परिचत है अपितु निकटता का भी अनुभव करते हैं। उनके प्रकृति चित्रण की एक विशेषता यह है कि वे रूढ़ितः प्रकृति वर्णन नहीं करते है अपितु वह प्रसंग से सम्बन्धित होता है। प्रस्तुत शोध पत्र में कालिदास द्वारा रचित मेघदूत नामक गीतिकाव्य में पर्यावरण का विशिष्ट विवेचन करते हुए कालिदास की पर्यावरण सम्बन्धी मान्यताओं को विस्तार पूर्वक उजागर किया गया है।

पर्यावरण समस्या-वैदिक चिन्तन

डॉ. दीनदयाल वेदालङ्कार वैदिक कर्मकाण्ड विभाग, गु० का० वि० वि०, हरिद्वार

"सर्वज्ञानमयो`हि:", "सर्वं वेरात्प्रसिद्धयतिं" आदि स्मृति वाक्य आदिकाल से ही मानवमात्र को वेद के प्रति जहाँ अटूट श्रद्धा एवं विश्वास को बढ़ाते हैं, वहीं यह भी प्रेरणा देते हैं कि हम अपनी समष्टिगत व व्यष्टिगत सभी समस्याओं का उचित समाधान इसके द्वारा प्राप्त कर सकते हैं। इस लेख में विश्व की अधुनातन पर्यावरण समस्या-वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, पृथिवी प्रदूषण, आकाश प्रदूषण, आग्नेय प्रदूषण आदि के साथ ही वैचारिक व व्यावहारिक प्रदूषणों की समस्याओं का वैदिक चिन्तन समाधानरूप में प्रस्तुत करना अभिष्ट है।

पर्यावरण एवं वायु प्रदूषण

राजीव कुमार शुक्ल परसपुर, गोंडा(उ.प्र.)

पर्यावरण का सामान्य अर्थ भौतिक परिवेश से है जो पृथ्वी के जैव तथा अजैव जगत को आवृत्त किये हुए हैं, तथा जिसके प्रभाव से जीवन स्पन्दित होता है। पर्यावरण शब्द दो शब्दों परि और आवरण से मिलकर बना है। परि का अर्थ है बाहरी आवरण का अर्थ है घेरा। अर्थात् पर्यावरण का शाब्दिक अर्थ है चारों ओर घेरने वाला। सी०सी० पार्क के अनुसार-"पर्यावरण का अर्थ उन दशाओं के समूह से है जो मनुष्य को निश्चित समय और स्थान पर आवृत्त करता है।" पर्यावरण के निर्माण में किसी क्षेत्र की भौगोलिक दशाएं महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं, जैसे वर्षा, वन, तापमान, पर्वत, नदियाँ, जनसंख्या आदि से होती है। वायु प्रदूषण वायुमण्डल की वह स्थिति है जिसमें वायु में उपस्थित विशेष पदार्थों की मात्रा इतनी बढ़ जती है कि इसका दुष्प्रभाव मनुष्य और सम्पूर्ण पर्यावरण पर पड़ता है। वायु प्रदूषण में मुख्यत: सल्फर के आक्साइड, नाइट्रोजन के आक्साइड, कार्बन मोनो आक्साइड, हाइड्रोकार्बन इत्यादि होते हैं।

विश्व स्वास्थ्य संगठन (W.H.O.) के अनुसार-"वायुप्रदूषण एक ऐसी स्थिति है जिसमें वाह्य वायुमण्डल में मानव और उसके पर्यावरण को हानि पहुँचाने वाले तत्व सघन रुप से एकत्रित हो जाते हैं।" वायु प्रदूषण मानव सहित सभी जीवधारियों के लिए खतरा पैदा करता है जिससे पौधे अपनी गुणवत्ता खो रहे हैं। आक्सीजन गैस प्रदूषित होकर अनेक बीमारियों को जन्म दे रहे हैं। अम्ल बर्षा का व्यापक प्रभाव वनस्पतियों और जीवधारियों पर पड़ता है। ऊपरी वायुमण्डल में विषैली गैसें ओजोन मण्डल को नष्ट कर रही हैं। वायुमण्डल में बढ़ता कार्बनडाई ऑक्साइड हरित-गृह प्रभाव वाली गैसों में वृद्धि कर भूमण्डल का ताप निरन्तर बढ़ रहा है। वायु प्रदूषण का सबसे अधिक प्रभाव मनुष्य के श्वसन तन्त्र पर पड़ता है। वायुमण्डल में अत्यधिक प्रदूषण होने पर पौधों को सूर्य का प्रकाश बहुत कम मिलता है अत: इनकी प्रकाश संश्लेषण की क्रिया पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। वर्तमान समय में पर्यावरण को बचाने एवं वायु प्रदूषण के निदान के लिए हमें प्राकृतिक संतुलन स्थापित करना होगा।

वेदों में पर्यावरण

प्रो. विमला आर्या मगध विश्वविद्यालय, बोधगया (बिहार)

'परि, आ, उपसर्ग पूर्वक वृ धातु से 'ल्युट्' प्रत्यय करके पर्यावरण शब्द निष्पन्न होता है। परित: सम्पर्क वृणोति अच्छादयतीति पर्यावरणम्।। अर्थात् मानव के चारों ओर जो कुछ नैसर्गिक आवरण का आच्छादन स्थावर एवम् जंगात्मक विद्यमान है, वह सब पर्यावरण कहलाता है। वैदिक ऋषियों ने सम्पूर्ण प्रकृति में प्राणी उपयोगी देवत्व तत्वों का अनुसंधान किया। उसी के अनुसार समग्र पर्यावरण को तीन भागों में विभक्त किया।

द्युलोक, अन्तरिक्ष लोक एवं पृथ्वी लोक त्रिलोक देवता: 'इति निरुक्ता:' इसके अनुसार सूर्य द्युलोक की अति उपयोगी प्राकृतिक शक्ति है। सूर्य अन्तरिक्ष लोक की सहायता प्राप्त कर वर्षा ऋतु परिवर्तन, रात-दिन का चक्र आदि के द्वारा सम्पूर्ण सृष्टि

के प्राणी जगत की उत्पत्ति, निकास एवम् विनाश करता है। इसीलिए इसको जड़ चेतन का आत्मा माना गया है। (ऋग्. 10/85/18) अन्तरिक्ष लोक के देवता इन्द्र, रूद्र, मरुत, पर्जन्य मातरिश्वा आदि है। इन दोनों का सम्बन्ध विद्युत, जल, वायु वृष्टि आदि प्राकृतिक तत्वों से है। अन्तरिक्ष लोक के देव मनुष्यों के व्यवहार से जब कुषित होते हैं तो अति वृष्टि-अनावृष्टि, विद्युतपात, झंझावात् आदि प्रकोप को उत्पन्न कर भू-वासियों को दण्डित करते हैं।

वैदिक पृथ्वी सूक्त पर्यावरण के दृष्टि से महत्वपूर्ण है। पृथ्वी विविध अन्न वनस्पतियाँ, औषधियाँ, जल आदि का आधार है। वैदिक सूक्तों में जल का सम्बन्ध अन्तरिक्ष और पृथ्वी लोक से माना गया है। इस विचारधारा के अनुसार वर्षा का जल अन्तरिक्ष व्यापी है। किन्तु पृथ्वी पर दृष्टिगोचर होने वाला नदी, तालाब, कुएं, समुद्र, गंगा आदि जल का आधार पृथ्वी ही है। सृष्टि संचालन में जल का महत्वपूर्ण स्थान है। सम्भवत: इसी कारण अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त (12/1/9) में पृथ्वी माता का दूध, जल को कहा है। जैसे माता का दूध बच्चे को पुष्ट करता है, उसी तरह जल सभी प्राणियों एवं वनस्पतियों का पोषण करता है। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश पर्यावरण के अंग हैं। पृथ्वी के समस्त प्राणियों की सुरक्षा के लिए पर्यावरण को संतुलित रखना अनिवार्य है। इसी दृष्टि से दूरदर्शी ऋषियों ने इन्हें देवता माया है और अपने सुख-समृद्धि के संरक्षण-संवर्धन के लिए इनकी स्तुति की है। प्राणी और प्रकृति के मध्य अन्योन्याश्रित सम्बन्ध ही दोनों में सामन्जस्य एवं संतुलन बिगड़ने से सृष्टि में गड़बड़ी पैदा हो जाती है। इस वैज्ञानिक युग में भौतिक प्रगति की ऊँचाई छूने के लिए मानव प्राकृतिक मर्यादाओं का अतिक्रमण कर रहा है और परिणाम में उसे विभिन्न आपदायें झेलनी पड़ रही हैं। ऋषि जानते थे कि सृष्टि के समस्त जीव-निर्जीव, पंचमहाभूत पृथ्वी, जल, वायु, तेज और आकाश से निर्मित है। यही सोचकर जीव मात्र के कल्याणार्थ पर्यावरण का महत्व, उसकी रक्षा के उपाय प्रकृति से सन्निकटता सम्बन्ध विचार पर जोर दिया था। सृष्टि का प्रत्येक कार्य स्वत: स्वभाविक और नियमित गति से चल रहा है। आधुनिक विज्ञान उसके स्वभाविक नियमित स्वत: स्फूर्त कार्य को चुनौती देकर स्वयं ही अनेक समस्याओं को आमन्त्रित कर रहा है।

जीवन का पर्यावरण आयुर्वेद

प्रो. आर.जी. मकवाना म्युनिसिपल आर्ट्स एण्ड कामर्स कालेज, उपलेटा, गुजरात।

पूरे विश्व का एक कर्तव्य बनता है कि पर्यावरण की रक्षा करे। सृष्टि की उत्पत्ति स्थिति और लय में पर्यावरण की एक अदद भूमिका है, उसी प्रकार स्वस्थ जीवन की प्राप्ति के लिए आयुर्वेद एक पर्यावरण की भूमिका में आता है। तात्पर्य यह है कि पर्यावरण की रक्षा से पूरे विश्व की रक्षा की जा सकती है, उसी प्रकार आयर्वेद की रक्षा (आचरण) में विश्व की पूरी मनुष्य जाति का जीवन अमृतमय हो सकता है।

आधुनिक पर्यावरणीय बोध का दिग्दर्शक ऋग्वेद का अरण्यानी सूक्त

डॉ० सरिता भार्गव अध्यक्ष संस्कृत विभाग, राजकीय महाविद्यालय, कोटा

ऋग्वेद के दशम मण्डल के 146 वे अध्याय में वर्णित् अरण्यानी सूक्त वर्तमान में संचालित हरितक्रांति, वृक्षरोपण कार्यक्रमों का पुरोधा कहा जा सकता है। दीर्घ अन्तराल के उपरान्त अपने आश्रम को लौटे ऋषि एरम्मद आश्रम की वनस्पतियों, औषधियों, जडीबूटियों, लताओं, वृक्षों को नष्टप्राय देखकर आत्मग्लानि से परिपूर्ण हो वन देवी से क्षमा मांगते हैं साथ ही यह संकल्प भी लेते है कि वे पुनः औषधियों, वनस्पतियों को प्रयत्नपूर्वक उगाएगें पुन:, उस क्षेत्र को हरा-भरा करेंगे एवं वनदेवी से भी प्रार्थना करते है कि वे भी ऐसा उपाय करें जिससे कोई इन अरण्यानियों को नष्ट न कर सके।

न वा अरण्यानिः हन्त्यन्यक्षेत्राभिगच्छति।

त्वादौः कलयः जगध्वाय यथाकामं निपद्यते॥१०/१४६/५

वस्तुतः अरण्यानि सूक्त हमारे पर्यावरण रक्षा एवं वानस्पतिक चेतना का दिग्दर्शक है आज पर्यवरण रक्षा के लिए राज्य, सरकार

एवं स्थानीय स्तर पर प्रयास किए जा रहे हैं। वृक्षमित्र पुरस्कार, वृक्षों को राखी बांधना, वृक्षों की रक्षा हेतु उनसे चिपक कर प्राण त्यागना (चिपको आन्दोलन) इत्यादि समाचार हमारे पर्यावरण प्रेम को दर्शाते हैं।

प्रस्तुत शोध पत्र में सूक्त में प्रदर्शित पर्यावरण रक्षा एवं वानस्पतिक चेतना को ही वर्तमान में पर्यावरण रक्षा हेतु संचालित कार्यक्रमों का प्रेरक मानते हुए वर्तमान पर्यावरण संरक्षरण हेतु किए गए प्रयासों का तुलनात्मक विविचन प्रस्तुत किया जाएगा।

वेदों में पर्यावरण प्रदूषण

पी०सी०जोशी एवं महादेव सेमवाल जन्तु एवं पर्यावरण विज्ञान विभाग, गु.कां. वि. वि., हरिद्वार

'परि+आ' उपसर्गपूर्वक 'वृ' धातु से ल्युट प्रत्यय करने पर पर्यावरण शब्द उत्पन्न होता है, परितः सम्यक् वृणोति आच्छादयतीति पर्यावरणम्'' अर्थात् हमारे चारों ओर जो कुछ नैसर्गिक आवरण आच्छादन स्थावर- जङमात्मक विद्यमान है, वह सब पर्यावरण कहलाता है, जब इस वातावरण की स्वाभाविक स्थिति किन्ही बाह्य तत्वों के अतिक्रमण करने से दूषित हो जाती है तो वह प्रदूषण का रूप ले लेती है। पर्यावरण में जल प्रदूषण, मृत्तिका प्रदूषण, वायु प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण इत्यादि प्रमुख है।

वेदों में पर्यावरण मुख्य रूप से पाँच वर्गो में दृष्टिगोचर होता है, जैसे वायु, जल, ध्वनि, खाद्य, मिट्‌टी, वनसम्पदा पशु-पक्षी आदि सजीव जगत् के लिए पर्यावरण की रक्षा में वायु की स्वच्छता का प्रथम स्थान है बिना प्राण वायु (ऑक्सीजन) के क्षणभार भी जीवित रहना सम्भव नहीं है, वायु की शुद्धि के लिए यजुर्वेद में इस प्रकार कहा गया है।

तनूनपादसुरो विश्ववेदा देवो देवेषु देवः पथो अनक्तु मध्वा घृतेन।

वेदों में वायु को प्रजापति रूप पुरुष के प्राण तत्व से उत्पन्न मानते हुए उसे प्राणिमात्र के लिए अति आवश्यक सिद्ध किया गया है। प्राणद वायुरजायत- वही पुरुषसुक्त, 1/10/13 । वेदों में पर्यावरण के सभी घटकों तथा पर्यावरण प्रदूषण के निवारण के उपाय दृष्टिगोचर होते है, पर्यावरण की शुद्धता के लिए यज्ञों की महत्त्वपूर्ण भूमिका स्वीकार की गई है। वेदों मे वैदिक ऋषियों ने स्वस्थ जीवन को सन्तुलित करने के लिए स्वस्थ पर्यावरण को नितान्त आवश्यक माना है।

वेदों में पर्यावरण संरक्षण

डॉ. मनोज कुमार राव (प्रवक्ता) भारतीय संस्कृति एवं पर्यटन अध्ययन, देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वेद विश्व के प्राचीनतम ऐतिहासिक साहित्यिक साक्ष्य होने के साथ-साथ ये भारतीय संस्कृति के अपौरूषेय ग्रंथ भी हैं। मानव जीवन के सर्वागिण विकास हेतु इन ग्रंथों में विविध प्रकार की विधि-व्यवस्थाओं का प्रतिपादन किया गया है। समस्त जीवधारियों के जीवन के अस्तित्व का प्रमुख आधार पर्यावरण के सुरक्षा एवं संरक्षण के प्रति इनमें उदात्त अवधारणा पायी जाती है। वेदों में पर्यावरण के जड़-चेतन प्रत्येक घटकों का दैवीकरण कर न केवल उनकी पूजा-अर्चना की गयी है बल्कि उनके संरक्षण एवं संवर्धन का पूरा ध्यान रखा गया है।

परि + आवरण इन दो शब्दों से निर्मित पर्यावरण शब्द का शब्दकोषीय आशय है 'चारों ओर से घेरने वाला' किंतु वैदिक परिप्रेक्ष्य में इसका अर्थ और व्यापक हो जाता है। उमेश राठौर के शब्दों में 'वैदिक परिप्रेक्ष्य में मनुष्य को प्राकृतिक रूप से अपने निश्चित समय चक्र में जीने के लिए उनकी आधारभूत वे हानि रहित आंतरिक एवं बाह्य आवश्यकताएँ जो उनके आस-पास अन्न, भूमि, जल, वायु, वनस्पति जीव तथा अन्य संसाधन के रूप में विद्यमान हों, पर्यावरण कहलाता है। पर्यावरण सजीव-निर्जीव घटकों के मध्य संतुलनात्मक संबंधों का योग है। अथर्ववेद (18.1.17) के अनुसार 'पर्यावरण के तीन संघटन तत्व हैं- जल, वायु और औषधियाँ। ये पृथ्वी को घेरे रहती हैं और मनुष्य को प्रसन्नता प्रदान करती हैं। यदि पृथ्वी के पर्यावरण की बात की जाय तो उसको आवृत्त करने वाले प्रमुख घटक जल, वायु और वनस्पतियाँ ही हैं।

मनुष्य को प्रसन्नता और जीवन प्रदान करने वाले ये पर्यावरणीय घटक आज विनाश के कगार पर पहुंच गये हैं। आज की भोगवादी जीवन शैली ही इस भयावह स्थिति की जननी है। वैदिक काल में भी मनुष्य अपनी मौलिक आवश्यकताओं के लिए प्रकृति

पर निर्भर था और आज वे इस अतिविकसित 21वीं सदी में भी। किन्तु वैदिक काल की अपेक्षा वर्तमान युग में प्राकृतिक आपदाएँ एवं समस्याएँ बढ़ी हैं, क्योंकि वैदिक काल में जन-जन के अंतःकरण में 'माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः' का भाव व्याप्त था जबकि आज भोग्या का भाव विकसित हो गया है। प्रकृति की क्षमताएँ एवं संसाधन सीमित हैं और मनुष्य की भोग जनति इच्छाएँ असीमित। अतः उन पर अंकुश लगाने की आवश्यकता है।

यदि प्रत्येक मनुष्य में वैदिक समदृष्टि एवं सर्वजीव समभाव लौट आये और वह पर्यावरण के विनाश की अपेक्षा उसके संरक्षण एवं सुधार में लग जाय तो प्रदूषण रहित स्वच्छ पर्यावरण का निर्माण पुनः संभव हो सकेगा। वर्तमान युग में पर्यावरण संरक्षण एवं सुरक्षा की आवश्यकता इसलिए भी अधिक बढ़ गयी कि यदि इसके दोहन की गति यही रही तो वह दिन दूर नहीं जब धरती मनुष्य के निवास योग्य नहीं रह जायेगी। अतः पर्यावरण संरक्षण हेतु प्रत्येक व्यक्ति को स्वामी दयानन्द सरस्वती के अमर संदेश 'वेदों की ओर लौटो' को अपने जीवन में धारण करना होगा।

प्राचीन ग्रंथों में पर्यावरण संरक्षण

पवन कुमार भारती श्रीराम इन्सटीट्यूट फोर इन्डस्ट्रियल रिसर्च, दिल्ली

प्राचीन काल से ही मनुष्य पर्यावरण के संरक्षण को लेकर चिंतित रहा है जिसका वर्णन हमारे प्राचीन ग्रन्थों व वेदों में मिलता है। पर्यावरण का ज्ञान रखने वाले ज्ञानी मनुष्य वायु को प्रदूषण से मुक्त करने के लिए समय-समय पर तथा ऋषि मुनि नित्य प्रति यज्ञ किया करते थे। उन्हें जल की महत्ता व दूषित होने का भी ज्ञान था। वनों व जीव जन्तुओं के संरक्षण के प्रति वे इतने सचेत थे कि विभिन्न जीव जन्तुओं को उन्होंने देवताओं के वाहन बताया जिससे मनुष्य उन्हें न मारे। इस सबका वर्णन हमारे पुराणों, वेदों, उपनिषदों एवं संहिताओं में मिलता है। प्रस्तुत शोध पत्र में भारत के प्राचीन ग्रन्थों में वर्णित पर्यावरण के संरक्षण से जुड़े कई महत्वपूर्ण श्लोकों पर प्रकाश डाला गया है।

वेदों में पर्यावरण संरक्षण

डॉ० अलका प्रकाश प्रवक्ता (हिन्दी) इलाहाबाद डिग्री कॉलेज, इ0वि0वि0, इलाहाबाद

पर्यावरण शब्द परि+आ+वृ धातु से निष्पन्न है। जिसका अर्थ है-'वह जो हमें चारों ओर से घेरे हुए है। अंग्रेजी में प्रयुक्त 'इनवायरमेंट' शब्द इसी अर्थ को द्योतित करता है। तथा कोषों में उपलब्ध भी है। पर्यावरण के लिए अंग्रेजी में एक शब्द आया है, वह है इकोलॉजी। इसी शब्द से 'इकोसिस्टम' 'इकोलोजिकल बैलेन्स' जैसे शब्द बने है। हिन्दी में इकोलॉजी के समानान्तर शब्द 'पारिस्थितिकी' है। मनुष्य जहाँ रहता है, उसके आस-पास का वातावरण उसके जीवन को प्रभावित करता है। इसलिए धरती और इस पर पाए जाने वाले वन, वृक्ष, पुष्प, फल, पर्वत, नदी, निर्झर, सरोवर, समुद्र, आकाश, जल, पृथ्वी, वायु, प्रकाश, पशु, पक्षी सब पर्यावरण के अन्तर्गत आ जाते हैं।

इयं वै पृथ्वी भूतस्य प्रथमज तथा स भूरिति व्याहरत सू भूमिमसृजत

अर्थात् प्रजापति के 'भू' शब्द के उच्चारण मात्र से यह पृथ्वी उत्पन्न हुई। आधुनिक भू-वैज्ञानिक भी मानते हैं कि पृथ्वी का सबसे अन्दर का भाग 'इनरकोर' है जिसका तापमान 4000^0 का है। पृथ्वी का फेना, मृत, शुष्लाप, उष, सिकता, शर्करा, अश्मा, अयः हिरण्य उसके अनुसार यह अग्निगर्भा है अर्थात् इसके भीतर अग्नि व्याप्त है। पृथ्वी का सबसे बाहरी भाग भू-पटल कहलाता है। इसकी मोटाई 50 किलोमीटर मानी जाती है। जलमण्डल-वे भाग जो सागर-महासागर झीलों-नदियों में आते हैं, वह जलमण्डल के भाग कहलाते हैं। वायुमण्डल-भू-भाग और जलमण्डल को चारों ओर से वायु के खोल से ढक लेने वाले आवरण को कहते हैं। ये सभी मण्डल गुरूत्वाकर्षण से एक दूसरे से बँधे हैं कि पृथ्वी अपनी कीली पर घूमने तथा सूर्य के चक्कर लगाने में भी संतुलित रहती है। पृथ्वी का वह भाग जहाँ जीवन संभव है जहाँ मनुष्य, जीव-जन्तु, पेड़-पौधे रहते हैं उसे 'जैवमण्डल' (बायोस्फीयर) कहते हैं इस 'जैवमंडल' के अंतर्गत जल, स्थल, वायु तीनों मण्डल आ जाते हैं। इस पर्यावरण में मुख्य रुप से पृथ्वी, जीव-जन्तु वनस्पति

एवं वायु, सूर्य, चन्द्र, जल, आकाश इत्यादि परस्पर सम्बन्धित है जब तक तत्व या अवयव का सन्तुलन गड़बड़ हो जाता है, तो दूसरा अपने आप असन्तुलित हो जाता है। इस प्रकार वेदों में पर्यावरण संरक्षण के पर्याप्त साक्ष्य उपलब्ध हैं।

वैदिक साहित्य में पर्यावरण-चेतना

डॉ० व्रजेश कुमार पाण्डेय विभागाध्यक्ष, संस्कृत विभाग राजकीय महिला महाविद्यालय, नवाबी रोड, हल्द्वानी (नैनीताल)

पर्यावरण का एक विषय के रूप में अध्ययन आधुनिक अवधारणा है। पर्यावरण के अन्तर्गत सभी भौतिक तथा जैविक पदार्थों एवं उनके आपसी सम्बन्धों का अन्तर्भाव है। प्रकृति में विद्यमान जल, वायु, भूमि तथा जीवधारियों के पारस्परिक व्यवहार एवं सम्बन्ध ही पर्यावरण के निर्माण में कारक हैं। भौतिक विकास की तीव्रगामी आकांक्षा एवं प्राकृतिक संसाधनों के विवेकशून्य अनियोजित दोहन ने सम्पूर्ण पारिस्थितिक तंत्र (Ecosystem) पर संकट उत्पन्न कर दिया है जिससे प्रकृति एवं मनुष्य के अन्तस्सम्बन्धों की पुनर्समीक्षा आवश्यक हो गई है।

प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण की इच्छा ही पर्यावरणीय संचेतना को जन्म देती है। इस सन्दर्भ में यह देखना प्रासङ्गिक एवं आवश्यक हो उठता है कि प्राचीन भारतीय वाङ्मय के सर्वमान्य आदि स्रोत वैदिक साहित्य में प्रकृति एवं मनुष्य के अन्तस्सम्बन्धों की आधारभूमि एवं उसके निहितार्थ क्या हैं। सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय जीव एवं प्रकृति के सह-अस्तित्व एवं अन्योन्याश्रित सम्बन्ध पर जोर देता है। वैदिक ऋषि अपनी जैविक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु कृतज्ञ भाव से प्रकृति की शरण में जाता है और इसलिए वैदिक संहिताओं में जल, वायु, अग्नि, पृथ्वी, अन्तरिक्ष जैसे तत्त्व देवत्वभाव को प्राप्त होते दीखते हैं। पृथ्वी उसके लिए साक्षात् मातृ स्वरूपा है-'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्यशः' (अथर्ववेद, 12.01.12)। वेद सर्वत्र जड़-चेतन पदार्थों में ईश्वर को व्याप्त मानकर शोषण-प्रवृत्ति का निषेध करते हैं और त्यागपूर्वक भोग का निर्देश दते हैं-तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः (यजु० 40.1) शुक्ल यजुर्वेद के 36वें अध्याय का 17वाँ मन्त्र प्रकृति के प्रति मनुष्य के सार्वकालिक आदर्श दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करता है जिसमें द्यु, पृथिवी, अन्तरिक्ष, जल, औषधियों, वनस्पतियों को संतुलित, संतृप्त एवं शान्त करने की प्रार्थना है। वैदिक ऋषि सभी जड़ चेतन तत्त्वों की कल्याण कामना करता है।

वेदों में वृक्ष संरक्षण सम्बन्धी तत्त्व एवं वर्तमान में उसकी उपयोगिता

डॉ० रुचि गुप्ता वरिष्ठ प्रवक्ता-संस्कृत विभाग दि० जैन महाविद्यालय बड़ौत (बागपत) उ०प्र०

वेद भारतीय संस्कृति के प्राण हैं। ये मानव मात्र के प्रकाश-स्तम्भ में हैं। वेद प्राणी मात्र के लिये प्रगति का मार्ग प्रशस्त करते हुए सुख व शान्ति की स्थापना करते हैं। आज सम्पूर्ण विश्व में 1-3 करोड़ हैक्टेयर वन प्रतिवर्ष काटे जा रहे हैं, जिसक फलस्वरुप भयंकर रुप में जलवायु असंतुलन की स्थिति उत्पन्न हो गयी है तथा सूखा, बाढ़, अकाल, पृथिवी के जल स्तर में भारी गिरावट, सूनामी जैसी लहरों का आना आदि आपदायें चहुँ ओर दृष्टिगोचर हो रही हैं। वृक्षों के अंधाधुंध कटान के कारण हमारा पर्यावरण भी पूर्णतः प्रदूषित हो चुका है। इन सब समस्याओं का एक ही मुख्य समाधान है वह है अधिक से अधिक मात्रा में वृक्षारोपण। हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों ने निश्चित रुप से वनों के महत्व को करोड़ों वर्ष पूर्व ही समझ लिया था। यही कारण है कि चारों वेदों में वृक्ष-संरक्षण सम्बन्धित सामग्री प्रचुर मात्रा में मिलती है। वेदों में न केवल वृक्षारोपण के महत्त्व को बताया गया है अपितु हमें कौन-कौन से वृक्ष लगाने चाहिए इस तथ्य को भी भली-भांति समझाया गया है ताकि हम केवल वृक्षारोपण के लक्ष्य को पूर्ण करने के लिये खतरनाक विदेशी पौधे तथा यूकेलिप्टस कीकर आदि वृक्ष न लगाकर अपने देशी वृक्ष यथा अश्वत्थ, अपामार्ग, कुष्ठ, न्यगोध्र, खदिर आदि वृक्ष लगायें जिससे हमारा जीवन स्वस्थ व सुरक्षित रहे। उपर्युक्त तथ्यों पर विस्तृत विवरण शोध पत्र में दिया गया है।

वेदों में पर्यावरण विचार

डॉ० मयूरी भाटीया श्रीरंगनवचेतन महिला आर्ट्स कॉलेज, वालीया गुजरात
प्रो. डी.जी. अद्रोजा श्रीजयंन्द्रपुरी आर्ट्स एन्ड साइन्स कॉलेज भरुच, गुजरात

परि + आवरण से पर्यावरण ृब्द बना है। जिसका अर्थ है चारों तरफ से ढकना या आच्छादित करना। एक ओर दृष्टि से देखें तो परि + आ + वरण जो पसंद करने योग्य है उसकी चारों ओर व्याप्त तत्वाभिधान को पर्यावरण कहते हैं। पृथ्वी वरणीय है क्योंकि जीवनाधार है, जीवन को उद्‌भीज करने की क्षमता रखती है, जिसके गर्भ में प्राणों का संचरण होता है, सर्जन एवं विसर्जन का काल परिमित होता है। इसके ही आवरण-पर्यावरण से अध्यात्म और भौतिक पदार्थों का समन्वय रहता है। पृथ्वी के जिस पर्यावरण में जिस प्रकार प्रकृतिज पंचमहाभूतों का विशाल समन्वय है, उसी प्रकार भौतिक पदार्थों से उत्पन्न ृारीर भी इन्हीं पंचमहाभूतों में निर्मित है और इसका पर्यावसान भी इन्हीं पंचमहाभूतों में ही होता है। साध्य तत्व पृथ्वी है तो, जो इसे आवृत रहने वाले साधन की ुध्दि अनिवार्य है। जितनी साध्य सिद्धि आवश्यक है उतनी ही साधन ुद्धि भी अनिवार्य रुप से वरणीय है। अत: पर्यावरण की रक्षा, श्रेष्ठता एवं परिक्रमा हमारे द्वारा होती रहनी चाहिए।

पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण से पृथ्वी के चारों ओर वायु का आवरण निर्माण होता है। इसे 'तपाम्बर' कहते हैं। यह स्तर पृथ्वी के लिए बड़ा महत्वपूर्ण है। इसकी ऊँचाई अन्तरिक्ष में 12 कि.मी. की ऊँचाई पर होती है। इस 'तपाम्बर' में जड़वायु, नाइट्रोजन, ऑक्सीजन, कार्बनडाइ ऑक्साइड, हाइड्रोजन आदि वायु और इनके अतिरिक्त न्यून परिमाण में दूसरे वायु भी रहते हैं। इससे ऊपर की परत जो कि 40 कि.मी. चौड़ी होती है वह ओझोन वायु से ओतप्रोत है। यही ओझोन वायु सूर्य के सजीवों की रक्षा करने वाले रक्षक की सुरक्षा का भी ख्याल पृथ्वीवासी सजीवों की जिम्मेदारी है। अत: यज्ञ क्रिया एवं संतुलित जीवन व्यवहार से पर्यावरण को सुरक्षित बनाने का वेदों का उद्‌धोष है इसी का प्रतिधोष प्रस्तुत संशोधन पत्र में प्रतिबिंबित रहेगा।

स्थलमण्डलस्य पर्यावरण सुरक्षायै वैदिका: उपाया:

डॉ0 बृहस्पति मिश्र: प्राध्यापक:, संस्कृत महाविद्यालय:, श्री नयनादेवी जी, बिलासपुर हि० प्र०

प्राणिनां जीवनाय पर्यावरणस्य त्रीणि अपि जैवमण्डलानि आवश्यकानि भवन्ति। जलमण्डलात् जलम्, स्थलमण्डलात् भोज्यपदार्था: वायुमण्डलाच्च प्राणवायुं मुख्यतया प्राप्नुवन्ति। तात्त्विकदृष्ट्या त्रीणि अपि परस्परपूरकाणि अन्योन्याश्रितानि च सन्ति। एकस्य प्रदूषिते अन्ये द्वेऽपि स्वयमेव प्रदूषिते भवत:। त्रिषु अपि स्थलमण्डलं प्राथमिकदृष्ट्या अधिकम् उपयोगि दृश्यते। यतो हि अधिकतरा: प्राणिन: अत्रैव आश्रयं जीवनयापनं च कुर्वन्ति, विशेषत: मानवानां तु सम्पूर्णम् अस्तित्वं स्थलमण्डले एव भवति। अत: स्थलमण्डलस्य विशेषध्ययनम् अधिकं प्रयोजनकरं मन्यते।

प्रकृते शोधलेखे स्थलमण्डलात् प्राप्तव्याया: ऊर्जाया: वैदिकदृष्ट्या उचितप्रयोग: किं भवितुमर्हति? अथर्ववेदस्य ऋषे: उद्घोष:-"सत्यं बृहत् ऋतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञ: पृथिवीं धारयन्ति" (अथर्व-12-1-1) इत्यस्य स्थलमण्डलस्य अर्थात् पृथिव्या: आधारभूततत्त्वरूपे किं रहस्यमस्ति? मानासिकप्रदूषणादपि पृथिवी रक्षणीया इति ऋषीणां भावनां (अथर्व-12-1-14) कथमिव शोधाधारितेन ऋषीणां दिव्यदृष्टिरूपेण अवगत्य आत्मसात् कर्तुं शक्नुम:? इत्यादिषु विषयेषु विस्तारं सप्रमाणं कर्तुं प्रयतिष्यते।।

वैदिक वाङ्‌मये पर्यावरणसंरक्षणम्

डॉ0 चान्दकौर मान रा० व० मा० विद्यालय, उग्रा खेड़ी (पानीपत)

अस्मिन् जगति सर्वे प्राणिन: स्ववातावरणं प्रति आश्रिता: भवन्ति सामान्यतया इदं वातावरणमेव पर्यावरणं कथ्यते। परि + आ पूर्वक वृञ् धातु: सम्मिल्य पर्यावरणशब्दो जायते। अत्र परि उपसर्गस्यार्थ: समन्तात् आवरण शब्दस्यार्थश्च आच्छादितं भवति। अत: यद् किञ्चिदपि वस्तु प्राणिनं वा यद् वस्तु आच्छादितं करोति तदेव तस्य पर्यावरणं कथ्यते।

वैदिकवाङ्‌मये चर्तुषु वेदेषु विविधमन्त्राणां माध्यमेन पर्यावरणविषयं स्पष्टरूपेणोल्लिखितमस्ति तत्र पृथ्वी जलाग्नि वाय्वाकाशादय:

पर्यावरणरूपेण अवलोक्यन्ते। पर्यावरणमिदं सुखमयं, जीवन्तं दोषमुक्तं च विधातुम् अनेके सहयोगिनः पदार्थाः सूर्याग्नि-ओषधादयः भवन्ति। वेदमन्त्रेषु अनेकस्थलेषु एतेषां महत्त्वं विविधविधैः दृष्टिगोचरं भवति। अत एव संक्षेपेण कथयितुं शक्यते यदस्माभिः वेदमन्त्रेषु वर्णितानां पदार्थानां गुणकर्माणि जानन्तः पर्यावरणस्य संरक्षणं सन्तुलनञ्च विधातुं सर्वदैव प्रयतितव्ययम्।

वैदिक पर्यावरणसंरक्षणस्यावधारणा

डॉ. रामसुमेर यादवः लखनऊ विश्वविद्यालयः, लखनऊ

निखिलभुवने केवलमुपकारकस्वरूपा प्रकृतिरेव वरीवर्तते। सैवोषधीनामशेषप्राणिनाञ्च कृते हितमादधाना दृश्यते। प्राकृतिकपर्यावरणस्य संरक्षणार्थं सम्प्रत्यपि वैज्ञानिका शोधशीलाः वर्तन्ते। इतः पूर्ववैदिककाले ऋषयः एतद्विषये नितरां चिन्तनपराः दृश्यन्ते। प्रमाणरूपेण वैदिकसाहित्ये बहुशः सामग्री उपलभ्यते। परि+आ उपसर्गपूर्वकमावरणार्थक 'वृ' धातोः ल्युट् प्रत्यये विहिते सति निष्पन्नतां याति पर्यावरणमिति। वायुजलपृथ्वीध्वनीत्यादिनां समेषां चेत् स्वास्थ्यं संतिष्ठेत् तदैव मानवानां पशूनाञ्च जीवनं स्वास्थ्यकरं भवितुर्महति। अन्यथा एतेषां प्रदूषणेन पर्यावरणं दूषितं स्यात् सर्वं च हानिकरं जायेत्।

एतद्विषये भारतीयाः ऋषयः सचेतारः भूत्वा वैदिकसाहित्ये प्रतिपादनं विहितवन्तः। वैदिक साहित्ये पर्यावरणसंरक्षणविषये कीदृक् वर्णनं विद्यते तदेवास्मिन् शोधपत्रे निरूपणं करिष्यामः।

वेदेषु तन्मूलकपुराणेषु पर्यावरणविमर्शः

डॉ. हरेराम त्रिपाठीः उपाचार्य सर्वदर्शन श्री ला.ब.शास्त्री रा.सं विद्यापीठ, नई दिल्ली

वेदेषु तन्मूलकपुराणेषु पर्यावरणविषयिणीचर्चा अनेकेषु स्थलेषूउपलभ्यते। वृक्षाः अपि पर्यावरणस्य साधकाः भवन्ति एवमपि वनस्पतयोऽपि। वृक्षारोपणस्य विषये पुराणेषु व्याख्यानमुपलभ्यते। तेषां दिग्दर्शनं, पर्यावरणस्य के पोषकाः सन्ति ? प्रदूषणं किं? प्रदूषणेन किं भवतीति ममशोधस्य विषयो भविष्यति। एकस्मिन् वर्षे एकः वृक्षः द्वादश किलोपरिमितं कार्बनडाईआक्साइड वायुतत्त्वं गृह्णाति। वर्षपर्यन्माक्सीजनवायुतत्त्वं यादृशपरिमितं विसर्जयति। तादृशाक्सीजन वायुतत्त्वेन चत्वारः मनुष्याः वर्षपर्यन्तं जीवन्ति। अश्वत्थवृक्षः अत्यधिकमात्रारूपेण कार्बनडाई आक्साइड वायुतत्त्वं गृह्णाति अथ चात्यधिकमात्रारूपेण आक्सीजनवायुतत्त्वं परित्यजति। तत्तु पर्यावरणदृष्ट्या अत्युत्तमं विद्यते। पर्यावरणस्य कृते वृक्षाणामुपयोगिता इत्थं वर्तते। वृक्षः ध्वनिं गृह्णाति जलस्य वेगं मृदाक्षरणञ्च निवारयति। वृक्षः पक्षिणां कीटादीनां कृते आवासस्य व्यवस्थां करोति। वृक्षः वायुषु विद्यमानानि दूषिततत्त्वानि नाशयति। वाष्पोत्सर्जनप्रक्रियायां साहाय्यं कारयति इत्यादीनां विषयाणां निरूपणं वेदानाश्रित्य तन्मूलकपुराणान्याश्रित्य शोधपत्रे करिष्यामि।

अन्यान्यपि पर्यावरणपोषकतत्त्वानि वा पर्यावरसंरक्षकतत्त्वानि भवन्ति। येषां निरूपणं वेदेषु तन्मूलकपुराणेषु वर्तते। आचारव्यवहारः, संस्काराः, संध्यावन्दनं, व्रतादीनि, विवाहसंस्कारश्चेत्यादयः विषयाः सन्ति! एतेऽपि पर्यावरणदृष्ट्या पर्यावरणसंरक्षकाः एव सन्तीति विषयानाश्रित्य संक्षिप्तविचाराः शोधपत्रे भविष्यति। विशेषतः वृक्षानाश्रित्यैव मीमांसा भविता। विस्तरभयादत्रैव विरम्यते।

वैदिकवाङ्मये पर्यावरणम्

डॉ. अरविन्दनारायण मिश्रः

परि+आङ् उपसर्गपूर्वकं वृ आवरणे धातोः ल्युट् प्रत्यययोगात् भवति पर्यावरणशब्दस्य निर्माणम्। पृथिवी, जलं, तेजो, वायोराकाशश्चेति पंचमहाभूतानि प्रकृतेः प्रमुखतत्त्वानि। एतैरेव तत्त्वैः पर्यावरणस्य रचना भवति। आव्रियते परितः समन्तात् लोकोऽनेनेति पर्यावरणम्- **पृथिवीं परितो व्याप्य तामाच्छाद्य स्थितं च यत्। जगताधाररूपेण पर्यावरणमुच्यते।।**

प्रदूषणरहितं, शुद्धं, परिष्कृतं च पर्यावरणम् अस्मभ्यं सर्वविधं सांसारिकं सुखं ददाति। प्रकृतिकोपैः आतंकितो जनः किं कर्तुं प्रभवति ? जलप्लावनैः, अग्निभयैः, भूकम्पैः, वात्याचक्रैः, उल्कापातादिभिश्च सन्तप्तस्य मानवस्य च मङ्गलम् ? अतएव प्रकृतिः

अस्माभिः रक्षणीया। तेन च पर्यावरणं रक्षितं भविष्यति। पर्यावरणशब्दस्य मौलिकस्वरूपं प्राप्यते वैदिकवाङ्मये। ऋग्वेदस्य पुरुष-हिरण्यगर्भ-ऋक्सूक्तेषु पर्यावरणोत्पत्तेः वर्णनमस्ति। ऋग्वेदस्य मन्त्रोऽयम् -

नाभ्याऽऽसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत्। पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात् तथा लोकांन्कल्पयन्।।

कृष्णयजुर्वेदीयतैत्तिरीयोपनिषद् पर्यावरणस्य विविधकारकाणाम् उत्पत्तिं प्रस्तौति - **तस्मात् वा एतस्मात् आत्मान् आकाशः सम्भूतः। आकाशाद् वायुः वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी । पृथिव्या औषधयः। औषधीभ्योऽन्नम् । पुरुषः । स वा एष पुरुषोऽन्नमयः।।** आधुनिकवैज्ञानिकाः पर्यावरणं चतुर्विधं विभजन्ति- 1. स्थलमण्डलम् , 2. जलमण्डलम्, 3. वायुमण्डलम्, 4. जीवमण्डलं चेति। पर्यावरणविषये एतादृशी अवधारणा अथर्ववेदे पृथिवीसूक्ते वर्णिताऽस्ति- **यस्यां समुद्र उत् सिन्धुरापो यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः। यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत् सा नो भूमिः पूर्व पेये दधातुः।।**

वेदेषु द्यौस्तत्त्वं पितृरूपेण पृथिवीं च मातृरूपेण स्वीकृत्य नैकवारं स्तुतिरभवत्।

वेदेषु यज्ञेन पारिस्थितिकी सन्तुलनम्

श्रीमती सरिता स्वामी संस्कृत, दर्शनशास्त्र, मोदी शिक्षा एवं अनुसन्धान संस्थान, लक्ष्मणगढ़ सीकर राजस्थान

विश्वव्यवस्थायाः आधारो यज्ञः। यज्ञस्यार्थस्तु आदानप्रदानम्। प्रकृतेः नियमोऽस्ति यत् आदाने प्रदाने च सन्तुलनं भवेत्। यदि वयं प्रकृत्या किञ्चित् गृह्णीमः तर्हि दातव्यमपि।

हरयो धूमकेतव वातजूता उपद्यवियतन्ते पृथगम्नयः। अर्थात् हे परमात्मन् ! भवता रचिताः इमे सूर्याग्निविद्युच्चन्द्रादयः निर्माणं कुर्वन्ति। जीवाः सूर्यरश्मिभिः ऊर्जाम् अन्नं च प्राप्नुवन्ति। आदित्य एव ब्रह्माण्डस्य वैद्यः नियामकश्च भवति। समस्ताः प्राकृतिकाः आयुर्वेदशास्त्राणि च अस्मिन्नेव निर्भराः सन्ति। अथर्ववेदे सूर्यस्य ऊर्जायाः आधारः सोमो वर्णितः। अयं सोम एव 'हाइड्रोजन' भवति।

यजुर्वेदे अपां रसस्य रसः आदित्ये वर्णितः। अयं 'हाईड्रोजनस्य सूक्ष्मतमः रूपः 'हीलियमस्य' सत्ता सूर्ये वर्णितः।

अग्नि सोमो बिभ्रति आप इतताः। (यजु. 3.13.15)

ऋग्वेदे वर्णनमस्ति यत् सूर्यस्य सहस्ररश्मिषु चतुःशतं रश्मयः वृष्ट्या कारणं भवति।

इमास्त इन्द्र पृश्नयो घृतं दुहत आशिरम् एनामृतस्य पिप्युषोः।(ऋ. 8.6.19)

यस्मिन् स्थाने यज्ञः भवति तत्रत्यः अग्निवायुसूर्यरश्मीणां सामर्थ्यं वर्धयति।

यज्ञाग्निः हव्यपदार्थानां सूक्ष्मरूपेण विभज्य तेषां प्रभावशालिताम् उत्पादयन्ति। घृते वायुरोधनस्य अन्यान् द्रवपदार्थान् स्वकीयेन सह घनीभावस्य गुणः वर्तते। अग्निना धृतस्य परमाणवः आकाशे प्रसृता जायन्ते। तत् घृतम् उर्ध्व गत्वा एकस्य स्तरस्य निर्माणं करोति, यस्मिन् वायोः प्रवेशनमपि भवितु नार्हति। फलतः अधोभागस्य सघन वायुः विरलोभूत्वा उड्डीयते। आकाशे वर्तमानः जलवाष्पः अस्मिन् स्तरे संसक्तो भवति। घृते जलस्य घनीभाव-शक्त्या जलवाष्पः सघनं भवति, पुनः शीतीभावस्य हेतोः जलं भूत्वा वर्षति। अस्मिन् जले औषधीयगुणाः सन्ति अतः प्रकृत्याः प्रत्येकं वनस्पतिं प्रति, धान्यं प्रति, मानवं प्राणिञ्च प्रति हिकारी भवति। एभिः जलैः अत्यधिकमात्रासु तथा गुणवत्तायुक्तं धान्यं उत्पन्नं भवति। भूमेः उर्वराशक्त्यामपि वृद्धिः भवति। तदोद्भवानां वनस्पतीनां धान्यानां च उपयोगेन मानवाः पशवश्चापि स्वस्थाः सबलाश्च भवन्ति। एतस्मात् कारणात् यजुर्वेदेऽपि कथ्यते -

अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः । (यजु. 23.62)

वैदिकवाङ्मये पर्यावरणविज्ञानम्

भावप्रकाशः प्रवक्ता, श्रीसोमनाथसंस्कृतविश्वविद्यालयः, वेरावलम्, गुजरात

निखिलविज्ञाननिधानेष्वेतेषु वेदेषु पर्यावरणविज्ञानमपि संलक्ष्यते। अद्य सकलं जगत् पर्यावरणप्रदूषणसमस्ययाक्रान्तं वर्तते यदि वेदा अनुसन्धीयन्ते चेदेताभिः समस्याभिः निश्चप्रचं निर्गमनं शक्यम्। पर्यावरणस्य संघटकतत्त्वेषु जलस्य वायोरोषधीनाञ्च प्राधान्यम्।

यथोक्तमस्मिन् मन्त्रे -

त्रीणि छन्दांसि कवयो वि येतिरे पुरुरूपं दर्शनं विश्वविचक्षणम्।

आपो वाता ओषधयः तान्येकस्मिन् भुवन आर्पितानि।

वृक्षाः पर्यावरण-संरक्षणे महत्भागं भजन्ते। वृक्षाणां छेदनेन पर्यावरणं विनश्यति वृक्षारोपणेन च पर्यावरणं संरक्ष्यते। यथा-

वनस्पतिं वन आस्थापयध्वं नि षू दधिध्वम् अखनन्त उत्सम्।।

तथैव सर्वविज्ञानमयेषु वेदेषु वैदिकवाङ्मये वायु-जल-भूम्यादि विषयेऽपि बहवः मन्त्राः समुपलभ्यन्ते येषु पर्यावरणविज्ञानमवलोक्यते। संक्षेपेण पर्यावरणविषये मयाऽत्र विलिखितं शोधपत्रे एतस्य पर्यावरणविज्ञानस्यानुशीलनं करिष्यते।।

वैदिकसाहित्ये पर्यावरणचिन्तनम्

प्रकाशचन्द्र जोशी गुरुकुलमहाविद्यालयो ज्वालापुरम्, हरिद्वारम्

परि-आङ् उपसर्गपूर्वकं 'वृ' धातोः ल्युट् प्रत्ययेन पर्यावराण शब्दः निष्पन्नं भवति यस्यार्थः 'परितः सम्यक् वृणोति आच्छादयतीति पर्यावरणम्' प्रकृतिं परित आवृत्य स्थितं तत्त्वजातं नाम पर्यावरणं कथ्यते। जल-भूमि-वाय्वाकाशवृक्षवनस्पतिप्रभृतयः सन्ति पर्यावरणस्य अवयवाः। वेदेषु सर्वाण्येतानि 'देव' इति शब्देनाभिधीयन्ते। यतोहि ताहन दिव्यैः शताधिकवर्षाणि जीवितुं शक्नोति, यद्यसौ स्वच्छवायुं सेवेत, प्रसन्नं पयः पिबेत्, शुद्धमन्नमद्यात्, विमलावनौ क्रीडेत् प्रशुद्धभूमौ कृषिकर्म चाचेरेदिति। पुराकाले जनाः प्राकृत् पदार्थेषु तरुलतादिषु वन्यग्राम्यपश्वादिप्राणिषु मिथश्च प्रीतिमन्त आसन्। यज्ञादिना प्रकृति विकृतिं पूरयन्तः प्राणिनो बलादिना तोषयन्तः यज्ञ शिष्टाशिनः सन्तुष्टाः सुखिनः शान्ताश्च अभूवन्।

दूषितं पर्यावरणं विनाशाया शिवत्वस्य विनाशमवश्यं भावि दरीदृश्यते यत्र तत्र सर्वत्र। यान्त्रिकी भौतिक विद्या विजृम्भते, तान्त्रिकी दानवी शक्ति वर्धते, लोकैषणा विजृम्भते मर्यादाः लोप्यन्ते सदाचारनियमाः नाद्रियन्ते पथ्यानि सुभाषितानि।

ऋग्वेदस्य प्रथमायाम् अग्निदेवस्य नमस्कारेण यज्ञस्य महत्त्वं प्रतिपादितम्- "अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्य दवमृत्विजं होतारं रत्नध ातमम्।।" प्राचीनभारतस्य ऋषिभिः अनुसन्धितम् अग्निहोत्रं पर्यावरणस्य रक्षणार्थम् अधुना अपि महत्त्वपूर्णम् अस्ति।

निष्कर्षतो वक्तुं शक्यते वेदा मनुष्य वायु-जल-भूमि-वनस्पतिप्रभृति पर्यावरणघटकानां शुद्धये सावहितं संदिशन्ति तदेषु समागतामशुद्धतामपसायितुं सततं प्रेरयन्ति, तद्यथा-

"वात आ वातु भेषजं शुंभु मयोभु नोहृदे। प्राण आयुंषि तारिषत्। ओषधीः प्रतिमोदध्वं पुष्पवती प्रसूवतीः।।"

वस्तुतः प्रसन्ने पर्यावरणे हि मनुष्यः शारीरिक-मानसिक-बौद्धिरूपेण च स्वस्थीभूय सौख्यमाप्तुमर्हति। एतदर्थमेव ऋषिभिर्भूयोभूयः सन्दिश्यते- "इदमाप प्रवहत यत्किञ्च दुरितं मयि, शग्मा भवन्तु मरुतो न स्वोनाः।।" इदं विश्ववेदसम्मेलनं पर्यावरण सन्दृष्ट्या अतिमहत्त्वपूर्णं भविष्यति इति।

वैदिकवाङ्मये परिवेशभावना

डॉ. शिप्रा राय संस्कृतविभागः, त्रिपुराविश्वविद्यालयः

संस्कृतसाहित्यस्य बहुषु स्थलेषु परिवेशसचेतनाविषये उल्लेखः दृश्यते। वैदिकसाहित्ये तथा काव्यनाटकादिष्वपि परिवेशविषये विविधम् आलोचनं दृश्यते। वैदिकसाहित्यस्य अपि बहुषु क्षेत्रेषु परिवेशसचेतनताप्रसंगे ऋषयः नैकविधं वक्तव्यम् उपस्थापितवन्तः। वैदिकयुगस्य मानवाः जीवनधारणस्य कृते प्रकृत्याः उपरि सर्वं समर्पितवन्तः। प्रकृतिं खलु नानविधप्रयोजने ते व्यवहारं कृतवन्तः। ऋग्वेदे, सामवेदे, यजुर्वेदे, अथर्ववेदेऽपि ऋषयः परिवेशस्य गुरुत्वं स्वीकृतवन्तः। ऋग्वेदे आकाशः मर्त्यवासिनां जनकरूपे स्वीक्रियते। न केवलमृग्वेदे सामवेदेऽपि परिवेशस्य उपादानरूपेण वायोः गुरुत्वम् उपलभ्यते।

ऋग्वेदमनुसृत्य अथर्ववेदेऽपि द्युलोकेन सह पृथिव्याः स्तुतिः दृश्यते। तथापि अथर्ववेदे पृथिवी भूमिः वा विशेषरूपेण गुरुत्वम्

आवहति। इयं पृथिवी अन्नेनसह अस्माकं प्राणान् जीवनस्य आयुश्च धारितवती। परिवेशरक्षणार्थं वर्तमानकालेऽपि चिन्ता दृश्यते। परिवेशस्य प्रयोजनं सर्वेषु एव कालेषु समानतया समुपयोगि भवति। विश्वस्य कल्याणाय वैदिकाऋषयः परिवेशस्य गुरुत्वम् उपलब्धवन्तः। तस्मात् वैदिकवाङ्मये परिवेशस्य संरक्षणम् अधिकृत्य बहूनि वचनजातानि अस्माकं दृष्टिपथम् आगच्छन्ति। प्रबन्धस्य मध्ये अहं वैदिकवाङ्मये परिवेशविषयकं सचेतनत्वं अवलम्ब्य किमपि वक्तव्यं विदुषां पुरतः निवेदयितुम् इच्छामि।

वैदिकसाहित्ये विज्ञानम् (पर्यावरणम्)

रोशनबलूनी पौड़ी गढवालः, उत्तराखण्डः

वैदिकवाङ्मये बहुज्ञान-विज्ञानं वर्तते तेषु पर्यावरण विज्ञानं साम्प्रतिके समये मानवानां कृते नितान्तमावश्यकं वर्तते। यतोऽहि वेदस्य सूक्तयः पर्यावरणीय संस्कृतेः परिचयं कारयन्ति। मुख्यतया विश्वस्य प्राचीनतमग्रन्थे ऋग्वेदे अग्नेः रूपरूपान्तरं कार्याणां गुणानाञ्च विस्तृता व्याख्या अस्ति, तु यजुर्वेदे वायोः विधिरूपाणां गुणधर्मस्य च तात्विक-व्याख्या कृता अस्ति। पर्यावरणस्य निर्माणे एतेषां चतुर्णां तत्वानां मुख्यरूपेण भूमिका भवति। यथार्थोऽयं वर्तते यद् पर्यावरणरक्षा अद्य एका विश्व-समस्या विद्यते या निरन्तरं वर्धितास्ति। द्विनवत्यधिक नवदशशततमे वर्षे (1992) 'रियो' नगरे 'पृथ्वी सम्मेलने' अभवत्, सम्मेलने सर्वैः देशैः विश्वे वर्द्धमाना प्रदूषणेन सम्भावित महाविनाशस्योपरि चिन्तनं कृतवन्तः। सम्मेलनेऽस्मिन् पर्यावरण रक्षायै अनेकानैक-प्रस्तावः पारितं कृतवन्तः परञ्च यथा मया उपर्युक्तं यद् पर्यावरणीय शिक्षा- अस्माकं प्राचीनतम संस्कृतवाङ्मये वेदेभ्यः प्रारम्भः भवति, यत्र नद-नदीनां वृक्षाणां, पृथ्वी, जल तथा तेजं देवरूपेण पूजाऽर्चनाकरणस्यादेशः दत्तोऽस्ति, यथा- पर्यावरण शब्देनैव ज्ञायते यत्- परितः आवरणं पर्यावरणमित्युच्यते, अर्थात् मानवः कथं पर्यावरणं शुद्धं कुर्यात्। विषयेऽस्मिन् वेदेषु वायुमण्डलं परिष्करणम्, एवं वायुप्रदूषणमवरुद्ध दृष्ट्या नियमित रूपेण यज्ञकरणस्य विधानं कृतमस्ति।

यजुर्वेदे शानिपाठस्तु पर्यावरण साधनायाः शाश्वतोद्घोषोऽस्ति। वैदिक ऋषयः ध्वनिप्रदूषण विषयेऽपि सिद्धाः भवन्ति स्म 'भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः भद्रं पश्येमः' अतः भारतीयसंस्कृतेः मूलभूतविशेषतेयं वर्तते यद् कोऽपि अस्मभ्यम् किमपि ददाति उत वा प्रत्यक्षाप्रत्यक्षरूपेण जीवनोपयोगी भवति। सोऽस्माकं कृते देवतुल्यो भवति; आदरणीयो पूजनीयो वा भवति, यथा पृथ्वी, वेदेषु भूमिं मातुः संज्ञा दीयते उक्तं च 'माताभूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः, भूमेः मातर्निधेहि मा भद्रया सुप्रतिष्ठितम्' इदमेवकारणमस्ति यद्- पञ्चमहाभूतेषु पृथ्वी-जल-तेज-वायु-आकाशं वैदिकऋषिभिः 'देवत्वं' प्रदानं क्रियते, तान् पञ्चमहाभूताञ्च धार्मिकभावनया युग्मं कृतम् येन तानि लोक-आस्थायाः विश्वासस्य च प्रतीकानि भवेयुरिति। अतः शोधपत्रमाध्यमेनास्य वयं वक्तुं शक्नुमो यत् वेदानाम् अध्ययनेन, पर्यावरणीयज्ञानं प्राचीनैः ऋषिवर्यैः यज्ञ- माध्यमेन पर्यावरणं कथं शुद्धं स्यात्, इति विषयं मानवाय आवश्यकरूपेण प्रतिपादितः नास्तिचेत् भूकम्पविस्फोटादयः भूमौ जायेरन् इत्ययं भावः शोधसंक्षेपिकायाः।

वैदिकसाहित्ये पर्यावरणम्

डॉ. कीर्तिवल्लभ शक्टा

यथा साम्प्रतं विश्वस्य सर्वे अर्वाचीनाः वैज्ञानिकाः विद्वांसः प्रकृत्याः संरक्षणे दत्तावधानाः सन्ति तथैवास्माकं पूर्वजाः ऋषयः मुनयः तपो पूताः मनीषिणश्च निखिलब्रह्माण्डे जायमानस्य यजुर्वेदस्य मन्त्रोऽयं प्रसंगेऽस्मिन् पुष्टिं करोति- **ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः0** कथ्यते यद् निखिलेऽपि ब्रह्माण्डे यत्किञ्चिदपि अस्मान् परिवृणोति जगति समेषां प्राणिनां जीवनञ्च प्रभावयति तत्सर्वं पर्यावरणम्। प्राचीनकाले पर्यावरणस्य काचिदपि समस्या नासीत्, परं शनैः शनैः महती जनसंख्यावृद्धिः पर्यावरणस्य दूषणाय मानवानां सम्मुखे शत्रुवत् समागता। फलतः अद्य तु सम्पूर्णमेव ब्रह्माण्डं प्रदूषणस्य करयोः विराजमानम् अस्ति। जनैः चन्द्रलोकस्य भूमिः धनबलेन विज्ञान बलेन च क्रीता। किं तत्रापि प्रदूषणं न भविष्यति? वेदेषु पर्यावरणस्य परिष्करणाय नानाविधाः उपायाः सन्ति। यथा यज्ञः, यज्ञात् धूमः, धूमात्- मेघः , मेघात् वृष्टिः, वृष्ट्या धनधान्ययुता धरा। इतः परमपि वेदेषु पर्यावरणस्य शुद्ध्यर्थं ऋषिभिः नैकेः मार्गाः प्रदर्शिताः। अतः इदानीमपि विश्वस्य सर्वैः-मानवैः वैदिक-पर्यावरणस्य ज्ञानमनुसृत्य स्वकीया दिनचर्या समाचरणीया। अनेनैव विश्वे सर्वविधं पर्यावरणं शुद्धं भविष्यति। विश्वबन्धुत्वस्य भावनापि समृद्धा भविष्यतीति।

वेदेषु पर्यावरण-चिन्तनम्

डॉ. प्रणव शास्त्री उपाधि महाविद्यालय, पीलीभीत

वेदेषु विश्वस्य प्रत्येकं ज्ञानं विज्ञानञ्च वर्तते, इति सत्यम्। वर्तमान समये पर्यावरणस्य विषये समस्त विश्वस्य गहन चिन्ताऽस्ति। वेदाः अपौरुषेयाः, अनादयः सन्ति, अतः वेदाः स्वयंप्रमाणाः सन्ति। प्रकृति भारतीयानां प्रति सदैव पूजनीयाऽस्ति। वृक्षाणां सर्वयुगीन लाभाः सर्वे जानन्ति।अस्मिन् लोके गौ एकाः शक्तिसम्पन्नः पशुः अस्ति। वर्तमान समये पर्यावरण संरक्षणार्थ गौधनम् अत्यावश्यकम्। वर्णितं च-यूयं गावो मेदयथा कृशं चिदश्रीरं चित् कृणुथा सुप्रतीकम्। भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचो वृहद्धो वयं उच्यते सभासु।। ऋग्वेद 6.28.6 प्रसन्नार्थे यजुर्वेदे यज्ञः एकः उपादानः। अथर्ववेदे प्रकृतिः विवरणं सर्वत्र प्रचाल्यते। यथा- सूर्यो मे चक्षुर्वातः प्राणोऽन्तरिक्षमात्मा पृथिवी शरीरम्। अस्तृतो नामा हमयमस्मि स आत्मानं निदधे धारापृथिवीभ्यां गोपीथाय।। अथर्ववेद 5.9.7 सारतः वयं कथयितुं शक्नुमः यतः विश्वे पर्यावरण संरक्षणसमाधानं वेदेषु विद्यते।

वैदिकवाङ्मये पर्यावरणपर्यालोचनम्

प्रो. स्वप्ना देवी असमविश्वविद्यालयः, शिलचरः

पर्यावरणमधिकृत्य चिन्तनम् इदानीन्तनैर्विद्वद्भिरेव कृतमिति तु न। प्राचीनभारतस्य प्रकृतिवैज्ञानिकैः ऋषिभिः कविभिश्चिकित्सकैर्धर्मशास्त्रकृद्भिश्च निसर्गविषये पर्यावरणसंरक्षणविषये च वेदादारभ्य अखिले संस्कृतसाहित्ये वैशद्येन आलोचनं कृतम्। उपनिषदि प्रकृतिमनुष्ययोः सम्बन्धः सम्यक् चित्रितः। पर्यावरणचेतना ईशोपनिषदः प्रथमे मन्त्रे सुष्ठु प्रतिफलिता- ईशा वास्यमिदं सर्व यत् किञ्च जगत्यां जगत्। तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।। वेदर्षयः पर्यावरणशुद्ध्यर्थ वन-वृक्ष-वनस्पति-औषधि-लतानां महत्त्वमङ्गीकृत्य तेभ्यः प्रणामाञ्जलिं निवेदितवन्तः - 'नमो वृक्षेभ्यः'(यजु. 16.17)। तेषां संरक्षणे सम्वर्धने च सम्बद्धजनान् श्रद्धां प्रदर्शितवन्तः- 'ओषधीनां पतये नमः।' ऋग्वेदस्य दशममण्डलस्य एकस्मिन् सूक्ते वनदेवी वन्यप्रकृतीनां जन्तूनाञ्च मातृरूपेण चित्रिता(ऋक्. 10/146)। तत्र सर्वेषा प्राणिनां कृते वृक्षाः वनस्पतश्च यथा मधुतयाः हितकराः शान्तिदायकाश्च भवितुमर्हन्ति तदर्थ प्रार्थनं कृतम्। वैदिकमन्त्रेषु सर्वेषां प्राणिनां कृते वृक्षाः वनस्पतयो यथा मधुमयाः शान्तिदायकाश्च भवितुमर्हन्ति तदर्थ प्रार्थनं कृतम्। मधुमान्नो वनस्पतिः(ऋक्. 2.190.8) ओषधयः शान्तिः(ऋक् 13.27)

वृक्षवनस्पतिनिःसृतेन 'आक्सिजेन' इत्यनेन मनुष्याः प्राणशक्तिं बलश्च आप्नुवन्ति। वृक्षवनस्पतयो मनुष्यजीवनकृते हानिकारकं दूषितं वायुं स्वेषु गृह्णन्ति। एतत् सत्यं समुपलभ्य वेदर्षयः सहस्राब्दपूर्वमेव वृक्षवनस्पतिसम्बन्धवशात् वातावरणं प्राणवन्तं मधुमयञ्च क्रियमाणं वायुं विश्वभेषजरूपेण अङ्गीकृत्य भेषजवातप्रवहणार्थ प्रार्थनं कृतवन्तः-आ वात वाहि भेषजं विवातं वाहि यद्रूपः। त्वं हि विश्वभेषजो देवानां दूत ईमसे।। (ऋक् 10.137.3) वैदिकवैज्ञानिकैः पर्यावरणशुद्धिनिमित्तं यज्ञः सर्वोत्तमसाधनरूपेण स्वीकृतः। पर्यावरणस्य भारसाम्यरक्षणार्थ परिपुष्टये च प्रतिदिनं यज्ञसम्पादनं गृहस्थस्य अवश्यकर्त्तव्यत्वेन चिह्नितम्- सुदिनं च मे यज्ञेन कल्पताम्। (यजु. 1.6) पर्यावरणशुद्ध्यर्थ अग्नौ यदा गोघृतगुग्गुलादीनाम् ओषधीनाम् आहुतिर्भवति तदा परिमण्डलं रोगविनाशकरं भवति। अतः आम्नात्- 'न तं यक्ष्मा अरुन्धते नैनं शपथो अश्नुते। यं भेषजस्य गुग्गुलोः सुरभिर्गन्धो अश्नुते।।' (अथर्व 17.381) सार्वभौममानवसंस्कृतेः आदिस्रोतःस्वरूपेषु वेदेषु पर्यावरणशुद्धिविषयकं यद्यत् चिन्तनं कृतं तत्तत् सर्व यथापूर्वमधुनापि सर्वथा प्रासङ्गिकमिति धिया वैदिकवाङ्मये विधृतपर्यावरणपर्यालोचनमाध ारीकृत्य समासतः आलोचनं निबन्धेऽस्मिन् विधास्यते।

ऋग्वेदस्य प्राकृतिकपर्यावरणेषु आकाशावरणम्

डॉ. सन्तोष कुमार पाण्डेयः राँची कॉलेज, राँची, झारखण्डः

ऋग्वेदे ऋक्मन्त्राणां संकलनं विद्यते। ऋग्वेदोऽयमृक्संहितापि कथ्यते। ऋच्यते स्तूयते अनया वाण्या सा ऋक् मन्त्रभूता देवानां स्तुतौ तेषां कार्यवर्णने महत्त्वप्रकाशने च प्रयुक्ता। ऋग्वेदे विविधं पर्यवरणं विवेचितं संकेतितञ्च। पर्यावरणेषु प्राकृतिकं पर्यावरणं

विशेषरूपेण प्रतिपादितम्। प्राकृतिकपर्यावरणेषु आकाशादीनि पर्यावरणानि विश्रुतानि। पर्यावरणं खलु मानवान् स्थावरजंगमपदार्थान् वा परितः यदावृणोति तदेवावरणमिति। पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशादीनि पञ्चभौतिकतत्त्वानि पर्यावरणत्वेन गण्यन्ते। इमानि पर्यावरणानि प्राकृतिक पर्यावरणानीति। एभिः पर्यावरणैर्जीवाः सदा आवृता भवन्ति। एतेषां पञ्चभूतानां प्राकृतिकपर्यावरणानां योगेन सृष्टिक्रिया सम्पद्यते। सृष्टेः पालनं सञ्चालनमपि एभिरेव भवति सर्वेषां पञ्चभौतिक-प्राकृतिकतत्त्वानां महत्त्वं जीवानां कृते विद्यते। एषु पर्यावरणेषु आकाशावरणमप्येकं महत्त्वपूर्णञ्च। आसमन्तात् काशन्ते प्रकाशन्ते सूर्यादयोऽत्रेत्याकाशः। आकाशस्य कृते गगनं खमन्तरिक्षमम्बरादयोऽनेके पर्यायवाचिनः शब्दा ऋग्वेदे प्रयुक्ताः। आकाशस्य कृते प्रयुक्तमन्तरिक्षमन्तरां क्षान्तं भवत्यन्तरे मे इति वा शरीरेष्वन्तरक्षयमिति वा। अन्तरिक्षमिदं द्युलोकपृथिवीलोकयोर्मध्येऽवस्थितं पृथिवीं यावत् शरीरेष्वन्तरमविनश्वरं विद्यते। सामान्यतयाऽन्तरिक्षलोकः द्युलोकोऽपि आकाशशब्देनैव गृह्यते। आकाशाद्वायुः प्रादुर्भवति। आकाशे शब्दमात्रात्मकः एको गुणः विद्यते। आकाशगुणः शब्द इति यास्काचार्यः। वायुभिः परिवेष्टि आकाशे जीवानां स्थितिर्विद्यते। यावत् पर्यन्तं वायुर्भ्रमति तावत् प्राणवायोः सञ्चरणमपि जायते। जीवानां कृते प्राणवायोरधिग्रहणमावश्यकम्। आकाशे एव जलस्य स्थितिर्मेघरूपाजायते। मेघोऽयं पृथिव्यां वर्षति येन अन्नोत्पादनं जायते। शोधपत्रेऽस्मिन् आकाशावरणविवेचनम्, आकाशावरणस्योपयोगित्वम्, आकाशप्रदूषणम्, आकाशावरणदूषणस्यापाकरणोपायाः विवेचितता भविष्यन्ति।

वैदिसाहित्ये पर्यावरणम्

डॉ. सोमप्रकाशपाण्डेयः मुनिश्वरदत्त स्ना. महा. प्रतापगढ़ (उ.प्र.)

पर्यावरणशब्दस्य निष्पत्तिः परि+आ+वृञ्+ल्युट् प्रत्यये कृते सति निष्पद्यते। यदस्मान् परितः आवृणोति, येन वयं परितः आवृत्तस्तत्पर्यावरणम्। एतद् पर्यावरणं छत्रवत् कार्यं प्रतिपादयति। छत्रभूतं पर्यावरणं मानवशरीरस्यैव न अपितु प्राणिमात्रस्य रक्षां वितनोति।

यद्यस्माभिः वर्गीकरण दृष्ट्या विचार्यते तदा पर्यावरणस्य भौतिकप्रकृतिकभेदेन द्विधा विभागः कर्तुं शक्यते। भौतिकपर्यावरणं पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाश नामधेयेषु पञ्चमहाभूतेषु विभक्तम्। पञ्चमहाभूतानां निर्माणं तदीयभूतानां 1/8 अष्टमांशयोजनेन भवति। उक्तञ्च-
द्विधा विधाय चैकैकं चतुर्धा प्रथमं पुनः। स्वस्वेतरद्वितीयांशैर्योजनात् पञ्च पञ्च ते।। वेदान्तसारः

इत्थं पञ्चीकृत पञ्चमहाभूतेभ्यः स्थूलजगत्सृष्टिः भवति। तदानीं पृथिव्यां गन्धाभिव्यक्तिः भवति। जले शैत्यं, अग्नौ दाहशक्तिरुत्पद्यते, वायौ स्पर्शशक्तिः, आकाशे शब्दोऽभिव्यज्जते। तदा जरायुजाण्डजस्वेद्भिज्जप्राणिनाम् उत्पत्तिः भवति। रजवीर्यसम्पर्केण मानवाः, पशवः जरायुजप्राणिनः जायन्ते। अण्डजाः पशुपक्षिणाः भवन्ति, स्वेदजाः जूकालिक्षादयः क्षुद्रकीटाणवः, जायन्ते। भूमिमुद्भिज्य वृक्षलतादयः जायन्ते। इमे सर्वे प्राणिनः परस्परोपयोगिनः सन्ति।प्राकृतिपर्यावरणेषु गिरिनदीसमुद्रवनवन्यवनस्पत्यादीनाम् उल्लेखः कर्तुं शक्यते। यतोहि सर्वत्र ईश्वरस्याधिवासः विद्यते। यदुक्तं भगवद्गीतायाम्- 'मयाऽध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्' गीता 9.10 । श्रीमद्भगवद्गीतायां श्रीकृष्णेन प्रोक्तम्- "यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः" - गीता 10.25 सरसामस्मि सागरः। गीता 10.24 स्रोतसामास्मि जाह्नवी- गीता 10.31 उपर्युक्त कथनेन प्रकृतिं प्रति धार्मिकभावना एव प्राचीनकाले प्रकृतिसंरक्षणोपायः आसीत्। मन्त्रद्रष्टारः ऋषयोऽपि वैदिकवाङ्मये अग्निवरुणमरुत्पृथिवीपर्जन्यादि सूक्तेषु तत्तत्देवानाम् अर्चनं पूजनं च निरुपितवन्तः। सवितृसूक्ते, सूर्यसूक्ते, मित्रसूक्ते, पर्जन्यसूक्ते, वाक्सूक्ते, पृथिवी सूक्ते, अग्निसूक्ते, वातसूक्ते पर्यावरण सम्बन्धी विचारः शोधपत्रे गंभीरतयावर्णितः वर्तते।

पर्यावरणम्

हर्षानन्द उनियालः ऋषिकेशः देहरादूनम्

प्राणिनः वनस्पतयः च यैः तत्त्वैः प्रभाविताः जायन्ते, तेषां तत्त्वानां समष्टिरेव पर्यावरणम्। परितः आव्रियतेऽनेन इति पर्यावरणम्। यत्र जीवनधारणो निवसन्ति तज्जैवमण्डलमित्युच्यते। जलमण्डलस्थलमण्डलवायुमण्डलेषु जीवा जायन्ते, तिष्ठन्ति, विनश्यन्ति च। एतेषां मण्डलानां समष्टिर्जैवमण्डलम्। अस्मिन् जीवजन्तवो वनस्पतय जलवायुप्रकाशोर्जागैसधातुखनिजादितत्त्वानि सन्ति। एतानि सर्वाणि तत्त्वानि यानि जीव-जन्तू वनस्पतींश्च प्रभावयन्ति 'पर्यावरणम्' इति उच्यन्ते। प्रकृतौ समतोलनं वर्तते, किन्तु मानवाः लौलुप्यात् प्रकृतेरत्यधिकं दोहनं कुर्वन्ति। तस्मात् प्रकृतावसमतोलनं जायते। पर्यावरणञ्च प्रदूषितं भवति। अधुना संस्कृतेः स्थानं सम्यक्तया गृह्यते अतः

कलयन्त्रालयानां संख्या वर्धते, स्वार्थपूर्तय एव वृक्षा वनानि च च्छिद्यन्ते, तस्मात् पर्यावरणप्रदूषणं वर्धते। यथा जल प्रदूषणं, अन्नप्रदूषणं, वायुप्रदूषणं, ध्वनिप्रदूषणं, रेडियोधर्मिप्रदूषमिति प्रदूषणानि वर्धन्ते। जनसंख्यावृद्धिरपि कारणं प्रदूषणस्य। उर्वरकाणां प्रयोगेण भूमिरपि प्रदूषिता भवति। सृष्टिप्रक्रियामुपनिषदि प्राप्यते- 'तस्माद्वा एतस्मादात्मनः आकाशः सम्भूतः, आकाशाद्वायुर्वायोरग्निरग्नेरापोऽद्भ्यःपृथिवीति' पञ्चतत्त्वैः प्रभावितानामिन्द्रियाणां विवरणमत्र द्रष्टव्यम्-

तत्त्वानि	ज्ञानेन्द्रियाणि	विषयाः	कर्मेन्द्रियाणि	विषयाः
आकाशः	श्रोत्रम्	शब्दः	वाक्	वाणी
वायुः	त्वक्	स्पर्शः	पाणिः	आदानम्
अग्निः	अक्षिः	तेजःरूपम्	पादः	गमनम्
जलम्	जिह्वा	रसः	पायुः	मलोत्सर्जनम्
पृथिवी	नासिका	गन्धः	उपस्थः	प्रजननम्

पञ्चतत्त्वेषु गुणत्रयस्य सत्वरजस्तमाख्यास्यापि विद्यमानं भवति, यैः प्रभाविता भवन्ति, जीवास्तेषामिन्द्रियाण्यपि जायन्ते प्रभावितानि। अनेनैव कारणेन जीवास्त्रिगुणात्मकाः प्रोच्यन्ते। तत्र सत्त्वगुणस्याधिक्ये रजस्तमसो गौणत्वे च सात्त्विकाः, रजसः, प्राधान्येऽपरयोस्तयोर्गौणत्वे रजसाः तमसः प्राधान्येऽपरयोर्गौणत्वे तामसाश्च जीवा भवन्ति सामान्यतः, प्रकृतिरियं त्रिगुणात्मिका। ऋग्वेदस्य पृथिवीसूक्ते पृथिव्याः वर्णनं विशेषेण प्राप्यते। मानवानां मध्ये पृथिव्याः उच्चो निम्नो समतलं क्षेत्रसम्बाध बाधारहितं विद्यते। या पृथिवी नानाशक्तिसहिता वनस्पतीन् धारयति सा पृथिवी अस्मभ्यं विस्मृता समृद्धा च भवतु यस्यामन्नं भवति कृषिकार्याणि च सम्भवन्ति, यस्यां इदं जगत् श्वसद् गतिशीलञ्च भवत् जिन्वति आनन्दमनुभवति, सा पृथिवी अस्मान् उत्तमपेयप्रदेशे स्थापयतु। निष्कर्षः एषः प्राप्यते यदखिलं पर्यावरणं शिवरूपमस्ति शिरूपं मत्वा जलादितत्त्वानि देवरूपाण्णि, अतस्तेषां तत्त्वानां प्रदूषणमपनेतव्यम्। आश्रमाः, वन्यजीवजन्तवः रक्षणीयाः, वनानि, च रक्षणीयानि। पर्यावरणसंरक्षणेन वयं स्वस्थाः भवामः स्वस्थाः मानवाः विवेकशीलाः भवन्ति, स्वस्य परेषाञ्च रक्षां कर्तुं समर्था भवन्ति। अतोऽस्मभिरपि एतेषां प्रदूषणाद् एतेषां प्रदूषणाद् पर्यावरणस्य रक्षा करणीया। एषः सन्देशः सुखदः कल्याणप्रदो भवेदिति।

वेदेषु पर्यावरणम्

डॉ.बालकृष्ण शर्मा मुजफ्फरपुर(बिहार)

पर्यावरणं वस्तुतः मानवेभ्योऽतीवावश्यकम् अनिवार्यञ्च वर्तते। अस्य पर्यावरणस्य प्रदूषणे पृथिव्याम् अस्माकमेकैकोऽपि जीवो जीवितुं न शक्यते। शाश्वतं सत्यमेतत् वैदिकै ऋषिभिः सुविचारितमासीत् पूर्वकाले। अनेनैव कारणेन तैः पृथिव्या सह मातापुत्रयोः सम्बन्धः स्थापितः- 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः' इति। (अथर्व. 12.1.12) एवमेव यजुर्वेदे ईशावास्याध्याये दध्यङ् अथर्वा ऋषिः कथयति विषयेऽस्मिन्, यदस्यां सृष्टौ परमात्मना निर्मितं यदपि संसाधनं वर्तते तस्य त्यागपूर्वकं भोगः कार्यः मनुष्यैः-'ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्। तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।।(यजु. 40.1) वेदेषु ऋषिणां प्रकृत्यां सह अतीव संवेदनशीतला आत्मीयता च परिलक्ष्यते, अनेनैव अथर्ववेदे अथर्वा ऋषिः पृथ्वीं प्रति संबोधयति प्रसिद्धे पृथिवीसूक्ते- 'यत्ते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु। मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पितम्।।(अथर्व. 12.1.35) पर्यावरणस्य शुद्धिकरणाय तस्य च संरक्षणाय वैदिकऋषिः यदपि करोतिस्म। तं सर्वं ते खलु यज्ञरूपं मन्यन्ते स्म। तेषां मान्यता आसीत् यत् संसारोऽयं यज्ञमयो वर्तते। प्रत्येकं वस्तु तस्मिन् विलीनं भूत्वा तं दृढं करोति। अतः कदापि किंचिदपि विखण्डिलं न कार्यम्। यदा एषा व्यवस्था क्रियते तदैव यज्ञं कथ्यते। महान्तः खलु पुरुषाः सदैव प्राकृतिकव्यवस्थायाः संरक्षणं कुर्वन्ति। अस्य तथ्यस्य वै मन्त्रेऽस्मिन्नभिव्यक्तिः संजाता, दर्शनीयमेतत्- यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्। ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः।।(ऋ. 10.90.16) वस्तुतः वेदेषु एतादृशानि अनेकानि उदाहरणानि पदे-पदे परिलक्षितानि सन्ति यत्र पर्यावरणस्य संरक्षणस्य महती आवश्यकता प्रतिपादिता वर्तते।

वैदिक संस्कृति एवं पर्यावरण संरक्षण

डॉ. शशी रानी अवस्थी रीडर शिक्षाशास्त्र विभाग, डी.जी.पी.जी. कालेज, कानपुर

पृथ्वी के इतिहास में इतनी विकट परिस्थिति कभी उत्पन्न नहीं हुई। विगत वर्षों में मानव जाति के हस्तक्षेप ने पृथ्वी के समग्र स्वचालित संतुलन को बिगाड़कर रख दिया है। पृथ्वी पर व्याप्त प्रदूषण ने जल, वायु और मृदा तीनों को अपनी चपेट में ले लिया है सारी पृथ्वी मानों रुग्ण होकर त्राहि-त्राहि कर रही है चारों ओर प्रदूषित विषवायु संचारित हो रही है। जिसमें मनुष्य को श्वाँस लेना कठिन हो रहा है। मिट्टी, जल और वायु सभी तत्व मानों हलाहल विष से आक्रांत हो चुके हैं। वातावरण में प्राण वायु की मात्रा घट रही है, अवांछित गैसें बढ़ रहीं हैं। लाखों टन रसायन पदार्थ जल संसाधनों में उड़ेले जा रहे हैं। केवल नदी-नाले और सरोवर ही नहीं प्रदूषित हो रहे हैं बल्कि भू जल भी प्रदूषित हो रहा है। वन प्रदेश तथा वन्य प्राणी लगातार घटते जा रहे हैं। धरती पर कुछ जीव-जन्तु लुप्त प्राय: हैं। और कुछ लुप्त होने की कगार पर हैं। विश्वव्यापी प्रदूषण की समस्या ने पृथ्वी पर अनेक समस्याओं को जन्म दिया है। जैसे पृथ्वी के तापमान में वृद्धि, ओजोन परत का क्षरण और वायु मण्डल में प्राणवायु का घटना आदि समस्याओं के कारण आज मनुष्य के जीवन पर ही प्रश्न चिह्न लग रहा है लेकिन यह कहा जा सकता है मनुष्य ने अपने विकास के लिए जो रास्ता चुना था वही उसके विनाश का कारण बन रहा है।

वैदिक संस्कृति में पर्यावरण चिन्तन

पारुल शोधच्छात्रा-हिन्दी विभाग, जनता वैदिक कॉलेज बड़ौत (बागपत)

वैदिक साहित्य में तो अग्नि, वायु, आकाश, जल तथा पृथिवी इप पंचमहाभूतों को देवता मानकर, अनेक सूक्तों के माध्यम से इसकी स्तुति की गयी है। इतना ही नहीं पंचमहाभूतों के संरक्षक के रूप में इन्द्रादि देवताओं से भी प्रार्थना की गयी है।

वैदिक वाङ्मय में निहित पर्यावरण-चिन्तन

डॉ. वन्दना रस्तोगी, प्राध्यापिका, संस्कृत विभाग, बा.भा.दा. राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जयपुर

"समस्त विद्याओं की पुस्तक" के रूप में समादृत वेदों में पर्यावरण-चिन्तन के ऐसे सार्थक सूत्र सुगुम्फित हैं जो प्रकृति और मानव-जीवन की आवश्यकताओं में सामंजस्य स्थापित करने के लिए अत्युपयोगी हैं। प्रस्तुत आलेख में वैदिक वाङ्मय में विद्यमान प्रकृति-उपासना, बहुदेवतावाद, ऋतव्यवस्था, ईश्वर-मानव-प्रकृति की एकात्मता, यज्ञादि अवधारणाओं में आधुनिक पर्यावरण-विज्ञान के विविध सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक पक्षों की झलक प्रस्तुत करते हुए वेद-विहित पर्यावरण-चिन्तन का परिशीलन अभीष्ट है।

ENVIRONMENT IN VEDAS

Dr. Reena Tyagi, Reader Deptt of Chemistry S.G.P.G. College Sarurupur Khurd, Meerut

Vedas the acnient true books are the Originating source of all subjects, this was mentioned by Swami Dayanand Saraswati. The founder of ARYA SAMAJ in vedas all study material including physics, chemistry, architecture, astronomy, zoology, geology, political science ayurvedas, economics and all other subjects including Environment. The theme of the research paper is to search the elements of environment in VEDAS.

According to one indigenous theory the universe consist of five basic elements 1. Land 2. Water 3. Light 4. Air 5. Ether. Another theory stated that it consist of nine elements including above five, remaining four are 1. Time 2. Direction 3. Interior Souls nd Mind. The Nature has maintained a statutory balance among all these constitutions and living creatures. Any disturbance in percentage disturb the nature balance which we can call Ecological Balance. This disturbence causes problems to living creatures in universe e.g. health, economic problems affecting

products property etc and any disturbance in any component, element as stated above is called Pollution. Today there is a need to follow our ancestral awareness about environment free from all hazards, they all know the vital role of environment in day to day life of all living creatures, all those people treat elements of nature into their worship just like GOD, soil as MOTHER, water as LIFE, sky as FATHER they Even believe to keep pure the body from interior side, i.e. to purify SOUL. All these readings of Vedas shows the deep awareness of our ancestors towards the Environment.

THE CONCEPT OF ENVIRONMENTAL PRESERVATION AS REFLECTED IN THE RGVEDIC SAMHITA

Dr. Jagadish Sharma Sr. Lecturer, Dept. Of Sanskrit, Gauhati University, Assam

The relation between the environment and the human being is interdepent. Without the preservation of environment, it is impossible to survive ic this world. If we cast a glance at the ancient civilization of our country, we find that our ancient Rsis of the Samhitas, Brahmanas and Upanisads, authors of Puranas and Smritisastras pointed out the necessity of a symmetrical relationship of the living beings with the entire environment. In the Rgvedic Samhita, we have found the tremendous praise and propitiation of nature for peace and healthy life of the entire living beings. The following eternal prayer of the Rgveda is nothing but the idea of preservation of environment and ecological balance of the earth where we live in- madhu vata rtayate madhu ksaranti sindhavah madhvirnah santvosadhih (RV., 1.90.6) In the present paper an attempt has been made to bring out the idea as developedby the ancient Rsis of Rgveda on preservation of environment and ecological balance as reflected in the Rgvedic Samhita.

GREENHOUSE GASES AND ITS HARMFUL EFFECT IN ENVIRONMENT: CLIMATE CHANGE AND GLOBAL WARMING

Rachnesh Kumari, Anil Kumar Roorkee **and Raj Kumar,** Solan

The increased emission of harmful gases into the earth's atmosphere has caused a problem that could warm up the earth. This warming effect is commonly referred to as global warming. Global Warming has been slowly heating up the earth due to natural reasons and human activity. The earth's atmosphere is composed of greenhouse gases" which are primarily. Environmental degradation is a result of the dynamic interplay of socio-economic, institutional and technological activities. Environmental changes may be driven by many factors including economic growth, population growth, urbanization, intensification of agriculture, rising energy use and transportations. The pollution is widespread in the country and can be broadly categorized as flus type of pollution and sink type of pollution. The spread of green revolution has been accompanied by over exploitation of land and water resources and use of fertilizers and pesticides and fertilizers have increased many folds. Shifting cultivation has also been an important cause of land degradation. In this paper an attempt has been made to study of greenhouse gases and in its effect of environment.

REVERENTIAL PICTURE OF ENVIRONMENT IN ATHARVANA VEDA

Jyoti N. Fougdar (Jyotikalla N.) Lecturer in Sanskrit, Jagreeti Degree E.P.G. College, Hyderabad-24 Andhra Pradesh

The Ponerous Vedas and Sanskrit literature focus on the preservation of the Nature to maintain pollution free environment. Agriculture, the backbone of India si nce times immemorial has brought man close nature and environment. The reverentail attitude towards the entire universe is presented in the Vedas. A close perusal of the hymns in Atharvana veda reveals the utmost care taken by the early Indians to maintain and preserve Nature, and

social environment. Hymns on flora and fauna, individual & social welfare surpass the hymns on rituals.

The rituals called Santika and Paustika signify peace and prosperity. The botanical field mentioned to Atharva veda is amazingly rich. Hymns on vrksa, vanaspati and osadhi are varied and large in number. Nearly sixty plants and trees with their rare names, osadhis and vanaspatis with their unique characteristics and special functions are mentioned. Botany and Medicine have their origin in the hymns on osadhi. The most important aspect of environment are the trees and plants which are righly presented. The Indian since ancient times have perceived the entire universe through three dimensions - Adhibhuta, Adhyatma and Adhidaiva - i-e. Physical, Terrestrial and celestial beings. Physical and terrestrial are protected are protected by the celestial beings and the three function in harmony with each other. Healthy Social Environment is focused for the happiness of man through the hymns. The thought and spirit of Atharva veda regarding Nature, and culture make it distinct from other three Vedas.

ENVIRONMENT AWARENESS IN THE VEDAS

Dr. Jyotsna Saxena, Dr. Geeta Rai, Dehradun

The Vedic seers appear to have foreseen the catastrophe and had forenamed man against indulging in acts that may cause his own destruction. Even today, if modern man reads Vedic literature, he shall find the answers to his questions about nature and its significance in ecological balance. Hence, environmental awareness is the need of the century. It is a reaction to environmental chaos caused by the selfish technological developments. Today, people are actually suffering from problems such as pollution, growth in population, imbalance in environmental cycles etc. Hence, Man must show respect to the Mother Earth and immediately put away with his destructive activities or face the consequences. We must make efforts to preserve, protect and nurture the environment for our future generation and instil in them the desire to live in harmony with the environment such that one can meet their needs. Let us know the value of all the elements of earth and conclude by reciting the following prayers from **Yajurveda :** "I resort to agriculture and craft for removing poverty and ministering happiness to all. May I feel joy in domestic life! May our houses be sufficiently commodious, airy, fully comfortable, and built in the middle of an open space.

VEDIC CONCEPT OF SUSTAINABLE ENVIRONMENTAL DEVELOPMENT IN INDIAN TRADITION SYSTEM

D.R. Davendra Singh Malik Gurukul Kangri Vishwavidyalaya, Hardwar (India)

Sustainable development is defined as utilization of natural resources in such a manner to meet the needs of the present without compromising the ability of future generations to meet their own needs. It is a process, which leads to a better quality of life, while reducing the impact on the environment and closely interdependent to fulfill the human needs and exhibited the strength of environmental requirements. In Vedic period, the ancient Indian people were concerned about the vulnerability of the environment and performed their morel duties for balancing the natural ecosystem on sustainable ways. General conern for natural ecology was expressed in the ancient vedic thoughts, encompassing all the five traditional elements of natural environment, namely: land (ksiti), water (aap), radiation as light or energy as fire (tejas), wind or vayu (marut) and cosmic space as atmosphere (vyomandal) and their interrelationship in between of human's development and their surrounding environment. In the most authentic vedic literatures i.e. Rigveda, Arthavaveda and Yajurveda have been described the prominence symbiotic interrelationship among the human's utilization, environmental resources and economic development along with main emphasizing the protection, conservation and management of natural resources. Manusmriti also described about the awareness, conservation and holistic management of sustainable environmental development

based on eco-philosophical ethics of Indian ancient traditional cultural system. At present, an urgent need to protect the surrounding environment through shared rich vedic cultural heritage value system, morality, nationality and environmental ethics, mentioned in vedic samhitas.

वैदिक साहित्य में जल पर्यावरण

आचार्य इन्द्रमोहन पोखरियाल, उत्तराखण्ड संस्कृत अकादमी, हरिद्वार।

आज के युग में जब स्वार्थ ही सर्वोपरि है मानव पर्यावरण को खिलौना समझकर मनमाना कार्य कर रहे हैं। वनों की अन्ध ाधुन्ध कटाई हो रही है। नदियों को प्रदूषित करते हुए लोग थकते नहीं हैं। औद्योगिक कूड़ाकचड़ा पर्यावरण को भयंकर रूप से प्रभावित कर रहा है। यह सब देखकर बड़ी पीड़ा होती है। लोक समझ नहीं रहे हैं। भले ही पीने के लिए स्वच्छ पानी नहीं मिलता है, भले ही अनेक बिमारियों से लोग ग्रस्त हैं। पर्यावरण का सन्तुलन बिगड़ रहा है। ऐसी स्थिति में जल वायु, अग्नि सभी प्रदूषित हो गयी हैं। उषा जो नित नये वातावरण का निर्माण करती है वह भी प्रदूषित है। उक्त समस्या का वैदिक समाधान शोधपत्र में कहा जाएगा।

वेदों में पर्यावरण

मोहन लाल शर्मा, छात्र, वेदविभाग, गु.कां.वि.वि. हरिद्वार।

पर्यावरण शब्द का अर्थ हमारे चारों तरफ का वातावरण जिससे हम ढके हुए हैं। पर्यावरण वह परिवृत्ति है जो मानव को चारों ओर से घेरे हुए है तथा उसके जीवन और क्रियाओं पर प्रभाव डालती है। इसमें मनुष्य के बाहर के समस्त घटक, वस्तुएँ, स्थितियाँ तथा दशाएँ सम्मिलित हैं, जो मानव के जीवन को प्रभावित करती है। अतः इस पर्यावरण से सम्बन्धित अनेक समस्याएं एवं समाध ान वेदों में व्याप्त है जिनको विस्तार से शोध पत्र में प्रस्तुत किया जाएगा।

राजधर्म/ लोक प्रशासन



वैदिक साहित्य में मानवाधिकार की अवधारणा

डॉ. योगेश शास्त्री प्राध्यापक, विद्यालय विभाग गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वैदिक वाङ्मय पदे पदे कर्त्तव्य का सन्देश देता है। प्रथम कर्त्तव्य तत्पश्चात् अधिकार दोनों अन्योन्याश्रित हैं। वेद का पुरुष सूक्त स्पष्ट करता है, कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चारों वर्ण जीवन को सुव्यवस्थित करने के लिए हैं, न कि विघटन के लिए। इस व्यवस्था के विभाजन का आधार गुण-कर्म-स्वभाव-योग्यता आदि हैं, न कि जन्मगत। **मानवाधिकार की मूल भावना है कि किसी पर किसी का अनावश्यक प्रतिबन्ध या अवरोध न हो। सबको समान अवसर प्राप्त हो, सबल, निर्बल को न दबा सके, उसकी हिंसा न करें, उसके विचारों की अभिव्यक्ति से वंचित न करे और अपने धर्म अर्थात् कर्त्तव्यों का ठीक प्रकार से निर्वहन कर सके।**

प्रस्तुत शोधपत्र में वैदिक साहित्य में मानवाधिकार की अवधारणा पर विचार किया जा रहा है।

वैदिक साहित्य में राजनीति

ब्रजेश कुमार(शोधच्छात्र) राजनीतिशास्त्रविभाग, बरेली कॉलेज(उत्तर प्रदेश)

आचार्य मनु महाराज का यह कथन सर्वथा उपयुक्त ही है कि- **'सर्वज्ञानमयो हि सः'** अर्थात् वेदों में समस्त विद्याओं के सूत्र विद्यमान हैं। वेदों में राजनीतिशास्त्र से सम्बन्धित सैकड़ों वेदमन्त्र हैं। इनमें राज्य के प्रति राजा के कर्त्तव्य, राजाप्रजा के सम्बन्ध, राष्ट्र का स्वरूप, सभा, समिति और विदथ की स्थापना, विधान और विधिनिर्माण, राजा का निर्वाचन, राज्याभिषेक, युद्ध, सैन्यव्यवस्था, विविध शस्त्रास्त्र, अर्थव्यवस्था, शासनप्रणाली आदि का संक्षिप्त वर्णन है।

राजनीतिशास्त्र का उद्भव कब और किस प्रकार से हुआ, यह सुनिश्चित करना अत्यन्त कठिन कार्य है। विश्व के सबसे प्राचीन ग्रन्थ वेद हैं और इनमें स्फुट रूप में राजनैतिक तत्त्व प्राप्त होते हैं। ऋग्वेद में देवगणों की चर्चा के सम्बन्ध में कुछ राजनीतिकविषयक सामग्री उपलब्ध होती है। यथा- राजकर्म(1/25), इन्द्रवृत्रयुद्ध (1/32), स्वराज्य (1/80) आदि। ऋग्वेद की अपेक्षा अथर्ववेद में राजनीति की दृष्टि से सामग्री पर्याप्त मात्रा में वर्णन उपलब्ध है। अथर्ववेद के कुछ महत्त्वपूर्ण सूक्त इस प्रकार हैं जिनमें राजनीति का वर्णन मिलता है। यथा- राष्ट्रसंवर्धन (1/29), राज्याभिषेक (4/22), राष्ट्र(19/41) सूक्त आदि।

यजुर्वेद में भी राजनीति से सम्बन्धित पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है। यजुर्वेद में वर्णित विषयसामग्री विविध यज्ञों से सम्बन्धित है किन्तु यज्ञ से सम्बन्धित राष्ट्रीय समृद्धि, सुखशान्ति की कामना, राज्याभिषेक और विश्वशान्ति आदि की स्थापना की सामग्री उपलब्ध है। इस प्रकार प्रस्तुत विषय का यह दिग्दर्शनमात्र है। विषय का विस्तार शोधपत्र में किया जायेगा।

वैदिक सभ्यता एवं राजनीतिक संगठन

डॉ. सीमा वर्मा (राजनीति शास्त्र विभाग) महिला महाविद्यालय (पा. स्ता.) कालेज किदवई नगर, कानपुर

भारतीय संस्कृति के इतिहास में वेदों का स्थान नितान्त गौरवपूर्ण है लौकिक वस्तुओं के साक्षात्कार के लिए जिस प्रकार नेत्र की उपादेयता है, उसी प्रकार अलौकिक तत्त्वों के रहस्य को जानने वेद की उपादेयता है। वेदों के अनुशीलन से युग की राजनैतिक दशा तथा शासन सम्बन्धी धाराओं का परिज्ञान हमें भली-भांति होता है वैदिक काल में राजपद निर्वाचन का विषय था इसमें प्रजा के द्वारा राजा चुना जाता था, प्रजा एक राय होकर राजा को उसके महनीय पद के लिए चुनती थी और यह विश्वास किया जाता था कि वह अपने पद से कभी भ्रंश को न पावेगा अथर्ववेद तथा ऋग्वेद में पूरा सूक्त ही राजा के निर्वाचन के लिए प्रयोग किया गया है।

ध्रवाऽच्युनः प्र मृणीहि शत्रून्त्र दुयावाऽधरान् पादयस्व।

सर्वादिशः समनसः सध्रीची ध्रवाये ते समितिः कल्पनामहि।।

अपने कर्त्तव्य से च्युत होने पर राजा अपने पद तथा देश से च्युत कर दिया जाता था तथा अपने दोषों को स्वीकार

करने पर वह फिर से चुना जाता था।

ऋग्वैदिक कालीन राजनीति व्यवस्था की सबसे छोटी इकाई कुटुम्ब थी। परिवार का सबसे अधिक आयु वाला पुरुष कुटुम्ब का प्रधान होता है कुटुम्ब के समस्त सदस्यों द्वारा प्रधान की आज्ञा मानना परम आवश्यक था। अनेक कुटुम्ब मिलकर ग्राम बनाते थें जिन्हें 'ग्राम' के नाम से पुकारा जाता था। ग्राम में एक अधिकारी होता था जिसे ग्रामणी कहते थें। इनका पद बड़ा महत्त्वपूर्ण होता था क्योंकि वह ग्राम का एकमात्र प्रशासनिक अधिकारी होता था अनेक ग्रामों के समूह को 'विश' कहते थे। जिसके अधिकारी को 'विशपति' कहा जाता था। कई विश मिलकर एक धन बनता था। इसका प्रधान 'गोप' कहलाता था। गोप प्रायः 'राजा' ही हुआ करते थे। गोप का प्रशासनिक व्यवस्था में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण पद था। इस काल में शासन व्यवस्था प्रमुखतया राजतन्त्रात्मक थी जिसका अध्यक्ष राजा होता. था। राजा का पद अत्यन्त गौरवशाली समझा जाता था उसकी सहायतार्थ पुरोहित होता था।

राजा की निरंकुशता पर अंकुश डालने के लिए विहथ, सभा समिति आदि लोकतांत्रिक संस्थायें थी। राज्याभिषेक के समय राजा यह प्रतिज्ञा करता था 'यदि मैं प्रजा का दोहन करूं तो जीवन सुकृत, संतान सबसे वंचित किया जाऊं'।

वेदों में राज्याभिषेक की अवधारणा

श्रीमती रूपमाला शर्मा (शोधच्छात्रा) सहारनपुर

वेदों में नियमबद्ध निबन्ध किसी विषय विशेष पर उपलब्ध नहीं होते परन्तु स्तुत्यात्मक मन्त्रों से ही विभिन्न विषयों का संकेत प्राप्त होता है। इन मन्त्रों से ही राजनीति सम्बन्धी तथ्यों का ज्ञान होता है जिसके अन्तर्गत राजा की शासन व्यवस्था, सभा-समिति, मन्त्रिमण्डल, राष्ट्र की वृद्धि आदि से सम्बन्धित विषयों का संकेत मिलता है। मेरा विवेच्य विषय 'वेदों में राज्याभिषेक की अवध ारणा' है। वैदिक युग में राज्याभिषेक का वर्णन राजाओं के शासन प्रकार व शासन विधि का पर्याप्त ज्ञान कराने वाला एवं राष्ट्रीयता और लोक कल्याण की उदात्त भावना से युक्त है क्योंकि श्रेष्ठ राजा के हाथों में ही राज्य सुरक्षित रह सकता है तथा उन्नति कर सकता है।

वैदिक वाङ्मय में वर्णित राजतन्त्र में लोकतन्त्र

डॉ. ममता गंगवार रीडर एवं विभागाध्यक्ष-इतिहास विभाग, महिला महाविद्यालय, किदवई नगर, कानपुर

प्राचीन भारतीय इतिहास के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वैदिक काल में राजनैतिक व्यवस्था की सर्वश्रेष्ठ पद्धति स्थापित थी। ऐसा निरंकुश राजतन्त्र नहीं था जिसमें प्रजा की सहभागिता व हित निहित न हो। वेदों में राष्ट्र या देश शब्द का उल्लेख मिलता है। अथर्ववेद 19.3.30 के एक मन्त्र में 'राष्ट्राणि' शब्द का उल्लेख कई राष्ट्रों या राज्यों की सत्ता को प्रदर्शित करता है। राष्ट्र का अधिपति राजा का सम्माननीय व महत्त्वपूर्ण कार्य शत्रुओं से राष्ट्र की रक्षा व प्रजा का पालन करना था। ऋग्वैदिक काल में राजनैतिक व्यवस्था की सबसे छोटी इकाई कुटुम्ब थी। संयुक्त परिवार की प्रथा थी तथा सबसे अधिक आयु का व्यक्ति कुटुम्ब का प्रधान होता था। अनेक कुटुम्बों का समूह 'ग्राम' (अधिकारी- ग्रामीण), कई ग्रामों का समूह 'विश' (अधिकारी- विशपति), कई विश का समूह 'जन' (अधिकारी- गोप), कई विश का समूह राष्ट्र (अधिकारी- राजा) का निर्माण करता था।

वैदिक कालीन राजनीतिक व्यवस्था राजतन्त्र में निहित लोकतन्त्र थी यह कहना अतिशयोक्ति न होगी। ऐसी प्रणाली जो भारत में सदियों वर्ष पूर्व प्रचलित थी, आधुनिक काल के यूरोप के इतिहास के अध्ययन से इंग्लैण्ड में देखने को मिलती है जिसे यूरोप के विभिन्न देशों के दार्शनिक व प्रजा सर्वश्रेष्ठ, आदर्श व अनुकरणीय मानती है।

वेदों में राजनीतिक चिन्तन

डॉ. चन्द्रका गर्जे, पुणे (महा.)

भारतीय मनीषा वेद को ज्ञान का आदि स्रोत मानती है। सभी विद्याएं कुंजी के रूप में वेदों में विद्यमान है। वेद मनुष्य जीवन के विभिन्न आयामों को स्पर्श करने वाला विद्या विहार भी है। भारत के सामाजिक, सांस्कृति और राजनैतिक आस्थाएँ, विश्वास, सिद्धान्तों की आधार भूमि वेद ही हैं। वेद भारतीय जीवन के उत्स हैं।

महर्षि दयानन्द ने राजनीति को राजधर्म के रूप में देखा है। उनकी दृष्टि में राजधर्म का अन्तिम लक्ष्य है स्वराज्य अर्थात् अपना राज्य। ऋषिवर अथर्ववेद 10.7.31 मन्त्र की व्याख्या करते हुए कहते हैं जब कर्मयोगी प्रजागण संगठित होता है, तब स्वराज्य प्राप्त करता है। वेद के राजनीतिक चिन्तन की गहराई में जाते हुए वे अधिक स्पष्ट करते हैं। 'परमेश्वर हमारा राजा, हम उसकी प्रजा'।

वेद के अनुसारईश्वर विश्वराज्य का मुख्यशासक है और अन्य देवता विश्व के शासन में कार्य करनेवाले अधिकारी हैं। राजा को ईश्वर का प्रतिनिधी माना गया है। उसे इसी रूप में अपनी प्रजा का पालन करना है।

वैदिक ऋषियों की राज्य विषयक घोषणानुसार आठ प्रकार के राज्य हैं, साम्राज्य, भोज्य स्वराज्य, वैराज्य, परमेष्टयंराजय, महाराज्य, अधिप व्ययम्। सम्पूर्ण पृथ्वी पर एक ही आर्य राज्य हो यह वैदिक संकल्पना है।

वेदों में वर्णित राजा के गुण

सलिल कुमार पाण्डेय, सुल्तानपुर

वेदों के अध्ययन से तत्कालीन राजनैतिक दशा तथा शासन सम्बन्धी धारणाओं का परिज्ञान हमें भली-भाँति होता है। ऋग्वेद काल के प्रत्येक जन(जाति) का आधिपत्य राजा के हाथ में होता था। राजसत्ता का प्रादुर्भाव वेद की दृष्टि में युद्धकाल से सम्बन्ध रखता है। ऐतरेय ब्राह्मण की मान्यता के अनुसार देवों ने विचार किया था कि असुरों के हाथों हमारे पराजय का यही कारण है कि हम लोग राजा से विहीन हैं। अतएव उन लोगों ने एक बलिष्ठ तथा ओजिष्ट इन्द्र को अपना राजा बनाया।

ऋग्वेद में इन्द्र को आर्यो का नेता कहा गया है। नेता वही होना चाहिये जिसमें नेतृत्व के गुण हों। जो मनुष्यों को संगठित करके रख सके, उनके जीवन और सम्पत्ति की रक्षा करके उनकी प्रगति में सहायक हो। वैदिक आर्यो के राजा मे नेतृत्व का गुण होता था वह शत्रुओं के दमन के लिए नियुक्त किया जाता था। यजुर्वेद में इन्द्र को विजेता तथा पुरम्भेत्ता कहा गया है। वाजसनेयी संहिता के नवें अध्याय में कहा गया है कि ''हे इन्द्र! तुझे राक्षसों के वध के लिए नियुक्त करता हूँ अत: स्पष्ट है कि राजा को वीर होना चाहिये जिससे वह शत्रुओं के दमन में पूर्णरूप से समर्थ हो सके। ऐसे वीर राजा का वर्णन भी है।'' शीघ्रकारी, तीक्ष्ण, तेजस्वी, भयंकर वृषभ के समान घमासान मचा देने वाला, समरभूमि में वीरों को विचलित कर देने वाला, शत्रुसेना में हाहाकार मचा देने वाला, नित्य पराक्रमशील, ऐश्वर्यशाली, वीर राजा अकेला ही सैकड़ों सैनिकों पर विजय प्राप्त करता है। अन्य देवों में भी वैदिक आर्यो ने शत्रुनाश के लिए वीरता का गुण देखा, अत: स्पष्ट है कि वे अपने राजा में भी अपूर्व वीरता, शक्तिमत्ता का गुण देखना चाहते थे। ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर अश्विद्वय को शत्रुदमनकारी, शत्रुनाशन आदि कहा गया है। प्रस्तुत आलेख वेदों में वर्णित राजा के गुण प्रकरण की गवेषणात्मक मीमांसा प्रस्तुत करता है।

आदर्श राष्ट्र सम्बन्धी वैदिक अवधारणा

डॉ. विशाल भारद्वाज (प्रोजैक्ट फैलो) संस्कृत विभाग, गुरुनानकदेव यूनिवर्सिटी, अमृतसर

वैदिक साहित्य ज्ञान का अथाह भण्डार है। हमारे समाज, परिवार एवं राष्ट्र की व्यवस्था सम्बन्धी अनेक कामनाएं व अपेक्षाएं वेदमन्त्रों में निहित हैं। राष्ट्र को स्थिर रखने वाले तत्त्वों का उल्लेख करते हुए अथर्ववेद का कथन है-

''सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा, तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति।' (अथर्ववेद, 12/1/1)

अर्थात् महान् सत्य, दृढ़ निश्चय, दीक्षा, कठोर परिश्रम, ब्रह्म तथा यज्ञ राष्ट्र का स्थिर करते हैं।

वेदानुसार राष्ट्र में सभी मिलजुल कर चलें, कोई मतभेद न हो, एक-दूसरे के प्रति विद्वेष की भावना न हो, जल एवं अन्न संसाधनों का सभी समान रूप से उपभोग करें। यहाँ तक कि पूजा पाठ भी सभी राष्ट्रजन मिलकर करें। वेद की दृष्टि में हमारे बीच न कोई बड़ा है, न कोई छोटा, हम एक ही मातृभूमि की सन्तान हैं तथा भाई-भाई हैं। अतः हमें छोटे-बड़े का भेदभाव भूलकर अपने उत्थान के लिए प्रयत्नरत रहना चाहिए-

ते अज्येष्ठा अकनिष्ठास उद्भिदोऽमध्यमासो महसा वि वावृधुः,
सुजातासो जनुषा पृश्निमातरो
दिवो मर्या आ ना अच्छा जिगातन।। (ऋग्वेद, 5/59/6)

अनेक अन्य स्थलों पर राष्ट्र की सुख-समृद्धि एवं प्रगति हेतु वैदिक मन्त्र निर्दिष्ट हैं।

अथर्ववेद में शासन व्यवस्था का स्वरूप

डॉ. अर्चना दीक्षित वरिष्ठ प्रवक्ता, राजनीतिविज्ञान विभाग, जुहारी देवी गर्ल्स पी.जी. कालेज, कानपुर

वेद समस्त ज्ञान और विज्ञान की आधारशिला है। अथर्ववेद इस दृष्टि से अन्य वेदों से उन्नत है कि इसमें न केवल सम्पूर्ण मानव जाति के आध्यात्मिक कल्याण के मार्ग को बताया गया ह वरन् उनके भौतिक कल्याण के मार्ग को भी प्रशस्त किया है। इसमें समस्त समाज, देश राष्ट्र की प्रगति कैसे हो, उनका स्वरूप कैसा होना चाहिए, प्रशासन की कार्यप्रणाली कैसी होनी चाहिए, राजा एवं प्रजा के मध्य क्या सम्बन्ध हो के साथ इस बात का भी वर्णन किया गया है कि विश्वशान्ति एवं विश्वबन्धुत्व के लिए हमें क्या करना चाहिए। अथर्ववेद में अनेक स्थानों पर राष्ट्र शब्द का प्रयोग करते हुए यह बताया गया है कि इसकी उत्पत्ति परमात्मा से हुई अर्थात् इसमें राज्य के दैवी उत्पत्ति के सिद्धान्त का समर्थन किया गया है। राष्ट्र को सुदृढ़ बनाने वाले नियमों की व्याख्या करते हुए सत्य, पदार्थों का ज्ञान, कर्त्तव्य, राष्ट्र के प्रति समर्पण, राष्ट्र की सुरक्षा एवं सुख समृद्धि में योगदान और सम्पूर्ण समाज में व्याप्त एकता को आवश्यक बताया।

अथर्ववेद में प्रजा द्वारा निर्वाचित राजा का वर्णन किया गया और कहा कि प्रजा ऐसे व्यक्ति को ही अपना राजा चुनती है जो तेजस्वी, धर्म एवं प्रजा का पालक व ऐश्वर्यवान् हो। किन्तु एक बार चुने जाने के बाद वह तब तक पद पर बना रहता है जब तक कि वह राष्ट्र एवं समाज के प्रति अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन निष्ठा से कता रहे अन्यथा प्रजा को उसे पदच्युत करने का पूरा अधिकार होता है। अथर्ववेद में राजा के राज्याभिषेक का भी वर्णन किया गया है। अभिषेक के दौरान राजा राष्ट की सुरक्षा एवं समृद्धि की प्रतिज्ञा लेता है।

राजा की सहायता के लिए सभा एवं समिति जैसी संस्थाएँ होती थी। जिनकी उत्पत्ति राजा शासन कार्य में सहायता प्राप्त करने के लिए करता था। सभा जनप्रतिनिधियों की संस्था होती थी जोकि छोटे से छोटे गाँवों से लेकर बड़े-बड़े नगरों में विद्यमान थी। सभा का एक बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य था कि न्याय की व्यवस्था करना। यह राष्ट्रीय न्यायालय के समान थी और इसके सभापति को न्यायाधीश की शक्तियाँ प्राप्त थी। समिति अपेक्षाकृत बड़ी संस्था होती थी और इसमें सभी वर्गों के प्रतिनिधि होते थे। समिति को ही राजा को चुनने और पदच्युत करने का अधिकार था। इसके अलावा अथर्ववेद में आमन्त्रण नामक संस्था का भी उल्लेख किया गया है जोकि कुछ कुछ आधुनिक मन्त्रिपरिषद् के समान थी। अथर्ववेद में सभा एवं समिति के लिए संयुक्त रूप से संसद शब्द का प्रयोग किया गया है।

संक्षेप में अथर्ववेद एक ऐसा ग्रन्थ है जहाँ आधुनिक शासन व्यवस्था के सुचारु संचालन के लिए समस्त उपायों का वर्णन तो किया ही गया है साथ ही विश्वबन्धुत्व का महान् सन्देश भी इसमें दिया गया है। निश्चय ही यह राज्य, समाज और समस्त विश्व के कल्याण के लिए एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है।

वेदों में वर्णित राजा के कर्त्तव्य

रोली गुप्ता (शोधच्छात्रा) जुहारी देवी गर्ल्स पी.जी. कॉलेज, कानपुर

वर्तमान में विश्व एवं राष्ट्र में व्याप्त अनेक समस्याओं का समाधान वेद में निहित है। शासन व्यवस्था से सम्बन्धित अनेक तत्त्वों का विवेचन वेद में है। राजा आदि के गुण एवं कर्त्तव्य का वर्णन भी वेद में प्राप्त होता है।

यजुर्वेद में राज्याभिषेक के समय राजा को उसके कार्यों का ज्ञान कराते हुए अभिषिक्त किये जाने का वर्णन है।

राज्याभिषेक के बाद राजा को राष्ट्र रक्षा के लिए धन लेने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। प्रजा द्वारा प्राप्त कर का राज्य के विकास के लिए प्रयोग करना राजा का कर्त्तव्य है।

राजा का प्रमुख कर्त्तव्य है- प्रजा का पालन, रक्षण और संवर्धन। माता-पिता सदृश राजा को अपनी प्रजा का पालन पोषण करना चाहिए। प्रजा की रक्षा का पूर्ण उत्तरदायित्व राजा पर होता है।

प्रत्येक राजा का कर्त्तव्य है कि वह अपने राष्ट्र को स्वतन्त्र रखे। उसके राज्य में स्वराज्य हो। ऋग्वेद में 'अर्चन् अनुस्वराज्यम्' कहकर 'स्वराज्य' की प्रशंसा की गयी है।

राजा जनहित के लिए विविध उद्योग, आर्थिक और सामाजिक उन्नति के लिए अनेक योजनाएं तैयार करें और राज्य में प्रारम्भ करें। शिक्षा और संस्कृति की उन्नति के लिए व्यवस्था करे। राजा को केवल अपने देश की ही नहीं अपितु विश्व हित की कामना करनी चाहिये। राजा ही विश्वबन्धुत्व की योजना द्वारा सम्पूर्ण विश्व को एकता के सूत्र में बांध सकता है।

स्वामी दयानन्द के राजनैतिक चिन्तन का आधार : वेद

डा. विजय कुमार त्यागी गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर, हरिद्वार

19वीं शताब्दी में आर्य समाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द का आविर्भाव हुआ। जिनका राजनीति-विषयक चिन्तन अधिकांशतः वेद और मनुस्मृति पर आधारित है। वर्तमान युग राजनीति का युग है। उसमें महर्षि के इन राजनीति सम्बन्धी विचारों की विशेष उपयोगिता जैसे पहले थी आज भी है। इन विचारों की प्रासङ्गिकता देश की स्वतन्त्रता को अक्षुण्ण बनाये रखने में विशेषरूप से सहयोगी है।

महर्षि दयानन्द ने अपने ग्रन्थों में राजनीति के विषय में जो विचार प्रकट किये हैं वे बड़े अद्भुत, क्रान्तिकारी, सार्वकालिक एवं सर्वजनोपयोगी हैं। यह एक सामान्य धारणा बनी हुई है कि प्रजातन्त्र का आविर्भाव सम्भवतः आधुनिक युग में ही हुआ है, पहले तो केवल निरंकुश, स्वच्छन्द राजा हुआ करते थे। परन्तु महर्षि ने वेदादि सच्छास्त्रों तथा इतिहास के आधार पर आदर्श एवं प्राचीन भारतीय राज्य व्यवस्था का जो प्रजातान्त्रिक स्वरूप प्रकट किया है, उससे यह धारणा सर्वथा भ्रान्त प्रतीत होती है।

स्वामी दयानन्द के राजनीति सम्बन्धी चिन्तन को आठ भागों में विभक्त कर सकते हैं, जो कि इस प्रकार हैं-

1. राज-सभाएं और उनके सभासद्।
2. राजा।
3. राज्य के प्रमुख अधिकारी, राजपुरुष एवं शासन व्यवस्था।
4. रक्षा व्यवस्था।
5. युद्ध।
6. अर्थ-व्यवस्था।
7. न्याय-व्यवस्था।
8. महर्षि की राजनीति के कतिपय अन्य विचार।

प्रस्तुत शोधपत्र में उक्त बिन्दुओं के आधार पर ही स्वामी दयानन्द के राजनीति से सम्बन्धित चिन्तन की विवेचना की जायेगी।

वैदिक राजनीतिक व्यवस्थाएँ : वर्तमान सन्दर्भ में

प्रो. राजकुमार लाटा, श्रीमती सुशीला शर्मा राजकीय लोहिया स्नातकोत्तर महाविद्यालय(चूरू) राजस्थान

ऋग्वैदिक समाज में **राजनैतिक अवस्थाएँ** अपना विशेष स्थान रखती है। राजनैतिक दृष्टि से उस समय समाज पाँच भागों में विभक्त था- (1) गृह या कुल, (2) ग्राम, (3) विश, (4) जन तथा (5) राष्ट्र।

इनके स्वामियों को क्रमशः (1) गृहपति, (2) ग्रामणी, (3) विश्वपति या विशाम्पति, (4) जनपति, (5) राजा कहा जाता था। राजा का कर्म शत्रुओं को नष्ट कर प्रजा की रक्षा करना होता था। राजा का चुनाव प्रजा करती थी। राजा की सत्त किसी भी प्रकार स्वेच्छापर निर्भर नहीं रहती थी। प्रजा उसे हटा भी सकती थी। यह वर्तमान प्रजातन्त्रीय व्यवस्था का प्रथम ज्ञात स्वरूप था। सम्पूर्ण देश छोटे छोटे राज्यों में विभक्त था। जिन पर अलग-अलग राजा शासन करते थे किन्तुउसका भी सम्राट्-सर्वराट् होता था। इसका **'विश्वस्य भुवनस्य राजा'** (सम्पूर्ण विश्व का राजा) में स्पष्ट उल्लेख मिलता है। यह अत्याचारी राजाओं पर नियन्त्रण रखता था।

ऋग्वैदिक राजा ओर प्रजा परम शान्ति-प्रिय थी। शान्ति की स्थापनार्थ वे हर सम्भव प्रयास किया करते थे। शान्ति के लिए प्रार्थनाएँ किया करते थे, साम-दान-नीति का समुचित प्रयोग करते थे। जब इन सबसे समाज की स्वस्थ परम्परा सुरक्षितनहीं रह पाती थी, तब अन्तिम नीति-युद्ध का आश्रय लेते थे। उस समय राजा के साथ हर वर्ग का व्यक्ति युद्ध में अपनी भूमिका निभाता था। राजा के पुरोहित भी युद्धक्षेत्र में जाते थे। विभिन्न सैनिक संघों जैसे ब्रात्य और गण का उल्लेख भी प्राप्त होता है। युद्ध में देशभक्ति के गीतों को गाया जाता था। युद्ध में रथों, अश्वों आदि पर सवार सैनिक धनुष, बाण, भाले कुल्हाड़े, किलों को भी ध्वस्त कर देने वाले यन्त्रों का प्रयोग किया जाता था। लोहे से बने किलों का भी उस समय प्रयोग किया जाता था। किले बहुत विशाल और विस्तृत होते थे। सौ दीवार वाले 'शतभुज- किलों का संकेत भी ऋग्वेद में प्राप्त होता है-

शतभुजमिस्तमभिह्तेरघात् पूर्भी रक्षता मारुतो यमावत।।(ऋग्वेद 1.166.8)

इन्द्र ने शम्बर के नब्बे या निन्यानबे किलों को तोड़ा था। इससे ज्ञात होता है कि वैदिक आर्य युद्धकला में निष्णात थे। समिति और सभा ब्रह्मा की दो पुत्रियाँ मानी गई हैं- **'सभा च या समितिश्चावतां प्रजापते5 दुहितारौ संविदाने।'**

राजनीतिक सत्ताशाहों का निम्नलिखित क्रम बनाया जा सकता है- 1. राट्(राजा), 2. स्वराट्, 3. अधिराट्(जनराट्), 4. विराट्, 5. सम्राट्, ओर 6. सर्वराट्। इन सत्ताशाहों की सभा और समिति के अतिरिक्त सेना, विदथ आदि राजनीतिक और अर्धराजनीतिक संस्थाएँ हुआ करती थीं। इन सबका यथास्थान विस्तृत विवेचन किया जायेगा।

यद्यपि वैदिक राजनीति कुछ क्षेत्रों में असामयिक मानी जाती है। किन्तु कुछ सम्प्रत्यय ऐसे हैं, जो सार्वकालिक और सार्वदशिक हैं। वर्तमान विश्व अशान्ति के चरमोत्कर्ष को प्राप्त हो रहा है। यह सब राजनैतिक त्रुटियों के कारण हो रहा है। पारस्परिक सद्भाव एवं विश्वास नहीं हो रहा है। अतः ऐसे समय में वैदिक राजनीति - जो शान्ति की परमोपासिका है, एक स्वच्छ मार्ग प्रशस्त कर सकती है। इस पत्र में इसी विषय पर विवेचन किया जायेगा।

मनु की राजव्यवस्था की वर्तमान में प्रासंगिकता

डॉ. कामना जैन प्रवक्ता राजनीतिविज्ञान विभाग, एस.एस.डी.(पी.जी.) कॉलेज, रुड़की, हरिद्वार

पौराणिक आख्यान के अनुसार मनु को मानव जाति का पिता माना जाता है। मनु द्वारा रचित 'मनुस्मृति' एक ऐसा धर्मशास्त्र है जिसमें मनुष्य के जीवन के सम्बन्धित प्रत्येक पक्ष, बाल्यावस्था से लेकर वृद्धावस्था तक की समस्त जीवन शैली को वर्णित किया गया है। मनुष्य के जीवन के समस्त सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं नैतिक पहलुओं की चर्चा भी विस्तारपूर्वक की गई है। इस कारण ही भारतीय साहित्य जगत् में मनुस्मृति को सर्वाधिक प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है। जिसका वर्चस्व आज भी पहले की ही भांति विद्यमान है। हिन्दु विधि जगत् में भी मनुस्मृति को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। भविष्य के अनुगमन के लिए उन समस्त सिद्धान्तों का वर्णन ही मनुस्मृति के 12 अध्यायों में किया गया है। प्राचीन काल से ही भारत एक धर्म प्रधान देश रहा है। समाज की व्यवस्था सुचारू रूप से चले इसका सर्वप्रमुख दायित्व राजा का होता है। कहा भी गया है- यथा राजा तथा प्रजा। अतः मनु के अनुसार राजपद

धारण करने का अधिकार केवल उसी व्यक्ति को है जो वीर, सत्यवादी, बुद्धिमान एवं धर्म के अनुसार आचरण करने वाला हो। राजा को पिता के वात्सल्य भाव से अपनी प्रजा के पालन व कल्याण में सदैव तत्पर रहना चाहिए। समस्त सुख, ऐश्वर्यआदि होते हुए भी निराकार भाव से उनका उपभोग करना चाहिए। राज्य, प्रजा एवं कोष की सुरक्षा एवं वृद्धि हेतु ही निरंतर मनन एवं कार्यरत् रहना चाहिए। मनु के अनुसार राजा का पद प्रजा से कर ग्रहण करके कोष बढ़ाना नहीं है वरन् उचित मात्रा में कर लेकर उस धन का प्रजा के कल्याण एवं रक्षा हेतु ही पुन: उपयोग करना है। शायद इन्हीं व्यवस्थाओं के कारण ही प्राचीन भारत की संस्कृति राज्य व्यवस्था पूरे विश्व में एक अद्वितीय स्थान रखती है। वर्तमान समय में भी देश का एक राजा, जिसे हम प्रधान मन्त्री कहते हैं, जनता के ही द्वारा चुना जाता है। किन्तु आज हम देश में प्रत्येक स्तर पर विभिन्न समस्याओं से जूझ रहे हैं। विश्व में अपनी वह पुरानी उत्कृष्ट छवि खोते जा रहे हैं। सरकार की अस्थिरता व जीवन मूल्य गिरते-मिटते जा रहें हैं। अत: प्रस्तुत लेख में मनु द्वारा प्रतिपादित तत्कालीन राजव्यवस्था एवं वर्तमान में चल रही राजव्यवस्था का विवेचन करने का संक्षिप्त प्रयास किया गया है। जिसके द्वारा हम अपनी राजनीति के दूषित तथ्यों को समझकर उसे शुद्ध करने का प्रयास करें एवं भारत को पुन: विश्वगुरु होने का अवसर प्राप्त हो।

ऋग्वेद में राज्य-व्यवस्था

प्रेरणा माहेश्वरी (शोधच्छात्रा) अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़

जब हम अपने भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास का अध्ययन करते हैं तो हमें पता चलता है कि हमारा देश आध्यात्मिक और साहित्यिक क्षेत्र में नहीं बल्कि राजनैतिक क्षेत्र में भी आगे रहा है। ऋग्वेद में जिस तरह की राज्य व्यवस्था का वर्णन हुआ है, संक्षिप्त रूप से इस प्रकार है-

ऋग्वेद में व्यक्ति तथा समाज के पारस्परिक संबन्ध पर प्रकाश डालने वाले जो भी संकेत हैं, उन्हें देखने से लगता है। कि ऋग्वैदिक काल में पारिवारिक जीवन को महत्त्वपूर्ण माना गया है, क्योंकि परिवार या कुल वह मूल सांगठनिक इकाई है, जिसका विस्तार राज्य तक जाता है। परिवारों ने एक साथ मिलकर समाज या आर्य -समूह को संगठित किया और समूहों के एकत्रीकरण ने राज्य की अवधारणा को जन्म दिया। व्यक्ति और समज के मध्य सम्बन्ध के सुचारु रूप से चलते रहने के लिए जो व्यवस्था अपनाई गई थी, नीचे की इकाई से ऊपर की ओर पहले 'कुल' आता है। कुल परिवार के सदस्यों से मिलकर बनता था, जिसका मुखिया 'कुलपा' अर्थात् 'गृहपति' कहलाता था। फिर कुलों का समूह ग्राम के रूप में संगठित था, जो कि आस-पास रहने वाले अनेक कुलों या परिवारों से मिलकर बनता था। ग्राम का एक प्रधान होता था जिसे ग्रामणी कहते थे। समान परम्परा वाले लोगों के समूह को गण कहा जाता था, और गण का प्रमुख गणपति कहलाता था। व्यवस्था के उच्चतम स्तर पर समिति होती थी, ऋग्वेद में राज्य-सभा के लिए समिति शब्द का प्रयोग भी हुआ है, जिसका प्रधान राजा होता था। ऋग्वेद में राजाओं का वर्णन भी मिलता है और उनके युद्ध भी आते हैं। जैसे- आर्यो का दस्युओं के साथ युद्ध। इससे पता चलता है कि जनपद राज्य-व्यवस्था में परिवर्तित होते जा रहे थे। राजा विहीन राज्य में मत्स्यन्याय चरितार्थ होता है। धर्म की रक्षा और अधर्म के विनाश हेतु प्रजा राजा का चुनाव करती है। भरद्वाज, वसिष्ठ तथा अन्य ऋषियों ने अग्नि, वरुण, इन्द्र आदि को सम्राट् कहा है। सातवें मण्डल की तीसरी ऋचा में वसिष्ठ ने इन्द्र को संसार के मनुष्यों का राजा कहा है।

ऋग्वेद मेंराजा के लिए सम्राट्, स्वराट्, शास, विश्पति,ईशान, भूपति, नृपति जैसे शब्दों का प्रयोग किया गया है। पहले मण्डल की आठवीं ऋचा में प्रजा का पालक अर्थात् राजा के लिए 'विश्पति शब्द का प्रयोग हुआ है। ऋग्वेद में प्रजा के लिए 'विश' शब्द का प्रयोग किया गया है। राज्य-व्यवस्था में एक और महत्त्वपूर्ण कड़ी पुरोहित के रूप में थी। पुरोहित राजा का प्रधान मन्त्री या प्रध ान सहयोगी हुआ करता था। कुछ इस प्रकार की राज्य-व्यवस्था का रूप ऋग्वेद में देखने को मिलता है। जिसकी चर्चा शोधपत्र में विस्तार से की जाएगी।

लोक प्रशासन का उद्भावक 'वेद'

डॉ. शुचि श्रीवास्तव कलेक्ट्रेट लाइन बाजार रोड, जौनपुर (उ.प्र.)

लोक प्रशासन एक आधुनिक विषय माना जाता है, जिसकी उत्पत्ति सन् 1887 में बुडरो विल्सन के लेख 'A Study of Administration' से मानी जाती है। परन्तु लोक प्रशासन के बीज हमें वेद में देखने को मिलते हैं। जहाँ लोक प्रशासन अपने बृहद् रूप में उपस्थित है। वेदों में ब्रह्माण्ड प्रशासन का वर्णन मिलता है। जिसका उद्देश्य विश्व कल्याण है, ठीक उसी प्रकार जैसे लोक प्रशासन का उद्देश्य जन कल्याण है।

अग्नि ऊर्जा विभाग का प्रतीक है। इन्द्र जल विभाग का द्योतक है। वरुण नियंत्रक समन्वयकर्त्ता तथा दण्डाधिकारी की भूमिका निभाता है जिसे जिलाधिकारी अथवा मन्त्रिमण्डल सचिव के तुल्य देखा जा सकता है। इस प्रकार वेदों में वर्णित प्रत्येक देवता का अस्तित्व किसी विशेष प्रयोजन के निमित्त है जो सृष्टि प्रशासन में अपनी-अपनी भूमिका का निर्वाह करते हैं। कार्य-विशेषीकर, विभागीकरण, सामान्यीकरण आदि प्रशासनिक तत्त्वों का परिचय वेद में मिलता है। लोक प्रशासन एक विषय के रूप में है, साथ ही साथ एक क्रिया भी है। वेद में लोक-प्रशासन के पाठ्य-विषय का ज्ञान प्राप्त होता है। इस प्रकार लोक प्रशासन के अध्ययन के विकास की आदि कड़ी 'वेद' को कहा जा सकता है। प्रकृत शोधपत्र में 'वेदे सर्वं' इस उक्ति के परिप्रेक्ष्य में वेद में निहित प्रशासनिक तत्त्वों को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया गया है।

अथर्ववेद में वर्णित कल्याणकारी राज्य की अवधारणा

डॉ. चन्द्रप्रभा गंगवार प्रवक्ता संस्कृत राजकीय महाविद्यालय पलिया कलाँ खीरी (उ.प्र.)

कल्याणकारी राज्य की अवधारणा एक ऐसे राज्य की ओर संकेत करती है, जो जनता के कल्याण के लिए कार्य करता है। 'कल्याण' से अभिप्राय आर्थिक व सामाजिक हितों की वृद्धि करना है। अतः राजा अथवा सरकार का यह कर्तव्य है कि वह अपनी प्रजा के लिए इस प्रकार का वातावरण प्रदान करे, जिसमें वह अपने व्यक्तित्व का समुचित विकास कर सके। कल्याणकारी राज्य की अवधारणा 19वीं सदी में विकसित हुई। ऐसा पाश्चात्य विचारकों का मत है। परन्तु हमारे वैदिक मन्त्रों में ऋषि-मुनि यह घोषणा सहस्रों वर्ष पूर्व कर चुके थे। अथर्ववेद में वर्णित प्रजा के कल्याण के लिये राजा द्वारा किये विविध कार्यों का उल्लेख इसका प्रमाण है। अथर्ववेद के मन्त्रों में वर्णित राजा के शैक्षिक, नैतिक, धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक कर्तव्य इस तथ्य की पुष्टि करते हैं। अथर्ववेद में उद्घोषणा है - 'सोऽरजयत, ततो राजन्योऽजायत' (अ0 15/8/9) अर्थात् प्रजा को प्रसन्न करने के लिए ही राजा हुआ है। अतः मैं इस शोधपत्र के द्वारा स्पष्ट करना चाहती हूँ कि कल्याणकारी राज्य की अवधारणा हमारे स्वर्णिम अतीत का प्रतिबिम्ब है।

वेदों में प्रतिपादित राजनैतिक सिद्धान्त

डॉ. मनोरमा गुप्ता रीडर-महिला महाविद्यालय किदवई नगर, कानपुर

वैदिक साहित्य के अध्ययन द्वारा ही हमें राज्य की उत्पत्ति, राजनैतिक संगठन, एवं राजा के शासन के प्रति अधिकार एवं कर्तव्यों के बारे में पूर्ण जानकारी मिलती है। वैदिक साहित्य के अनुसार राज्य सत्ता ईश्वर प्रदत्त है जिसका उल्लेख शतपथ ब्राह्मण ग्रन्थ में किया गया है। इस युग में राजा को परमात्मा का अंश माना गया है उसकी तुलना प्रजापति एवं विष्णु से की गयी है। अतः राज्य की वैदिक उत्पत्ति के सिद्धान्त का प्रादुर्भाव वैदिक साहित्य के द्वारा ही हुआ है।

दूसरे सिद्धान्त के अनुसार, आर्यो में शासन का सूत्रपात परिवार से हुआ। समाज में विकसित होते के साथ-साथ पारिवारिक शासन की तरह राजकीय शासन पितृप्रधान होता गया। उस समय परिवार पितृप्रधान थे पिता ही परिवार में सर्वोपरि था। अतः अथर्ववेद में वर्णित शब्द विशः जन तथा विशः पति आदि तत्त्वों से पितृप्रधान अथवा विकासवादी सिद्धान्त का समर्थन प्राप्त होता है। राज्य की उत्पत्ति के तीसरे सिद्धान्त (संविदावादी सिद्धान्त) के दर्शन हमें ब्राह्मण ग्रन्थों एवं वैदिक साहित्य से ही प्राप्त होते हैं। ऐतरेय ब्राह्मण

में कहा गया है कि असुरों के विरुद्ध युद्ध में सफलता प्राप्त करने के लिए देवताओं ने इन्द्र को अपना राजा निर्वाचित किया। यह निर्णय उन्होंने प्रजापति की अध्यक्षता में देवताओं ने एक दूसरे से कह कि इन्द्र उन सबमें अधिक पूर्ण, सुदृढ़, क्रियाशील और प्रत्येक कार्य करने में श्रेष्ठ हैं। अत: उन्हें राज पद पर विभूषित किया जाये। अत: उपरोक्त सिद्धान्तों का अध्ययन करने उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि हमारी प्राचीन व्यवस्था मत्स्य न्याय पर आधारित थी। (Might is Right)का सिद्धान्त चरितार्थ था। जनमानस जंगली जानवरों एवं बर्बरतापूर्ण सामाजिक दृश्य से आतंकित था। ऐसे असुरक्षित वातावरण से व्याकुल होकर समस्त प्राणियों ने ईश्वर से प्रार्थना की कि उनकी सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक सुरक्षा के लिए उनका नियन्त्रण एवं निर्देशन वे स्वयं करें। तब स्वयं ईश्वर ने अपने प्रतिनिधि के रूप में राजा (मनु) की उत्पत्ति की अत: इस प्रकार राजा की उत्पत्ति के दैवीय सिद्धान्त को शाश्वत परिवर्तन प्रकृति का नियम है। जैसे कि जल अगर स्थिर हो जाताहै तो वह सड़ जाता है और उसमें दुर्गन्धि आने लगती है, उनकी उपयोगिता समाप्त हो जाती है। यह शिक्षा हमें वेदों से मिलती है क्योंकि हमारी वैदिक संस्कृति हमको गतिशीलता की शिक्षाएं देती है। अत: संस्कृति के अनुरूप समाज में और फिर शासन व्यवस्थाओं में भी परिवर्तन होते रहते हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों एवं वैदिक साहित्य में वर्णित संवदिवादी सिद्धान्त ही वर्तमान में प्रजातन्त्रात्मक शासक व्यवस्था का द्योतक है।

वैदिक राजनीतिक अवस्था

डॉ. अर्चना चौहान राजनीति शास्त्र विभाग राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, भोपाल

वेदों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वैदिक काल में राजनीतिक अवस्था समुन्नत थी। वैदिक काल में समाज पर्याप्त रूप से विकसित हो चुका था। इस युग में सांस्कृतिक जीवन के विभिन्न पहलुओं का विकास हुआ । जिसमें राजनीति को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ । वैदिक साहित्य के अध्ययन से तत्कालीन राजनैतिक विकास का पता लग जाता है । वेदों में राजा, सभा, समिति, राजकृत राजा का चुनाव, राजा को पदच्युत करना आदि के उल्लेख से उस समय की राजनैतिक जागृति का स्पष्ट दिग्दर्शन होता है । वेदों में राष्ट्र और देश शब्दों का प्रयोग मिलता है। एक मंत्र में राष्ट्र शब्द का बहुवचन में प्रयोग किया गया है, जिससे अनेक राष्ट्रों की सत्ता ज्ञात होती है । 'देशोपसर्ग': के द्वारा देश पर आने वाले संकटों या दैवी प्रकोप से देश की रक्षा की प्रार्थना की गई है। ऋग्वेद में जन (मनुष्यगण) शब्द आदि का प्रयोग अनेक जगह मिलता है। वैदिक साहित्य में स्थान-स्थान पर राजपद का उल्लेख है । ऋग्वेद में 'विश्वपति' को पुरों का पालक और पिता कहा गया है। यजुर्वेद में 'सेनानी ग्रामण्यौ' में सेनापति के साथ ग्रामणी का उल्लेख है। अथर्ववेद के एक मंत्र से ज्ञात होता है कि राजा का निर्वाचन सर्वसंमति से किया जाता था। अथर्ववेद में निर्वाचकों के लिय 'वरुण' शब्द आया है और राजा के लिये कहा है कि 'वरुणैः संविदान' अर्थात् वह निर्वाचकों से संपर्क करता था। यजुर्वेद के अध्याय 9 और 10 में तथा शतपथ ब्राह्मण के कांड में राज्याभिषेक का विस्तृत वर्णन है । यजुर्वेद, तैत्तिरीय संहिता और शतपथ ब्राह्मण में 'महते जानराज्याय' महान् जनराज्य का उल्लेख किया गया है। ऋग्वेद और अथर्ववेद में विप्र राज्य का वर्णन है। अथर्ववेद में सभा और समिति को प्रजापति (राजा) की दो पुत्रियाँ कहा गया है। वैदिक काल में राजा को शासन चलाने में सहायता के लिये समिति और सभा दो संस्थाएं भी थी। अथर्ववेद में इस बात का स्पष्ट उल्लेख है कि विराट् पुरुष से समिति का जन्म हुआ था। ऋग्वेदकालीन ऋषियों ने समिति को अपने समय की महत्वपूर्ण एवं सक्रिय संस्था के रूप में चित्रित किया है। ऋग्वेद में राजा सुदास के साथ जनराजाओं के युद्ध का वर्णन है। ऋग्वेद में राजा को प्रजा से बलि (कर) लेने का अधिकार दिया गया है। वैदिक काल में शासन संबंधी विभिन्न संविधान प्रचलित थे। ऐतरेय ब्राह्मण में आठ प्रकार के संविधानों का उल्लेख मिलता है।

वैदिक साहित्य का अध्ययन करने से मालूम चलता है कि उस समय भी राजनीतिक व्यवस्था थी, उसे विकसित किया गया था। वेदों में जगह-जगह पर राजनीतिक व्यवस्था का उल्लेख मिलता हैं।

वैदिक संहताओं में 'युद्ध-नीति'

जहाँ आरा अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी अलीगढ़

मानव स्वभाव अद्‌भुत और विरोधाभासी है। एक ओर तो कुछ मनुष्य शान्ति और सद्‌भावना की कामना करते हैं तो दूसरी ओर अनेक दुष्ट और अत्याचारी स्वभाव के मनुष्य अन्य मनुष्यों को उत्पीड़ित कर अपने अधिकार में सारे विश्व को रखना चाहते हैं। प्राय: देखा जाता है कि सभी राज्य अपने पड़ौसी राज्य को जीतकर उसकी भूमि हथियाने और उस पर अपना आधिपत्य करने का प्रयत्न करते हैं। इस प्रक्रिया में युद्ध सर्वाधिक भयंकर परिणाम प्रस्तुत करता है। यद्यपि भारतीय राजनीति के मूल-मन्त्र में अन्य सभी उपायों के असफल हो जाने पर ही 'युद्ध' को अपरिहार्य माना जाता रहा है। तथापि शत्रुओं की उपेक्षा नहीं की जा सकती। वैदिक संहिताओं में इन्द्र को राजा एवं सेनापति के रूप में तथा मरुतों को सैनिकों के रूप में वर्णित किया गया है। इन्द्र से कहा गया है कि वे प्रथम तो शत्रुओं के मनों को उनके दुष्कर्म से दूर करने का प्रयत्न करके शान्ति को स्थापित करें।

परन्तु यदि शत्रु शान्ति के उपाय को नहीं मानता तो उसको नष्ट कर देना ही श्रेयस्कर है। अत: अन्तिम उपाय के रूप में दण्ड और युद्ध है। युद्ध के लिये विशेष नीति और सुगठित सेना का संगठन आवश्यक माना जाता है। वेदों में (1) रथ सेना, (2) अश्व सेना, (3) पद सेना, (4) गज सेना, (5) स्त्री सेना, (6) नौसेना का उल्लेख हुआ है।

युद्धों में अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग प्रचलित था। (1) प्रहारक आयुध, (2) अंगरक्षक आयुध। संग्राम के समय सैनिकों को उत्तेजित करने के लिए 'वाद्य यन्त्रों' का प्रयोग होता था। युद्ध के लिए विशेष प्रकार की वेशभूषाएँ होती थीं तथा युद्धकाल में सेनानायक अपने पृथक्-पृथक् ध्वज रखते थे। युद्ध भूमि को वेद में 'यज्ञभूमि' कहा गया है। उस युग में यदि कोई व्यक्ति रणभूमि में युद्ध करता हुआ वीरगति प्राप्त करता था तो उसे योद्धा कहा जाता था- वैदिक युगीन योद्धाओं के सम्पूर्ण जीवन दर्शन को स्व. श्री पण्डित जवाहरलाल नेहरु ने अपनी इन पंक्तियों में बड़ी कुशलता से व्यक्त कर दिया है-

"Brave and full of the spirit of adventure, they dared to go ahead without fear of the consequences. If death come, they did not mind they met it laughings." अर्थात् इस युग के लोग बहुत वीर तथा साहसिक थे, निडर होकर आगे बढ़ने की उनमें हिम्मत थी, बिना परिणामों की चिन्ता किए। मृत्यु यदि आ जाती हो उन्हें इसकी भी चिन्ता नहीं थी। इससे वे हँसते-हँसते मिल सकते थे।

प्रस्तुत लेख में हम वैदिक युगीन युद्ध पद्धतियों और नीति का उल्लेख करेंगे।

वैदिक वाङ्मय में मातृभूमि की परिकल्पना

सुश्री नीतू शर्मा अंशकालिक प्रवक्ता(साहित्य), रा.सं.सं., श्रीरणवीर परिसर, जम्मू

'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' मनुष्य जिस भूमि पर, जन्म लेता है, जहाँ निवास करता है वही उसकी मातृभूमि है राष्ट्र है तथा उस भूखण्ड का उससे मातृ-पुत्र सम्बन्ध होने के कारण बिना भेद-भाव के सभी प्रकार से सुशासन द्वारा समुन्नत तथा समृद्ध बनाना उस भूमि के निवासियों के परम कर्तव्य है। वैदिक संहिताओं में राष्ट्र की अभ्युन्नति के लिए जन्मभूमि में मातृ-भावना का यह स्वर सर्वाधिक मुखरित हुआ है। जन्मभूमि में मातृभाव की यह परिकल्पना ही वस्तुत: किसी राष्ट्र के नागरिकों में राष्ट्रीयता तथा देशप्रेम का संचार करती है, उस राष्ट्र से आत्मीयता का सम्बन्ध जोड़ देती है। यही कारण है कि मातृभूति की अस्मिता की रक्षा ही उसके स्वाभिमान का प्रश्न बन जाती है जिसके कारण वह अपने प्राणों को भी न्यौछावर करने को तत्पर हो जाता है। मातृभूमि के प्रति समर्पण को वैदिक ऋषियों ने यज्ञ का नाम दिया है। मातृभूमि से जुड़ी इन्हीं भावनााओं तथा संवेदनाओं से प्रेरित होकर वैदिक ऋषियों ने जन्मभूमि तथा वहा. के मानवाके मध्य मातृ-पुत्र के भावनात्मक सम्बन्ध की कल्पना की है। अथर्ववेद के 'पृथिवी सूक्त' का यह उद्घोष 'माता भूमि: पुत्रोऽहं पृथिव्या:' इसका ज्वलन्त प्रमाण है। वेदों में कहीं तो मातृभूमि के वात्सल्यमय स्वरूप की महिमा का गान करके उसे अपने पुत्रों के लिए सर्वाभीष्ट साधिका बताया है तो कहींउसके प्रति अपने पुत्र कर्त्तव्य का स्मरण कराते हुए उसके निर्वाह की ओजस्विनी प्रेरणा दी गयी है। प्रस्तुत प्रपत्र में वैदिक संहिताओं में विद्यमान मातृ-भूमि को समर्पित वैदिक ऋषियों की इन्हीं उदात्त भावनाओं की वर्तमान में प्रासंगिकता तथा राष्ट्रीय महत्त्व पर प्रकाश डाला जाएगा।

राष्ट्र बनाम मातृभूमिः

डॉ. किसना राम संस्कृत प्राध्यापक, एम.बी.डी. राजकीय महाविद्यालय कुशलगढ़।

'राष्ट्रं वा अश्वमेधः, श्रीर्वैराष्ट्रम् अश्वमेधः' कहते हुए वैदिक साहित्य अश्वमेध और राष्ट्र की एकरूपता सिद्ध करता है। इस साहित्य में ऐसे अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं जिनसे ज्ञात होता है कि उस समय अश्वमेध सम्पूर्ण पृथिवी को जीतने का साध न माना जाता था। यद्यपि उन उदाहरणों में पृथिवी कीकोई सीमा नही दी गई है और न ही उसके अन्तर्गत आने वाले देशों का वर्णन है, परन्तु रामायण, महाभारत ओर पुराणों मे अश्वमेध यज्ञ के अश्व का जो भ्रमणक्षेत्र वर्णित है उससे स्पष्ट है कि यह क्षेत्र उस भारतवर्ष के भीतर ही था जो हिन्दमहासागर और हिमालय के बीच में स्थित है।

वर्तमान में हम अपने राष्ट्र भारत के लिए जो माता शब्द का प्रयोग करते हैं यह परम्परा प्राचीन काल से ही चली आ रही है। अथर्ववेद में भूमि को माता और स्वयं को उसका पुत्र कहा गया है। वस्तुतः यह पृथिवी माता हमारी राष्ट्रभूमि हीहै जिसकी पुष्टि रामायाण में राम के उस कथन द्वारा भी होती है जिसमें वे सोने की लंका के प्रति जरा भी लोभ न दिखाते हुए कहते है कि जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से भी बढ़कर है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि जन्मभूमि का महत्त्व हमारे जीवन में माता के समान है। वह भी जननी की भाँति पूजनीया और स्वर्ग से भी बढ़कर है। यजुर्वेद का राष्ट्रगान ओर अथर्ववेद का पृथिवी सूक्त राष्ट्रवन्दना के अनुपम उदाहरण हैं जिन पर इस लेख में चर्चा की जायेगी।

अथर्ववेद में प्रतिबिम्बित राष्ट्रभक्ति

डॉ. किरण टण्डन प्रोफेसर एवं अध्यक्ष(संस्कृतविभाग), कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

सहृदय राष्ट्रभक्त सत्पुरुष का भावुक हृदय अपनी जन्मस्थली और अपनी कर्मस्थली के प्रति अर्थात् अपने राष्ट्र के प्रति प्रेमभाव से सराबोर रहता है, राष्ट्र की विशिष्ट उपलब्धियों से हर्षित होता है, और राष्ट्र की अपनी व्यक्तिगत क्षति मानकर अवसन्न हो जाता है। इन सत्पुरुषों के हृदय में राष्ट्रप्रेम की ज्योति को जलाये रखने का काम हमारे राष्ट्रभक्त सत्साहित्य की संरचना करने वाले साहित्यकार किया करते हैं। इस दृष्टि से वैदिक साहित्य का अनुशीलन करने पर अनुभव होता है कि हमारे मन्त्र द्रष्टा ऋषियों ने भी वेदों में राष्ट्रप्रेम, राष्ट्रगौरव, राष्ट्ररक्षा आदि से सम्बद्ध महत्त्वपूर्ण पहलुओं को प्रस्तुत किया है। अथर्ववेद के पृथिवीसूक्त एवं राष्ट्रदेवीसूक्त सहित अनेक सूक्त व्यक्ति को अपनी जन्मभूमि को माता के समान मानने, राष्ट्रशक्ति को देवता मानने की प्रेरणा देते हैं, माता से वात्सल्य प्राप्त करने वाले व्यक्ति को इसकी रक्षा-सुरक्षा का उत्तरदायित्व वहन करने का निर्देश देते हैं, अपनी मातृभूमि मातृसंस्कृति और अपनी मातृभाषा को देवी मानकर इनके प्रति आदरभाव धारण करने की शिक्षा देते हैं। परिवार के लोगों को भी द्वेषभाव से मुक्त रहने का मन्त्र देते हैं। अथर्ववेद के पृथिवी सूक्त का एक मन्त्र -

गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽरण्यं ते पृथिवीस्यानमस्तु। बभ्रु कृष्णां रोहिणीं विश्वरूपां ध्रुवां भूमिं पृथिवीमिन्द्रगुप्ताम्।।
अजीतोऽहतो अक्षतोऽध्यष्टां पृथिवीमहम्।। 12/1/11

ही यह तथ्य बताने में समर्थ है कि तत्कालीन राष्ट्रभक्त कभी पसन्द नहीं करते थे कि शत्रु उनकी मातृभूमि की भौगोलिक सीमा का अतिक्रमण करें। अपने शोधलेख के माध्यम से मैंने यह तथ्य स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि अथर्ववेद में वर्णित राष्ट्रभक्ति से सम्बन्धित मन्त्र हमारी मातृभूमि भारतवर्ष की रक्षा-सुरक्षा, सम्प्रभुता समृद्धिशीलता के लिए आज भी उपयोगी है।

वैदिक काल में सेना के प्रमुख विभाग

डॉ. ए.वी. कौर वरिष्ठ प्रवक्ता, चौ.चरणसिंह विश्वविद्यालय, मेरठ

भारतीय राजशास्त्र और प्रशासनिक संस्थाओं के अस्तित्व के सबसे प्राचीन लेखबद्ध प्रमाण हमे वैदिक साहित्य से प्राप्त होते हैं। वैदिक साहित्य का यद्यपि विशुद्ध रूप से राजनीति एवं प्रशासन के विषय से सम्बन्ध नहीं है तथापि इसमें राजधर्म एवं प्रशासन

को संचालित करने के उपदेश स्थान-स्थान पर उपलब्ध होते हैं। अतः राजशास्त्र और प्रशासनिक संस्थाओं के उदय और विकास को प्रारम्भ करने का श्रेय वैदिक संहिताओं और उत्तरवर्ती वैदिक साहित्य को दिया जा सकता है। वेदों में अनेकानेक स्थानों पर युद्ध सम्बन्धी मन्त्र विद्यमान हैं जिनमें वैदिक काल में युद्ध के उद्‌देश्य तथा उस समय प्रतिरक्षा विभाग की क्या अवश्यकता थी इस तथ्य पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। वेदों में युद्ध का कारण अपने अधिकारों की रक्षा बताया गया है।

मरुत्सूक्तों में सैनिकों के अनेक ऐसे विशेषण आये हैं जिनसे इस बात पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है कि जिन व्यक्तियों को सेना में प्रविष्ट किया जाये उनमें किस प्रकार के गुण होने चाहिए। वेद में मरुतों के इन विशेषणों की अनेक बार आवृत्ति हुई है। भारतीय इतिहास के महाभारतादि ग्रन्थों तथा उनके परवर्ती संस्कृत साहित्य में चतुरंगिणी सेनाओं का उल्लेख मिलता है। किन्तु वेदों में (1) पदाति, (2) अश्वारोही, (3) रथारोही ये तीन ही अंग स्थल सेना के उपलब्ध होते हैं। वेदों में पैदल सेना का वर्णन मिलता है। रूद्र सेनापति हैं। उसे यहाँ पदातियों का पति कहा गया है। इससे पदाति सेनाओं की असंदिग्ध सूचना मिलती है।

अनेक वैदिक मन्त्रों में अश्वारोही सेना का वर्णन है। वेदों में सूचना भी मिलती है कि सेनाओं के लिए उपयोगी घोड़े विशेष रूप से तैयार किये जाए। रथारोही सेना सम्बन्धी भी असंख्य मन्त्र हैं वेदों में मार्गशोधक सेनाओं के भी संकेत प्राप्त होते हैं। वेदों में जल सेना का वर्णन भी है। समुद्र संचार के लिए अतिशीघ्रगामी पातों का निर्माण किया जाता था। वेदों में कोई बीस से अधिक स्थानोंपर मरुतों को रूद्र कहा गया है। रुद्र के जो सैनिक के वर्णन वेद में हुए हैं उनसे यह सूचित हाता है कि यह सैनिक रुद्र सेनापति है। वेदों का अध्ययन करने पर सैनिकों की वेशभूषा व अनुशासन के सम्बन्ध में भी अनेक उल्लेख प्राप्त होते हैं। रुद्र(सेनापति) को मरुतों का 'स्वपाः' पिता कहा गया है। (ऋ. 5.60.5) और मरुतों को रुद्र के पुत्र कहा गया है। अर्थात् सैनिकों व सेनापति में अनुशासन के साथ-साथ पिता-पुत्र का सा सम्बन्ध होना चाहिए। सैनिक को उसके वेतन के लिए, उसके खाने पीने के एि उसका नियत भाग दिया जाता था।

वैदिक राजा की लोकाराधना

डॉ. महीपाल यादव स.आचार्य, संस्कृत विभाग, राज.वि.वि. जयपुर

वैदिक राज्यव्यवस्था वर्तमान की भांति साम्यवादी, पूंजीवादी, लोकतन्त्रात्मक, वंशानुगत स्वरूपों मं न होकर मानवीय मूल्यों को ध्यान में रखकर लोकाराधना पर आधारित थी। अतः प्रस्तुत शोधनिबन्ध का विषय 'वैदिकशासक की लोकाराधना' रखा गया है। वैदिक काल में शासक एक ओर दैवीय शक्ति के रूप में तो दूसरी ओर मानवीय शक्ति के रूप में प्रतिष्ठापित हुआ है। लोकतान्त्रिक एवं राजतन्त्र के मिश्रित स्वरूप वाली इस शासन व्यवस्था में शासक के सम्प्रभु होने पर भी प्रजा के मूल अधिकार एवं मानवाधिकार पूर्णतया सुरक्षित एवं संरक्षित थे, क्योंकि शासक वर्ग की निरंकुशता पर रोक लगाने के लिए सभा एवं समिति जैसी उच्चाधिकार प्राप्त प्रजातान्त्रिक संस्थाएँ तत्कालीन समय में विद्यमान थीं। ऋग्वेद के अनुसार राष्ट्र एवं प्रजा की रक्षा करने वाले को राजा कहा गया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि ऋग्वेद के समय में राजा का प्रमुख उद्देश्य राष्ट्र रक्षा एवं लोकानुरञ्जन था, यथा-**'कुविन्मा गोपां करसे जनस्य'**।

धर्मशास्त्रोक्त दण्ड-व्यवस्था

डॉ. वीरेन्द्र कुमार मिश्र हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला

दण्ड के बिना समाज में एक अव्यवस्था उत्पन्न हो जाती है कोई भी समाज चाहे जितना सुशिक्षित सुसंस्कारित क्यों न हो दण्ड की व्यवस्था के बिना वह समाज भी सुखपूर्वक रह नहीं सकता है। जिस समाज में दण्ड का भय नहीं होता उस समाज के व्यक्ति निरन्तर कष्ट का अनुभव करते रहते हैं। कहा गया है कि "दण्डः शास्ति प्रजाः" दण्ड ही प्रजा को अनुशासित करता है।

समाज को सुव्यवस्थि ढंग से चलाने केलिए ऋषियों ने धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में दण्ड व्यवस्था का सम्यक् वर्णन किया है। सत्य की परीक्षा करके राजा अपराधी को दण्ड दे किन्तु सन्देह की स्थिति उत्पन्न हो जाने पर अर्थात् सत्य की सम्यक् परीक्षा न हो पाने

की स्थिति में अपराधी के लिए दण्ड की व्यवस्था न करे। नियमपूर्वक कर्तव्य का निर्वाह करता हुआ राजा दोनों लोकों के सुखों को प्राप्त करता है। (आप. धर्मसूत्र 2.5.102.4)

संस्कृतवाङ्मय में दण्डनीति का प्रचुर मात्रा में उल्लेख उपलब्ध है। दण्डनीति का वर्णन रामायण महाभारत, पुराण, कौटिल्य अर्थशास्त्र, कामन्दक नीतिशास्त्र, मत्स्य पुराण, मानसोल्लास आदि ग्रन्थों में मिलता है।

धर्मसूत्रकारों ने प्राय: सभी वर्णों के लिए दण्ड की व्यवस्था का उल्लेख किया है। राजा अपने विवेक के आधार पर नियमों का पालन करते हुए अपराधी के लिए दण्ड का विधान करता है। अतएव दण्डव्यवस्था की अत्यन्त आवश्यकता होती है।

वैदिक वाङ्मय में सैन्य व्यवस्था व प्रकार

निधि शर्मा (शोध छात्रा) आर.जी.(पी.जी.) कालेज, मेरठ

वैदिक साहित्य में जीवन के प्रत्येक पक्ष राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं भौतिक जगत् की विविध घटनाओं एवं तत्वों का विशद वर्णन उपलब्ध होता है। राजनैतिक दृष्टि से राज्य के सप्ताङ्गों 1. स्वामी (राजा), 2. दुर्ग, 3. कोष, 4. आमात्य, 5. दण्ड (सेना), 6. मित्र तथा 7 जनपद का सविस्तार वर्णन उपलब्ध होता है। सेना राज्य की मूलभूत आवश्यकता तथा शक्ति का आधार होती है। अत: संस्कृत साहित्य में सैन्यव्यवस्था, इसके प्रकार की विस्तृत सामग्री उपलब्ध होती है। किसी भी देश अथवा राष्ट्र की रक्षा सर्वोपरि होती है। एतदर्थ सेना की आवश्यकता होती है सेना राष्ट्र की आन्तरिक एवं बाह्य दोनों प्रकार के शत्रुओं से रक्षा करती है। वैदिक साहित्य में सेना के निम्न प्रकारों का वर्णन हुआ है। अश्व सेना, रथ सेना, पदाति सेना, गज सेना आदि प्रमाणों का वर्णन हुआ है जिनका विवेचन करना ही इस शोधपत्र का उद्देश्य है।

महर्षि दयानन्द की दृष्टि में न्याय व्यवस्था

डॉ० दयाशंकर विद्यालंकार अतीन्द्रिय योग साधना एवं शोध संस्थान, हरिद्वार

प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिन्तन में न्याय को धर्म का प्रतीक माना गया है तथा इसी के कारण न्यायाधीश को धर्माध्यक्ष या धर्माधिकारी और न्यायालय को धर्माधिकरण की संज्ञा प्रदान की गई है। याज्ञवल्क्य ने घोषित किया है कि "निष्पक्ष न्याय से वही फल प्राप्त होता है जो पवित्र वैदिक यज्ञों से प्राप्त है। (याज्ञ० 1.360)

महर्षि दयानन्द ने भारतीय वैदिक परम्परानुसार ही न्याय को धर्म माना है। उनका मत है कि जो पक्षपात रहित सत्याचरण करता है वह न्याय और जो पक्षपात मिथ्या आचरण करता है, वह अन्याय कहलाता है। (व्यवहारभानु पृ० 28)

प्रस्तुत शोधपत्र में महर्षि दयानन्द के अनुसार वैदिक न्याय का स्वरूप स्पष्ट करने का प्रयास किया जा रहा है।

वर्तमान समय में वैदिक राजनीति की प्रासंगिकता

डा० शिखा जैन राजनीति शास्त्र, बी.एस.एम. (पी.जी.) कालेज, रुड़की

भारतीय धर्म, सभ्यता और संस्कृति के उद्गम स्रोत वेद हैं, जो भारतीय चिन्तन ओर जीवन पद्धति को प्रेरणा प्रदान करते हैं। इसी कारण से वेदों को सम्पूर्ण मानव जाति के लिये कल्याणकारी माना गया है। वेद सभी प्रकार के सामाजिक व भौतिक विज्ञानों के ज्ञान के अथाह भण्डार हैं। अत: वेदों में जहां अन्य ज्ञान विज्ञानों की उपलब्धि हुई है, वहीं वेदों में मानव जीवन के लिये अति महत्त्वपूर्ण राजनीति विज्ञान के संदर्भ में भी अनन्त ज्ञान भण्डार उपलब्ध है। वेदों में राजनीति विज्ञान के सिद्धान्तों की विशद् विवेचनाओं के साथ-साथ वर्तमान राजनीति की अनेक विकट समस्याओं का समाधान भी छिपा हुआ है। वैदिक राजनीति के सिद्धान्त सत्य व तर्क की कसौटी पर कसे होने के कारण आज भी अपनी प्रमाणिकता सिद्ध करते हैं।

वैदिक राजनीति में प्रजातंत्रीय शासन व्यवस्था के अन्तर्गत अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली (अमेरीकी) को प्रधानता, शासनाध्यक्ष को लम्बी अवधि के लिये चुने जाने का बल, राजा, कोई दैवीय व्यक्ति ना होकर प्रजा के मध्य योग्य व्यक्ति के चुनाव को ब, राजकाज में सहयोग व सहायता के लिए सभा व समिति नामक दो राजसभाओं का विस्तृत वर्णन है। राजनीति में नारियों की सक्रिय भूमिका, न्याय व्यवस्था, विश्वराज्य की स्थापना, नैतिक आदर्शों के परायण आदि की विस्तृत विवेचना की है। निःसन्देह सारगर्भित वैदिक राजनीति के सिद्धान्तों का प्रयोग जनहित में किया जाना आज एक प्रमुख आवश्यकता बन गयी है।

स्मृतिकालीन दण्डव्यवस्था

श्रीमती शशी प्रभा, शोधार्थिनी, संस्कृत विभाग, गुरुकुल कांगड़ी वि.वि. हरिद्वार

मनुष्य प्रकृति की सुन्दरतम सृष्टि है, किन्तु उसमें जन्म से ही काम-क्रोध-मद-लोभ-मोह एवं मात्सर्य षड्विकार विराजमान रहते हैं। इनका जब सतोगुणों पर आधिपत्य हो जाता है अथवा प्राधान्य हो जाता है या मानवविवेक विकारों से ग्रसित हो जाता है एवं मनुष्य की ओर प्रवृत्ति होती जाती है। जिस विकार का प्राधान्य होता है, वैसा अपराध होता है। इन भावनाओं के निमन्त्रण के लिए दण्ड की व्यवस्था करनी पड़ती है, 'दण्ड' शब्द को 'दम्' धातु से निष्पन्न माना है, जिसका अर्थ रोकना या निवारण लिया गया है। स्मृतियों ने विवाद या झगड़ों को अठारह भागों में विभक्त किया है। इन विवादों के लिए तथा अपराधों के लिए विशेष प्रकार की दण्ड व्यवस्था हैं। मनु, नारद तथा कौटिल्य आदि स्मृतिकारों ने इन विवादों को अठारह पदों में विभक्त किया है। ऋणादान, निक्षेप, अस्वामिविक्रम, समूयसमुत्थान, दत्तस्यानपाकर्म, वेतनादान, संविद्ण्यतिक्रम, क्रयविक्रयानुशय, स्वामी और पशुपालक का झगड़ा, सीमा का झगड़ा, कठोर वचन कहना, प्रहार करना, चोरी, डकैती आदि साहस, स्त्रीसंग्रहण, स्त्री-पुरुष के धर्म की व्यवस्था, दायभाग, जुआ और समाहम।

दण्ड के औचित्य एवं कारण पर प्रकाश डालने से यह स्पष्ट है कि राजदण्ड, यम-यातना, एवं जमानत के भय से लोग पाप नहीं करते हैं। दण्डप्रणाली से प्रतीकार हो जाता है, अर्थात् यदि अपराधी को बन्दी बना लिया जाता है तो वह पुनः वही अपराध नहीं कर सकता, किन्तु यदि प्राणदण्ड दे दिया जाए तो उसे अपराधों से ही नहीं, जीवन से भी छुटकारा मिल जाता है, किन्त वह सद्दृष्टांत नहीं बन सकता। दण्ड का उद्देश्य चारित्रिक सुधार है इस प्रकार दण्ड एक प्रकार की पाप-निवृत्ति भी है, जो पापी को पाप न करने की प्रेरणा देता है। इस प्रकार मनुष्य सद्कर्म करते हुए स्वर्गवासी बन जाता है।

मनु आदि विद्वानों के दण्ड सिद्धान्तों से पता चलता है कि जिस तरह अपराधी ने अपराध किया हो, उसी प्रकार उसको दण्ड दिया जाता था।

वैदिक कालीन एवं वर्तमान दण्ड व्यवस्था का तुलनात्मक अध्ययन

अशोक कुमार तिवारी शोध छात्र, दर्शन विभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वैदिक वाङ्मय अत्यन्त विशाल एवं विविध प्रकार से ज्ञान से परिपूर्ण है। वेदों का स्वच्छ प्रकाश देश तथा काल के अभेदीय आवरण को छिन्न-भिन्न कर आज भी विश्व को अपनी प्रभा से प्रकाशित करता दृष्टिगोचर हो रहा है। धर्म्, संस्कृति और सम्पदा के प्राण और प्राचीन ज्ञान भण्डार को अपने भीतर समेटे विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ वेद में मानव की व्यक्तिगत और सामाजिक शांति को बनाए रखने हेतु दण्ड व्यवस्था का पर्याप्त विवरण प्राप्त होता है।

लोकतांत्रिक शासन के निमित्त राजनीति के चतुर्विध उपायों में दण्ड का महत्वपूर्ण स्थान है। आचार्य औपमन्यव के अनुसार "जिसके द्वारा अपराधियों का दमन किया जाता है, वह दण्ड है।" साधारण शब्दों में "सामाजिक व्यवस्था के संरक्षण के लिए जो विधि निर्मित है, उनके उल्लंघन को रोकने के लिए भय के रूप में जो शारीरिक, मानसिक या आर्थिक कष्ट पहुंचाया जाता है, वह दण्ड है।" समाज में अव्यवस्था फैलाने व अत्याचार करने वाले तमोगुणात्मक प्रवृत्ति वाले व्यक्ति को कठोर दण्ड देकर ही वश में किया जा सकता है। उन्हें स्वतन्त्र छोड़कर समाज में फैली अव्यवस्था को नहीं रोका जा सकता, किसी भी देश के सुसंचालन हेतु

दण्ड व्यवस्था अनिवार्य है। समाज के पथभ्रष्ट लोगों को सुमार्ग पर लाने हेतु तथा भ्रष्टाचार की रोकथाम हेतु दण्ड देना आवश्यक है। वैदिक काल से ही दण्ड व्यवस्था का पर्याप्त परिचय प्राप्त होता है, जिसमें छोटे-छोटे अपराधों के लिए भी मृत्यु दण्ड तथा अंग-विच्छेदन जैसे कठोर दण्ड दिये जाते थे।

ऋग्वैदिक दाशराज युद्धः प्रयोजन और परिणति

प्रो. ओमप्रकाश पाण्डेय, आचार्य एवं अध्यक्ष, संस्कृत तथा प्राकृत भाषा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

प्रस्तुत शोधपत्र में दाशराज्ञ युद्ध के विषय में व्याप्त उन भ्रान्तियों का निराकरण किया गया है, जो सुदीर्घकाल से प्रतिष्ठित विद्वानों में भी प्रचलित हैं। उनके अनुसार यह युद्ध वसिष्ठ और विश्वामित्र के मध्य विद्यमान पौरोहित्य की प्राप्तिजन्य स्पर्धा के कारण हुआ। दूसरी कल्पित धारणा यह है कि यह युद्ध आर्यों और अनार्यों के मध्य हुआ। तीसरी श्रेणी उन विद्वानों की है, जो इस युद्ध में कबीलाई मानसिकता देखते रहे हैं। यह युद्ध सुदास पैजवन और अन्य दास राजाओं के मध्य सम्पन्न माना जाता है। प्रस्तुत आलेख में सन्दर्भित सभी मन्त्रों की पुनः परीक्षा कर यह सिद्ध कर दिया गया है कि उपर्युक्त किसी भी मत में सत्यांश नहीं है। हमारा निष्कर्ष यह है कि यह युद्ध वास्तव में भारत के उत्तरी-पश्चिमी सीमा प्रदेश के निकटस्थ रहने वाले भारतविरोधी आततायी और आक्रमणकारी जातियों के उत्पातों का दमन करने के लिए लड़ा गया। इस युद्ध का मुख्य प्रयोजन राष्ट्र की सीमाओं को सुरक्षित करने के लिए आक्रमणकारियों को पूर्णतया निर्मूल करना था। आध्यात्मिक दृष्टि से इस युद्ध की प्रतीकात्मक अर्थवत्ता भी है, जो आत्म-ज्ञान की दिशा में बाधक दशों इन्द्रियों को भौतिक प्रलोभनों से मुक्त कर वास्तविक आत्म-ज्ञान की उपलब्धि में साधक है।

वैदिक राजनीतिः

डॉ. बिजेन्दु राव गुड़गांव

वेद ज्ञान का उद्गम स्थल है। सम्पूर्ण मानवता को प्रेरित एवं उर्जस्वित करने वाले वेद समग्र विश्व की सर्वाधिक महीयसी निधि है।

राजनीति मानव-समाज की अपरिहार्यता है। वैदिक युग में एक सुव्यवस्थित, कल्याण-केन्द्रित और सर्वाभिमुखी राजनैतिक व्यवस्था दिखलाई देती है। वैदिक कालीन राजनैतिक व्यवस्था की ईकाई 'ग्राम' था। अनेक ग्रामों के मिलने से 'विश' बनता था। विभिन्न विशों का समुदाय 'जन' कहलाता था। जन का सर्वोच्च शासक 'राजा' होता था। 'जनपद' शब्द देश के अर्थ में प्रयुक्त होता था, इन्हीं जनपदों को मिलकर 'राष्ट्र' का निर्माण हुआ था।

शासन प्रणालियां कुछ प्रजातन्त्रात्मक थी और कुछ राजतन्त्रात्मक। वे इस प्रकार है- साम्राज्य, भौज्य, स्वराज्य, वैराज्य राज्य, पारमेष्ठ्य, माहाराज्य, आधिपत्य इत्यादि। तत्कालीन राज्य-व्यवस्था में 'सभा' एवं 'समिति' नाम्नी दो संस्थाएं थी। इनमें श्रेष्ठ जन एकत्र होकर उत्तमोत्तम रीति से अपने विचारों को प्रकट करते थे।

"समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्" (ऋ० सं० 10.191.3)

सभा एवं समिति क्रमशः आधुनिक लोकसभा एवं राज्यसभा से की जाती है। इनके परामर्शो की उपेक्षा वेदकालीन राजा कभी नहीं कर सकता था। निश्चय ही वैदिक युग में राजनैतिक दृष्टि से प्रचुर प्रबुद्धता एवं जागृति विद्यमान थी।

वेदों में राजनीतिक चिन्तन का स्वरुप

उमाकान्त इन्दौलिया प्रवक्ता, भा.सं. एवं प.अध्ययन विभाग, देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार

अरुणेश पराशर प्रवक्ता, भा.सं. एवं प.अध्ययन विभाग, देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वैदिक मनीषियों ने राजनीति के जिन मौलिक तत्वों का सन्धान किया वे प्राचीन भारतीय राजनीति की वृत्त रेखायें बन गई। उनकी राजनीतिक जिज्ञासा वैदिक साहित्य में संचित है। वैदिक काल में सभी पक्षों पर निष्पक्ष तत्वचिन्तन किया जाता था, इससे उस समय समाज के विभिन्न पक्षों जैसे आर्थिक सामाजिक सांस्कृतिक एवं राजनैतिक चिन्तन का श्रेष्ठ स्वरुप हमारे सामने आता है। वेदों

में राजनैतिक चिन्तन के तत्वों को किस दृष्टिकोण से मीमांसित किया आदि तथ्यों का परिचालन वैदिक वाङ्मय के तार्किक निरुपण से सम्भव है। इस प्रकार वैदिक वाङ्मय किसी एक व्यक्ति की रचना नहीं है। पहले वेद की संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक उपनिषदों इत्यादि का विकास हुआ उपनिषद वैदिक साहित्य के विकास का अन्तिम चरण है। वैदिक कालीन राजनीतिक चिन्तन में धर्म की अपनी महत्वपूर्ण भूमिका है। भारत में प्राचीन काल से ही सभी पक्षों पर धर्म का प्रभावी रुप रहा है। भारत के इस सर्वव्यापी धर्म के प्रथम मूल अथवा प्रभव का आधार 'ऋत' रहा है। ऋत वैदिक मनीषियों द्वारा प्रस्तुत एक शास्वत सत्य है। पृथ्वी के सभी भौतिक तथ्यों व नियमों में संकल्प शक्ति का अद्भूत प्रयोग ऋषियों ने देखा व उसे अनुभव किया तथा जाना कि ये सिद्धान्त व नियम इतने दृढ़ थे कि धरा की कोई शक्ति उन्हें उनके पथ से विचलित नहीं कर सकती। इसी सिद्धान्त को उन्होंने ऋत कहा। इस प्रकार ऋत की धारणा से अन्त:संचरित धर्म ने अन्ततः भारतीय राजनीति की भी वृत्तरेखाएं खींच दी। वास्तव में भारतीय विचारकों के इस ध र्म में जहाँ राजनीति के मौलिक तथ्यों का उद्भव हुआ वहीं राजनीति का स्वरुप भी मर्यादित होने लगा।

धर्मशास्त्र में ब्राह्मणों की राजनैतिक स्थिति

डॉ० मधु सक्सेना रीडर एवं अध्यक्षा संस्कृत विभाग, रघुनाथ गर्ल्स (पो०ग्रे०) कॉलिज, मेरठ

सृष्टि के प्रारम्भ से ही मानव का जीवन नियमों की श्रृंखलाओं के मध्य स्पन्दित हुआ और कर्त्तव्य की रेखाओं के मध्य संवर्द्धित। जब-जब नियम श्रृंखला टूटी, अव्यवस्था ने जन्म लिया, और इसी अव्यवस्था को समाप्त करने के लिए कतिपय नियामक तत्वों का निर्माण हुआ, जिन्हें आचार्यों ने 'आचारशास्त्र' या 'राजनीतिशास्त्र' या 'नीतिशास्त्र' या 'दण्डनीति' आदि विविध संवाएं प्रदान कीं। वैदिक साहित्य में इस नियामक परम्परा अर्थात् राजनीति का उद्भव हुआ, महाभारत में परिष्कार और धर्मशास्त्र साहित्य में विकसित एवं संस्कृत राजनीति ने अपना परिचय दिया। धर्मशास्त्र साहित्य प्रमुखतः 'आचारशास्त्र' है, किन्तु 'राजधर्म' भी उसका एक उल्लेखनीय विवेच्य विषय है। धर्मशास्त्र में न केवल राजा के करणीय कर्त्तव्याचारों की व्याख्या प्रस्तुत की गयी है अपितु मंत्रिमंडल, कोष, दूत, दुर्ग, राजमण्डल की 12 तथा 72 प्रकृतियाँ, साम आदि उपाय, सन्धि विग्रह आदि छः गुण, गुप्तचर, सेना, सैनिक आदि राजनीति के विभिन्न अंगों का विशद वर्णन उपलब्ध होता है। यही नहीं दण्ड व्यवस्था, व्यवहार-निर्णय, कर-व्यवस्था पर भी महत्वपूर्ण एवं विस्तृत विवेचन धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों में प्राप्त होता है।

धर्मशास्त्रसाहित्य में राजनीति के सांगोपांग विवेचन में निस्सन्देह ब्राह्मण-वर्ण को अत्यधिक आदर एवं सम्मान प्रदान किया गया है। राजा को क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र-इन तीन वर्णों पर शासन करने का अधिकार है, ब्राह्मणवर्ण पर शासन करने का अधिकार नहीं दिया गया है-'राजा सर्वस्येष्टे ब्राह्मणवर्जम् (गौतम धर्मसूत्र 2/2/1)। ब्राह्मवर्ण को छोड़कर शेष तीनों वर्ण नीचे बैठ कर राजा को सम्मान दें- तमुपर्यासीनमधास्तादुपासीरन्नन्ये ब्राह्मणेभ्यः (गौ.ध.सू. 2/2/)। मनु ने जाति एवं धर्म-दोनों दृष्टियों से ब्राह्मण को राजा की अपेक्षा अधिक उच्च एवं पवित्र माना है।[1] आपस्तम्ब तथा वसिष्ठ के मतानुसार ब्राह्मणों के धन की रक्षा करने में यदि राजा मृत्यु को प्राप्त हो जाए तो उसे यज्ञ करने का फल प्राप्त होता है।[2] गौतम ने तो वर्णमात्रेण 'ब्राह्मण' कहलाने वाले व्यक्ति को राजकीय सम्मान का अधिकारी होता है।[3] राजा के करणीयाचारों ने ब्राह्मणों के सम्मान एवं संरक्षण को बहुत महत्व प्रदान किया गया है।

1. मनु. 8/320
2. आप.ध.सू. 2/10/262-3, वसि.ध.शा. 3/44/46
3. गौ.ध.सू. 1/8/1, 2/2/27, वृद्धहारीत 8/228-230

राष्ट्रसभासूक्तस्य राजकीयदृष्ट्या परिशीलनम्

प्रो. ललितः पटेलः श्रीसोमनाथ-संस्कृतयूनिवर्सिटी, वेरावलम्।

अर्थशास्त्रे कौटिल्येन उक्तं यत्- "पृथिव्या लाभे पालने च यावन्त्यर्थशास्त्राणि पूर्वाचार्यैः प्रस्तावितानि प्रायशस्तानि संहृत्यैकमिदमर्थशास्त्रं कृतम्।" तथैव चाणक्यवदस्माभिरपि पृथिव्या लाभे लोकतन्त्रपालने धर्मरक्षणार्थं च राष्ट्रसभासूक्तस्य उपादेयता अङ्गीकर्तव्या एव।

प्राचीनकाले प्रजानां जीवनस्य धनस्य रक्षणं राज्ञं पवित्रमावश्यकतञ्च कार्यमासीत्। राजानश्च प्रजारक्षणैकव्रताः शास्त्रप्रतिपादितदिशा शासनं कुर्वन्तः आसन्। ता राज्यतन्त्रेऽपि लोकतन्त्रस्य महाप्रभावः आसीत्। इदानीन्तमे काले राज्ञः कार्यं सभा(संसदः) कुर्वती अस्ति। सा सभाऽपि द्विविधा लोकसभा राज्यसभा च। सायणाचार्यानुसारं 'सभां विदुषां समाजः।' इदानीन्तनी सभा कीदृशी भवेत् ? तदर्थं अस्माकं द्रष्टारः ऋषयः किं चिन्तयन्ति स्म? सभायां किं वक्तव्यम्? सभासदाः कीदृशाः भवेयुः? एतत् सर्वं ज्ञातुं अथर्ववेदे स्थितस्य अस्माकं ऋषिवर्यैः दृष्टस्य राष्ट्रसभासूक्तस्य मया राजकीयदृष्ट्या परिशीलनं विधास्यते। ऋषयः वदन्ति- 'सभा नरिष्टा नाम वा अस्ति। किन्तु आध निकसभायां अस्माकं सांसदाः कथं कलहं कुर्वन्ति? कथं व्यवहरन्ति? कथं परस्परं मारयितुं उद्युक्ताः प्रवर्तन्ते? तत्सर्वं वर्तमानपत्रेषु दूरदर्शने वयं पश्यन्तः स्मः। स्वार्थपरायणाः प्रजाद्रोहिणः अस्माकं नेतारः राष्ट्रहितं विस्मृत्य स्वार्थाय रताः धनलोलुपाः च सन्, भ्रष्टाचारं कृत्वा ध नं अर्जयन्तः, शास्त्रविमुखाः भूत्वा शासनं कुर्वन्तः सन्ति। तान् उद्दिश्य एव ऋषिराहः-

यद् वो मनः परागतं यद् बद्धमिह वेह वा। तद् व आ वर्तयामसि मयि वो रमतां मनः॥

अस्माभिः लोकतन्त्रेऽपि राज्यमन्त्रस्य महाप्रभावः स्थापनीयः। भगवता रामेण तु शासनं कुर्वता यदुदाहरणं प्रस्तुतीकृतं तत्तु सर्वेषां शासकानां कृते पथप्रदर्शकमस्ति। उक्तं तेन'

स्नेहं दयाञ्च सौख्यञ्च यदि वा जानकीमपि। आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा।

एतदेव ऋषिणाम् आशयः आसीत्। एतत् कार्यम् इदानीं राष्ट्रसभायाः। धर्मनियन्त्रितं राजमन्त्रमीतिभीतिरहितं सर्वसाधनसम्पन्नं देशमिमं कर्तुं महता दायित्वेन कार्यं करणीयं संसदेन(राष्ट्रसभया)

सर्वज्ञानमये वेदे वर्णितं धर्मशासनम्

डॉ. कृपाशङ्करमिश्रः सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालयः, वाराणसी(उ.प्र.)

"धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमंश्रुतिः" इति मनूक्त्यनुसारं अपौरुषेयं वेदः धर्मविषये साक्षात्प्रमाणम्-

यः कश्चित् कस्यचिद्धर्मो मनुना परिकीर्तितः।

स सर्वोऽभिहितो वेदे सर्वज्ञाममयो हि सः॥ इदपि मनुस्मृतिरूपवृंहयति यत् सर्वेषां मानवानां कर्तव्यक्रियाप्रधानाः धर्माः मनुना परिकीर्तितास्ते सर्वेऽपि धर्मा वेद एवोपलभ्यन्ते, यतोहि वेदः सर्वधर्ममयः विद्यते अर्थात् यज्ञात्मकधर्मः श्रुतौ साक्षान्निवेशः, किन्तु वसन्ततौ यजेत्, प्रावृषि यजेत् इत्याद्युपलभ्यमाने वेदे कस्य वर्णनस्य कः यज्ञः करणीयः इति जिज्ञासायां मनुः पृथक्-पृथक् स्मृतौ व्यासेन विस्तारयति। अतएव कालिदासेनोक्तम् - श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत् इति। अर्थात् यथा छाया पुरुषमनुहरति तथैव स्मृतयः श्रुतिं पुरस्कृत्य धर्मविस्तारं कुर्वन्ति। श्रुतौ मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव, अतिथि देवो भव इत्यादि धर्मसूत्राणि लभ्यन्ते। स्मृतौ - आचार्यो ब्राह्मणो मूर्तिः, पितामूर्तिः प्रजापतेः। माता पृथिव्याः मूर्तिः, भ्राता स्वमूर्तिरात्मनः॥ इति मातृभक्तस्येतिहासः, पितृभक्तस्येतिहासः, आचार्यभक्तस्येतिहासश्च विस्तरेण पुराणे भारते च प्राप्यतै अतिथि सेवायाः महागौरवस्थानं पुराणेषु प्रचुरमुपलभ्यते। इति श्रुत्युक्त धर्माणां विस्तारः अर्थात् पुत्रस्य पितृ सेवा, मातृ सेवा, आचार्यसेवा, गृहस्थेन अतिथिसेवा धर्मः इति स्मृतिः विस्तारयति। केनं मातृसेवय, पितृसेवया, गुरुसेवया, अतिथिसेवया च कीर्तिरर्जितेति विशालदृष्टान्तव्याख्यानम् पुराणे इतिहासे च दृश्यते इति श्रुतिस्मृतीतिहासपुराणप्रतिपादित ध र्मानुसारि जीवनव्यवहर्ता पुरुषः वैदिक धर्मानुष्ठाता भवतीति सहर्षं वक्तुं शक्यते इति संक्षेपः।

वेदे राजनीतौ शासन व्यवस्थायाः समीक्षा

पं. रामानुग्रहः शर्मा रांची(झारखण्ड)

शासको नृपो देवतुल्यः सूर्यसमानो भवति। प्रजानां जीवनमार्गे प्रकाशं ददाति। यथा- भगवान् भास्करः तमो नाशयन् संसारस्य संचालनं करोति तथा नृपोऽपि सत्येन दयया शैर्येण दानादि गुणसम्पदा प्रजापालनं विदधाति। प्रजा रक्षको भूपो भानुवत् पूज्यो भवति। तस्यैव गुणाः प्रजास्वति प्रविशन्ति। प्रजारक्षणे शासके नौका याः गुणा विशन्ति। यथा सूर्यस्य अग्नौ, विद्युति नक्षत्रेषु चन्द्रमसि गृहेषु च प्रकाशो दृश्यते तथैव प्रतिपाल्येषु जनेषु राजगुणाः दीव्यन्ते सूर्यस्तुतौ यथा यजुर्वेदे तरणिविश्व दर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्यः। विश्व मा भासि रोचनम्

वैदिकसाहित्ये संहिता ब्राह्मणारण्यकोपनिषदों गण्यन्ते। ऋग्वेदस्य ऐतरेय ब्राह्मणे वैदिककालीन शासन व्यवस्थाया: प्रकाशो दृश्यते स्वस्तिसम्राज्यम् भौज्यम्, स्वाराज्यम्, वैराज्यम्, पारमैष्ठ्यम्। महाराज्यम् आधिपत्यम्, समनतपर्यायी सार्वभौम शासनम्। ऐषां राज्यानां सम्पूर्णे शोधे सम्यग्विवेचनं भविष्यति। वैदिकशासने जनहित कामना प्रतिष्ठितासीत्। 'भद्रमिच्छन्ति ऋषयस्वर्विदिस्तपो दीक्षामुपसेदो एग्रे ततो राष्ट्रं बलमोजस्य च जातं तदस्मैदेवा उपसनमनतु अथर्व 19.4919 शासका ब्रह्मचर्यबलेन तपसा च राष्ट्रं रक्षन्तिस्म' ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं निरक्षति। अथर्व 11.3115 यस्य वृतं नमस्यन्ति स्वर्गस्थस्यापिभानवा:। पौरजानपदा मात्या स राजा राजसतम:।। शा.प. 25.36 वैदिक शासनं गुणि जनानां धार्मिक सज्जनानामासीत्। शासनव्यवस्थेयं परिपूर्णा लोकहित परासीत्। यस्मिन् धर्मो विराजते तमं राजनमं प्रचक्षते। शा.प. 90. 318।

महाभारत में प्रतिबिम्बित वैदिक राजधर्म

वन्दना पाण्डेय (शोधच्छात्रा), वाराणसी

राजनीति से सम्बद्ध प्राचीन ग्रन्थों में राजधर्म, राजशास्त्र, दण्डनीति, नीतिशास्त्र और अर्थशास्त्र आदि नामों से व्यवहृत किया गया है। यथा- मनुस्मृति और महाभारत में इसे राजधर्म कहा गया है तो कौटिल्य ने इसके लिए अर्थशास्त्र शब्द का प्रयोग किया। इसके अतिरिक्त इसका एक अन्य प्रचलित नाम नीतिशास्त्र भी है। वेदों में विवेचित इसी राजधर्म को क्षत्रिय का विशेष धर्म मानते हुए इसे क्षत्रिय धर्म के अन्तर्गत समाहित कर लिया गया है। राजधर्म से सम्बन्धित समस्त महाभारतीय विवेचन श्रुत्याधारित ही है। श्रुतियों में विवेचित राजधर्म का विवेचन महाभारत में शान्तिपर्व, सभापर्व, आदिपर्व, उद्योगपर्व आदि में आगत है परन्तु शान्तिपर्व इसका अगाध कोष है। राजधर्म के इसी महत्त्व को ध्यान में रखकर प्रस्तुत शोधपत्र का शीर्ष है- **'महाभारत में प्रतिबिम्बित वैदिक राजर्ध।'**

CONCEPT OF STATE ACTIVITIES IN VEDAS

Dr. (Smt.) Gyan Prabha Agrawal, Reader J.D.G.P.G. College Kanpur

It is commonly believed that the Science of economics as such is only of recent origin. But political economy as a science begins at a time when the foundation of industrial capitalism were already well laid. economic thought developed to fundamental nations that still hold good in the modern theory of economic planning in the country. One is the notion of the Arthasastra that stresses the integration of economics with the over social sciences subserving the fourfold traditional ends of piety.wealth, pleasure and freedom. The other is the concept of the varta which emphasizes the development of agriculture, trade and animal husbandry region by region.

Ideas of maintaining Dharma were associated with economic objects which led to a mixture of paternalism, socialism and individualism. This is quite in line with the modern policy, and rather ahead of it. we may state that in ancient economic thought the interdependence of economics, political and ethical conception is not only realized in theory but is put into practice.

PATRIOTISM: IN THE VIEW OF THE VEDAS

Bipn Kumar Jha Deptt. of H.S.S., IIT Bombay, Powai, Mumbai

'This country 'THE INDIA', due to its thinking., *of* 'vasudhaiva *kutumbakam*' for the protection and for the progress *of* the whole world; its consistent attempts, led it to the honor of *'vishwa guru'*. This question simply comes in our mind what view the Vedic philosophy had in the view *of* national progress, nationalism as well as everybody knows that Vedas are there, as the treasure *of* Indian thoughts system, in which the thoughts *of* Indian scholars exist within, as true image.

In the presented research paper, the works *of* Indian thinkers, in the nationalistic aspect, is discussed

herewith. For this, the present scenario is presented first and compared; then only. the Vedic thinking regarding the nationalistic reference can be understood. Just after this, 'what is the Vedic view behind this thoughts' keeping that in mind the said context is discussed here. In brief The Vedic view with regard to nationalism can be seen looking into this .*Soka*- Om abrahman brahmano brham varchasi Jayatamarastre rajanyah sur isavyoti vyadhi maharatho jayatam dogdhri dhenurvodha nad' wanasuh saptih purandhriryosa jisnu rathestha sabheyo yuvasya yajmanasya viro jayatam, nikame nah parjanyo varsatu phalvatyo na osadhayah pachyantam yogakshemo nah kalpyatam iti.

(आ ब्रह्मन् ब्रह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामाराष्ट्र राजन्यः शूर ईषव्योतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्ति पुरन्ध्रियोंषा जिष्णूरथेष्टा सभेयो युवाश्य वीरो जायताम्।) निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न औषधयः पच्यन्ताम्। योगक्षेमो नः कल्प्यताम्।)

PROTECTION OF CONSUMER'S RIGHT FROM VEDIC PERIOD

Dr. Sita Tripathi Dixit Lecturer, B.Ed Deptt. Akbarpur Degree College, Akbarpur, Kanpur Dehat.

Mr. Shiva Kant Dixit Research Scholar, Faculty of Law, Lucknow University, Lucknow. (U.P.)

The Vedic age in India which is considered to the first literary source of civilization, is seen as a glorious period of cultural evolution in the ancient world. The Vedas are not books of law but are the the repository of culture delineating the feelings and habits of the people of the time which indicate and give vivid ideas of legal concepts in a developed civilization. It is interesting to note that Manu was the first to write about the eighteen heads or titles of litigation and matters pertaining to buyers and consumers, including money lending, deposits and pledges, sale without ownership of property, non-performance of contracts and breach of contract of sale etc.

Protection of Consumer's Right has its deep roots in the rich soil of Indian civilzation, which dates back to 3200 B.C. In ancient India, human values were cherished and ethical practices were considered of great importance. However, the rulers felt that the welfare of their subjects was the primary area of conern. They showed keen interest in regulating not only the social conditions but also the economic life of the people, establishing many trade restrictions to protect the interests of buyers. Our paper examines the historical perspective of consumer protection in India from the Vedic age (ancient period) to the modern period. It also briefly analyzes the development of consumer law in India.

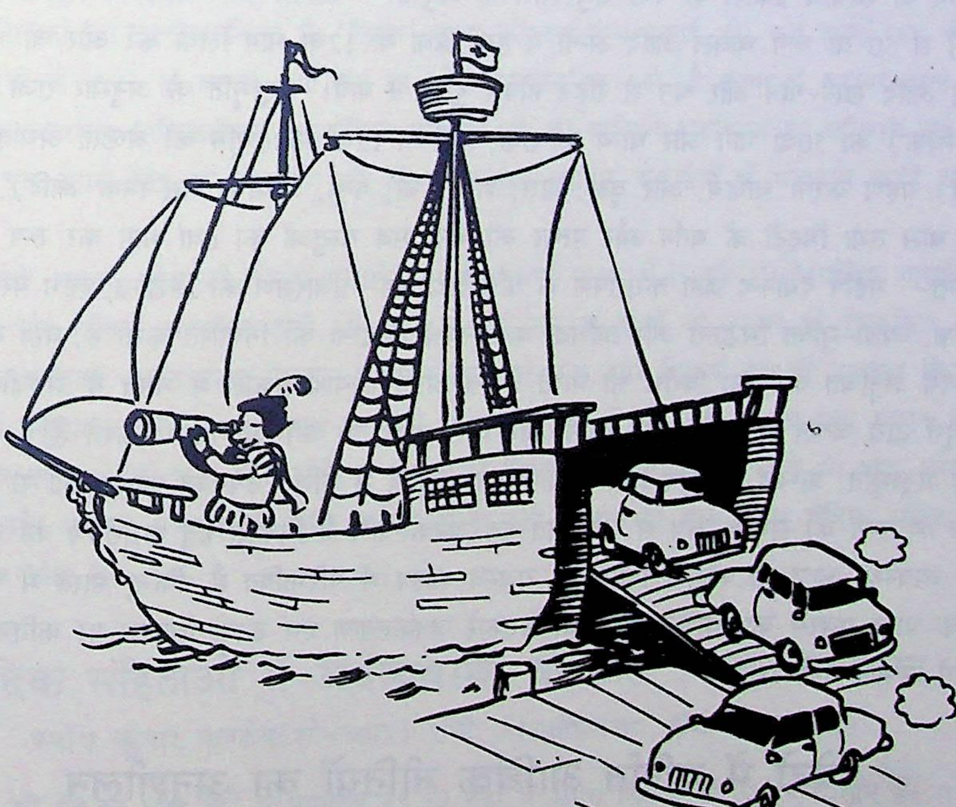
ARMS AND AMMUNITIONS SCIENCE IN VEDAS

Capt. (Dr.) Bela Malik H.O.D. Sanskrit S.B.N.P.G. Girls College Jaipur (Rajasthan)

Vedas are the scripture of Indian culture, in which we observe the academic heights of great Scholars from the anthropological points of view the study of Vedas are very necessary. Vedas are the main source of Indian civilization and culture, which is still relevant amidst scientific developments. Vedas are the foundation of Indian Philosophy, religion and social knowledge. Vedas are well-stocked with all type of knowledge related with life.

About Vedas, Manu comments "Sarvainanamayohisah", mean Vedas are well-provided with all the sciences. Vedas are jam-packed with the examplese of Physics, Chemistry, Botany, Zoology Technology, Agriculture, Mathematics, Astronomy, Environmental Science and Geology. As is evident from the doctrines of Aryan literature, beginning from the Vedas to modern literature, Aryans were peace loving human beings. They always advocated the peace to prevail in the society so as to ensure physical and celestial and spritiual development of human being. Vedic people performed different sacrifices to achieve the same. They wanted peace in every corner of the universe. But at the same time elements were there to distrupt the sacrificial rites, so the gods like Indra, Varuna were bound to with war against them. The army consisted of elephants, horses warriors on foot, chariots, navy, campus and so on. A variety of weapons were used in wars to combat and defeat the enemy. In this present paper I will try to study the different type of weapons, ammunitions, cartidges, armaments, explosives, powder shots and shells in Vedas.

अर्थशास्त्र
व्यापार
वाणिज्य



वेदों में करारोपण की व्यवस्था

डॉ. आर.बी. श्रीवास्तव, रीडर- वाणिज्य, स्नातकोत्तर विभाग, फीरोज गाँधी पी.जी. कॉलेज, रायबरेली

डॉ. विभा शुक्ला, प्रवक्ता- वाणिज्य, स्नातकोत्तर विभाग, फीरोज गाँधी पी.जी. कॉलेज, रायबरेली

मानव जीवन की सर्वागीण उन्नति के मूलाधार धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष हैं। मोक्ष और धर्म की इच्छा तो केवल मुनष्य कोही होती है, किन्तु अर्थ और काम की इच्छा और उसकी पूर्ति के बिना तो मनुष्य, पशु-पक्षी, कीट पतंग और तृण पल्लव आदि किसी का भी निर्वाह नहीं हो सकता।

राजस्व का अर्थ- राजस्व का शाब्दिक अर्थ है- राज:+स्व अर्थात् राज्य का स्व अथवा शासनकर्त्ता, राजाया सरकार का स्व क्या है? स्व का अर्थ है- 'क्या अपना है।' वास्तव में राज्य का अपना कुछनहीं है, क्योंकि राज्य भी समाज का एक स्वरूप है। अत: राज्य अपना कहने का अर्थ सबका है, सार्वजनिक है। किसी व्यक्ति विशेष अथवा राज्याधिकारियों का नहीं है। राज्य तो सम्पूर्ण समाज पर शासन करता है, नियन्त्रण करता है, सुरक्षा करता है। अत: राजस्व का तात्पर्य राजकीय अर्थव्यवस्था कहा जा सकता है। आज से लगभग 2000वर्ष पूर्व भारत के प्रमुख अर्थशास्त्री कौटिल्य ने भी लिखा था- 'प्रत्येक उपक्रम का आरम्भ वित्त है।' भूमि, जंगल, खदान आदि सभी प्राकृतिक सम्पदा पर पशुपालन, खेती, उद्योग आदि के उत्पादन में राज्य का भी हिस्सा होता है। इन सबसे राज्य को कर(Tax) से आय प्राप्त होती है। प्राप्त आय को राज्य अपने पास न रखकर उसे पुन: शासनादि की व्यवस्था और प्रजा की भलाई के लिये खर्च कर देता है।

करारोपण के मापदण्ड-

महर्षि दयानन्द के सत्यार्थ प्रकाश के षष्ठ समुल्लास के अनुसार- 'व्यापार करने वाले, व शिल्पी को सुवर्ण और चांदी का जितना लाभ हो उसमें से 50 वां भाग चावल आदि अन्नों में 6वां, 8वां या 12वां भाग लिया करें और जो धन लें तो भी उस प्रकार से लें जिससे किसान आदि खाने-पीने और धन से रहित होकर दु:ख न पायें।' मनुस्मृति के अनुसार राजा को पशु तथा सुवर्ण का कर (मूल धन से अधिक) का 50वां भाग और धान्य का 6वां, 8वां या 12वां भाग(भूमि की श्रेष्ठता अर्थात् उपजाऊपन एवं परिश्रम आदि का विचार कर) ग्रहण करना चाहिये, और वृक्ष, मांस, शहद, घी, गन्ध, औषधि, रस(नमक आदि), फूल, मूल, फल, पत्ता, शाक, घास, चमड़ा, बांस तथा मिट्टी के बर्तन और पत्थर की बनी सब वस्तुओं का 6वां भाग कर रूप में ग्रहण करें।

करारोपण के सिद्धान्त- महर्षि दयानन्द जहां करारोपण के पाँच सिद्धान्तों- प्रजारक्षण का सिद्धान्त, लाभ पर कर लगाने का सिद्धान्त, राष्ट्रीय योजना सिद्धान्त, व्यथा-मुक्ति सिद्धान्त और अधिक कर निषेध सिद्धान्त को निर्धारित करते हैं, वहां वे अपने समय में ब्रिटिश सरकार द्वारा लगाये गये अनुचित करों का विरोध भी करते हैं, वे अपने सत्यार्थ प्रकाश मे भारत में अंग्रजी सरकार द्वारा लगाये नम कर तथा गरीब मजदूरों द्वारा जंगल से लाने वाली ईधन और घास आदि पर कर का विरोध करते हैं।

विभिन्न वेद मनुस्मृति, ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सत्यार्थप्रकाश आदि में वर्णित उपर्युक्त व्यवस्थाओं से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि पहले कर शासन व्यवस्था को सुचारू रूप से संचालित एवं जनकल्याण व विकास हेतु करारोपण का औचित्य पूर्णतया स्वीकार्य था। सिद्धान्तत: वही व्यवस्था आज भी सम्पूर्ण विश्व के राजस्व शास्त्र में परिभाषित है, किन्तु भारत में व्यवहारिक रूप से स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि प्राप्त राजस्व का विभिन्न स्तर की सरकारें जनकल्याण एवं उनके विकास पर कतिपय कारणों से आनुपातिक रूप में व्यय करने में सफल नहीं हैं।

वेदों में वर्णित आर्थिक नीतियों का अनुशीलन

डॉ. संगीता सितानी रीडर एवं विभागाध्यक्ष- अर्थशास्त्र विभाग, महिला महाविद्यालय (परास्नातक), किदवई नगर, कानपुर

वेदों में वर्णित सामाजिक संरचना के मूलाधार ही वैदिक अर्थव्यवस्था के नियामक तथ्य हैं, क्योंकि सामाजिक तथा आर्थिक पक्ष अधिकांशत: एक दूसरे के पूरक हैं। आदर्श समाज की परिकल्पना आदर्श आर्थिक व्यवस्था से सम्बद्ध है। वैदिक समाजवाद

'वसुधैव कुटुम्बकम्' का ही रूपान्तर है, जिसमें सबके कल्याण की कामना की गई हे। समानता और सर्व-कल्याण भावना वैदिक समाजवाद के वे मूल तत्त्व हैं, जिसके चहुँ ओर वैदिक ऋषियों द्वारा स्थापित समस्त सामाजिक एवं आर्थिक सिद्धान्त पल्लवित एवं पुष्पित हुए हैं। वैदिक ऋषियों की ऋचाओं के आधार पर इस शोध पत्र मे आर्थिक नीतियों के कुछ नियामक तथ्य प्रस्तुत किये जायेंगे।

वैदिक परिदृश्य में वाणिज्य

डॉ. कंचन लता सिन्हा प्रवक्ता- वाणिज्य राज.स्नातकोत्तर महाविद्यालय कोटद्वार(पौड़ी गढ़वाल) उत्तराखण्ड

वैदिक संहिताओं में अनेक उद्योगों का बोध होता है। उद्योग को वाणिज्य के अन्तर्गत रखा जाता है। धन-समृद्धि प्राप्त करने का यह सर्वोत्तम साधन रहा। व्यापार को लाभ का सर्वोत्तम साधन माना गया था क्योंकि इसमें लक्ष्मी का निवास है। भिन्न-भिन्न स्थानों और अवसरों पर लाभ की मात्रा भिन्न-भिन्न निर्धारित थी। आर्थिक जीवन के अन्य अंगों के साथ वाणिज्य का भी प्रचुर विकास हुआ। कृषि पशुपालन और उद्योगों से प्राप्त होने वाली सभी वस्तुओं का व्यापार किया जाता था। यह स्थानीय अन्तर्देशीय और विदेशी सभी प्रकार का होता था। स्थल और जल के मार्गो से व्यापारी अपनी वस्तुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान पर और एक देश से दूसरे देश में ले जा कर बेचते थे। जिन लोगों के हाथों में वाणिज्य-व्यापार था उन्हें 'पणि' कहते थे। जो सम्भवतः अनार्य थे तथा अपनी कृपणता के लिए प्रसिद्ध थे। प्रायः व्यापार विनिमय द्वारा होता था।

वैदिक सभ्यता में वाणिज्य का विशेष स्थान रहा कृषक, पशुपालक और शिल्पी अपनी उत्पादित वस्तुओं का परस्पर विनिमय करके अपनी आवश्यकताओं को पूरा कर लेते थे। सम्भवतः गौओं का भी प्रयोग वस्तुओं के रूप में किया जाता रहा होगा। 'ऋग्वेद' के एक मन्त्र में 'दस गौओं- के बदले एक इन्द्र प्रतिमा लेने की बात कही गई है। विनिमय के लिए सिक्कों का प्रयोग भी प्रचलित हो गया था। 'ऋग्वेद' के पहले मण्डल के 162 वें सूक्त में 'निष्क' सिक्के का उल्लेख है। पाणिन ने कार्षापण, निष्क, पण, पद, माष, शण और शतमान सिक्कों का उल्लेख किया है। 'निष्क' मूल्य की सर्वमान्य इकाई थी। कई शब्दों का, जैसे कि मन का, जो सौ 'कृष्णल' (गुंजा या रत्ती के दाने) के बराबर भार माप था और 'शतमान' का जो सौ कृष्ण के बराबर होता था, उल्लेख मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि व्यवसाय अधिकाधिक अनुवांशिक होते जा रहे थे। वाणिज्य, वाणिज्य या वाणिज्य का पुत्र शब्द से ध्वनित होता है कि सामान्यतयः पुत्र अपने पिता के व्यवसाय को ही करता था। व्यापार के सौदों में भावताव करने और सौदेबाजी के भी उल्लेख मिलते हैं।

वैदिक युग में घोड़े, नमक, लोहे की वस्तुयें मसाले और सुगन्धियाँ बाहर भेजे जाते थे। निर्यातित भारतीय वस्तुओं के बदले बाहद से बहुमूल्य धातुयें और मणियाँ आयातित होती थीं। खनिज ओर समुद्रज द्रव्यों के उद्योग भी विकसित हुये थे। चित्र कला, मूर्तिकला आदि औद्योगिक कलाओं का उत्तरोत्तर विकास हुआ। पाणिनि ने क्रय ओर विक्रय का भी उल्लेख किया है। इससे व्यापार का प्रचलन सिद्ध होता है। पशुपालन कृषि का अनिवार्य सहयोगी धन्धा था। नौकरी भी जीविका का एक साधन थी, जिसको जानपदी वृत्ति कहा जाता था। अस्त्र-शस्त्र से भी कुछ लोग जीविका चलाते थे जिनको 'आयुधजीवी' कहते थे। शुद्ध श्रम से जीविका चलती थी। मजदूर को कर्मकर और उसकी मजदूरी को वृत्ति अथवा भृत्ति कहा जाता था। इस प्रकार वैदिक संहिताओं में वाणिज्य का महत्त्वपूर्ण स्थान दृष्टिगोचर होता है।

वैदिक संहिताओं में अर्थव्यवस्था के उत्स : एक समीक्षण

प्रबोध कुमार पाण्डेय(शोधच्छात्र) राँची, विश्वविद्यालय, राँची (झारखण्ड)

भारतीय वाङ्मय की चिन्तन धारा वेदों से प्रवाहित हुई है। वेदों में समग्र विषयों के उत्स विद्यमान हैं। समाज का सांस्कृतिक परिवेश विविध अवस्थाओं को व्यक्त करता है। आर्थिक अवस्था उनमें एक है। यह अवस्था समाज को अधिक प्रभावित करती है। अर्थ के बिना न तो मनुष्य का कार्य चल सकता है और न समाज का ही।

भारतीय विचारधारा में मानव के चार प्रयोजन मान्य हैं। इन्हें पुरुषार्थ की संज्ञा दी गयी है। पुरुषार्थ चार हैं- धर्म, अर्थ, काम

और मोक्ष। इन्हें समग्र रूप में पुरुषार्थ चतुष्टय की संज्ञा प्राप्त है। यह पुरुषार्थ चतुष्टय यद्यपि भारत वर्ष के पुरुषों के आदर्श को विशेष रूप से निरूपित करता है फिर भी समग्र विश्व का मानव इन प्रयोजनों से पृथक् नहीं है। पुरुषार्थ चतुष्टय के अनुसार मानव का प्रथम प्रयोजन धर्म तथा द्वितीय अर्थ है। अर्थ यहाँ धन का वाचक है। अर्थ की आवश्यकता मानव जीवन का व्यवस्थित करने के लिए महत्त्वपूर्ण है। आज का युग आर्थिक युग है। मनुष्य के समग्र कार्यकलाप अर्थ से सम्बद्ध है। मानव के कार्य कलापों का परिमापन अर्थ से ही होता है। कर्म का सम्पादन भी अर्थ के लिए ही होता है। अर्थ आज धर्म से भी अधिक महत्त्वपूर्ण होकर प्रथम प्रयोजन का रूप धारण कर रहा है। अर्थ के चारों ओर अन्य प्रयोजन भ्रमण करते प्रतीत होते हैं।

वैदिक संहिताएँ चार हैं- ऋक् संहिता, यजु:संहिता, साम संहिता एवं अथर्व संहिता। वैदिक संहिताओं में ऋक् संहिता का स्थान प्रथम परिगणित होता है। ऋक् संहिता का आरम्भ अग्नि सूक्त से हुआ है। अग्नि सूक्त के प्रथम मन्त्र में ही अग्नि को रत्न धारण करने वालों में श्रेष्ठ माना गया है। वहाँ 'रत्नधातम' शब्द अग्नि का विशेषण है। रत्न+धा+तमप् प्रत्यय से रत्नधातम शब्द बना है। रत्नधातम का अर्थ होता है रत्नों का श्रेष्ठ धारण कर्त्ता या दाता। यह शब्द अग्नि के लिए प्रयुक्त है। यहाँ रत्न धन का वाचक है। सूक्ष्म विचारानुसार प्रत्येक पदार्थों में अग्नि तत्त्व विद्यमान है। अग्नि के बिना सृष्टि का कार्य असम्भव है। इसके बिना न तो कृषि सम्बन्धी उत्पादन हो सकता है और न ही औद्योगिक उत्पादन। अग्नि उष्मा का प्रतीक है जो सर्वत्र विद्यमान है। इसके अभाव में सृष्टि का सचालन नहीं हो सकता। अत: अग्नि को देवता ही नहीं देवताओं में अग्रगण्य माना गया है। सृष्टि एवं पालन दोनों ही कार्यों में इसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। यह जन्म, स्थिति एवं विनाश का मूल कारण है। अत: सर्वशक्तिमान् है। सूक्ष्म रूप से विद्यमान अग्नि ही पौधों में फल प्रदान करती है। इसके चलते ही पौधे उगते हैं, बढ़ते हैं तथा अन्न देते हैं।

अर्थव्यवस्था का उत्स अग्निसूक्त में ही प्राप्त हो जाता है। धन की इच्छा करने वाले को अग्नि की उपासना करनी चाहिए।- धनमिच्छेत्, हुताशनात्। उसी सूक्त में प्राप्त होता है कि अग्नि द्वारा उस धन की प्राप्ति करे जो निरन्तर बढ़ने वाला हो, जो यश को बढ़ाने वाला हो। वहाँ वीर पुत्रादि को भी धन ही माना गया है। संहिताओं के अनेक सूक्त पृथिवी, मरुत्, पर्जन्य, इन्द्र आदि धन की अभिवृद्धि में सहायक हैं। प्रस्तुत शोधपत्र मे अर्थ तत्त्व, अर्थ के प्रकार, अर्थ उत्पादन अर्थोपभोग आदि तथ्यों से सम्बद्ध संहिता के विचारों का समीक्षण प्रस्तुत किया जाएगा।

धर्मसूत्रों में कर-व्यवस्था

डॉ. सुशीलकुमार पाण्डेय 'साहित्येन्दु' सुल्तानपुर (उत्तर प्रदेश)

धर्मसूत्रों मे राजा स्वतन्त्र या निरंकुश नहीं होता है प्रत्युत् उस पर धर्म का प्रत्यक्ष नियन्त्रण होता है। वह स्वेच्छा से कर वसूलने को स्वतन्त्र नहीं है। प्रजा की सभी प्रकार की सुरक्षा बनाये रखने के लिये ही राजा को कर अथवा अन्य प्रकार से धन लेने का अधि कार है।धर्मसूत्र राजा के विलासितापूर्ण जीवन की निन्दा करते है। तथा यदि राजा प्रजाहित के लिए सुरक्षित कोष को व्यक्तिगत सुख भोग के लिए व्यय करता है तो उसे अनैतिक आचरण वाला घोषित करते हैं। यत: राज्यकोश राज्य का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। अतः उसकी वृद्धि होना आवश्यक है। यदि राज्यकोश रिक्त हो गया तो राज्य का संचालन संभव नहीं रहेगा। शत्रु देश कोशहीन राज्य को आक्रमण कर विनष्ट कर देंगे। राजकोश की सम्पन्नता तथा राज्य व्यवस्था में नियुक्त कर्मचारियों के वेतन तथा प्रजा की सुविधा के लिये विविध निर्माण कार्य हेतु प्रजा से धन संग्रह अनिवार्य हो जाता है। इस धन संग्रह में राजा, राजकर्मचारी स्वेच्छाचारिता न करें, इसी उद्देश्य से धर्मसूत्रों में राजकीय आय के साधनों एवं कर या शुल्क की मात्राओं का निर्धारण कर दिया है। गौतम धर्मसूत्र की मान्यता है कि करदाताओं की रक्षा राजा का धर्म है अत: वह रक्षण कार्य में तत्पर रहे (2.1.28)। बौधायन धर्मसूत्र का मत है कि राजा प्रजा की आय का छठवाँ भाग भृति के रूप में ग्रहण कर प्रजा की रक्षा करे(1.18.1)। वसिष्ठ धर्मसूत्र का स्पष्ट निर्देश है कि राजा अपने व्यक्तिगत उपभोग के लिये प्रजा से धन न ले(19.14)। आपस्तम्ब धर्मसूत्र के अनुसर धर्मसम्मत शुल्क निर्धारित करना राजा का अधिकार एवं कर्तव्य था। धर्म तथा नैतितकता को ध्यान में रखकर अनेक व्यक्तियों को करमुक्त रखने का विधान भी ध र्मसूत्र करते हैं। कर मुक्त लोगों के अन्तर्गत सर्वाधिक प्रमुख स्थान श्रोत्रिय ब्राह्मण का होता था। गौतम ने ऐसे ब्राह्मणों का करमुक्त रखा है तथा साथ ही उनके भरण-पोषण का दायित्व भी राजा के ऊपर डाल दिया है(2.1.9)। प्रस्तुत लेख में विभिन्न धर्मसूत्रों का

परिशीलन कर उनके द्वारा प्रतिपादित कर-व्यवस्था पर गवेषणात्मक प्रकाश डाला गया है।

वैदिक अर्थव्यवस्था में 'गौ' का महत्त्व

डॉ. शशिशेखरमिश्र ''वात्स्यायन'' प्रवक्ता(संस्कृत)- राजकीय इण्टर कॉलेज कैलाशबांगर जनपद रुद्रप्रयाग- उत्तराखण्ड

वैदिक कालीन अर्थव्यवस्था 'गौ' पर निर्भर थी। गाय का दूध अमृततुल्य है क्योंकि वह कृश व्यक्ति को स्थूल बना देती है, शोभाहीन पुरुष को सुभग (सुन्दर) बना देती है। गायों की पहचान के लिये उन पर विभिन्न चिन्ह अंकित किये जाते थे। गाय का दूध आर्यो का प्रधान पेय था। यह सोमरस बनाने में काम आता था तथा क्षीरोदन बनाने में भी नितान्त उपयोगी था। वैदिक काल में किसी व्यक्ति की सम्पत्ति की माप उसके पास होने वाली गायों की संख्या पर निर्भर करता था। यज्ञों में ऋत्विजों को दक्षिणा के रूप में गाय देने का ही विधान था।

वैदिक काल में सिक्कों का बहुत ही कम प्रचलन था, अतः लेन-देन, व्यवहार-बंटा, क्रय-विक्रय के कार्य लिये विनिमय का मुख्य माध्यम गाय ही थी। गाय के बदले ही वस्तुएं खरीदी जाती थी। पदार्थो मूल्य गाय के रूप में ही विक्रेता को दिया जाता था। दक्षिणा में भी गाय देने का विधान था। यहाँ तक की दक्षिणा शब्द अनेक स्थानों पर 'गो' का पर्यायवाची बन गया था। राजा लोग प्रसन्न होकर सौ या हजार गायों का दान किया करते थे जिसका ऋषियों ने दान स्तुतियों में आभार प्रदर्शन करते हुए उल्लेख किया है। खेती, भोजन तथा द्रव्य विनिमय का मुख्य साधन होने के कारण गाय वैदिक आर्यो के लिये नितान्त उपादेय तथा आवश्यक पशु थी। वैदिक आर्यगण गाय को 'अघ्न्या' (न मारने योग्य) के नाम से पुकारते थे तथा उसे सर्वाधिक श्रद्धा एवं आदर की दृष्टि से देखते थे। गाय का गोबर, गोमूत्र, गोदुग्ध ये सभी बहुत ही महत्त्वपूर्ण थे। गोमूत्र से आज अनेकों औषधियों का निर्माण हो रहा है जिससे असाध्य रोगों का इलाज हो रहा है। गोदुग्ध को आज के वैज्ञानिक पूर्ण आहार के रूप में स्वीकार कर रहे हैं। गोघृत और गौदधि एक उत्तम आहार के साथ-साथ आज उत्तम औषधि के रूप में भी प्रयुक्त हो रहा है। इसी कारण आज प्रत्येक श्रौत-स्मार्त सभी शुभ कर्म में पञ्चगव्य और पञ्चामृत अनादि काल से प्रचलित और मान्य है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि वैदिक काल के मानव के जीवन के केन्द्र बिन्दु में गाय थी। गाय उसके सम्पूर्ण कामनाओं की पूर्ति में सहायक थी। गाय को सर्वदेवमयी और सर्वतीर्थमयी कहा गया है। यही कारण है कि गाय वैदिक काल से आज तक ''गोमाता'' की संज्ञा से विभूषित है।

वेदों में अर्थशास्त्रीय तत्व

डॉ. सविता तोमर रीडर एवं अध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग, संजय गांधी स्ना. महाविद्यालय मेरठ, (उ.प्र.)

वेदों में यह बात कही गयी है कि परमात्मा ही सभी धन, ऐश्वर्य, वैभव और सुखों का स्वामी है। वेदों में धन की प्रचुर इच्छाओं का वर्णन है। मानव व्यक्तित्व के उत्कर्ष और समाज के सर्वांगीण विकास के लिए अर्थ की महत्त्वपूर्ण भूमिका है क्योंकि शास्त्रों ने सुख का मूल धर्म को माना है किन्तु धर्म का मूल भी अर्थ है। अतः संसार में सुख के लिए ही प्रायः सभी अर्थ की कामना करते हैं। वैदिक ऋषियों ने सर्वप्रथम संचय का तदनन्तर उपकार हेतु दान का उपदेश किया है अतः जीवन में अर्थ की अनिवार्यता स्वतः सिद्ध है। लोक और परलोक वेद दोनों लोकों को सुखी और सफल बनाने का उपदेश करते है वैदिक ऋषियों के उपदेशपरक वचन स्पष्टतः न्यायपूर्वक धर्मानुसार अर्थोपार्जन का निर्देश करते हैं। अथर्ववेद में स्पष्टतः कहा गया है कि अर्थ-संग्रह धर्मानुकूल होना चाहिए। अर्थ से ही समस्त प्रयोजनों की सिद्धि होती है इसी लिए संसार में सब धन की अभिलाषा करते हैं। वेदों में अर्थतन्त्र का प्रमुख आधार कृषि, पशुपालन, व्यापार एवं विविध प्रकार का शिल्प था। ऋग्वेद के मन्त्रों मे वस्तुएं खरीदने और बेचने का भी वर्णन है अतः वेदों में अर्थशास्त्र का विशेष महत्त्व है। शोधविषय की विस्तृत व्याख्या शोधपत्र में प्रस्तुत की जायेगी।

वैदिक कर व्यवस्था

सन्दीप कुमार गुप्त (शोधच्छात्र) वी.एस.एस.डी. कॉलेज, कानपुर

राज्य व्यवस्था के सुचारु सञ्चालन के लिए धन की नितान्त आवश्यकता होती है। न केवल राज्य सञ्चालन अपितु संसार के समस्त कार्यों के लिए धन की आवश्यकता होती है। इसीलिए वैदिक साहित्य में राज्य के अर्थसंग्रह के विभिन्न कारकों का विवेचन किया गया है जिसमें सर्वप्रमुख कर संग्रह है।

वैदिक कर व्यवस्था की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं-

1. कर राजा को अनिवार्य रूप से दिया जाने वाला अंशदान था। कर का भुगतान न करने पर व्यक्ति को दण्ड भी दिया जाता था।
2. करों से प्राप्त आय सबके हित में व्यय की जाती थी।
3. करों के भुगतान का राज्य द्वारा की जाने वाली सेवा अथवा उससे प्राप्त लाभ से कोई सम्बन्ध नहीं होता था। यह सम्भव है एक व्यक्ति कर का भुगतान करे परन्तु उसे राज्य से कोई प्रत्यक्ष लाभ प्राप्त न हो।

वैदिक भारतीय अर्थव्यवस्था

डॉ. जी.डी.पी. यादव संकाय सदस्य, अर्थशास्त्र लंगट सिंह कॉलेज, मुजफ्फरपुर

वेदकालीन अर्थव्यवस्था शिकारयुग को पार कर चुकी थी। लोग एक सुव्यवस्थित एवं एक स्थान पर रहने लगे थे। उनकी जीविका का प्रधान साधन खेती तथा पशुपालन था। अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित् कृषस्व- ऋग्वेद 10.34.7 जुए में पराजित व्यक्ति को ऋषि उपदेश करते हैं कि स्वामित्व, फसल, अन्न, हल, कृषि उपकरण, कृषिकला, कृषि के प्रकार, सिंचाई, अन्न-भण्डारण, विनिमय आदि के उल्लेख वेदों में हैं। वैदिक कृषि पद्धति पर आज भी कृषि कार्य हो रहा है।

वैदिक साहित्य के शोध एवं अनुशीलन से वैदिक काल में आर्थिक क्रियाकलापों -खेती, पशुपालन, व्यापार, सिक्के, ऋण, बाजार, भण्डारण, मुद्रा, यातायात साधन के यथेष्ट प्रमाण पर सीमित सीमा में मिलते हैं, जो आधुनिक अर्थव्यवस्था की आधारशिला हैं।

वेदों में वाणिज्य

डॉ. राजीव कुमार बहजोई (मुरादाबाद)

वेदों में ज्ञान विज्ञान, भारतीय दर्शन, कर्मकाण्ड, योग, संस्कृति, यज्ञ, विश्वबन्धुत्व, विश्वशान्ति, अहिंसा, नैतिक मूल्यों इत्यादि के साथ ही साथ वाणिज्य का भी वर्णन प्राप्त होता है। वैदिक काल मे आदान-प्रदान, क्रय-विक्रय, आयात-निर्यात का भी वर्णन दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के आधार पर वर्णित है। वैदिक काल में भी मानव का जीवन वाणिज्य पर निर्भर करता था परन्तु जैसे जैसे समाज का विकार होता गया वैसे विनियमय का आधार मुद्रा के उद्‌गम होने के प्रमाण मिलते हैं।

मैं अपने शोध-पत्र में वेदों में वर्णित वाणिज्य के निम्न बिन्दुओं पर प्रकाश डालने का प्रयास करूँगा- 1. विनिमय का साधन, 2. मुद्रा का उद्‌गम, 3. क्रेता-विक्रेता का सम्बन्ध, 4. विनिमय और दान, 5. धन प्राप्ति के स्रोत, 6. वाणिज्य के विभिन्न स्वरूप. (काठकार, बुनकर, स्वर्णकार, नापित, लौहार तथा अन्य व्यवसाय)

वैदिक वाङ्मय में अर्थव्यवस्था

आचार्य बाबूलाल मीना संस्कृतविभागाध्यक्ष-एस.बी.पी.रा.स्ना. महाविद्यालय डूँगरपुर (राजस्थान)

वैदिक वाङ्मय के अध्ययन से स्पष्ट है कि तत्कालीन युग में कृषि, पशुपालन, विभिन्न उद्योग धन्धों, व्यापार-वाणिज्य आदि अर्थव्यवस्था के प्रमुख अंग थे। वस्तुतः किसी भी देश की अर्थव्यवस्था के सम्यक् संचालनार्थ उस देश की कृषि और खनिज सम्पदा का विशेष महत्व होता है। यह स्पष्ट ही है कि कृषि के जीवनाधार रूप में भूमि और पर्जन्य प्रमुख है अत एव पृथिवी सूक्त में भूमि

को माता और पर्जन्य को पिता कहा गया। ऋग्वेद के अनुसार अश्विन् युग्म ने मनु को बीज बोने की कला तथा हल की सहायता से कृषि कर्म सिखलाया (ऋ .स. 1/112/16)।

गोधन को पशुधन के रूप में गिना जाता था। (ऋ.सं.5/4/11) वैदिक युग में पशुपालन केवल व्यक्तिगत ही नहीं अपितु व्यवसाय के लिये भी होता था, अतः यजुर्वेद में विभिन्न व्यवसायियों के मध्य गोपालों, अजपालों और अविपालों के भी उल्लेख मिलते है। (यजुर्वेद 30/11) वैदिक समाज में जहां क्षत्रिय वर्ण अपने वैभव के प्रदर्शन हेतु आखेट करता था, वही शूद्र वर्ण के लोग छोटे-छोटे शिकार करके अपनी जीविकायापन किया करते थे (ऋ.सं.,10/28/10) वैदिक समाज में अनेक प्रकार के उद्योग-धन्धे एवं शिल्प भी प्रचलित थे, जिनमें रथकार, तक्षा, कौलाल, कर्मार, माणिकार, इषुकार ,धनुष्कार, रज्जुसर्प, हस्तिप, अश्वप, सुराकार, हिरण्यकार, वणिक् प्रभृति शिल्पियों के समुल्लेख प्राप्त होते हैं। (यजु. 30/6,7,11,17,20) वस्तुतः ये कुटीर उद्योग-धन्धे सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक थे। स्त्रियों के द्वारा किये जाने वाले प्रमुख व्यवसायों में कपड़ा बुनना ,सिंचाई करना और घास से चटाई आदि बनाना उल्लेखनीय थे।

तत्कालीन समाज की उल्लेखनीय बात यह है कि उपर्युक्त किसी भी व्यवसाय को हीन नहीं समझा जाता था। किसी भी व्यवसाय को कोई व्यक्ति निःसंकोच अपना सकता था। उपयर्फक्त निर्मित वस्तुओं के विक्रयार्थ एवं वितरणार्थ शिल्पियों का व्यापार-वाणिज्य भी तत्कालीन यफग में समुन्नत दशा में था। अथर्ववेद में बड़े बाजारों को 'प्रपण' कहा गया है (अथर्ववेद 3/15/5)। विक्रय योग्य वस्तु के लिये मोलभाव के उल्लेख भी मिलते है (ऋ.स.,4/21/9) यजफर्वेद में ,वाणिज् शब्द का सम्बन्ध 'तुला' से स्थापित किया गया है। (30/17) ऋग्वेद में स्वदेशी एवं विदेशी दोनों प्रकार के व्यापार होने के उल्लेख मिलते हैं। व्यापार करने वाले 'पणि' कहा जाता था। वस्तु विनिमय की प्रणाली प्रचलित थी।स्वर्ण निर्मित 'निष्क' मुद्रा के समुल्लेख भी मिलते हैं। 'निष्क' के अतिरिक्त गाय को भी मूल्य की ईकाई माना जाता था। विदेशों से व्यापार करने के लिए व्यापारी समूह में जहाजों से आते थे। नदियों पर नावों के द्वारा भी व्यापार होता था। महाजन ऋण भी देते थे यहां यह उल्लेखनीय है कि वैदिक समाज में व्यापार मुख्यतः वैश्यों के अधिकार में था परन्तु छोटे-छोटे सभी कार्यो में शूद्रवर्ण का योगदान भी रहता था (ऋ. 5/4/11) अतः निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि वैदिक युग में अर्थव्यवस्था अत्यन्त सम्पन्न एवं समृद्ध थी।

वैदिक ज्ञान और अर्थशास्त्र

डॉ. अधीर कुमार गुप्ता रीडर, अर्थशास्त्र विभाग, तिलक महाविद्यालय, औरैया

वेद अनन्त ज्ञान के स्रोत हैं। वेदों में परा अपरा विद्या है। 'भूतं भव्यं भविष्यच्च सर्व वेदात्प्रसिद्ध्यति' अर्थात् भूतकाल वर्तमान काल और भविष्य काल में जो कुछ भी है वह सब वेद से ही प्राप्त होता है। ब्राह्मण आरण्यक, उपनिषद् आदि की उद्घोषणा 'एति इमं विद्धि अयं वै सर्वविद्या इति' अर्थात् आओं इसे जानें इसमें सब प्रकार का ज्ञान विज्ञान है। आदि ने लोगों का ध्यान वैदिक साहित्य की ओर आकृष्ट किया। वैदिक साहित्य की पारलौकिक धारणा को समाज की स्वीकृति भी प्राप्त हुई और अधिकांशतः यह माना गया कि वैदिकसाहित्य मनुष्य के दार्शनिक आध्यात्मिक और नैतिक पक्ष के उन्नयन से सम्बन्धित है।

जहाँ तक वैदिक साहित्य के लौकिक, भौतिक व आर्थिक पक्ष का प्रश्न है तो दुर्भाग्य से इस पक्ष को कभी भी आधुनिक अर्थशास्त्र की स्वीकृति प्राप्त नहीं हुई और संभवता यह मानकर चला गया कि ग्रामीण समाजों के युग की वैदिक ऋचायें तीव्र आर्थिक विकास वाले वर्तमान युग की जटिल आर्थिक समस्याओं का समाधान कैसे कर सकती हैं?

लेकिन बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में अनेक कारणों से वैदिक साहित्य का अध्ययन स्वयं प्रासंगिक हो गया जैसे 'नासा' द्वारा मंगल ग्रह से लायी गयी मिट्‌टी के रंग का वैदिक साहित्य में उल्लिखित मंगल ग्रह के रंग से मेल खाना।

1972 के स्टाकहोम सम्मेलन में पर्यावरण संकट की भयावहता का आंकलन कर यह स्वीकार किया जाना कि प्रकृति कीसमग्रवादी समझ के बिना न तो दीर्घकालीन आर्थिक संवृद्धि संभव है और नही मानव कल्याण। अथर्ववेद की ऋचा -'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः' तथा महाराजा पृथु का गौ दोहन वर्णन (प्राकृतिक संसाधन प्रयोग) इस बात का स्पष्ट निदेश करता है कि मानव जीवन की गुणवत्ता को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए हमें पंचमहाभूतों का प्रयोग कैसे करना चाहिए?

अल्पकालिक लाभ उद्देश्य वाली तीव्र आर्थिक विकास की नीतियां 1992 के रियो सम्मेलन के आते-जाते अप्रासंगिक हो गयी और 2002 के जोहान्सबर्ग सम्मेलन में **संपोषी विकास**(Sustainable development) की अवधारणा एक स्लोगन के रूप में प्रसिद्ध हो दुनिया के सामने आयी। वैदिक मानव सामवेद की ऋचा में कहता है-

यदिन्द्र चित्र म इह नास्ति त्वादातमद्रिवः।
राधास्तन्नो विद्द्वस उभया हस्त्या भर।।

हे आदरणीय इन्द्र जो तुम्हारे द्वारा प्राप्त होने वाला धन है। जिससे कि मैं अपने सम्पूर्ण कार्यों की सिद्धि कर सकता हूँ, वह धन मेरी सिद्धि का कारण बने, विनाश का नहीं। ऐसा धन जो इस समय मेरे पास नहीं है, क्योंकि आप इस धन को जानने वाले हैं, प्राप्त कराने वाले हैं, वह आपके पास विद्यमान है तथा आप उसका विचारपूर्वक प्रयोग करते हैं। अतः मुझे उस धन को दोनों हाथों से देकर कृतार्थ कीजिए।

वह कौन सा धन है? जिसकी कामना वैदिक ऋषि इन्द्र से कर रहा है। निश्चित ही वह धन श्रेष्ठ धन है जो ब्रह्माण्डीय ऊर्जा से संबन्धित है। प्रस्तावित शोध-पत्र में मानव जीवन की गुणवत्ता को प्रभावित करने वाली इस ब्रह्माण्डीय ऊर्जा का ही विश्लेषण किया जायेगा।

वेदों में वर्णित अर्थव्यवस्था

अनुराधा (शोधच्छात्रा) संस्कृतविभाग, जम्मूविश्वविद्यालय जम्मू

विश्व में सबसे प्राचीन वेद हैं और संस्कृति के प्राण रूप हैं। भारतीय धर्म, साहित्य, सभ्यता, दर्शन सबका आधार वेद हैं। वेद शब्द की व्युत्पत्ति एवं अर्थ- 'वेद' शब्द विद् धातु से निष्पन्न हुआ है। विद्धातु का अर्थ है- उत्तम तथा धार्मिक ज्ञान। वेद शब्द ईश्वरीय ज्ञान का द्योतक है। किसी भी राष्ट्र का सर्वांगीण विकास वहाँ की अर्थव्यवस्था पर ही निर्भर करता है। वैदिक युग की अर्थव्यवस्था के दो महत्त्वपूर्ण पहलू थे- 1. ग्रामीण जीवन, 2. नागरिक जीवन।

1. ग्राम- वेदों में स्थान-स्थान पर ग्राम का उल्लेख है। प्रत्येक परिवार में बढ़ई- जो रथ, चाक, नाव, लकड़ी के बर्तन बनाने वाले थे, और नाई, वैद्य, स्वर्णकार- जो सोने के आभूषण बनाते थे आदि का गांव की अर्थ-व्यवस्था मे महत्त्वपूर्ण स्थान थ।

2. पुर(नगर)- वेदकालीन नगर वाणिज्य, व्यवसाय, उद्योग धन्धों आदि के केन्द्र थे। तत्कालीन समाज का आर्थिक जीवन अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों पर था।

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट होता है कि वेदकालीन अर्थ-व्यवस्था में ग्राम और नगर दोनों का महत्त्वपूर्ण स्थान था।
वेद में अर्थ-व्यवस्था के मुख्य अंग- उसके मुख्य अंग कृषि, गोपालन, वाणिज्य, व्यवसाय, उद्योग-धन्धे आदि थे।

1. कृषि- प्राचीन काल मसे ही भारत कृषि प्रधान देश रहा है। भूमि से सम्पत्ति उत्पन्न करने का सबसे प्राचीन एवं सरल तरीका कृषि है। कृषि कर्म सम्पत्ति के उत्पादन का मुख्य साधन रहा है। कृषि योग भूमि को 'क्षेत्र' कहा जाता था।

2. गोपालन- वेदकालीन अर्थव्यवस्था मे मवेशियों का महत्त्वपूर्ण स्थान था। उन्हें धन के रूप में माना जाता था। वैदिक काल से ही गाय के उपकार को समझकर उसे पूजनीय माना गया था। 3. वाणिज्य- वाणिज्य शब्द 'वणिक्' से बना है, जिसका अर्थ है - बनिया या व्यापारी। यजुर्वेद में 'वाणिज्य' को तुला(तराजू) से सम्बन्धित बताया है। वैदिक काल में दो प्रकार के व्यापार थे। (1) आन्तरिक व्यापार, (2) बाह्य व्यापार। 4. उद्योग धन्धे- ऋग्वेद में वैदिक काल के विभिन्न उद्योग-धन्धो को करने वालों का उल्लेख मिलता है। जैसे- सूत, शैलष, रथकार, लक्षा, कौलाल, कर्मार, मणिकार, इषुकार, धनुष्कार, गोपाल, मृगयु, अश्वप, वणिक आदि।

निष्कर्ष- अतः हम कह सकते हैं कि भारत की नैसर्गिक परिस्थितियों के अनुसार ही वेदकालीन अर्थ-व्यवस्था विकसित हो गई थी। इस प्रकार आर्थिक विकास अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण था। उसमें प्राचीन भारत के आर्थिक गौरव के बीज थे।

वैदिक काल में आर्थिक-व्यवस्था

शिव ज्याति शर्मा (शोधच्छात्रा) संस्कृतविभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

वैदिक कालीन मानव उस अवस्था को बहुत पहले ही पार कर चुकेथे; जिसमें मनुष्य अपनी क्षुधा शान्ति के लिए फलमूल अथवा पशुओं का शिकार करके उनके मांस पर आश्रित रहता था। वे लोग खाना-बदोश फिरकी की तरह एक स्थान से दूसरे स्थान पर अपना निवास स्थान न बदल कर सुव्यवस्थित रूप से एक ही स्थान पर रहने वाले समाज में सुसंगठित हो गए थे। उनकी जीविका का मुख्य साधन कृषि तथा पशुपालन था।

आर्यों के ऋषिकार्यों में संलग्न होने की सूचना ऋग्वेद से ही मिलने लगती है। जिसमें एक ऋषि जुए में पराजित द्यूतकर को जुए के स्थान पर खेती करने का उपदेश देता है। ऊसर एवं रेतीली भूमि की जुताई करके कृषि के योग्य बनाए जाने तथा बुआई करने के लिए खेत की तीन-तीन बार जुताई करने का भी वर्णन प्राप्त हुआ है। अथर्ववेद के अनुसार पृथ्वी वैन्य नामक राजा को हल से भूमि जोतने की विद्या का आविष्कारक माना गया है। गाय के गोबर को खाद के रूप में भी प्रयुक्त किया जाता था।

उत्तर वैदिक काल के लोग लोहा(अथवा) तांबा, हरित, सुवर्ण, चाँदी, टिन आदि धातुओं से अच्छी तरह से परिचित थे। वे उन धातुओं से विभिन्न प्रकार की वस्तुएं बनाते थे। धातुओं का कार्य करने वालों को 'कर्मार' कहा जाता था। शतपथ ब्राह्मण में 'लोहा' और 'अयस्' दोनों शब्दों का उल्लेख प्राप्त होता है। शतपथ ब्राह्मण में 'हिरण्य' का आशय हिरण्यकार या स्वर्णकार के व्यवसाय से था। जो सोने के छोटे-छोटे टुकड़ों को अत्यन्त गर्म करके तथा फूंककर विभिन्न प्रकार के आभूषणों का रूप देता रहा है। वाजसनेयी संहिता में सिझाने के लिए 'चर्मन्' शब्द प्रयुक्त हुआ है। इससे स्पष्ट होता है कि चमड़े का पेशा करने के हेतु 'चर्मकार' भी प्रचलित थे।

ऋण लेने तथादेने की प्रथा भी प्रचलित थी। ये वैश्य वर्ण के कुछ लोगों का ही पेशा था। इन्हें 'कुसीदिन' कहा जाता थां ये लोग ब्याज पर ऋण देते थे। अथर्ववेद में एक स्थान पर ऋण के आठवें तथा सोलहवें भाग को चुकाने की बात मिलती है। परन्तु यह स्पष्ट ज्ञान नहीं होता कि यह ब्याज का भाग था अथवा मूलधन का।

संक्षेप में इस प्रकार यह शोध-सार है, जिस पर विस्तार पूर्वक चर्चा शोधपत्र में प्राप्त होगी।

वेदों में गाय

डॉ. आराधना(रीडर) चौ.चरणसिंह विश्वविद्यालय, मेरठ

प्राचीन काल से ही गाय भारतीय धर्म सभ्यता और संस्कृति की प्रतीक रही है। वेद भी गाय को नमन करते हैं। यथा- 'अवध्य गौ! रूपाय नम:! रूपायाघ्न्ये ते नम:।' हे अवध्य गौ! तेरे स्वरूप के लिए प्रणाम है। ऋग्वेद में कहा गया है कि 'जिस स्थल पर गाय सुख पूर्वक है, वह स्थान तीर्थ बन जाता है। जन्म से मृत्यु पर्यन्त सभी संस्कारो में पंचगव्य और पंचामृत अनिवार्य है। हिन्दू गोदान को महत्त्वपूर्ण मानते हैं। व्रत, उपवास, जप, यज्ञ सभी में गौ और गौप्रदत्त पदार्थ आवश्यक हैं। गौ का दर्शन पूजन, सेवा, सुश्रूषा आदि पुण्य फलदायी माना जाता है। गौ के साथ-साथ गौ-मूत्र और विष्ठा भी पवित्र मानी जाती है। गाय को सर्वदेवमयी कहा जाता है "सर्वे देवा: स्थित देह सर्वदेवमयी हि गौ:।" अर्थात् गाय के शरीर में सभी देवताओं का निवास है।

उत्तम खाद भी हमें गाय से ही प्राप्त होता है। गोबर उर्वरक होने के साथ-साथ प्रदूषण और आणविक विकिरण से भी बचाता है। इससे बायो गैस तथा बिजनी आदि का उत्पादन होता है।

गर्भाधान संस्कार से लेकर दाह संस्कार तक कोई ऐसा संस्कार नहीं है, जिसमें गौ की आवश्यकता न हो। किसी न किसी रूप में हर पर्व त्यौहार, यज्ञ, कथा सभी कुछ गौ से जुडे हैं। फिर भी आज न केवल भारत में अपितु सम्पूर्ण विश्व में गौ रक्षा का प्रश्न विचारणीय है। गौ-माँस खाने वाले स्वयं को श्रेष्ठ समझते हैं। बिना यह विचारे कि गौ-हत्या को महा-पातक माना गया है। इससे अधिक नीच कर्म कोई हो ही नहीं सकता।

आज जरूरत इस बात की है कि गौ के महत्त्व को समझ कर उसका प्रचार भी किया जाए। भारतीय सभ्यता और संस्कृति में तो गाय सदैव ही वंदनीय रही है, पर आज गौ-संरक्षण के साथ गौ-वंश की वृद्धि भी जरूरी है। हर घर में एक गाय होने का अर्थ है- अच्छा स्वास्थ्य और पवित्र वातावरण। (जहाँ गाय निवास करती है वह स्थान तीर्थ हो जाता है और गौ अपने दुग्ध से मनुष्य को बलशाली और सौन्दर्यवान बनाती है।

वैदिक व्यापार एवं वाणिज्य

डॉ. दुर्गा प्रसाद मिश्र मेरठ कॉलेज़ मेरठ

व्यापार का अर्थ है नियोजन, धन्धा या व्यवसाय जबकि वाणिज्य का अर्थ है लेन-देन अर्थात् विनिमय। वैदिक व्यापार उच्चकोटि का था जो अपने मूलभूत सिद्धान्तों चरित्र एवं व्यवहारशुद्धि, विश्वसनीयता, दृढ़निश्चय, साहस, उत्साह, अध्यवसाय, सूझबूझ, मिलावट का अभाव आदि के कारण लोककल्याणकारी था। जो आज भी प्रासंगिक है। वैदिक काल में व्यापार के निर्धारित मानदण्ड थे जिनका पालन आवश्यक था। मानाकों का उल्लघंन करने पर प्रजा और राजा दोनों से दण्ड का विधान था। किन्तु वर्तमान समय में भारतीय व्यापार एवं व्यापारी आकण्ठ भ्रष्टाचार, मिलावट, सूदखोरी, चोरी, नकली तथा गुणहीन माल उत्पादन एवं रातोंरात कुबेर की पदवी पाने के लालच में सम्पूर्ण मानवता का विनाशक हो रहा है। अतः आज पुनः वैदिक व्यापार के उन चारित्रिक मूल्यों को जिन्दा करने की आवश्यकता है जिससे उपभोक्ता का जीवन सुरक्षित रहे।

वैदिक कालीन आर्थिक व्यवस्था की वर्तमान में उपादेयता

श्रीमती अन्जू बाला व्याख्यांता अर्थशास्त्र, बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालयए अलवर (राज०)

ऋग्वैदिक काल में भारतीय आर्थिक व्यवस्था कृषि प्रधान एवं ग्राम्य प्रधान थी। श्रम विभाजन पर आधारित व्यवसायों के अनुसार वर्ण व्यवस्था एवं सम्पत्ति पर व्यक्तिगत अधिकार तथा लोगों में दान-दक्षिणा एवं ऋण लेन-देन की व्यवस्था थी। वस्तु-विनिमय की प्रधानता, विनिमय और व्यापार में मुद्रा का प्रचलन होने लगा था।

ऋग्वैदिक काल में भारतीय अर्थव्यवस्था बहुत कुछ कृषि पर आधारित थी, मुख्य रुप से ग्राम्य प्रधान थी और पशुओं को महत्व दिया जाता था। इसी प्रकार वर्तमान समय में भी भारतीय अर्थव्यवस्था कृषि प्रधान है, 70 प्रतिशत जनता गाँवों में रहती है और वर्षा पर कृषि आश्रित है। ऋग्वैदिक काल में मनुष्य की आवश्यकताएँ सीमित थी और वस्तु-विनिमय के द्वारा आवश्यकताएँ पूरी कर ली जाती थी। लेकिन वर्तमान समय में आवश्यकताएँ असीमित हैं और सन्तुष्टि की प्राप्ति नहीं होती लेकिन धीरे-धीरे यह धारणा फैलने लगी है कि मनुष्य अगर सुखी रहना चाहता है तो उसे अपनी आवश्यकताएँ सीमित रखनी चाहिए जो कि वैदिक काल में प्रचलित थी। साथ ही वैदिक काल में कहा गया कि ऋणी व्यक्ति को उसके माता-पिता और भ्राता पहचानते तक नहीं। यह व्यक्तव्य वर्तमान समय में भी सिद्ध होता है कि व्यक्ति को अपने सामर्थ्य के अनुसार ऋण लेना चाहिए। वैदिक काल और आधुनिक काल दोनों में ही दान की महत्ता को स्वीकार किया गया है। ऋग्वैदिक काल में सामुद्रिक व्यापार की महत्ता को स्वीकार किया गया। आज भी सामुद्रिक व्यापार किया जाता है क्योंकि उसकी लागत कम आती है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भारतीय अर्थव्यवस्था का वर्तमान स्वरूप वैदिक काल की अर्थव्यवस्था का उन्नत रुप ही है अर्थात् जैसे-जैसे विकास होता गया इसके स्वरुप में परिवर्तन होता गया लेकिन मूल स्वरुप ऋग्वैदिक काल पर ही आधारित है।

वैदिक आर्थिक नीतियाँ-एक चिंतन

डॉ. योगेन्द्र प्रतापसिंह प्रपाठक, अर्थशास्त्र विभाग श्रीमती राधादेवी गोयनका महिला महाविद्यालय, अकोला (महाराष्ट्र)

आज आर्थिक मंदी के दौर में हमारा मन वैदिक आर्थिक नीतियां के बारे में सोचने के लिए प्रवृत्त हो जाता है। आधुनिक

आर्थिक नीतियाँ हमारे राष्ट्र को संघटित, समृद्धि सुरक्षा प्रदान करने में पूर्णतः असफल सिद्ध हुई हैं। प्राचीन काल में श्रुति स्मृतिकालीन आर्थिक नीतियाँ मानव जाति के कल्याण व वर्ग चतुष्टय की प्राप्ति के लिए सहायक सिद्ध हुई हैं। जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिए, सद्गति प्राप्त करने के लिए धर्मानुसार अर्थार्जन की परम आवश्यकता होती है। नीतिशास्त्र के अनुसार आर्थिक नियोजन किसी भी राष्ट्र को विकसित करने में सहायक होता है।

अर्थागमो नित्यमरोगिताच प्रिया भार्या प्रियवादिनी च

वश्यश्च पुत्रोऽर्थकरीच विद्या षड्जीवलोकस्य सुखानि तत्।

वेदकालीन अर्थव्यवस्था सुसंघटित व सुसंचालित होने के कारण उसे सुवर्ण युग की उपाधि प्रदान की गई। वैदिक युग सर्व सुख संसाधनों से युक्त पशुपालन, व्यापार, कृषि इत्यादि अर्थव्यवहार से संपन्न व सुनियोजित थी। वेद कालीन अर्थव्यवस्था में पारमार्थिक व भौतिक सुखों का विचार किया जाता था। वैदिक संस्कृति यज्ञ प्रधान होने के कारण ब्राह्मण समाज का वर्चस्व था तथा चातुवर्ण्य व्यवस्था का अस्तित्व सर्वत्र दृष्टिगोचर होता था। वैदिक युग में स्वस्ति संकल्पना की सहायता से जीवन के भौतिक व आध्यात्मिक कल्याण की सम्यक् चर्चा की गई है। स्वस्ति का तात्पर्य पूर्ण अस्तित्व के द्वारा जो भौतिक संसाधन है उनकी प्राप्ति का एकमात्र मार्ग आध्यात्मिक शांति है। "योगक्षेम" संज्ञा के अंतर्गत अलौकिक आनंद व भौतिक वस्तुओं का अंर्तभाव होता है। क्षेत्र का अर्थ सुरक्षित रखना होता है। वेदकालीन संपत्ति की संकल्पना आधुनिक अर्थ शास्त्रीय विचारों से भिन्न नहीं है। संपत्ति के स्वरुप में भौतिक वस्तु के साथ मानीव कौशल्य का महत्व प्रतिपादित किया है। प्राणी, धातु व मानवी क्षमता का मुख्य रुप में उल्लेख आता है। वेद कालीन अर्थव्यवस्था में पशुपालन का विशेष महत्व हतै। ऋग्वेद की 6/28/6 ऋचरा के अनुसार गो-पालन का महत्व समाज में प्रचलित था। गोसंपदा के सम्मुख सभी संपदा आस्तित्व हीन थी। व्यक्ति की सम्नता की कल्पना गौओं की संख्या के आधार पर की जाती थी। अपने स्वजनों की कुशलता के साथ ही गौओं इत्यादि पशुओं की कुशलता की कामना ऋषिजनों ने सदैव देवताओं की है।

संस्कृत साहित्य में वर्णित गो विज्ञान का वर्तमान परिप्रेक्ष्य में उपादेयता

टंकेश्वरी पटेल शोधच्छात्रा, गुरुकुल कांगड़ी वि० वि०, हरिद्वार

जिस प्रकार वैज्ञानिकों ने सृष्टि के रहस्यों को खोजकर आधुनिक पदार्थ विज्ञान का विकास किया है, उसी प्रकार आध्यात्मिक मनीषियों ने जीवन और सृष्टि दोनों के रहस्यों को खोजकर 'गो विज्ञान' का विकास किया। वस्तुतः गो विज्ञान सारी दुनिया को भारत की अनुपम देन है। भारतीय मनीषियों ने सम्पूर्ण गोवंश को मानव के अस्तित्व, रक्षण पोषण, विकास और संवर्धन के लिए अनिवार्य बना दिया था। गोपालन भारतीय जीवन शैली और अर्थतन्त्र का आधार होने के कारण ही हमारा संस्कृत साहित्य गौ माता की महत्ता से परिपूर्ण है। अथर्ववेद में उसे रूद्रों की माता, वसुओं की दुहिता, आदित्यों की स्वसा और अमृत नाभि संज्ञा से विभूषित किया गया है।

माता रूद्राणां दुहिता वसूनां।

स्वसा ऽऽ आदित्यानाममृतस्ये नाभिः।। अथर्ववेद

महाभारतकार ने भी गौस्तुति करते हुए में लिखा है कि-

गायः श्रेष्ठा पवित्राश्च पावना जगदुत्तमाः।

हव्यते दधि घृताभ्यां च नेह यज्ञः प्रवर्तते।।

गावो सक्ष्म्याः सदा मूले गोषु पात्मानः विधते।

मातरः सर्वभूतानां गावः सर्व सुखप्रदाः।।

महाभारतकार ने यह भी लिखा है कि गोधनं राष्ट्रवर्धनम् क्योंकि गो दुग्ध ने जन मानस विशिष्ट शक्ति, बल व साहित्य बुद्धि प्रदान की। गोबर-गोमूत्र ने खेती को पोषण किया, बैल ऊर्जा ने कृषि, भारवाहन, परिवहन तथा ग्रामोद्योग के लिए सम्पूर्ण टेक्नोलॉजी विकसित करने में मदद की और मूतचर्म ने चर्मोद्योग सहित अनेक हस्तोद्योग का विकास किया। इसलिए गो पालन व गोचर भारतीय

जीवन शैली व अर्थ व्यवस्था के सदैव केन्द्र बिन्दु रहे हैं, ग्राम प्रधान और कृषि प्रधान जैसी विशिष्टाओं वाले राष्ट्र के लिए इसका कोई विकल्प नहीं है।

वैदिक युग में अर्थ व्यवस्था

मोहन लाल शोधच्छात्र संस्कृत विभाग जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

वेदो में वैदिक अर्थव्यवस्था का विशिष्ट वर्णन मिलता है। वैदिक अर्थव्यवस्था प्रमुख रूप से कृषि पर आधारित थी। वेदों में आर्थिक विकास के लिए कृषि सूक्त, गौसूक्त, गोष्ठसूक्त, वृषभ सूक्त एवं वर्षा-सूक्तों को यथेष्ट महत्ता दी गयी है। जिससे यह संकेत मिलता है कि ऋग्वैदिक काल के अंतिम चरण में कृषि पर आधारित अर्थव्यवस्था अधिक स्थायी हो गई थी। इन सूक्तों के अध्ययन से पता चलता है कि भूमि निजी स्वामित्व वाली थी। सिंचाई की जानकारी थी और यह कार्य अधिकतम कुएँ से किया जाता था। वैदिक युग में पशुपालन प्रारंभ में एक बहुत महत्त्वपूर्ण व्यवसाय था। गाय और बैल दम्पत्ति के प्रमुख प्रतीक होते थे। गाय को पवित्र पशु माना जाता था। इसके अतिरिक्त बकरियाँ, भेड़ें आदि भी पाली जाती थी। इनका उपयोग विनिमय के माध्यम के रूप में भी किया जाता था।

ऋग्वेद की आर्थिक

तरुलता वनुभाई पटेल शोधच्छात्रा, महर्षि वेद विज्ञान अकादमी, अहमदाबाद

परिवार शब्द 'परि' उससर्गपूर्वक 'वृ' धातु से निष्पन्न हुआ है। इसलिए 'परिवार' का शब्दिक अर्थ 'घेरनेवाला' है। संस्कृतभाषा में 'परिवार' शब्द 'कुटुम्ब' के अर्थ में नहीं पाया जाता है। वैदिक काल में परिवार का वाचक शब्द 'कुल' है। 'कुल' शब्द का अर्थ 'घर' 'परिवार', 'वासस्थान' इत्यादि है। उसमें रहने वाले लोगों का समूह भी लाक्षणिक रूप में 'कुल' कहलाता है।

परिवार मानव समाज की एक महत्त्वपूर्ण संस्थान है। यह मानव-जाति में आत्म संरक्षरण, वंशवर्धन और जातीय- जीवन के सातत्य को बनाये रखने का प्रधान साधन है। मनुष्य मरण-धर्म हैं किन्तु मानव जाति अमर है। व्यक्ति उत्पन्न होता है, बचपन, यौवन और बुढापे की अवस्था भोग कर समाप्त हो जाते है, परंतु वंश परम्परा द्वारा उनका सन्तान क्रम अविच्छिन्न रूप से चला रहता हें मृत्यु और अमृत्युतत्त्व दो विरोधी वस्तुएँ है, किन्तु परिवार द्वारा इन दोनों का समन्वय हुआ है। व्यक्ति भले ही मर जाएँ पर विवाह और परिवार द्वारा मानव जाति अमर हो गई है।

परिवार की महत्ता का अनुभव करते हुए ही वैदिक युग में शिक्षा समाप्त करने पर प्रत्येक स्नातक को आचार्य यह उपदेश देते थे- प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेसीः'' अर्थात् संतान रूपी तंतु का चिच्छेद मत करो । ''इतना ही नहीं पत्नी की अवहेलना, संतति निरोध एवं अविवाहीत व्यक्तियों से राष्ट्र की अतुलनीय और अपूरणीय क्षति होती है इसका विस्तृत वर्णन आर्विवेद में किया गया है। इसलिए गृहस्थाश्रम को सर्व धर्मो का आधार कहा गया हैं। गृहस्थस्त्वेव सर्वेषां चतुर्णां मूलमुच्यते। (महा. शां. 228/6)

परिवार में पिता और माता की इच्छा का अनुवर्तन किया जाता था। इससें कोई सन्देह नहीं है कि वैदिक काल में पिता को परिवार के मुखिया के रूप में वर्णित् किया गया है और परिवार में उसकी महत्ता सर्वाधिक थी। वैदिकी नारी सुशिक्षित थीं कलाओं में निपुर्ण थी। आध्यात्मिक, धार्मिक क्षेत्रों में भी उसकी पुरुषों के समान पैठ थी। परिवार में बेटियाँ अपने जीवनसाथी को स्वयं चुनती थी। संक्षेप में प्रस्तुत शोधलेख में 'परिवार' विषयक मीमांसा की विस्तृत चर्चा की गई है।

आधुनिक भारतीय अर्थव्यवस्था और कौटिल्य

डॉ. अलका अस्थाना प्रवक्ता, अर्थशास्त्र विभाग डी.जी. कालेज, कानपुर

कौटिल्य का अर्थशास्त्र भारतीय विचारों का प्रमुख ग्रंथ है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में अर्थनीति, धर्मनीति, राजनीति कार्यनीति सभी का समावेश है। यह आज भी भारतीय जनमानस को प्रभावित कर रहा है।

उनके अनुसार कोई भी देश अपनी विरासत, परम्पराओं को आधार बनाकर ही विकास कर सकता है। इसके बिना किया गया विकास अल्पकाल तक ही सम्भव है। उनकी अधिकांश मान्यताएं सार्वभौमिक तथा सर्वलौकिक है। कौटिल्य कल्याणकारी राज्य के सिद्धान्त की नींव रखने वाले प्रथम विचारक हैं। उन्होंने सामाजिक सुरक्षा तथा सामाजिक न्याय व्यवस्था के विषय में अपने विचार रखें हैं। कौटिल्य की न्याय व्यवस्था विशुद्ध प्रजातंत्रीय व्यवस्था है जो सभी को समान दृष्टि से देखती है।

कौटिल्य ने नियोजन की आवश्यकता और महत्व पर जोर दिया था खासकर शहरी नियोजन पर। भारतीय मिश्रित अर्थव्यवस्था भी नियोजन को अपनाकर ही विकसित हो रही है। कौटिल्य के अनुसार किसी भी देश की आर्थिक दृढ़ता का मूल्यांकन उस देश की मौद्रिक तथा राजकोषीय नीति की परिपूर्णतया से किया जाता है। करारोपण को कौटिल्य ने राजस्व का महत्वपूर्ण स्रोत माना है। उनका मानना था कि कर राज्य की आवश्यकता भी है ताकि राजकीय कार्य सुचारु रुप से चल सके। उन्होंने यह विचार भी दिये कि लोगों कि समृद्धि के अनुपात में कर धीरे-धीरे बढ़ाने चाहिये यानि कि कौटिल्य प्रगतिशील करों के हिमायती भी थे। राजस्व की हानि को रोकने के लिये भी कौटिल्य ने कई उपाय बताये हैं। बजट निर्माण तथा आय व्यय का हिसाब रखने पर कौटिल्य ने बहुत जोर दिया और बजट सम्बन्धी सम्पूर्ण विवरणों तथा पहलुओं पर निर्देश प्रस्तुत किया है। आधुनकि युग में भी विकास कार्यों को समुचित रुप से चलाने के लिये बजट एक महत्वपूर्ण अंग है।

कौटिल्य ने श्रम विभाजन तथा विशिष्टीकरण का विचार दिया है, उनके अनुसार विशिष्टीकरण ही श्रम विभाजन का कारण भी है और परिणाम भी। आधुनिक युग में भी श्रम विभाजन तथा विशिष्टीकरण के आधार पर कार्य निर्धारण तथा पद निर्मित किया जाता है, फिर उस पद के लिये उपर्युक्त व्यक्ति चयन किया जाता है। कौटिल्य के अनुसार किसी भी विभाग के प्रमुख को उस विभाग अथवा क्षेत्र के विषय में संपूर्ण जानकारी होना जरूरी है। आधुनिक भारतीय परिप्रेक्ष्य में यह देखा जा रहा है कि अधिकारिक रूप में यह विचार सर्वमान्य है परन्तु व्यवहारिक रूप में नहीं।

वेदों में अर्थ की अवधारणा

रीमा सिन्हा वरिष्ठ प्रवक्ता, बी0एस0एम0(पी0जी0) कालेज रूड़की

युग युग की वाणी वेद भारतीय संस्कृति का मूल आधार है। पण्डित विश्वेश्वरनाथ रेउ ने ऋग्वेद पर एक ऐतिहासिक दृष्टि नामक पुस्तक में ये लिखा है कि, 'भारतीय आर्यों की संस्कृति का मूल आधार वेद संसार का प्राचीनतम ग्रन्थ माना जाता है।' डॉ0 मुन्शीराम शर्मा ने अपनी पुस्तक वैदिकी में लिखा है कि 'वेद से पुरातन साहित्य आज तक विद्वानों को उपलब्ध नहीं हुआ अतः एक स्वर से वेद विश्व का पुरातनतम साहित्य कहा जा सकता है।' वैदिक साहित्य के अध्ययन द्वारा यह स्पष्ट होता है कि समाज उन्नत और सम्पन्न था। संस्कृति के चार अध्याय में रामधारी सिंह दिनकर ने ये लिखा है कि 'ऋग्वेद में जिस समाज का चित्र है वह समाज अत्यन्त सुखी और सम्पन्न था और कहीं भी यह संकेत नहीं मिलता कि उस समाज के लोग तनिक भी असन्तुष्ट थे। यह संसार दुःख का आगार है अथवा जीवन नश्वर एवं क्लेशपूर्ण है, इस भावना पर ऋग्वेद ने कहीं भी जोर नहीं दिया।' आर्यो की दैहिक व लौकिक भोगों के प्रति सहज अनुरक्ति थी, जीवन के लिए धन की आवश्यकता, धनोपार्जन का उद्देश्य व आधार स्पष्ट था। मानव जब जन्म लेता है तब खाली हाथ आता है और जब जाता है तब खाली हाथ जाता है, संभवतः इसीलिए ईशोपनिषद् में यह कहा गया **'तेन त्यक्तेन भुंजीथाः मागृधः कस्यस्विद धनम्।'** (धन किसका है, अतः लालच मत करो, उसे त्याग के साथ उपभोग करो।)

वैदिक अर्थ-व्यवस्था

कु० अंजनी भट्ट एम.ए. द्वितीय कन्या गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर (हरिद्वार)

कृषि का महत्व मानव-जीवन का आधार अन्न है। अन्नों की प्राप्ति कृषि से होती है। अथर्ववेद में भूमि और पर्जन्य को नमस्कार किया गया है "भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमोऽस्तु वर्ज्भेद से। (अथर्व० 12.1.42) ऋग्वेद और अथर्ववेद में राजा वेन के पुत्र राजा

पृथु (प्रभु) को कृषि-विद्या का आविष्कारक बताया गया है। ऋग्, यजुः और अथर्व वेदों में कृषि-कर्म से सम्बद्ध अनेक सूक्त हैं, ऋग् 10.101; 4.57। यजु॰ 12.67-71। अथर्व॰ 3.17.1-9। भूमि के मुख्य तीन भेद हैं-उर्वरा, इरिण, सस्य यजुर्वेद, तैत्तिरीय संहिता और अथर्ववेद में मिट्टी के विभिन्न भेद हैं। मृत्तिका (यजु॰ 18.13), रजस्याय (यजु॰ 16.45) अश्मा (अ॰ 12.1.26)। किंष्ठिलाय (यजु॰ 16.43), इरिण्याय (यजु॰ 16.43), उर्वर्याय (यजु॰ 16.33) सिकत्याय (यजु॰ 16.43)

पशुपालन और पशुसंवर्धन के सम्बन्ध में ऋग्वेद और अथर्ववेद में कई सूक्त हैं (अथर्व॰ 2.26 और 3.14। ऋग् 10.101. 4। पशु संपदा दैनिक जीवन का अभिन्न अंग था। घी, दूध, दही तथा मक्खन दैनिक आवश्यकताएँ थी। कृषिकर्म, यातायात और भारवाहन के लिए बैल, अश्व आदि की आवश्यकताएं थीं। यज्ञ आदि धार्मिक अनुष्ठानों के लिए गायों की आवश्यकता थी। पशुपालन सामाजिक और राष्ट्रीय महत्व के विजय थे। व्रज गोशाला के रुप में होते थे। इन्हें गोष्ठ कहते थे। (गोष्ठः अथर्व॰ 3.14.5) व्रज एक प्रकार से प्राचीन Dairy farm थे।

वेदेषु अर्थशास्त्रं सांख्यिकी च

डॉ0 राघव कुमार झा (शोधाधिकारी) उतराञ्चल संस्कृत अकादमी, हरिद्वार

अर्थशब्दोऽयं बह्वप्रयुक्तः अवश्यज्ञातव्यश्चास्ति। अर्थेन विना सर्वम् अनर्थकं स्याद् इति।

शास्त्रभेदेन अर्थशब्दस्य अर्थभेदः दृश्यते। तद्यथा व्याकरणे निरुक्ते मीमांसायां च अभिधेये वर्त्तते। न्याये प्रयोजने वर्त्तते। चरके तु "या पुनरीश्वराणां वसुमतां वा सकाशात् सुखोपहारनिमित्ता भवति अर्थावाप्तिरारक्षणं च, या च स्वपरिगृहीतानां प्राणिनामातुर्यादारक्षा, सोऽस्यार्थः।" 1/30/29।। इत्यत्र अर्थशब्दः वित्तार्थकः खलु। कामसूत्रे "विद्याभूमिहिरण्यपशुधान्यभाण्डोपस्करमित्रादीनामर्जनमर्जितस्य विवर्धमर्थः" इति। तमध्यक्षप्रचारद्वार्त्तासमयविद्भ्यो वणिग्भ्यश्चेति। 'अर्थ इति द्रव्यगुणकर्मसु' इति वैशेषिके। पुराकालेऽपि अर्थशब्दः धनार्थकः प्रसिद्धः आसीत्। ऋग्वेदे अर्थिनो यन्ति चेदर्थम्" अर्थमिद्वा उ अर्थिनः" इति मन्त्रद्वये अर्थशब्द अर्थिशब्दश्च एकत्र पठितौ स्तः। उभयत्र धनार्थकः एव।

वेदाः सर्वविद्यानिधानम् इति मन्यन्ते तज्ज्ञाः। तर्हि सर्वविधम अर्थशास्त्रं तु नितरां वेदोदव प्रसिद्धम् इति न शङ्का कार्या। वैदिकम् अर्थशास्त्रम् एव इतरेषां सर्वेषाम् अर्थशास्त्राणां मूलमिति मन्यन्ते विपश्चितः।

कौटल्यप्रणीतस्यार्थशास्त्रस्यापि मूलं वेदा एव। तत्र 'आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्चेति विद्याः इति वचनात्। चतसृषु विद्यासु वार्तायाः ग्रहणमत्रास्ति तस्याशयः कृषि पाशुपाल्ये वणिज्या च वार्ता इति। अर्थशास्त्रस्य अन्तः साक्ष्येण अर्थलक्षणं चेत्थमस्ति मनुष्याणां वृत्तिः "अर्थः" मनुष्यवती भूमिरत्यर्थः, तस्याः पृथिव्याः लाभपालनोपायः शास्त्रम् 'अर्थशास्त्रम्' इति। वर्त्तमानपरिभाषा भिन्ना। वर्तमाने तु केवलं पञ्चविभागात्मकमेव अर्थशास्त्रम् इत्युच्यते। तत्र उपभोगः, उत्पादनम्, विनिमयः वितरणम् राजस्वम् इति पञ्चाङ्गम् अर्थशास्त्रम्। वेदेषु सन्ति प्रकारान्तरेण एतेषाम् अर्थानां स्रोतः।

वैदिकसाहित्ये अर्थाभिमुखता

प्रा. पंकजः कृ. ठाकरः के.एस.के.वी. कच्छ यूनिवर्सिटी, गुजरात
डॉ. भावेशः जेठवा के.एस.के.वी. कच्छ यूनिवर्सिटी, गुजरात

प्रवर्तमाने आण्विके युगे परमाणूपकरणानां विद्युदङ्को(Digital) पकरणानां चातिक्रमणयोर्मध्ये मानवजीवनं सन्ततं द्वैधीभावान्वितमिवानुभूयते। अनेनातिक्रमणेन मानवजीवनस्य भौतिकविकासाय दृष्टिकोणः परिवर्तनशीलः वरीवर्ति। प्रत्येकः मनुजः 'सम्पत्ति' सुखमेव प्राधान्यं ददानः दृश्यते। समृद्ध्यभीप्सया मानवः हिरण्याक्षः अभवत्। येन च अधिकाधिकं वित्तोपार्जनं प्रति मानवः निरन्तरं प्रवृत्तिशीलः जायमानः अस्ति। अपरत्र समृद्धावेव रममाणः लघुसमुदायः स्वोपार्जितवित्तस्य विनियोगाय स्वकेन्द्रितः अभवत्। समस्तः समाजः अस्य द्वन्द्वस्य उत्कीलनाय विज्ञानं प्रति दरीदृश्यमानः स्थितः।

वस्तुतः 'अर्थविश्वं' अधिकाधिकं अर्थपूर्णं भावयितुं पारंपरिकेषु शास्त्रेष्ववगाहनम् आवश्यकम्। वैदिकसाहित्यं जीवातुभूतायाः वैचारिकपरम्परायाः उद्घोषणां करोति। अस्मिन् वैदिकसाहित्ये अद्यतनाः आर्थिकविचाराः स्पष्टतया प्रतिबिम्बीजायमानाः द्रष्टुं शक्यन्ते।

अद्यत्वे समग्रं विश्वं 'वैश्वीकरणं' प्रति धावति। आर्थिकसम्बन्धान् दृढीकर्तुं, सुग्रथितान् कर्तुं च महदायामाः उपकरणानि च प्रयुज्यन्ते। आधुनिकाः वैश्विकौद्योगिकाः मान्धातारः प्राय एवं जानीयुः यत् "ईशोपनिषद्" स्पष्टतया **"ईशावास्याम् इदं सर्वम्"** अयं घोषं विद्यमान् अस्त्येव। अपि च "आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः" इत्यत्रैतदुक्त्वा वैश्विकसमृद्धेः या वाञ्छा तदानीं प्रकटिता सा अद्यतनस्य वस्तुजगतः वैश्विकादानप्रदानमनुमोदयति।

"सम्पत्तिः" इत्यस्य प्रवर्तमानानां वैश्विकविचाराणां मूलं "श्रीसूक्ते" उपलभ्यते। "सम्पत्तेः" सातत्यपूर्णं संवर्धनं सर्वेषामभीप्सा यत् "श्रीसूक्ते" "लक्ष्मीमनपगामिनीम्" इत्येतयस्यां प्रार्थनायां द्रष्टुं शक्यते। पर्यावरणीया सम्पत्तेः त्रीणि रूपाणि अग्निः, वायुः सूर्यश्च श्रीसूक्ते समाविष्टानि। **"उपैतु मां देवसखः कीर्तिश्च मणिना सह"** अनेन मन्त्रेण सर्वा समृद्धिः अभ्यर्थिता। **"निकामे निकामे नः पर्जन्योऽभिवर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पन्ताम्।"** अस्मिन् मन्त्रे राष्ट्रिसमृद्धेः अभ्यर्चनं दरीदृश्यते।

इत्थं भौतिकसम्पत्तेः या अभीप्सा अस्मासु दृश्यते तस्याः मूलानि वैदिकसाहित्ये निहितानि इति दृष्टम्। सम्पत्तेः सुयोग्येन वितरणेन समानतां साकारीकर्तुं "प्रौद्योगिकसामाजिकोत्तरदायित्त्वं" (Corporate Social Responsibility) इत्यस्य या भावना यो वा विचारः अद्यत्वे चर्च्यते सः विचारः मूलतः "शतहस्त समाहर सहस्रहस्त संकिर" इति मन्त्रे दृष्टपूर्वः। यं मन्त्रं च अस्माकं राष्ट्रपितागान्धिजी "विश्वस्तता- पालकता" इति सिद्धान्तस्य आधाररूपम् अमन्यत।

अस्मिन् संशोधनपत्रे अधस्तनानां बिन्दूनां विचारणां संकल्पिता-

1. प्रस्तावना, 2. प्रवर्तमानेषु आर्थिकसिद्धान्तेषु/विशेषतासु च वैदिकसाहित्यस्य रूढिपूर्णमर्थघटनम्, 3. वैदिकसाहित्यं प्रवर्तमानानाम् आर्थिकसिद्धान्तानां बीजम्, 4 मन्त्रसाहित्यस्य अनुबन्धः, 5. समापनम्।

वैदिक्यर्थ-व्यवस्था-महर्षिदयानन्दश्च

प्रो. सुभाषवेदालंकारः, जयपुर

वेदेषु पुरुषार्थचतुष्टय-प्रसंगे अर्थस्य महत्त्वपूर्णं स्थानं ननु। अर्थं विना जीवनं न चलति। अतएव शास्त्रेषु **धनान्यर्जयध्वम् धनान्यर्जयध्वम्** इति भणितम्। वेदेष्वपि **अग्ने नय सुपथा राये, स नो वसून्याभर** इत्यादि वचोभिः धनकामना विद्यते।

महर्षिः दयानन्दः अस्य युगस्य सर्वश्रेष्ठः वेदाध्येता, वेद-चिन्तकः, मन्त्रद्रष्टा चासीत्। वेदाध्ययनं विधाय शास्त्राणि चान्यान्यधीत्य स अर्थव्यवस्था-विषये स्वविचारान् द्रढीकृतवान्। वैदिकी अर्थव्यवस्था कीदृशीति विस्तरेण विचारं विधाय प्रचारं कृतवान्। महर्षि दयानन्दः मन्त्रान् विचिन्त्य अर्थजातं प्रसारितवान्- स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्। आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसं मह्यं दत्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्।। इति यजुर्वेद मन्त्रे, वैदिकी-अर्थव्यवस्था-विषये संकेताः सन्ति, आयुः प्राणम्, प्रजा पशुः, कीर्तिः, द्रविणम् इति षड्वस्तूनि जीवनायावश्यकानि। आरोग्यं प्राप्तुं मानवः यतते तदर्थं चिकित्साया आवश्यकता, प्राण-रक्षायै औषधानामनिवार्यता वर्तते प्राणरक्षतत्त्वैरेव प्रजानिर्माणं जायते। विविधैः दानादि कर्मभिः यशः प्राप्तेरिच्छा भवति। पशुः धनरूपे अंगीकृते वेदे। महर्षि स्वगोकरुणानिधौ पशु-महत्त्वम् दर्शितवान्। **अक्षैर्मादीव्यः कृषिमित् कृषस्व।। सुशस्या नः कृषीः कृधि** इत्यादि मन्त्रान् अधीत्य कृषिं महत्त्वपूर्णम् अर्थव्यवस्थाधारामङ्गीकृतवान्। कथं कृषिः क्रियेत, कथं कृषकाणां प्रशिक्षणं भवतु कथं कृषि विशेषज्ञा मार्ग दर्शयेयुरिति विषये महर्षिः पदे पदे लिलेख। अथ च व्यापार-द्वारा अर्थव्यवस्था द्रढीकरणीया। व्यापार-प्रसंगे-उपभोगः, उत्पादनं, विनिमयः, वितरणराजस्वमालम्ब्य महर्षिणा स्वविचाराः स्थिरीकृताः। तद्विषये च प्रचुरं लिखितमपि।

महर्षिः अर्थव्यवस्था-सन्दर्भे मानवानामनिवार्यावश्यकतानां अन्न-वस्त्र-भवन-चिकित्सानां, गौण्यावश्यकतानां शिक्षादीनामप्यावश्यकतां महत्त्वपूर्णं प्रतिपदितवान्। अन्नपदेन महर्षिमते सर्वे खाद्य-पदार्थाः पेयपदार्थाः फलादिकाञ्चायति। कृषिभूमिः महर्षेः सम्मतौ वेदे द्विविध खलु कृष्टपच्चा अकृष्टपच्या च, अकृष्टपच्या भूमौ एव वनभूमिः पर्वतीयभूमिरागच्छति। उभयोः दोहनेन अर्थव्यवस्था सुदृढा जायते। अर्थव्यवस्थायै वेदेषु वाहनानां चर्चापि वर्तते। महर्षिः दृढतया वदति यत् वेदेषु स्थलचर-जलचर-नभश्चर-वाहनानां प्रबन्धनं वर्णितम्। तादृशैः वाहनैः नगरात् नगरान्तरं देशात् देशान्तरं च गत्वा अधिकाधिकं धनमर्जनीयं, राष्ट्रं च समृद्धं विधेयम्। राज्यमर्थदृष्ट्या सुदृढं कर्तुं जनैः राजस्वं प्रदातव्यम्। अर्थव्यवस्थां सुदृढां विधातुं नैकोद्योगाः स्थापनीयाः। इति सर्वं शोधपत्रे विस्तरेण प्रतिपादितम्।

वेदेषु आर्थिकवृत्तम्

इमरान परवेज, शोधच्छात्र अ.मु.वि.वि., अलीगढ़

आद्युदात्तोऽन्तोदात्तश्चोभयविधो वेदशब्दः। आद्युदात्तो ग्रन्थराशि वाचकः (अथर्व. 4.35.6), अन्तोदात्तश्च दर्भमुष्टिवाचकः(अथर्व. 7.28.1)। आद्युदात्तोवेदशब्दस्य ज्ञानवाप्ति विचारसत्तार्थवतो विद्धातोर्घञ् प्रत्ययेकृते सिद्धिः भवति। स्वामीदयानन्दः स्वऋग्वेदादिभाष्य-भूमिकायां 'विद्लृलाभे' इदं निर्वचनं स्वीकृत्य स्वशब्देषु वेदविषये विदुषां मतम् एभिः शब्दैः विवेचयति 'विदन्ति जानन्ति विद्यन्ते भवन्ति विन्दन्ति विन्दन्ते लभन्ते विन्दते विचारयन्ति सर्वे मनुष्याः सर्वाः सत्यविद्यायैर्येषु वा तथा विद्वांसश्च भवन्ति ते वेदाः। अथर्ववेदस्यैकादशतमे काण्डे वर्णितं यत्पुरुषदेहे नानाविधा देवाः प्राविशन् तत्रेमे चत्वारो वेदा अप्यनुप्राविशन् 'शरीरं ब्रह्म प्राविशदृचः सामाऽथो यजुः।' (अथर्व. 11. 8.23)।

एतेन ज्ञायते पुरुषसृष्टयाः सहैव विद्यासृष्टिरपि सम्भूता। य एव वेदास्ता एव विद्याः। विद्यापदेन वेद एवं गृह्यते। तत्राम्नायेष्वपि द्विविधा विद्या व्याख्याता पराऽपराभेदात् (मुण्डक. 1.1.4)। या अक्षरं पुरुषं वेदयित्री सा परा। या चानक्षरं नाशवन्तं पदार्थं वेदयित्री साऽपरा। यैहिकस्यामुष्मिकस्य च सुखस्य साधनभूता सा विद्या। सैवाऽभ्युदयनिःश्रेयसप्रापयित्री। एवं वेदविद्या पावमानीं योऽध्येति तस्मै सा वेदवाक् सरस्वती सर्व क्षीरं सर्पिर्मध्वादीन्यैहिकानि निःश्रेयसादीनि पारलौकिकानि च प्रापयति (ऋ. 9.67.32) धर्मार्थकाममोक्षात्मके पुरुषार्थचतुष्टयेऽर्थस्य महत्त्वपूर्णं स्थानम्। नह्यर्थेन विना शरीर धारणमपि शक्यं पुनरन्यव्यवहाराणां तु का कथा? यदि वेदाः ज्ञानग्रन्थाः सन्ति तर्हि वेदेषु अर्थस्य प्राप्तिविषये विवेचनम् अवश्यमेव भवेत्। वेदेषु वर्गाश्रमव्यवस्थायाः सन्दर्भे धनार्जनसाधनानि समुपदृष्टानि। अस्मिन् शोधपत्रे वेदेषु आर्थिकवृत्तस्य गवेषणैव मम उद्देश्यं वर्तते।

वैदिक और मौर्यकालीन आर्थिक जीवन : तुलनात्मक परिशीलन

प्रीतम कुमार (शोधच्छात्र) प्रा.भा.इं. संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, गु.कां.वि.वि. हरिद्वार।

मानव का विकास प्रगति की सतत् प्रक्रिया का प्रतिफल है, मानव जीवन के विकास के साथ ही उसका आर्थिक जीवन भी प्रारम्भ हो गया था, वेदों में अर्थव्यवस्था का सुदृढ़ और सुव्यवस्थित वर्णन प्राप्त होता है, अर्थ के अन्तर्गत मनुष्य की भौतिक और आर्थिक समृद्धि आती है। मानव जीवन के चार पुरुषार्थों "धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष" में अर्थ को दूसरा स्थान प्रदान किया गया है। धनार्जन के लिए वैदिक अर्थव्यवस्था में सुपथ पर चलने का निर्देश मिलता है, वेद मन्त्रों में अनेक स्थानों पर धन प्राप्ति की प्रर्थनाएं की गई हैं;- 'वयं स्याम पतयो रयीणाम्'(यजुर्वेद 10.2)

वैदिक और मौर्यकालीन अर्थव्यवस्था मुख्यतः कृषि पर आधारित थी। वैदिक अर्थव्यवस्था मुख्यतः वर्णव्यवस्था पर आधारित थी और अपने वर्णो के अनुसार ही लोग धनोपार्जन करते थे, इसी प्रकार मौर्यकालीन अर्थव्यवस्था भी राजकीय नियन्त्रण में थी। इन्हीं बिन्दुओं का तुलनात्मक परिशीलन मैं अपने शोधपत्र में करूंगा।

VEDIC ECONOMICS

Dr. P. Somnadham Lecturer in Sanskrit, Keshav memorial degree College Narayornguda, Hyderabad.

It would be an unpleasant surprise to the people of western perspective that the first book on Economics is the contribution of ancient India where Economics was defined for first time in the world history of Economics literature. Western Economics Generally assumed that the ancient Economics theroies of the Greek and Roman are worth Of study. But centuries before the beginning of christian era, the injuring prosperity of china was advised by many countries in Asia Minor.

There is no reference by the Western Economists on the ancient Indian Economic thoughts, altough India has to her credit the highly advanced ancient most civilization. European historians identify a few Outstsnding

thinkers of Greek Empire and their ideas of Economic affairs are reproduced in the books of European history of Economic thoughts. The most surprising fact is that the affluent India of the past that attracted the foreign invaders from times immemorial has been left un notice regarding her sound Economic system.

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगन्यां जगत्। तेन त्यक्तेन मुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।।

The first line of the first Upanishad (amomg ten Upanishads) Isvayopanisad, declares that all kinds of Resources are of the God. They are given for living of all the people on the earth. The mantra asks us to enjoy it while giving it away. It means our earning is for giving others. What a wonderful statement? While telling us to Consume only our earning, the mantra caution not to expropriare othere wealth. And finally mantra reveals the philosophical truth that wealth is no One's. Further it questions what actually wealth?. In this way some viewe or concepts of Economics, procurement and utility of artha can be grasp from the vedic Literature.

VEDAS IN ARTHASHASTRA (ECONOMICS)

Mrs. Manisha Gupta Jagran College of Atrs, Science & Commerce, Kanpur

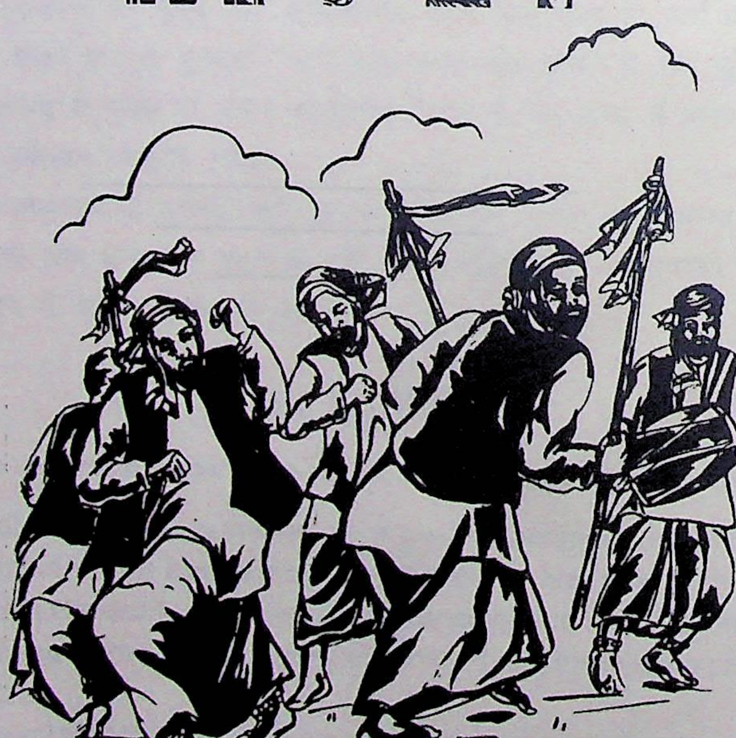
The classic work on the goal of material success is the Artha Shastra by Kautilya. This treatise is a collection of political, legal and economic advice from earlier sources put together and commented on by kautifya.

In the third chapter Kautilya repeated the traditional views of the Vedas, the caste system, the four stages of life, and lists the duties common to all as harmlessness, truthfulness, purity, freedom from spite, abstinence from cruelty, and forgiveness. However, he then goes on to analyze government as the art of punishment based on discipline. Kautilya saw his work as the science of politics, which deals with the means of acquiring and maintaining the earth. The study of any science depends on the mental faculties of obedience, hearing, perception, memory, discrimination, inference, and deliberation.

The acquisition of wealth and its security was dependent on peace and industry. Kautilya defined three kinds of strength as the ability to deliberate being intellectual strength, a prosperous treasury being strength of sovereignty, and matrial power being physical strength.

समाज परिवार





सुदृढ़ परिवारसम्बन्धी वैदिक निर्देश

डॉ. रेणु बाला प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, गुरुनानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर

वेद विश्व के प्राचीनतम औरसर्वज्ञानसम्पन्न ग्रन्थ हैं। वेदों में विश्वबन्धुत्व, राष्ट्रीय एकता, अहिंसा, सत्य, नैतिक मूल्य आदि अनेक पक्ष विद्यमान हैं। समाज या राष्ट्र के लिए परिवार प्रमुख इकाई है। सुदृढ़ आधार ने पारिवारिक होने से पारिवारिक व्यवस्था भिन्न होने की सम्भावना रहती है। पारिवारिक सम्बन्धों के शैथिल्य का दुष्प्रभाव समाज और राष्ट्र पर सास-बहु के सम्बन्ध कैसे होने चाहिए इसके लिए वेदों में पर्याप्त दिशा निर्देश हैं।

वेदों में आदर्श परिवार के लिए परिकल्पित निर्देशों से जहाँ पारिवारिक शान्ति बनी रहती है वहीं समाज और राष्ट्र भी उन्नति के पथ पर अग्रसारित होते हैं।

पारिवारिक सम्बन्धों के विषय में वेदों का निर्देश है पुत्र पिता के साथ कथनानुसार आचरण करे, माता से भी उसका साञ्जस्य बना रहे, भाई एवं बहिन आपस में विद्वेष न करें।

वेद पति-पत्नी के चिरस्थायी सम्बन्धों की परिकल्पना करता है। वेद के अनुसार पति-पत्नी के मधुर सम्बन्ध निरन्तर बने रहें और पूर्ण आयु को भोगते हुए वे नाती-पोतों के साथ खेलें।

वैदिक आख्यानों में बहुत से संदेश निहित हैं। कई आख्यानों में पारिवारिक व्यवस्था को सुदृढ़ करने के सन्देश अन्तर्निहित हैं।

पति का क्रोधी स्वभाव पारिवारिक व्यवस्था के लिए अभिशाप बन जाता है सूर्य-सरण्यू आख्यान(10/17/1-2) के माध्यम से वेद का यही सन्देश है कि पति का तेज (क्रोध) कम हो।

पुरुरवा-उर्वशी का आख्यान पति द्वारा पत्नी की अपेक्षाओं को पूरा करने का निर्देश देता है-

जज्ञिष इत्था गोपीथ्याय हि दधाथ तत्पुरूरवो म ओजः।
अशासं त्वा विदुषी सस्मिन्नहन्न म आशृणोः किमभुग्वदासि।।
ऋ. 10/96/11

ऋषियों ने विवाह प्रक्रिया में सगोत्र अथवा रक्त सम्बन्ध से जुड़े हुए लड़के लड़की के विवाह को निषिद्ध माना है। सभी धर्मशास्त्र भी इसकी पुष्टि करते हैं। वेद भी इस प्रकार के विवाह का निषेध करता है। यम-यमी आख्यान में यमी द्वारा यम से विवाह का प्रस्ताव किए जाने पर यम कहता है कि तुम मेरी सहोदरा हो, इसलिए हम विवाह बन्धन में बन्ध नहीं सकते। यमी के द्वारा अनुनय-विनय करने पर भी यम उसकी बात को अस्वीकार कर देता है-

न वा उ ते तन्वा तन्वं सं पपृच्यां पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात्।
अन्येन मत्प्रमुदः कल्पयस्व न ते भ्राता सुभगे वष्ट्येतत्।। ऋ. 10/10/12

वेदों में ऐसे कई सन्दर्भ हैं जो आदर्श पारिवारिक व्यवस्था के लिए प्रकाश स्तम्भ हैं।

वैदिक वर्णव्यवस्था का दार्शनिक आधार

विपिन बालियान (शोधच्छात्र) दर्शन विभाग गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

महाराज मनु ने वेद को सर्वज्ञानमय कहा है। इसका अभिप्राय यह है कि वेद में आध्यात्मिक ज्ञान -विज्ञान के गूढ़ रहस्य तो हैं ही साथ ही सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक सांस्कृतिक और मात्रा में उपस्थित है।

'यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्'

यह उक्ति वेद के लिये पूर्णतया चरितार्थ होती है। क्योंकि विश्व में जितना भी ज्ञान विज्ञान है वह सब वेद से ही गया है। वर्णव्यवस्था भी भारतवर्ष में अपना मूल वेद में ही ढूंढती है ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र यह विभाजन और वर्ण का निर्धारण वेद की वैज्ञानिकता पर ही आधारित है। वेद में कहा गया है-

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहूराजन्यः कृतः।
ऊरूतदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽजायत।। यजु. 31

यह विभाजन पूर्णतया दार्शनिक आधार पर प्रतिष्ठित है। ब्राह्मण को समाज का मुख इसलिये कहा गया है कि समस्त ज्ञानेन्द्रियाँ मुख में ही निवासकरती है। दर्शन, श्रवण, घ्राण, स्पर्श और स्वाद सभी का ज्ञान कराने वाली इन्द्रियों का आधार मुख ही है। इसी प्रकार ब्राह्मण ही समाज को विकास का मार्ग दिखलाता है। तत्त्वज्ञान का प्रदाता होने के कारण ब्राह्मण समाज का मुख है अर्थात् जो तत्त्वज्ञानी और मार्गदर्शक है वही ब्राह्मण वर्ण में स्थापित करने योग्य है। क्षत्रिय समाज की भुजा है। भुजा बल और शक्ति का प्रतीक है। उदर से लेकर जानु पर्यन्त शरीर का भाग वैश्य कहलाता है। और पैर शूद्र कहलाते हैं। इस प्रकार वेद की वर्णव्यवस्था श्रद्धा अथवा परम्परा पर आधारित न होकर दार्शनिक पद्धति पर आधारित है यदि इस पद्धति का आचरण किया जायेगा तो समाज में अस्पृश्यता विद्वेष विभाजन और कलह के लिये कोई स्थान शेष नहीं रहेगा।

वैदिक समाज शास्त्र की देन

डा. कुलदीप सिंह आर्य अध्यक्ष संस्कृत विभाग डी.ए.वी. कॉलेज, अमृतसर

वेद सृष्टि के संविधान तथा समस्त ज्ञान-विज्ञान के प्राचीनतम स्रोत हैं। विविध विद्याएं, सम्पूर्ण दर्शन, सकल शास्त्र तथा समस्त धर्मों के मूल वेद हैं। वेदोऽखिलो धर्ममूलम्। मनु कहते हैं भूत, वर्तमान और भविष्य की सभी समस्याएं वेदों से ही हल होती हैं अतः वे सर्वथा ज्ञान-विज्ञानमय हैं और ज्ञान-विज्ञान ही अखिल अज्ञानान्धकारों से मुक्त करके परम लक्ष्य मुक्ति की ओर प्रेरित करता है।

आधुनिक समाज में अनेक समस्याएं मानव मात्र को कुंठित, दंशित एवं भ्रमित कर रहीं हैं और जीवन को नारकीय बना रही हैं। ज्ञान का प्रयोग ही विज्ञान है और विज्ञान ही आनन्द है तथा आनन्द ही ब्रह्म है विज्ञानमानन्दं ब्रह्म। आतंकवाद विश्व के जीव जगत् को दानव की भांति दिन प्रतिदिन निगलता जा रहा है, पर्यावरणीय प्रदूषण विश्वधरातल पर जीवन की सम्भावनाओं को विनष्ट कर रहे हैं। एड्स जैसी भयावह व्याधि विश्व की मानव सभ्यता पर प्रत्यक्ष कलंक है। कहीं नारी की अस्मिता चूर-चूर हो रही है तो कहीं मानवीय मूल्यों की होली जलाई जा रही है, विभिन्न तथाकथित धर्मों ने मानव को भ्रमित एवं शोषित ही नहीं किया बल्कि उसके चिन्तन को कुण्ठित भी किया है। विश्वबन्धुत्व जैसी सार्वभौमिक, सार्वदेशिक वैदिक मान्यताएं प्रायः विलुप्ति के कगार पर तड़फ रही हैं।

ऋग्वेद वाङ्मय में पारिवारिक अवधारणा

डॉ. सियाराम हिन्दी प्रवक्ता तिलक महाविद्यालय औरैया

वेद ज्ञान की अनन्त राशि का अक्षय भण्डार है। ज्ञान, नित्य एवं शाश्वत् है। वैदिक ज्ञान द्वारा अभ्युदय एवं निःश्रेयस् की सिद्धि होती है। इनमें भारतीय मनीषा का सर्वांग वर्णन है। पारिवारिक अवधारणा भी ऋग्वैदिक ही है। ऋग्वेद में 'परिवार' या 'कुटुम्ब' के लिए द्वितीय, अष्टम और दशम मण्डल में क्रमशः 'जन्मन्', 'धामन्' और 'कुलपा' शब्दों का प्रयोग उपलब्ध है। बालक के जन्म के पश्चात् उसके माता-पिता उसके प्रति निश्चित कर्त्तव्यों का पालन करते हैं, जो उनके पारिवारिक दायित्त्व भी हैं। कर्त्तव्य के प्रति उदासीन व्यक्तियों की संतानें अपने अधिकारों एवं कर्त्तव्यों के प्रति अनभिज्ञ रह जाती है। इस प्रकार ऋग्वेद में पारिवारिक जीवन के आदर्श रूप का यथा सम्भव उल्लेख किया गया है।

इस प्रकार ऋग्वेद में पिता-माता, पुत्र-पुत्री, भाई-बहन, पति-पत्नी आदि महत्त्वपूर्ण पारिवारिक सम्बन्धों का सौहार्दपूर्ण एवं आदर्श वर्णन है। उस काल की संतानें बड़ों की आज्ञा का पालन तथा प्रीतिका विचार वाली थी। पति-पत्नी के सम्बन्ध अत्यन्त उच्च कोटि के थे। भाई-बहन का जीवन आदर्श आचरण वाला था। परिवार के अन्य सदस्य भी अपने निर्धारित कर्त्तव्यों का सदाचरण एवं नैतिकता पूर्ण पालन करते थे। परिवारों में सुख, शान्ति तथा सौहार्द था। इस निबन्ध के माध्यम से ऋग्वेद की परिवारिक अवधारणा को उद्घाटित किया जायेगा।

वैदिक वाङ्मय मे दाम्पत्य-जीवन

कु. बलजीत ब्लिंग शोधच्छात्रा- संस्कृत विभाग राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोटद्वार(उत्तराखण्ड)

वैदिक वाङ्मय में वही पत्नी पोषण करने योग्य है जो गृह कार्य में दक्ष व निपुण हो, प्रियवचन बोलने वाली हो, पति को अपने प्राण समान समझती हो तथा पवित्र हो (कहा जा सकता है कि इन गुण-कर्तव्यों से रहित पत्नी 'भार्या' कही जाने योग्य नहीं है।) शुक्रनीति में भी पति के प्रति प्रेम रखने वाली, गृहकार्य कुशल, पुत्र उत्पन्न करने वाली, शीलवती अथवा युवती स्त्री को ही पति के प्रेम की अधिकारिणी माना गया है।

वेदकालीन समाज में नारी अपने पति के प्रति अपने योग्य पत्नी के कर्तव्यों को पूर्णरूपेण निभाती थी। उसे पत्नी रूप में सम्मानीय पदवी प्राप्त थी। उसका विशेष सम्मानीय स्थान था। नारी पत्नी रूप में अपने पति की निस्वार्थ भावना से सेवा-शुश्रेषा करती थी। इसके अतिरिक्त उसके कर्त्तव्यों में पति के सभी कार्यो मे उसके साथ रहना, लोक व्यवहार में कुशल व दक्ष होना, पति के प्रति समर्पित रहना, पति को अपना सर्वस्व मानना तथा पति द्वारा पोषित-पालित होना आदि कार्य शामिल थे।

वैदिक वाङ्मय मे दाम्पत्य जीवन में स्त्रियाँ महत्त्वपूर्ण स्थान पर थी वही घर की मालकिन(स्वामिनी) थीं, और आज भी हैं। उसके बिना घर के बारे में सोचना भी असम्भव है। नारी से ही सम्पूर्ण संसार है। वैदिक युग से लेकर अद्यावधि नारी समग्ररूपेण अधिकार सम्पन्ना है। भारतवर्ष में ही नहीं वैश्विक परिवेश में भी नरी-शक्ति सर्वविदित है।

सम्पूर्ण शोधपत्र में वेदकालीन नारी के कर्तव्यों अधिकारों का विस्तृत विवेचन किया जायेगा।

वैदिक दृष्टि में सन्तान का माता-पिता के प्रति कर्त्तव्य

सलोनी शोधच्छात्रा संस्कृत विभाग, गुरुनानकदेव यूनिवर्सिटी, अमृतसर, पंजाब

माता-पिता के लिए सन्तान स्नेह की सर्वोच्च सीमा है। महाभारत का यह कथन है कि यज्ञ, दान, अध्ययन तथा बहुदक्षिणा वाले यज्ञ- ये सभी सन्तानोत्पत्ति के सोलहवें अंश के भी समतुल्य नहीं हैं-

इष्टं दत्तमधीतं च यज्ञाश्च बहुदक्षिणाः।
सर्वमेतदपत्यस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्।।
(महाभारत, सभापर्व, 41/27)

माता-पिता के प्रति सन्तान (पुत्र अथवा पुत्री) के कर्त्तव्यों का निर्धारण वेदों में किया गया है। माता-पिता की आज्ञा के पालन हेतु सन्तान को सदैव तत्पर रहना चाहिए, इस भाव का प्रतिपादन 'ऋग्वेद' के प्रस्तुत मन्त्र में किया गया है-

पितुर्न पुत्राः क्रतुं जुषन्त श्रोषन्ये अस्य शासं तुरासः।
वि राय और्णोद्दुरः पुरुक्षुः पिपेश नाकं स्तृभिर्दमूनाः।।
(ऋग्वेद, 1/68/9-10)

अतः वैदिक दृष्टिकोण के अनुसार सन्तान का यह परम दायितव बनता है कि वह अपने माता-पिता की सब प्रकार से सेवा कर उन्हें सुखी बनाए।

वेदों में समाजशास्त्र

विनोद कुमार शोधच्छात्र, लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ

वैदिक काल की सामाजिक व्यवस्था वर्णाश्रम व्यवस्था के अनुसार संचालित थी। यह व्यवस्था व्यक्ति और समाज के बीच में समन्वय का अच्छा उदाहरण है। प्राचीन भारतीय ग्रन्थ वेदों में भारतीय चिन्तन का व्यवस्थित रूप देखने को मिलता है। उस समय की सामाजिक व्यवस्था पर धर्म का गहरा प्रभाव था। वैदिक कालीन समाज में विकासात्मक उत्पादन कार्य और श्रम की अनेकता

के कारण श्रम का विभाजन शुरु हुआ। अलग-अलग कार्यो को करने के लिए लोग अलग-अलग वर्णों में बंट गये। वैदिक कालीन सामाजिक जीवन अत्यन्त विकसित था, यही कारण है कि आज भी हमारे सामाजिक जीवन पर उसका प्रभाव प्रतिबिम्बित होता है।

वेद मनुष्यक को केवल मानवतावाद का उपदेश देता है जबकि आज संसार में मनुष्य अनेक प्रकार के वादों वर्गवाद, जातिवाद, क्षेत्रवाद, राष्ट्रवाद आदि में विभक्त हो गया है एवं एक दूसरे को विनष्ट करने के लिए उद्यत है। इस वर्ग जाति, क्षेत्र, विचार, सम्प्रदाय आदि से ऊपर उठकर उच्च समाज बनाने को आदेश वेद देता है। वेदों के अन्तर्गत ही प्राचीन भारत में सामाजिक विचारधारा का क्रमबद्ध विकास संभव हुआ एवं अनेक ऋषि-मुनि और आचार्यों ने धार्मिक, सामाजिक व राजनीतिक जीवन के विभिन्न पक्षों के सम्बन्ध में अपने विचारों व आदर्शों को प्रस्तुत किया। यही वेदों में समाजशास्त्र के अन्तर्गत सामाजिक विचारधारा के विश्लेषण की संक्षिप्त रूपरेखा है।

वैदिक साहित्य में वर्ण एवं आश्रम व्यवस्था निरूपण

संजूलता वर्मा शोधच्छात्रा, संस्कृत तथा प्राकृत भाषाविभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

ऋग्वेद में मनुष्यों की सहज स्वाभाविक रुचियों को ध्यान में रखते हुए समाज की रचनादि का एक विशेष प्रकार का चित्रण किया गया है। वृञ् वरणे धातु से निष्पन्न वर्ण शब्द का अर्थ है- गुण कर्म देखकर जिसका यथायोग्य वरण किया जाय।

आश्रम व्यवस्था के सन्दर्भ में वेदों में वर्णन प्राप्त होता है जिसमें ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा सन्यास आश्रमों से सम्बन्धित विभिन्न तथ्यों का निरूपण प्राप्त होता है।

प्रस्तुत शोधपत्र में शोधार्थिनी के द्वारा वैदिक वाङ्मय में वर्णित वर्ण एवं आश्रम व्यवस्था के सम्बन्ध में विभिन्न तथ्यों के आधार पर इनकी उपयोगिता को वर्णित किया जायेगा।

आधुनिक सामाजिक सन्दर्भों में वैदिक समाजवाद

डॉ. जवाहर लाल वरिष्ठ व्याख्याता, सर्वदर्शन विभाग, श्री ला.ब.शा.रा.सं.विद्यापीठ, नई दिल्ली

विश्वविश्रुत वैदिकसाहित्य न केवल भारतीय चिन्तन परम्परा का अपितु सम्पूर्ण विश्ववाङ्मय की निधि के रूप में विश्वमनीषा ने स्वीकार कर लिया है। अतः आधुनिक सन्दर्भ में सामाजिक लोकतांत्रिक चिन्तन तथा उससे जुड़ी विभिन्न अवधारणाओं को वैदिक वाङ्मय में ढूढ़ने का प्रयास आश्चर्यजनक नहीं है अध्ययन से पता चलता है। वेद कालीन सामाजिकव्यवस्था का मुख्य आधार था परस्पर सामञ्जस्य की भावना। जो आज के सामाजिक व्यवस्था से सर्वथा भिन्न थी। सामाजिक विभेद की भावना, वर्गीकरण एवं भेद की प्रवृत्ति वैदिक ऋषियों में नहीं थी। यद्यपि ऋग्वेद के दसवें मण्डल के पुरुषसूक्त में 'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्' इत्यादि मन्त्रों के द्वारा वर्ण-व्यवस्था का उल्लेख प्राप्त होता है किन्तु इस व्यवस्था की प्रतिष्ठा का उद्देश्य सामाजिक विघटन कदापि नहीं था, अपितु यह व्यवस्था व्यवसायीकरण की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण थी।

वैदिककालीन समाज की सामाजिक संरचना एवं समाजवाद की प्रतिष्ठा का आधार व्यक्ति, व्यक्ति से परिवार, परिवार से समाज तथा समाज से राज्य था। व्यक्ति के विकास से परिवार विकसित होता है परिवार से समाज और राज्य का विकास होता है। वैदिक कालीन समाज का मुखिया राजा होता था जो प्रजाओं, सभा, समितियों से नियन्त्रित होता था। अथर्ववेद के एक मन्त्र में राजा द्वारा सभ्यों की स्तुति की गई है।

अन्यत्र एक स्थान पर राजा यह भी स्तवन करता है कि सभा के सभी सदस्य परस्पर सामञ्जस्य स्थापित करके कार्य करें।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि वैदिक समाज का शासक (राजा) निरंकुश और स्वेच्छाचारी नहीं होते थे। वैदिक सामाजिक व्यवस्था का दूसरा आधार था वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना का प्रतिष्ठित होना। वैदिक ऋषियों को भी सहास्तित्व के साथ समता मूलक समाज की स्थापना अभीष्ट थी वैदिक ऋषि कहता है- उत्तरकालीन वैदिकसमाज में अनेक परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं। खुले ढंग से विचार विमर्श की परम्परा उत्कर्ष पर पहुँची, और जनके के दरबार में न केवल याज्ञवल्क्य आदि अपितु गार्गी सदृश विदुषी

भी उन्मुक्त भाव से अपना विचार प्रकट करती थी यह वाक् स्वातन्त्र्य ही समाज वाद की महत्त्वपूर्ण पहचान है।

आगे चलकर लगभग 18 वीं शताब्दी का समय सामाजिक परिवर्तन के क्रान्ति का समय कहा जा सकता है। जिसमें अनेकों समाजशास्त्रियों ने समतमूलक समाजवाद की प्रतिष्ठा मे अपना महत्त्वपूर्ण यागदान दिया। डॉ. राम मनोहर लोहिया, जयप्रकाशनारायण आदि समाजसुधारकों ने तो लोकतान्त्रिक समाजवाद की स्थापना करके पूर्व वैदिक कालीन सामाजिक व्यवस्था को मानो पुनर्जीवित कर दिया। जिस पर संविधान सभा के अध्यक्ष डॉ. बी.आर. अम्बेडकर ने अपने संविधान सभा में दिये गये अन्तिम भाषण- 'सामाजिक लोकतन्त्र के आधार के बिना राजनीतिक लोकतन्त्र का अस्तित्व भी अधिक समय तक नहीं रह सकता' के द्वारा मानो मोहर ही लगा दी हो। इस प्रकार हम देखते हैं कि कुछ साम्यवादी अपवादों को छोड़कर वैदिक सामाजिक व्यवस्था आधुनिक परिप्रेक्ष्य में अत्यधिक प्रासंगिक है।

भारतीय समाज के वैदिक स्रोतों का विवेचनात्मक अध्ययन

डॉ. सावित्री शर्मा प्रभारी प्राचार्या, घनश्यामसिंह आर्य कन्या महाविद्यालय आर्यनगर, दुर्ग(छत्तीसगढ़)

विश्व का आदिग्रन्थ होने का गौरव सिर्फ वेदों को मिला है। आपाततः यह सिद्ध होता है कि उसके ज्ञान-विज्ञान, नियम-विधान, शास्त्र-विद्या, रीति-नीति, परम्पराएँ उत्तरोत्तर विकसित होती रहीं हैं। अतिदीर्घकाल तक वैदिक सिद्धान्त मानव जीवन के साथ व्यवहार बनकर मुखरित होता रहा। अनेक काल आए-गए। कालान्तर में स्रोत की शुद्धता स्थिर नहीं रह सकी और अनेक विकृतियाँ पनपने लगीं किन्तु प्रत्येक विकृति प्रकृति की मूल की स्रोत की गाथा गाती ही रही। वर्तमान भारतीय समाज की विकृतियाँ अपने वैदिक प्रकृतियों को भुला नहीं पाई हैं। समाजशास्त्रियों को यह तथ्य अवस्मरणीय रखना चाहिए।

यह शोधलेख समाज के विशिष्ट बिन्दुओं पर आधारित है और वैदिक प्रमाणों से सुपोषित हैं वेद में समाज शास्त्र है यह तो अन्य विद्याओं की तरह सिद्ध ही है। किन्तु वेद स्वयं समाजशास्त्र हैं। या यों कहें कि वेद समाजार्थ शास्त्र है क्योंकि वेद समाज के लिए बने हैं और समाज वेदों से बना है। वेदों से बने उस भारतीय समाज के सम्बन्ध में हम समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण को सामने रखकर कुछ बिन्दुओं पर प्रकाश डालना चाहते हैं जिसका आदर्श रूप सम्पूर्ण विश्व में पूजित है और होगा।

वैदिक वाङ्मय में समाजवाद का स्वरूप

डॉ. विजय कुमारी गुप्ता डी.ए.वी कॉलेज, जालन्धर पंजाब

समाज का अर्थ है- एक सभ्य मानव-समुदाय में एक-साथ रहकर, एक-दूसरे की अवश्यक रूप में परस्पर सहायता करते हुए रहना और इस पारस्परिक सम्पर्क तथा सौहार्द-स्थापन में शासन द्वारा भी सहयोग मिलना। वैदिक वाङ्मय में इस स्थिति की गूंज 'संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्' के रूप में सुनाई देती है। इस प्रकार समाजवाद के दो प्रमुख घटक हैं-परस्पर भाईचारा और शासन द्वारा सहयोग। वैदिक वाङ्मय में ऐसे अनेक वचन मिलते हैं जिन से ज्ञात होता है कि प्रजा और शासन में परस्पर सौहार्द-सम्बन्ध था। ऋग्वेद के दशम मण्डल का समस्त 173वाँ सूक्त इस मान्यता का साक्षी है।

विविध क्षेत्रों में वैदिक युगीन समाजवाद के दर्शन होते हैं। वैदिक साहित्य में अनेक स्थल ऐसे हैं जिनमें किसी एक विशिष्ट भूखण्ड की नहीं अपितु समस्त विश्व की हितैषणा की चिन्तनधारा बह रही है। जैसे हम सब प्राणियों को मित्रता-भरे नेत्रों से देखें। ऋग्वेद के प्रख्यात विवाह सूक्त में नववधू को पूरे परिवार के सदस्यों के प्रति सदा समादरभाव और मेलजोल रखने का जो उपदेश दिया गया है वह अन्ततः परिवार के साथ-साथ पूरे समाज को एक सूत्र में बाँधे रखने में सहायक होता है। यजुर्वेद में वर्णित शान्तिपाठ में अपने देश-वासियों के लिए ही नहीं, अपितु विश्वभर के मानवों और पशु-पक्षियों के लिए, पृथ्वी, जल, औषधि, वनस्पति आदि शान्तिदायक हो प्रार्थना की गई है। वैदिक युगीन ऋषि 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' का आह्वान करते हुए विश्व भर के मानव को हर दृष्टि से आर्य अर्थात् श्रेष्ठ एवं निष्कलंक देखने का अभिलाषी है। ऋग्वेद के अन्तिम सूक्त के चारों मन्त्र समाजवाद की गुंजार से विश्व भर को निनादित कर रहे हैं। केवल अन्तिम मन्त्र दर्शनीय है- 'इन सब मानवों का चिन्तन एक-सम्मान हो, हमारे हृदय एक-समान

हों, हमारी मनोभावनाएँ एक-समान हों, जिससे कि हम एक दूसरे से सदा सम्पर्क करते रहें तथा परस्पर सहायता प्रदान करते रहें।'

अत: निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि 'संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्........' यह समरसता ही वेद का समवेत गान है।

वेद प्रतिपादित समाज का स्वरूप

संगीता एम.ए. दर्शनशास्त्र गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

वेदों के अनुसार समाज रचना का मौलिक आधार वर्णाश्रम व्यवस्था है। ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद इत तीनों के पुरुषसूक्तों में मानव समाज को एक संगठित शरीर मानकर उसकी उपमा मनुष्य शरीर से दी गई है और बताया गया है कि मनुष्य शरीर में जो कार्य मुखं ओर उससे उपलक्षित सिर का है। मनुष्य समाज में वही वृत्ति ब्राह्मण की है। सिर में पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ एकत्र होती हैं और इस प्रकार अन्य अंगों की अपेक्षा सिर में पाँच गुना ज्ञान होता है। जिस प्रकार सिर पाँचों ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त होने वाले अपने ज्ञान द्वारा मनुष्य शरीर को मार्गदर्शन कराता है उसी भाँति जिसमें अन्य लोगों की अपेक्षा पाँच गुना अर्थात् बहुत अधिक ज्ञान हो और जो सिर की भाँति अपने ज्ञान द्वारा लोगों का मार्गदर्शन करता हो, वह ब्राह्मण है। मानव शरीर में जो कार्य भुजाओं का है वही कार्य समाज शरीर में क्षत्रियों का है। शरीर की भुजाएं जिस प्रकार अपनी सारी शक्ति से शरीर पर कहीं से भी होने वाले प्रहार से शरीर की रक्षा करती हैं, इसी भाँति जो लोग अपनी शक्ति और सामर्थ्य से अत्याचारी से लोगों द्वारा समाज के लोकों रक्षा का काम करे, वह क्षत्रिय है। मनुष्य शरीर में जो कार्य शरीर के मध्यभाग अर्थात् उदर का और जंघाओं का है, वही कार्य समाज शरीर में वैश्यों का है। उदर जिस प्रकार अपने आस-पास आए हुए अन्न आदि को पचाकर सारे शरीर के अंग-प्रत्यंगों में वितरण कर देता है और जंघाएं शरीर को इधर-उधर चलाती और दौड़ाती फिरती है, उसी प्रकार जो लोग भाँति-भाँति की भौतिक सम्पत्ति को अर्जित करने के लिए व्यापार आदि के कार्यो में दौड़ते फिरते हैं तथा अर्जित सम्पत्ति को राष्ट्र के सब लोगों के कल्याण के लिए देते और लगाते रहते है वे वैश्य हैं। मनुष्य के शरीर में जो कार्य पैरों का है वही कार्य समाज शरीर में शूद्रों का है। पैर जिस प्रकार हमारे शरीर को उठाये फिरते हैं वही कार्य समाज शरीर में शूद्रों का है। पैर जिस प्रकार सारे शरीर को उठाये फिरते है एवं समग्र शरीर की सेवा करते हैं, उसी प्रकार जो लोग ज्ञान आदि की कमी में ब्राह्मणदि के रूप में समाज की सेवा नहीं कर सकते अत: अपनी कम योग्यता के अनुसार ब्राह्मणादि तीनों वर्णो के लोगों की सेवा आदि का कार्य करके उनके कार्यों में उन्हें सहायता पहुँचाते हैं, वे शूद्र है। इस उपमा में एक बड़ी और मार्मिक बात की ओर संकेत किया गया है कि जिस प्रकार शरीर के किसी अंग में पीड़ा का अनुभव होने पर शेष सभी अंग पीड़ा का अनुभव करते हैं, उसी प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों को भी परस्पर एक दूसरे को अपना अंग और भाई समझना चाहिए तथा एक दूसरे के कष्ट को अपना मानकर उसे दूर करने के लिए पूरी शक्ति से प्रयत्न करना चाहिए।

वेदोक्त पारिवारिक व्यवस्था और 'मानस' में वर्णित परिवार

डॉ. मृदुल जोशी असिस्टेंट, प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, कन्या गुरुकुल महाविद्यालय, हरिद्वार

वेद भारतीय संस्कृति की अमूल्य धरोहर हैं। प्राचीन भारतीय सभ्यता, संस्कृति और समाज का विशद् और सुष्ठु वर्णन वैदिक साहित्य में उपलब्ध है। परिवार समाज की एक महत्त्वपूर्ण इकाई है। एक स्वस्थ, सभ्य, शिष्ट, शिक्षित एवं संगठित समाज के निर्माण के लिए एक स्वस्थ एवं सभ्य पारिवारिक इकाई का महत्त्व असंदिग्ध है। ऋग्वेद और अथर्ववेद सुखद पारिवारिक जीवन के सूत्र पकडाते हुए(मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षत्,मा स्वसारमुत स्वसा (अथर्ववेद 3.30.3)।, **अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः**(अथर्ववेद 3.30.2)।, **पत्युरनुव्रता भूत्वा प्रियवादिनी अनुव्रता**(अथर्ववेद 14.1.42 ; 3.25.4)। **जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवाम्**(अथर्ववेद 3.32)। संयुक्त परिवार की अवधारणा को पोषित करते हैं।

परिवार को सुन्दर स्वरूप देने मे स्त्री का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वैदिक व्यवस्था में **जायेदस्तम्**(ऋग्वेद 3.53.4) अर्थात् स्त्री को ही घर का स्वरूप मानते हुए उसे साम्राज्ञी (गृहस्वामिनी) का सम्माननीय स्थान प्राप्त है। ऋग्वेद के दशम मण्डल का निम्नांकित

सूक्त इसका प्रमाण है- **साम्राज्ञी श्वसुरे भव, सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव। ननान्दरि सम्राज्ञी भव, सम्राज्ञी अधि देवृषु।** (ऋग्वेद 10.85.46)

परिवार का शुभारम्भ पवित्र वैवाहिक संस्कार के द्वारा होता था। इसमें भोग कामना से अधिक सृष्टि-चक्र के अबाध संतरण कीमंगल कामना सन्निहित थी। विवाह की संकल्पना स्वस्थ और स्वच्छ समाज निर्माण के नैतिक उत्तरदायित्व का निर्वाह करती प्रतीत होती है, जहाँ पति-पत्नि का साहचर्य सौहार्द-सौमनस्य और सहनशीलता पर आधारित है। जिसका गठजोड क्षणिक न होकर जीवन भर का साथ है। समाज को वीभत्स विकृतियों से बचाने के लिए विधवा विवाह की भी स्वीकृति है। **'हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि सं बभूव'** (ऋग्वेद 10.18.8)।

लोकनायक तुलसी भारतीय संस्कृति के अमर गायक हैं। **'नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्'** की स्पष्ट स्वीकारोक्ति करती हुई उनकी विलक्षण कृति **'रामचरितमानस'** वेदोक्त जीवन मूल्यों से बहुत अधिक प्रभावित है। **'मानस'** में वर्णित पारिवारिक व्यवस्था पारस्परिक सम्बन्धों की दृढ़ता, अनुशासन, संयम, व्यवस्थापन, कर्त्तव्य और अधिकार की दिशा में किस सीमा तक वेदों का अनुसरण करती है, अटूट परिवार की संकल्पना मे वेदोक्त मूल्यों का इसमें कहाँ तक निर्वहण हुआ है- इन सभी तथ्यों का प्रस्तुत शोधपत्र में सम्यक् विवेचन करने का विनम्र प्रयास किया गया है। मानस के नायक राम और खलनायक रावण- दो विरोधी सांस्कृतिक परम्परा के परिवारों का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए वानर-परिवार तथा सामान्य प्रजाजन की पारिवारिक व्यवस्था को भी वैदिक मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में विश्लेषित करने का प्रयत्न किया गया है।

वेदों में वर्णित परिवार के तत्त्व

डॉ. देवेन्द्र सिंह सोलंकी रीडर एवं अध्यक्ष संस्कृत विभाग, संजय गांधी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मेरठ

ज्ञान के कोष वेदों को इस सृष्टि का प्राचीनतम वाङ्मय होने का गौरव प्राप्त है। भारतीय मनीषा तो वेदों को ईश्वरीय ज्ञान मानती है अतः भारतीयों किं वा वैदिक धर्मावलम्बियों के अनुसार वेद अपौरुषेय हैं। वेद ईश्वर के उपदेश है। आर्य समाज के संस्थापक- ऋषि दयानन्द के अनुसार तो "वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है।।" अतः वेद में सकल सत्य विद्याएं निहित होने के कारण सृष्टि के आदि काल से लेकर अद्यावधिपर्यन्त आचार विचार व्यवहार, आदर्श आदि सभी जीवनोपयोगी तत्त्व समाहित है। आदि काल को भारतीय मनीषा वैदिक काल मानती है एवं अपनी सभी प्रकार की समस्याओं का समाधान वेदों में ढूंढ़ती है। वेदों के विषय में अल्पतम ज्ञान रखने वाला सामान्य जन भी उनकी वर्ण व्यवस्था एवं आश्रम व्यवस्था से अपरिचित नहीं है वेदाध्ययन से पता चलता है कि वेदों के अनुयायी स्वयं को आर्य कहते थे। आर्यो ने अपने सम्पूर्ण समाज को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र इन चार वर्णो एवं ब्रह्मचर्य, गृहस्थ , वानप्रस्थ एवं सन्यास इन चार आश्रमों में बांटा हुआ था।

वर्णव्यवस्था जन्मना न होकर गुण, कर्म एवं स्वभाव के आधार पर चलती थी। इस प्रकार आश्रम व्यवस्था का विभाजन मनुष्य की आयु 100वर्ष मानकर ब्रह्मचर्य (1 से 25) गृहस्थ(25 से 50) वानप्रस्थ(50 से 75) एवं सन्यास 75 से आगे की आयु तक किया हुआ था। आश्रमस्थ जनों के आधार पर ब्रह्मचर्य वानप्रस्थ एवं सन्यास आश्रम में दीक्षित व्यक्तियों के अपने घर नहीं होते थे वे सब प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से गृहस्थ पर निर्भर करते थे अतः गृहस्थ के ऊपर उक्त तीनों आश्रमों के भरण-पोषण का भार होने के साथ-साथ स्वयं अपने(गृहस्थ) आश्रम के परिवार का भरण पोषण का दायित्व भी था गृहस्थ क्योंकि सपरिवार ग्राम या नगर में निवास करते थे अतः उस समाज व परिवार को नियमों, उपनियमों पर चलकर पालना पड़ता था। प्रस्तुत लेख में वेदोक्त परिवार के स्वरूप पर अल्प प्रकाश डालने का प्रयास भर है।

वेद में समाजशास्त्र

वाघ दक्षाबहन अेल. (रिसर्चफैलो) सौराष्ट्र युनिवर्सिटी, राजकोट(गुजरात)

वैदिक ऋषियों ने समाजसंस्था की स्थापना करने हेतु सद् व्यवहार तथा नैतिक आचरणों के विषय में जो कुछ कहा है उसका समाजशास्त्र के अन्तर्गत समावेश होता है। कवि की कृति के माध्यम से ही तत्कालीन समाज प्रगट होता है। वेदों में भी तत्कालीन सामाजिक नियमों, रूढि-परम्परा, वर्णव्यवस्था, आश्रमव्यस्था, नारी प्रतिष्ठा, विवाहप्रथा, विवाहविधि, कुटुम्बव्यवस्था, धनोपार्जनव्यवस्था, सामाजिक रीती-रिवाज, विवाह, सतीप्रथा, पुनर्लग्न, पति-पत्नि के कर्तव्यादि, सामाजिक-सुरक्षा के नियम, प्राथमिकी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु जलाशयादि की व्यवस्था, राज्यव्यवस्था के लिए राजनीति सम्बन्धी नियमों तथा तत्कालीन मानव-स्वभाव एवं सामाजि वास्तविकताओं का आलेखन वेद में मिलता है। वेद में निरूपित इस समाज के माध्यम से हम वेदकालीन समाजशास्त्र को व्याख्यायित कर सकते हैं।

प्रस्तुत शोधपत्र में वेद के कुछ प्रमुख समाजशास्त्र के लिए उपादेय सत्य प्रस्तुत किये जायेंगे, जिनमें पिता-पुत्र व्यवहार सम्बन्धी नियम, समाज में स्त्री की प्रतिष्ठा, सामाजिक रीत-रिवाज, सामाजिक कुरिवाज, कुटुम्बव्यवस्था, वर्णव्यवस्थानुसारी जातिप्रथा तथा धनोपार्जनव्यवस्था एवं राज्यव्यवस्था आदि समाज से संलग्न विषयों को विस्तार से प्रकाशित किया जायेगा।

जाति गत्यात्मकता- भारतीय समाज के सन्दर्भ में

डॉ. वन्दना नारायण रीडर (समाज शास्त्र) जु.दे.ग.पी.जी. कॉलेज कानपुर

जाति गत्यात्मकता को दो रूपों में स्पष्ट किया जा सकता है। प्रथम इसकी ऐतिहासिक विवेचना और द्वितीय वर्तमान समय में जाति प्रथा में होने वाले परिवर्तन। वर्तमान के तार अतीत से जुड़े होते हैं अतः वर्तमान को समझने के लिए अतीत को समझना आवश्यक हो जाता है। प्रसिद्ध विचारक डॉ. घुरिये ने जाति के इतिहास को चार कालों में बाँटा है। प्रथम- वैदिक काल, द्वितीय- उत्तर वैदिक काल, तृतीय- धर्मशास्त्र काल और चतुर्थ- वर्तमान काल। इन कालों के आधार पर ही जाति की गत्यात्मकता को स्पष्ट करते हुए वर्तमान में इस के अस्तित्व के सम्बन्ध में किसी निष्कर्ष पर पहुँचना आवश्यक है। इस बात को इस निबन्ध मे विवेचित किया जायेगा।

वैदिकसाहित्य में वर्ण-व्यवस्था

कु. निशा(शोधच्छात्रा) प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

प्राचीन भारतीय मनीषियों ने समाज-व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने के लिए जिन व्यवस्थाओं की नियोजना की उनमें वर्ण-व्यवस्था का स्थान सर्वोपरि है। इसके अन्तर्गत सम्पूर्ण भारतीय समाज को चार वर्णो यथा- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र में बांटकर प्रत्येक वर्ण के लिए कुछ आवश्यक नियमों एवं कर्त्तव्यों का निर्धारण किया गया ताकि प्रत्येक वर्ण उन नियमों का अपना धर्म और नैतिक कर्त्तव्य समझकर उनका पालन करें, उदाहरणार्थ ब्राह्मण का कार्य अध्ययन-अध्यापन तथा धार्मिक क्रिया-कलापों से सम्बन्धि त कर दिया गया। क्षत्रिय को शासन संचालन तथा देश एवं समाज की रक्षा का भार सौंपा गया। वैश्य को कृषि, पशुपालन एवं व्यापार के द्वारा लोगों की जीविका का प्रबन्ध करने का कार्य सौंपा गया और शूद्रों का कार्य सेवा से सम्बद्ध माना गया है। इस प्रकार समाज की मूलभूत आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर कार्य विभाजन किया गया जिससे व्यक्ति तथा समाज का समग्र विकास हो सके।

वैदिक साहित्य में वर्ण-व्यवस्था का बड़ा विशद् वर्णन मिलता है। वर्ण-व्यवस्था की उत्पत्ति के सन्दर्भ में अनेक मत व्यक्त किये गये हैं, जिनके आधार पर इनका वर्णन किया जा सकता है। इन सिद्धान्तों में दैवी सिद्धान्त, रंग का सिद्धान्त,कर्म तथा धर्म का सिद्धान्त, जन्म का सिद्धान्त, गुण का सिद्धान्त प्रमुख हैं। इन समस्त सिद्धान्तों के आधार पर चार वर्ण मानें गये हैं। ये चार वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र हैं। प्रत्येक वर्ण के अलग-अलग कर्त्तव्य निर्धारित किये गये हैं।

वेदों में समाज संरचना

डॉ. संचिता शर्मा रीडर, प्राचीन इतिहास विभाग, डी.ए.वी.कॉलेज, कानपुर

ऋग्वेद के आलोचनात्मक अध्ययन से ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज साधारणतया दो भागों में विभाजित था- 1. आर्य, 2. दस्यु। वेदकालीन समाज में व्यक्ति व समष्टि के बीच सामंजस्य स्थापित करने के लिए वर्णाश्रम व्यवस्था के रूप में एक सुन्दर जीवनक्रम तैयार किया गया है। ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य व शूद्र वर्णों में समाज को व्यवस्थित कर प्रत्येक वर्ण के कर्तव्य कर्म निर्धारित किये गये थे। इस निर्धारण में अर्थशास्त्र के 'श्रम विभाजन' के सिद्धान्त को भी प्रयुक्त किया गया था। ऋग्वेद में आलंकारिक भाषा में चारों वर्णों को समाजरूपी पुरुष के विभिन्न अंगों से सम्बन्धित किया गया है। ब्राह्मण उस समाज रूपी पुरुष के मुख थे उसकी भुजायें क्षत्रिय बनी, उसकी जंघायें वैश्य बनी तथा पैरों से शूद्र उत्पन्न हुये।

आश्रम व्यवस्था का सम्बन्ध मनुष्य के वैयक्तिक जीवन से था। इस व्यवस्था के द्वारा मनुष्य को अपने व्यक्तित्व के सम्पूर्ण विकास का अवसर प्राप्त होता था। वैदिक साहित्य में मनुष्य की आयु साधारणतया सौ वर्ष मानी गयी है। आत्म विकास वेदकालीन सामजिक जीवन का मूल मन्त्र था। यद्यपि समाज जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में प्रगतिशील रहता था व ऐहिक समृद्धि एवं ऐश्वर्य की प्राप्ति में कोई कसर नहीं रखता था, फिर भी समाज की सम्पूर्ण प्रगति आत्म-विकासोन्मुख रहती थी। आत्म-साक्षात्कार मानव के समस्त प्रयत्नों का केन्द्रीय स्थान था। आत्मसाक्षात्कार या मोक्ष मानव जीवन का चरम लक्ष्य है।

पुनर्जन्म के सिद्धान्त का भी वेदकालीन समाज में महत्त्वपूर्ण स्थान था। वेदकालीन भारत में मनुष्य केवल हाड़ मांस का पंजर व आर्थिक आवश्यकताओं का समुदाय ही नहीं माना जाता था। उसका सबसे महत्त्वपूर्ण अंश आत्मा था जिसको समझना मानव जीवन का एक ध्येय माना गया था। वैदिक युग में भौतिकता एवं आध्यात्मिकता में सामंजस्य स्थापित किया गया था एवं दोनों क्षेत्रों में पर्याप्त विकास किया गया था।यही कारण है वेदकालीन समाज में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में दार्शनिकता का पुट था।

अभिज्ञानशाकुन्तलम् में वैदिक वर्णाश्रमव्यवस्था

आरती (शोधच्छात्रा) संस्कृत विभाग, गुरुकुल कांगड़ी वि.वि. हरिद्वार

वेदों में मनुष्य जाति के लिए चार प्रकार के वर्णों का विधान है- ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र। वेदों में प्रतिपादित वर्णव्यवस्था का आधार गुण, कर्म, स्वभाव है। चार वर्णों के समान ही आश्रम भी चार ही हैं- ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास। ये आश्रम जीवन के चार सोपान हैं।

वैदिक वर्णव्यवस्था का परवर्ती साहित्य पर गहरा प्रभाव पड़ा है। विशेषकर रामायण, महाभारत आदि महाकाव्यों के ऊपर। इसी सन्दर्भ में महाकवि कालिदासकृत 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' भी उल्लेखनीय है। जो प्रस्तुत शोध आलेख का विषय भी है। इसके अन्तर्गत 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में वर्णव्यवस्था प्रतिपादक निम्न श्लोक प्राप्त होता है-

यदुतिष्ठति वर्णेभ्यो नृपाणां क्षयि तत्फलम्।

तपः षड्मागमक्षम्यं ददयारण्यकाहि नः।।

इसी तरह वर्णव्यवस्था तथा आश्रमव्यवस्था का दिग्दर्शन कराने वाला निम्न अनुच्छेद भी प्राप्त होता है-'भो भोस्तपस्विनः असावत्रभवान् वर्णाश्रमाणां रक्षिता प्रागेव मुक्तासनो वः प्रतिपालयति।'

प्रस्तुत शोध-निबन्ध में चारों वर्णो एवं चारों आश्रमों का उल्लेख करते हुए यह भी दर्शाने का प्रयास किया जायेगा कि वेदोक्त वर्णाश्रम व्यवस्था का महाकवि कालिदास की कालजयी कृति 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' पर गहरा प्रभाव पड़ा है। संक्षेप में प्रस्तुत शोध-आलेख का यही प्रतिपाद्य विषय है।

ऋग्वैदिक साहित्य में पारिवारिक व्यवस्था

नाज़िया कमाल अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़

विश्व साहित्य की सबसे प्राचीन रचना वेद है। चारों वेदों में ऋग्वेद को सबसे प्राचीन और मौलिक कहा जाता है ऋग्वेद में सुव्यवस्थित समाज, राज्य-व्यवस्था, ग्राम, कृषि, वाणिज्य, मनोरंजन, ऋषि, देवता, पशु-पक्षियों आदि सभी का उल्लेख है। उसके साथ-साथ परिवार, परिवार के बीच के संबन्ध रीति-रिवाज और प्रथाओं का भी वर्णन मिलता है।

'ऋग्वेद अपने समय के समाज के निजी, पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक जीवन और दार्शनिक-आध्यात्मिक चिन्तन का दर्पण है।'

मानव समाज अति-प्राचीन काल से परिवार के रूप में विकसित होता रहा है। परिवार का आरम्भ स्त्री-पुरुष के पति-पत्नी के रूप मे साथ रहने से होता है। और साथ में माता-पिता, भाई-बहन, पुत्र-पुत्री आदि सदस्य भी परिवार में होते हैं, जो परस्पर प्रेम और दायित्वों से बँधे होते हैं

परिवार शब्द परिव्रियते अनेन परि+वृ+घञ् प्रत्यय के संयोग से बना है। जिसका अभिप्राय है एक ही कुल में उत्पन्न और परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध रखने वाले मनुष्यों का समुदाय। ऋग्वेद में पारिवारिक जीवन को बहुत महत्त्व दिया गया तथापरिवार को लेकर काफी कुछ कहा गया है। पति-पत्नी, इन्हें एक सूत्र में बाँधने वाला विवाह, सास-ससुर, देवर-भाभी, परिवार बनाने वाले इकाईयों के आपसी सम्बन्धों पर मन्त्र कहे गये हैं तथ सु-परिवार की कामना की गई है। ऋग्वेद में जिस तरह की पारिवारिक व्यवस्था का वर्णन हुआ है, वह सब आज भी हमारे लिए अजनबी नहीं है। ऋग्वेद से चली आ रही विरासत को सही परिप्रेक्ष्य में देखने की जरूरत है। ऋग्वेद से आरम्भ होकर हड़प्पा-सभ्यता से होते हुए आज तक की जो पारिवारिक व्यवस्था की निरंतरता है, उसे विस्तार से शोध पत्र में गवेषित किया जायेगा।

वैदिक और उत्तरवैदिक काल में परिवार व्यवस्था

डॉ. अलका रानी रीडर एवं अध्यक्ष- समाजशास्त्र विभाग जनता वैदिक कॉलेज बड़ौत (बागपत)

हम कह सकते हैं कि वैदिक और उत्तर वैदिक समाज में संयुक्त परिवार व्यवस्था प्रमुख परिवार व्यवस्था थी। परिवार पितृसत्तात्मक होता था जिसमें पिता प्रमुख भूमिका निभाता था। पुत्र को वंशवृद्धि के लिये आवश्यक समझा जाता था। परिवार में स्त्रियों का विशेष रूप से माँ का विशेष स्थान था लेकिन साथ ही समय-समय पर विभिन्न कारणों से यह परिवार विघटित भी होता था चाहे उसका कारण परिवार के आकार में वृद्धि हो या पिता का वृद्ध होना या भाइयों में आपस में मतभेद होना या स्त्रियों मं आपस में कलह, परिवार का विघटन तो उस समय भी होता था। यद्यपि प्रवृत्ति परिवार का संयुक्त बनाये रखने की ही अधिक थी तथापि पृथक् परिवार का समर्थन और प्रशंसा भी देखी जा सकती थी।

समकालीन समय में संयुक्त परिवार के विघटन की बात आमतौर से कही-सुनी जाती है लेकिन वह संयुक्त परिवार जिसकी जड़ें वेदों से जुड़ी हैं, समकालीन में भी चर्चा का विषय है। आखिर क्यों? सम्भवत: इसका कारण यह है कि तत्कालीन भारतीयों ने पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन का विकास बहुत सोच समझकर किया था। तभी तो क्रूर काल के थपेड़ों के बावजूद भी संयुक्त परिवार किसी न किसी रूप में आज भी विद्यमान है और अध्ययन चिन्तन एवं मनन का विषय है।

वेदों में वर्ण तथा जाति व्यवस्था के सन्दर्भ में दलित विमर्श

डॉ. नीरज कुमार सिंह प्रवक्ता हिन्दीविभाग, चौ. चरणसिंह पी.जी0 कॉलेज हैवरा इटावा

ऋग्वैदिक काल से ही भारतीय सामाजिक जीवन में वर्ण भेद की झाँकी तो देखने को मिलती है लेकिन जातिगत भेदभाव नहीं दिखाई पड़ता। सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखने हेतु आर्यो के समाज का विभाजन हो गया जिसके द्वारा कार्यों के आधार पर

समाज को चार वर्णों में बांटा गया। इस प्रकार सामाजिक व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिये वर्ण विभाजन किया गया। यह विभाजन कर्म प्रधान था। कोई भी व्यक्ति अपनी इच्छा एवं योग्यतानुसार किसी भी कार्य का चयन कर सकता था। ऋग्वेद में वर्णन है कि मैं एक कवि हूँ। मेरे पिता वैद्य हैं। मेरी माता आटा पीसती हैं। साधन भिन्न हैं, परन्तु हम सभी धन की कामना करते हैं।

आज वर्तमान समय में दलित शब्द से दबे, कुचले तथा अति निम्न वर्ग का प्रतिनिधित्व कर रहा है। आज के इस आर्थिक युग में अविकसित जातियों को दलित विशेष वर्ग से सम्बन्धित कर दिया जाता है। वस्तुतः जाति एक पहचान है जो कर्म पर आधारित होती है। दलित विमर्श को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखने से पता चलता है कि प्रारम्भ में दलितों को कर्मानुसार उच्च स्थान प्राप्त थे। रामायण रचयिता वाल्मीकि निम्न जाति से थे। महाभारत रचयिता व्यास एक धीवर कन्या से उत्पन्न हुये थे। ऐतरेय ब्राह्मण रचयिता महर्षि आत्रेय का जन्म एक शूद्र परिवार में हुआ था। महात्मा विदुर दासी पुत्र थे। भीम का पुत्र घटोत्कच राक्षसी (अनार्य) कन्या हिडिम्बा से उत्पन्न हुआ था। रैदास जाटव थे। कबीर जुलाहा थे। सेनाभगत नाई थे। जाति तथा वर्ण कीवर्जनाओं को तोड़ते हुए इन सभी ने तत्कालीन समाज में ऊँचा स्थान प्राप्त किया।

हमारे समाज में यह व्यवस्था थी कि कर्मानुसार शूद्र वर्ण उच्च वर्ण प्राप्त कर सकता था तो उच्च वर्ण निम्न वर्ण को प्राप्त करते थे। जैसे पुराणों के आधार पर राजा पैर भी क्षत्रिय से शूद्र हो गये। उस समय अन्तर्वर्ण विवाह का भी प्रचलन था। द्विजों और शूद्रों के मध्य विवाह सम्बन्ध स्थापित होते थे। जैसे महाभारत में धीवर कन्या सत्यवती का महाराज शान्तनु से विवाह, भीम का हिडिम्बा से विवाह। विभिन्न वर्णों के बीच खानपान के सन्दर्भ में राम और शबरी का उदाहरण प्रस्तुत कर सकते हैं। राम ने शबरी के जूठे बेर खाकर उसका आतिथ्य स्वीकार किया। इस तरह हम देखते हैं कि हमारी वैदिक कालीन वर्ण व्यवस्था में कर्म की प्रधानता थी-

'जन्मना जायते शूद्रः कर्मणा द्विज उच्यते।' (मनुस्मृति) परन्तु कालान्तर में हमारी वर्ण व्यवस्था में चौथे वर्ण(शूद्र) को जन्म केआधार पर शूद्र माना जाने लगा। कर्म की प्रधानता का स्थान संकीर्ण जातिवाद ने ले लिया। अतः आज के इस युग में हम सभी को कर्म प्रधान मानते हुए सभी जातियों को समान दृष्टि से देखना चाहिए तभी मानवता की विजय होगी।

वैदिक काल में संयुक्त परिवार की अवधारणा

डॉ. देवेन्द्र गुप्ता रीडर, प्रा.भा.इ.सं. एवं पुरातत्व, गुरुकुल कांगड़ी वि.वि. हरिद्वार

डॉ. हिमांशु पण्डित तदर्थ प्रवक्ता, प्रा.भा.इ.सं. एवं पुरातत्व, गुरुकुल कांगड़ी वि.वि. हरिद्वार

परिवार मानव जीवन की वह अभूतपूर्व खोज है जिसने न सिर्फ मनुष्य जीवन को पूर्ण स्थाई एवं सुखमय बनाया अपितु यही वह इकाई भी बना जिसने मानव को उसके प्रत्येक प्रकार के संघर्षों में एक सशक्त अवलम्बन भी उपलब्ध कराया। परिवार एवं सन्तानोत्पत्ति की इस अवधारणा ने ही मरणधर्मा मानव जाति को अमृतत्व प्रदान किया। परिवार ही मनुष्य के आत्मसंरक्षण, वंशवर्धन एवं जातीय जीवन के सातत्य का मुख्य साधन भीबन पड़ा है।

वैदिक काल से ही मनुष्य जीवन में पारिवारिक प्रणाली और अवधारणा का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। तैत्तिरीय उपनिषद् में भी 'प्रजातन्तु मा व्यवत्छेत्सी' के माध्यम से पुत्र-पौत्रादि के सहित संयुक्त परिवार की कामना की गई है। वास्तव में संयुक्त परिवार में माता-पिता, पुत्र-पौत्रादि के साथ एवं अन्य अनेक सदस्यों के साथ निवास करते थे जो एक धार्मिक क्रियाएँ सम्पन्न करते थे तथा उनका भोजन भी साथ ही बनता था परिवार का मुखिया पिता ही होता था इसलिए समस्त सम्पत्ति का अधिकारी भी वही होता था किन्तु फिर भी संयुक्त परिवार होने के कारण सभी सदस्य समानरूप से सम्पत्ति का उपभोग करते थे।

प्रस्तुत शोध-पत्र में वैदिक कालीन संयुक्त परिवार प्रणाली पर अध्ययन किया जाएगा। परिवार की सदस्य संख्या, पिता की मृत्यूपरान्त मुखिया का चुनाव, गृहपति के अधिकार एवं कर्त्तव्य, माता-पिता पुत्र-पुत्री के साम्पत्तिक अधिकार आदि का अध्ययन प्रस्तुत शोध-पत्र में विस्तार पूर्वक किया जाएगा।

वेदों में निरुपित समाजजीवन का महत्त्व

प्रा. अरविन्द एच. नन्दाजिया महिला कॉलेज, गुजरात

भारत की विशद् ज्ञानधारा के आदिस्रोत वेद हैं। विश्वसाहित्य में वेदो प्रथम स्थान पर है, जो सबसे प्राचीन है। उसमें सभी जाति का कल्याण, सुखकारी और बौधपाठ दिया गया है। वेदवाणी सबसे पुरानी है, उतनी ही नई है। वेद इतना हितकारी है कि उसका नाम सुनते ही अपने मस्तक भाव से झुक जाता है। वेद भारतीय संस्कृति और समाज जीवन का आधार है, वेद मानव समाज का आध ार है। हमारे ऋषियों ने वेदों में विभिन्न विषयों को लेकर भारतीय संस्कृति को अनमोल भेंट दी है। इसमें समाज एवं समाज जीवन के बारे में भी बताया गया है।राष्ट्र के अंग के समान समाज है, वह राष्ट्र का ही एक है। अत: राष्ट्रविकास के लिये समाज का विकास करना आवश्यक है। आदर्श समाज, समाजजीवन कैसा होना चाहिए, उसकी विचारणा वेदों में भी मिलती है। हम उनका अनुकरण करके आदर्श समाज बना सकते हैं। वैदिक युग में संयुक्त परिवार व्यवस्था और पितृप्रधान प्रणाली प्रचलित थी। किन्तु सभी लोग का समाज में महत्त्व रहता था। विवाह को एक पवित्र बन्धन माना जाता था और स्त्रियों के प्रति बडा आदर था। समाजजीवन का हर एक कोना अपने कर्तव्य के प्रति जागृत था। जैसे की माता संन्तान की सबसे श्रेष्ठ शिक्षक थी, वह अपने पुत्र में संस्कार डालती थी। पिता पालन-पोषण, शिक्षण और रक्षण करते थे। पत्नी पूर्ण पतिव्रता के साथ पतिसेवा में रत रहती थी, और पति पत्नी का रक्षण एवं पोषण करता था। पुत्र अपना तन-मन लगाकर माता-पिता की सेवा करता था और पुत्र गृहकार्य में कुशल बनती थी। इस प्रकार वेदों में समाज-समाजजीवन का जो निरूपण है वह आज भी उतना ही आवश्यक है।

मांसाहार-मीमांसा

सच्चिदानन्द पाठक वरिष्ठ अध्यापक, राजकीय जे.के. इण्टर स्तरीय विद्यालय, बेगूसराय(बिहार)

सभी प्राणियों के हितचिन्तन की भावना जिसमें हो, वह हिंसा, बध, अभक्ष्य-भक्षण का आग्रही नहीं हो सकता। ऐसे में कुछ ज्ञानलवदुर्विदग्ध लोगों ने वेदों पर लांछन लगाने की अशिष्ट चेष्टाएँ की हैं, उन पर दोषारोपण का दुस्साहस कियाहै। अपनी जिह्वा के स्वाद को संतृप्त करने के कुत्सित उद्देश्य से 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' की रट लगाने लगते हैं। वेदविहित हिंसा का नाम हिंसा नहीं है, ऐसा कहा करते हैं। वेदों की तो यह स्पष्ट आज्ञा है।

'मा हिंस्यात् सर्वा भूतानि'

किसी भी प्राणी की हिंसा न करें, फिर वैदिकी हिंसा क्या वस्तु है? किसी निरपराध पशु के रक्त-मांस से परमेश्वर को तृप्त करने की कल्पना कितनी बीभत्स है। यह तो- 'मामात्म परदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयका:' के अनुसार स्पष्ट, ईश्वर द्रोह है। माँस खाने की प्रवृत्ति मनुष्य में स्वाभाविक नहीं है यह तो निशाचरों के प्रयत्न से हुई है-

'मांसानं खादनं तद्वन्निशाचरसमीरितम्।'

महाभारत अनुशासनपर्व में कहा गया है कि प्राचीन काल में मनुष्यों के यज्ञ-यागादि केवल अन्न से ही हुआ करते थे। मद्य-मांसादि की प्रथा तो पीछे से धूर्त असुरों ने चला दी। वेद में इन वस्तुओं का विधान नहीं है-

'श्रूयते हि पुरा कल्पे नृणां ब्रीहिमय: पशु:।
येनायजन्तयज्वान: पुण्यलोकपरायण:।। महाभारत अनु. 115/56
सुरां मत्स्यान् मधु मांसमासवं कृसरौदनम्।
धूर्तैः प्रवर्तितं ह्येतन्नैतद् वेदेषु कल्पितम्।। महा. शान्ति. 265/9

वैदिक यज्ञों में तो माँस का इतना विरोध है कि माँस जलानेवाली आग को सर्वथा त्याज्य निश्चित कर दिया गया है।

क्रव्यादमग्निं प्रहिणोमि दूरं यमराज्ञो गच्छतुरिप्राह:।
इहैवायमितरोजातवेदा देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन्।। ऋ. 7/6/21/9

मैं माँस खाने या जलानेवाली आग को दूर हटाता हूँ, यह पाप का भार ढोनेवाली है, अत: यमराज के घर में जाय। इससे भिन्न

जो ये दूसरे, पवित्र और सर्वज्ञ अग्निदेव हैं, इनको ही यहाँ स्थापित करता हूँ। ये इस हविष्य को देवताओं के समीप पहुँचाएँ क्योंकि ये सब देवताओं को जानने वाले हैं।

वेदों में प्रतिपादित समाज-कल्याण की अवधारणा

डॉ. भारतेन्दु द्विवेदी का.न.रा.स्नातकोत्तर महाविद्यालय(ज्ञानपुर) भदोही।

वेद मानव-मात्र के सर्वस्व, प्रकाश-स्तम्भ और शक्ति के स्रोत हैं। वेद मानव जीवन के मार्गदर्शक हैं। वेद वह ईश्वरीय ज्ञान है जो सृष्टि के प्रारम्भ में मानव के कल्याण के लिए ऋषियों के माध्यम से प्रदान किया। वेदों में समाज को समुन्नत बनाने के लिए कर्तव्य कर्मों का सूत्ररूप में उल्लेख है। विश्व को संस्कृति का ज्ञान देने का श्रेय वेदों को है। वेद ही विश्वशान्ति, विश्वबन्धुत्व और विश्वकल्याण के प्रथम उद्घोषक हैं। वेदों से ही उदात्त आदर्शों का ज्ञान होता है। वेदों के अनुसार ही व्यक्ति को अपने कर्तव्यों को समझना चाहिए तथा अपने धर्म का पालन करना चाहिए।

व्यक्ति और समाज एक दूसरे के अंग हैं। व्यक्ति व्यष्टि है तो समाज समष्टि है। समाज का अभ्युदय व्यक्ति के अभ्युदय में निहित है। वेदों के प्रति निष्ठा चतुर्दिक समुन्नति का मार्ग प्रशस्त करती है। आज व्यक्ति स्वार्थ की भावना प्रबल होने के साथ ही किसी भी तरह धनार्जन ने उसे आधुनिक युग की एक मशीन बना दिया है। उसके अन्दर संवेदनाओं के ह्रास ने उसे परिवार और समाजसे दूर कर दिया है। इस विकृति से समाज में विभिन्न प्रकार की समस्याएं उत्पन्न हो रही हैं। परिविार और समाज में विघटन की स्थिति उत्पन्न हो रही है। व्यक्ति में मानसिक शान्ति नहीं है। विशेषरूप से पाश्चात्य देशों में यह समस्या प्रबल है। स्वच्छन्दता से विश्व में राष्ट्रों की एकता और शान्ति भी प्रभावित हो रही है। इन समस्याओं का समाधान वेदों में निहित है। वेदों की ज्योति विश्व बन्धुत्व, विश्वकल्याण और विश्वसमृद्धि की प्रेरक है।

सामाजिक जीवन के चार स्तम्भ माने गए हैं- आचार, धर्म नैतिकता और व्यवहार। धर्म आध्यात्मिक शुद्धि का आधार है तथा मानवधर्म की शिक्षा देता है। नैतिकता नैतिक जीवन के विकास की शिक्षा देता है। नैतिकता नैतिक जीवन के विकास की शिक्षा देती है। व्यवहार में लोक जीवन के लिए अपनाने योग्य गुणों का समावेश है। वेदों में इनका विस्तृत विवेचन है। मनुष्य के कर्तव्य और अकर्तव्य का मार्गदर्शन है। वेद अंधकार से प्रकाश की ओर, अवनति से उन्नति की ओर तथा संकोच से विकास की ओर ले जाने का मार्गदर्शन करने में समर्थ है। समुन्नत समाज बनाने के लिए आवश्यक है कि वेदों में प्रतिपादित उन मार्गदर्शक सिद्धान्तों और मूल्यों को पुन: अपनाया जाए।

प्रस्तुत शोधपत्र का यही प्रतिपाद्य है। शोधपत्र के माध्यम से समुन्नत कल्याणकारी वैदिक समाज की परिकल्पना को साकार करने का प्रयास किया गया है।

वैदिक काल में नारी की स्थिति का समाजशास्त्रीय अध्ययन

डॉ. रोमा श्रीवास्तव बृहस्पति महिला महाविद्यालय कानपुर

हिन्दू जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नारी समान रूप से आहत और प्रतिष्ठित थी। शिक्षा, धर्म, व्यक्तित्व और सामाजिक विकास में उसका महत्त्वपूर्ण स्थान था। वह स्वतन्त्रतापूर्वक शिक्षा ग्रहण करती थी। पुरुषों की तुलना में वह किसी प्रकार निम्न व अनुन्नत नहीं थी। वह पति के साथ प्रत्येक कार्य में सहयोग प्रदान करती थी पति-पत्नी, को समान अधिकार था। धार्मिक उपासना 'दम्पत्ति' मिलकर करते थे। पारिवारिक यज्ञों में नारी का क्रियात्मक सहयोग रहता था। नारियाँ वैदिक शिक्षा के साथ यज्ञादि सम्पादन कर सकती थी। उनको भी पुरुषों के साथ उपनयन संस्कार होता था। वेदों में अनेकों जगह लोपमुद्रा, घोषा, सूर्या, अपाला, विलोमी, सावित्री, विषम्भरा, कामायनी, देवयानी आदि के नाम मिलते हैं, जिन्हें सिद्धता के आधार पर श्रषिका कहा गया है। इस प्रकार वह पुरुषों की ही तरह समाज की स्थायी और गौरवशाली अंग थी। वह अत्यन्त सुशिक्षित, सुसभ्य और सुसंस्कृत होती थी। वैदिक युग से गृह और पत्नी का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध माना जाने लगा था। और बिना पत्नी के गृह की कल्पना व्यर्थ मानी गई। शिक्षित कन्या के लिये पुरुषों द्वारा विशेष

अनुष्ठान का आयोजन किया जाता था। ब्राह्मण ग्रन्थों में भी 'स्त्री हि ब्रह्मा बभूविव' यानी उन्हें ब्रह्मा, सृजनकर्ता तक कहा गया। ध र्म तथा समाज के क्षेत्र में उन्हें पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त थी राजऋषियों तथा तत्कालीन सभाओं में जब विभिन्न विचार धाराओं के लोग दार्शनिक तथा आध्यात्मिक चर्चाओं में भाग लेते थे तब इनमें स्त्रियों की भी सफलतापूर्वक भागीदारी रहती थी।

धीरे-धीरे उत्तरवैदिक काल में स्त्रियों का आदर घटने लगा। नारी की स्वतन्त्रता कम हो जाने से अब वह केवल धार्मिक शिक्षा ही प्राप्त कर सकती थी। इतना ही नहीं कन्या जन्म भी अब विपत्ति का कारण माना जाने लगा था तथा उसे शूद्र से भी नीच कहा जाने लगा था । इस समय तक पुत्र को स्वर्गतुल्य और कन्या को कृपणम माना जाने लगा तथा पिता के धन पर कन्या के अधिकार का निषेध कर दिया गया।

इस प्रकार वैदिक काल के समाप्त होने के पूर्व ही नारियों के पतन का काल प्रारम्भ हो चुका था। नारी अपना स्वतन्त्र अस्तित्व खोकर, पुरुष की छाया मात्र बन गई थी। ऋग्वैदिक काल से उत्तर वैदिककाल तक आते-2 नारियों की सामाजिक स्थिति घटने लगी थीं तथा स्त्रियां घर की चार दिवारी तक सीमित हो गयी।

गौतम धर्मसूत्र में वर्णित वर्ण-व्यवस्था

राकेश कुमार शर्मा हि.आ.कॉलेज, शिमला हिमाचल प्रदेश

वेद को समझने के लिए वेदाङ्गों का ज्ञान नितान्त आवश्यक है। छः वेदाङ्गों में कल्पसूत्र का अपना स्थान है। कल्पसूत्रों में श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र और शुल्वसूत्र हैं। वैसे तो वेद की प्रत्येक शाखा का अपना अपना धर्मसूत्र रहा होगा परन्तु वर्तमान समय में बहुत ही कम धर्मसूत्र उपलब्ध होते हैं।

इन सभी धर्मसूत्रों में गौतम सूत्र सबसे प्राचीन, सुप्रसिद्ध तथा प्रतिष्ठित धर्मसूत्र है। इस धर्मसूत्र का सम्बन्ध सामवेद से है। गौतमसूत्र में चारों वर्णो(ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) के कर्मो का विशेष रूप से विवेचन किया गया है। इस में ब्राह्मण के छः कर्म हैं- वेद पढ़ना और पढाना, यज्ञ करना और कराना दान लेना और देना। क्षत्रिय के लिए इन छः कर्मो से अतिरिक्त दण्ड देना और युद्ध करना अधिक कर्म हैं। कृषि करना, व्यापार करना, पशुपालन और ब्याज से धन प्राप्ति करना ये वैश्य के मुख्य कर्तव्य हैं। शूद्रों के लिए अपने से उच्च वर्णो (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) की सेवा करना प्रमुख कर्म हैं।

वेदों में पारिवारिक जीवनमूल्यों की उदात्तता

डॉ. जे.एन. त्रिपाठी शासकीय हमीदिया कला एवं वाणिज्य स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भोपाल (म०प्र०)

'यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्', 'वसुधैव कुटुम्बकम्' जैसे उदात्त जीवन मूल्यों का पोषक भारतीय परिवार आर्थिक प्रगति के पथ पर अग्रसर होता हुआ भी वैदिक जीवन मूल्यों से विमुख होकर पाश्चात्य सभ्यता का अन्धानुकरण करता हुआ विघटन के कगार पर खड़ा है। 'परिव्रियते अनेन इति परिवार:' इस तरह माता-पिता, भाई-बहिन, पति-पत्नी आदि के समुदाय का नाम परिवार है। वेद ने 'केवलाघो भवति केवलादि:' कहकर परिवार के सभी सदस्यों में पारस्परिक सहयोग, सहायता की कामना की है। तथा सभी के कर्म निर्धारित करते हुये स्वकर्म करते हुये संसार में सौ वर्ष जीने की इच्छा की गई है- कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः। (ईशावास्योपनिषद) पुत्र के कर्तव्य को इंगित करते हुये अथर्ववेद में कहा गया है कि 'स्वस्ति मात्र उत पित्रे नो अस्तु'। अर्थात् माता-पिता के प्रति सद्भाव एवं प्रशान्त आचरण होना चाहिये। जिससे वे सदा सन्तुष्ट एवं प्रसन्न रहकर हमें सुभाशीर्वाद देते रहें। पुत्र के आदर्श को प्रतिष्ठापित करता हुआ वैदिक ऋषि कहता है कि मैं जिस ममतामयी मां की गोद में प्रमुदित होकर जिस अमृतमय स्तन्य का पान करता हुआ पैरों के आघात द्वारा उसे पीडित करता रहा। उसके लालन पालन के कारण मैं बड़ा हो गया हूँ। मेरे वे वृद्ध, अशक्त माता-पिता मुझसे कभी पीड़ित न हों- यदा पिपेष मातरं पुत्रः प्रमुदितो धयन्।

एतत्तदग्रे अनृणो भवाम्यहतौ पितरौ मया।। यजु० 19/11,

तुच्छ स्वार्थो को लेकर पारिवारिक कलह को दूर करने के लिये 'मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्' आदि कहकर परस्पर शुभाचरण पूर्वक

मिलजुलकर रहने की प्रेरणा दी गई है। इतना ही नहीं वैदिक ऋषि चाहता है कि परिवार के सभी लोग परस्पर उसी तरह स्नेह रखें, जैसे-गौ अपने सद्यो जात वत्स के प्रति स्नेह रखती है। 'जहां सुमति तहं सम्पति नाना' कहते हुये तुलसीदास ने पारिवारिक अभ्युन्नति के लिये जिस सुमति की आवश्यकता प्रतिपादित की है, इस सुमति की प्रार्थना वैदिक काल से चली आ रही है।

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानां रातिरभिनो निवर्तताम्। ऋक् 1/89/2। इस प्रकार सुमति तथा सामञ्जस्य के द्वारा ही पारिवारिक जीवन में स्वर्गीय सुख की कल्पना की जा सकती है। कोई एकाकी प्रगति के पथ पर अग्रसर नहीं हो सकता। किन्तु आत्मकेन्द्रित मानव की भौतिकता के प्रति बलवती लालंसा सारा सुख स्वयं बटोर लेने के लिये लालायित है। इस सुख बटोरने की होड़ में पारिवारिक विघ्टन के साथ शोषण एवं दोहन की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। परिवार की विघ्टता न केवल समाज बल्कि पूरे राष्ट्र को खोखला कर रही है। आवश्यकता है, वेदों में प्रतिपादित इन उदात्त जीवनमूल्यों को पहचानने की। क्योंकि इस विषम परिस्थिति में वेदों से उद्‌भूत निश्छल प्रेम का बीज न केवल परिवार अपितु समाज एवं राष्ट्र से ऊपर उठकर पूरी मानव जाति में समरसता लाने के लिये प्रतिबद्ध है- 'मा वि यौष्ट अन्यो अन्यस्मै फल्गु वदन्त एत'। अथर्व० 3/30/5।

वैदिक साहित्य में वर्णित भारतीय परिवार व्यवस्था एवं प्रासंगिकता

रवि प्रकाश, वरिष्ठ प्रवक्ता (समाजशास्त्र विभाग) राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय ऋषिकेश

परिवार सम्पूर्ण समाज की आधारशिला है। भारतीय परिवार का संरचनात्मक आदर्श पश्चिमी परिवार के ढांचे से बिल्कुल पृथक है। इसमें निरन्तरता, साहचर्य तथा पारस्परिक अधिकार एवं कर्तव्य की भावना निहित है। परिवार के सदस्यों के बीच सामाजिक बन्धन् व्यापक और दृढ़ होते हैं। भारतीय परिवार व्यवस्था मुख्य रूप से वैदिक दर्शन एवं साहित्य पर आधारित रही है। प्रस्तुत शोधपत्र के दो मुख्य उद्‌देश्य हैं:-

1. वैदिक दर्शन और साहित्य में वर्णित परिवार व्यवस्था एवं आदर्श का विवेचन।
2. वैदिक युग के परिवार व्यवस्था के आदर्श का वर्तमान युग में प्रासंगिकता का विश्लेषण।

प्रस्तुत शोधपत्र में वैदिक साहित्य में परिवार एवं सहयोगी सामाजिक संस्थाओं यथा-विवाह एवं स्वजनता के आदर्श का विश्लेषण किया गया है। इसके साथ पश्चिमी जगत् के प्रभाव के कारण उत्पन्न अन्वैंयक्तिक सम्बन्ध एवं सामाजिक सम्बन्धों में आये ह्रास तथा परिवार व्यवस्था के आदर्श का विश्लेषण किया गया है। इसमें यह दर्शाया गया है कि वैदिक युग में जिस परिवार व्यवस्था की संरचना एवं कल्पना ऋषियों के द्वारा की गयी वह आदर्श वर्तमान भौतिकवादी एवं भोगवाद प्रधान युग में अधिक प्रासंगिक है।

वैदिक साहित्य में परिवार

डॉ. लाभुबहन एम. कारावदरा (व्याख्याता) एम.पी.शाह आर्टस्-सायन्स कॉलेज, सुरेन्द्रनगर
डॉ. मधुभाई एम. हीरपरा दरबार गोपालदास शिक्षण महाविद्यालय, अलीगढ

"आदौ वेदमयी दिव्या यतः सर्वाः प्रवृत्तयः।" ऐसा व्यासजी ने उचित रूप से कहा है। इस वचन को सार्थक करने के लिए सभी को प्रवृत होना पड़ेगा। इन सब स्रात को मूल विश्वपविार में निहित है। अथर्ववेद में कहा है कि 'अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु समनाः।' और 'तत् कृण्मो ब्रह्म वो गृहे।' ऐसा कहकर परिवार ऐक्य की भावना प्रदर्शित की गई है। अतः इस लघुशोध प्रपत्र में वैदिक साहित्य के इस भाव को व्यक्त करने का संक्षिप्त प्रयास किया गया है।

वेदकालीन सामाजिक व्यवस्था

डॉ० श्रीमती आभासिंह, (रीडर, संस्कृत) प्रधानाचार्य, रोहतास महिला महाविद्यालय, सासाराम, बिहार

वेद संसार का प्राचीनतम प्राप्त लिखित ग्रंथ है। भारत में आर्य-सभ्यता के ज्ञान का यही एकमात्र स्रोत है। इसके अध्ययन

से तत्कालीन समाज के विषय में मूल्यवान जानकारी प्राप्त होती है।

वैदिक समाज मूल रुप से दो वर्गों में विभक्त था-आर्य तथा अनार्य। ऋग्वेद में अनार्यों को दास, दस्यु या असुर कहा गया है। अनार्य सरदारों के साथ ही अनार्य जनों का भी उल्लेख है। आर्य एवं अनार्यों के भेद के आधार शारीरिक एवं सांस्कृतिक दोनों थे। विजित अनार्यों को दास बना लिया जाता था। वैदिक समाज सुव्यवस्थित था जिसकी इकाई कुल थी। समाज पितृसत्तात्मक था। एक पत्नीव्रत का व्यवहार था। बहुपतिक विवाह अज्ञात था। बाल-विवाह तथा विधवा विवाह अप्रचलित थे। युवक-युवतियों को स्वयंबर का अधिकार था (ऋ० 10/27/12)। स्त्री या पुरुष विधिपूर्वक किए गए विवाह को विच्छेद नहीं कर सकते थे। पिता की सम्पत्ति का अधिकारी पुत्र होता था किन्तु एकमात्र संतान होने की स्थिति में पुत्री को सम्पत्ति का अधिकार प्रदान किया जाता था। समाज में भिन्न-भिन्न प्रकार के व्यवसाय प्रचलित थे। बढ़ई शिल्पियों में प्रमुख माना जाता था (ऋ० 9/112/1)। धातु का काम करने वाले कर्मार (ऋ० 10/72/2) तथा सोने से आभूषण बनाने वाले स्वर्णकार (ऋ ० 1/122/2) का उल्लेख आता है। चर्मकार प्रत्यंचा चाबुक आदि बनाता था। कपड़ा बुनने का कार्य प्रायः स्त्रियाँ करती थीं (ऋ० 6/2/9)। वैदिक जन प्रायः भेड़ की ऊन से बने वस्त्र पहनते थे (ऋ० 4/22/2)। वस्त्र के रुप में एक अधोवस्त्र (नीवी) तथा एक उत्तरीय (ऋ० 1/140/9) होता था। जरी की कढ़ाई का भी उल्लेख आया है। ऋषि-मुनि अजिन या मल नामक चर्म वस्त्र के रुप में पहनते थे। भोजन में दूध से बने पदार्थ प्रमुख थे। खीर, दही, घृत, पनीर आदि का अनेकत्र उल्लेख है। मालपुआ तथा जौ का सत्तू भी बनाया जाता था। यज्ञीय पशुओं यथा भेड़ बकरी का मांस होता था। गौ अहन्या थी। सोमरस यज्ञ में देवताओं को अर्पित किया जाता था। सुरापान को निंदित कर्म कहा गया है। मनोरंजन के विविध साधनों में घुड़दौड़, रथदौड़, पासे खेलना, नृत्य तथा संगीत आदि थे।

यमयमीसंवादः पुनरवलोकन

कौशल तिवारी शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग, राजकीय महाविद्यालय, कोटा (राज.)

ऋग्वेद नाना प्रकार के विषयों को समाहित किये हुए हैं। महाभारत के संदर्भ में कही गई इस उक्ति को हम ऋग्वेद के परिप्रेक्ष्य में भी देख सकते हैं, जिसमें कहा गया है-यदिहास्ति तदन्यत्र, यदिह नास्ति न तद् क्वचित्। संवाद-सूक्त ऋग्वेद के इसी विषय-विविधता रूपी भाण्डागार को समृद्ध करते हैं। नाना प्रकार के संवाद-सूक्तों में आप जीवन के प्रत्येक पक्ष के बीज-तत्त्वों की गवेषणा कर सकते हैं। ऐसा ही संवाद-सूक्त है यम-यमी संवाद। ऋग्वेद के 10वें मण्डल में आये इस सूक्त के विषय में भाष्यकारों के पृथक्-पृथक् मत हैं। कुछ यम-यमी को सहोदर मानते हैं तो कुछ सगोत्रीय। किन्तु यम-यमी संवाद का पुनरवलोकन किया जाये तो प्रतीत होता है कि यम-यमी संवाद पति-पत्नी के संवाद के रूप में वर्णित है। ऋषि ने यम-यमी संवाद के माध्यम से तात्कालीन समाज का यथार्थ चित्र उकेरा है। सन्तानहीनता, अतृप्त पत्नी के मनोभाव व उलाहने, पति द्वारा पत्नी के कटाक्षों का रक्षात्मक उत्तर, नियोग प्रथा, तात्कालीन सामाजिक नियम आदि अनेक तथ्य इस संवाद-सूक्त में यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। दयानन्द भाष्य के आधार पर प्रस्तुत शोधालेख में इस विषय के संदर्भ में विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला जायेगा।

सन्यास-जीवन का अन्तिम पड़ाव

प्रीती देवी शुक्ला प्रवक्ता कानपुर विद्या मन्दिर महिला (पी०जी०) महाविद्यालय, स्वरूप नगर कानपुर

वैदिक-ऋषियों ने मानव के जीवन के चार प्रयोजन अथवा पुरुषार्थ मानें धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष। इन चारों की सिद्धि व पूर्णता हेतु चतुराश्रमों की परिकल्पना की गई है। काणे महोदय ने लिखा है कि आश्रम शब्द श्रम से बना है अर्थात् ऐसा जीवन स्तर जिसमें व्यक्ति खूब मेहनत करता है। ये चार-आश्रम क्रमशः ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा चौथा आश्रम सन्यास है, संस्कारों में यह पन्द्रहवाँ संस्कार है, "सम्यक् न्यासः प्रतिग्रहाणां संन्यासः" संन्यास ग्रहण करने वाला सन्यासी कहलाता है, जो धर्मात्मा अपनी आत्मा के सदृश सम्पूर्ण प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखते हैं और किसी से भी द्वेष नहीं करते हैं एवं मित्र के समान सबका सर्वदा सत्कार

करते हैं। महर्षि दयानन्द सरस्वती के अनुसार सन्यास संस्कार उसको कहते हैं कि जो मोहादि आवरण, पक्षपात छोड़कर विरक्त होकर पृथिवी पर परोपकारार्थ चिन्तन करें तथा कार्यरूप में परिणित करें। मनीषियों ने चार सोपानों में विभाजित आयु 25:25 के अन्तराल में क्रमशः 25 वर्ष तक ब्रह्मचर्य, 25-30 तक गृहस्थ आश्रम, 50-75 वानप्रस्थ आश्रम, तथा 75-100 वर्ष तक संन्यास काल माना है। इस प्रकार ईर्ष्या-द्वेष रहित होकर, परोपकार की भावना, सत्याचरण की कामना व जितेन्द्रिय हो, जन्म-मरण के बन्धन से रहित होकर, स्वाध्यायशील होकर परमात्मा में स्वयं को लीन कर उसकी समीपता का अनुभव करके मानव जीवन के अन्तिम पड़ाव पर अन्तिम लक्ष्य मोक्ष की पूर्णता को प्राप्त करना, संन्यासी का मुख्य कर्त्तव्य है।

वैदिक साहित्य में परिवार

तरन्नुम खान शोधच्छात्रा संस्कृत विभाग, अमुवि अलीगढ़

वैदिक युग का पारिवारिक जीवन पारस्परिक आत्मीयता और कर्तव्यनिष्ठा पर आधारित था। उसमें पारस्परिक हित-चिन्ता और सबके लिए कर्म करते रहने की उदार भावना विद्यमान थी। संरचना की दृष्टि से वैदिक परिवार मौलिक एवं आदर्श परिवार दिखाई देता है। उसका विकास इस ढंग से हुआ है कि जिससे परिवार संयुक्त रह सके। पूर्व वैदिक युग में पितृप्रधान संयुक्त परिवार प्रणाली प्रचलन में थी क्योंकि इस युग में धार्मिक परिस्थितियाँ उसके अनुकूल थी। कृषि एवं पशुपालन आदि के व्यवसायों में संयुक्त परिवार की भूमिका है। उत्तरवैदिक युग में परिस्थितियों के बदलाव के कारण स्थिति में कुछ विपर्यय होने लगा था और पिता के अधिकारों का क्षरण भी होने लगा था, परिणामतः संयुक्त परिवारों का विघटन होने लगा। परिवार के सुसंगठन हेतु विवाहोत्सव में पुरोहित मन्त्रों द्वारा वधू को आशीर्वचन देते हैं कि तुम (दम्पत्ति) यहीं साथ-साथ रहो, तुम भी पृथक् न हो तुम दीर्घ जीवन वाली बनो, अपने घर में पुत्र और पौत्रों के साथ खेलती हुई प्रसन्न रहो।

वैदिक साहित्य और परिवार

डॉ० जयप्रकाश नारायण असिस्टैंन्ट प्रोफेसर, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान मानित विश्वविद्यालय, जम्मू

भारतीय समाज में परिवार संस्था का महत्त्वपूर्ण स्थान है। परिवार संस्था का मूल आधार वैदिक साहित्य में सुव्यवस्थित रूप में देखने को मिलता है।

भारतीय समाज निर्माताओं में मनुष्य के आन्तरिक तथा बाहय जीवन को अधिकाधिक परिष्कृत उन्नत तथा विकसित करने के लिए भौतिक और आध्यात्मिक क्षेत्रों में अनेक प्रयोग किये। अनेक आदर्श संस्थाओं की स्थापना की। धर्म, दर्शन, अर्थविज्ञान, वर्णव्यवस्था, आश्रमव्यवस्था आदि इसी प्रकार के प्रयोग थे। लेकिन जीवन में विभिन्न पहलुओं का एकीकरण करते हुए उन्होंने परिवार संस्था का एक महत्त्वपूर्ण प्रयोग किया था। जो व्यवहारिक, सहज, सुलभ तथा सुखकर सिद्ध हुआ। परिवार संस्था ने मनुष्य के जीवन को आदिकाल से ही समुचित मार्गदर्शन किया है। भारतीय समाज से परिवार संस्था आज भी ध्रुवबिन्दू की तरह जीवित है। ऋग्वेद में वर्णित् परिवारिक जीवन संयुक्त परिवार की प्रथा पर आश्रित था। परिवार में माता-पिता, भाई-बहन, पुत्र-पौत्र आदि सभी संबंधी एकसाथ मिलकर रहते थे। पिता परिवार का गृहपति होता था, पत्नी का महत्त्व यज्ञानुष्ठान में विशेष रूप से था। उसी पर गृहव्यवस्था तथा शिशुपालन आदि का भार था। सास-ससुर के प्रति बहु का सद्व्यवहार होने के कारण उसकी सर्वत्र प्रशंसा होती थी। वैदिक साहित्य में स्त्री-पुरुष की उपमा पृथ्वी और द्युलोक से दी गई है। विवाह संस्कार के अवसर पर भी पुरुष स्त्री से कहता है। द्यांरहं पृथ्वीत्वं (मैं द्यो हूं तू पृथ्वी)।

ऋग्वेद का समाजशास्त्रीय अध्ययन

रीना आर्य असिस्टेण्ट प्रोफेसर, विवेकानन्द ग्रामोद्योग स्नातकोत्तर महाविद्यालय, दिबियापुर, जनपद, औरैया

ऋग्वैदिक समाज में पशुपालन व पशुचरण का विशेष महत्त्व थां 'रयि' अर्थात् सम्पत्ति की गणना पशुओं से होती है थी। देवताओं की स्तुति के समय बार-बार पशु सम्पदा की मांग की गयी है। पशुओं का हरण एक गम्भीर समस्या थीं पशुओं में गाय अतयन्त महत्त्वपूर्ण थी। 'गविष्टि' अर्थात् गायों की गवेषणा युद्ध का पर्याय था। गायों के अतिरिक्त बकिरयां, भेड़ें एवं घोड़े भी पाले जाते थे। पशुचरण सामूहिक रूप से होता था। ऋग्वैदिक समजा में आरम्भिक काल में पशुपालन की तुलना मे कृषि-कार्य अत्यन्त गौण था। केवल 24 ऋचाओं में ही कृषि का उल्लेख है। सिंचाई के उल्लेख भी परवर्ती मंडलों में प्राप्त होते हैं। ऋग्वेद में केवल एक ही अनाज 'यव' का उल्लेख प्राप्त होता है। अन्य साक्ष्यों से भी स्पष्ट होता है, कि ऋग्वैदिक लोगों का मुख्य व्यवसाय पशुपालन था तथा कृषि का आगमन इस काज के उत्तरार्द्ध में हुआ है। ऋग्वैदिक समाज में विवाह आवश्यक माना जाता था।। ऋग्वेद में सपिण्ड, सगोत्र और सप्रवर विवाह सम्बन्धी निषेध स्पष्ट रूप से प्राप्त नहीं होते हैं। प्रायः वयस्क विवाह का प्रच लन था। अनुलोम व प्रतिलोम विवाह के भी उदाहरण प्राप्त होते हैं। एक पत्नीकता के बहुपत्नीकता के भी दृष्टान्त मिलते हैं। ऋग्वेद में नियोग प्रथा का उल्लेख मिलता है।

ऋग्वैदिक काल में स्त्रियों की दशा अच्छी थी। उन्हें पर्याप्त स्वतन्त्रता थी। पर्दा प्रथा का अभाव था। ऋग्वेद में घोषा, लोपामुद्रा, विश्ववारा शचि, पैलोमी, काक्षावृती, सिकता, निवावरी आदि शिक्षित स्त्रियों का उल्लेख प्राप्त होता था। जिन्होंने मंत्रों की रचना की थी। उसी समय सती प्रथा का भी प्रचलन नहीं था। स्त्रियों को पुरुषों के समान सामाजिक तथा धार्मिक अधिकार तो प्राप्त थे किन्तु उन्हें न तो राजनीति में भाग लेने का अधिकार था और न ही सम्पत्ति अधिकार प्राप्त थे।

वेदों में परिवार विषयक मीमांसा

तरुलता वनुभाई पटेल शोधछात्रा (Ph. D.) महर्षि वेद विज्ञान अकादमी, अहमदाबाद

परिवार शब्द 'परि' उससर्गपूर्वक 'वृ' धातु से निष्पन्न हुआ है। इसलिए 'परिवार' का शब्दिक अर्थ 'घेरनेवाला' है। संस्कृतभाषा में 'परिवार' शब्द 'कुटुम्ब' के अर्थ में नहीं पाया जाता है। वैदिक काल में परिवार का वाचक शब्द 'कुल' है। 'कुल' शब्द का अर्थ 'घर' 'परिवार', 'वासस्थान' इत्यादि है। उसमें रहने वाले लोगों का समूह भी लाक्षणिक रूप में 'कुल' कहलाता है।

परिवार मानव समाज का एक महत्त्वपूर्ण संस्थान है। यह मानव-जाति में आत्म संरक्षरण, वंशवर्धन और जातीय- जीवन के सातत्य को बनाये रखने का प्रधान साधन है। मनुष्य मरण-धर्मा हैं किन्तु मानव जाति अमर है। व्यक्ति उत्पन्न होता है, बचपन, यौवन और बुढापे की अवस्था भोग कर समाप्त हो जाते है, परंतु वंश परम्परा द्वारा उनका सन्तान क्रम अविच्छिन्न रूप से चला रहता हें मृत्यु और अमृत्युतत्त्व दो विरोधी वस्तुएँ है, किन्तु परिवार द्वारा इन दोनों का समन्वय हुआ है। व्यक्ति भले ही मर जाएँ पर विवाह और परिवार द्वारा मानव जाति अमर हो गई है।

परिवार की महत्ता का अनुभव करते हुए ही वैदिक युग में शिक्षा समाप्त करने पर प्रत्येक स्नातक को आचार्य यह उपदेश देते थे- प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेसीः'' अर्थात् संतान रूपी तंतु का चिच्छेद मत करो । ''इतना ही नहीं पत्नी की अवहेलना, संतति निरोध एवं अविवाहीत व्यक्तियों से राष्ट्र की अतुलनीय और अपूरणीय क्षति होती है इसका विस्तृत वर्णन आर्विवेद में किया गया है। इसलिए गृहस्थाश्रम को सर्व धर्मो का आधार कहा गया हैं। गृहस्थस्त्वेव सर्वेषां चतुर्णां मूलमुच्यते। (महा. शां. 228/6)

परिवार में पिता और माता की इच्छा का अनुवर्तन किया जाता था। इससें कोई सन्देह नहीं है कि वैदिक काल में पिता को 'परिवार के मुखिया के रूप में वर्णित् किया गया है और परिवार में उसकी महत्ता सर्वाधिक थी। वैदिकी नारी सुशिक्षित थीं कलाओं में निपुर्ण थी। आध्यात्मिक, धार्मिक क्षेत्रों में भी उसकी पुरुषों के समान पैठ थी। परिवार में बेटियाँ अपने जीवनसाथी को स्वयं चुनती थी। संक्षेपमें प्रस्तुत शोधलेख में 'परिवार' विषयक मीमांसा की विस्तृत चर्चा की गई है।

ऋग्वेद की आर्थिक व्यवस्था का समाजशास्त्रीय अध्ययन

योगेश कुमार प्रवक्ता समाजशास्त्र, विवेकानन्द ग्रामोद्योग स्नात कोत्तर महाविद्यालय, दिबियापुर औरैया

ऋग्वैदिक काल में सिंचाई वर्षा के जल, कुँए (अवत), चक्र तथा नहरों (कुल्याओं) के माध्यम से होती थी। ऋग्वेद में अनेक प्रकार के व्यवसायों एवं व्यवसायियों का उल्लेख किया गया है- ऋग्वेद में कपड़े के लिए वस्त्र,, वास वसन शब्द का प्रयोग किया गया है। इस युग में वस्त्रों का भी निर्माण होता था। ऋग्वेद में 'वाय' शब्द जुलाहे के लिए तथा 'तसर' शब्द 'करघा' के लिए एवं सिरी शब्द बुनाई करने वाली महिला के लिए प्रयुक्त किया गया है। इससे स्पष्ट होता है कि ऋग्वै दिक काल में कताई, बुनाई एवं कढ़ाई का काम महिलाओं के द्वारा किया जाता था। ऋग्वैदिक काल में सन, रेशम, चमड़ा से भी वस्त्रों का निर्माण होता होगा। समाज का निम्न, निर्धन, ब्रह्मचारियों एवं तपस्वियों का वर्ग चमड़ा एवं वृक्ष की छाल को को धारण करता था।

चमड़े का कार्य करने वाले लोग 'चर्मन' कहलाते थे। चर्मन के द्वारा पशु के चमड़े से थै ले, अच्छादन बनाते थे। इसके अतिरिक्त चर्मन कोड़े, लगाम इत्यादि भी बनाते थे। ऋग्वेद में 'तक्षन' अथवा त्वष्ट्रा अर्थात् बढ़ई का भी उल्ले ख मिलता है। जो कि लकड़ी का कार्य करता था। इनके द्वारा रथों का भी निर्माण किया जाता था।

वैदिक परिवारसंस्था का आधुनिक युग में महत्त्व

डा. सुधा सिंह रा. कन्या इन्टर कालेज, पन्तनगर कृषि वि.वि. पन्तनगर

कठोपनिषद् के एक मन्त्र में कहा गया है-'सह नाववतु, सह नौ भुनक्तु, सह वीर्य करवावहै' अर्थात् हम साथ-साथ रहें, साथ-साथ भोजन करें तथा साथ-साथ ऐश्वर्य की प्राप्ति करें। यद्यपि यह मन्त्र गुरू-शिष्य के सम्बन्ध में है तथापि इसे परिवार के सन्दर्भ में भी ग्रहण कर सकते हैं। प्राचीन वैदिक सभ्यता में परिवार समाज की एक ईकाई के रूप में था तथा इसका स्वरूप बृहद् होता था। परिवार संयुक्त होते थे, जिनमें माता-पिता, भाई-बहन, दादा-दादी, बुआ, ताई-ताऊ आदि होते थे। सम्पूर्ण परिवार का एक मुखिया होता था, जो परिवार को निर्देशित करता था तथा उनके सुख-दुःख का दायित्व भी वहन करता था।

आज, वर्तमान युग में जब संयुक्त परिवार का स्थान एकल परिवार लेते जा रहे है, जहाँ माता-पिता तक के प्रति कर्त्तव्य भावना नहीं रह गयी है फिर अन्य सम्बन्धों की तो बात ही क्या। सम्बन्धों में प्रेम व अपनेपन का स्थान ईर्ष्या व द्वेष ने ले लिया है। इस स्थिति में एक बार पुनः हमें अपनी प्राचीन परम्परा को देखने की आवश्यकता है, जहाँ परस्पर पारिवारिक सदस्यों के प्रति कर्त्तव्यों का निर्धारण प्राप्त होता है, जिनके निर्वहन द्वारा असीम सुख प्राप्ति को भी बतलाया गया है। अथर्ववेद में कहा गया है-

"अनुव्रतः पितुः पित्रो मात्रा भवतु संमनाः। जाया पत्ये मधुमतीं वाचं ददतु शान्तिवाम्।
म भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वरमातु स्वमा। सम्यन्वाः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ।" (अथर्व. 3/30)

अर्थात् पुत्र पिता का आज्ञाकारी और माता का इच्छाकारी हो तथा स्त्री पति से मधुर और शान्त वाणी से बातचीत करे। भाई से भाई द्वेष न करे। सब लोग अपने-अपने व्रत अर्थात् मर्यादा में रहकर सदैव आपस में भद्रभाषा में ही बातचीत करें।

वेदों में आदर्श परिवार

सुशील कुमार त्यागी गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर, हरिद्वार

जो परिवार वेदानुकूल आचरण करता है, वही सच्चे अर्थों में 'आदर्श परिवार' के रूप में जाना जाता है। ऐसा परिवार श्रेष्ठता, शिष्टता, मधुरता, एकता, सच्चरित्रता आदि गुणों से युक्त होता है। वेदों के अनुसार बड़ों के प्रति आदर भाव, समान अवस्था वाले पुरुषों के प्रति मित्रता तथा छोटों के प्रति स्नेह भाव रखना आदर्श परिवार की पहचान हैं। वेद में कहा गया है कि मनुष्य को पूर्ण आयु ऐसे आदर्शपरिवार में अपने पुत्र-पौत्रों आदि के साथ व्यतीत करनी चाहिए।

स्वामी दयानन्दकृत यजुर्वेद भाष्य में प्रतिबिम्बित-समाज एवं संस्कृति

वाजश्रवा आर्य प्रवक्ता (संस्कृत) रा. इ. कॉ. मूलाकोट, चम्पावत।

वेद भारतीय संस्कृति के मूल स्रोत तथा विश्व वाङ्मय की अमूल्यनिधि है। आदिकाल से ही ये मानव जाति के लिये प्रकाशस्तम्भ और अध्यात्मशक्ति के आदिस्रोत रहे हैं। वेदों ने केवल भारतीय संस्कृति को पल्लवित पुष्पित एवं फलित नहीं किया अपितु विश्व की समस्त संस्कृतियों को अपने सार्वभौमिक नित्य सिद्धांतों से प्रभावित किया है। वेदों में धर्म-दर्शन, ज्ञान-विज्ञान, कला-कौशल, शिल्प-संगीत, शिक्षा, मर्यादा, लोक कल्याण, आचार आदि मानव जीवन के लौकिक तथा पारलौकिक उत्थान के लिये उपयोगी सिद्धान्तों एवं उपदेशों का अद्भुत वर्णन किया गया है।

वैदिक वाङ्मय में ऋग्वेद के पश्चात् यजुर्वेद का महत्त्वपूर्ण स्थान है। विषयवस्तु की दृष्टि से जिस प्रकार ऋग्वेद को ज्ञानकाण्ड के रुप में जाना जाता है उसी प्रकार यजुर्वेद को कर्मकाण्ड के रुप में जाना जाता है।

"साहित्य समाज का दर्पण होता है।" समाज जिस प्रकार का होगा वह उसी भाँति साहित्य में प्रतिबिम्बित रहता है। अतः साहित्य और समाज का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। यजुर्वेदकालीन समाज कैसा था इसको जानने का एकमात्र आधार यजुर्वेद संहिता है।

वेदों में सामाजिक व्यवस्था

डॉ० जयेन्द्र कुमार प्राचार्य आर्ष गुरुकुल, नोएडा

सृष्टि में आदि काल से वेदों का ज्ञान सतत व्याप्त है। वेदरूपी गंगोत्री से निकलकर ज्ञान रूपी भागीरथी संसार रूप समुद्र में सतत सम्मिलित हो रही है। संसार में व्याप्त अनाचार, दुर्गुण, दुर्व्यसन, दुःख, अविद्या और अज्ञान के गहन तिमिर को विच्छिन्न कर वेद ज्ञान की रश्मियाँ अपने दिव्य आलोक से संसार को आभामय बना रही है।

समस्त भारतीय चिन्तन वेदों को अनादि एवं अपौरूषेय मानता है। भारतीय विचारणा वेदों को सब सत्य विद्याओं का निकर मानती है। आध्यात्मिक, भौतिक और वैज्ञानिक सभी प्रकार की विद्याओं के ज्ञान का रत्नाकर वेदों को माना जाता है। भारतीय चिन्तन वेदों की महत्ता को विशदता से प्रख्यापित करता है। वेद भारतीय जीवन दर्शन, ज्ञान और विज्ञान के मूलस्रोत हैं। समस्त भारतीय आर्य चिन्तन, विचारणा तथा मनीषा, वेदों के ज्ञान अथवा चिन्तन से सर्वथा प्रभावित दिखाई पड़ती है।

वेद शब्द **विद् ज्ञाने, विद् सत्तायाम्, विद् लाभे** इन तीन धातुओं से सिद्ध होता है जिससे वेद शब्द का ज्ञान अर्थ निष्पन्न होता है। वस्तुतः वेद है ही ज्ञान के भण्डार। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने वेद विषयक अपने आप में परिपूर्ण एवं उत्तम विचार व्यक्त किए हैं। उन्होंने आर्य समाज के तृतीय नियम में लिखा है-**"वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना, पढ़ाना और सुनना, सुनाना सब आर्यो का परम धर्म है।"** भारतीय मनीषियों ने वेदों के चिन्तन मनन के पश्चात् **"वेदोऽखिलो धर्ममूलम्"** का उद्घोष दिया है तथा वेदों का ज्ञान का स्रोत एवं सभी प्रवृत्तियों को उद्गम स्थल प्रतिपादित किया है। इस विषय में मनुस्मृति एवं महाभारत के कथन द्रष्टव्य हैं।

वैदिक कालीन संस्कृति तथा रहन-सहन का स्तर

डॉ. सरिता वर्मा विभागाध्यक्षा, गृह विज्ञान विभाग, महिला महाविद्यालय, किदवई नगर, कानपुर (उ0प्र0)

पूजा श्रीवास्तव, प्रवक्ता-गृह विज्ञान, अभिनव प्रज्ञा महाविद्यालय, हरदौरपुर, चौड़गरा, फतेहपुर (उ0प्र0)

वेद शब्द 'विद्' धातु से बना है जिसका अर्थ है 'जानना'। सामान्यतः इसका अर्थ है 'ज्ञान'।

सैंधव संस्कृति के पश्चात् भारत में जिस नवीन सभ्यता का विकास हुआ उसे वैदिक या आर्य सभ्यता के नाम से जाना जाता है। भारत का इतिहास एक प्रकार से आर्य जाति का इतिहास है। हड़प्पा सभ्यता का अस्तित्व 2300 ई०पू० से 1750 ई०पू० तक रहा। 1750 ई०पू० के आसपास हड़प्पावासियों की संस्कृति नष्ट हो गई। इसके बाद लगभग ढाई सौ साल के पश्चात् आर्यों की

संस्कृति का उदय हुआ। उत्तर प्रदेश में स्थित अलीगढ़ के निकट प्राप्त सामग्री के कार्बन 14 परीक्षण से पता चलता है कि ये लगभग 1025 + 110 अर्थात् 1080 ई०पू० की है। इन बर्तनों के अध्ययन से लगता है कि इस काल के लोग थे।

ये लोग घोड़ा एवं अन्य पशु पालते थे। ऐसी झोपड़ी में रहते थे जो घास-फूँस से बनी होती थी। ये झोपड़ियाँ स्वच्छता एवं टिकाऊपन के लिए लिपी-पुती होती थी। उपर्युक्त बातें वैदिक स्त्रोतों में वर्णित संस्कृति से भी मिलती-जुलती है।

वेदों में सामाजिक और राष्ट्रीय चेतना

डॉ० ज्ञान प्रकाश द्विवेदी प्रवक्ता (हिन्दी) नागरिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय जंघई, जौनपुर

वेद भारतीय धर्मशास्त्र के प्रथम एवं प्रमुख आधार है। वैदिक संस्कृति में शाश्वत तत्व प्रतिष्ठित हैं। भारतीय संस्कृति के आदि स्त्रोत इन वेदों में विश्व की प्राचीनतम भाषा वैदिक संस्कृत में जीवन-दर्शन सम्बन्धी उच्च स्तरीय उपदेश निहित है। वेद वाणी की दृष्टि किसी विशेष जाति या देश के लिए सीमित न होकर समग्र संसार एवं मानव मात्र के लिए है।

शृण्वन्तु विश्वेऽअमृतस्य पुत्राऽआ ये धामानि दिव्यानितस्थुः

सभी मनुष्य एक ही परमपिता के अमृत पुत्र हैं। इस मन्त्र में समग्र मानव जाति को एक इकाई के रूप में सम्बोधित किया गया है, इसीलिए ईश्वर ने सूर्य, चन्द्रमा, गगन एवं जल सबके लिए समान बनाया है।

यजुर्वेद सब प्राणियों को अपने समान देखने का उपदेश देता है-

"यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्नेवानुपश्यति सर्वभूतेषु चात्मनं ततो न विचिकित्सति"

अर्थात् जो सब प्राणियों को अपने समान और अपने को सब प्राणियों के समान देखता है वह किसी से पृथकता न मानकर सबसे प्रेम करता है किसी से द्वेष एवं घृणा नहीं करता यह कहकर समानता के उच्च सिद्धान्त का ही तात्विक रीति से प्रतिपादन किया गया है। अतः वेद के इस दिव्य ज्ञान के अनुसार संसार के सब मानव समान हैं।

इस विशाल विचारधारा के विपरीत जो पाश्चात्य परिपाटी के आधार पर 'नेशन स्टेट' अर्थात् राष्ट्र-राज्य की विचारधारा उभरकर आई है उसने वसुधैव कुटुम्बकम् के चिन्तन को बहुत आघात पहुंचाया है। 'नेशन स्टेट' की अवधारणा के विपरीत वसुधैव कुटुम्बकम के दृष्टिकोण से तो सब प्राणियों में एक-दूसरे के प्रति एक कुटुम्ब के सदस्यों की भांति आत्मीयता के भाव जागृत होने चाहिए। वेदों में राष्ट्रीय चेतना की भावना व्यापक स्वरूप लिए हुए है।

अक्षसूक्ते प्रतीयमानः समाजः

गोहिल हार्दिक एम., सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, राजकोट

वेदाः भारतीयज्ञानसंस्कृतेः महोच्चाः विस्तीर्णाः निर्मलाः मानसरोवरः इव सन्ति। यतः विभिन्ननां विषयानां ज्ञानसरितः प्रादुर्भूताः। सर्वाः विद्याशाखाः अत्रेव संनिहिताः। ज्ञानसंस्कृतिसमाजस्य त्रिवेणीसङ्गमः भवत्यिह। "अत्र भवति विश्वमेकनीऽम्।

अमुना हेतुना ऋग्वेदेऽपि तत्कालीनसमाजस्य प्रतीयमानायाः स्थितेर्दशन भवति। समाजः विभिन्नेषु आश्रमेषु विभक्तः यथा गीतायां चतुर्षु आश्रमेषु समाजस्य गुणकर्मानुसारं विभागः कृतः। ऋग्वेदस्य दशममण्डलस्य चतुत्रिंशत् सूक्तं "अक्षसूक्तम्" वा कितवसूक्तसमपि कथ्यते। सूक्तेऽस्मिन् तत्कालीन नारी समाजयोः व्यसनिवातावरणस्य दूरोदरदूषणस्य च प्रतिबिम्बः दृश्यते। सूक्तमिदं बिनसाम्प्रदायिक-लौकिक-धर्म निरपेक्षसूक्तेषु स्थानं वहति। अपरं च 'भोगा न भुक्ता वयमेव मुक्ता' सूक्तिः। सूक्तेऽस्मिन सार्थिका भवति नीतिशतकम् वर्तमाना प्रस्तुताऽपि सूक्तस्यास्य वर्तते। अधुना वयं परिचयं समाजस्थितिं चावगच्छामः सूक्तस्यास्य। अक्षसूक्ते निरूपितः समाजः अक्षसूक्तस्य क्रमाङ्कः 10-34 वर्तते। ऋषिः एलूषः कवषः देवता अक्षः छन्दः त्रिष्टुप जगती च 14 मन्त्राः। इह काव्यात्मकशैल्या द्युतव्यसनेः दुर्बलपरिवारस्य स्थितिः अङ्किता वर्तते।

वेदों में सामाजिक जीवन

संजीव प्रकाश ध्यानी प्रवक्ता संस्कृत, रा०इ०का० दिउली, (पौड़ी गढ़वाल)

वेदों में वर्णित सामाजिक जीवन अतीव उदात्त गुणों से युक्त है। ऋषियों ने सामाजिक जीवन के स्थायित्व के लिए दूरगामी एंव सुदृढ़ व्यवस्थाओं का निर्माण किया है। वैज्ञानिक चिन्तन से निर्मित सामाजिक व्यवस्थाएं आज भी सभ्य समाज को अपनी आभा प्रदान कर रही है। उसी आभा में आधुनिक समाज संचरण कर रहा है।

वर्ण, आश्रम, संस्कार और शिक्षा वेदकालीन समाज के आधार स्तम्भ हैं। इन्हीं स्तम्भों पर महान भारतीय संस्कृति, सभ्यता और समाज का विष्ठाद् प्रासाद टिका हुआ है। वेदों में सामाजिक जीवन की विवेचना के लिए इन्हीं विषयों पर विचार किया जा सकता है। वर्णव्यवस्था-वेदों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र और वैश्य समाज के विभिन्न व्यक्तियों के द्वारा विभिन्न कार्यों को सम्पादित किये जाने की दृष्टि से समाज को वर्णव्यवस्था में वर्गीकृत किया गया है।

'ब्राह्मणेऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः। उरू तदस्य वैष्ठ्यः पद्भ्यां ष्षूद्रो अजायत॥' ऋ० १०-९०-१२

वैदिकसाहित्ये आदर्शपरिवारः

निशिता. एस. शुक्ल व्याख्याता संस्कृत श्री एम.पी.शाह.आ.सा. कॉलेज, सुरेन्द्रनगरम् गुजरात

यथा ईश्वरः अनादि अनन्तोऽस्ति तथैव वेदा अपि। अत्रैव वेदास्तु ईश्वरस्य विश्वासः। वेदेभ्य एव जगतः निर्माणं जातम्।
जातुर्वण्यं त्रयो लोकाश्चत्वारश्चाश्रमः पृथक्।
भूतं भव्यं भविषयं च सर्वं वेदात् प्रसिध्यति॥ (मनु. २२/१९)

एवं चातुर्वर्णैः सह चतुर्णामाश्रमानामपि वैदिकसाहित्ये सुचारु निरुपणं कृतम्। यथा वायोः आश्रयं लब्ध्वा मनुष्यादयः प्राणान् धारयन्ति तथैव गृहस्थाश्रमस्याश्रयेण अन्ये आश्रमाः जीवनं प्राप्नुवन्ति। अतएव उच्यते-**"धन्यो गृहस्थाश्रमः।"** एतस्मात् आश्रमादेव आदर्शपरिवारस्य निर्माणं भवति येन आदर्श ग्रामस्य, राष्ट्रस्य एवं विश्वस्य निर्माणमपि भवति।

आदर्शः परिपारः किदृशः भवेत्? तत् पदेषु निरुचितम् अतः अस्मिन् शोधपत्र मया तस्योपरि विवेचनस्य प्रयासः कृतः।

वैदिकसाहित्ये परिवारः

डॉ0 इन्द्रेश 'प्रथिकः' व्याख्याता-संस्कृतविभागस्य देवसंस्कृति विश्वविद्यालयः, हरिद्वारम् (उत्तराखण्डः)

वैदिक साहित्यावगाहनेनैव ज्ञायते यत् वैदिककालादेव परिवारसंस्था प्रादुर्भूता। समाजनिर्मातृ ऋषिभिः गहनान्वेषणेन पारिवारिकसूत्राणां अन्वेषणं कृत्वा परस्परसौहार्दमङ्गीकृत्य निवसद्भिः स्व-स्व कर्त्तव्यानामनुपालनस्य विधा तात्कालिक समाजाय प्रदत्ता, येन परिवारसंस्थाया उदयोऽभवत्। किञ्च प्रथमतः अस्याः सृष्टेः निर्मात्रे यस्मै जनाय एकाकी (स्वतन्त्ररूपेण) जीवनयापनं न रोचितम्, अतस्तेन कामनाकृता चान्यानेकजनानुत्पाद्य भूमण्डलमेव स्व-परिवारं स्वीकृत्य भरणपोषणं कृतम्। वस्तुतः परब्रह्मणः **'एकोऽहंबहुस्याम'** इत्यात्मविस्तारसंकल्प एव सर्वप्रथमं सृष्टिपरिवाररूपे समक्षमागतः। यः **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** इति रूपे पारिवारिकतायाः आधारः सञ्जातः।

'परिवारः' शब्दस्तु सम्भवतः तदुपरान्तमेव प्रचलितोऽभवत्। वैदिकसंहितासु ब्राह्मणग्रन्थादिषु **'परिवार'** इत्यर्थे **'कुलम्'**, **'कुटुम्बम्'** आदि शब्दानां प्रचलनमभवत्। **'कुल'** शब्दस्यार्थः निवासस्थानं गृहम् वा इत्यनुमीयते। लाक्षणिकेन तेषु निवसज्जनानां समूहोऽपि कुलशब्देनाभि-धीयते। ऋग्वेदे **'कुलपा'** इति समस्त पदस्य प्रयोगः **'कुले' 'कुटुम्बे'** च इत्यर्थेऽभवत्। वैदिकपरिवारव्यस्थायां कुलस्य ज्येष्ठः स्वमी वा **'कुलस्य'** इत्यभिधीयते स्म। तस्यानुशासने सर्वे कुटुम्बिजनाः सौहार्देन सहैव सुखपूर्वकञ्च निवसन्ति स्म।

वैदिककाले परिवारसंस्था एषु

१. **प्रेमात्मीयते** २. **सहिष्णुता कर्तव्यपरायणता च** ३. **धैर्यविश्वासौ**

४. साहसो जागरूकता च ५. पुरुषार्थः स्वावलम्बनञ्च ६. सन्तोषं मधुरव्यवहारश्च

७. आस्तिकता सत्यनिष्ठा च ८. संगठनम् एकत्वञ्च।

मापदण्डेषु गुणेषु च आधृतासीत्। अनेनैव तस्मिन्समये स्वर्गिकपरिस्थितय आसन्। अद्यापि त एव मापदण्डाः परिवारसंस्थां सुदृढं निर्मातुं आवश्यकाः सन्ति। यदि एते गुणाः परिवारस्य आधारस्तम्भ इव भवन्तु तर्हि अद्यापि सर्वत्र सुखशान्तिसमृद्धीनां विस्तारो भवितुं शक्नोति।

वैदिकसाहित्ये समाजशास्त्रम्

शिवप्रतापद्विवेदी (शोधच्छात्रः) श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठम्, नवदेहली

अस्मिन् जगतीतले सर्वेषां प्राणिनां कल्याणाय जीवनस्याभ्युन्नतिकरणाय च यत्किञ्चिदावश्यकं महत्त्वपूर्णञ्चासीत् तत्सर्वम् अस्माकं ऋषिभिः विचिन्तितम्। नास्ति कोऽप्येतादृशः विषयः, नास्ति किमप्येतादृशं विज्ञानं, यस्य वर्णनं वैदिकवाङ्मये नोपलभ्यते। भवतु नाम वाग्विज्ञानं, वास्तुविज्ञानं, मनोविज्ञानं, चिकित्साविज्ञानादिकम् प्राणिमात्रस्य नैसर्गिकप्रवृत्तिः सुखमूलास्ति। सुखस्य प्राप्तिः तदैव भविष्यति यदा मानवस्य सामाजिकी व्यवस्था सुदृढीभविष्यति। वैदिक (वाङ्मय) साहित्यस्य अध्ययनात् तात्कालिकं भारतीयसमाजस्य यत् चित्रमागच्छति तत् विश्लेषणेन ज्ञायते। वैदिककाले मानवस्य जीवनं सुख-सौमनस्यपूर्णं समता-समरसता-मूलकं च तथा सुष्ठुविकासस्य मूलाधारे प्रतिष्ठितमासीत्। सामाजिकवर्गीकरणं, पारिवारिकजीवनं शिक्षापद्धतिः, आवासव्यवस्था आर्थिक-संरचना कथमासीत् इत्यादिकं विषयम् अहम् स्वशोधपत्रे विवेचयिष्यामि।

रात्रीसूक्तम्-समाजश्रेयः

डॉ. के. नीलकण्ठः प्रोफेसरः, संस्कृतविभागः, उस्मानियाविश्वविद्यालय

वाङ्मयं तावत् सततं समाजरेयसे एवं प्रवर्तते,तत्रापि वैदिकं वाङ्मयं स्थावरजङ्मात्मकस्य सर्वस्यास्य प्रपञ्चस्य श्रेयसे प्रवृत्तमिति विद्वद्भिस्सर्वैः अङ्गीकृतमेव। अपारेऽस्मिन् वैदिकवाङ्मये प्रजाहितोपयोगिनः नैकेविशेषाः समुल्लसन्ति युक्तायुक्तविवेचनशीलःमानवः सदा तादृशाण्येव कर्माण्याचरितुं प्रयत्नं करोति यैः इह परत्रच सः आनन्दं विन्दति। सः अस्मान् उन्नेतं जीवनमधिगन्तुं प्रयतमानान् कुर्विति प्रार्थयति। पश्येम शरदश्शतम्, जीवेमशरदश्शतम्, नन्दाम शरदश्शतम्, मोदाम शरदश्शतम् इत्यादिभिः सः अनुदिनमभिकाङ्क्षते। वेदेषु बह्वयः सूक्तयः विद्यन्ते यत्र समस्त मानवकल्याणकारिणः अनेके विशेषाः ऋषिभिः परिकल्पिताः, रात्रीसूक्तन्तु सर्वप्रथमं ऋग्वेदे दृश्यत इति विद्वांसः सर्वे जानन्त्येव। ततश्च यजुर्वेदे, अथर्ववेदे, वाजसनेयसंहितादिषु च दृश्यते। अत्र ऋषिः बह्वृचप्रियां लोकैकशरण्यां सर्वभूतनिवेशनीं देवीं प्रयतो भूत्वा स्तौति। सः निशादेवीं सर्वतः मां परिरक्षत्विति प्रार्थयति। अत्र स ऋषिः न केवलं स्वयमेव रक्षणमिच्छति, समस्तेऽस्मिन् प्रपञ्चे शान्तिमिच्छति। अत एव शुभां सौम्यांतां कीर्तयन्ति चेत् जनाः सदा लोकममुं आचन्द्रतारार्कं रक्षतीति सः अभिप्रैति आदिशति च। श्रेयोमार्गविघातकान् कामक्रोधलोभमोहमदमात्सर्यादीन् षड्रिपून् यदा मानवः जहाति तदैव सः शान्तिमाधगच्छतीति स्पष्टीकरोति।

एवं च वैदिकसाहित्ये बहुत्र वर्णितस्य रात्रीसूक्तस्य प्राशस्त्यं, लोकस्य कृते तस्योपयोगः, लोकस्य हिताय सत्य स्थापनाय परोपकाराय पीडितरक्षणाय सदाचारप्रवर्तनाय जीवनस्योन्नतपथप्रदर्शनाय रात्रीसूक्तं उपयोगकारि भवतीतिनिरूपणमेव निबन्धस्यास्योद्देश्यः।

वैदिकसाहित्ये परिवारः

डॉ. प्रकाशचन्द्र पन्तः 'दीप' स.अध्यापकः, राजकीयइण्टरकॉलेजः, भिंगराडा, चम्पावतम्

अस्ति वेदेषु सर्वविधं ज्ञानं विज्ञानमिति विजानन्ति सर्वे विद्वांसः। मानवजीवनोपयोगिज्ञानमपि वेदेषु मूलरूपेण विद्यते नास्त्यत्र संदेहावलेशः। अद्य वैश्वीकरणस्य, भूमण्डलीकरणस्य वा कालो वर्तते कथयन्ति जनाः, तदपि भारतवर्षस्य ज्ञानरत्नाकरेषु चतुर्षु वेदेषु प्रागेव विलिखितं वर्तते यथा- यत्र विश्वं भवत्येकनीडं, वसुधैव कुटुम्बकम्, कृण्वन्तो विश्वमार्यम् इति। एकतस्तु साम्प्रतं वैश्वीकरणस्य व्यवस्था

व्यावहारिक दृष्ट्या कृशायमानं विश्वबन्धुत्वम्, निरन्तरं वर्धमानं भयं पर्यावरणप्रदूषणम्, अशान्तिः च।

अतएव वेदानुसारं जीवनयापनेव साम्प्रतिके कलिकुठाराघातव्रणिते काले सामाजिकोन्नत्यै, विश्वशान्त्यै च प्रासाङ्गिकमपरिहार्यं च वर्तते। परिवारः यदि वेदानुसारं चलति, तर्हि समाजे राष्ट्रे च शान्तिः सुव्यवस्था भविष्यति, येन विश्वशान्तिरपि भविष्यति। अथर्ववेदे साधूक्तमस्ति परिवारस्य जनानां विषये-

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः।

जायापत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवाम्।। अथर्व 3.30.3

अद्य वयं पश्यामः शृणुमः, पठामः तत्र तत्र पुत्रः पित्रोः पवित्रं सम्बन्धमनवलोकयन् तावेव मारयितुं यतते। क्वचित् पिता एवं पुत्रान् कालगर्ते पातयति। क्वचिच्च सम्बन्धिनः एव स्वात्मीयान् नाशयितुं यतन्ते। वेदे सूक्तं वर्तते यद्- भ्राता भ्रात्रा सह द्वेषं न कुर्यात्, स्वसा च स्वस्रा सह द्वेषं न कुर्यात्, सर्वे परस्परं प्रेम्णा, सौहार्देन निवसन्तु-

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन् मा स्वसारमुतस्वसा।

सम्यञ्च सव्रता भूत्वा, वाचं वदत भद्रया।। तत्रैव 3.30.3

एवमेव ऋग्वेदे विवाहसूक्ते नववध्वाः परिवारे (पतिग्रहे) व्यवहारस्य सम्बन्धस्य च मनोरमं वर्णनं समुपलभ्यते यथा-

सम्राज्ञी श्वसुरे भव, सम्राज्ञी श्वश्रवा भव।

ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधिदेवसु।। ऋ. 10.85.46

एवं खलु साम्प्रतं यदि नववध्वः व्यवहरेयुः, तथा अथर्ववेदानुसारं च श्वश्रवः व्यवहरेयुः तर्हि समाजे, परिवारे च कदापि कलहस्य वातावरणमेव न भवेत् परं हा हन्त! न कोऽपि वेदानामनुसरं मनसा वाचा कर्मणा जीवनं कर्तुं यतते। श्रद्धा समेषां जनानां भूयसी वर्तते वेदान् प्रति परं कष्टं यद् तदनुसारमाचरणं विरला एव प्रकुर्वन्ति।

इदं विश्ववेदसम्मेलनमेतस्यां दिशि किञ्चित् विनूतनं कार्यं करिष्यति, अनेन सम्मेलनेन विश्वे वेदानां ज्ञान विज्ञानस्य सम्यक् प्रकाशो भवितव्यमिति मे मतिः। इत्थं शोधपत्रेऽस्मिन् वैदिक साहित्ये वर्णितायाः पारिवारिक व्यवस्थायाः यथामति वर्णनं भविष्यति इति वर्णयन् सर्वान् सरस्वती समुपासकान् वेदविज्ञान् प्रणयन् विरमति अयमकिञ्चनः दीपः।

अथर्ववेदे आश्रम-व्यवस्था

चन्द्रप्रकाश उप्रेती (छात्रः) श्रीभगवानदास आ.सं.महाविद्यालयः, हरिद्वारम्

वेदा मानवानां कृते प्रकाशस्तम्भा वर्तन्ते। वेदानां ज्ञानमेव विश्वसंस्कृतेः सभ्यतायाश्च आधारम्। एतेभ्य एव ज्ञानविज्ञानस्य प्रसारो जातः। वेदा एव आद्य ज्ञानग्रन्थाः, ज्ञानराशयः यैश्च विश्वसंस्कृतेः सभ्यतायाश्च मार्गः प्रशस्तः।

चतुर्वेदेषु अथर्ववेदस्य स्थानं अनन्तमं वर्तते, वेदोऽयं वैदिकवाङ्मयस्य शिरोभूषणं विद्यते। यद्यपि गौरव-ज्ञानोपयोगिता-मन्त्रसंख्या दृष्ट्या ऋग्वेदस्य स्थानं प्रथममस्ति, तथापि समाजशास्त्रीय-सामाजिक-दार्शनिकदृष्ट्या अथर्ववेदः महत्त्वपूर्णस्थानमाधत्ते। अथर्ववेदे आश्रमव्यवस्थासु-ब्रह्मचर्यगृहस्थाश्रमयोश्च वर्णनमेव प्रमुखतया प्राप्यते। 'आश्राम्यन्ति अस्मिन् इति आश्रमाः' अर्थात् तादृशी एका जीवनप्रक्रिया यस्यां मानवः बहूद्यमं करोति मानवेन व्यक्त्या वा कथं कार्याणि सम्पादनीयानि, कथम् आचारणीयं जीवनोल्लक्ष्यं कथं प्राप्तव्यम् इत्यादि विषयमसम्पादनदृष्ट्या आश्रमव्यवस्थायाः महत्त्वम् इतोऽपि वर्धते।

वेदाः आश्रमाणां व्यवस्थापकाः

आशुतोष पारीक व्याख्याता, सं.ध. राज. महाविद्यालय, ब्यावर

वैदिकसंस्कृतौ आश्रमव्यवस्था महत्त्वपूर्णा समाजस्य नियामिकी च व्यवस्था अस्ति। आश्रमव्यवस्था एका सम्पूर्णा जीवनव्यवस्था अस्ति। आ समन्तात् श्रमोऽत्रेति आश्रमशब्दस्य व्याख्या। आश्रम्यते स्थीयते यस्मिन् स आश्रमः। डॉ. रामजी उपाध्यायमतेन पशवस्तु प्रायशोऽनतिक्रमेण जीवनधारणाय अपेक्षितानि वस्तूनि लभन्ते। किन्तु मानवस्वभावस्तु विपरीत एव। सः सततश्रमेणैव आत्मनः सर्वोच्चसुखम्

अभ्युदयञ्च साधयति। तस्य श्रमश्चतुर्विधः- अध्ययनात्मकः, सर्जनात्मकः, तपस्यात्मकः, योगात्मकश्च। इमाः श्रमप्रवृत्तीः अधिकृत्य तस्य जीवनस्य चतुर्भागाः कृताः। इमे चत्वारः भागाः ब्रह्मचर्य-गृहस्थ-वानप्रस्थाश्रमः। योगात्मकस्तु संन्यासाश्रम एव आश्रमव्यवस्थायाः सर्वप्रथमं सङ्केतं ऋग्वेदे दशममण्डले अस्ति यत्र ब्रह्मचर्याश्रमस्य महिमा वर्णितोऽस्ति तद्यथा- ब्रह्मचारी चरति वेविषद्विषः स देवानां भवत्येकमङ्गम्। तेन जायामन्वविन्दद् बृहस्पतिः सोमेन नीतां जुह्वं न देवाः।। ऋग्वेदस्य पर्यालोचनेन ज्ञायते यत् सर्वैः ब्रह्मचर्याश्रमः अपरिहार्यत्वेन परिपालनीयोऽस्ति। ग्रहस्थादयस्तु त्रयः आश्रमाः ऐच्छिका एव आसन्। ऋग्वेदे ब्रह्मचर्याश्रमः मानवजीवनस्य आधारभूतो मतः। **ब्रह्म वै वेदः।** तस्य अध्ययनाय चर्यं जीवनविधिः ब्रह्मयचर्यम्। ब्रह्मचर्याश्रमः अध्ययनकालः। विवाहसंस्कारान्तरं स्नातकाः गृहस्थाः भवन्ति। गृहस्थाश्रमः विविधप्रकारकैः उत्तदायित्त्वैः युक्तमस्ति। पञ्चमहायज्ञानाम् अनुष्ठानं तेषां मुख्यकर्तव्यमस्ति। उक्तञ्च वशिष्ठेन- यथा नदीनदाः सर्वे समुद्रे यान्ति संस्थितिम्। एवमाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम्।। मोक्षप्राप्तिः मानवजीवनस्य चरमलक्ष्यम्। वानप्रस्थे च मानवः मोक्षाभिमुखी भवितु प्रयतते। वानप्रस्थाः नियमानुष्ठाने, त्यागे तपस्यायां च क्रमशः वृद्धिं कुवन्तः संन्यासाश्रमधारणस्य योग्यतां लभन्ते। संन्यासाश्रमः अन्तिमाश्रमः। व्यक्तिः संन्यासाश्रमे भौतिकविषयान् सर्वथा विहाय परब्रह्मणि रतिं करोति। एवञ्च सर्वविधकर्तव्याणि कुर्वन् पुषार्थचतुष्टयं च सम्प्राप्नुवन् एवं सर्वाङ्गीणजीवनं यापयति। शोधपत्रेऽस्मिन् आश्रमाणां भारतीयसंस्कृतेः महत्त्वं प्रतिपादनाय एषां दार्शनिकस्वरूपं वैज्ञानिकस्वरूपं च वर्णयिष्येते एवञ्च आधुनिकमानवसमाजे आश्रमाणां का आवश्यकता, एतेषां वैज्ञानिकप्रयोगेण वैदिकपरम्परया च निर्वाहिण कथं मानवकल्याणं भविष्यति, आश्रमव्यवस्थायाः ह्रासः कथं समस्तभारतीयसंस्कृतेः ह्रासस्य कारणम्, एतादृशाणां ज्वलन्तप्रश्नानां समाधानाय प्रयासाः क्रियन्ते। एतेषां प्रश्नानां सारतत्त्वं तु विद्वज्जनाः एवं स्वबुद्धिकौशलेन प्राप्तु शक्नुवन्ति। अहं तु विद्वज्जनानां सम्मुखे एतेषां प्रश्नानां एकत्रीकरणाय प्रयासं करोमि, येन बुधजनाः आश्रमाणां विज्ञानं दर्शनञ्च सामाजिकानां सम्मुखे प्रतिपाद्य ऐतेषां समाजे पुनःस्थापनाय प्रयासं कुर्युः। अस्याः आश्रमव्यवस्थायाः व्यवस्थापकाः पोषकाश्च वेदा एव इति अभिमतं विद्वज्जनानां सम्मुखं प्रस्तोतु अहं शोधपत्रं प्रवक्तुमिच्छामि। इत्यलम्।

वर्तमान-समाजोत्कर्षे वैदिक समाजशास्त्रीय अवधारणायाः पुनरावलोकनम्

सुरचना त्रिवेदी भगवानदीन आर्यकन्या स्ना. महा., लखीमपुर-खीरी

समाजशास्त्रमेव मानवधर्मः। मानवधर्मस्येवापरनामत्वं समाजशास्त्रम्। उत्कर्षोनामोर्ध्वनयनम्। सामाजिकोत्कर्षस्याभिप्रायः सर्वविध सामाजिकोन्नयनमिति वक्तुं शक्यते। समाजं विना मानव जीवनस्यास्तित्वं-विकासं च भवितुं नैव शक्यते। वर्तमानेऽस्मिन् वैश्विक सन्दर्भे मानवतायाः मानव समाजस्य च आध्यात्मिक-भौतिकोत्कर्षस्य महत्यावश्यकता विद्यते। अतएव वर्तमाने सन्दर्भे समाजोत्कर्षे वैदिकी समाजवादी अवधारणाः पुनरावलोकनं अति सामयिकं प्रतीयते। यतोहि साम्प्रतिके सामाजिक परिवेशे जीवनमूल्यानां ह्रासेन चिन्ता-व्याकुलतायाः वार्धक्ये च सामरस्यस्य स्नेहस्यातीव विस्खलनं दृश्यते सर्वत्र। अद्य मानवः भोगमात्रमेव जीवन लक्ष्यं मन्यमानः येनकेनापिप्रकारेणाल्पश्रमेण क्रियमाणकर्माणोवाऽपरेषां भगवमपहत्य तद् भोगे संकोचं न करोति। सम्प्रति समाजे प्रेम-करुणा-दया-सद्भाव-मैत्री-उदारतादि गुणानां स्थाने हिंसा-घृणा-वैमनस्यादि कुविचारणां एव प्रचारं दिनानुदिनं वर्धते। अनया दृशा वैदिक वाङ्मये विविधोपायाः निर्दिष्टाः सन्ति येषां पालनेन- अङ्गीकरणेन च ह्रासोन्मुखीयं वर्तमानसमाजस्योत्कर्षमवश्यमेव भवितुं शक्यते। अस्मिन् शोधलेखे इदं तथ्यं उद्घाटितम् क्रियते यत् वैदिक वाङ्मयः कस्यापि समाजविशेषस्य नापितु सर्वेष्वपि काल-खण्डेषु सर्वेषामपि मानवसमाजानां कृते सार्वभौमिक सार्वग्राह्य सामाजिकसिद्धान्तानां प्रतिपादनं करोति। वैदिक समाजवादी मान्यता सर्वेषां मानवानां प्रति समदृष्टिं विधास्यति, सौमनस्यास्य सन्देशं च प्रददाति। समाजस्य भौतिक-आध्यात्मिकोत्कर्षाय ये केऽपि गुणाः- नियमाश्च उपादेयाः सन्ति तेषां सर्वेष्वपि वैदिकवाङ्मये स्पष्टःविचारः कृतः। ते एव विचाराः वर्तमान समयेऽपि स्वीकरणीयाः पालनीयाश्च समाजोत्थानाय।

उत्तररामचरिते भवभूतेः दाम्पत्य-प्रेम : वैदिक परिप्रेक्ष्ये

डॉ. ऋतुरानी रुड़की, हरिद्वारम्

वैदिक समाजे अपि दाम्पत्य मर्यादायाः अनेकेः दृष्टान्ताः सन्ति। गृह्यसूत्रकारः कथयति- तद् गृहं-गृहं न यत्र गृहिणी न भवति

स्त्रियै तस्याः पतिः तथा पत्ये तस्य भार्या परमप्रियं मित्रम् अस्ति। अयमेव श्रेष्ठ-सम्बन्धोऽस्ति। अयं सर्वाषाम् इच्छानां प्राप्तिः सर्वश्रेष्ठ निधिः अस्ति। अयमेव साक्षात् जीवनम् अपि अस्ति। एतादृशस्य पवित्र प्रेम्णः धरातले भवभूतिः स्वरचनाः अवतारितवान्। सामवेदे अस्ति- **यदेतंद्हृदयं तव तदस्तं हृदयं मम। यदततद्हृदयं मम तदस्तं हृदयं तव।।**(सामवेद 1.3.9)

एतादृशी एव भावना उत्तररामचरिते रामसीतयो मध्ये आसीत्। दाम्पत्यस्य प्रेम्णः यादृशं सरल स्वभाविक सजीवं एवं मर्यादितं चित्रणं भवभूति कृतवान्। कदाचित् एव कुत्रचिद् एव दर्शनं भवेत्। तस्यामतानुसरेण स्त्री गृहलक्ष्मी, जीवनसङ्गिनी, पवित्रतायाः च मूर्तिः अस्ति। स्त्रियै तस्याः पतिः तथा पत्ये तस्य भार्या परमप्रियं मित्रम् अस्ति। अयमेव श्रेष्ठ-सम्बन्धोऽस्ति। अयम् सर्वाषाम् इच्छानां प्राप्तिः सर्वश्रेष्ठ-निधिः अस्ति। अयमेव साक्षात् जीवनम् अपि अस्ति। एतादृशस्य पवित्र प्रेम्णः धरातले भवभूतिः स्वरचनाः अवतारितवान्। भवभूतेः एताः विशेषता तां श्रेष्ठकलाकाराणां कोट्यां स्थापयति स्म। भवभूतिः संस्कृत-साहित्ये अति सम्मानः प्राप्तवान् भवभूते समर्थकानां कथनम् अस्ति यत् कालिदासः तु केवलं कविः अस्ति किन्तु भवभूतिः महाकविः अस्ति। **'कवयः कालिदासाद्या भवभूतिर्महाकविः। तरवः पारिजाताद्याः स्नुहीपृथ्वो महातरु।।**

वेदेषु पारिवारिकं चिन्तनम्

दयालसिंहः पंवारः, श्रीला.ब.शा.रा.सं.विद्यापीठम्, नईदिल्ली

अद्य यदा पारिवारिक-जीवने विखण्डनं दृश्यते, विवाह-संस्था नाना-विकृतिभिराक्रान्ता, तत्प्रभावेण च समाज-स्वरूपमाकुलीभवति, तादृशे परिवेशे भारतीय-परिवारस्य मौलिकं स्वरूपमन्वेष्टुं आदिग्रन्था वेदा अवश्यमेवानुसन्धेया अस्माभिः। श्रेष्ठस्य समाजस्य, महतो राष्ट्रस्य च निर्माणाय संस्कारसम्पन्नानां, समृद्धानां परिवाराणां महती भूमिकापेक्ष्यते। वर्तमान-सन्दर्भे तेषां पारिवारिकादर्शानां वर्तते काचित् प्रासङ्गिकतेत्याकयितुमपि आर्याणां सनातन-ग्रन्थेषु वेदेषु परिवार-विषयकं चिन्तनमस्माभिरनुसन्धीयते।

वैदिक-ग्रन्थेषु स्थाने स्थाने आदर्श-परिवारस्य यच्चित्रमुपस्थापितं, तदेवाद्याप्यनुकरणीयम्। परस्परं कलहायमानेषु विखण्ड्यमानेषु साम्प्रतिकेषु भारतीय-परिवारेषु या शोचनीया दशाा दृश्यते, तस्य निवारणमपि वैदिके ऋजु-मार्गे एव वर्तते।

शूद्र वर्ण और वेद

डॉ0 राजेन्द्र विद्यालंकार, रीडर, संस्कृत एवं प्राच्यविद्या संस्थान, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

वैदिक चातुर्वर्ण्य मानव मात्र को बिना किसी भेदभाव और ईर्ष्या के उत्तरोत्तर उन्नति का अधिकार देने तथा समाज को स्वस्थ मानसिकता के साँचे में ढालने का एक विधान है। इस परिकल्पना में प्रत्येक मानव एक दूसरे का सहायक है, संरक्षण करने वाला है, ऊँचा नीचा कोई नहीं, बस जो जैसे गुणों से युक्त कर्त्तव्य कर्म करता है, वह वैसा ही पूज्य, अर्चनीय हो जाता है। इसप्रकार यह व्यवस्था गुण, कर्माधृत है। प्रथम उन्नति करने हेतु सबको समान अधिकार है, ततः कर्म उस वर्ण का निर्धारक बन जाता है। वेद उक्त कथन को ही परिपुष्ट करते हैं। वैदिक ऋचा यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः। ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च। (यजु0 26.2) सम्पूर्ण मानवजाति तक वेदज्ञान के प्रसार की बात कह कर समान व्यवहार का संकेत दे रही है। लेकिन परवर्ती काल में स्वार्थजन्य न्यूनताओं के कारण समाज में गिरावट आने से अन्य वर्णो की तरह शूद्रों की भी हीन दशा हो गई, उन्हें अस्पृश्य समझा जाने लगा। वेदों से, शिक्षा से दूर कर दिया गया और समाज आज की दुरवस्था को प्राप्त हो गया।

वेदों में शूद्रविषयक क्या विचारणाएँ हैं, परवर्ती साहित्य भी इस विषय में क्या कहता है? इत्यादि विचार आधुनिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करना इस शोधपत्र का विवेच्य विषय है।

ब्राह्मण एवं क्षत्रिय का वर्णधर्म

डॉ0 ब्रह्मदेव, उपाचार्य, संस्कृत-विभाग, गुरुकुलकांगड़ीविश्वविद्यालय, हरिद्वार

समाज को सुव्यवस्थित करने के लिए वेदों में वर्णचतुष्टय की परिकल्पना है, जो ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्......(ऋ0 10.90.

12) मन्त्र के द्वारा संकेतित है। इस व्यवस्था में कर्त्तव्यकर्म ही मुख्यता रखता है, वही मानवीय मूल्यों को उत्कृष्ट से उत्कृष्टतर और उत्कृष्टतम बनाता हुआ मानवों में आदर्शों के आधार पर गुण, कर्मानुसार भिन्नता को प्रदर्शित करता है। ब्राह्मण और क्षत्रिय का वर्णध र्म उक्त मन्त्र में अत्यन्त सूत्रशैली में निर्दिष्ट है, जिसका पश्चाद्‌वर्ती संस्कृत साहित्य में पल्लवन हुआ है। वास्तव में इन दोनों वर्णो में जिन शम, दम, तितिक्षा, लोकसंरक्षण, पराक्रम आदि उदात्त गुणों का उल्लेख प्राप्त होता है, वह आज के समाज में किञ्चिन्मात्र भी देखने को नहीं मिलता। यही कारण है कि समाज की सतत अधोगति देखी जा सकती है। आज के ब्राह्मण और क्षत्रिय (नेता) इतने कर्त्तव्यविमुख हो गये हैं जिसकी परिकल्पना करना भी कठिन है। वास्तव में इनके चरित्र पर ही सुन्दर और स्वस्थ समाज का प्रासाद खड़ा किया जा सकता है, अत एव प्राचीन वेदादि समस्त साहित्य इनके कर्त्तव्यकर्मों और गुणों को विस्तार से कहता है, जिसे इस पत्र के माध्यम से विवेचित कर आधुनिक समाज को आत्मनिरीक्षण का सन्देश देने का प्रयत्न है।

वैदिक वाङ्मय में सामाजिक समरसता

डॉ. धर्मा रीडर(सेवा निवृत्त) लक्ष्मीबाई महाविद्यालय(दिल्ली विश्वविद्यालय)

आजकल कुण्ठाग्रस्त व्यक्ति, विगलित होते हुए परिवार तथा विघटित होते समाज किस सहृदय के चित्त को विचलित नहीं करते। विभिन्न क्षेत्रों में व्याप्त भरपूर भ्रष्टाचार, उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त करता हुआ पारस्परिक विद्वेष, जाति, धर्म, सम्प्रदाय तथा क्षेत्र आदि के नाम पर घोर संघर्ष, यत्र तत्र सर्वत्र प्रसृत अत्याचार तथा अनाचार सभी की चिन्ता का विषय बने हुए हैं। सभी समसामयिक समस्याओं के समाधान के लिए सम्पूर्ण विश्व की दृष्टि भारत पर टिकी है। भारत में सभी समस्याओं का सार्वकालिक एवं सार्वभौमिक समधान वैदिक वाङ्मय में उपलब्ध है। वैदिक वाङ्मय प्रकृति के उन नियमों का स्पन्दन हैं जिनसे समस्त सृष्टि का सृजन एवं संचालन सम्भव हुआ है। यहाँ सामाजिक समरसता से समाज में व्याप्त पारस्परिक-प्रेम, सौहार्द, संवेदनशीलता एवं भावनात्मक साम्य अभिप्रेत है।

सामाजिक समता की स्थापना के लिए स्वार्थपरता के स्थान पर परोपकारपरायणता, 'अयं निजः परो वेति...........' की क्षुद्र भावना के स्थान पर "वसुधैव कुटुम्बकम्" की उदार परिकल्पना अपेक्षित है। संवेदनशीलता तथा सहिष्णुता उसके मुख्य घटक है। वैयक्तिक उदात्तीकरण, दाम्पत्य में अद्वैत की स्थापना तथा पारिवारिक सामंजस्य उसके सोपान है। वैदिक- वाङ्मय व्यष्टि तथा समष्टि की इन सभी अपेक्षाओं को पूर्ण करने की सामर्थ्य रखता है। इसमें पदे पदे वैयक्तिक-उत्थान, पारिवारिक उत्कर्ष तथा सामाजिक सामरस्य के प्रेरणास्पद सूत्र विद्यमान हैं प्रस्तुत पत्र में स्थालीपुलाक-न्याय से कुछ को उद्धृत कर उपरोक्त कथन को सिद्ध करने का विनम्र प्रयास किया गया है।

वैदिक वाङ्मय पारिवारिक समीक्षण

डॉ. सुनीता तिवारी, संस्कृत विभागाध्यक्ष, गुरुनानक गर्ल्स पी.जी. कॉलेज, कानपुर

भारतीय परम्पराओं के अनुसार वेदों को ईश्वरीय ज्ञान माना जाता है। 'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनायधेयम्' अर्थात् "संहिता, ब्राह्मण आरण्यक और उपनिषद् इन चारों की वेद संज्ञा हैं" यह नित्य है एवं सृष्टि की रचना के आदि में ईश्वर ने वैदिक ज्ञान का आविर्भाव किया जिस प्रकार ईश्वर अनादि, अनन्त और अविनश्वर है। उसी प्रकार ईश्वरीय ज्ञान वेद भी अनादि, अनन्त और अविनश्वर है। वेद शब्द 'विद् ज्ञाने' धातु से घञ् प्रत्यय के लगाने से बनता है इस प्रकार वेद शब्द का अर्थ सम्यक् ज्ञान है। वैदिक संस्कृति हमें आदर्श, आनन्दमय सुखी पारिवारिक जीवन का दिव्य संदेश देती है। परिवार ही व्यक्ति समाज और राष्ट्र की उन्नति का आधार है उसकी सुव्यवस्था शान्ति और उन्नति पर ही व्यक्ति समाज और राष्ट्र की उन्नति निर्भर है।

वैदिक युग का पारिवारिक जीवन पारस्परिक आत्मीयता और कर्त्तव्य निष्ठा पर आधारित था पिता, पुत्र, पौत्र पितामह, पत्नी, माता तथा अन्य पारिवारिक सम्बन्धियों के प्रति आदर एवं सस्नेह प्रेमभाव का बाहुल्य था। वैदिक युग में 'कुल' के गठन का बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान था। सामाजिक संगठन की मूलभूत इकाई को तब 'कुल' कहा जाता है। वैदिक युग में पिता या ज्येष्ठ भ्राता, जो कुल का श्रेष्ठ या स्वामी हुआ करता था कुलय कहा जाता था।

वैदिक वाङ्मय में समाज शास्त्र की समीक्षा

डॉ. हरबंस कौर रीडर, हिन्दीविभाग, गुरुनानक गर्ल्स पी.जी. कालेज, कानपुर- उ.प्र.

वैदिक युग का सामाजिक जीवन पारस्परिक एकता, सहयोग, सद्‌भाव और संगठन पर आधारित था। व्यक्ति का अस्तित्व समाज पर अवलम्बित तथा जीवित था और व्यक्ति ही समाज का निर्माता भी था। इसका सुव्यवस्थित एवं स्पष्ट उल्लेख 1. अथर्ववेद(3.30.106) और 2. यजुर्वेद (19.49) में देखने को मिलता है। वैदिक राष्ट्र के संगठन और एकता के अनेक उदाहरण वेदमन्त्रों में सुरक्षित हैं। 3. ऋग्वेद (10.191.2) के एक मन्त्र में कहा गाय है कि हे मनुष्यों! तुम परस्पर मिलकर रहो। एक साथ स्तोत्र-पाठ करो। तुम सब का मन एक समान हो-

'संगच्छध्वं संवदध्वं संवो मनांसि जानताम्। देवा भागं यथापूर्वो संजा नाना उपासते।।'

4. ऋग्वेद (10.191.4) की एक ऋचा यजमान को संबोधित करते हुए कहता है "तुम्हारा अध्यवसाय एक हो हृदय हो, मन एक हो। तुम लोग एक साथ मिलकर रहो।" "समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः। समानस्तु वो मनो यथा वः सुसहायति।।"

समकालीन समाजों में वेदों की प्रासंगिकता

डॉ. रश्मि, वरिष्ठ प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, वी.एम.एल.जी. कॉलेज, गाजियाबाद (उ.प्र.)

वर्तमान भारतीय संस्कृति वास्तव में वैदिक संस्कृति का ही विकसित रूप है। जन्म से लेकर आज तक इस संस्कृति का विकास भारतवर्ष में ही हुआ है यद्यपि यह संस्कृति अन्य देशों के सम्पर्क में आयी है अथवा इसे अन्य देशों में फैलाने का प्रयत्न भी हुआ है, तो भी भारतवर्ष की सीमाऐं ही इसकी यथार्थ सीमाऐं हैं। इतिहासज्ञों के सब मतभेदों को ध्यान में रखते हुए यह कहना पड़ेगा कि इस संस्कृति का काल कम से कम चार या पाँच हजार वर्षो का है। पुराण-विद्याओं के अध्येताओं की राय है कि आर्य त्रैवर्णिक तथा शूद्र सबको समान रूप से पवित्र मानने वाले पौराणिक धर्म का, संस्कृति का सम्बन्ध वेदों के पूर्ववर्ती काल के आर्येत्तर प्राचीन भारतीयों के साथ स्थापित होता है। परन्तु वर्तमान समय में उपलब्ध पौराणिक संस्कृति का स्वरूप असल में वही है जो वैदिकों द्वारा पूर्णतया आत्मसात् किया गया था। वैदिक संस्कृति ही प्राचीनतम संस्कृति है जो सबसे वरिष्ठ एवं प्रभावी सिद्ध हुई है; क्योंकि उसने वर्तमान समय तक अपनी कर्तृत्व-शक्ति को लोप नहीं होने दिया। वेदों के पूर्ववर्ती काल की संस्कृतियों ने अपने अवशेषों को वैदिक संस्कृति के आधिपत्य में लाकर सुरक्षित रखा है। इस तरह यद्यपि उन संस्कृतियों ने अपने अस्तित्व को कायम रखा है; तो भी मानना होगा कि वह (अस्तित्व; वैदिक संस्कृति का ही अंग बन गया है। वेद, वेदांग तथा वेदान्त तीनों की सर्वतोमुखी प्रभुता के दर्शन वेद-काल से लेकर आज तक के सांस्कृतिक आन्दोलन में किसी न किसी रूप में होते ही हैं।

वैदिक साहित्य में परिवार

डॉ. लाभुवहन एम0 कारावदरा व्याख्याता, एम.पी. शाह आर्ट्स-सायन्स कॉलेज, सुरेन्द्रनगर

डॉ. मधुभाई एम.हीरपरा दरबार गोपालदास शिक्षण महाविद्यालय, अलीआ बाडा

"आदौ वेदमयी दिव्या यतः सर्वाः प्रवृत्तयः।" ऐसा व्यास जी ने उचित रूप से कहा है। यह वचन को सार्थ करने के लिए सभी को प्रवृत्त होना पड़ेगा। ये सब स्रोत के मूल विश्वपरिवार में निहित हैं। अथर्ववेद में कहा है कि 'अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः।' और, 'तत् कृण्मो ब्रह्म वो गृहे।' ऐसा कह कर परिवार ऐक्य की भावना प्रदर्शित की गई है। अतः इस लघुशोध प्रपत्र में वैदिक साहित्य के इस भाव को व्यक्त करने का संक्षिप्त प्रयास किया गया है।

VEDIC SOCIALISM

Dr. Deepali Saxena Lecturer-Sociology DG (PG) College Kanpur

The vedas are not only the most ancient literature but also the fountain of all types of knowledge, as the first Law-maker Manu has said, "The veda is the source of all Dharmas." It is simply wonderful to contemplate that at such an early down of the history of humanity, the vedic people had developed a unique culture & an ideal civilization which still furnish a model for imitation to the so called civilized races of mankind.

Vedic wisdom has visualized all the different aspects of life such a compact manner that the expositions of the vedic hymns can reveal the theories, useful for the welfare of the whole of mankind which are not contradictory in themselves but are basically integrated in their true form. In this paper I attempt to present an outline of vedic socialism, as propounded in the Mantras of the Rgveda & the Atharvaveda & to show how the concept of socialism was developed there by the ideal of synthesis of . materialism & spiritualism.

INTERGENERATIONAL RELATIONS IN VEDAS: AN ANALYTICAL STUDY IN MODERN PERSPECTIVE

Dr. A.K. Shukla, Lecturer - Sociology, Govt. P.G. College, Kotdwar, Uttarakhand

India is second largest populated country of the world. Interestingly this population has contradictory characteristic. On one side we have largest number of youth population. On the same time we also have one of the largest numbers of aged population. These two opposite component of our population have their different mind set and behavioral patterns. They are mismatched.

Youth and aged are the axis of any progressive society. 'f they are in perfect harmony they can be constructive for society but if otherwise they will be harmful and destructive for society. 21st century confronts ever shifting social cultural and technological change. We are living in a challenging era with increased pressure on aged and youth. No doubt that we are progressing in every front of life but disrespect negligence for aged in also increased. Vedas are undoubtedly the fountain head of knowledge. They are an important section of our ancient heritage throw valuable light on different aspect of ancient Indian history and culture. In my this paper I will explain the present problem of intergeneration relation with the help of vedic text. This paper is based on secondary data.

GRHYSUTRAS ON DISTURBED FAMILY LIFE

Dr. Sulok Sunder Mohanty, Professor of Sanskrit, G.M. College (Autonomous) Sambalpur, Orissa - 768004

The Grhyasutras written around 600 B.C. reflect a fairly satisfactory picture of the family life of the Aryans during later vedic period. The house.holder remains central to the family unit and marriage was considered as the most important institution on the foundation of which the family life flourished. Family as a unit served to further the ends of individual aspirations, which finally contributed to the prosperity of the society. The, authors of these texts have taken due care not only to recommend those practices which contribute to the growth of an ideal family life but also they identify the factors which cause misery to the same. In this paper various factors, which are stated as detrimental to a happy family life according to the Grhyasutras are discussed as they still have their relevance in the present context.

VEDIC MARRIAGE: EPICENTER OF SOCIAL MANAGEMENT

Pranati Mohapatra Visva Bharati

Harmonious existence depends on the harmonious social life. Harmonious social life depends on the good social management. This starts form the conception of a child in the mother's womd. The human child grows and gets salvation at certain point of time.Every steps of a human being is governed by certain managerial policies.These managerial policies are very much associated with the individual. Here in this paper role of the marriage of a human being in establishment of harmonius social life shall be analyzed.

THE VEGETARIAN FOOD IN THE RIGVEDA

Prof. Shashi Tiwari Delhi University, Delhi

To have a glimpse of the cultural and materialistic life of the Rigvedic people, a deep semantic analysis of the Rig-vedic words is required. Such study can reveal the hidden aspects of the Vedic culture and civilization in its true form. Food is the urgen and recurrent need of an individual. It dictates their activities in relation to their land a every stage of economical development. In the paper, an attempt has been made describe the vegetarian food used by the Rigvedic people. Economic condition and environment of the area around Sapta-saindava Will also be dealt with to come extent on the basis of the Rigvedic references. In the Rigvedic verses many words are used in the sense of food such as Bhojan andhas, sina, pitu, shravas, vaja, ida, isha, svadha, urk etc. All these words give hin through etmological analysis that food is that which gives delight, strength nourishment and protection in Vedic view. Among cereals the most important place was occupied by yava, as it is frequently mentioned in the Rigveda. The word Dhanyc occurs in the Rigveda three times only. This word means the grain of that name meaning rice. In the Rigvedic times rice and barley were definitely the dominating cereals in the list of known grains. The people enjoyed various preparations of barley and rice in their food. Their food was supplemented by milk (Payas) and its variec products, such as clarified butter (Ghee) and curd (Dadhi). Each family had a number of cows and the sages also sought their gifts. The principal meal and sacrificial food were prepared from barley and rice, in combination with milk products.

SOCIAL JUSTICE IN THE VEDAS

Shri. Arun Kumar Dixit Lecturer, Dept. of Law, Dr. B.R. Ambedkar University, Agra.
Dr. Sona Dixit Lecturer, Faculty of Education, Dayalbagh Educational Institute (Deemed University) Agra.

The ancient Indian tradition contains profound wisdom of physical and meta-physical knowledge. Even before the human society in the rest of the world did not begin chronicling its early intelligence, India had unfolded the secrets of wisdom and presented the superior contents it to the mankind. The concept of Social justice which has essentially fascinated philosophers ever since Plato in The Republic formalized the argument that an ideal state would rest on four virtues wisdom, courage, moderation, and justice. Social justice is also used to refer to the overall fairness of a society in its divisions and distributions of rewards and burdens and, as such, the phrase has been adopted by political parties with a redistributive agenda. Social Justice derives its authority from the codes of morality prevailing in each culture. However, the roots of the concept lie in the Vedas. Vedas are the rich source of knowledge, which flourished herewith all dsiciplines like social, ethical, phychological, scientific, aesthetical, philosophical and spiritual need of the world. Thousands of years ago, when the world civilizations were not in existence the Indians were aware of the ultimate Reality.- Known as Braman. The highest humanism was expressed as "vasudeva Kutumba" means the whole world is one family. Righteousness is the bedrock of Indian culture which is called Dharma. It is taught by sruti which contains four branches viz, Veda, upaveda, vedanga and upanisad. The Vedas prescribe five great duties (maha yajnas) to sublimate self-interest to the

interest of the society. Yajna means self-sacrifice. These noble obligations include brahma yajna, a discipline for personal development by acquiring knowledge, including daily reading of the scriptures; deva yajna, a symbolic sacrifice required of every head of household to remind the family that they have to share with each other and use wealth for the welfare of others; pitri yajna, a commitment to discharge one's responsibility to senior citizens; athithi yagna, an obliagtion toward the entire human race (athithi means an unannounced visitor), even at the price of one's own comfort and happiness; and booth yajna, a unique contribution of Hinduism to the world that advocates giving a porti on of one's meal to an animal.

वैदिक वर्णव्यवस्था वैज्ञानिकआधारः

डॉ. हरिगोपालशास्त्री प्राचार्य महाविद्यालय ज्वालापुरस्य।

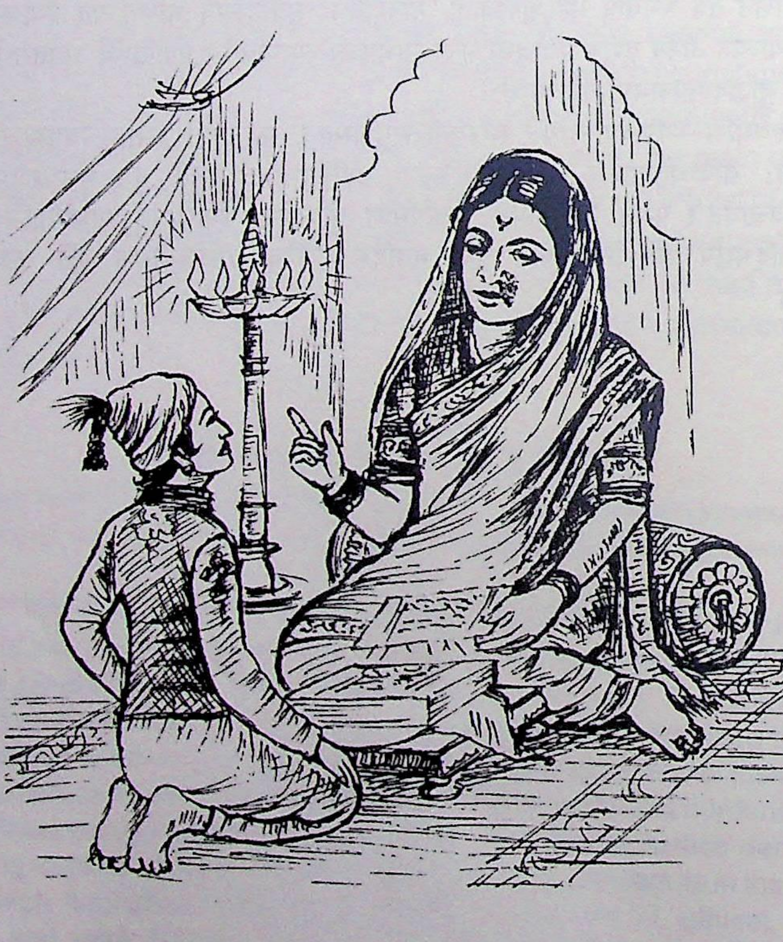
इद्र नास्ति तिरोहितं समस्त शास्त्राटवी परिभ्रमण लब्धमहाविभूतिनां महतां सतां विदुषां यत् निर्धारित विषय घटकानां पदानां व्युत्पत्तिनिमित्तं प्रवृत्तिनिमित्तं वा यावज्जनो न जानीयाद् तावत् असौ विपन्नौ बराको वक्ता यदा स्वमपि बोधयितुं न शक्नुयात् कथं तावत् परान् प्रत्याययितुमसौ प्रयतेत। प्रथमं मया वैज्ञानिक आधारः इति निर्धारितविषयघटकपदमध्ये वैज्ञानिक पदस्य तात्पर्य कियतीं सीमामाटीकते इति सम्यक् विचारयतैव अग्रे धावितुं पार्येत नान्यथा।

कमनीय गुणालया महानुभावाः। प्रथमहं वैज्ञानिक शब्दरहस्य जातमेव स्वलेखनी प्रचारेण प्रकटयामि। वैज्ञानिक शब्दस्तावत् दाक्षिपुत्रानुसारेण समस्ताष्टाध्यायी घटकेन 'प्रयोजनम्' इति सूत्रेण प्रसिद्धिमाप्नोति, तेन च विज्ञानम्- प्रयोजनम् अस्य इति समुचितां व्युत्पत्तिमनुसरन् विज्ञान शब्दः प्रतीतिपथमलङ्करोति।

समस्त सारस्वतपारावारीणेन तत्र भगवता महाभाष्यकृता 'गोनर्दीयेन' सूत्रेऽस्मिन् भणितं यत् प्रयोजनं फलं च कारणञ्च। तच्चेत्थम् प्रयोजयते तत् प्रयोजनम् उताहो प्रयोज्यते अनेन तदीय प्रयोजम्। फलं साधनञ्च व्युत्पत्तिरियं प्रतीतिपथं अवतरत्येव शाब्दिकदार्शनिकालंकारिकादि समस्त शास्त्रार्णव मन्थायमान बुद्धिदण्डानामपरोक्षोऽयमर्थः।

महामहिमशालिनः अमूल्यमणि-माणिक्यनिधयः, सरस्वती समुपासकाः सज्जनाः। प्रस्तुतः विषयो गभीरो विचारणीयश्च। इदं तावत् अतिस्फुटं यत् विचारविषयतायाः संदिग्धतायाश्च कश्चनातिनिकटो अविनाभावसम्बन्धो धूम-धूमध्वजयोरिवास्ति। तथा च न्यायविदां रहस्यमय वचनम्- 'नासंदिग्धोविचार्यते'। परन्तु विलसतभिः तर्कप्रमाण युक्तिभिः प्रमाणयितुं साधयितुमिदं शक्यते यद् वैदिक वर्णाश्रम व्यवस्थाया वैज्ञानिकता अनिच्छद्भिरपि सर्वैर्मानयितव्या। यदा भवद्भिः वैदिक वर्णव्यवस्था इति कथ्यते तदा अमुष्या प्रमाणिकता सुतरामेव स्वतः सिद्धा सम्पद्यते।

वैदिक नारी



वेदों में नारी सशक्तीकरण - एक दार्शनिक विवेचन

सुजाता चौहान (शोधच्छात्रा) दर्शन विभाग, गु.कां.वि.वि. हरिद्वार

भारतीय संस्कृति में आज भी नारी को 'मातृदेवो भव' द्वारा नारी के अग्रिम स्थान की अभिव्यंजना होती है। ऋग्वेद में ही नहीं उपनिषदों में भी मैत्रेयी, गार्गी, अपाला, घोषा, विश्ववारा जैसी नारी का उल्लेख मिलता है, जो वेदों का अध्ययन अध्यापन करती थी। वैदिक काल में स्त्रियाँ ब्रह्मचर्य का पालन भी करती थी। युवावस्था को प्राप्त होने के पश्चात् वे युवा औरब्रह्मचारी वर का वरण करती थी।

'ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्।'(ऋ. 10.30.5-6)

ऐतिहासिक दृष्टि से अवलोकन करें तो भारतीय समाज में नारी की स्थिति सदैव ही परिवर्तनशील रही है।

वैदिक साहित्य में नारी-शिक्षा

डॉ. तारिका कुमारी (शोधसहायिका) संस्कृत एवं प्राकृतभाषा-विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय

प्राचीनकाल के सांस्कृतिक इतिहास पर दृष्टिपात करने से पता चलता है कि ईसा के हजारों वर्ष पूर्व ही, वैदिककाल से ही नारी शिक्षा की गौरवमयी परम्परा विद्यमान थी। स्त्रियों को पुरुषों के ही सदृश शिक्षा प्राप्त करने के सम्पूर्ण अधिकार प्राप्त थे। वैदिक साहित्य में अनेक ब्रह्मवादिनी महिलाओं का वर्णन है। ऋग्वेद के कई मन्त्रों में कन्याओं की शिक्षा की चर्चा हुयी है। इनका उपनयन संस्कार होता था, यह एक मन्त्र में पठित 'उपनीता' पद से ज्ञात होता है।(ऋ. 10.109.4 "भीमा जाया ब्राह्मणस्योपनीता।")

ऋग्वेद के एक मन्त्र में कन्याओं को शिक्षा दी गयी है कि वे आचरण पर नियन्त्रण करके ही विदुषी व पूज्य बन सकती है। ऋग्वेद और सामवेद के सूक्तों में विभिन्न ऋषिकाओं का उल्लेख है यथा- रोमशा, लोपामुद्रा, अपाला, विश्ववारा, घोषाकाक्षीवती आदि। वैदिक संहिताओं के अनन्तर ब्राह्मण ग्रन्थों और उपनिषदों में भी उच्च शिक्षित नारियों का वर्णन हैं। 'बृहदारण्यक उपनिषद्' में गार्गी वाचक्नवी नामक एक विदुषी का उल्लेख है, जो याज्ञवल्क्य के साथ ब्रह्मविद्या का संवाद करती है। 'कौषीतकी ब्राह्मण' में एक आर्य महिला पथ्यास्वती का वर्णन है, जो अध्ययन द्वारा वाक् (सरस्वती) उपाधि प्राप्त करने लिए उत्तर दिशा की ओर जा रही है। वेदों के अतिरिक्त अनेक विदुषियाँ पूर्व मीमांसा में भी रूचि लेती थी। यह एक शुष्क और कठिन विषय है, जिसका संबंध हवन और यज्ञों की समस्याओं से था।

शिक्षा की प्रणाली स्त्रियों के लिए भी प्राय: वही थी, जो पुरुषों के लिए थी। वेदांगों के अध्ययन के बाद जो कन्या एक वेद की शिक्षा प्राप्त कर सके वह वसु, जो दो को पढ़ सके वह रुद्र और जो तीन विद्याओं अर्थात् ज्ञान, कर्म और उपासना सम्बन्धी वेदों का अध्ययन कर सकें, वह आदित्य ब्रह्मचारिणी कहलाती थी। शिक्षा का मुख्य विषय था ईश्वर का बोध। इस विषय में वेद स्नातिका की अवस्था में पहुंचने वाली छात्रा के लिए आदेश देता है- 'हे स्नातिके ! कार्य करते समय पूर्व पश्चात् मध्य और अन्त में सब समान ईश्वर का चिन्तन किया कर। चिन्ताओं और रोगों से रहित शरीर रूपी देवपुरी को प्राप्त करने के पश्चात् अर्थात् पूर्ण विदुषी बनने के उपरांत व पतिगृह में सबका मंगल करने और सुख देने वाली बनकर रहना।' वैदिक युग में कितनी ही विदुषी महिलाएं मन्त्रद्रष्टा भी थीं, जिनके मन्त्र आज भी ऋग्वेद में वर्तमान हैं। इन उल्लेखों से यह स्पष्ट हो जाता है कि वैदिक युगीन नारी-शिक्षा का स्तर बहुत ऊँचा था।

वेदों में नारी तथा वर्तमान में प्रासंगिकता

डॉ. मिथिलेश गुप्ता वरिष्ठ व्याख्याता समाज शास्त्र, बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय,अलवर (राजस्थान)

महिलायें समाज का महत्त्वपूर्ण अंग होती हैं। अत: किसी समाज की प्रगति एवं मूल्यांकन का मापदण्ड यह भी है कि उस समाज में महिलाओं की स्थिति एवं भूमिका क्या है? विश्व की प्राचीनतम एक ज्ञान प्रति के मूल उद्गम् वेद ही हैं वेदों में भी ऋग्वेद की रचना प्रथम रचना है अत: वेदों में नारी की सर्वप्रथम स्थिति जानने के लिए ऋग्वेद में नारी का स्वरूप क्या था? उस काल में

स्त्री की दशा कैसी थी? यह नारी के लिए प्रस्तुत दुहिता, योद्धा, मातर, जननी जामि, जाया, वधू, अम्बा इडा, काम्या, चन्द्रा आदि वैशिष्ट्य परक वैदिक शब्द उसकी महत्ता को इंगित करते हुए स्त्री की महत्त्वपूर्ण स्थिति का परिचायक है। संस्कृति सभ्यता निर्माण और विकास में नारी के अप्रतिम योगदान को दृष्टिगत कर वेदों में महिलाओं की स्थिति अत्यधिक सशक्त थी उन्हें पुरुष के समान शिक्षा, धर्म, राजनीति, सम्पत्ति व उत्तराधिकार के अधिकार प्राप्त थे। वेदों में नारी से सूर्य प्रभा के समान विश्वरूपा और महान् बनने की कामना की है 'सूर्येव नारी, विश्वरूपा महिला, शुभ संतरा, कुलपा स्योना, शिवा, कल्याणकारिणी, सुमंगला, गृहाणां प्रतराणी आदि विशेषणों से सम्बोधित कर इसकी श्रेष्ठता और सशक्तता को रूपांकित किया है। वह पति गृह में दासी नहीं अपितु सम्राज्ञी बनकर आती थी 'त्वं सम्राज्ञयेधि पत्युरस्तं परेत्य।' वह देश की रक्षा में अग्रणी थी।

पुत्री का जन्म शोक का कारण नहीं था। पुत्रियों को भी पुत्र के समान ही शिक्षा प्राप्त करने की स्वतंत्रता थी कन्याओं का विवाह पूर्ण यौवन प्राप्त करने पर ही किया जाता था।

वर्तमान में प्रसांगिता की दृष्टि से कहा जा सकता है कि ऋग्वैदिक युग में भारतीय समाज में स्त्रियों की स्थिति प्रतिष्ठापूर्ण थी जो कालान्तर में धीरे-धीरे अपनी उसी स्थिति पर कायम नहीं रह सकी तथा उत्तरवैदिक उपनिषद् सूत्र व स्मृतिकाल और उसके बाद अनवरत अवनत होती चली गई।

वैदिक साहित्य में नारी की उद्‌भावना

डॉ. सुनीता सिंह रीडर, शिक्षा शास्त्र विभाग, नारी शिक्षा निकेतन, पी.जी. कालेज, लखनऊ

वेदों में नारी को विशिष्ट गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त था। वेद विश्व साहित्य की प्राचीनतम रचना है। हमारी सभ्यता, संस्कृति, आध ार प्रणाली, दर्शन सब कुछ वेद की ही देन है। वेदों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उस समय नारी सुशिक्षित एवं ज्ञानसम्पन्न होती थी। बालकों के समान उनके भी उपनयन आदि संस्कार होते थे। वे वेद विद्याओं के साथ- साथ यज्ञादि कर्मो, शास्त्रार्थ इत्यादि में भी पारंगत होती थी। वेद में अनेक मन्त्र दर्शिका ऋषिका प्राप्त होती हैं। जिनमें विश्वतारा, आमेयी, अपाला तथा घोषा(ऋग्वेद) इत्यादि प्रमुख हैं। अगस्त्य पत्नी लोपामुद्रा, रोमशा, श्रद्धा कामायनी, शची, यमी, सूर्या, सावित्री, विभावरी, अदिति, इन्द्राणी आदि स्मरणीय हैं, जिन्होंने मन्त्रों का साक्षात्कार किया।वैदिक कालीन समाज में नारी को निम्नलिखित रूपों में अत्यधिक सम्मान प्राप्त था-

पुत्री-

वैदिक काल में कन्या को शुभ तथा विशेष शक्ति से युक्त माना जाता था।

'मम पुत्राः शत्रूहणोऽथो में दुहिता विराट्'(ऋग्वेद 10.4.3)। इस मन्त्र में दुहिता के महनीय महत्त्व की उद्घोषणा है। अथर्व ऋषि ने अथर्ववेद में कन्या के यज्ञ एवं वर्चस्व को स्वीकार किया है।

भगिनी-

कुछ सूक्तों में स्त्री देवता एवं पुरुष देवता के बीच भगिनी स्वरूप का चित्रण किया गया है।

पत्नी-

वैदिक परिवर का मण्डल, सौभाग्य और कल्याण सब कुछ पत्नी पर आधारित था। 'गृहिणी गृहमुच्यते' की भव्य भावना का सत्य मूल वैदिक साहित्य में परिलक्षित होता है।

मात-

वैदिक काल में नारी मातृरूप में अत्यन्त पूजनीय थी। 'बन्धुर्मे माता पृथ्वी महीयम्'(ऋग्वेद) तथा 'माता भूमि पुत्रोऽहं पृथिव्याः' (अथर्ववेद) के द्वारा माता रूप में उसकी पग-पग पर स्तुति की गयी है। अतः वैदिक साहित्य का अनुशीलन करने पर दृष्टिगोचर होता है कि भारतवासियों के सम्पूर्ण आदर्श स्त्री में ही पाये जाते हैं। विद्या का आदर्श सरस्वती में धन का आदर्श लक्ष्मी में पराक्रम का महामाया या दुर्गा में, सौन्दर्य का रति में, पवित्रता का गंगा में, परम शक्तिशाली भगवान् को भी जगज्जननी के रूप में देखा गया है।

वैदिक साहित्य में नारी

डॉ. बुद्धमति यादव व्याख्याता- हिन्दी जी.डी. कॉलेज, अलवर (राजस्थान)

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।

यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफला क्रिया:।।

मनु का यह कथन वैदिक साहित्य में नारी महत्ता को प्रतिपादित करता है। वैदिक साहित्य में नारी शिक्षा की दृष्टि से चरमोत्कर्ष को प्राप्त थी। नारी को परा और अपरा ज्ञान प्राप्त करने का अधिकार था। ऋग्वेद की कुछ ऋचाओं की रचना में घोषा, अपाला, विश्ववारा और सिरूता निवावरी का योगदान रहा। पुरुषों के साथ शास्त्रार्थ करना, यज्ञ-अनुष्ठान का संपादन करना भी वैदिक नारी जानती थी। वैदिक अध्ययन के साथ-साथ गणित, आयुर्वेद, संगीत, नृत्य, शिल्पकला से भी भलीभाँति परिचित थी। वेदों में नारी तीन स्वरूपों में वर्णित है- कन्या, पत्नी और माता। वेदों में कन्याओं को बड़ा आदर प्राप्त था। उसकी प्राप्ति हेतु ऋषिगण देवताओं से प्रार्थना करते थे। आज की भाँति कन्या को दु:ख का कारण मानकर भ्रूण हत्या जैसा दुष्कर्म नहीं किया जाता था। कन्या के 'उपनयन संस्कार' और 'ब्रह्मचर्य व्रत' धारण करने का उल्लेख भी मिलता है। 'ब्रह्मचर्येण कन्या युवांन विन्दते पतिम्।'

हमारे देश में नर-नारी एक दूसरे के पूरक हैं। नारी का 'नारीत्व' वैदिकस्वरूप में ही निहित है। अत: नारी के कल्याण में ही सबका कल्याण है- यही वेद का मूलमन्त्र है।

महाभारत में नारियों की वैदिक शिक्षा व्यवस्था

डॉ. नरेन्द्र कुमार आर्य विभागाध्यक्ष-संस्कृत, हे.न.ब.गढ़वाल विश्वविद्यालय (स्वामी रामतीर्थ परिसर), बादशाही थैल, नई टिहरी, टिहरी गढ़वाल (उत्तराखण्ड)

वैदिक काल की तरह ही महाभारत काल मे भी स्त्रियों की शिक्षा का वर्णन देखने को मिलता है। महाभारत काल में नारियों की शिक्षा के विषय में कुछ वर्णन गुरुकुलीय शिक्षा प्रणाली में देखने को मिलता है, परन्तु मुख्य रूप से महाभारत काल में स्त्रियों की शिक्षा घर पर ही गुरु व आचार्यो को बुलाकर अध्ययन कराया जाता था, और उनको अनेक प्रकार की शिक्षा दी जाती थी। महाभारतकाल में मेनका पुत्री शकुन्तला को देखने से पता चलता है कि शकुन्तला का पालन पोषण महर्षि कण्व के आश्रम में हुआ और शिक्षा दीक्षा गुरुकुलीय परिवेश में हुआ था। महाभारत काल में इसी प्रकार से असुर गुरु आचार्य शुक्राचार्य पुत्री देवयानी के विषय में भी पता चलता है कि आचार्य बृहस्पति पुत्र कच के साथ साथ विद्या ग्रहण किया करती थी और देवयानी भी नियम पूर्वक ब्रह्मचर्य धारण करने वाले कच के समीप ही रहकर नृत्य गीत गायन व विद्या अध्ययन करती थी। इसी प्रकार से महाभारत में जाहान्वी पुत्री गंगा के विषय में गंगा के क्रिया कलाप ओर उनके वार्तालाप से उनके शिक्षा के विषय में परिचय मिलता है। गंगा के अपने पुत्र के शिक्षा दीक्षा के विषय में कहले मात्र से यह ज्ञात होता है कि गंगा एक महान विदुषी महिला थी। महाभारत काल में गुरुकुलीय व घर पर आचार्यों को बुलाकर पढ़ाने की दोनों प्रकार की व्यवस्था थी। महाभारत में नारियों की शिक्षा दीक्षा के ऊपर वैदिकाकल की शिक्षा पूर्णरूपेण प्रभाव रहा है।

वैदिक साहित्य में नारी की भूमिका

लादूलाल मीणा शोधच्छात्र, संस्कृतविभाग, रा.वि.वि., जयपुर

वैदिक साहित्य के अवलोकन से प्रतीत होता है कि समाज में पितृसत्तात्मक व्यवस्था होने के बावजूद महिलाओं की स्थिति सम्मानजनक एवं उन्नत थी। महिलाओं को **शिक्षा, धर्म, विवाह व अन्य सामाजिक कार्य तथा राजनीति की स्वतन्त्रता प्राप्त थी।** **विदुषी नारियाँ** ऋग्वेद में अनेक मन्त्रों की द्रष्टा है। अनुश्रुतियों के अनुसार 20 ऐसी मन्त्रद्रष्टा ऋषिकाएं हैं, जिनमें से विश्ववारा, निवावरी, धाला, रोमशा, लोपामुद्रा, अपाला तथा उर्वशी अधिक प्रसिद्ध थीं। पुरुष पत्नि के साथ ही यज्ञ कर सकता था। यज्ञ के पूर्व पति-पत्नि दोनों को एक विशिष्ट प्रकार का उपनयन करना पडता था, नारियाँ भी यज्ञ कार्य में पुरुष के समान ही सक्रिय रहती थी।

उपनिषद् काल में नारियाँ दर्शन के अध्ययन में भी रूचि लेने लगीं थीं। याज्ञवल्क्य की पत्नि मैत्रेयी ऐसी ही नारी थी, वह दर्शन से सम्बन्धित गम्भीर समस्याओं में रूचि लेती थी। जन के यज्ञ के अवसर पर आयोजित दार्शनिक शास्त्रार्थ में गार्गी के प्रश्न सर्वाधिक दुरूह थे। गार्गी के प्रश्न इतने सूक्ष्म एवं कठिन थे कि याज्ञवल्क्य ने सार्वजनिक स्थान में उत्तर देने से इंकार कर दिया। इससे स्पष्ट हो जाता है कि वह न्याय-शास्त्र एवं दर्शन में भी निष्णात थी।

स्मृतिकाल से लेकर 19वीं शताब्दी के समाज सुधार आन्दोलनों तक पितृसत्तात्मक व्यवस्था के पुरुष के अनुरूप महिलाओं की शिक्षा, विवाह, सम्पत्ति आदिसे सम्बन्धित वेदों आदि में वर्णित नियमों की व्याख्या उनकी स्वयं की स्वतन्त्रता को ध्यान में रखकर करने की अपेक्षा परिवार, समाज और राष्ट्र के हित को ध्यान में रखने वाली एक पतिव्रता एवं आदर्श स्त्री की भूमिका के रूप में की गई। सुखी परिवार एवं समाज के लिए वैदिक युग की भाँति युवक-युवतियों को शिक्षा व गुणों के आधार पर आपसी सहमति से विवाह करने के लिए स्वतन्त्रता देनी होग कोई ऐ नियम निर्धारित करने के स्थान पर वे दो मार्गों से एक मार्ग चुन सकते हैं- पहला, पारिवारिक व्यय व गृहकार्य में पति-पत्नि दोनों का साथियों की तरह योगदान। दूसरा, पति द्वारा पत्नि को वैदिककालीन पति की भाँति सलाहकार साथी व गृहस्वामी मानकर अपनी आय उसे देना व स्वयं व्यय-कार्य से मुक्त हो जाना।

अथर्ववेद में जिसे श्वसुर, सास, देवर तथा अन्य द्वारा साम्राज्ञी के रूप में स्वीकार कर घर में प्रविष्ट कराते हुए कहा गया है। इसी प्रकार जब वह पितागृह से वधू बनकर पतिगृह को प्रस्थान करती है तब उसे माता-पिता द्वारा यह आशीर्वाद दिया जाता है कि 'तुम श्वसुर, सास, ननद और देवरों की साम्राग्री बन कर सब पर आधिपत्य करो।'

स्त्रियों की स्थिति : वैदिक काल में

डॉ. मीनाक्षी व्यास रीडर, समाजशास्त्र रा.स्व.ग्रा.उ. महाविद्यालय, पुखरायाँ

प्राचीन भारत में स्त्रियों की स्थिति से सम्बन्धित दो विचार सम्प्रदाय मिलते हैं एक सम्प्रदाय का कहना है कि 'स्त्रियों' पुरुषों के बराबर थीं, जबकि दूसरे सम्प्रदाय की मान्यता है कि स्त्रियों का न केवल अपमान ही होता था बल्कि इनके प्रति घृणा भी की जाती थी। दोनों ही सम्प्रदायों ने अपने विचारों को सहमति प्रदान करने के लिये धार्मिक साहित्य से उदाहरण दिये हैं। आपस्तम्ब ने निर्दिष्ट किया था 'जब स्त्री रास्ते में जा रही हो तो सभी उसे रास्ता दें'। हम जिनका सम्मान करते हैं, उनके साथ यही व्यवहार करते हैं। यह दर्शाता है कि स्त्रियों को उच्च स्थान प्राप्त था।

मनु ने कहा था ''जहाँ स्त्रियों की दुर्दशा होती है, वहाँ परिवार विनाश को प्राप्त होता हैं, किन्तु जहाँ वे सुखी है वहाँ परिवार सदैव समृद्धि को प्राप्त करता है। याज्ञवल्क्य ने भी कहा है ''स्त्रियाँ पृथ्वी पर समस्त दैवीय गुणों का प्रतीक हैं, सोम ने अपनी समस्त पवित्रता उन्हें प्रदान की है, गान्धर्व ने मृदुवाणी तथा अग्नि ने उन्हें अत्यन्त आकर्षक बनाने के लिये अपनी समस्त् चमक उन पर न्योछावर कर दी है।'' स्त्रियों के विषय में इतने ऊँचे आदर्श रामायण, महाभारत में भी स्थान-स्थान दोहराये गये हैं। अथर्ववेद का श्लोक यह इंगित करता है कि महिलायें पुरुषों से आगे थीं, जैसे सूरज देवता सबसे पहले देवी ऊषा को उसी तरह आलोकित करते हैं जिस प्रकार पुरुष स्त्रियों को प्रदीप्त कर उनका अनुकरण करते हैं। अतः इस शोधपत्र में स्त्रियों की स्थिति से सम्बन्धित समस्त तथ्यों की विवेचना की जायेगी।

वैदिक वाङ्मय में नारी-धर्म

डॉ. कुसुम दत्त मोंगा अध्यक्ष, संस्कृत विभाग हिन्दू गर्ल्स कॉलेज, जगाधरी, हरियाणा

किसी राष्ट्र की सभ्यता एवं संस्कृति के निर्माण तथा विकास में नारी का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। नारी को दया, ममता, उदारता व त्याग की प्रतिमूर्ति कहा गया है। नारी के इन उज्ज्वल गुणों का दिग्दर्शन हमें वैदिक वाङ्मय में भी दृष्टिगोचर होता है। संस्कृत वाङ्मय में स्त्री, योषिता, अबला योषा, नारी, सीमन्तिनी, वधू, प्रतीपदर्शिनी, वामा, वनिता तथा महिला आदि शब्द नारी के विभिन्न गुणों एवं कर्त्तव्यों के परिचायक हैं। वैदिक संहिताओं में नारी को उचित सम्मान एवं अधिकार प्राप्त हुए हैं। नारी को 'मानवी

उषा' के रूप मे स्वीकार कर प्रेरणादात्री का महत्त्व प्रदान किया गया है। 'स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ' ऋक् 8.33.19 अर्थात् 'स्त्री ब्रह्मा हुई है' कथन से स्पष्ट होता है कि स्त्री ब्रह्मा के समान मानव की जन्मदात्री और जीवन निर्मात्री है। वैदिक युग में नारी दहिता के रूप में, पत्नी तथा माता के रूप में सम्मान भाजन थी, पुत्र तथा पुत्री दोनों ही माता-पिता के लिए आनन्ददायक थे। ऋग्वेद में पत्नी 'गृहिणी' के रूप में प्रातः उषा काल मे उठकर सबको निद्रा से जागृत करती थी। ऋग्वेद में पत्नी को 'सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्रवां भव' कह कर उसे गृह की सम्राज्ञी, कल्याणी, शिवतमा तथा वीरसू कहकर वीर सन्तान को जन्म देने वाली कहा है। नारी यज्ञ एवं स्वाध्याय की भी अधिकारिणी थी। घोषा जैसी ब्रह्मवादिनी तथा अपाला, लोपामुद्रा, सूर्या और मन्त्रद्रष्टा ऋषिकाओं का उल्लेख भी उन की अध्यात्म दृष्टि का परिचायक है। 'मही माता' ऋक्5.47 के रूप में नारी को वेद में सर्वाधिक उच्च स्थान प्राप्त हैं। पृथ्वी, अदिति, सोम आदि को स्नेह के कारण ही माता की उपमा दी गई है, इस प्रकार संहिताओं में जाया, गृहिणी व माता के रूप में नारी के सम्माननीय स्थान एवं उस के कर्त्तव्य-कर्मो का विवचन करना ही प्रस्तुत प्रपत्र का मुख्य विषय है।

नारी की स्थिति : वैदिक काल से वर्तमान युग तक एक ऐतिहासिक दृष्टि

डा. आर.के. सिंह विभागाध्यक्ष,समाजशास्त्रविभाग, डी.बी.एस. कालेज, कानपुर

डा. मंजू सिंह विभागाधयक्ष, समाजशास्त्रविभाग, डी.जी. कालेज, कानपुर

ऋग्वेद भारत का ही नहीं, अपितु संसार का प्राचीनतम ग्रन्थ है। उसे नारी जाति की मान्य स्थिति का स्वर्णिम काल मानने में कोई संकोच नहीं होना चाहिये, जब ऋषियों ने प्रकृति की आश्चर्यजनक शक्तियों को दैवी शक्ति का प्रतीक मानकर उनमें देवत्य का आरोप किया। रात्रि, उषा, सूर्या, इन्द्राणी, वाक्, इला, राची, पृथ्वी, उर्वशी आदि दैविक देवियों में अधिकांश प्राकृतिक शक्ति की प्रतीक है। ऋग्वेद काल की नारी भावना का पूर्ण परिचय ऋग्वेद में वर्णित इन प्रतीकों से मिल जाता है। नारी के प्रति वैदिक ऋषियों का दृष्टिकोण कुछ अंश में यथार्थमूलक है और कुछ भावना मूलक। नारी के यर्थाथ रूप से अभिप्राय उन दिनों की नारी के वास्तविक जीवन से है, जो दुहिता, पत्नी और माता के रूप में दिखलाई देता है।

उत्तर वैदिक युग ऐसे साक्ष्यों का अभाव नहीं है जिनसे स्त्रियों के आदरपूर्ण स्थान का परिचय प्राप्त होता है, तो भी धीरे-धीरे वर्णव्यस्था के नियमों में कड़ाई के साथ स्त्रियों के पद में क्रमिक ह्रास होने लगा था। उपनिषदों के युग में नारी में सहशिक्षा का प्रचार बराबर बना रहा। स्त्री विद्यार्थिनी दो प्रकार की होती थी- ब्रह्मवादिनी और सद्योद्वाहा।

यद्यपि अब भी समाज में नारी को समादरणीय स्थान प्राप्त था, उसे पुरुष की समानता प्राप्त थी। विवाह में उसे पति के चुनाव की स्वतंत्रता थी। सूत्रकाल में नारी की स्थिति में उत्तर वैदिक युग से भी अधिक उपकर्ष हुआ। देश की समृद्धि और आर्थिक उन्नति के साथ विलासिता की प्रवृत्ति बलवती हो रही थी। अतः स्त्रियों के उपनयन और शिक्षा पर आघात पहुंचा। एक और महाभारत में नारी को सम्मान की पात्री भी कहा गया है तथा दूसरी ओर सब पापों की जड़ तथा व्याभिचारिणी भी कहा गया है। इस प्रकार नारी जाति के प्रति उदात्तम भावनाएं ही स्मृति ग्रन्थों में अधिक उपलब्ध होती है। मनु का यह श्लोक ही सारी जाति की महानता को उद्घोष है-

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः"

वस्तुतः यह उक्ति ही सामान्य नारी जाति के प्रति धर्मशास्त्र प्रणेताओं के दृष्टिकोण को व्यक्त करती है। पुराणों में यद्यपि नारी के यातनामय जीवन के चित्र ही सर्वाधिक उपलब्ध होते हैं, तथापि नारी की प्रशंसा भी कम नहीं है। पत्नी की आधार भित्ति पर ही विवाहित जीवन की सार्थकता निर्भर करती है। गृहस्थाश्रम का मूल उद्देश्य भौतिक सुख-संविधान है, जिसका निर्माण नारी के कोमल व्यक्तित्व द्वारा ही सम्भव है।

इस प्रकार भारतीय नारी कभी पुरुष के हृदय की देवी रही है तो कभी चरणों की दासी, कभी गृहस्वामिनी तो कभी बंदिनी। आधुनिक युग में नारी को ऋग्वैदिक काल जितनी स्वतंत्रता प्राप्त है, अवसर प्राप्त हैं, किन्तु उसके सम्मानस्तर में वह उच्चता नहीं है। इसका कारण जहाँ आधुनिक नारी में आदर्शो का अभाव है वहाँ साथ ही भौतिकवादी प्रभाव भी प्रमुख कारण है। भौतिकवादी वातावरण में स्वयं नारी आकण्ठ डूबने को व्याकुल है, यही कारण है कि इस वातावरण के प्रभाव से उसके प्रति भोगमयी दृष्टि को तीव्रता मिली है, श्रद्धेय दृष्टि को नहीं।

वैदिक वाङ्मय में नारी

डॉ. आशासिंह रावत असिस्टेन्ट प्रोफेसर- संस्कृत रा.गां.छा.स्ना. महाविद्यालय, मन्दसौर(म.प्र.)

वेदकाल से आज तक भारत में नारी का स्थान महत्वपूर्ण रहा है। वस्तुतः आर्यावर्त प्राचीनकाल से ही 'मातृदेवो भव' जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसीगद्ध 'यत्र नार्यस्तु पूज्यते रमन्ते तत्र देवताः' इत्यादि सूक्तियों का समुद्घोषक रहा है। शास्त्रों में भी नारी शक्ति का महान् गौरव दृष्टिगोचर होता है। प्राचीन काल से ही नारी मातृ शक्ति का प्रतीकभूत रही है।

ऋग्वेद विश्व के पुस्तकालय का प्रथम लिखित ग्रन्थ रत्न है, अतः वैदिक वाङ्मय में नारी की स्थिति सम्यक् जानने के लिए सर्वप्रथम ऋग्वेद का अधययन-अनुशीलन आवश्यक है। ऋग्वेद में नारी की श्रेष्ठ स्थिति का परिचय प्राप्त होता है। इस काल की कन्याओं का बालकों की भांति ही उपनयन आदि संस्कार होते थे और वे सन्ध्यापूजन की विधि भी पूर्ण करती थी। ऋग्वैदिक काल में स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार थे। वे पुरुषों की तरह शिक्षा ग्रहण करती थी। ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करती थी। वेदाध्ययन, शास्त्रर्थ एवं ज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र में शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार था, अतः हिन्दु अनुश्रुतियों के अनुसार लगभग 20 कवयित्रियों की रचनायें पायी जाती है। विदुषी नारियाँ वेदों के अनेक सूक्तों की मन्त्रद्रष्टा रही हैं। उनमें से विश्ववारा, सिकता,, इन्द्राणी, घोषा, रोमषा, लोपामुद्रा, अपाला, उर्वशी आदि अधिाक प्रसिद्ध थीं। उपनिषद काल में नारियाँ दर्शन के अध्ययन में भी रूचि लेती थी। महर्षि याज्ञवल्क्य की पत्नी मैत्रेयी ऐसी ही नारी थी। वह दर्शन से सम्बन्धित गम्भीर समस्याओं में रूचि लेती थी। जनक के यज्ञ के अवसर पर आयोजित दार्शनिक शास्त्रर्थ में गार्गी के प्रशन इतने दुरूह, कठिन और सूक्ष्म थे कि याज्ञवल्क्य ने सार्वजनिक स्थल पर उत्तर देने से मना कर दिया (बश्हदारण्यकोपनिषद) इससे यह स्पष्ट है कि वह न्यायशास्त्र एवं दर्शन में भी निष्णात थीं।

वेदों में नारी

डॉ. साधना तोमर रीडर, हिन्दीविभाग जनता वैदिक कॉलेज बडौत(बागपत)

सम्पूर्ण मानव-सृष्टि पुरुष और नारी में विभक्त है। दोनों परस्पर पूरक हैं। वेदों में नारी का स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण है। पुरुष और नारी समाज रूप और राष्ट्ररूप रथ के दो चक्र हैं। नर और नारी कहीं भाई और बहिन के रूप में कही पुत्र और माता के रूप में, कही पति और पत्नी के रूप में, कहीं ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी के रूप में, कहीं आचार्य और आचार्या के रूप में समाज में अपने-अपने कार्य-कलापों के करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। प्रत्येक क्षेत्र में एक इकाई दूसरी इकाई की पूरक होती है।

वेदों में प्रकृति तथा प्रकृति की विभिन्न शक्तियों के माध्यम से नारी महिमा को प्रकट किया गया है। अतः वहां नारी कहीं अदिति, कहीं सरस्वती, कहीं उषा, कहीं आपः, कहीं अनुमति और राका, तो कहीं सिनीवाली और कुहू आदि विशेषणों से अलंकृत किया गया है। इनके अतिरिक्त पृथ्वी, इडा, यमी, भारती, उर्वशी, गौरी, सरण्यु, शची आदि देवियों भी वेदों मे वर्णित हुई हैं ये सब अन्य अर्थो के अतिरिक्त नारी अर्थ को भी सूचित करती हैं।

वेदों में नारी की स्थिति अत्यन्त उच्च गौरवपूर्ण और आदरास्पद है। वहाँ वह वधु रूप में पतिगृह में दासी बनकर नहीं, प्रत्युत् साम्राज्ञी बनकर आती है। वह केवल पति की दृष्टि में ही नहीं अपितु सास, श्वसुर, देवर ननद सकी दृष्टि में साम्राज्ञी है। वेदों में नारी को वे सभी अधिकार प्राप्त हैं, जो पुरुष को हैं। इस प्रकार वैदिक नारी एक आदर्श नारी है।

वेद में नारी का स्वरूप

डॉ. सरोज दरगन वरिष्ठ व्याख्याता गौरी देवी रा. म. महाविद्यालय, अलवर

ऋषि दयानन्द सरस्वती ने वेदों को समाज की नींव, पारिवारिक व्यवस्था की संचालिका नारी की महनीय व्यक्तित्व को समझने का वैज्ञानिक आधार प्रस्तुत किया है। नारी केवल भोग्या नहीं है, काम्या नहीं है, वह इन सबसे ऊपर है। साथ ही पैर की जूती' समझने वाले समाज के समक्ष 'मातृदेवोभव' का सुदृढ़ आधार (वेद) प्रस्तुत किया है। परिणामतः नारी का स्वरूप बड़ी तेजी के साथ परिवर्तित

होने लगा। सारा समाज 'ऋषि' के साथ मिलकर 'वेदों में निरूपित नारी' का रूप समाज में देखने की कल्पना को साकार करने हेतु संगठनबद्ध हो गया। अफसोस। अभी भी वैदिक नारी का स्वरूप पूर्णत: देखने में नहीं आता। इसके अनेकानेक कारण हो सकते हैं, स्वयं नारी भी इसका कारण हो सकती है, भौतिकवादी, उच्छृंखलतावादी, उपभोक्तावादी, बाजारवादी सोच की बेड़ियाँ पैरों में पड़ी हुई हैं। सुन्दर समाज की प्रतिस्थापना के लिए सुन्दर, सुदृढ़ नींव का होना आवश्यक है। समाज की प्रमुख धुरी परिवार है और परिवार की प्रमुख धुरी नारी। यह जब तक ठीक नहीं होगी, चाहे कितने ही प्रयास क्यों न कर लिये जाएं, सफलीभूत नहीं हो सकते। नारी का केवल सैद्धान्तिक शिक्षा प्राप्त कर लेना ज्ञान का आधार नहीं है। व्यावहारिक ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। विचार-आचार का समन्वय आवश्यक है। समन्वित ज्ञान द्वारा ही घर-परिवार में सुख-समृद्धि, वैभव-ऐश्वर्य, शान्ति का स्थाई निवास हो सकता है। बच्चों का लालन-पालन उचित दिशा में होने के बाद ही राष्ट्र समृद्ध हो सकता है। इन सब के लिए वेद का गहन आलोड़न-विलोड़न आवश्यक है। वेद केवल याज्ञिक कर्मकाण्ड बताने के साधन मात्र नहीं हैं, उनकी अपनी शाश्वत सामाजिक उपयोगिता है।

वेदों में नारी का स्थान

डॉ. स्वाती सक्सेना रीडर, शिक्षाशास्त्र विभाग डी.जी. कॉलेज, कानपुर

सामाजिक जीवन की आधारभूत इकाई परिवार है। उस परिवार का आधार नारी को माना गया है। वेद कावचन है- 'जाया इत् अस्तम्।' अर्थात् जाया ही घर है। इसी प्रकार मनु ने कहा- 'गृहिणी गृहम् उच्यते' परिवार संस्कार शिक्षण के लिये सुन्दर पाठशाला है जिसकी आचार्या गृहिणी है। नारी परमेश्वर की अप्रतिम सृष्टि है। मनुस्मृति के अनुसार परमात्मा ने अपने शरीर को दो भागों में विभक्त कर आधे भाग से नारी और आधे भाग से पुरुष का सृजन किया है। नारी के माध्यम से ही उन्होंने विराट् पुरुष की भी सृष्टि की है।

'द्विधा कृत्वाऽऽत्मनो देहधर्मेन पुरुषोऽभवत्।
अर्धेन नारी तस्यां च विराजमसृजत् प्रभुः।'

बृहदारण्यक का मत है कि 'स्त्री एवं पुरुष एक ही आत्मा के दो रूप हैं।'
वैदिकसाहित्य में महिलाओं की कन्या, पत्नी तथा माता की स्थिति का संक्षिप्त वर्णन किया गया है।

वैदिक वाङ्मय में नारी-समाज

रेनू तिवारी (अनुसंधात्री) डॉ. राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद

संस्कृत वाङ्मय में नारी का सर्वश्रेष्ठ स्थान रहा है। मनुस्मृति के अनुसार जहाँ स्त्रियों का सम्मान होता है वहाँ देवताओं का अधिवास रहता है। सभी प्रकार के गार्हस्थ जीवन की पूर्णता स्त्री पर ही निर्भर रहती है। कुलश्री की अभिवृद्धि मान सम्मान आदिसभी प्रकार की क्रियाएँ स्त्रियों की अनुकूलता एवं प्रसन्नता पर आधारित होती हैं।

यत्र नार्यस्त पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते, सर्वास्तत्राफलाः क्रिया। मनु. 3/56

वैदिककाल में भी स्त्रियों को गौरवास्पद स्थान प्राप्त था। उसे सहधर्मिणी गृहस्वामिनी, गृहिणी आदि रूपों में अभिहित किया जाता था। ऋग्वेद के एक मन्त्र में यह बताया गया है कि वह श्वसुर गृह में सम्राज्ञी है। ननद के प्रति भी वह सम्राज्ञी है। यही नहीं वह गृह की अधिदेवी भी है। अथर्व वेद की एक ऋचा में स्त्री को सदा पति के अनुकूल रहने के लिये प्रेरित किया गया है। अग्रिम मन्त्र में प्रजा की अभिवृद्धि की कामना भी स्त्री से की गयी है और जीवन भर पति से अवियुक्त रहते हुए पौत्रों और नातियों से युक्त होकर क्रीड़ा करती रहने का आशीर्वचन दिया गया है। एना पत्या तन्वं सं स्पृशस्वाथ जिर्विर्विदयमा वदसि। अथर्ववेद 14/1/21

क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिमोर्दमानौ स्वस्तकौ। अथर्ववेद 14/1/22। इसके अतिरिक्त अनेक स्थल नारियों से सम्बन्धित हैं जिन्हें शोधपत्र में व्यक्त किया जायेगा।

वेद और मातृशक्ति

डॉ. शिखा मिश्रा प्रवक्ता-संस्कृतविभाग चौ. चरण सिंह पी.जी. कॉलेज, हैवरा, इटावा(उ.प्र.)

माता, अम्बा और अम्बिका शब्दों मेंजो महिमा अन्तर्निहित है वह पूजनीय है उसी मातृमहिमा का व्याख्यान वेद इन शब्दों में करता है। जनन, उद्भव, प्रभव, अभिव्यक्ति, आविर्भाव आदि शब्दों का सम्बन्ध इसी शक्ति के साथ है।

मातृ-शक्ति में अम्बा के भाव के साथ ध्वनन और प्रकाश भी विद्यमान है। यही गुण-उत्कर्ष सामान्य मातृशक्ति से लेकर प्रत्येक दिशा में चलता हुआ परम दिव्य शक्ति तक पहुँचता है। इसका तात्पर्यार्थ माताओं की भी माता, अम्बाओं की भी अम्बा परब्रह्म है।

ब्रह्म माता है तो पिता भी है। दोनों शक्तियाँ इसी बृह्मा में एक साथ विद्यमान हैं। शिव को इसी कारण अर्धनारीश्वर कहा जाता है। बृह्मा के माता रूप और पितृरूप का एक दूसरे से पृथक् नहीं किया जा सकता, इस मन्तव्य की पुष्टि निम्नांकित वाक्य से होती है-

'त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ। अथाते सुम्नमीमहे।'

व्याकृत और आकृत निरुक्त और अनिरुक्त, त्रिपाइ और एकपाद पुनः अर्धनारीश्वर के दो पक्ष हैं, ऋत की रानी, ममित रक्षा करने वाली, कभी जीर्ण न होने वाली, सदा युवती, विशोल विस्तार वाली, सुन्दर सुखद शरण प्रदात्री और सुप्रणीति-सुन्दर पथ-प्रदर्शिका अदिति अर्थात् अखण्ड है। दुर्गा सप्तशती भी माँ के इसी रूप का उद्घाटन करती है। देव इसी अदिति माँ के पुत्र यही देवी देव है, दिव्य शक्ति है, मित्र है, सखा है, और अपना कोई नहीं है जो अपने बनते या कहलाते हैं उनका सम्बन्ध क्षणिक है, अस्थायी है विनश्वर है पर इस माँ के साथ सम्बन्ध शाश्वत है नित्य है, सनातन है, यही माँ उनकी सर्वस्व है। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि-

त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उतवा कुमारी।
त्वं जीर्णो दण्डेन वर्चासि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः।।

वैदिक साहित्य में नारी की महत्ता

डॉ. रीना सिंह प्रवक्ता- समाजशास्त्र विभाग चौ.चरण सिंह पी.जी. कॉलेज, हैवरा, इटावा(उ.प्र.)

वैदिक काल में कन्या का जन्म दुःख का कारण नहीं माना जाता था। बृहदारण्यक उपनिषद् में कन्या की कामना करने वाले के लिए एक विधान बनाया गया है- 'अथ य इच्छेद् दुहिता, पंडिता जायेत' इन वाक्यों से पता चलता है कि सुन्दर और विदुषी कन्या की कामना भी लोग करते होंगे। बाराह गृह्यसूत्र के अनुसार सुन्दर कन्याओं की कामना करने केलिए वधुएं गोमुख आदि वाद्यों का वादन करती थी। साथ ही कन्या और पुत्र के पालन-पोषण में कोई भेदभाव नहीं किया जाता था। शिक्षा का आरम्भ भी उपनयन संस्कार के बाद होता था। उपनयन संस्कार पुत्र एवं पुत्री दोनों का होता था। बालकों की भांति बालिकाओं को भी 'परा' और 'अपरा' दोनों प्रकार की विद्या ग्रहण करने का अधिकार प्राप्त था। वेदों में कहा गया है कि ब्रह्मचर्य-व्रत धारण कर शिक्षा समाप्त करने पर ही युवतियां योग्य पतियों को प्राप्त करती है।(ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्) गोभिल गृह्यसूत्र में कहा गया है कि अशिक्षित पत्नी यज्ञ करने में समर्थ नहीं होती। इस प्रकार वैदिक साहित्य में स्त्री शिक्षा पर पूर्णरूप से बल दिया गया।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि वैदिक काल में स्त्रियों की स्थिति सर्वोत्कृष्ट थी। पुरुषों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर चलती थी। अपनी इस स्थिति के लिए पुरुषों के साथ-साथ स्वयं महिलाएं ही उत्तरदायी थी। पिछले दो-तीन दशकों में भारतीय नारी ने जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में उन्नति के नित नये आयाम तय करते हुए यह सिद्ध किया है कि किसी भी राष्ट्र की उन्नति व समृद्धि में नारी की भी उतनी ही सहभागिता हो सकती है जितनी पुरुषों की रहती है। आज प्रशासनिक सेवा, व्यवसाय, तकनीकि, प्रौद्योगिकी, वाणिज्यिकी, नभ व जल आदि क्षेत्रों में अपनी उपस्थिति दर्ज कराकर नारी ने राष्ट्र के अर्थिक विकास में अपनी सहभागिता सिद्ध की है जिसके कारण उसका सम्मान व. प्रतिष्ठा बढ़ी है।

वैदिक समाज में नारी की स्थिति

मधुलता प्राच्यसंस्कृत विभाग, लखनऊ वि.वि. लखनऊ

वैदिक ऋषियों ने स्त्री और पुरुष को मानव जीवन की गाड़ी के दो चक्र समझकर स्त्री को पुरुष के समकक्ष ही स्थान दियाहै इसकी पुष्टि हमें शतपथ ब्राह्मण के प्रस्तुत मन्त्र के माध्यम से होती है। इसमें कहा गया है कि पत्नी पुरुष की आत्मा का आधा भाग है। पारिवारिक जीवन के प्रसंग में स्त्री के गृहिणी, जननी एवं सहचरी रूपों का आंशिक परिचय दिया गया है। जबकि ऋग्वेद के सूर्या सूक्त में (10.85) स्त्री के गृहिणी स्वरूप की सम्यक् रीति से समीक्षा की गयी है। परिवार में स्त्री की स्थिति के विषय में ऋग्वेद के एक मन्त्र में यहाँ तक मिलता है कि नवविवाहिता वधू को उसके परिवार के सदस्य अपने घर में प्रवेश करने और सब पर शासन करने के लिए आमन्त्रित करते हैं-

'गृहान्गच्छ गृहपत्नी यथसो वशिनी त्वं विदथ मा वदसि।'

वैदिक कालीन नारियों की सामाजिक स्थिति यथा वैवाहिक मान्यताएं, विधवा विवाह, शिक्षा, उत्तरदायित्व, संस्कार आदि पक्षों पर विस्तृत चर्चा मुख्य शोधपत्र में की गयी है।

अथर्ववेद में पारिवारिक संतुलन में नारी की भूमिका

जयश्री अनिरुद्ध सकलकले रानाई शिवचरण पेठ, जुना शहर अकोला(महाराष्ट्र)

वेदत्रयी में अथर्ववेद समावेश भलेहीकई शतकों के पश्चात् हुआ है। किन्तु सामाजिक दृष्टि से इस वेद का महत्त्व अधिकतम है। अथर्ववेद में चर्चित विषयों से इसकी पुष्टि होती है।

आज के आधुनिक युग में जहाँ युवावर्ग को परिवार के दायित्त्व की भावना अपनी महत्त्वाकांक्षा के आगे एक बोझ जैसी प्रतीत हो रही है। सिमटते हुए इस पारिवारिक मर्यादा का परिणाम हम अपनी आने वाली पीढियों की मानसिकता में स्पष्टरूप से देख सकते हैं। परिवारों में ये असंतुलन न केवल भारत की किन्तु विश्व की एक महान् समस्या है।

अथर्ववेद में नारी की चर्चा कई स्थानों पर की गयी है। इसमें पती-पत्नी संबन्ध, नारी के कर्तव्य श्वसुर गृह में उसका स्थान तथा पारिवारिक अपेक्षाएं हैं।

विवाह निश्चित रूप से नारी के जीवन सम्पूर्णतया परिवर्तन लानेवाली घटना होतीहै। वह जब पहलीबार अपने ससुराल आती है तो जो व्यवहार होता है वह पूरे जीवनभर के लिये होता है। भविष्य में पारिवारिक संतुलन पर इसका प्रभाव देखा जा सकता है।

अथर्ववेद में इस विषय का विवेचन करनेवाले कई सूक्त हैं 1/14, 2/36, 7/38, 6/139 इन सारे सूक्तों में विवाह एवं गृहस्थाश्रम ही वर्णित है। इन सारे सूक्तों में पती पत्नी का आदर्श सहजीवन, विवाह का उद्देश्य क्या है? ये ज्ञात होता है।

सन्तान का जन्म एवं उसका लालन पालन तथा संवर्धन सदैव माता का ही दायित्व रहा है। स्वयं नारी का व्यक्तित्व तथा व्यवहार समाज एवं घर में कैसा हो इस विषय पर अनेक स्थानों पर चर्चा की गयी है। अतः इस पत्र में पारिवारिक संतुलन में अथर्ववेद की उपादेयता तथा इसी में नारी की भूमिका का अवलोकन करने का प्रयास किया गया है।

वैदिक साहित्य में महिलाओं का स्थान

गीतिका शर्मा (शोधच्छात्रा) संस्कृतविभाग जम्मू विश्वविद्यालय जम्मू

भारतीय समाज का मूलाधार वेद है। उसमे व्यक्तिगत जीवनके उत्थान, सामाजिक जीवन के विकास और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की सृष्टि के साथ इनके सामंजस्य को एक साथ देखा गया है। इसलिए घोर से घोर संकट काल मे भी वेद को विदित रखने को विशेष महत्त्व दिया गया है। वेद कावचन है- जाया इत् अस्तम् अर्थात् जाया ही घर है। इसी से प्रेरित होकर मनु ने कहा गृहिणी गृहम् उच्यते। समूचा वैदिक साहित्य नारी के विविध रंगों से रंगा पडा है। जीवन की ज्योति शक्ति, प्रेरणा की स्रोत नारी ने अपने सहज गुणों से सर्वदा

पुरुष की सहज चेतना को प्रदीप्त किया है।

वैदिक साहित्य में नारी की अनेक भूमिकाओं का वर्णन मिलता है। अथर्ववेद से ज्ञात होता है कि पत्नी पति को गृहकार्य में परामर्श देती है। वह शत्रुहन्ता पुत्र तथा गुणवती दुहिता की कामना करती है। ऋग्वेद में स्त्री सेना के युद्धभूमि में जाने का वर्णन है। तैत्तिरीय संहिता में कहा गया है कि महिलाओं के सेनापतित्व में निर्बल सेना भी सबल हो जाती है।

अत: वैदिक काल महिलाओं का स्वर्णयुग था। वह वर्तमान समाज की कुरीतियों एवं कुप्रथाओं की शिकार नहीं थी और उन्होंने तत्कालीन समाज तथा संस्कृति के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया था।

वेदों में नारी की स्थिति

डॉ. सुषमा पुरवार हिन्दी संकाय- डी.एस.एन. कालेज, उन्नाव (उ.प्र.)

'वेद' भारतीय संस्कृति की आत्मा है। ये मानव जाति के लिए प्रकाश स्तम्भ हैं। विश्व को संस्कृति का ज्ञान देने का श्रेय वेदों को है। वेद ज्ञान का अक्षय कोष है। किसी भी राष्ट्र की सभ्यता एवं संस्कृति के निर्माण तथा विकास में नारी का योगदान महत्वपूर्ण है। यही कारण है कि किसी भी युग अथवा राष्ट्र की सामाजिक व्यवस्था एवं तत्सम्बन्धी दृष्टिकोण का वास्तविक मूल्यांकन नारियों की स्थिति एवं उनके विषय में प्रचलित धारणाओं के बिना अपूर्ण है। इस दृष्टि से वेदों में नारी की स्थिति विषय पर विचार एक छोटा सा प्रयास है।

'गृहा वैत्न्यै प्रतिष्ठा' (अर्थात पत्नी ही घर है)

अत: स्पष्ट होता है कि- स्त्रियाँ ही घर की लक्ष्मी होती हैं, अर्थात् घर का सौन्दर्य व सौभाग्य वे ही हैं। वेदों के अनुसार ज़ो व्यक्ति उन्नति एवं सौभाग्य की कामना करता है उन्हें स्त्रियों का सत्कार करना चाहिए और उनको सदा प्रसन्न एवं वस्त्रालंकारों से सुशोभित रखना चाहिए। वैदिक काल में नारियों की प्रतिष्ठित सामाजिक स्थिति थी। बौद्धिक और आध्यात्मिक जीवन में उन्हें पुरुषों के समान ही अधिकार प्राप्त थे। वैदिक कालीन नारियाँ आचार-व्यवहार तथा विद्या विनय से अलंकृत थी। वेद काल में जीवन का कोई भी पक्ष नारी के योगदान से अछूता नहीं रहा है।

वेदों में नारी-अस्मिता के आदर्श एवं यथार्थ

डॉ. किरन श्रीवास्तव वरिष्ठ प्रवक्ता (हिन्दी-विभाग) फ़ीरोज़ गांधी पी.जी. कॉलेज, रायबरेली (उ.प्र.)

ऋग्वेद में स्वस्थ शरीर सृष्टि की मूल स्रोत नारी के विविध रूप अपने विकास और सौंदर्य के साथ चित्रित हुए हैं। ऋग्वेद में वर्णित अदिति और उषा प्रकृति के असीम व धनात्मक पक्ष तथा दिति व निश प्रकृति के ससीम व ऋणात्मक पक्ष हैं जिन्हें वैदिक आचार्यों ने सृष्टि के मूल आधार के रूप में स्वीकार किया है। अदिति देवताओं और मनुष्यों की मां है जबकि दिति दैत्यों की जननी है। अदिति को प्रकृति तथा पृथ्वी का पर्याय मानते हुए ऋग्वेद में अनेक ऋचाएं लिखी गयी हैं - "O divine and good Aditi, I call on thee to succour us...let us honour Aditi, who gives life to all"

आधुनिक युग की ज्वलंत समस्याएं भ्रूण हत्या, दहेज हत्या एवं बाल-विवाह जैसी कुरीतियों और सामाजिक एवं पारिवारिक विकृतियों से मुक्ति के लिए विश्व को वेदों की ओर लौटना पड़ेगा। ऋग्वेद में वर्णित पुरुरवा-उर्वशी प्रसंग भू-लोक के प्राणियों के लिए सीख है, कि वे नर्तकियों से स्थायी गृहिणी की कामना न करें वहीं यम-यमी का मिथक अनवांछित एवं नकारात्मक प्रेम के प्रति समाज को सचेत करने हेतु रचा गया है। ऋग्वेद में जहां एक ओर अरुन्धति, सूर्या, रोमशा और लोपामुद्रा के चित्र उभरते हैं वही मैत्रेयी, गार्गी, अपाला' जैसी अनेक विदुषी नारियों के स्पष्ट उल्लेख मिलते हैं, जो न केवल ऋचाओं की सर्जना में सिद्धहस्त थीं, बल्कि पुरुषों के साथ शास्त्रार्थ भी करती थीं। तपस्विनी, ब्रह्मवादिनी एवं ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करने वाली अनेक नारियां वेदों का अध्ययन व अध्यापन करती थी और गुरुकुलों का संचालन करती थी। उस समय न पर्दा प्रथा थी, न सती प्रथा और न बाल-विवाह की प्रथा थी। स्त्रियां पुरुषों के साथ सामाजिक कार्यों एवं धार्मिक अनुष्ठानों में भाग लेती थीं और यज्ञ में आहुतियां प्रदान करती थी। यज्ञ, जो एक

वैज्ञानिक कार्यशाला है, इसमें स्त्री और पुरुष दोनों सम्मिलित होकर नवीन सिद्धांतों और पदार्थो की सर्जना के सिद्धान्तों को प्रतिपादित करते थे। ऋग्वेद में अगस्त्य और लोपामुद्रा के रूप में वैदिक आचार्यों ने आदर्श दम्पति की संकल्पना को साकार किया है। अगस्त्य का तात्पर्य परिश्रमी व्यक्ति है। परिश्रमी पति जब हताश व निराश हो जाता है, तो अपने नाम के अनुरूप लोपामुद्रा उसे ढ़ाढस बंधाती है। कुछ भारतीय आचार्यों और पाश्चात्य भाष्यकारों ने ऋचाओं के यौगिक अर्थ की जगह शाब्दिक अर्थ करके वैदिक ऋषियों के मन्तव्य को नहीं समझा है। आज आवश्यकता इस बात की है, कि हम वेदों के प्रति गहन अन्वीक्षण दृष्टि रखें। बाह्य आक्रमणकारियों के प्रभाव से नारी समाज में जो कुप्रथाएं एवं विकृतियां आयी हैं, उन्हें हम भारतीय संविधान के दायरे में रहकर, उनके विरुद्ध संघर्ष करके वेदों में वर्णित नारी की समुन्नत दशा के आदर्श और यथार्थ को पुनः प्राप्त कर सकते हैं। वास्तव में किसी भी देश या भाषा का चिंतन तभी सार्थक, सार्वकालिक और सार्वभौमिक हो सकता है जब वह वेदों के अनुकूल हो, क्योंकि हमारे वेद सभी प्रकार के पूर्वाग्रहों और वर्जनाओं से मुक्त विश्व की अमूल्य धरोहर हैं।

वेदोक्त नारी और मंजुल भगत की कथा-नायिकाएँ

नर्मदा रावत शोधच्छात्रा हिन्दी विभाग, कन्या गुरुकुल महाविद्यालय हरिद्वार

वेदों में नारी को अनेक सद्गुणों की अधिष्ठात्री के रूप मे अभिव्यक्ति मिली है-

"मूर्धासि राड्ध्रुवासि धरूणा धर्त्र्यसि धरणी
आयुषे त्वा वर्चसे त्वा कृष्यैत्वा क्षेमाय त्वा" (यजु. 14.12)

वह परिवार के उत्तरदायित्वों का सम्यक् निर्वहण करती हुई दृष्टिगत हुई है-

"यन्त्री राड् यन्त्रयसि यमनी ध्रुवासि धरित्री
इषे त्वोर्जे त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा"(यजु. 14.22)

कोई भी पारिवारिक जन उसके रहते भूखा नहीं रह सकता-

"उपहूता भूरिधनाः, सखायः स्वादुसंमुदः।
अक्षुध्या अतृष्या स्त, गृहा मास्मद् विभीतन।।"(अथर्ववेद 7.60.04)

आधुनिक युग अनेक सांस्कृतिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक बदलाव का युग है। आर्थिक वर्गीकरण के आधार पर समाज उच्च, मध्य एवं निम्न वर्ग में बँटा है। मंजुल भगत के कथा-साहित्य में युगीन समस्याओं से जूझती नारी तीनों वर्गों में आश्चर्यजनक ढंग से सहिष्णु तो है ही और पारिवारिक दायित्त्वों और समस्याओं का दृढ़ता पूर्वक मुकाबला करती दृष्टिगत होती है।

प्रस्तुत शोधपत्र में मंजुल भगत की कथा-नायिकाओं में नारी के वैदिक गुणों को अन्वेषित करने की चेष्टा की गयी है।

वैदिक वाङ्मय में भारतीय स्त्रियों की प्रस्थिति - वर्तमान सन्दर्भ में

डॉ. संगीता बहुगुणा प्रवक्ता इतिहास विभाग, रा.स्ना. महविद्यालय, कोटद्वार

भारतीय स्त्रियों की प्रस्थिति का विचार जब भी जहन में आता है, तो सर्वप्रथम यही प्रश्न उठ खड़ा होताहै कि जहाँ एक ओर प्राचीन काल से देवी के रूप में महिला की पूजा की जाती है तो दूसरी ओर यथार्थ के धरातल पर महिलाओं की स्थिति काफी चिन्ताजनक दिखती है। समाज चाहे पूर्वी सभ्यता से सम्बद्ध हो या पश्चिमी सभ्यता से पुरुष प्रधान समाज में नारी की प्रस्थिति सदैव से चिन्ताजनक रही है। इसमें सन्देह नहीं कि वैदिक युग नारी की प्रस्थिति के सम्बन्ध में स्वर्ण युग था वैदिक समाज भारतीय इतिहास का सर्वाधिक आदर्श समाज रहा है जिसमें महिलाओं ने समस्त अधिकारों का पूर्णता के साथ प्रयोग किया पितृ सत्तात्मक सामाजिक संगठन होने से यद्यपि पुत्र का जन्म अधिक शुभ माना जाता था। तदापि पुत्री को भी पुत्र के समान सारी सुख सुविधायें दी जाती थी। समाज मे महिलाओं को पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त थे। ऐसा कोई प्रमाण ऋग्वेद में अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ जिससे यह पता चले कि समाज में स्त्रियों को घृणा की दृष्टि से देखा जाता था।

स्त्रियों और शूद्रों का पढना मना है जैसी विचारधारायें अभी समाज में नहीं आयी थी। झूठे पर्दे आदि का कोई चिह्न नहीं था। पर्दाप्रथा, सती प्रथा, अभी प्रचलित नहीं थी। वेदों में स्त्रियों के लिये निर्बलता सूचक एक भी वाक्य नहीं है। विवाह के समय उसे आशीर्वाद दिया जाता था- 'तू घर की साम्राज्ञी बन'। वैदिककाल में स्त्रियों की स्थिति बहु उच्च व आदरणीय थी। सतय ही वैदिक युग महिला के उत्थान की पराकाष्ठा का काल था।

ऋग्वेद की ऋचाओं के रचनाकारों में लगभग 20 स्त्रियाँ सम्मिलित थीं। तदापि इतना ही सत्य है कि वैदिक युग में स्त्रियों का जो सम्मान था वह उत्तरोत्तर घटता गया। उत्तरवैदिक काल में पुत्र जन्म मनोकामना का लक्ष्य माना जाने लगा। तथा कन्या जन्म दुःख का। यह भारतीय स्त्रियों की परिस्थिति में अवनति काल का प्रारम्भ ही माना जायेगा।

आज 21वीं सदी में संयुक्त राष्ट्रसंघ के तत्वावधान में नारी उन्नति के लिये जो आंदोलन छिड़ा हुआ है वह नारी को राजनीतिक दृष्टि से ही नहीं समग्र दृष्टिकोण से आगे लाने के लिए कृतसंकल्पित होकर क्रियाशील है। सबकी उन्नति से ही राष्ट्र की उन्नति सम्भव है।

2050 तक भारत को यदि विश्व की अर्थव्यवस्था में अपना प्रमुख स्थान स्थापित करना है तो महिलाओं को आगे लाना ही होगा।

वैदिक कालीन नारी शिक्षा

डॉ. कमलेश शर्मा रीडर संस्कृत-विभाग, हिन्दू कॉलेज, मुरादाबाद

नारी किसी भी देश की सभ्यता एवं संस्कृति का मापदण्ड मानी जाती है। प्राचीन भारत में नारी का पद अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं गरिमामय था। विश्व की किसी भी अन्य प्राचीन जाति में नारी का इतना सम्मान न था जितना भारत में वैदिक कालीन नारी का था। वैदिक युग में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नारी का समान रूप से आदृत थी। शिक्षा, धर्म, व्यक्तित्व और सामाजिक विकास में उसका महत्त्वपूर्ण योगदान था। नव वधू गृह की साम्राज्ञी होती थी, वह पति के साथ प्रत्येक कार्य में सहयोग प्रदान करती थी। वस्तुतः स्त्री और पुरुष दोनों यज्ञरूपी रथ के जुड़े हुए दो बैल थे। यज्ञ में उसकी उपस्थिति की अनिवार्यता उसकी 'पत्नी' संज्ञा चरितार्थ करती तथा उसके दाम्पत्य का 'जाया' स्वरूप मूर्त करती है। शिक्षा के क्षेत्र में भी उसका स्थान पुरुषों के समान था।

वर्तमान काल की अपेक्षा वैदिक काल में स्त्रियों की शिक्षा-सम्बन्धी व्यवस्था अधिक उच्चतर थी। वह ब्रह्मचर्य के साथ जीवन में शिक्षा ग्रहण करती थी। उस युग में शिक्षित स्त्री-पुरुष ही विवाह-योग्य समझे जाते थे। उस युग में लोपामुद्रा, विश्ववारा, सिक्ता, घोषा आदि अनेक ऐसी विदुषी स्त्रियां थीं, जिन्होंने ऋग्वेद की अनेक ऋचाओं का प्रणयन किया था, यथा- अत्रि-कुल की विश्ववारा ने ऋग्वेद का 5.28 वाला अंश, अपाला ने ऋग्वेद का 8.91 वाला अंश तथा घोषा ने कक्षीवती नाम से ऋग्वेद का 10.39 वाला अंश रचा था। प्रसिद्ध दार्शनिक ऋषि याज्ञवल्क्य की पत्नी मैत्रेयी सत्यज्ञान की खोज में रहा करती थी और उसने पति से ऐसा ही ज्ञान मांगा जो उसे अमर कर सके। विदेह राज जनक की राजसभा में कई एक उत्तर-प्रत्युत्तरकर्ता थे, जिनमें गार्गी वाचक्नवी का नाम बड़ी श्रद्धा से लिया जाता है। गार्गी ने शास्त्रार्थ में ऋषि याज्ञवल्क्य के दांत खट्टे कर दिये थे।

हारीत ने स्त्रियों के लिए उपनयन एवं वेदाध्ययन की व्यवस्था दी थी। आश्वलायन गृह्यसूत्र में गार्गी, बड़वा एवं मैत्रेयी नामक तीन नारी-शिक्षिकाओं के नाम भी आते हैं। काशिकावृत्ति में 'आचार्या' एवं 'उपाध्याया' नामक शब्दों की व्युत्पत्ति की गयी है जिससे पता चलता है कि नारी-शिक्षिकाओं की परम्परा अवश्य रही होगी। गोभिल गृह्यसूत्र एवं काठक गृह्यसूत्र से ज्ञात होता है कि दुलहिनें पढ़ी-लिखी होती थीं, क्योंकि उन्हें मन्त्रों का उच्चारण करना पड़ता था। स्त्रियाँ भी यज्ञ सम्पादित करती थीं। अनेक कन्याएं ब्रह्मचर्य का अनुगमन करते हुए उपनयन संस्कार भी कराती थीं। वैदिक युग में छात्राओं के दो वर्ग थे, एक 'सद्योवधू' और दूसरा 'ब्रह्मवादिनी'। कुछ ऐसी भी स्त्रियां थीं जो जीवन-पर्यन्त अध्ययन में लीन रहती थीं। ऋषि कुशध्वज की कन्या वेदवती ऐसी ही थी। पाणिनी ने महिला शिक्षण-शाला का उल्लेख भी किया है। उस युग में सह-शिक्षण का भी प्रचलन थ। अनेक स्त्रियाँ, नृत्य, संगीत, चित्रकला आदि की शिक्षा ग्रहण करती थीं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि वैदिक काल में नारी को आदर्शात्मक तथा मर्यादा युक्त सम्मान प्राप्त था। नारी को सर्वशक्तिसम्पन्न, मानते हुए उसे विद्या, यश और सम्पत्ति का प्रतीक स्वीकार किया गया । स्त्रियों की शिक्षा एवं सामाजिक दृष्टि से भारतीय इतिहास में वैदिक काल स्वर्ण युग माना जा सकता है।

ऋग्वैदिक कालीन समाज में नारी की स्थिति

श्रीमती मंजू कुलश्रेष्ठ रीडर, समाजशास्त्र विभाग, दयानन्द गर्ल्स पोस्ट ग्रेजूएट कालेज, कानपुर

ऋग्वेद भारत का ही नही वरन संसार का प्राचीनतम ग्रन्थ है। उसे नारी जाति की मान्य स्थिति का स्वर्णिम काल मानने में कोई संकोच नही होना चाहिये। ऋग्वेद में 3.31.2 में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि यदि किसी दम्पत्ति के पुत्र-पुत्री दोंनो सन्ताने है तो पुत्र पिता के कार्यो को पूर्ण करने वाला होता है। और पुत्री प्यार व आदर करने योग्य होती है। वेद-वास्तव में पुत्र के अभाव में पुत्री को ही पुत्र के समान मानता है। मनु ने ऋग्वेद के इसी मन्तव्य को अपनी स्मृति में इस बात की पुष्टि की है। जैसा पुत्र वैसी ही पुत्री होती है अर्थात कि दोंनो को समान माना है।

आधुनिक युग के परिप्रेक्ष्य में यदि ऋग्वैदिक नारी का चित्र प्रस्तुत किया जाये तो कहा जा सकता है कि जैसे आज के समाज में स्त्रियों को सभी क्षेत्रों में समान-अवसर एवं अधिकार प्राप्त है। ऋग्वैदिक काल में भी नारी को यही सौभाग्य प्राप्त था। अपितु वैचारिक स्तर पर आज के समाज की तुलना में नारी के लिये अधिक उदारता एवं समानता ऋग्वैदिक समाज में विद्यमान थी। पुत्री, पत्नी और माता नारी के इन तीनों रूपों में नारी की सभी सामाजिक एवं पारिवारिक स्थितियों का अर्न्तभाव हो जाता है।

वेदों में नारी की शैक्षिक स्थिति

अंजु बाला संस्कृत विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

वैदिक काल में नारी ने अपने आचरण, कार्य और गुणों के कारण समाज में इस प्रकार ख्याति प्राप्त कर ली थी कि उसके बिना समाज का कोई भी सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक कार्य परिपूर्ण नहीं हो सकता था। उस समाज में स्त्री और पुरुष का योगदान समकक्ष है, अत: पुरुष के समान ही नारी शिक्षा की आवश्यकता स्वभाविक है। प्राचीन भारत में दीर्घ काल तक शिक्षा का तात्पर्य वैदिक शिक्षा रहा जो वैदिक युग में बिना किसी लिंग भेद के स्त्री-पुरुष दोनों को उपलब्ध होती थी। स्त्रियाँ वैदिक साहित्य का अध्ययन करती थीं, जहाँ तक कि वैदिक ऋचाओं की रचयिता भी थीं। वैदिक काल में सन्तान के जीवन निर्माण का उत्तरदायित्व माता-पिता के ऊपर ही होता था। वेदों में नारी के जो कर्त्तव्य निर्धारित किए गए हैं उनसे यह स्पष्ट है कि वैदिक कालीन नारी शिक्षित कला-निपुण एवं ज्ञानी भी थीं। ऋग्वेद में नारी ने आत्म गौरव पूर्वक घोषण की है-

"मैं ज्ञानवती हूँ" घर की प्रमुख शत्रु नाशिका हूँ (ऋग्वेद 10.159:2) ऋग्वेद का 'विदुषी' शब्द स्त्री के सुशिक्षित होने का परिचायक हैं। स्त्रियों के शैक्षिक अधिकारों की पुष्टि के लिए वैदिक साहित्य में पर्याप्त एवं सन्तोषजनक प्रमाण उपलब्ध होने के बाद भी वैदिक तथ्यों के आलोक में ही विचारणीय है कि तत्कालीन सामाजिक संगठन पितृसत्तात्मक था। राजनैतिक जीवन में भी पुरुष का वर्चस्व था। सभाओं में भी पुरुष का वर्चस्व था। सभाओं में स्त्रियों की उपस्थिति राजनीति में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका की ओर संकेत नहीं करती। ऐसी स्थिति में शिक्षा की अधिकारी होते हुए भी समाज में कितनी स्त्रियाँ विधिपूर्वक शिक्षा प्राप्त कर रहीं थीं, यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है।

उपर्युक्त विषय के आलोक में इस शोधपत्र में वेदकाल में नारी शिक्षा के विविध आयाम जैसे- धर्म, अध्यात्म, दर्शन, चित्रकला, गान्धर्व विद्या, वीणा आदि विषयों में नारी की शैक्षणिक स्थिति पर विचार किया गया है।

वेदकालीन समाज में नारी

मनोरमा देवी (शोध-छात्रा) ए.एम.यू.अलीगढ़

किसी भी समाज में नारी की स्थिति उसके विकास का द्योतक होती है। वैदिक युग में समाज की स्थिति आदर्शमूलक थी। इस युग में स्त्रियों को अत्यन्त गौरवशाली स्थान प्राप्त था। कालान्तर में स्त्री कभी चहार दीवारी में बन्द की गई, कभी भोग-विलास की वस्तु समझी गयी और कभी उसकी भावनाओं का पूर्ण अनादर करके पुरुष ने उसे मात्र खिलौना समझा। किन्तु वैदिक युग में स्त्रियों का आदर किया जाता था। जिस कुल में पति-पत्नी से और पत्नी-पति से सन्तुष्ट रहते हैं उस कुल में अवश्य ही सर्वदा कल्याण होता है। यह बात निर्विवाद सत्य है-यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता/यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्त्राफला: क्रिया:/पति-पत्नी के लिए वेद में दम्पति शब्द का प्रयोग हुआ है इसका अर्थ है कि पति-पत्नी समान रुप से घर के स्वामी हैं। आदि पर्व में भी भार्या को मनुष्य का आधा भाग कहा गया है। इसीलिए उसे अर्द्धांगिनी कहा जाता है। वह श्रेष्ठ सखी, धर्म, अर्थ और काम की मूल भी है।

वैदिक युग में स्त्रियाँ कृषि का कार्य, कपड़ा सिलना, बुनना, रंगना, कशीदाकारी करना, टोकरी, धनुष, बाण, खिलौने आदि बनाने के कार्य भी करती थीं। मनोरंजन के लिए गाना, बजाना और नृत्य आदि भी करती थीं। अथर्ववेद से यह स्पष्ट होता है कि कन्याओं का उपनयन संस्कार भी होता था, वे वैदिक ग्रंथों का पठन-पाठन भी करती थीं। ऋग्वेद में स्त्रियों को यज्ञ और अग्नि में आहुतियाँ देने का अधिकार भी दिया गया है। वैदिक युग में स्त्री धार्मिक कृत्यों में पुरुष की सहधर्मिणी थीं। वैदिक युग में जिसके कोई भाई न हो वह पिता की सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी थीं। और उनके अन्तिम संस्कार भी कर सकती थीं। वेदकालीन नारियां विद्या और बुद्धि से सम्पन्न थीं देव रमणियाँ यज्ञ में आती थीं। अपाला, शची, अदिति, मत्रैयी, वाग्देवी, गार्गी-आत्रैयी आदि विदुषी स्त्रियाँ थीं। बिना पत्नी के यज्ञ नहीं हो सकता था। निष्कर्षत: स्त्री के बिना घर अधूरा बिना स्त्री के पूर्ण घर की कल्पना भी नहीं की जा सकती। ऋग्वेद में स्त्री जाति का कन्या के जन्म से लेकर वृद्धावस्था तक बड़ा ही आदर और सम्मान किया है। हम कह सकते हैं कि वेद कालीन समाज में नारी की स्थिति अत्यन्त सम्मानजनक, गौरवशाली और पूजनीय थीं।

वैदिक वाङ्मय में नारी एवं उनके अधिकार

डॉ० कविता पाण्डेय प्रवक्ता, संस्कृत विभाग, वैदिक कन्या पाठशाला इण्टर कालेज, गणेशगंज, लखनऊ

सम्पूर्ण धर्म-कर्म का मूल तथा यथार्थ कर्त्तव्य-धर्म की जिज्ञासा वाले लोगों के लिए वेद सर्वश्रेष्ठ प्रमाण है। 'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्, धर्म जिज्ञासमानाना प्रमाणं परमं श्रुति मनुस्मृति के इसी कथन के आधार पर वेदों को श्रुति कहकर पुकारा गया है। वेदों में नारी के गौरव का अनेश वर्णन मिलता है। नारी को ब्रह्म कहा गया है। क्योंकि वह स्वयं विदुषी होते हुए अपनी संतान को सुशिक्षित बनाती है। ब्रह्मा ज्ञान के सर्वोच्च देवता एवं अधिष्ठाता माने जाते हैं। यही यज्ञों के संचालन कर्त्ता एवं ज्ञान-विज्ञान में (निपुण) श्रेष्ठ माने गये हैं। इसीप्रकार नारी को ज्ञान-विज्ञान में निपूर्ण होने के कारण ब्रह्मा बताया गया है।

ब्रह्मण-ग्रन्थों में नारी गौरव वर्णित है। नारी को सावित्र, अर्धाङ्गिनी आत्मा का आधार अंश। नारी के बिना यह अपूर्ण है, इसीलिए सपत्नीक यज्ञ करे। पत्नी के बिना जीवन अधूरा है। पत्नी गार्हपत्य अग्नि है। स्त्रियों का अपमान निन्दनीय है। पत्नी गृहलक्ष्मी है, साक्षात् श्री है। इसके अधिकारों की चर्चा में धार्मिक अधिकार, सामाजिक अधिकार, और राष्ट्रीय अधिकार प्रमुख हैं। धार्मिक अधिकार में ऋग्वेद के मंत्र में कहा गया है कि, पत्नी पति के साथ बैठकर यज्ञार्थ स्रुवा (चम्मच) लेकर यज्ञ करे। जो यज्ञ करते हैं उन्हें उत्तम शक्ति मिलती है। सामाजिक अधिकार में एक ओर उसे गृहस्वामिनी और सम्राज्ञी कहा गया है। वहाँ दूसरी उसके कर्त्तव्य बताए गए है कि, वह पति, सास-ससुर और पति के पूरे परिवार को सुख देने वाली हो। नारी को समाज में अग्रणी भी बताया गया है। राष्ट्रीय अधिकार में भी नारी को सहभागी बताया गया है। तभी इस में कहा गया है कि तुम सहस्रो प्रकार के पराक्रम वाली हो। इस मंत्रों के आधार पर नारी के कर्त्तव्यों एवं अधिकारों को पूर्णत: ज्ञान होता है।

वेदों में नारी-चेतना

अमित सिंह प्रवक्ता (राजनीतिशास्त्र) नागरिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय जंघई, जौनपुर

डॉ. गंगेश दीक्षित प्रवक्ता (हिन्दी) नागरिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय जंघई, जौनपुर

भारतीय संस्कृति में मंत्र-द्रष्टा ऋषियों ने नारी को गौरवशाली व्यक्तित्व प्रदान किया गया है। अत: वैदिक काल नारी का अभिनन्दनीय एवं उज्जवल रूप प्रस्तुत करता है।

विराडियं सुप्रजा अत्यजैघीत

यजुर्वेद नारी को महिमा पूर्ण विशेषणों से गरिमा मंडित करता है।

ईडेरन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे ज्योतेऽदिते सरस्वती महि विश्रुति।

एताते‌ऽध्न्ये नामानि देवेभ्यो मा सुकृतंबूतात्।

स्त्री को सम्बोधित करके कहा गयी है कि हे स्त्री! तू स्तुति योग्य उत्तम वाणी युक्ता, रमणीया, पूजनीया, कमनीया, चन्द्र के समान आह्लादकारिणी, श्रेष्ठशील से प्रकाशमान अर्थात् ज्योति के समान अज्ञानान्धकार को अपने दिव्य गुणों के प्रकाश से दूर करने वाली, दीनता एवं हीनता के भावों से रहित परम्परा से पूर्ण, विविध गुणों से प्रसिद्ध अथवा विविध विधाओं का जिसने श्रवण किया है, तथा विविध विधाओं के प्रवीण ये तेरे नाम है। तू उत्तम अधन्ये अर्थात् ताड़ना न करने योग्य एवं महि अर्थात् अति पूजनीय कहा गया है।

भारतीय नारी के लिए अमृतरस दायिनी की संज्ञा दी गई है-

पूर्ण नारि प्रभर कुम्भमेतं धृतस्यसधारममृतेन संभृताम्।

इमां पातु मृतेन संगंग्धीष्टा पूर्वमाभि रक्षत्येनाम्।।

हे नारी! अमृतरस से परिपूर्ण इस घड़े को सादर ला। अमृत से मिली हुई धृत की धारा को ला। पीने वाले को अमृत से तृप्तकर। इस प्रकार वेदों में नारी चेतना के विविध आयाम मिलते हैं। अपाला, घोषा, लोपा, मुद्रा और जाबाला जैसी पूर्ण चेतन ऋषिकाओं ने उनके वैदिक सूक्तों की रचना कर अपनी प्रखर मेधा का प्रमाण दिया है।

वेदों में चित्रित नारी का स्वरुप

डॉ० सीमा गुप्ता प्रवक्ता-हिन्दी बी.एस.एम. (पी.जी.) कॉलेज, रुड़की

वेद अनन्त ज्ञान राष्ठि के अक्षय भण्डार हैं। वैदिक ज्ञान ज्योति से आज विष्ठव का मानव मात्र ज्योतिज़्मान हो रहा है। इस वैदिक साहित्य का अपना अभूतपूर्व गौरव है, परम्परायें हैं जो आज भी भारतीय संस्कृति को अनुप्राणित कर रही है। भारतीय संस्कृति के विकास में अपनी प्राचीनता अपनी बहुमुखी उपयोगिता तथा व्यापक प्रभाव के कारण वैदिक साहित्य का अद्वितीय स्थान है।

किसी भी युग का साहित्य उस युग का आईना होता है। वैदिक युग में नारी की स्थिति कैसी थी? इसे ज्ञात करने हेतु हमें वेदों का अध्ययन करना पड़ेगा। भारतीय समाज में तो आदि काल से ही नारी अपनी विशिष्टता के साथ गौरवूपर्ण स्थान प्राप्त करती रही है। "मानवता के विकास में स्त्रियों क़ी महत्ता को विश्व के मनीषियों ने मुक्त कंठ से स्वीकार किया है। समाज में व्यवस्था, शान्ति और ऐश्वर्य की स्थापना में नारी का महत्वपूर्ण योगदान होता है। वह सृष्टि की साधन और प्रकृति का मूत रूप होकर पुरुष के लिए सौन्दर्य, प्रेम, अनन्यता और आनन्द का कारणं बनती है। इसीलिए वह मान्या है, पूज्या है, अराध्या है। इसीलिए उसमें देवत्व है और इसीलिए वह भी है, ष्टाक्ति है, चित्ति है।" (जयशंकर प्रसाद के साहित्य में नारी-डॉ० राजगुप्ता पृ०-5)

वैदिक कालीन साहित्य का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि उस युग में नारी सम्पूर्ण मानव-सृष्टि की जननी, आद्याशक्ति तथा मातशक्ति के रुप में सम्मानित की जाती रही तथा अनन्त शक्ति का स्त्रोत मानी गयी। वैदिक युगीन नारी-शिक्षा उच्चतम शिखर पर थी। वह पुरुष के समक्ष भेदभाव रहित शिक्षा प्राप्त क़रती थी। उन्हें वेदों का विधिवत् अध्ययन कराया जाता था। कविता पाठ, तपस्या तथा वेदाध्ययन आदि की उन्हें पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त थी। वैदिक कालीन ऐसी अनेक नारियों के उदाहरण मिलते हैं जो वेद

शास्त्रों में पारंगत होने के साथ-साथ वेदों की ऋचाएँ भी लिखती थीं। विश्ववारा, लोपामुद्रा, गार्गी, नियावरी आदि ऋग्वेद की प्रतिभाशाली कवियत्रियाँ हैं। "वेदयुगीन नारी समाज की पूज्या प्राणी मानी जाती थी। वैदिक समाज भारतीय इतिहास का सर्वाधिक आदर्श समाज रहा है।"

वेद में स्त्रीविमर्श

डॉ0 सुमनकुमारी, प्रवक्त्री, संस्कृत विभाग, दयानन्द महिला महाविद्यालय, कुरुक्षेत्र

जनसंख्या की दृष्टि से स्त्री जाति संसार में लगभग पचास प्रतिशत है। संसारचक्र को गति देने के लिए पुरुष और स्त्री दोनों की समान सहभागिता है। ऐसे में दोनों को ही ईश्वर का समान वरदहस्त प्राप्त होना चाहिए उसमें भेद नहीं, फिर भी पूर्व काल में भी और आज भी स्त्री को तुच्छ दृष्टि से देखे जाने की प्रवृत्ति समाज में देखी जाती है! क्या वेद भी ऐसा ही प्रतिपादित करते हैं? क्या पुरुष उत्कृष्ट और स्त्री निम्न है? या समाज में उन्नति करने के समान अधिकार वेद देता है या तथाकथित धर्मधुरन्धरों की स्वकल्पित स्वार्थजन्य धारणा है। इसमें सत्यता किसमें है? यह विवेचना ही प्रस्तुत शोधपत्र का विषय है।

वेदों में नारी का स्थान

गरिमा अग्रवाल, प्रवक्ता, गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर

वेदों में नारी को विद्यालंकृता और उत्तम शिक्षिका कहा गया है। अध्ययन-अध्यापन के अतिरिक्त वे युद्धों तक में जाती थीं और अपनी वीरता की अमिट छाप छोड़ती थीं। इन्द्राणी को सेनानी के रूप में प्रस्तुत किया गया है- इन्द्राण्येतु प्रथमाजीतामुषिता पुरः। अथर्व. 1.27.4

ब्राह्मण-ग्रन्थों में भी नारी का गौरव वर्णित है। नारी को सावित्री कहा गया है। नारी अर्धाङ्गिनी है। वह आत्मा का आधा अंश है। नारी के बिना यज्ञ अपूर्ण है, अतः सपत्नीक यज्ञ करें। पत्नी के बिना जीवन अधूरा है। स्त्रियों का अपमान निन्दनीय है। पत्नी गृहलक्ष्मी है, साक्षात् श्री है। वैदिक काल में नारी वेदों का ज्ञान कराती थी, इसलिए नारी के प्रति यह कथन किया गया है कि हे विदुषी! शिक्षा और सदुपयोग द्वारा लोगों के हृदय से देव निन्दक प्रवृत्तियों को नष्ट कर और अविद्यारूप प्रजा को विच्छिन्न कर। सरस्वती देवनिन्दो नि बर्हय, प्रजां विश्वस्य बृसयस्य मायिनः। उत क्षितिभ्योऽवनीरविन्दो विषम एभ्यो अस्रवो वाजिनीवति।।ऋ. 6.61.3 ऋग्वेद और अथर्ववेद में वर्णन है कि स्त्री अबला नहीं सबला है। यज्ञशाला में भी उन्हें आगे स्थान दिया जाता था और वे पहले यज्ञशाला में प्रवेश करती थीं।

FEMININE IN THE UPANISADIC ERA

Dr. Hiran Sharma Reafer, Dept. of of Sanskrit Gauhati University, Assam

A society's greatness can be judged by the way in which women are held. Scholars believe that in ancient India women enjoyed equal status like those of men. The importance of women-their contribution to the society was highly recognized. In the Upanisadic period too, the women like men were as privileged and enjoyed power and prestige in the society. It is stated that women were created by the supreme Lord to make men complete and were held in high esteem. Women were also considered as symbol of fortune. The Society provided ample scope to the women for nurturing their rights in the society. They enjoyed privileges like right to education, right to speak, freedom of expression of ideas, choosing occupation right to live honorably or having property rights etc.

A COMPARATIVE PORTRAYAL OF WOMAN IN VEDIC AND PRESENT SCENARIO

Devendra Kumar Tiwari Research Scholar, Dept. of English G.K.V. Haridwar

Vedas has been witness of the noble condition in Vedic age. In Vedic age woman were equally considered as men. It was the age of liberty, equality and fraternity. But after passes of time the situation became adverse and women became merely bonded labouurer of a machine for producing child and entertainment. Now there is a certain need to recall those situations with help of Vedic views and philosophy.

In present paper attempt has been made to present the condition of women in present era in the plays of Vijay Tendulkar in comparison to Vedic age women.

EXCLUSIVE WOMEN'S RIGHT TO PROPERTY IN THE VEDIC AGE WITH SPECIAL REFERENCE TO STRIDHANA AND A CASE STUDY OF MITAKSHARA SCHOOL OF ORISSA.

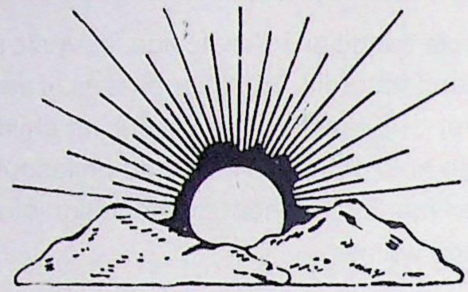
Dr.Harihar Panda Reader in History P.G. Deptt. of History G.M.College, Sambalpur, Orissa,India

Vedic Age was a remarkable phase in the history and heritage of ancient India. In this age Stri never denoted wife. She represented female having exclusive right over property. Her right to property came under three (3) stages.1. Unmarried 2. Married 3.Widows

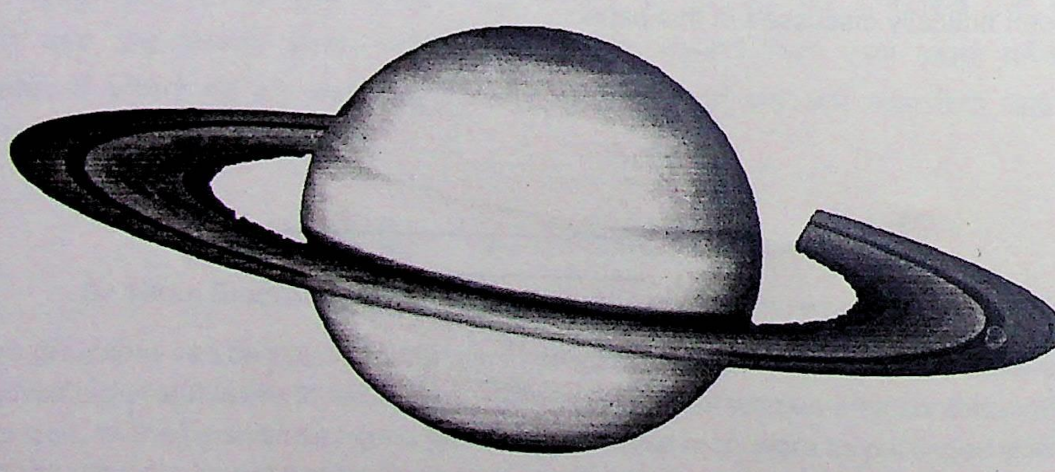
In the three (3) stages she enjoyed six verities of property right. In Vedic age emphasis was put on married women. In later Vedic age emphasis shifted to unmarried women. In Smriti stage the description on widow's right over property was made along with the married and unmarried women.

In social development Stridhan played vital role. The types of property and their utilization also formed a vital part so far as the Vedic society was concerned. The Age reflected two (2) types of property such as *Parthiva* and *Sraddha* . Later on these two category of property found expression though *Mitakshara* and *Dayabhaga* Schools of Dharmashatra.

In Orissa the people followed the *Mistakshara* School. In this school if a father is without a son, the daughter cannot inherit property. That is why in the Jaganath Temple at Puri the worship of Varuna is not found because his daughter Laxmi, the wife of Jagannath cannot inherit the property of her father Varuna. All these aspects have been critically discussed in this paper.



ज्योतिर्विज्ञान गणित



वास्तु एवं ज्योतिष के आधार पर गृह-निर्माण

तरसेम कुमार शर्मा (शोधच्छात्र) जम्मू विश्वविद्यालय

चारों आश्रम में गृहस्थाश्रम सर्वप्रधान माना गया है। गृहस्थाश्रम पर ही अन्य तीन आश्रम अवलम्बित हैं, फलतः प्रत्येक गृहस्थ हेतु 'गृह' भवन का होना अनिवार्य है। गृह होने पर ही धर्म, अर्थ, व काम की प्राप्ति, गृहस्थ का स्वाभिमान और व्यवहारिक निर्वाह सम्भव है। गृहहीन व्यक्ति का तो कोई सामाजिक महत्त्व ही नहीं है। अतः ऐसे परमोपयोगी साधन को तैयार करने की विधि का जानना आचार्यों ने अपनी दिव्यदृष्टि एवं अनुभव के द्वारा समस्त संसार के प्राणिमात्र के लिए जिस शास्त्र में नियम एवं विधियों का उल्लेख किया गया है, उसे 'वास्तुशास्त्र' या 'स्थापत्यशास्त्र' के नाम से अभिहित किया जाता है।

वैदिक काल से ही मानव जीवन के विविध पक्षों पर अतिसूक्ष्मता से विचार किया जाता रहा है। जिस क्रम से मानव सभ्यता का विकास हुआ, उसी क्रम से आयुर्वेद योग वास्तु एवं ज्योतिषादि लोकोपयोगी विद्याओं का विकास भी हुआ। इन विद्याओं के माध्यम से मानव के स्वास्थ्य लाभ एवं मानव जीवन के समस्त सुखोपभोग के साधन रूप गृह-निर्माण के विविध पक्षों पर विचार तथा जीवन में आने वाली प्रकृतिक आपदाओं आदि का ज्ञान किया जाता है।

ज्योतिष-शास्त्र में त्रिस्कन्ध

सुश्री मीनाक्षी शर्मा (शोधार्थी) वनस्थली विद्यापीठ

ज्योतिष्, ग्रह, नक्षत्रादि को आधार बनाकर रचा गया शास्त्र 'ज्योतिष-शास्त्र' कहलाता है। **'कालाधीनं जगत्सर्वम्'** इस प्रमाण के बल से सर्वव्यापक एवं सर्वाधारस्वरूपक ज्योतिष-शास्त्र संसार में प्रसिद्ध है। सभी वैदिककर्मकाण्डों के आधारभूत यज्ञादि के सम्पादनार्थ एवं उचित दिशा, देश कालादि के निर्धारण के लिए ज्योतिष-शास्त्र अत्यन्त उपयोगी है, अतः इसकी प्रामाणिकता वैदिक काल से ही प्रसिद्ध है।

वेदों के यथार्थज्ञान, तत्त्वानुशीलन एवं वेदविज्ञान के बोध के लिए महर्षि ने षड् वेदांगों की रचना की है। ये छः वेदांग हैं- शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द एवं ज्योतिष। जैसे मयूर के अंगों में श्रेष्ठ शिखा, नागों में श्रेष्ठ मणि होती है, उसी प्रकार वेदांगों में ज्योतिष् ही मूर्धन्य है। वेदपुरुष के अंगनिरूपण में ज्योतिष् को नेत्ररूप में चित्रित किया है। जैस 'शब्दशास्त्र मुखं ज्योतिषं चक्षुषी. ..'। जिस प्रकार सभी अंगों के होते हुए भी पुरुष बिना नेत्रों के शोभित नहीं होता है, उसी प्रकारर ज्योतिष के बिना अन्य वेदांगों को कोई गति नहीं। यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि इस ज्योतिष-शास्त्र को जानने वाला कभी नरक का भागी नहीं होता है- 'न सांवत्सरपाठी नरकेषु परिपच्यते'।

सम्प्रति ज्योतिष-शास्त्र का अध्ययन करें, तो ज्ञात होता है कि ज्योतिष के विषयों को गूढता से जानने के लिए स्कन्धों का अध्ययन आवश्यक है। जैसाकि नारदऋषि ने ज्योतिष् के स्कन्धों के बारे में लिखा है कि-

'सिद्धान्तसंहिताहोरारूपस्कन्धत्रयात्मकम्। वेदस्य निर्मलं चक्षुर्ज्योतिशशास्त्रमनुत्तमम्।।'

इन त्रिस्कन्धों में ज्योतिष्-शास्त्र का सार्वकालिक, सर्वव्यवहारपरक, सर्वतोन्मुख एवं सहेतुक विस्तार से विवेचन किया गया है। अतः ज्योतिष शास्त्र में इन त्रिस्कन्धों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

मानव जीवन में ज्योतिष की उपयोगिता

डॉ. भगवानदास शास्त्री प्रवक्ता, ज्योतिर्विज्ञान विभाग गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

ज्योतिष एक वेदांग है वेदांग का अर्थ 'वेद के अंग', 'वदेस्य अंगानि' अंगयाने वे उपकारक तत्त्व जिनसे वस्तु के स्वरूप का बोध होता हैं वेदों के गूढ़ एवं वास्तविक अर्थो को जानने के लिए जिन सहायक तत्त्वों की आवश्यकता होती है उन्हें वेदांग कहते हैं। वेदांगों में व्याकरण, ज्योतिष, निरुक्त, शिक्षा कल्प और छन्द शास्त्र आते हैं। वेद का व्याकरण मुख, ज्योतिष नेत्र, निरुक्त कान,

शिक्षा नाक, कल्प हाथ और छन्द चरण हैं।

शब्द शास्त्रं मुखं ज्योतिषां चक्षुषि श्रोत्रमुक्तं च कल्पः करौ।

यातु शिक्षास्य वेदस्य सा नासिका पादपद्म द्वयं छन्द आद्यैर्बुधैः।

वेद पुरुष का नेत्र होने के कारण ज्योतिष सब अंगों में उत्तम गिना जाता है। अन्य सब अंगों से सम्बन्धित भी प्राणी नेत्र रहित होने पर भी दैन्य का अनुभव करता है। मानव शरीर तथा जीवन में नेत्रों का स्थान कितना महत्त्वपूर्ण है यह अर्वाचीन वैज्ञानिकों की इस धारणा से निश्चित होता है कि मानव मानस के प्रतिशत 95 भावों का उदय और विकास नेत्रों के द्वारा प्रतिशत दो कानों के द्वारा तथा प्रतिशत एक एक नाक, मुह और हाथ के द्वारा होता है। मानव जीवन में जन्म से लेकर मृत्यु तक ज्योतिष का किसी न किसी प्रकार से सम्बन्ध रहता ही है। यह जीवन को रास्ता दिखाता है और दिखाने का काम नेत्र का होता है इसी लिए विद्वानों ने इसे वेद का चक्षु कहा है।

वेदांग ज्योतिष में सामूहिक अनिष्ट की विवेचना व समाधान

जितेन्द्र शोधच्छात्र जोधपुर, राजस्थान

ग्रहाधीनं जगत्सर्व, ग्रहाधीनं नरावराः।

कालज्ञानं ग्रहाधीनं, ग्रहा कर्मफल प्रदाः।।

सम्पूर्ण चराचर जगत् ग्रहों के अधीन है, नर-नारी, पशु-पक्षी भी ग्रहों के अधीन हैं, काल का ज्ञान भी ग्रहों के आधीन है और ग्रहों के द्वारा ही जातक के किये गये कर्मों का फल प्राप्त होता है। यजुर्वेद में कहा गया है "प्रज्ञानाय नक्षत्रदर्श" वेदांग ज्योतिष का ज्ञान रखने वाले को "नक्षत्रदर्श" कहा गया है। ऋग्वेद में प्रथम बार द्वादश राशि का विचार किया गया है। यथा-

द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि कं उ तच्चिकेत।।

अथर्ववेद संहिता में भी ग्रह शब्द का स्पष्ट प्रयोग हुआ है तथा कहा गया है कि

उत्पाताः पार्थिवांतरिक्षाः शं नो दिविचरा ग्रहाः।।

पृथ्वी और अन्तरिक्ष में होने वाले उत्पात व अनिष्ट के उत्तरदायी द्युलोक के ग्रह हमारे लिये कल्याणकारी हों। अनिष्ट की विवेचना व समाधान में ग्रहण की मुख्य भूमिका रहती है। ऋग्वेद में सूर्य ग्रहण के बारे में अनेकानेक स्पष्ट संदर्भ मिलते हैं जैसे कि "स्वर्भानु(राहु) ने अन्धकार द्वारा सूर्य को ग्रस लिया फिर अत्रि ऋषि ने सूर्य को बाहर निकाला।"

यं वै सूर्य स्वर्भानुं स्तमसाविध्यदासुरः।

अत्रयस्तमन्तविन्दम् नझ न्यो अशम्नुवन्।।

अथर्ववेद व शतपथ ब्राह्मण में भी सूर्य ग्रहण के अनेक प्रसंग आते हैं, अतः इसी ग्रहण व वेदांग ज्योतिष के सामंजस्य से आधुनिक समय में होने वाले अनिष्टों की पूर्व जानकारी प्राप्त की जा सकती है, यदि दृष्टान्त विचार किया जाये तो 30 सितम्बर 2008 को मेहरानगढ़ दुर्ग में जो सामूहिक अनिष्ट हुआ उससे पहले 16/17 अक्टूबर को खण्डग्रास चन्द्रग्रहण था जो कि कुम्भ राशि में घटित हुआ था। अतः वेदांग ज्योतिषानुसार स्वयं सिद्ध है कि-

कुम्भोपरागेपीड्यन्ते गिरिजाः पश्चिमभाजनाः।

तस्कराद्विरदामीराः प्रजानां दुःखदायकाः।।

वेदांग ज्योतिष् में यदि खण्डग्रास चन्द्र ग्रहण कुम्भ राशि में घटित होता है तो उस राष्ट्र विशेष के पश्चिम प्रदेश (राजस्थान) के पश्चिमी पर्वतवासी पीड़ित होंगे औरी वहाँ की प्रजा को उस नगर के धनाढ्य लोगों से पीड़ा होगी।

वास्तुविज्ञान एवं आरोग्य विवेचन - वैदिक परिप्रेक्ष्य में

डॉ. भारतभूषण मिश्र रीडर ज्योतिष, रा.सं.सं.(मानितविश्वविद्यालय) रणवीर परिसर, कोटभलवाल, जम्मू

'वसन्ति प्राणिनो यत्र इति वास्तुः' की अवधारणा सार्वजनीन रूप में मान्य है। इस रूप में यह कहा जा सकता है कि मनुष्य जिस गृह में निवास करता है, उस गृह से सम्बन्धित सम्पूर्ण तथ्य यथा- गृहनिर्माण हेतु भूमि अन्वेषण एवं उसका परीक्षण, गृह से सम्बन्धित गृहारम्भ के पूर्व वास्तु पुरुष की परिकल्पना, तदनन्तर गृहनिर्माण की दशा एवं दिशा का निर्धारण, मुख्यद्वार के निर्धारण के साथ-साथ देवकक्ष, अतिथिकक्ष, शयनागार, रसोईकक्ष, स्नानागार एवं शौचादि कक्ष का निर्धारण, वातायन तथा खिड़की निर्माण की संरचना आदि सभी को निर्देशित करने वाले विज्ञान को वास्तुविज्ञान कहते हैं। यदि वास्तुविज्ञान के मानकों के आधार पर गृहस्वामी द्वारा भूमिचयन या भवननिर्माण नहीं होता, या गृहनिर्माण के अनन्तर वास्तुदोषशान्ति हेतु यज्ञ सम्पन्न नहीं किया जाता एवं वास्तुशास्त्रानुसार गृह में यथोचित वस्तुओं की दशा, दिशा शयनविद्या, शौच एवं जलसंचयन की प्रविधियाँ, आलमारी इत्यादि का स्थापन आदि, तो मानव अपने ही घर में विविध व्याधियों एवं संकटों से ग्रस्त हो जाता है। भूमिपरीक्षणकाल में समतल, वर्गाकार या आयताकार भूमि ही गृहनिर्माण हेतु प्रशस्य मानी गयी है क्योंकि वास्तुविद् त्रिकोनी या षट्कोणी जमीन को आयुविनाशक मानते हैं। जब कि पंचकोनी जमीन सन्तान को कष्ट देने वाली होती है, एवं कुम्भाकृति भूमि कुष्ठरोगप्रदात्री। घर के समीप दूध, कांटे एवं फलदार वृक्ष हानिप्रद माने गये हैं तो बहेड़ा पीपल, पाकद, गूलर आदि वृक्ष अशुभ सूचक। मुख्य द्वार की दिशा पूर्व या उत्तर ही प्रशस्य तथा सुख समृद्धि दायक मानी गयी है, जबकि दक्षिण दिक्द्वार मृत्यु का कारक। वास्तुविदों के अनुसार पूर्वदिशा में स्नानघर, आग्नेय में पाकशाला तथा देवकक्ष उत्तर या ईशान दिशा में होना चाहिए एवं भारी सामान यथा आलमारी इत्यादि नैर्ऋत्य दिशा में होनी चाहिए। सूर्य की किरणों की आने वाली दिशा अथात् पूर्वदिशा में कोई भारी सामान नहीं रखना चाहिए। नहीं तो सभी गृहवासी रोगपीड़ित होंगे। सदैव पूर्व या दक्षिण सिर स्थित करके शयन करने से व्यक्ति निरोगी होता है जबकि उत्तर या पश्चिम दिशा में शिर करके सोने से शरीर विविध व्याधियों का आगार बन जाता है एवं दक्षिण दिशा की तरफ पैर करके सोने से मानव की आयु क्षीण होती है। इस रूप में यह कहा जा सकता है कि यदि गृहनिर्माण वास्तुविज्ञान के निर्देशानुसार किया जाये या परिस्थितिवश यदि भूमि या भवन वास्तुविज्ञानके मानकों के आधार पर न हो तो घर में अवस्थित सम्पूर्ण चीजों को वास्तुविज्ञान के निर्देश के अनुसार रखा जाये तो मानव स्वस्थ एवं निरोगी काया प्राप्ति के साथ-साथ विविधप्रकार की अशान्तियों से निजात पा सकता है, क्योंकि स्वयं का गृह होना जहाँ अस्तित्व का परिचायक है, वहीं शास्त्र की मान्यता भी है कि मानव अपने ही घर में पुण्यार्जन एवं सुखशान्ति अर्जित कर सकता है, दूसरों के घर (किराये के घर) में नहीं। यथा-

परगेहकृतास्सर्वाः श्रौतस्मार्तक्रियाः शुभाः।
निष्फलाः स्युर्यस्तासां भूमिशः फलमश्नुते।। से स्पष्ट भी है। सम्पूर्ण विवरण शोधपत्र में विस्तार से वर्णित किये गये हैं।

वैदिक साहित्य और गणित

सतीश कुमार (शोधच्छात्र) साहबगंज, फैजाबाद

आदि काल से ही मानव को किसी वस्तु, क्रम, योग, ऋण, वृद्धि आदि की जानकारी हेतु गणित की आवश्यकता पड़ी है। कहा जा सकता है कि मानव के विकासक्रम में गणित की विशेष आवश्यकता पड़ी। कालज्ञान तिथि मुहूर्त की आवश्यकता ने गणित को और अधिक व्यापक बनाया। गणितागत ग्रह स्थिति, वार नक्षत्र आदि के ज्ञान की चेष्टा ने भी इस जिज्ञासा को और बलवती करके गणित ज्ञान और उसकी आवश्यकता ने उसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बनाया।

गणित के आचार्यों की वैदिककाल से ही एक सुदीर्घ परम्परा दृष्टिगोचर होती है। उसी परम्परा में आर्यभट्ट ने ग्रह गणित की रचना की। सर्वप्रथम आपने ही पृथ्वी अक्षभ्रमण की बात की। इकाई से अरबों तक के अंकों का लेखन आपने ही किया। स्वरों के अंक की भी गणना तत्कालीन गणित विषये चिन्तन ही है। जैसे- क=1, क्+इ=100, क्+उ=कु=1000 दैनिक गति का ज्ञान, ग्रहों के भगण मानों से नक्षत्र भ्रम(भूभ्रम) वर्षमान आदि की गणना भी गणित के प्रति वैदिक काल में हुए सघन शोध का परिचय देता

है। लल्लाचार्य ने चन्द्रशृङ्गोन्नति के साधन में चमत्कारिक प्रयास किया जो प्रत्यक्ष रूप से सत्य दिखाई देता है। 'पञ्चसिद्धान्तिका' के रचयिता वराहमिहिर हैं। यह निश्चित रूप से ग्रह गणित के मनीषियों द्वारा समादरणीय हैं। दिनमान से दिन का प्रारम्भ स्वीकार किया जाता है-

लङ्कार्धरात्र समये दिन प्रकृतिजगाद य आर्यभट्ट:।
भूप: स सवव सूर्यादयात् प्रभृत्याह लङ्कायाम्।। पञ्चसिद्धान्तिका 15/20

आन्तरिक विज्ञान हेतु भी योग, गणित के मानकों की आवश्यकता ने उसमें सघन चिन्तन हेतु बाध्य किया। वेदांगों में वेद पुरुष का नेत्र कहा जाने वाला ज्योतिष वेदांग का तो दो पक्ष ही हो गया- गणित एवं फलित। गणित के द्वारा ही ज्योतिष में फलादेश किया जाता है। पाणिनीय शिक्षा के अनुसार उस वेद पुरुष के निर्माण की कल्पना इस प्रकार की गयी है-

छन्द: पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते।।
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।।

इन छ: वेदाङ्गों में हमारा इष्ट व्याख्येय ज्योतिष ही गणित कहा जाता है।

वैदिक साहित्य में वेदाङ्गों को अति महत्त्वपूर्ण माना गया है। वेदाङ्ग ज्योतिष में इसी (गणित) ज्योतिष शास्त्र की प्रशंसा करते हुए कहा गया है कि जैसे मयूरों की शिखा ओर नागों की मणियाँ प्रधान हैं, उसी प्रकार वेदाङ्ग शास्त्रों में ज्योतिष मूर्धन्य है। ज्योतिष में नक्षत्रों का प्राधान्य होने से इसी गणित का **'नक्षत्रविद्या'** के नाम से भी अभिहित किया गया है।

ज्योतिर्विज्ञान का वेदों में महत्त्व

डॉ. दीपशिखा, देहरादून

भारतीय ज्ञान-भण्डार की निगम, आगम और दिव्य नाम से प्रसिद्ध शतश: विद्याओं के अन्तर्गत हिन्दू-ज्योतिर्विज्ञान का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस ज्योतिर्विज्ञान के बिना हमारे श्रौत और स्मार्त कर्म सिद्ध नहीं हो सकते। अतएव जगत् के हित-साधन के लिए ब्रह्मा जी ने पूर्वकाल में इसकी रचना की। ज्योतिर्विज्ञान के बिना हमारे श्रौत-स्मार्त क्यों सिद्ध नहीं हो सकते। इस शंका के निरासार्थ महर्षियों ने बहुत कुछ लिखा है किन्तु संक्षेपत: याजुष्, ज्योतिषके तीसरे और आर्चज्योतिष के छत्तीसवें श्लोक में तथा विष्णु धर्मोत्तरपुराण के दूसरे खण्ड के 174वें अध्याय के अन्त में (जो पितामह सिद्धान्त का अन्तिम श्लोक है) लिखा है-

वेदास्तु ऽयज्ञार्थमभि प्रवृत्ता:, कालानुपूर्वा विहिताश्च यज्ञा:।
तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं, यो ज्योतिषं वेद स वेद सर्वम्।।

अर्थात् वेद तो विविध यज्ञानुष्ठानों के लिए प्रवृत्त है और जितने यज्ञ हैं वे कालाधीन है अतएव जो विद्वान् कालविधान शास्त्र-ज्योतिर्विज्ञान को जानता है, वही यज्ञादि सब कुछ जानता है। ज्योतिर्विज्ञान के गौणरूप से भले ही अनेक उद्देश्य हों किन्तु मुख्य उद्देश्य है **'कालविधान'** जिसके बिना षोडश संस्कार, मुख्य तिथिवार योग और नक्षत्रों के सम्बन्ध से विविध व्रतोत्सव तथा मुहूर्तादि विचार प्रश्न जातक एवं हायन (ताजक) संबन्धी होरा-विचार ही नहीं हो सकते इतना ही नहीं कालज्ञान के और शताध्यीसंहिता के शकुन, वायुपरीक्षा, मयूरचित्रक, सद्योवृष्टि, ग्रहशडगतक आदि के विचार ही नहीं हो सकते। इतना ही नहीं कालज्ञान के बिना दर्शपौर्णमास, चातुर्मास्य अष्टका, विष्णु, मास ऋतु, अयन आदि लौकिक, वैदिक एवं महानयादि पैतृक यज्ञों के अनुष्ठान भी नहीं हो सकते। सारांश यह है कि ज्योतिर्विज्ञान का मुख्य उद्देश्य कालज्ञान है।

जिस आर्ष सिद्धान्त को हमारे वेदों और स्मृतियों ने स्वीकार किया है और जिस गणना के अनुसार तिथियों का निर्णय करके श्रौत-स्मार्त कर्म का विधान किया है यदि हम आस्तिक हैं तो आज भी उसी गणना से बनी तिथियों, मासों नक्षत्रों आदि को मानेंगे। इसमें हमारी हठधर्मी नहीं, सत्याग्रह है क्योंकि गोलयुक्त और आकर्षण-विद्या के नियमों के अनुसार जितना अन्तर अब है, उतना ही तब भी था। इसमें किञ्चित् भी संशय नहीं करना चाहिए।

जिस ज्योतिर्विज्ञान का उपयोग हमारे वैदिक धार्मिक और व्यावहारिक कार्यों में सनातन काल से सतत होता आ रहा है उसी ज्योतिर्विज्ञान पर कुछ बिन्दुओं पर प्रस्तुत शोधपत्र प्रकाश डालता है।

मुख्यद्वार एवं गृह के समीपस्थ वृक्षों का वास्तुशास्त्रीय विवेचन

वागीश आनन्द शोधच्छात्र, बेगूसराय (बिहार)

वास्तुविद्या बहुत प्राचीन विद्या है। विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ 'ऋग्वेद' में भी इसका उल्लेख मिलता है। सनातन-संस्कृति बहुत विलक्षण है। इसके सभी सिद्धान्त पूर्णत: वैज्ञानिक हैं और उनका एकमात्र उद्देश्य मनुष्यमात्र का कल्याण करना है।

'वास्तुशास्त्रं प्रवक्ष्यामि लोकानां हितकाम्यया।'(विश्वकर्मप्रकाश)

'वास्तु' शब्द का अर्थ है - निवास करना(वस निवासे)। जिस भूमि पर मनुष्य निवास करते हैं, उसे 'वास्तु' कहा जाता है। प्राचीन काल में विद्यार्थी गुरुकुल में रहकर चौसठ कलाओं की शिक्षा प्राप्त करते थे। जिनमें वास्तुविद्या भी सम्मिलित थी। भारत की अनेक विलक्षण विद्याएं आज लुप्त हो गयी हैं। किसी समय यह देश भौतिक और आध्यात्मिक-दोनों दृष्टियों से बहुत उन्नत था, पर आज यह दयनीय स्थिति में है। कुछ लोगों की सोच है कि वास्तुशास्त्र के अनुसार भवन बनाने मात्र से सारे कष्टों कानिवारण हो जायेगा। सुख शान्ति मिल जायेगी। वास्तव में ऐसी बात नहीं। भिन्न-भिन्न विद्यानुरागियों के एतत्सम्बन्धी तर्क उल्लेखनीय हैं-

'वैद्या वदन्तिकफपित्तमरूद्विकाराज्योतिर्विदोग्रहगतिं परिवर्त्तयन्ति।
भूताभिषाङ्ग इति भूतविदो वदन्ति
प्रारब्धकर्मबलवन्मुनयो वदन्ति।।

रोगों के उत्पन्न होने में चिकित्सक लोग कफ, पित्त और वात को, ज्योतिषी लोग ग्रहों की गति को, प्रेतविद्या वाले भूत-प्रेतों के प्रविष्ट होने को परन्तु मुनिलोग प्रारब्ध कर्म को ही कारण मानते हैं। फिर भी वास्तुशास्त्रों के अनुसार गृह के मुख्य द्वार एवं समीपस्थ शुभाशुभ वृक्षों के रहने से सुख-शान्ति पर सम्यक् असर पड़ता है यह प्रामाणिक है।

वास्तुचक्र की चारों दिशाओं में कुल बत्तीस देवता स्थित हैं। मुहूर्तमार्तण्ड (6/17) में आया है कि घर की लम्बाई के नौ भाग करके पूर्व दिशा में घर की बाँयी ओर से तीसरे भाग में, दक्षिण दिशा के छठें भाग में, पश्चिम दिशा के पांचवें भाग में और उत्तर दिशा के पांचवें भाग में द्वार बनाना चाहिए। वास्तुशास्त्रीय मान्यतानुसार स्थान विशेष पर निर्मित द्वार निम्नांकित नामों से जाने जाते हैं- उत्संग द्वार, सव्य द्वार, अपसव्य द्वार, पृष्ठमंगद्वार, विजय द्वार, यमद्वार, मकरद्वार, कुबेर द्वार आदि। इन चारों की विशद व्याख्या शोधपत्र में की जाएगी।

वृक्ष न केवल पर्यावरण परिशुद्धि के अनिवार्य तत्त्व हैं बल्कि इनके आरोपण से गृहस्वामी पर शुभाशुभ परिणाम आते हैं। यदि वास्तुविज्ञान के आलोक में घर के समीप पेड़-पौधे लगाए जायें तो न केवल गृहस्वामी वरन् समस्त भारत एवं विश्व सुख-समृद्धि प्राप्त कर लेगा। (बृहत्संहिता 53/86)

'आसन्ना: कण्टकिनो रिपुभयदा: क्षीरिणोऽर्थनाशाय।
फलिन: प्रजाक्षयकरा दारूण्यपि वर्जयेदेषाम्।।

काँटे वाले वृक्ष शत्रु से भय देने वाले, दूधवाले वृक्ष धन का नाश करनेवाले और फलवाले वृक्ष सन्तान का नाश करने वाले हैं, इनकी लकड़ी भी घर में नहीं लगानी चाहिए। इस प्रकार बेर, केला, अनार तथा नींबू जिस घर में उगते हैं घर की वृद्धि नहीं होती है। इसके विपरीत अशोक, पुलाग, मौलसरी, शमी, चम्पा, अर्जुन, कटहल, केतकी, चमेली, पाटल, नारियल, नागकेशर, अड़हुल, महुआ, वट, शाल आदि वृक्ष घर के पास शुभ है।

शुभाशुभ फल पगदायक पेड़ पौधों का वास्तु शास्त्रीय विवेचन प्रस्तुत शोधपत्र में अभीष्ट है।

वैदिक साहित्य में फलित ज्योतिष : एक अनुशीलन

अम्बरीष पाण्डेय शोधच्छात्र, ज्योतिर्विज्ञान विभाग, लखनऊ वि.वि., लखनऊ

भारतीय समाज में वेदों का अत्यन्त ही महत्त्व है। इसमें अनेक विषयों का वर्णन किया गया है। इस वैदिक साहित्य के सम्यग् ज्ञान के लिए इनके जो अंग हैं उनका अध्ययन करना अत्यन्त ही उपादेश्य माना जाता है। वेदाङ्ग में ज्योतिष के आधार पर मानव से सम्बन्धित विभिन्न तथ्यों के आधार पर फलादेश किया जाता है। ज्योतिषशास्त्रीय स्कन्ध परम्परा के अन्तर्गत जो विषय वर्णित किये गये हैं उनमें फलित का भी अत्यन्त ही महत्त्व है। इस फलित के सन्दर्भ में वेदों में ही उल्लेख प्राप्त होता है जैसा कि कहा गया है-

अपेहि मनसस्पतेऽपक्राम परश्चर।
परो निर्ऋत्या आ चक्ष्व बहुधा जीवतोमनः। (ऋग्वेद 10/164/1)

इस वैदिक मन्त्र में स्वप्न के विषय में फलादेश दिया गया है। इसी प्रकार से वैदिक साहित्य में अन्य अनेक स्थानों पर फलित का वर्णन प्राप्त होता है। यदि सम्प्रति काल में जो ज्योतिष तथ्यों का निरूपण फलित के सन्दर्भ में किया गया उनका सम्यक् ज्ञान दैवज्ञ के द्वारा प्राप्त करने के पश्चात् यदि फलादेश किय जाता है तो निश्चित ही वे भविष्यवाणियाँ सत्य सिद्ध होंगी ऐसा माना जाता है।

प्रस्तुत शाधेपत्र फलित से सम्बन्धित देवकालीन तथा आधुनिक समय की अवधारणा से सम्बन्धित तथ्यों का निरूपण शोधार्थी के द्वारा किया जायेगा।

वैदिक साहित्य में सूर्यग्रहण पर्यालोचन

विपिन कुमार (सीनियर रिसर्च फैलो) ज्योतिर्विज्ञान विभाग, लखनऊ वि.वि., लखनऊ

ग्रहों की गति के अध्ययन की परम्परा भारत में अनादिकाल से चली आ रही है। ऐसा ही एक ग्रह गतिक प्रभावी प्रक्रिया सूर्य ग्रहण है। यह सूर्य के परितः परिक्रमण करने वाली पृथ्वी एवं पृथ्वी के परितः परिक्रमण करने वाले उपग्रह चन्द्रमा के कारण होता है। विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद में सूर्य ग्रहण का उल्लेख है-

यत् त्वा सूर्य स्वर्भानुस्तमसाविध्यदासुरः।
अक्षेत्रयिद् यथा मुग्धो भुवनान्यदीधयुः।। (ऋ. 5/40/5)

अर्थात् हे सूर्यरु ! स्वर्भानु नामक दैत्य ने जब तुम्हें अन्धकार से ढक लिया था उस समय सभी लोक एक-सा दिखाई देता था उस समय समस्त प्राणी विमूढ़ हो गये तथा अपने स्थानों को भी न जा सके।

राहु-केतु ग्रह पृथ्वी, सूर्य एवं ग्रह कक्षाओं के निराकार सम्पात हैं। पुराणों में राहु सिंह का सुत है। अमृत पीते समय विषुण ने उसका सिर काट दिया अमृत पीने से वह अमर बना रह गया अतः ब्रह्मा ने इसे ग्रहत्व प्रदान किया ऊपर का भाग राहु एवं नीचे का केतु हो गया। वस्तुतः पृथ्वी की छाया राहु है एवं चन्द्रमा की छाया केतु है इसी कारण राहु को स्वर्भानु भी कहा गया है। तथा केतु को धूमकेतु कहा गया है। प्रस्तुत शोधपत्र में शोधार्थी द्वारा सूर्य ग्रहण से सम्बन्धित विभिन्न तथ्यों का उल्लेख करते हुए विचार किया जायेगा।

वेदों में ज्योतिष का स्वरूप

डॉ. मंजु लता श्रीवास्तव रीडर हिन्दीविभाग, डी.एस.एन. कॉलेज, उन्नाव

वेदों में नक्षत्रों, सप्तर्षिमण्डल, बृहत्तुलयक या आकाश गंगा, ग्रह कक्षा, सूर्य चन्द्रादि ग्रहण इत्यादि के वर्णन मिलते हैं। ऋग्वेद में वर्ष को बारह चन्द्रमासों में विभाजन तथा प्रत्येक तीसरे वर्ष में चान्द्र और सौर वर्ष का समन्वय, बारह महीनों के नाम, सूर्य के दक्षिणायन और उत्तरायण होने का कारण और सूर्य की स्थिति पर विचार किया गयाहै। विभिन्न स्थानों पर सूर्य एवं चन्द्र के स्तुतिपरक मन्त्र भी आये हैं। इससे स्पष्ट होता है कि वैदिक युग में मानव ने अवश्य ही इनकी विलक्षण सत्ता और शक्ति का रहस्य जान लिया

था। परिणाम स्वरूप वे सूर्यादि के देवत्त्व रूप को स्वीकार करते थे।

वेदों की इस शाखा ज्योतिष अर्थात् वेदांग का सम्बन्ध वैदिक सर्वव्यापकता से कैसे है, यह बात पुराणों में बतायी गयी है। वैदिक दर्शन का समुचित ज्ञान प्राप्त करने के उद्देश्य से वेदांग ज्योतिष का महत्त्व है। अतः इसे वेद पुरुष का 'चक्षु' अर्थात् नेत्र भी कहा गया है। वेदांग ज्योतिष में ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद ज्योतिष ये तीन ग्रन्थ माने जाते हैं। प्रथम के संग्रह कर्त्ता लगध नाम के ऋषि हैं। इसमें 36 कारिकाएँ हैं। यजुर्वेद ज्योतिष में 49 कारिकाएँ हैं, जिनमें 36 कारिकाएँ तो ऋग्वेद-ज्योतिष की हैं और 13 नयी आयी हैं। अथर्व ज्योतिष में 162 श्लोक हैं। इन तीनों ग्रन्थों में फलित की दृष्टि से अथर्व ज्योतिष महत्त्वपूर्ण है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि हमारे प्राचीन ऋषियों ने अपने दिव्य ज्ञान और योगजन्य शक्ति द्वारा ग्रह और नक्षत्रों के सम्बन्ध में पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर दिया था। वे अपने नेत्रों से बिना किसी वेधशाला के ही राशि, नक्षत्र, ताराव्यूह, चन्द्र सूर्य और मंगलादि ग्रहों की गति, स्थिति और संचार आदि को देखकर योग के बल से अपने शरीर स्थित सौरमण्डल से तुलना कर आंतरिक ग्रहों की गति, स्थिति तथा उसके द्वारा होने वाले फलाफल का निरूपण करते रहे हैं।

गणित सभ्यता का दर्पण : एक चिन्तन

आचार्य ध्रुवपति पाण्डेय सचिव, प्रज्ञा-पीयूष समिति उदयपुरा, बलिया (उत्तरप्रदेश)

वर्तमान युग विज्ञान का है। प्रत्येक सिद्धान्त का वैज्ञानिक रीति से प्रयोग करने पर उसकी यथार्थ उपयोगिता सिद्ध होती है। एस्ट्रोनोमी, तंत्र या गणित विशुद्ध विज्ञान है।

गणित-ज्योतिष का मूल ऋग्वेद है। संसार में मनुष्य जीवन के आरम्भ के साथ ही गणित की उत्पत्ति एवं विकास हुआ। वेदों में संख्याओं तथा गणित की उत्पत्ति एवं विकास हुआ। वेदों में संख्याओं तथा गणित के मूलभूत सिद्धान्तों का विशद् विश्लेषण प्राप्त होता है। यहीं से गणित की विकास यात्रा प्रारम्भ होती है। वेदों में लिखित संख्या शब्द, सम्पूर्ण लोक में प्रेरणादायक है। तुलनात्मक भाषा विज्ञान से स्पष्ट होता है कि भारत से लेकर यूरोप तक भाषाओं में प्रयुक्त भारोपीय संख्या शब्द वैदिक-एक, द्वि, त्रि आदि से विकसित हुए हैं। आज सम्पूर्ण संसार में प्रचलित एक से नौ तक तथा उसके बाद दशगुणोत्तर दहाई, सैकड़ा आदि के समान प्रतिरूप शब्द तथा उनकी समान पद्धति एक चमत्कार एवं वरदान है। इसका श्रेय एक स्वर से वेदों को जाता है।

भाषा वैज्ञानिकों ने ध्वनि परिवर्तनों की एक विशेषता के आधार पर भारतीय भाषाओं के 'शतम्' तथा 'केन्तुम्' नामक दो प्रमुख भेद स्वीकार किये हैं। जिसका मानक 'शतम्' शब्द ही है। इस प्रकार यह तथ्य सर्वमान्य है कि ये वैदिक संख्या शब्द सम्पूर्ण भारोपीय भाषाओं में समान रूप में अपनाये गये हैं।

यजुर्वेद 172 में एक, दश तथा दशगुणोत्तर संखाओं के नामों का विस्तार पूर्वक उल्लेख है। इसकी सबसे अन्तिम 'परार्ध' संख्या 10 के समकक्ष है। इसके पश्चात् बौद्ध ग्रन्थों में इससे भी बड़ी संख्याओं का सृजन हुआ। 100 वर्ष ई0 पूर्व में विरचित ललित-विस्तर मे दश-गुणोत्तर पद्धति से लिखित संख्या तल्लक्षण है, जो 10 के समकक्ष है।

इसी प्रकार संख्या वाचक 'लक्ष' मूलतः चर्यापिटक, गाथावंश आदि ग्रन्थों में प्रयोग हुआ था, इसके बहुत बाद तक संस्कृत साहित्य में नहीं अपनाया गया। आर्यभट्ट जैसे महाविद्वानों ने भी इसका प्रयोग नहीं किया। किन्तु गणितज्ञ महावीराचार्य द्वारा इसके प्रयोग के पश्चात् इसे व्यापक प्रचार मिला। अतः संस्कृत में 'लाख' शब्द का प्रयोग होने लगा। प्राकृत मे यह शब्द संस्कृत के 'लाक्षा' शब्द से उस पदार्थ के लिए प्रयुक्त हुआ। प्राचीन काल में गणित की विधि-शाखाओं के पृथक्-पृथक् नामकरण हुए। अंकगणित का सबसे पुराना नाम 'राशि विद्या' है जिसका उल्लेख छान्दोग्य-उपनिषद् में विद्याओं के प्रसंग में किया गया है। बाद में इसके आधार पर गणित की विविध क्रियाओं के लिए 'त्रैराशिक' 'पंचराशिक' जैसे शब्द विकसित हुए।

रेखा गणित का प्राचीन नाम शुल्व-गणित था। शुल्व का अर्थ यज्ञ वेदियों के मापन के लिए प्रयुक्त रस्सी थी। लगभग 800ई. पू. विरचित शुल्व सूत्रों में इसके आधार पर विकसित गणित की विस्तृत विवेचना की गयी। शुल्व के इस अर्थ के द्वारा इस गणित को 'रज्जु गणित' नाम भी प्रदान किया गया। बाद मे रज्जु द्वारा सीधी पंक्तियां रेखा के मापन के कारण इसे 'रेखागणित' नाम दिया गया। अतः हम कह सकते है कि संसार एवं मानव-जीवन का व्यवहार, व्यापार, गणित पर ही टिका है। सम्पूर्ण विश्व गणित से ही चलायमान दृष्टिगोचर होता है।

वेदों में वास्तुविज्ञान : एक अध्ययन

डॉ.सोमेश शर्मा, नैनीताल

वेदों में जहाँ आचार, शिक्षा, नीतिशास्त्र, अध्यात्म, दर्शन, मनोविज्ञान तथा सृष्टि के गूढ़ रहस्यों का विवेचन है वहीं इनमें वास्तुविज्ञान पर भी विशद् सामग्री मिलती है। वास्तु का अर्थ है- 'जहाँ निवास किया जाए'। वेदों में 'वास्तु' शब्द भवन के अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है। वैदिक ऋषि भवन निर्माण करते समय उपयुक्त भूमि के चयन पर बल देते हैं। उनके अनुसार भवन सुरक्षित एवं दृढ़ भूमि पर निर्मित होना चाहिए। वैदिक ऋषियों के अनुसार जहाँ पर गृह निर्माण हो रहा हो वहाँ जल की व्यवस्था होनी चाहिए। यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि वहाँ पर सूर्य की किरणों का प्रकाश तथा वायु का आवागमन सुगमता से होता हो।

वैदिक आर्य भवन-निर्माण की कला में पूर्णतया दक्ष थे तथा उत्कृष्ट भवनों का निर्माण करते थे। सुरक्षा हेतु इन गृहों को बन्द भी किया जाता था। जन सामान्य के निवास के लिए प्रयुक्त गृहों के लिए वेश्म, पस्त्या, दुरोण, दुर्युसु, दम, छर्दिस्, वास्तु, शाला आदि का प्रयोग वेदों में दृष्टिगत होता है। अनेक मंजिलों से युक्त गृहों का निर्माण भी वैदिक आर्यो के द्वारा किया जाता था। इस बात को पूर्णतया दृष्टि में रखकर गृह-निर्माण किया जाता था कि गृह शत्रुओं के आक्रमण, जंगली पशुओं, लुटेरों से सुरक्षित रहे।

जीवनोपयोगी वस्तुओं का भण्डारण एवं सम्पत्ति के संग्रहण के लिए भी गृह में स्थान बनाए जाते थे। पालतू पशुओं के लिए भी सुरक्षित स्थान निर्मित किए जाते थे। यज्ञोत्सवादि पर्वो पर आगन्तुकों के निवास के लिए 'आव-सथ' नामक अतिथिशाला का उल्लेख भी प्राप्त होता है(अथर्ववेद 9.6.7)। भवनों में विभिन्न प्रकोष्ठ हुआ करते थे तथा ऊपरी मंजिल में जाने के लिए सोपान मार्ग भी बनाए जाते थे।

वैदिक ऋषियों द्वारा पुर एवं दुर्ग शब्दों का भी प्रयोग किया गया है- 'वि दुर्गा विद्विषः पुरो हनन्ति राजान् एषाम्। नयन्ति दुरिता तिरः।। (ऋ. 1.41.3) वेदों में अश्मनिर्मित, लौहनिर्मित पुरों का वर्णन मिलता है। शतभुजी दुर्गों के उल्लेख से पुरों की विशालता लक्षित होती है। इन पुरों को परिखा से घेरा जाता था।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि वैदिक काल में वास्तु विज्ञान अत्यन्त समृद्ध था।

वैदिक वाङ्मय में वास्तुकला

डॉ. संगीता मिश्रा विभागाध्यक्ष-इतिहास, रा. स्नातकोत्तर महाविद्यालय कोटद्वार- 246149 उत्तराखण्ड

प्राचीन भारतीय जनमानस के सांस्कृतिक चेतना में कला के जो अर्थ सन्निहित थे और बहुत सारे दृष्टान्तों मे जिनकी परम्परा दृष्टिगत होती है, उन्हें कलात्मक दृष्टान्तों और साहित्यिक सन्दर्भों के तुलनात्मक अध्ययन से अधिक मुखरित किया जा सकता है। अति प्राचीनकाल से ही भारत में वास्तु के प्रति अनुराग के जीवन्त दृष्टान्त अवशिष्ट सजीव कलाकृतियाँ हैं, जो भारतीय संस्कृति के इस मूल्यवान पक्ष की झाँकी प्रस्तुत करती है। भारतीय शिल्पियों ने शास्त्रीय और व्यावहारिक दोनों दृष्टियों से इस कला की सतत् साधना की। मनीषियों ने अपने चिन्तन को शास्त्रीय स्वरूप प्रदान किया तथा शिल्पियों ने अपनी साधना एवं निष्ठा तथा सतत् अभ्यास के द्वारा उसे साकार स्वरूप दिया। वास्तु कला के शास्त्रीय पक्ष का दृष्टान्त प्राचीन भारतीय वाङ्मय में उपलब्ध है। वस्तुतः भारतीय वास्तु शास्त्र भी है और कला भी। जहाँ एक ओर इससे सम्बन्धित विषय अर्थात् वास्तुशास्त्र का विवेचन वेदों में उपलब्ध होता है। वास्तुकला के अनेकों दृष्टान्त हमें वैदिक ऋचाओं से उपलब्ध होते हैं। ऋग्वैदिक काल में वास्तु या एक भवन का स्थल वास्तोष्पति नामक देवता के स्वामित्व में स्वीकार किया जाता था। इसलिए जब कभी नये भवन का निर्माण किया जाता था तो उसकी प्रार्थना आवश्यक समझी जाती थी। ऋग्वेद के मन्त्रों में वास्तोष्पति इन्द्र से समीकृत किये गये हैं। ऋग्वेद में 'त्रिधातुशरणम्' त्रिभौमिक प्रासाद की इच्छा वशिष्ठ जी करते हैं। सहस्र द्वार, सहस्र स्तम्भों के प्रशादों का अनेकों बार संकेत मिलता है। ऋग्वेद के मन्त्रों में इन्द्र को सर्वोत्तम स्तम्भ का स्वामी कहा गया है। स्तम्भों पर गृहों को टिकाने के भी संकेत मिलते हैं- 'स्कम्भेन धारयेता।', तीनों स्तम्भों के ऊपर त्रिकोणात्मक शंःक्वाकार छत के निर्माण की परम्परा भी प्रचलन में थी। वस्तुतः वास्तुपूजा, वास्तुभूमि चयन, स्तम्भपूजा, द्वार पूजा आदि वास्तु विद्या के सिद्धान्त ऋग्वैदिक काल में प्रचलन में थे जिनसे तत्कालीन वास्तुकला का ज्ञान प्राप्त होता है।

उत्तरवैदिक काल में अथर्ववेद की अनेक ऋचाओं में वास्तुकला से सम्बन्धित नाना शब्दावलियाँ विद्यमान हैं। अथर्ववेद में ढोलाकार गृह की तुलना हस्तिनी से ही गयी है। 'हस्तिनीपद्वतीमिता पृथिव्यांतिष्ठति।'

शतपथ ब्राह्मण में वेदी निर्माण और चिति निर्माण के विवरण से भी वास्तुकला के अस्तित्व का आभास होता है। शतपथ ब्राह्मण में देवायतन के बारे में भी उल्लेख मिलता है।

अस्तु वैदिक वाङ्मय में उल्लिखित नाना सन्दर्भों के अध्ययन से विदित होता है कि कालान्तर में विकसित वास्तुकला के कतिपय पक्ष वैदिक काल में मूल रूप से अस्तित्व में आ चुके थे।

वैदिक वास्तु विज्ञान

डॉ. श्रीमती कृष्णा जैन, सहायक प्रा. संस्कृत, म.ल.शा.उत्कृष्ट म.वि. ग्वालियर (म.प्र.)

वैदिक वङ्मय सबसे पुरातन वङ्मय है। वैदिक ग्रन्थों में वास्तुकला का विवरण पर्याप्त मात्र में उपलब्ध है जिससे हमें वैदिक काल की वास्तुकला का ज्ञान होता है। प्राचीन भारतीय आर्यों के साहित्यिक स्रोत ऋग्वेद में शिल्पी बनाने और शिल्प कार्यों की सिद्धि के इच्छुकों के लिये नियमों का विधान वर्णित है। मनुष्य पहले जल एवं अग्नि ग्रहण कर के ईश्वर का ध्यान करने के पश्चात् ही अपना शिल्प-कार्य प्रारम्भ करते थे निम्न मन्त्र से यह बात स्पष्ट होती है।

या सुरथा स्थोतमोभा देवा दिविस्पृशाम्।
अश्विना ता इवामहे।।

ऋग्वेद में कई स्थलों पर 'गाय', 'विश्', 'महाशाला' 'वसति' आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। गृहों के निर्माण में मिट्टी, लकड़ी पत्थर और ईटों का प्रयोग किया जाता था। एक स्थल पर इस बात का उल्लेख मिलता है कि सामान्य या मध्यम स्तर के लोग लकड़ी के गृहों में और मिट्टी के गृहों में रहते थे तथा एक ही घर में मनुष्य और पशु रहा करते थे।

अथर्ववेदकालीन युग वास्तुकला की दृष्टि से ऋग्वेदकाल से अधिक उन्नत था। अथर्ववेद के दो सूक्तों में तो गृह-निर्माण-प्रक्रिया का वर्णन बड़े विस्तार के साथ किया गया है। अथर्ववेदकाल में वास्तुकला की कुछ नई विधाओं का प्रचलन भी हुआ था। निम्नलिखित मन्त्र इस तथ्य को स्पष्ट करता है कि एक शाला या घर के भीतर वस्तु संग्रहालय, यज्ञशाला, देवमन्दिर, पाकशाला आदि के लिए पृथक्-पृथक् कक्ष थे-

हविर्धानमग्निशालं पत्नीनां सदनं सद।
सदो देवनामति देवि शाले।।

अथर्ववेद में दो से दस मंजिलों तक के भवनों का उल्लेख है। गृहों को अलंकृत किया जाता था। वास्तुकला क्रमशः विकसित हो रही थी। इसमें सूक्ष्मता तथा नवीनता आने लगी थी। प्रस्तुत शोध पत्र में वेदों में निहित वास्तु विषयक सिद्धान्तों एवं उसकी वैज्ञानिक पक्षों को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

यजुर्वेदीय ब्राह्मण ग्रन्थों में खगोल-विद्या

अपर्णा धीर(शोधच्छात्रा) संस्कृतविभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

पृथिवी के सब ओर आकाश में विस्तारित पिण्ड ही खगोल (Celestial Sphere) कहलाता है। इसे गगनमण्डल, आकाशमण्डल आदि नामों से भी पुकारा जाता है। अतः खगोलीय पिण्डों से सम्बद्ध विद्या खगोल-विद्या (Astronomy) है। भले ही खगोल-शास्त्र के लिए प्रयुक्त 'खगोल' शब्द नालन्दा विश्वविद्यालय के खगोलीय-वेधशाला के नाम पर पड़ा है तथापि खगोल-विद्या के सर्वप्राचीन सन्दर्भ प्रायः संहिता-काल से ही प्राप्त होते हैं। वैदिक संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृति के रूप में सर्वविदित है। अतः तात्कालीक खगोलशास्त्रीय अवधारणाओं के ज्ञान से खगोल-विद्या के उद्भव को ज्ञात किया जा सकता है। इस दृष्टि से प्रस्तुत अध्ययन के लिए शुक्लयजुर्वेदीय शतपथ ब्राह्मण और कृष्णयजुर्वेदीय तैत्तिरीय ब्राह्मण को मूल आधार के रूप में ग्रहण किया गया है।

विषय प्रवेश से पूर्व खगोल-विद्या के उद्भव की ओर ध्यान आकर्षित करना परमावश्यक है। इस सन्दर्भ में कह सकते हैं कि सर्वप्रथम वैदिक ऋषियों का ध्यान पृथिवी की सीमा के बाहर फैले हुए आकाश की ओर आकर्षित हुआ होगा। तत्पश्चात् आकाश में विद्यमान खगोलीय पिण्डों के अन्वेषण एवं चिन्तन में वे संलग्न हुए होंगे। वैदिक ऋषियों द्वारा आकाशीय पिण्डों को देखकर उनमें देवत्व की सम्भावना करना ही वैदिक मन्त्रों में खगोलीय पिण्डों के यत्र-तत्र दिखने का कारण है। धीरे-धीरे कालक्रम से वैदिक ऋषि इन आकाश स्थित पिण्डों के स्वरूप, गति आदि के ज्ञान से अवगत हुए, वैदिक ऋषियों की इसी दृष्टि को खगोल-शास्त्र के जन्म के रूप में देखा जा सकता है।

सर्वप्रथम उल्लेखनीय है कि यजुर्वेदीय ब्राह्मण ग्रन्थों में कथित तथ्य खगोलीय पिण्डों की गतिशीलता को प्रमाणित करते हैं, उदाहरणत: यहाँ सूर्य और चन्द्रमा के परस्पर सम्बन्ध के साथ-साथ उनके गति-चक्र से उत्पन्न उत्तरायण और दक्षिणायन तथा अमावस्या और पूर्णमासी का वर्णन है। इसके अतिरिक्त शतपथ ब्राह्मण कालीन ऋषि द्वारा की गई एक वर्ष में तीन सौ साठ दिनों की कल्पना उनके पथ्य-स्वस्ति से परिचित होने की ओर इंगित करती है एवमेव विशेषकर शतपथ ब्राह्मण में ही सप्तर्षि-मण्डल, ध्रुव-तारा तथा उल्का की स्थिति पर प्रकाश डाला गया है। इन ब्राह्मणों में नक्षत्रों की संख्या, नाम एवं उनकी स्थिति की चर्चा भी की गई है। दोनों ब्राह्मणों ने ग्रहण के विषय में स्वर्भानु नामक असुर द्वारा सूर्य के ग्रसित होकर अन्धकारमय होने का कथन किया है।

वस्तुत: यजुर्वेदीय ब्राह्मणों में वर्णित खगोलशास्त्रीय तत्त्वों का विवेचन तत्कालीन ऋषि को खगोलविद मानने का आधार है। शतपथ एवं तैत्तिरीय ब्राह्मणों के तथ्य न केवल खगोल-विद्या की प्राचीनता को प्रमाणित करते हैं अपितु खगोल-विद्या के विकास-क्रम में भारतीयों की भूमिका भी स्पष्ट करते हैं। इस प्रकार प्रस्तुत शोध-पत्र में उपर्युक्त चर्चित विषयों पर यजुर्वेदीय ब्राह्मणों के सन्दर्भ में विस्तृत विश्लेषण किया जायेगा।

वेद में खगोल विज्ञान-'सूर्यग्रहण'

प्रा. मयाराम के. पटेल अध्यक्ष- संस्कृतविभाग, सरकारी विनयन एवं वाणिज्य, कॉलेज नवसारी(गुजरात)

दिनांक 22-9-2009 को, विश्व ने सदी का सबसे बड़ा सूर्यग्रहण देखा है। इस खगोलीय घटना को देखने के लिए लोगों में काफी उत्साह दिखाई दिया था। विश्वभर के खगोल वैज्ञानिक इस घटना के अभ्यास के लिए चीन में पहुचे गये थे और इस घटना के ऊपर आज तक वैज्ञानिक संशोधन जारी है।

मैंने भी इस रहस्यमय घटना को देखा है। जिससे मैं प्रभावित हुआ हूँ। इस घटना के कुछ दिनों बाद ही, मेरे मित्रवर्य के द्वारा मुझे-'विश्व वेद सम्मेलन' की जानकारी प्राप्त हुई है। और मैंने उपर्युक्त शीर्षक वाला शोधपत्र प्रस्तुत करने का निश्चित किया है। इस घटना को लेकर मैंने वेद के प्रति दृष्टिपात किया, तो इस अजीबसी खगोलीय वैज्ञानिक घटना, ऋग्वेद में प्रतीकात्मक रूप से दिखाई पड़ी है। तद्यथा-

यं वै सूर्य स्वर्भानुस्तमसाविद्यदासुर:।
अत्रयस्तमन्यविन्दन्नह्यऽन्ये अशक्नुवन्।। (ऋ 5/40/1)

ऋग्वेद मण्डल 5 सूक्त 40 मन्त्र 5,6,7,8 और 9 में इस खगोलीय घटना को प्रतीकात्मक रूप से समझाया गया है। इस सूक्त के द्रष्टा ऋषि- 'अत्रि भौम' सूर्यग्रहण की वैज्ञानिक खगोलीय घटना के आदि संशोधन कर्त्ता है। यह बात हमें सूक्त का अभ्यास करने से अच्छी तरह मालूम पड़ती है। इस सूक्त के अभ्यास से हमें यह जानकारी मिलती है कि हमारी आज की भौतिक प्रगति और वैज्ञानिक शोध-प्राचीन भौतिक प्रगति और वैज्ञानिक शोधों से बहुत पीछे है। हमारे यहाँ वेद मन्त्रों का अर्थघटन करने वाले विविध सम्प्रदाय है जैसे कि याज्ञिक, ऐतिहासिक, आत्मविद्, नैरुक्त, वैयाकरण नैदान इत्यादि। इसमें से ऐतिहासिकों के मतानुसार वेद के मन्त्रों में प्राचीन आर्यप्रजा का इतिहास संगृहीत हुआ हैं। इस बात को प्रमाण मानते हुए निम्नलिखित वेद मन्त्र में 'अत्रि' ऋषि की मुक्ति की बात कही गई है। जैसे कि-

अत्रिर्यद्वामवरोहन्नृषीसमजाऐपीन्नाधमानेय योषा।
श्येनस्य चिज्जवसा नूतनेनागच्छतमश्चिना शन्तमेन।।(ऋ. 5/98/4)

इस दृष्टि से प्रस्तुत ऋ. 5/40 और 5/98 सूक्तों को ध्यान में रखकर प्रस्तुत शोधपत्र तैयार किया गया है। इसमें अत्रि-ऋषि के जीवन में घटित हुई घटना का अभ्यास करने का प्रयास किया गया है कि- खगोलीय; वैज्ञानिक घटना 'सूर्यग्रहण' के वैज्ञानिक सिद्धान्त का संशोधन करने वाले 'अत्रि' सबसे पहले ऋषि थे।

वास्तु विज्ञान का मानविकी दृष्टिकोण

डॉ. प्रदीप कुमार दीक्षित एसो.प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, अकबरपुर महाविद्यालय, अकबरपुर कानपुर (उ.प्र.)

वास्तुविज्ञान सुख-सुविधाओं और भौतिक ऐश्वर्य के स्वस्थ शरीर से, स्वस्थ मानसिकता से भोग करते हुए दीर्घायु होने के उपायों पर चर्चा करता है। वास्तुशास्त्र केवल अपने देशवसियों की ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण विश्व के प्राणियों की कल्याण की कामना करता है। उसकी दृष्टि में सम्पूर्ण विश्व एक घर है और उसके ऊपर जीनयापन करने वाले सम्पूर्ण प्राणी उस घर के सदस्य हैं।

वास्तुपुरुष जब अमरलोक से मृत्युलोक में आया तब उसका सिर ईशान तथा पैर नैऋत्य में तथा वक्षस्थल भूखण्ड के मध्यभाग में था। किन्तु वास्तुपुरुष हर तीन माह में अपनी दिशा बदल देता है, उसका ज्येष्ठ, आषाढ़ और श्रावण मास में इसका मस्तक और दृष्टि उत्तर दिशा में तथापैर दक्षिण दिशा में रहते हैं। भाद्र और कार्तिक मास में मस्तक पूर्व में, पैर पश्चिम में तथा दृष्टि दक्षिण की ओर रहती है। मार्गशीर्ष, पौष और माघ मास में मस्तक दक्षिण में पैर उत्तर में और दृष्टि पश्चिम की ओर रहती है। ऋग्वेद में वास्तुदेव का परिचय देते हुए उल्लेख मिलता है-

'त्वां वास्तून्युमसि गमध्यै यत्र गावो भूरीशृंगा आयासः।'

कोमल अवयवों पर कोई निवेश उचित नहीं है। अतः वह त्याज्य है। इसी कारण से भवननिर्माण करते समय वह स्थान खुला रखा जाता है। सूर्य का स्थान भूखण्ड में पूर्वदिशा में होता है। सूर्य का हमारे जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रातः कालीन पड़ने वाली सूर्य किरणें न केवल स्वास्थयवर्धक होती हैं, बल्कि ये 'पोसित्व ऐनर्जी- फील्ड' उत्पन्न करती हैं, जो कि मनुष्य की प्राणशक्ति को बल प्रदान करती हैं। अस्तु इसका मार्ग खुला तथा स्वच्छ होना चाहिए। यहाँ शौचालय सेप्टिकटैंक, गोदाम, सीढ़िया. नैऋत्य से भारी व ऊँचा निर्माण कदापि न कराएं तथा इस दिशा में ऊँचा वृक्ष भी न लगाएँ। जबकि इसके अतिरिक्त भवन के पश्चिमी, दक्षिणी क्षेत्र में भारी एवं ऊँचा भवन निर्माण ऊँचे वृक्ष आदि लगाना लाभदायी होते हैं।

वास्तव में वास्तुविज्ञान के नियमों का पालन करना हमारी अपनी सूझ-बूझ पर निर्भर है, कि हम भवन निर्माण करते समय अधिकाधिक कितने वास्तुनियमों का पालन करते हैं। निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि वास्तुविज्ञान के नियमों का शतप्रतिशत पालन किया जाये तो हमारे अपने जीवन में आश्चर्यजनक परितवर्तत आ सकता है। तभी हमारी सुखी समाज की कल्पना साकार हो सकती है।

ज्योतिष शास्त्र का वैज्ञानिक अध्ययन

दीपा गुप्ता शोधच्छात्रा, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

आधुनिक उच्च विज्ञान भी यह कहता है कि काल की गणना गति से तथा गति की गणना काल से होतीहै क्योंकि दोनों तत्त्व अन्योन्याश्रित हैं। यह वैज्ञानिक सिद्धान्त वेदकाल में ही ज्ञात था। तभी ऋग्वेद में कहा गया है-

द्वादशारं नाहि तज्जराक्ष ववृति चक्रं परिधाग्रतस्य।
आ पुत्रे अग्ने मिथुनासो अतसत्शतानि विंशतिश्च तस्थुः।। ऋ. 1.164

इसलिए वेदांग ज्योतिष में इस शास्त्र को काल विधानशास्त्र कहा गयाहै-

वेदा ही यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः कालाभिपूर्वा विहिताश्च यज्ञाः।
तस्मादिदं कालविधान शास्त्रं, यो ज्योतिषां वेद स वेद यज्ञम्।। लगध ज्योतिष

वैदिक काल में यज्ञों को सही समय पर करने के लिये ज्योतिष का विकास हुआ। वास्तव में यह प्राचीन यज्ञ व्यवस्था ही

है जो अब एक परम्परा अथवा धार्मिक रुचि के रूप में मानी जाती है यही समस्त मानव ज्ञान-विज्ञान की जननी है इसी से मानव ज्ञान के आदि स्रोत वेदों का जन्म हुआ। ज्योतिष के महत्त्व को स्पष्ट करने के लिये उसे वेद पुराणों का नेत्र माना गया है। इस कारण ज्योतिष वेदों के पाँच अंगों में श्रेष्ठ माना जाता है।

शब्दशास्त्रं ज्योतिषं चक्षुषौ श्रौतयुक्तं निरुक्तं च कला करौ।
याजु शिक्षा तु वेदस्य वा नासिका पादपद्मद्वयं छन्दं आथैर्बुधैः।।

प्रत्यक्ष ज्योतिषं शास्त्रं चन्द्रार्कौ यत्रसाक्षिणौ- ज्योतिष शास्त्र के प्रत्यक्ष होने का प्रमाण सूर्य तथा चन्द्रमा देते हैं आकाश स्थित ज्योति पुंजों का निरीक्षण, परीक्षण, अध्ययन और उनके रहस्यों को जानने के उद्देश्य से ज्योतिषविद्या का जन्म हुआ। यह शास्त्र नितरां प्रयोगात्मक है। इसके सिद्धान्तों की परीक्षा प्रयोगों द्वारा सदा होती रहती है, ऐसा कभी नहीं हुआ होगा कि पचांग में लिखी अमावस्या की रात में चन्द्र दिखे अथवा पूर्णिमा की रात में चन्द्र का ग्रहण लग जाए, अतः इसकी वैज्ञानिकता की पुष्टि के लिए किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं, प्रयोगकाल में प्रत्यक्ष, आगम और युक्ति इन तीनों प्रमाणों का ज्योतिष सहयोग लेता है।

कहना न होगा किभारतीय ज्योतिष ही विश्व में आदि काल से ज्ञान विज्ञान का ज्योति स्तम्भ रहा है यह वैज्ञानिकों के अनुसार सभी विज्ञानों के पितामह हैं।

वेदों में वास्तु विज्ञान

सुनील दत्त शोधच्छात्र संस्कृत विभाग कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर

वैदिक वाङ्मय का सर्वप्रथम ग्रन्थ ऋग्वेद है। ऋग्वेद में गृह शब्द निवास या घर के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। यह शब्द अथर्ववेद में भी हुआ है । ऋग्वेद में इस प्रकार के गृह-निर्माण का निर्देश प्राप्त होता है। जिसमें सूर्य की किरणें बहुमात्र में आए। अथर्ववेद में दो 'शाला' सूक्त है जो कि विशाल या गृह निर्माण के विवरणों की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। इन प्रमाणों से स्पष्ट है कि गृहवास्तु विद्या के आचार्यों ने वैदिक युग में ही उन तत्त्वों का आविष्कार कर लिया था जो ऐतिहासिक युगों की गृहनिर्माणकला में पाए जाते हैं, जैसे नींव, कोठे, पक्खे सभा, अन्तःपुर द्वारा अलिन्द ऊर्ध्व छनद, अधःधनद सूत्रमापन, स्तम्भ छत आदि।

वास्तुशास्त्र

सीमा मिश्रा, शोधच्छात्रा, लखनऊ

वास्तु का अर्थ होता है निवास करना जिस भूमि पर मनुष्य निवास करते हैं उसे ही वास्त कहा जाता है। वास्तु शास्त्र को स्थापत्य शास्त्र भी कहते हैं जो भवन निर्माण का प्रतिपादक है।

दुनिया की अन्य सभ्यताएं जहाँ भवन निर्माण को सांसारिक कृत्य मानती है, वही भारतीय सभ्यता इसे धार्मिक कृत्य मानती है। गृह निर्माण के हेतु को स्पष्ट करते हुए भारतीय मनीषि कहते हैं:- गृह का हेतु स्त्री, पुत्रादि, सुख व धर्म, अर्थ, काम को देने वाला अन्य जन्तुओं के सुख का स्थान, शीत वात धूमादि कष्टों को दूर करने वाला होता है।

"वास्तु शास्त्र एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें परिमित भूमि, अपरिमित विश्व शक्ति में परिवर्तित हो जाती है।"

वैदिक्कालमानस्यानुशीलनम्

डॉ0 अशोकथपलिपालः ज्योतिषव्याख्याता, राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम् (मानितविश्वविद्यालयः)

अस्मिन्खलु संसारे सर्वत्र व्यावहारिककालज्ञानस्यावश्यकता नित्यमनुभूयते। तत्र वैदिकवाङ्मये सामाजिकार्थिके-राजनैतिक-दर्शनादिविषयाणां विवेचनसमये प्रसङ्गवशात् कालमांनस्यापि वर्णनमुपलभ्यते। वैदिककाले कालस्य महत्तमं मानं 'युगं' विभिन्नार्थे प्रयुक्तं दृश्यते। तत्र युगस्य द्वौ भेदौ देवयुगं मानुषयुगञ्चेति प्राप्यते। तस्मिन्काले युगस्य 'कृतत्रेतादिसंज्ञानां' प्रयोगः

'पञ्चसंवत्ससरात्मकयुगस्य' चापि प्रचलनं संदृश्यते। वैदिकजनाः कालस्य संवत्सरायनर्तु-मास-पक्ष-दिवस-मुहूर्तादीन् विभागान् जानन्ति स्मेति ज्ञायते। तदा चान्द्रमासानां सौरवर्षस्य च व्यवहारे प्रचलनं दृश्यते। चान्द्रसौरवर्षयोर्मध्ये ऋतुभिः सह समन्सयार्थमधिमासप्रक्षेपणविधि रपि तत्र विकसिताऽऽसीत्। चान्द्रमासानां मधुमाधवादि संज्ञा तथा च पर्यायरूपे 'अरुण-अरुणरजादि' संज्ञा प्राप्यते किन्तु कुत्रापि चैत्रादिसंज्ञा नोपलभ्यते। तस्मिन्काले पूर्णिमान्तमानस्य प्राधान्यमेव प्रतीयते। अस्य मासस्य पूर्वापरपक्षयोर्भेदेन विभागद्वयं दृश्यते यौ शुक्लकृष्णपक्षयोर्पर्यायौ। कालस्य तिथिनामकावयवस्य साम्प्रतिकोऽर्थः वेदेषु नोपलभ्यते किन्तु तत्रैकाष्टका-व्यष्टका-पूर्णिमासी-अमा-उदृष्टा' इत्यादि तिथिसंज्ञकाः शब्दाः प्राप्यन्ते। सम्भवतया ते रात्रिवाचकत्वेन प्रयुक्ता आसन्। बहुकालादनन्तरं ते तिथिवाचकत्वेन प्रसिद्धाः जाताः। सप्तवासराणि वेदेषु न प्राप्यन्ते। वैदिककाले दिनरात्र्योः पञ्चदशविभागात्मकानां मुहूर्त्तानां कल्पनाप्यासीत् किन्त्वत्रेदं वैशिष्ट्यं यत् शुक्लपक्षस्याहोरात्र्योर्मुहूर्त्तानां संज्ञाः कृष्णपक्षस्याहोरात्र्योर्मुहूर्त्तानां संज्ञाश्च भिन्नाः-भिन्नाः सन्ति। अपि च तत्रैकैकमुहूर्त्तस्यापि पञ्चदशविभागात्मकानां प्रतिमुहूर्त्तानामुल्लेखो मिलति। नारायणोपनिषदि मुहूर्त्तकलाकाष्ठादीनां सूक्ष्मकालमानानां नामान्युपभ्यन्ते परन्तु तत्र घटीपलादीनां चर्चा नोपलभ्यते। अनेन स्पष्टं यत् भारतीयकालगणनायाः मूलतत्वानि वेदेष्वेव सन्निहितानि सन्तीति।

वास्तुविज्ञानम्

नित्यानन्दः शोधच्छात्रः, ज्योतिषविभागीय, श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठम्, (मानितविश्वविद्यालयः) नवदेहली-16

तत्र वास्तुशास्त्रे विविधरूपेण वास्तुविज्ञानमुपलभ्यते, परमत्र विभिन्नशास्त्रप्रमाणैः पञ्चप्रकारकैः वास्तुविज्ञानं प्रकटीक्रियते। तद्यथा-

1. गृहनिर्माणे वास्तुविज्ञानम्।
2. दिग्ज्ञाने वास्तुविज्ञानम्।
3. पञ्चमहाभूतात्मके वास्तुविज्ञानम्।
4. जलस्य शिरान्वेषणे वास्तुविज्ञानम्।
5. वृक्षादिरोगचिकित्सायां वास्तुविज्ञानम्।

एतेषां पञ्चबिन्दूनामुपरि मम शोधकार्यं वास्तुशास्त्रेक्तवैज्ञानिकरीत्या आधुनिकरीत्या सह सम्बन्धस्थापेन भविष्यतीति।

वेदाङ्गज्योतिषे ज्योतिषम्

डॉ. श्यामनाथ झा

भारतवर्षे ज्योतिष शास्त्रस्य यावती प्राचीनता लक्षिता भवति तावती प्राचीनता कुत्रापि अन्यदेशेषु नास्ति। कारणं स्पष्टं वेदानां लक्ष्यं कालज्ञानपूर्वकं यज्ञ यागयोः विधानं तदनुष्ठानमेवास्ति।

'वेदाहि यज्ञार्थमभि प्रवृताः कालानुपूर्वा विहिताश्च यज्ञाः।
तस्मादिदं काल विधानशास्त्रं यो ज्योतिषं वेद स वेद यज्ञान।।' (वेदाङ्गज्योतिष)

एतदर्थ समयशुद्धेः ज्ञानमनिवार्य भवति अस्या अपेक्षायाः पूर्तिः ज्योतिश्शास्त्रेणैव कर्तु शक्यते। अतः ज्योतिषे लोक व्यवहारार्थ त्रुट्यादि प्रलयान्त काल गणना विधिःप्रोक्तः। सनक्षत्राः सूर्यादयो ग्रहाः ये सन्ति तेषां परिचयः तत्प्रभावः तत्स्थितिमिति गत्यादि विषयकं सर्व ज्ञानं तदनुभूतिश्च वैदिक ऋषिभिः यथा कृता तदखिलं मौलिकं महदाश्चर्यकरं च साम्प्रतिके भौतिक ज्ञाने चमत्कृते जगति दरीदृश्यते। ज्योतिष तथ्यानां अन्वेषणेन वेदानां आविर्भावकालः ऐतिहासिकैः निश्चितः कृतः। अत्र लोकमान्यतिलकस्य 'ओरायन' नामकः ग्रन्थः नितान्तः प्रौढः प्रामाणिकश्च मन्यते। ज्योतिषं वेदपुरुषस्य नेत्रम्। नेत्रेण हीनः पुरुषः किमपिकार्य कर्तु न शक्नोति तथैव ज्योतिषज्ञानरहितः पुरुषः वैदिक स्मार्त्तकर्माचरणेऽशक्तो भवतीति सर्वे विद्वांसः स्वीकुर्वन्ति। भारतीयज्योतिषशास्त्रेषु सर्वाधिकः प्राचीनतमः स्वतन्त्रः ग्रन्थः वेदाङ्गज्योतिषमेव जायते। अस्य ग्रन्थस्य पाठद्वयम् उपलभ्यते। प्रथमः आर्चः (ऋग्वेद सम्बद्धः) द्वितीयः याजुषः (यजुर्वेद सम्बद्धः) अनयोः ग्रन्थयोः पाठः समानः किन्तु श्लोक संख्यासु अन्तराणि सन्ति। वेदाङ्गज्योतिषं तु परिमाणे स्वल्पं परन्तु अर्थदृष्ट्या नितान्तं गभीरं

महत्त्वपूर्णञ्चास्ति। आचार्येण सोमाकरेण, महामहोपाध्याय सुधाकर द्विवेदिना च वेदाङ्गज्योतिषस्य रहस्यभेदने बहुप्रयत्नः कृतः सफलश्च जातः। इदं ज्ञातव्यं यत् सोमाकरस्य भाष्यमपूर्णं ज्ञात्वा श्री-सुधाकरद्विवेदीना एका नवीना व्याख्या कृता। तद्व्याख्यायुतं वेदाङ्गज्योतिषमद्यापि लभ्यते। भारतीय पाश्चात्यज्योतिर्विद्वद्भिः अस्य ग्रन्थस्य अत्यधिकाः चर्चा कृताः। ग्रन्थस्यास्य मूलमर्थं ज्ञातुं प्रयत्नमपि कृतम्। वेदाङ्ग-ज्योतिषे पञ्चाङ्ग पद्धतिः स्थूलरूपेण विद्यते। सैव पद्धतिः अद्यत्वे प्रचलितास्ति।

वैदिकसाहित्ये ज्योतिर्विज्ञानम्

डॉ. रमेशचन्द्रशुक्लः संस्कृतकॉलेज, वेरावलः, जूनागढ़, गुजरात-राज्यम्

वेदस्य षडङ्गानि सन्ति। शिक्षा, कल्प, व्याकरणं, निरुक्तं, छन्द, ज्योतिषम् एतेषु ज्योतिषशास्त्रस्य स्थानं चक्षुरूपेण वर्तते।

अतः परं ज्योतिषशास्त्रनिष्ठविज्ञानं व्याख्यायते यथा- सूर्यादिग्रहनक्षत्रतारानिहारिकाणाञ्च बोधकं शास्त्रं ज्योतिषशास्त्रम्। भारतीयज्योतिषे तु ज्योतिषां सूर्यादिग्रहाणां बोधकं शास्त्रम् इति व्युत्पत्तिः कृता वर्तते। इदं कालविज्ञापकं शास्त्रम्। मुहूर्तं शोधयित्वा क्रियमाणा यज्ञादिक्रियाविशेषाः फलाय कल्पन्ते। शास्त्रेऽस्मिन् विविधवैज्ञानिकतथ्यपूर्णविचारः कृतः सन्ति। तेषु श्रीमद्भाष्कराचार्यस्य आकर्षणसिद्धान्तं व्याख्यायते। यथा- आकशात् गुरु वस्तु न पतति ब्रह्मादिलोकवद्ग्रहनक्षत्रादिबिम्बबद्धा। अन्तरिक्षस्थितस्य मृत्पिण्डादेर्भूमौ पतनं गुरुत्वाकर्षणवशात् न भवति। तथा च अधोलिखित आकृष्टिशक्तिश्चमहीति वाक्यस्य भावः व्याख्यायते- किमपि वस्तु पृथिवीतः उपरिप्रक्षेपणे गुरुवस्तु प्रथममायाति। लघुवस्तु तु पश्चादिति। अतः भूमेः गुरुत्वाकर्षणशक्तिः अस्ति। प्रमाणं यथा-

यथोष्णतार्कानलयोश्च शीतता विधौ द्रुतिः के कठिनत्वमशनिं।
मरुच्चलो भूरचलाश्वभावतो यतो विचिाावतवस्तुशक्तयः।।
आकृष्टशक्तिश्च महीतया यत् रवस्यं गुरुस्वाभिमुखं श्वशक्तय।
आकृष्यते तत्पततीव भाति समे समन्तात् क्व पतत्वियं खे।।

एवं श्रीमद्भाष्कराचार्यद्वितीयेन स्वसिद्धान्तशिरोमणौ अस्य गुरुत्वाकर्षणसिद्धान्तशक्तेः सर्व प्रथमं प्रतिपादनं कृतम्। यस्य जन्मसमयः 1036शकः 1114 ईस्वीयवर्षं सिद्धयति। प्रमाणं सिद्धान्तशिरोमणिप्रश्नाध्यायानते यथा-

रसगुणपूर्णमही 1036शमशकनृपसमयेऽभवन्ममोत्पत्तिः।
रसगुण 36वर्षेण यथा सिद्धान्तशिरोमणी रचितः।। श्लोक 58

अनेन प्रमाणेन ग्रन्थकर्त्तारस्य जन्मकालः प्रमाणिकं सिद्धयति। तथैव जन्मस्थलीविषयेऽपि लिखितं वर्तते यत् विचारकस्य जन्म सह्यपर्वतस्य सन्निकटे विज्जडनामाख्यग्रामे यः इदानीं वीजापुरनाम्नाप्रसिद्धः अस्य स्थाने जन्ममभूत। प्रमाणं यथा-

आसीत् सह्यकुलाचलाश्रितपुरे त्रैविद्याविद्व्ज्जनो। इति।।

एवं श्रीभास्कराचार्यस्य संक्षेपेण कृतित्त्वं व्यक्तित्वं परिचयं च आसीत्। इदानी प्रसिद्धगुरुत्वाकर्षणसिद्धान्तस्य द्वितीयविचारकः सर आइजेकन्यूटनः यस्य जन्म 1642 ईस्वीयवर्षे इंग्लैण्डस्य लिङकोलनशर(LINCOLANSHIRE) बूलस्थो पेंनामकग्रामे अभूत् । यदि उभयोः जन्मकालयोः अन्तरं क्रियते चेत् ई.वर्षः 1642-1114 ई.=528 ईस्वीयवर्षपूर्वमेव श्रीभाष्कराचार्यस्य जन्म अभवत्। अतः कालं दृष्ट्वा तु सिद्धान्तशिरोमणिग्रन्थरचनाकालः ईस्वीयवर्षः 1114+36=1150 ईस्वीयवर्षे जातम्। तथैव आइजेक न्यूटनमहोदयस्य जन्मकालः तु 1642 वर्तते। एतैः महोदयैः त्रिंशद्वर्षे गुरुत्वाकर्षणसिद्धान्तस्य अन्वेषणं कृतम्। अतः त्रिंशद्(30)वर्षस्य योगः 1642+30=1672 ईस्वीयवर्षे आकर्षणसिद्धान्तस्य अन्वेषणं कृतम्। अतः कालदृष्ट्या श्रीन्यूटनमहोदयात् द्वाविंशत्यधिकपञ्चशतवर्ष(522) पूर्वमेवश्रीभाष्कराचार्यः आकर्षणसिद्धान्तस्य अन्वेषणं कृतवान्। अतः सर्वसर्वप्रथमं गुरुत्वाकर्षणसिद्धान्तस्य अन्वेषणं श्रीभास्कराचार्यस्य, भारतीय-चिन्तनं वर्तते। श्रीमद्भास्कराचार्य एव गुरुत्वाकर्षणसिद्धान्तस्य प्रथम अन्वेषकः अभवत् इति जना पठन्ति, लिखन्ति, पाठयन्ति, ज्ञास्यन्ति चेत् सत्यमेव समीचीनोत्तमोत्तमं भारतीय गौरवं भवेत् वर्धत च।

कृष्णयजुर्वेदे ज्योतिर्विज्ञानम्

डॉ. सुब्रह्मण्यम कुमार भट्ट

यदिह जगति जनिमतां सर्वतः श्रेयोमार्गप्रदर्शकः वेद एव इत्यत्र कः खलु सचेताः सन्दिग्धे ? उक्तञ्च मनुना-

"पितृदेवमनुष्याणां वेदश्चक्षुः सनातनम्।
अशक्यं चाप्रमेयञ्च वेदशास्त्रमिति स्थितिः।।
चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोकाश्चत्वारश्चाश्रमाः पृथक्।
भूतं भव्यं भविष्यञ्च सर्वं वेदात् प्रसिध्यति।।"

भगवन्तो वेदा एवाऽस्माकं धर्मसर्वस्वमिति ऋषिभिरुद्घोषितम्। नैवास्माकं मानवानाम्, अपितु देवानां पितृणामपि वेद एव सनातनं चक्षुरिति। चतुर्णां वर्णानां, त्रयाणां लोकानां, चतुर्णामाश्रमाणां भूतस्य, भव्यस्य भविष्यतश्च सकलस्य वस्तुजातस्य सिद्धिस्थानं भगवती श्रुतिरेवेत्यत्र नास्ति संज्ञीतिः। वेदशास्त्रं विहाय नैवान्यत् किमपि परं साधनं यत् खलु जन्तून् परमार्थभूतां मोक्षपदवीमुपदिशति। पुनरत्र मनुराह-

"बिभर्ति सर्वभूतानि वेदशास्त्रं सनातनम्।
तस्मादेतत् परं मन्ये यज्जन्तोरस्य साधनम्।।" इति

इयञ्च श्रुतिः दैवीसम्पत्प्रदायकीति इत्थं समुपवर्णिता-

1. अहे बुध्निय मन्त्रं मे गोपाय। यमृषयस्त्रैविदा विदुः।
ऋचः सामानि यजूंषि। सा हि श्रीरमृता सताम्।।

ऋचाः सामानि यजूषीति परिपूर्णा श्रुतिः सताम् अमृता श्रीरिति ऋषयो विदुः। वेदार्थज्ञानं नाम मानवानां परमं कर्तव्यं, प्राधान्यतो ब्राह्मणानाम्। आचार्य शङ्करभगवत्पादैरुक्तम्-

2. "वेदो नित्यमधीयतां तदुदितं कर्म स्वनुष्ठीयतामिति" सर्वेषामेव वेदवेदाङ्गोपनिषद्दर्शनादीना मयमेवैकः सिद्धान्तः यत्- सर्वैरेव नरजातैर्यज्ञतपोदानव्रतादिनियमैः ईश्वरः उपासनीय इति। परञ्च काले कृतमेव यत्किञ्चिदपि कर्म साफल्यमेति, अकाले कृतञ्च कर्म वैफल्यं परिणमतीति कर्मानुष्ठाने कालस्य प्राधान्यमादिबीजमिति सिद्धम्।

किं तत् कालविधायकं शास्त्रमिति चेत्- उक्तञ्च नारदेन-

"वेदस्य निर्मलं चक्षुर्ज्योतिःशास्त्रमकल्मषम्।
विनैतदखिलं कर्म श्रौतं स्मार्तं न सिध्यति।।" इति।

वेदोक्तानां लौकिकानाञ्च कर्मणामनुष्ठानं दिग्देशकालज्ञानाधीनम्। तच्च ज्योतिःशास्त्रादेव सिध्यति। यथा- "ब्रह्मयज्ञेन यक्ष्यमाणः प्राच्यां दिशि" इति दिङ्नियमः। "प्राचीनप्रवणे वैश्वदेवेन यजेत" इति देशनियमः। "अपराह्णे पिण्डपितृयज्ञेन चरन्ती"ति।

मानवजीवने अति आवश्यकं-वास्तुविज्ञानम्

डॉ. रमेशचन्द्रः मुरारी द्वारका, गुजरात

विकासार्थ, सम्यग्रूपेण साफल्यम् प्राप्त्यर्थ मानवजीवने अत्यावश्यकं वास्तुशास्त्रम्। यद्यपि संसारस्य षष्ठीप्रतिशत जनाः मन्यन्ते वास्तुशास्त्रम् परन्तु निवासभूमि, शयनस्थानस्य नितरां शुद्धिमावश्यकम्। वास्तुविज्ञानस्य महत्त्वं नैकयुगादेव स तु अति प्राचीनं, प्राकृतिकं, वैज्ञानिकं धर्मसंस्कृतिसाहित्यभाषेतिहासकलानामाधारभूतम्, वैदिक वाङ्मये वास्तु निर्देशा दृश्यन्तेव। शिल्पशास्त्रादि ग्रन्थेषु व्यवस्थित वैज्ञानिकविविधरूपेण वर्णिताया वास्तुशास्त्रीयपरम्पराया झटिति विकासोऽति आवश्यकम्, अतः भवननिर्माण पूर्व भू चयनादि विशेष रूपेण विचारणीयम्, वास्तुविज्ञाने वास्तु पुरुषस्य व्यापकत्वं तस्य पूजा अर्चना विविध पदानां वर्णनं प्राचीनयुगात् अद्यावधि पर्यन्तं नूतनातिनूतनं दृश्यतेव। अतो नूतनतायामनुकरणं जीवने महत्त्वपूर्णमस्ति।

वैदिकसाहित्ये गणितम्

ओंकार नारायण दूबे सं.सं.विश्वविद्यालयः, वाराणसी

अखिलविश्वस्यावधारणा इयमस्ति यत् गणितीयज्ञानस्योद्भवः विशेषतया भारते एव अभवत्। भारतीयानां गणितीयं ज्ञानं वैदिककालादेव दृश्यते। अंकगणितं, ज्यामिति, त्रिकोणमितिनाञ्च क्षेत्रे बहवः आविष्काराः प्राचीनैः भारतीयैः कृताः। उक्तं च- यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा। तद्वद्वेदाङ्गशास्त्राणां गणितं मूर्धनि स्थितम्।। वेदाङ्गज्योतिष- 4 संहिताः, कल्पसूत्राणि वेदांगानि च वैदिक युगस्य गणितीयज्ञानस्य विषये पर्याप्तं बोधयन्ति। यजुर्वेदस्य शुल्वसूत्रेषु गणनाः अंकगणितीय प्रक्रियाः, सरलरेखीयाकृतयः, रेखागणितीय प्रमेयाः, बीजगणितीय प्रमेयाश्च वैदिक साहित्यस्य गणितज्ञानस्यागाधः संग्रहःवर्तते। अत्यन्तैः अमूल्यैः शुल्वसूत्रैः ज्ञायते यत् आपस्तम्बः, कात्यायनः, मानवः प्रभृतयः तस्य कालस्य प्रमुखाः गणितज्ञाः आसन्। वैदिककालिकानां गणितज्ञानं विश्वाय सर्वोत्तमं योगदानं गणनायै संख्यानां आविष्कारः, दशमानपद्धतिश्च वर्तते। तैः दश् संख्यां गणना प्रणाल्याः आधारीकृत्य दशमानपद्धत्याः आविष्कारः कृतः। दशमान पद्धत्यां सर्वोत्कृष्टं महत्त्वं शून्यस्य वर्तते। विज्ञानस्य विशेषतः संगणक क्षेत्रे या प्रगतिः दृश्यते तस्याः कल्पना अपि शून्येन बिना नितान्तं असम्भवं वर्तते।

प्रो. श्लेगलानुसारेण भारतीयैः कृते आविष्कारेषु वर्णमालानन्तरं 'दाशमिक स्थानमान पद्धत्याः आविष्कारः सर्वाधिकं महत्त्वपूर्णं वर्तते। दाशमिक स्थानमान पद्धति शून्यस्य प्रयोगे प्रयोगे एव आधारितास्ति। प्रो. जी.वी. हेल्सहेड महोदयेन उक्तं यत् शून्यस्याविष्कारस्य महत्त्वस्य यावदेव प्रशंसनं क्रियते तावदेव न्यूनं वर्तते। शून्यस्य आविष्कर्तारः भारतीयाः शून्यं स्थानं, संज्ञा, प्रकृतिः संकेतश्च प्रदाय एतस्मै उपयोगी शक्तिमपि दत्तवन्तः। यद्यपि इदं प्रामाणिकतया च वक्तुं पार्यते यत् शून्यस्य आविष्कारः कदाऽभवत् तथापि एतस्य सर्वप्रथमः प्रयोगः पिंगलस्य छन्दसूत्रेषु प्राप्यते। एतस्य रचनाकालः अनुमानतः 200 ई.पू. मन्यते। शून्यस्यविष्कर्ता वैदिक ऋषिः, गृत्समदः आसीत्। इत्थं प्रकारेण शून्यं, दशमानपद्धतिः, वर्णाक प्रणाली, गणना, वर्गमूलं, घनमूलं, त्रैराशिकं, क्रमचयं, संयोजनम्, अपरिमित समीकरणं, बौध ायन सूत्राणि, 'पाई' मान वृत्तस्य वर्गीकरणं, त्रिकोणमितिः प्रभृतानि शताधिकानि उदाहरणानि वेदेषु उत वेदाधारिकृत्येषु ग्रन्थेषु प्राप्यन्ते येन स्पष्टः भवति यत् विश्वे यत्किमपि गणितशास्त्रे विकासः जातः तत् सर्वमपि भारतीय वैदिकगणिताधारेणैव सम्भाव्यते। भारतीयाः ऋषयः प्रणम्याः सर्वदा वन्दनीयाः च सन्ति अखिलविश्वस्य कृते येभिः एतादृशस्य अद्भुतज्ञानस्य आविष्काराः कृताः।

वेदाङ्गज्योतिषोक्तानां विदेशभ्रमणप्रवासयोगानां समीक्षा

डॉ. श्यामदेवमिश्रः रा.सं.सं.(मानितविश्वविद्यालयः) लखनऊपरिसरः

सुखैकेप्सूनां दुःखजिहासूनां मानवानां संसारार्णवदुद्धारजीवननौकायाः प्लवचक्षुर्भूतमिदं त्रिस्कन्धात्मकं वेदाङ्गज्योतिषं प्रचक्षते। वेदाङ्गस्यास्य फलिताख्यं स्कन्धं इह लोके मानवजीवने प्रतिपदं परमोपयोगित्वं भजते। मानवजीवने देशाटनं, विदेशगमनं न केवलं व्यक्तिविशेषस्य व्यावहारिकगुणान् विकचति प्रत्युत् विकचद्व्यावहारिकगुणैस्समग्रव्यक्तित्वमुत्फुल्लयति। वैदिककालादेव विदेशगमनस्य परम्परा आसीत्। ऋग्वेदे कौत्साङ्गिरसऋषेर्मन्त्रस्य अयमर्थोऽस्ति - "अस्माकं कल्याणाय समुद्रपारमस्मान् नौकायां वहतु" (पुस्तकं Sealoving Ancient Indians) जावा-बाली-सुमात्रा बोर्नियो-फिलीपीन्स-कम्बोडिया-चम्पा-स्यामप्रभृतिदेशेषु 1400 ई. ख्रिस्ताब्दं यावत् भारतीयसाम्राज्यमासीत् यत् भारतीयानां समृद्धदेशाटनपरम्परां प्रकटयति।

<u>विदेशभ्रमणस्य कारणानि-</u> प्राचीनकाले महनीयस्तरे साम्राज्यवृद्ध्यर्थ धर्मसंस्कृतिंसभ्यतानां प्रचारार्थम्, तथा लघुस्तरे वैयक्तिकस्तरे वा व्यापारार्थ भ्रमणार्थमासीत्, किन्तु वर्तमानकाले (1) शिक्षा, (2) आजीविका, (3) व्यापारः, (4) तीर्थाटनम्, (5) देशाटनम्, (6) चिकित्साप्रभृतिकारणानि प्रमुखतया गोचरीक्रियन्ते।

<u>विदेशभ्रमणाय, विदेशप्रवासाय च ज्योतिषीयहेतवः</u> जन्मकुण्डल्यां केचन भावाः विदेशभ्रमणे विदेशप्रवासे प्रमुखतया विचारणीयाः भवन्ति। ते भावाः क्रमशः प्रथमः, तृतीयः चतुर्थः, सप्तमः, अष्टमः, नवमः, द्वादशश्च सन्ति। सत्याचार्यमते- "लग्नेशः सप्तमे स्थित्वा अथवा सप्तमेशः लग्ने स्थित्वा शुभग्रहैर्युक्तो भवति तर्हि मनुष्यः विदेशे निवसति।" भावविशेषात् विशेषभ्रमणाय कारणविशेषः निर्धारितोऽस्ति। तृतीयनवभावयोः सम्बन्धात् तीर्थाटनाय विदेशभ्रमणं ज्योतिषग्रन्थेषूपलभ्यते। नवमद्वादशभावयोः सम्बन्धात् विशेषतया विदेशप्रवासः

ज्योतिषग्रन्थेषु निर्दिष्टोऽस्ति। सूर्यादिग्रहैरपि विदेशभ्रमणप्रवासयोगाः निष्पद्यन्ते। बृहत्पाराशरमते- "चन्द्रात् त्रिकस्थः शुक्रः विदेशभ्रमणयोगञ्जनयति।" शोधप्रबन्धेऽस्मिन् विदेशभ्रमणप्रवासकारणानि सम्यक्तया विचार्यन्ते।

विदेशभ्रमणप्रवासकालनिर्णयः अयमेको महत्त्वपूर्णः बिन्दुर्वर्तते यत् कस्य ग्रहस्य दशाऽन्तर्दशायाम् अयं योगः फलीभूतो भविष्यति? प्रायः यद्भावजनितयोगोऽयमुत्पद्यते तत्भावेशस्य दशाऽन्तर्दशायाम् गोचरवशात् योगोऽयं परिणमते। एतेषां विषये चर्चा शोधपत्रे सम्यक्तया क्रियते।

ज्योतिषशास्त्रे अर्गलायोगविवेचना

अनिल प्रतिहस्तः रा.सं.सं.(मानितविश्वविद्यालयः) लखनऊपरिसरः

प्रतियोगितावादिनि युगेऽस्मिन् प्रतिक्षणसंघर्षशीलानाम् आबालयुवकवृद्धानां कृते समुचितमार्गान्वेषणाय समुचितसमयप्रतीक्षायै विविधोपायैः शान्तिप्रदानाय ज्योतिर्विज्ञानाख्यं श्रुतेः नेत्ररूपाङ्गं प्रधानं स्थानं भजते। एतस्य ज्योतिर्विज्ञानस्य जातकस्कन्धे पाराशर-जैमिनी-वराहमिहिरादिभिः मनीषिभिः एतादृशाः नानाविधाः असंख्यसंख्यात्मकाः शुभाशुभफलप्रदाः योगाः प्रदिष्टाः यैः प्राणिनः निश्चयेन प्रभाविताः भवन्ति। तेषु शुभाशुभयोगेषु अर्गलाख्यो योगः क्वचित् बहुप्रचारितः क्वचित् अविचारणीयः क्वचिच्च शुभाशुभत्वरूपविवादेन विवादितः वर्तते। अर्गलायोगविषये पाराशर-जैमिनीत्यनयोः विचारः प्रसिद्धः वर्तते। द्वयोः प्रायः साम्यं विद्यते-अस्मिन् विषये जैमिनिना संक्षेपेण सूत्रविधिना पाराशरेण च किञ्चित् विस्तरेण निगदितम् तत्र अर्गला योगः ग्रहस्य भवति भावस्य वा? अस्मिन् विषये जैमिनीमते स्पष्टीकरणं नास्ति किन्तु पाराशरमते "अर्गला उभयोः ग्रहभावयोः भवति" इति स्पष्टीकृतम्। अर्गला योगः ग्रहस्यभावस्य च पूर्णफलं रक्षति, योगभङ्गे सति तत्फलं जातकाय न लभते। कस्मादपि ग्रहात् भावात् वा चतुर्थ-द्वितीय-एकादश-पञ्चमस्थानेषु ग्रहेसति अर्गला योगः भवति, पुनश्च तस्मादेव ग्रहात् भावात् वा क्रमशः दशम् द्वादश-तृतीय-नवमस्थानेषु ग्रहे सति अर्गलाभङ्गो जायते। ग्रहात् भावात् वा तृतीयस्थाने त्रिषु अधिकेषु वा पापग्रहेषु सत्सु निर्बाध अर्गला भवति अर्थात् तस्याः भङ्गो न जायते। अर्गलायोगजनितफलदानकालनिर्णेतुं योगकारक ग्रहाणां संख्यायाः बलाबलयोश्च निदर्शनम् आवश्यकं भवति, तत्संज्ञाय जातकानां अर्गलायोगफदानकालः निर्णेतव्यः। एवं प्रकारेण शोधप्रबन्धेऽस्मिन् सामान्यजनानां कुण्डलीनाम् अध्ययनपूर्वकम् अर्गलायेगजनितफलज्ञानस्य प्रयासो विहितः।

वैदिकसाहित्ये वास्तुविज्ञानम्

देशबन्धुः श्री ला.ब.शा.रा.सं.विद्यापीठम्, नवदेहली

वेदेषु भौतिककल्याणाय, लौकिक सुखसमृद्धये च विविधविज्ञानानां चर्चा विशदतया चर्चिता। तेषु विज्ञानेषु अन्यतमं वास्तुविज्ञानम्। विज्ञानेऽस्मिन् भौतिकाध्यात्मिक कल्याणाय च भवननिर्माणसिद्धान्तानां विवेचनं विस्तरेण प्राप्यते। एतस्य विज्ञानस्य मूलं वैदिकयज्ञवेदी एव। भारतीयवास्तुशास्त्रस्यैतद् वैशिष्ट्यं यत् अस्य शास्त्रस्य प्रादुर्भावः वेदेभ्यः जातः। अथर्ववेदस्योपवेदे स्थापत्यवेदे वास्तुशास्त्रीयसिद्धान्तानां चिन्तनं स्वातन्त्र्येण प्राप्यते। ऋग्वेदे एव वास्तुदेवस्य वास्तोष्पतेः स्तुतिपरककाश्चन् मन्त्राः प्राप्यन्ते।

एतेषु 'वास्तोष्पते प्रति' इत्यादि मन्त्रेषु वास्तुदेवाय वास्तोष्पतये गृहपुत्रादिसमस्तभौतिकपदार्थानां प्राप्तये प्रार्थना कृता। वेदेषु प्रामुख्येन यज्ञवेदीयवास्तोः निदर्शनं प्राप्यते। ऋग्वेदे गृहशब्दस्य प्रायोगाः विभिन्नेषु मन्त्रेषु दृश्यते। यथा ऋग्वेदस्य मन्त्रेषु गृह शब्दस्य स्थाने वास्तु-शरण-शर्म-क्षम-वरुथ्य-सदनादिपदानां प्रयोगः वर्तते। यजुर्वेदे वास्तुशब्दस्य प्रयोगः यज्ञदृष्टया एव कृतः। तत्र यूपनिर्माणविषयकविवेचनं प्राप्यते। अथर्ववेदः वेदेष्वपि वास्तुविज्ञानस्य मूलोद्गमस्थानम्। तत्र शालासूक्तेषु भवननिमार्णसिद्धान्तानां चर्चा विस्तरेण चर्चिता।

एवमेव सूत्रसाहित्ये श्रौत-शुल्व-गृह्यसूत्रेषु वास्तुशब्दस्य प्रयोगः समुपलभ्यते। यज्ञवेदीनिर्माणे शुल्वसूत्रीयग्रन्थानां वैशिष्ट्यम्। गृह्यसूत्रेषु भूमिचयनं, भूशोधनं, पूजनादिनां वर्णनं प्रतिपाद्यते। शांखायन, पारस्कर, आश्वालयनगृह्यसूत्रादिषु एतद् वर्णनं समुपलभ्यते।

वस्तुतः अस्माकं सृष्टिरपि स्थापत्यस्याद्भुतम् निदर्शनम्। ऋग्वेदस्य हिरण्यगर्भसूक्ते कसंज्ञकप्रजापतिना अन्तरिक्षद्यावापृथिविनां निर्माणविषयकीचर्चा कृता। एवं प्रकारेण चतुर्षु वेदेष्वेव वास्तुविज्ञानविषयकवर्णनं प्राप्यते। एतेष्वपि अथर्ववेदस्योपवेदे स्थापत्यवेदे स्थापत्यशास्त्रस्य चर्चा विशदतया उपलभ्यते। यतोहि वास्तुशास्त्रस्य मूलं तत्रैव निहितमस्ति।

ASTROAYURVEDA: SIGNIFICANCE AND APPLICATION

Dr. Kamayani Shukla, M.D. (Ayu), final year scholar, Department of Stree roga & Prasuti tantra, I.P.G.T. & A., Gujarat Ayurveda University, Jamnagar
Ashok Kumar Shukla, Astrologer, Ph.D. Medical Astrology, Hardoi,
Dr. Dudhanshu Upadhyaya Ayurvedic Practitioner, Pratapgarh
Dr. Kaumadi Karunagoda Lect. Deptt. of Ayurveda] Uni. of Colombo, Srilanka

Philosophy of life came in existence along with the origin of universe. Actually, all the philosophy gets originated as the things originate. Human is given some very special abilities by God and thus, he started utilizing his brain to search out the facts and to prove the philosophy on the basis of experiments.

All the planets have their impact on the body in health and disease. Thus, Astroayurveda can be develomed as an integral part of therapeutic sciences especially Ayurveda in twenty first century. This paper defines the sigificance of Astroayurveda in present era and also a glimpse of the approach how both the sciences are interrelated.

THE STUDY ON ARITHMETIC OF NUMBERS

Dr. Nidhi Handa and Padma. K.G.M.Haridwar

The arithmetic of numbers is one of the significant contributions of India to the development of modern era. Mathematics is the foundation all sciences

In this Paper एकाधिकेन पूर्वेण व निखिलं नवतश्चरमं दशतः are discussed.

Mahavir was a great Digambara Jaina mathematician who flourished in middle century A.D. in south India had contributed in number rules. Buddha had knowledge of mathematics. Astrology was included in mathematics. Later on Astrology became a different subject. Geometry is available in Kalpasutra and Sulbsutra. Further Algebra was emerged out as study of unknown numbers (alphabet with unknown values.) This separation was firstly contributed by Brahmgupta.

THE CONCEPT OF ECLIPSE IN VEDIC ASTRONOMY

Gargi Chandrashekahar

The Vedas, the revealed texts breathed out by Supreme Lord at the begining of cosmic cycle are repository of every branch of knowledge. Science pervades the entire world with its branches spreading far and wide. However, hidden by the sands of time its roots could be traced to the ancient Vedic India.

The Vedas should be studied systematically as per Vedic ordinance means alongwith auxiliary sciences (Vedanges), subordinate Vedas (Vedopaveda) and philosophical systems (Darsanas). Jyotisa, one among the six Vedangas is considered to be the syes of Vesapurusa (ज्योतिषामयनं चक्षुः) as with out its knowledge the important factors such as the time period of sacrifice or rituals, measurement and placement of alter, etc. can not be determind, Jyotisa literarily means the science dealing with the luminaries such as stars etc. by which the function or the motion of sun, moon, etc. is known. A big number of Vedic hymns deal with the subject of Astronomy and Astrology. their soild and authentic descripition is a crux to solve the problems arising in the modern age in the field of space science. An eclipse, one of the nutshell into which which research is still carried on by modern scientists, acquires a complete and unique conceptual description in Regveda. Great seer Atri is the foremost ancient scholar to discover the secret of eclipse for the mankind. The present article is nothing but an humble effort to open the door of new horizon for the union of Vedic astronomy and modern space science.

THE ROLE OF VEDIC LITERATURE IN THE DEVELOPMENT OF MATHEMATICS

D.P. Kularia Associate Professor, Dept of Skt, MDU, Rohtak

The development of geometry in the Vedic era is mainly based upon the religious rituals. The Yajna (sacrifice) attained paramount importance in the Vedis times and for its performance the altars of various shapes and sizes were required and, hence, the geometry came into vogue. There is no explicit reference in the RV about the different altars and their dimensions, however, some valuable references are scattered there which indicate the state of development of geometry at that time. As far as the Yajurveda is concerned it can be described as the launching pad for the development of rituals. It has references of various fire altars of the shape of different geometrical figures. The priestly class codified the detailed procedures of the rituals and weaved a warp and woof in the form of Srauasutras upon which the edifice of ritual practices was built. The sulbasutras, being the inseparable part of Srautasutras, are the manuals that deal with the methods of measurement and construction of various types of fir altars in the shape of triangle, square, rectangle, trapezium, parallelogram, rhombus, circle etc. Thus, the Vedic literature played a pioneer role in the development of mathematics in India.

THE CONCEPT OF SERIES IN ANCIENT INDIAN MATHEMATICS

Bhagwati Prasad Jaypee Institute of Information Technology University,

In this paper an overview of the concept of series specially arithmatic and geometric series as found in the ancient indian literature is presented.

धर्म

संस्कृति



धार्मिक मत-मतान्तरों पर वैदिक प्रभाव

डॉ. अमित कुमार चौहान अंशकालिक प्रवक्ता(धर्म, दर्शन एवं संस्कृति) श्रद्धानन्द वैदिक शोध संस्थान, गुरुकुलकांगड़ी विश्वविद्यालय

धार्मिक, ऐतिहासिक और पुरातात्त्विक साक्ष्यों द्वारा यह निर्विवाद तथ्य स्थापित किया जा चुका है कि वेद, मानव मनीषा को प्राप्त होने वाली प्रथम ज्ञान निधि है। उन्नीसवीं सदी के महान् वेदवेत्ता स्वामी दयानन्द सरस्वती ने सर्वप्रथम महर्षि मनु के **सर्वज्ञानमयो हि सः वेदोऽखिलोधर्ममूलम्** सूत्रों को सिद्ध करते हुए निर्णय दिया कि वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। उनका यह कथन आज ज्ञान की लगभग समस्त विधाओं के सज्जन पुरुषों में सर्वमान्यता प्राप्त है।

परन्तु ज्ञान की धार्मिक विधा में धार्मिक सम्प्रदाय अपनी स्वतन्त्र उत्पत्ति की हठ लगाए हैं जबकि उनके दार्शनिक, सामाजिक, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, आचार, आहार विहार आदि समस्त जीवन पर वेद का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। इस सब के लिए ये सभी वेद के ऋणी हैं। प्रस्तुत शोधपत्र में धार्मिक सम्प्रदायों की ईश्वर सम्बन्धी अवधारणा किस प्रकार वेदों की ऋणी है यह विवेचित किया जाएगा।

संस्कार

डॉ. रचना शुक्ला, बृहस्पति महिला महाविद्यालय, कानपुर
डॉ. शालिनी तिवारी, बृहस्पति महिला महाविद्यालय, कानपुर

विश्व में प्रत्येक वस्तु के दो रूप उपलब्ध होते हैं- प्राकृत अर्थात् स्वाभाविक या नैसर्गिक तथा संस्कृत अर्थात् द्वारा परिशोधित। मानव स्वभाव है कि वह प्राकृत वस्तु को और अधिक उपादेय बनाने के लिए उसे परिशोधित या संस्कृत कर परितोष पाता है।

संस्कार, प्राकृत वस्तु का दोष परिमार्जित कर गुणाधान और हीनांग पूर्ति के लिए जाते हैं। इसे इस प्रकार समझा जा सकता है खान से निकलने वाला स्वर्ण प्राकृत रूप में चमक, आभा रहित होता है उसे अग्नि में तपाकर, उसके दोष को समाप्त कर, उसे कुन्दन बनाया जाता है। कुन्दन बनते ही वह एक दिव्य आभा पाकर दमक उठता है। स्वर्णकार इससे मनमाने अलंकार बना इसमें गुणाधान कर इसकी महत्ता को बढ़ा देता है। अब रही सही कमी मणि या मीना लगाकर पूरी कर दी जाती है। जिसे हीनांग पूर्ति कहा जा सकता है। इन तीनों संस्कारों के हो जाने पर उसका आकर्षक रूप उसकी गरिमा अथवा महत्ता को बढ़ा देता है। ठीक इसी प्रकार मानव भी संस्कृत हो महत्तम बना जाता है। शास्त्रों में कहा गया है जैसे विविध रंगों को तूलिका से सहकार से संयुक्त कर कमनीय चित्र बनाया जाता है। उसी प्रकार सविधि सम्पादित गर्भाधान आदि संस्कारों से संस्कृत मानव शरीर भी ब्रह्म प्राप्ति के योग्य बना जाता है।

भिन्न-भिन्न स्मृतिकारों ने संस्कारों की संख्या अलग-अलग बताई है। गौतम स्मृति में 48 संस्कारों तक का वर्णन है। महर्षि गौतम ने 30 संस्कार महर्षि अंगिरा ने 25 संस्कार तथा भगवान वेदव्यास ने 16 संस्कारों को मान्यता दी है। इन संस्कारों का उल्लेख इस प्रकार मिलता है-
(1) गर्भाधान, (2) पुंसवन, (3) सीमन्तोन्नयन, (4) जातकर्म, (5) नामकरण, (6) निष्क्रमण, (7) अन्नप्राशन, (8) चूडाकर्म, (9) कर्णवेध, (10) यज्ञोपवीत, (11) वेदारम्भ, (12) समावर्तन, (13) विवाह, (14) वानप्रस्थ, (15) सन्यास, (16) अन्त्येष्टि।

ऊपर वर्णित है कि संस्कार दोष परिहार, गुणाधान एवं हीनांग पूर्ति के लिए किये जाते हैं। इन प्रमुख सस्कारों का प्रयोग वैदिककाल से चला आ रहा है। आज भी मनुष्य को संस्कृत बनाने के लिए इन संस्कारों की महती आवश्यकता एवं उपयोगिता है।

वैदिक साहित्य व संस्कार

डॉ. कल्पना श्रीवास्तव रीडर, बी.एड., महिला महाविद्यालय, किदवई नगर, कानपुर।

स्वतन्त्रता के बाद बदलते परिवेश में अंग्रेजी भाषा को अपनाकर हमने निश्चित ही बहुत से क्षेत्रों में उन्नति की है किन्तु संस्कारों के बीज हमारी पीढ़ी के भीतर हैं और उन्हें वृक्ष बनने से कोई नहीं रोक सकता। अतः शिक्षाविदों, साहित्यकारों, धर्मगुरुओं

को शिक्षा में संस्कारों को जोड़कर एक सभ्य, संस्कारवान और सफल समाज की स्थापना के लिये जागरूक होना पड़ेगा, यही वर्तमान समय की माँग है। वेद पुरुषार्थ-चतुष्टय का सर्वांगीण विवेचन करने वाला ग्रन्थ है अर्थात् जो ग्रन्थ इष्ट प्राप्ति और अनिष्ट-निवारण का अलौकिक उपाय बताता है उसे वेद कहते हैं। वेद आर्य धर्म की आधारशिला है। धर्म के मूल तत्त्वों को जानने के एक मात्र साधन वेद हैं।

वेदोऽखिलो धर्ममूलम्। मनु. 2.6, मनु ने वेदों को सारे ज्ञानों का आधार मानकर उन्हें 'सर्वज्ञानमय' कहा है। वेद भारतीय संस्कृति के मूल स्रोत हैं। जिनके मानव से सम्बन्धित करणीय सभी संस्कारों का संकेत कहीं विस्तृत एवं कहीं अल्प प्राप्त होता है इन्हीं का इस पत्र में वर्णन किया जायेगा। वेद सोलह संस्कार निम्नवत् हैं-

1. **गर्भाधान**- गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चौलकर्म या चूड़ाकर्म।
2. **अनुव्रत**- कर्णवेध, उपनयन, व्रतादेश, वेदारम्भ, केशान्त, समावर्तन, विवाह, अग्नि परिग्रह।
3. **धर्मशुद्धि**- शरीर शुद्धि, द्रव्य शुद्धि, अद्यः शुद्धि, एनः शुद्धि, भाव शुद्धि।

गीता पर वेदों का प्रभाव

शिंदे नरेन्द्र धोंडीराम लातूर (महाराष्ट्र)

श्रीमद्भगवद्गीता की महिमा अगाध और असीम है। यह प्रस्थान त्रय में मानी जाती है। मनुष्यमात्र के उद्धार के लिए तीन राजमार्ग हैं, जो प्रस्थानत्रय नाम से जाने जाते हैं। जिसमें उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र तथा भगवद्गीता इन तीन ग्रन्थों को स्वीकारा है। उपनिषद् वैदिक प्रस्थान है तो ब्रह्मसूत्र दार्शनिक प्रस्थान है। तथा स्मार्त प्रस्थान भगवद्गीता है। उपनिषदों में मन्त्र हैं। ब्रह्मसूत्र में सूत्र हैं। तथा भगवद्गीता में श्लोक हैं। किन्तु भगवद्गीता की महिमा के कारण इसके श्लोकों को मन्त्रों के सदृश पूजा जाता है। भगवान् श्रीकृष्ण वेदों के विद्वान् थे तथा श्रीकृष्ण जी का यह उपदेश श्लोकबद्ध करने वाले व्यास जी तो वेदव्यास नाम से जाने जाते थे जो स्वयं वेदज्ञ थे। अतः इनके वाणी में, लेखनी पर वेदों का प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़त है। महर्षि दयानन्द के अनुसार "वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है" वेदों में सभी सत्य विद्याओं का वर्णन है यह वर्णन वैदिक भाषा में है। इसी लिए भगवान् श्रीकृष्ण ने वेदों की विद्या लौकिकभाषा संस्कृत में गीता के रूप में अर्जुन को माध्यम बनाकर मानवमात्र को प्रदान की है।

उपनिषदों का भी प्रभाव गीता पर पडा है। इसलिए कहा भी जाता है कि-

'सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः। पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्।।

वेदों और उपनिषदों का ज्ञान गीता के प्रत्येक श्लोक में विद्यमान है। इसीलिए गीता का महत्त्व सभी के दृष्टि में बढ़ा है। भगवद्गीता अपने वैदिक सिद्धान्तों के कारण बहुत ही अलौकिक एवं विचित्र ग्रन्थ साबित हुआ है।

वैदिक साहित्य की दृष्टि से धर्मशास्त्र का अध्ययन

नेहा खरे (शोधार्थी)

वेद में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पुरुषार्थचतुष्टय का प्रमुख स्थान है। जिसमें सर्वप्रथम धर्म की महत्ता का विवेचन किया गया है। वेदों में जिन कर्मो का विधान किया है, वे धर्म है। श्रीमद्भगवद्गीता में भी श्री कृष्ण ने अर्जुन को कर्म करते हुए अपने धर्म का निर्वहन करने का उपदेश दिया है कि मनुष्य के लिए धर्म युद्ध से बढ़कर अन्य कोई कल्याणकारक कर्तव्य नहीं है अर्थात् कल्याणकारक कर्तव्य ही धर्म है और धर्म-युक्त कर्म ही मनुष्य के लिए कर्तव्य हैं।

संसार में जितने भी धर्म हैं उनका अपना महत्त्व और स्वत्त्व तो है ही, सम्पूर्ण धार्मिक व्यवस्था, धर्म और धर्मग्रन्थ वेदों के द्वारा ही निकले हैं। धर्म का स्वरूप स्पष्ट करते हुए मनु ने कहा है-

विद्वद्भिः सेवितः सद्भिर्नित्यमद्वेषरागिभिः।

हृदयेनाभ्यनुज्ञातो यो धर्मस्तन्निबोधत।। मनु. 2.1

अर्थात् विद्वानों के द्वारा हृदयंगम राग-द्वेष से रहित विषयको धर्म कहा गया है इसमें धर्मलक्षण के तत्त्व समाविष्ट हैं। मानव और जीवन को नियमित करते वाले सिद्धान्त धर्म की व्याख्या के विषय बन जाते हैं, मनुष्य समाज का सदस्य है, इसी सदस्यता के कारण उसके ऊपर अनेक उत्तरदायित्त्व आ जाते हैं, इन्हीं उत्तरदायित्वों को सम्यक् रूप से निर्वहन की योग्यता प्राप्त करना तथा उसको इसके साधनों से अवगत करना धर्म का सर्वांगीण स्वरूप कहा जायेगा।

वैदिक साहित्य में धर्म का सर्वाधिक महत्त्व है। ये हिन्दू धर्म के मूल स्रोत हैं। वास्तव में वेद समस्त धर्मों के श्रेष्ठ तत्त्वों से सम्मिलित हैं इसलिए मनु ने इन्हें धर्म मात्र का मूल स्रोत कहा है। धर्म के जानने वालों के लिए वेद परम प्रमाण है- 'धर्म जिज्ञासा मानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः।। मनु. 2.13।।

"संस्कार" - व्यक्तित्व निर्माण का आधार

डॉ. मनीषा पाण्डेय प्रवक्ता, संस्कृत विभाग, जवाहर नेहरु मेमोरियल पी.जी. कॉलेज बाराबंकी

संस्कार शब्द भूषणार्थक है और इसका व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ हुआ- परिष्कार, मनोभव अथवा स्वभाव का शोधन। वस्तुतः **व्यक्ति के पूर्व-जन्म एवं वंशानुक्रम से प्राप्त दुर्गुणों को निकाल कर उसमें सद्‌गुण-स्थापन की प्रक्रिया को वैदिक विचारधारा में संस्कार कहा गया है।**

प्रश्न है, कि क्या गुणान्तराधान सम्भव है? इस प्रश्न के सन्दर्भ में विचारकों के दो वर्ग हैं- वंशानुक्रमवादी तथा पर्यावरणवादी। जहाँ वंशानुक्रमवादी विद्वानों का कथन है कि प्राणी का अस्तित्व वंशानुक्रम का ही परिणाम है, उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन सम्भव नहीं, वहीं पर्यावरणवादी मनीषियों का मन्तव्य है कि वंशानुगत गुणों को भी इच्छित पर्यावरण द्वारा परिवर्तित किया जा सकता है। आधुनिक समाजशास्त्री इन मान्यताओं के समन्वित अध्ययन पर बल देते हैं, जिससे व्यक्तित्व का चतुर्दिक् विकास हो सके। इस रूप में वैदिक संस्कारों का आयोजन पूर्णतः समाजशास्त्रीय चिन्तन पर आधृत है और इस व्यवस्था का अभिप्राय है कि सर्वथा अभिनव मानव का निर्माण भले ही सम्भव न हो, किन्तु मानव का नव-निर्माण अवश्य किया जा सकता है।

कोई भी तथाकथित आधुनिक व्यक्ति प्राचीन व्यवस्था को वैज्ञानिक युग में अनुपयोगी कह सकता है। इसे हिन्दू मात्र के लिये निर्मित कह कर धर्मगत भेदभाव का सूचक बता सकता है, परन्तु गर्भाधान, जातकर्म, नामकरण, विवाह तथा अन्त्येष्टि जैसे संस्कारगत कृत्यों का अपलाप नहीं कर सकता। उसे न चाहते हुए भी इन्हें स्वीकार करना पड़ेगा, भले ही वह शब्दावली बदल ले, विधा कोई भी अपना ले।

वैदिक साहित्य में संस्कारों का महत्त्व

डॉ. उमा सिंह प्रवक्ता इन्दिरा गांधी रा.स्ना.महा.,उन्नाव

भारतीय संस्कृति अपने मूल में अनेक सामाजिक, आध्यात्मिक, नैतिक विशेषताओं को समाहित किये हुए है और वेद तथा वैदिक साहित्य हमारी सभ्यता तथा संस्कृति के संरक्षक हैं। वैदिक साहित्य में मानव जीवनोपयोगी विविध विद्याओं का विवेचन प्राप्त होता है इन विद्याओं में मानव जीवन को परिष्कृत, अनुशासित, सुखी तथा सम्पन्न बनाने के लिए संस्कारों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्राचीन समय में यह सिद्धान्त प्रचलित था कि 'जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद् द्विज उच्यते।' अतः पूर्ण विकसित होने के लिये मानव का संस्कार व परिमार्जन आवश्यक है।

संस्कार शब्द सम् उपसर्ग पूर्वक कृञ् धातु में घञ् प्रत्यय लगकर सुट् के आगम द्वारा बनता है। हिन्दू संस्कार शब्द उन कुछ विशेष धार्मिक कृत्यों का बोधक है जो कि हिन्दुओं में जन्म से पूर्व से लेकर मृत्यु पर्यन्त किये जाते हैं। स्मृतियों में संस्कार शब्द का प्रयोग केवल उन्हीं धार्मिक कृत्यों के सम्बन्ध में किया गया है जिनका अनुष्ठान व्यक्ति के व्यक्तित्व की शुद्धि के लिये किया जाता था।

वैदिक साहित्य के अन्तर्गत वेद ग्रन्थों मे संस्कारों का विवेचन नहीं हुआ है किन्तु प्रासंगिक रूप से समाविष्ट अनेक सन्दर्भों से संस्कारों का ज्ञान होता है ऋग्वेद में संस्कारों के सामाजिक स्वरूप से सम्बद्ध अनेक निर्देश उपलब्ध होते हैं। सामवेद में संस्कारों का वर्णन नहीं है जबकि यजुर्वेद में मुण्डन तथा अथर्ववेद में संस्कारों से सम्बन्धित सूक्त प्राप्त होते हैं।

मनु के अनुसार गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि तक 16 संस्कार हैं। याज्ञवल्क्य ने केशान्त को छोड़कर मनु द्वारा प्रतिपादित समस्त संस्कारों को अपनाया है, गौतमस्मृति में 40 अंगिरा की सूची में 25 और व्यासस्मृति में 16 संस्कारों का वर्णन है।।

इस प्रकार मतवैभिन्यता होने पर भी संस्कार केवल हिन्दू धर्म के लिए ही नहीं अपितु किसी भी सम्प्रदाय या धर्म के लिए महत्त्वपूर्ण अंग हैं इसकी महत्ता का प्रतिपादन पराशर स्मृति में इस प्रकार किया गया है-

"चित्रकर्मयथानेकैरंगैरुन्मीन्यते शनैः।
ब्राह्मणमपि तद्वत् स्यात् संस्कारैर्विधिपूर्वकम्।।"

वैदिक संस्कृति और उसकी समकालीन प्रासंगिकता

डा. साधना मिश्रा रीडर, हिन्दी-विभाग, दयानन्द गर्ल्स पी.जी. कालेज, कानपुर

वेद ही वास्तव में वह गंगोत्री है जहाँ से भारतीय संस्कृति की गंगा प्रवाहित होती है। भारतीय संस्कृति और वैदिक संस्कृति एक ही वस्तु के दो नाम है। भारतीय संस्कृति, मनुष्य जीवन को आदर्श जीवन बनाने के लिये आवश्यक सभी अत्यधिक गुणों को सीखने और धारण करने पर भारी बल देती है।

वैदिक संस्कृति में वे सारे तत्व पूर्ण मात्रा में विद्यमान हैं जिनका अवलम्बन करने से मनुष्य आदर्श -मनुष्य बन सकता है और अपनी इस धारती को स्वर्ग बना सकता है। वैदिक संस्कृति आत्मा और परमात्मा की सत्ता में जीवित विश्वास रखती है यह विश्वास मनुष्य में आध्यात्मिकता उत्पन्न करता है, और मनुष्यमात्र और प्राणिमात्र को अपना भाई समझने की प्रेरणा करता है। यह विश्वास यह भी सिखाता है कि आनन्द केवल प्रकृति के पीछे दौड़ने से प्राप्त नहीं होता बल्कि प्राकृतिक आनन्दों से भी कहीं अधिक ऊँचा और स्थायी आनन्द है।

वैदिक संस्कृति के आदर्शो ने प्राचीन काल में भी मनुष्य का कल्याण किया है, और आज भी मनुष्य का कल्याण करने की क्षमता है। जब तक भारतवर्ष के लोग इस वैदिक संस्कृति को शुद्ध रूप में क्रियात्मक रूप से अपनाते रहेंगे तब तक भारतवर्ष का उत्कर्ष होता रहेगा वैदिक संस्कृति सार्वभौम संस्कृति है। आज के स्वतन्त्र भारत पर एक महान् उत्तरदायित्व है। इस उत्तरदायित्व को पूरा करने के लिये उसे आध्यात्मिकतावादी वैदिक संस्कृति का अनुगमन करना होगा तभी मनुष्य का कल्याण सम्भव है।

वैदिक साहित्य में षोडश संस्कार

भरतकुमार नगाभाई जादव (रिसर्चफैलो) श्री सोमनाथ सं.यूनि. वेरावल(गुजरात)

वेद मानव जाति का आदि ग्रन्थ हैं। चतुर्विध पुरुषार्थ का आदि शिक्षक हैं। सहस्रों वर्षो से वैदिक शिक्षा ही मनुष्यमात्र का कल्याण कर रही है। वेद मानव जाति का जीवन है शक्तिस्रोत है। प्रकाश-स्तम्भ है। ऋषि मुनियों ने मानव जीवन का गहन अध्ययन करके हमारे पूर्ण अर्थात् मन, शरीर एवं आत्मा के सम्पूर्ण विकास के लिए नियमों की रचना की जिनको हम जीवनचर्या नियम कहते हैं। संस्कार इसी जीवनचर्या का मुख्य अंग है।

'संस्कार' शब्द का अर्थ है, सम्(अच्छी तरह)+ कृ(करना) (1) शरीर आदि का शृंगार (2) नये गुणों का आधान(संस्करणं गुणान्तराधानम्) है। इस दूसरे अर्थानुसर वैदिक समय में जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त किये जानेवाले जो विभिन्न 16 संस्कार हैं- 1. गर्भाधान, 2. पुंसवन, 3. सीमन्तोन्नयन, 4. जातकर्म, 5. नामकरण, 6. निष्क्रमण, 7. अन्नप्राशन, 8. चूडाकर्म, 9. कर्णवेध, 10. विद्यारम्भ, 11. उपनयन, 12. वेदारम्भ, 13. केशान्त, 14. समावर्तन, 15. विवाह, 16. अन्त्येष्टि संस्कार।

यह सर्वमान्य संस्कारों की संख्या 16 है, संस्कारों का सम्बन्ध सम्पूर्ण जीवन से था और है। अतः किसी भी संस्कृति को पूर्ण

रूपसे समझने के लिए संस्कारों का अध्ययन महत्त्वपूर्ण है। समाज विज्ञान की दृष्टि से भी संस्कारों का अध्ययन बड़ा महत्त्व रखता है। हिन्दुओं की सामाजिक व्यवस्था की दृढता के पीछे उनके जीवन के नियमित और अनिवार्य संस्कार हैं।

षोडश संस्कार एवं उनकी वेदमूलकता

स्वाती गुप्ता (शोधच्छात्रा) संस्कृतविभाग, कुमायूँ विश्वविद्यालय, नैनीताल (उत्तराखण्ड)

प्राचीन भारतीय आर्य संस्कृति में संस्कारों का अनुष्ठान एक आवश्यक कृत्य माना गया है। संस्कार शब्द का व्युत्पत्तिपरक अर्थ विभिन्नता से युक्त है। यह शब्द 'सम्' उपसर्ग पूर्वक कृञ् धातु में घञ् प्रत्यय लगाकर सुट् के आगम से निष्पन्न होता है। संस्कृति विभिन्न कोषों में इसके भिन्न-भिन्न अर्थ दये गये हैं। विभिन्न दर्शनों तथा स्मृति ग्रन्थों में भी संस्कार शब्द की भिन्न-भिन्न परिभाषाएं दी गयी हैं। तन्त्रवार्तिक में संस्कारों को ऐसी रीतियाँ बताया गया है जो योग्यता प्रदान करती है। योग्यता दो प्रकार की होती है- पापमोचन से उत्पन्न योग्यता तथा नवीन गुणों से उत्पन्न योग्यता। संस्कारों से नवीन गुणों की प्राप्ति होती है।

वास्तव में संस्कार एक विलक्षण योग्यता है जिसकी प्राप्ति हेतु शास्त्रविहित क्रियाओं का आश्रय लेना होता है। यह वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से दोषों को दूर करके गुणों का आधान कराया जाता है। वैदिक संस्कृति में संस्कारों का अतिप्रमुख स्थान है। मानव जीवन को सुन्दर, सुखी एवं उच्च बनाने के लिए संस्कारो का विधान किया गया है। इनकी संख्या के विषय में यद्यपि अभी तक कोई एक मत नहीं हो पाया है तथापि सामान्य रूप से इसकी संख्या सोलह मानी जाती रही है। साधारणतया यह कुछ विशेष धार्मिक कृत्यों के बोधक हैं, जो हिन्दुओं में जन्म से पूर्व से लेकर मृत्यु पर्यन्त किये जाते हैं।

वैदिक साहित्य में कल्पसूत्रों में संस्कारों का स्वरूप, विधि, महत्त्व स्पष्टरूपेण वर्णित है। संस्कारों का मूल तथा स्पष्ट रूप गृह्यसूत्रों में प्राप्त होता है। इन षोडश संस्कारों में कुछ संस्कार प्राग्जन्म संस्कार हैं यथा- गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन। कुछ बाल्यावस्था के यथा- जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म, कर्णवेध। तथा कुछ का सम्बन्ध बालक की शिक्षा से है यथा- विद्यारम्भ, उपनयन, वेदारम्भ, केशान्त, समावर्तन। इनके अतिरिक्त विवाह एवं अंत्येष्टि संस्कार इस प्रकार कुल सोलह संस्कार हैं।

प्रस्तुत शोध पत्र में गृह्यसूत्रों को आधार मानकर ही संस्कारों की वेदमूलकता प्रतिपादित की गयी है।

वैदिक गणेश

डॉ. अनीता मिश्रा प्रवक्ता-समाजशास्त्र विभाग चौ.चरण सिंह पी.जी. कॉलेज हैवरा, इटावा(उ.प्र.)

वेद में अग्नि, मित्र, इन्द्र, वरुण, बृहस्पति आदि अनेक नामों द्वारा प्रभुको स्मरण किया गया है। इन सभी नामों में ब्रह्मा के किसी न किसी गुण का समावेश है परन्तु जिस नाम को बार-बार जपने और अन्त में स्मरण किया जाता है वह नाम है 'ओम्'। 'ओम् क्रतो स्मर' शब्द इसी तथ्य को प्रकट करते हैं। वेदमन्त्रों का उच्चारण ओम् से ही किया जाता है लिपि में आबद्ध ओंकार और हाथी की सूड़ वाले गणेश का आकार दोनों में साम्य है गणेश का शब्दार्थ है 'समूहों का स्वामी'। गण का अर्थ समूह होता है। अतः गणेश इन सभी गणों के स्वामी होने से विद्यारम्भ संस्कार में पूज्य माने गये हैं उन्हें बुद्धि का भण्डार माना जाता है।

गणानां त्वा गणपति हवामहे कविं कबीनापुमश्रवस्तमम् ज्येष्ठराजं ब्रह्माण ब्रह्मणस्पत आ नः श्रृण्वन्यूतिभिः सीदसादनम्।

गणपति को 'ब्रह्मणस्पति' भी पुकारा जाता है। ब्रह्मा ज्ञान का वाचक है और यही ज्ञान पवित्र कने वाला है अर्थात् गणपति भी पावनकारक है। ब्राह्मण चाहे जितना पावन ज्ञान और ऐश्वर्य रखता हो उसने पवित्रताओं की अर्चना की होगी। गीता ने 'नहि ज्ञानेनसदृशं पवित्रीमिह विद्यते' शब्दों द्वारा इसी तथ्य को स्पष्ट किया है।

भौतिक क्षेत्र में समस्त भूतों का सूक्ष्मतम रूप आकाश है। आकाश शंकर है उसकी शक्ति, ध्वनि, उमा है दानों में सर्वप्रथम अक्षररूपी पुत्र पैदा होता है वहओम् है। यही गणेश है गणों का ईश होने के कारण गणेश होता है इसके बिना किसी कार्य का सम्पादन नहीं हो सकता। वही जब आगे बढ़ता है तब कोई कार्य किया जाता है। गणपति का पूजन अभी तक कर्मकाण्ड के आरम्भ में किया

जाता है उदाहरण स्वरूप गणेशोत्सव का प्रवर्तन वर्तमान काल में लोकमान्य बालगंगाधर तिलक द्वारा हुआ। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि समस्त कार्यो के आरम्भ में गणेशपूजन समस्त वाङ्मय तथा विश्व के मूलधाराओं का ही पूजन है। मुद्गालपुराण भी ऐसा ही कहता है। 'ओमिति शब्दों अभूत् स वै गजाकार:।'

वैदिक साहित्य में संस्कार

हेमलता संस्कृतविभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

मानव का सम्पूर्ण जीवन संस्कारों की प्राप्ति में संलग्न होता है। उसके जीवन की प्रारम्भिक प्रक्रिया से अन्त तक की प्रक्रिया संस्कार के द्वारा ही सम्पन्न होती है। संस्कार का तात्पर्य है कि सुसंस्कृत करना, भली-भांति शुद्ध करना तथा परिष्कृत करना अर्थात् संस्कारिक प्रक्रियाओं किंवा कर्मो के द्वारा मुनष्य जीवन को शुद्धता एवं पवित्रता के साथ नियमित रूप से व्यतीत करना। संस्कार मानव जीवन को नियमपूर्वक जीवन व्यतीत करने का निर्देश करने वाले हैं इसलिए उनका मानव जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है। कोई भी मनुष्य यदि इस संसार में नैतिकतापूर्ण, सद्कर्मयुक्त, परोपकार की भावना से परिपूर्ण जीवन व्यतीत करना चाहता है तो उसे जीवन में संस्कारों को अवश्य अपनाना होगा। जिस प्रकार प्रकृति के सम्पूर्ण पदार्थ उसके नियमों में बद्ध है, उसी प्रकार मनुष्य का जीवन भी संस्कारों से निबद्ध है। जो मनुष्य इस संसार में संस्कारिक क्रियाओं को करते हुए उनके अनुकूल जीवन व्यतीत करते हैं अथवा करना चाहते हैं उन्हें संस्कारों को अवश्य अङ्गीकार करना चाहिए क्योंकि संस्कारपूर्ण जीवन जीने से प्रत्येक व्यक्ति धर्म, अर्थ और काम का सम्यक् उपभोग करते हुए त्रिवर्ग को साध लेता है तथा उसका मनुष्य जीवन वास्तव में सफल हो जाता है। महामहोपाध्याय गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी ने अपनी कृति **वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति** में कहा है कि संस्कारों से तीन कार्य सम्पन्न होते हैं- (1) दोषमार्जन, (2) अतिशयाधान, (3) हीनांगपूर्ति। प्रकृति द्वारा पैदा किये गये पदार्थ में यदि कोई दोष हो अर्थात् हमारे उपयोग में आते समय कोई बाधा आती हो उसे दूर करना दोष मार्जन है, उपयोगी बनाने के लिए उसमें कुछ विशेषताएँ उत्पन्न कर देना अतिशयाधान संस्कार है, फिर भी कोई त्रुटि हो तो किसी अन्य पदार्थ का सम्मिश्रण कर उस त्रुटि की पूर्ति कर देना, हीनांगपूर्ति नामक तृतीय संस्कार है।

ऋग्वेद में संस्कार शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है, तथापि उसमें 'संस्कृत' (ऋग्वेद 8/33/9), 'संस्कृतम्' (ऋग्वेद 5/76/2) और 'संस्कृतत्रम्' (ऋग्वेद 6/28/4) आदि पदों का प्रयोग हुआ है, जो किसी न किसी तरह संस्कार से जुड़ा हुआ है। शतपथ ब्राह्मण में 'संस्कुरू' और 'संस्कृतम्' आदि पद उपलब्ध होते हैं। वेदों में 16 प्रकार के संस्कारों को बतलाया गया है यद्यपि इनमें विवाह और पाणिग्रहण को अलग-अलग संस्कार बतलाया गया है, इसलिए इनकी संख्या क्रमानुसार इसमें 17 उपलब्ध होती है। वेदों के अनन्तर बतलाये गये समस्त ग्रन्थों में संस्कारों की संख्या 16 ही बतलायी गयी है। जो इस प्रकार है-

1. गर्भाधान, 2. पुंसवन, 3. सीमन्तोन्नयन, 4. जातकर्म, 5. नामकरण, 6. निष्क्रमण, 7. अन्नप्राशन, 8. चूडाकर्म, 9. कर्णवेध, 10. उपनयन, 11. वेदारम्भ, 12. समावर्तन, 13. विवाह, 14. पाणिग्रहण संस्कार, 15. वानप्रस्थ संस्कार, 16. सन्यास संस्कार, 17. अन्त्येष्टि संस्कार।

उपर्युक्त समस्त संस्कारों के द्वारा ही मनुष्य संस्कारित होता है अर्थात् मनसा, वाचा, कर्मणा शुद्ध और पवित्रात्मा होता है। ये संस्कारिक प्रक्रियाएँ प्रारम्भ हो जाती है। गर्भाधान, पुंसवन तथा सीमन्तोन्नयन आदि संस्कारों से जब भ्रूण रूप में मनुष्य गर्भ में रहता है, तभी से उसके सुरक्षित सुसंस्कृत होने की कामना के लिए संस्कारों का प्रावधान किया गया है।

उपर्युक्त सभी संस्कारों का विस्तृत विवेचन शोध-पत्र पढ़ते समय किया जायेगा।

मानव जीवन में षोडश संस्कारों की उपयोगिता

डॉ. रत्नेश्वर मणि त्रिपाठी प्रवक्ता संस्कृत, चौधरी गया प्रसाद महाविद्यालय, शिवपुर बहराइच

बालक के गर्भ में प्रवेश करने से लेकर जीवन यापन की विविध परिस्थितियों से गुजरते हुए शरीर छोडने तक विविध अवसरों पर संस्कारों का आयोजन करने का हमारे धर्मशास्त्रों में विधान है। संस्कार शब्द से हमारा प्रयोजन मनुष्य के मन बुद्धि, भावना, अहंकार आदि को चमकाने, विकसित करने से है। -**'जन्मना जायते शूद्रः संस्कारात् द्विज उच्यते।'** अर्थात् मनुष्य जन्म से द्विज नहीं होता

द्विज जो वह संस्कार द्वारा बनता है। इस वचन से स्मृत्युक्त उपनयन आदि संस्कार यानी उनके हेतु से होने वाले शास्त्रोक्त कर्म ही विवक्षित है।

पारम्परिक ढंग से 48 संस्कारों में षोडश संस्कारों को ही शास्त्र की मान्यता प्राप्त है। वे इस प्रकार हैं- गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन- ये प्रथम तीन जन्म से पूर्व के संस्कार हैं। जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म, कर्णवेध ये छः संस्कार जन्म के बाद बाल्यावस्था के हैं। विद्यारम्भ, उपनयन, वेदारम्भ, केशान्त, समावर्तन, विवाह, अन्त्येष्टि। इस प्रकार उपरोक्त गर्भाधान से अन्त्येष्टि तक दस आवश्यक संस्कार तो षोडश संस्कारों से लिये गये हैं तथा दो संस्कार जन्मोत्सव एवं विवाहोत्सव जैसे आधुनिकतम संस्कार भी हैं। वैसे आधुनिक समाज में पाश्चात्य विधि से 'बर्थ डे' एवं 'मैरिज एनिवर्सरी' नाम से मनाये जाते हैं। इन्हीं सबको इस शोधपत्र मे विवेचित किया जायेगा।

विवाह संस्कार के विविध आयाम एवं वैदिकीय दृष्टि

डॉ. रामबहादुर शुक्ल वरिष्ठ प्रवक्ता- संस्कृतविभाग, जम्मू विश्वविद्यालय जम्मू

जैमिनि सूत्र(3/1/3 की टीका) में आचार्य प्रवर शबर ने 'संस्कारो नाम स भवति यस्मिन् जाते पदार्थो भवति योग्यः कस्यचिदर्थस्य' रूप में एवं आचार्य कुमारिलभट्ट ने तन्त्रवार्तिक(पृ. 1078) में 'योग्यतां चादधानाः संस्काराः इत्युच्यन्ते तथा वेदान्तसूत्र (1/1/4) के भाष्य में शंकराचार्य ने 'संस्कारो नाम गुणाधानेन वा स्याद्दोषापनयनेन वा' रूप में 'संस्कार' को व्याख्यायित किया है। 'जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद्द्विज उच्यते' जैसे तथ्य के आधार पर भी यह अभिहित कियाजा सकता है कि संस्कारों से संस्कारित होने के अनन्तर ही मनुष्य द्विजत्व की प्राप्ति करता है। इस रूप में संस्कार वह है, जो किसी भी वस्तु या मनुष्य को ऐसा रूप दे देते हैं, जिससे उसमें अधिक योग्यता या दक्षता आ जाती है। विविध स्मृतियों ने संस्कारों की संख्या 16 से लेकर 108 तक स्वीकार की है, परन्तु मुनस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति एवं विष्णु स्मृति में गर्भाधानसे लेकर अन्त्येष्टि तक 16 संस्कारों को ही महत्त्व दिया गया है, जिन्हें लोक में भी मान्यता मिली है। इन्हीं सोलह संस्कारों में विवाह संस्कार, जितना वैदिककाल में प्रासंगिक था, उतना ही आज आधुनिककाल में भी है, परन्तु आज इस संस्कार के आयोजन के मूल तथ्यों को मानव ने विज्ञान के चरमोत्कर्ष के कारण होने वाली चकाचौंध, धनार्जनी प्रवृत्ति, दिखावापन की अभिरूचि, नौकरी के कारण होने वाले समयाभाव के कारण संक्षेप में करता हुआ या छोड़ता हुआ देखा जा सकता है।आज विवाह संस्कार को मनोरंजन या अहंमन्यता का तथ्य समझकर, कोई इसे समुद्र या नदी में अवस्थित नावों पर आयोजित करता है तो कोई वायुयान पर, तो कोई उड़ते हुए हिंडोलों पार तो कोई न्यायालय में कागज के पन्नों पर, तब फिर सप्तपदी प्रदक्षिणा एवं यज्ञवेदी की क्या प्रासंगिकाता रह गयी? कन्यादान को कहाँ न्याय मिला? जो कि विवाह संस्कार के मूल स्तम्भ हैं, क्योंकि विवाह संस्कार के अनन्तर ही व्यक्ति गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता है, पत्नी अर्धांगिनी बनती है, एवं सन्तानोत्पत्ति कर मानव पितृऋण से उऋण होता है। इसी को प्रजापति मनु से सम्बद्ध मानव विवाह कहते हैं।

परन्तु आज के परिप्रेक्ष्य को देखते हुए वरप्रेक्षणा, वाग्दान, कन्यागुणदोषपरीक्षण, ग्रहमेलापक, कन्या या वरवरण, मण्डप, तैल, आयन, वेदिकास्थापन, हरिद्रालेपन, हृदयालम्बन, सप्तपदी एवं समंजन विधि आदि सभी विधाएँ व्यर्थ ही गयीं। बढ़ते हुए तलाक एवं बिखरते हुए परिवारों का दृष्टान्त एवं पारिवारिक संघर्ष सभी में विवाह संस्कार के सविध सम्पन्न न होने का अभिमत समीचीन माना जा सकता है क्योंकि इस संस्कार के सविध सम्पन्न होने एवं विवाह से द्विरागमन तक के मध्यकाल में वर का कन्या के विषय में जानने की उत्सुकता एवं कन्या का वर के विषय में अभिरुचि, दोनों के हृदय में एक अदृश्य एवं स्वाभाविक प्रीति को उत्पन्न कर दिया करती थी, जिससे दाम्पत्यबन्धन का रिश्ता अटूट हो जाया करता था, जो आज विवाह संस्कार के विविध आयामों के कारण विलुप्त होता दिखता है। किसी विद्वान् ने सही ही कहा है कि If we loose our traditions, we loose our present. अतएव मानव को चाहिए कि वह संस्कार को मनोरंजन का साधन न बनाकर, जीवनपथ का साधन बनायें, तब बिखरते हुए परिवारों की समस्या, बढ़ते हुए विवाहविच्छेद(तलाक) की समस्या एवं पति पत्नी के मध्य पनपते हुए असंतोष की समस्या से निजात मिल सकेगी, एवं दाम्पत्य बन्ध न स्थिर हो सकेगा। सम्पूर्ण विवरण शोधपत्र में द्रष्टव्य है।

नामकरण संस्कार की प्रासङ्गिकता एवं वर्तमान परिदृश्य

रेणू शर्मा शोधच्छात्रा, संस्कृतविभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

सोलह संस्कारों में 'नामकरण' संस्कार का जातक के जीवन में विशेष महत्त्व देखने को मिलता है। 'यथा नाम तथा गुणः' सदृश विद्वदुक्तिसे यह प्रतीत होता है कि जातक का नाम उसके गुणों को संसूचित करने वाला होना चाहिए। वैदिक काल में जहाँ जन्मकालीन ग्रह नक्षत्रों की स्थिति, उसकी स्वरूपाकृति तथा दोषों के आधार पर जातक का नामकरण किया जाता था, वह आज वर्तमान परिदृश्य में असमीचीन होता चला जा रहा है, जबकि यह सत्य है कि मरणोपरान्त जातक का नाम ही अवशिष्ट रहता है। इसीलिए वैदिककाल में यह व्यवस्था थी कि जातक का नाम घोष वर्णो से युक्त होना चाहिए, साथ ही पुरुष का नाम युग्म अक्षरों में तथा स्त्रियों का नाम अयुग्म अक्षरों में होना चाहिए, जैसा कि प्राचीन नामों राम, कृष्ण, द्रौपदी, पार्वती आदि से स्पष्ट है किन्तु भरत, अर्जुन, पाणिनी, सीता घोषा आदि नाम उपर्युक्त नियमों के विरुद्ध भी प्राप्त मिलते हैं। बौधायन जहाँ ऋषि, देवता या पूर्वजों के नाम पर नामकरण की बात करते हैं, वहीं विष्णु पुराण का मन्तव्य है कि नाम सुखोच्चारण वाला हो, जबकि मनुस्मृतिकार ब्राह्मण के नाम से मांगल्य, क्षत्रिय के नाम से बल, वैश्य के नाम से वैभव एवं शूद्र के नाम से नीचता का बोध कराने का अभिमत रखा है, जो आज के परिप्रेक्ष्य में अप्रासङ्गिक दिखता है। वहीं वात्स्यायन भी लिखते हैं कन्या के नामकरण के सन्दर्भ में कि

> नक्षत्राख्यां नदी नाम्नीं वृक्षनाम्नी च गर्हिताम्।
> लकाररेफोपान्तां च वरणे परिवर्जयेत्।।

जबकि आचार्य बृहस्पति की मान्यता है कि

> नामाखिलस्य व्यवहारहेतुः शुभावहं कर्मसु भाग्यहेतुः।
> नाम्नैव कीर्तिं लभते मनुष्यस्ततः प्रशस्तं खलु नामकर्म।।

तब फिर आज नायक, नायिका, खिलाड़ी या राजनेता के नाम पर नामकरण करना उचित है? प्रिंस, बिट्टू, चिंटू, छोटू, प्रिंसी आदि नामों का क्या औचित्य है? तब नामकरण संस्कार कहाँ? सम्पूर्ण विवचन शोधपत्र में सन्निहित किये गये हैं।

अथर्ववेद में संस्कार

महेन्द्र कुमार (शोधछात्र) जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

अथर्ववेद वैदिक वाङ्मय का शिरोभूषण है। यह धार्मिक, सांस्कृतिक, दार्शनिक, आध्यात्मिक एवं समाजशास्त्रीय दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

मनुष्य के जीवन में जन्म से मरण तक सोलह संस्कारों का उल्लेख मिलता है यथा- गर्भाधान संस्कार जिसमें बालक के सभी उत्तम गुण-विद्या, रूप तेज, सोम्यता आदि गुणों की प्रार्थना की गई है। पुंसवन संस्कार, इसमें पुत्रप्राप्ति हो। सीमन्तोन्नयन संस्कार- बालक के सकुशल जन्म के लिए प्रार्थना की गई हें जातकर्म संस्कार के अन्तर्गत बालक की दीर्घायु के लिए शुभकामना की गई है। नामकरण संस्कार-बालक के अन्दर वे गुण आवें जिससे जीवन में वह कभी भी पराजित न हो। अन्नप्राशन संस्कार- इस संस्कार में बालक को अन्न खिलाया जाता है। मुण्डन संस्कार- अंथर्ववेद में मुण्डन संस्कार या चूड़ाकर्म संस्कार का उल्लेख मिलता है। उपनयन संस्कार एवं वेदारम्भ संस्कार में शिक्षा की विधि बताई गई है। यज्ञोपवीत संस्कार में बालक को चाहिए कि अपनी इन्द्रियों को संयम मेंरखते हुए प्राणायाम के द्वारा अपने शरीर के सभी दोषों को दूर करे। इसके बाद ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम का वर्णन किया गया है। अतः अथर्ववेद हिन्दु धार्मिक संस्कारों का भण्डार है।

वेदों में विवाह संस्कार

श्रद्धा अग्रवाल (स्नातकोत्तर छात्रा) एन.के.बी.एम.जी. कॉलेज, चन्दौसी

वेद भारतीय संस्कृति के मूल आधार हैं। यदि हम अपने पूर्वज आर्यो की संस्कृति और सभ्यता को जानना चाहते हैं तो उसका एक मात्र साधन भी वेद ही है। वास्तव में वेद ही हिन्दू धर्म, हिन्दू संस्कृति एवं हिन्दू सभ्यता के मूल आधार हैं वेदों में वर्णाश्रम व्यवस्था, षोडश संस्कार विभिन्न अनुष्ठान यज्ञ, दैनिक दैव प्रार्थनाएं, मान्यताएं, परम्परायें आदि सभी कुछ प्रतिष्ठित हैं। सामाजिक दृष्टि से वेदों में वर्णाश्रम धर्म का अति महत्त्व है।ये चारों वर्ण एवं चारों आश्रम प्राचीन भारतीय समाज की छवि को स्पष्टतया प्रस्तुत करते हैं। चारों आश्रमों में सर्व प्रमुख आश्रम गृहस्थ आश्रम कहा गया है। जिसमें प्रवेश हेतु विवाह संस्कार अत्यावश्यक है। यह संस्कार षोडश संस्कारों में भी सर्वप्रमुख संस्कार है। वस्तुतः इसी पर सम्पूर्ण भारतीय समाज की आधार शिला टिकी हुई है। ब्रह्मचर्याश्रम के पश्चात् एवं विवारह संस्कार होने पश्चात् ही गृहस्थाश्रम में प्रवेश होता था। वेदों में विवाह संस्कार कई रूपों में मिलता है प्रस्तुत शोधपत्र में वेदों में विवाह के विभिन्न रूपों का अन्वेषण करने का प्रयास किया गया है।

ईशोपनिषद् और गीता

विपिन कुमार (शोधच्छात्र) संस्कृतविभाग, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

दर्शन और जीवन की जो रूपरेखा उपनिषदों में प्रतिष्ठित हुयी वह भारतीय समाज में सदैव आदर्श मानी गयी है। इस देश के सभी दर्शनों और धर्मों का बौद्धिक आधार उपनिषद् साहित्य है। उपनिषदों की रचना तत्कालीन महर्षियों ने की थी। उन महर्षियों का जीवन तपोमय था। वे ज्ञान की खोज में निष्काम परिश्रम करते थे। भारतीय जीवन को सदा के लिए सात्त्विकता की ओर अग्रसर करने का श्रेय उपनिषद् साहित्य को ही है। 'सात्विकता कीओर अग्रसरता' का गीता के साथ तुलनात्मक अध्ययन शोध-निबन्ध का लक्ष्य होगा।

अवध अचल में संस्कारों का महत्त्व

डॉ. जनार्दन पाण्डेय लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

अवधवासियों के जीवन में धर्म का कितना महत्त्व है, इसका अनुमान उनके जीवन के आदर्शोन्मुख विचारों तथा दैनिक जीवन के सामान्य विश्वासों के आधार पर लगाया जा सकता है। जन्म से मृत्यु तक की सम्पूर्ण यात्रा एक प्रकार के अनूठे बन्धन में आबद्ध है। धर्म-भावना की प्रधानता ने प्रत्येक व्यक्ति को पौराणिक परम्पराओं के पालन की दिशा में गम्भीर रूप से संलग्न कर दियाहै। संस्कार का सम्बन्ध किसी न किसी रूप में धार्मिक चेतना से है। अतः इनकी स्वीकृति धर्म के साथ ही हो गई है। ये संस्कार हमारे सांस्कृतिक ध्वज के आधार है। संस्कृति को जीने के लिए इनका पालन आवश्यक है। संस्कार शब्द की व्युत्पत्ति 'सम्' उपसर्ग पूर्वक 'कृ' धातु में 'घञ्' प्रत्यय के योग से सिद्ध होती है। (सम्+कृ+घञ्)। जिसका शाब्दिक अर्थ सम्यक् रीति से किया गया। कालक्रम से संस्कार शब्द के साथ अनेक विलक्षण अर्थो का योग हो गया है। इसका अभिप्राय धार्मिक क्रियाओं, व्यक्ति के दैहिक, मानसिक और बौद्धिक परिष्कार के लिए किये जाने वाले अनुष्ठानों से है, जिनसे व्यक्ति समाज का पूर्ण विकसित बन सके। प्राचीन आचार्यों ने षोडश संस्कारों का विधान बनाया था, इसमें गर्भाधान, पुत्रजन्म, मुण्डन, यज्ञोपवीत, विवाह आदि प्रमुख हैं। मनुस्मृति के अनुसार मनुष्य जन्म से शूद्र होकर पैदा होता है। परन्तु संस्कारों के उपरान्त ही द्विज कहलाता है- 'जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद्जोच्यते।' अवध प्रदेश में इन संस्कारों के पालन करने की अत्यन्त सबल परम्परा है। ब्राह्मण समाज के अन्तर्गत समस्त संस्कारों के पालन करने की पद्धति अपने यथोचित रूप में विद्यमान है।

सरस्वती-सरिता और संस्कृति

अनिल कुमार पोरवाल सीनियर रिसर्च फेलो, ज्योतिर्विज्ञान विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

भारत में असंख्य नदियाँ हैं जो वास्तव में देश का जीवन रक्त जल का वहन और वितरण करने वाली धमनियाँ हैं। नदियों की मानव सभ्यता और संस्कृति के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका रही हैं। सिन्धु, सरस्वती, गंगा, नर्मदा आदि का भारतीय संस्कृति के विकास में अपरिमित योगदान रहा है। इसी कारण भारतीयों ने नदियों को विश्व की माता स्वीकार किया और उन्हें फलदायिनी समझकर देवी के रूप में प्रतिष्ठित किया है। ऋग्वैदिक काल में भारत की नदियों में सरस्वती एक प्रमुख सरिता थी। इसके क्रोड में आदि भारतीय सभ्यता का विकास हुआ और ऐसी परम्पराएँ जन्मी जो आज तक हमारे सांस्कृतिक जीवन का अभिन्न अंग हैं। यह नदी कालान्तर में विलुप्त हो गयी। कुछ भाग यमुना से मिलकर गंगा यमुना सरस्वती की सम्मिलित ध ारा का रूप ले सकी। यह आज भी हरियाणा राज्य में वर्षावहा नदी के रूप में शिवालिक पर्वत उपत्यका से सिरसा तक तथा आगे पंजाब राज्य में पटियाला तक एक लघु नदी के रूप में दृश्यमान है। भूगोलवेत्ताओं, पुरातत्त्वविदों तथा वैज्ञानिकों के अन्वेषणों से यह विशाल नदी के पुराकालीन स्वरूप तथा उसके गोद में विकसित संस्कृति का ज्ञान हो सका है। उसके जीवनदायिनी महत्त्व को ध्यान में रखकर दीर्घतमस् ऋषि ने सरस्वती को श्रेष्ठतम माता, श्रेष्ठतम सरिता और श्रेष्ठतम देवी कह प्रशस्त जीवन यापन की प्रेरणा देने के लिए प्रार्थना की-

अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वती अप्रशस्ता इव स्मसि प्रशस्तिमम्ब नस्कृधि।। (ऋ. 2.41.16)

ऋग्वेद के दशम मण्डल में एक नदी सूक्त(10.75) के प्रथम मन्त्र में 42 नदियों की सत्ता का उल्लेख किया गया है(सप्तसप्तत्रेधा)। किन्तु इस सूक्त के पांचवे तथा छठे मन्त्र में नामशः केवल 19 नदियों का ही उल्लेख है-

इमं में गङ्गे यमुने सरस्वती शुतुद्रि स्तोमं सचता परूष्णया। असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयाऽर्जीकाये शृणुह्या सुषोमया।।

तृष्टामया प्रथमं यातवे संजूः सुसर्त्वा रसया श्वेत्या त्या। त्वं सिन्धो कुभया गोमती क्रुमुं मेहत्न्वा सरथं याभिरीयसे।।

(ऋ. 10.75.5-6)

वैदिक साहित्य में विश्वबन्धुत्व भावना

काथड कान्तिलाल जी रिसर्चफैलो, सौराष्ट्र वि.वि. राजकोट(गुजरात)

"सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभागभवेत्।।"

वेद भारतीय संस्कृति की अनुपम निधि है। वेद से शिक्षा लेकर मानवजीवन में व्याप्त हताशा, निराशा, अज्ञान, दुर्विचार, दुगुर्णो को दूर कर विश्वबन्धुत्व भावना बनाए रखता है। वैदिक काल से लेकर 'विश्वबन्धुत्व' और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की बात यत्र-तत्र कही गई है। "माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।"

अथर्ववेद में की गई ऐसी उदात्त भावना समस्त भूमण्डल को अपना स्वीकार करतीहै। वैदिक साहित्य में स्थान-स्थान पर कहा गया है सभी मानव समान हैं, सबके पास बुद्धि और अन्तरात्मा है, सभी को एक दूसरे के प्रति भ्रातृभाव की भावना से व्यवहार करना चाहिए।

कर्मकाण्डों में निहित भारतीय संस्कृति ; वेद में विज्ञान का समावेश

डॉ. उर्मिला सिंह डी.एस.एन.पी.जी. कालेज, उन्नाव
विनय कुमार सिंह हिन्द इन्स्टीट्यूट आफ मेडिकल साइंसेस, बाराबंकी

मानवशरीर अत्यन्त महत्वपूर्ण और दुर्लभ है। हमारी भारतीय संस्कृति कर्मकाण्डों के सिद्धान्त पर आधारित है, इस संसार में सर्वत्र जन्म-मरण चक्र से कोई अछूता नहीं रह जाता है जन्म लिया है तो दरिद्रता-सम्पन्नता, सुख-दुख, हानि-लाभ इस अमूल्य जीवन

के अंग हो जाते हैं परन्तु काम-क्रोध, लोभ-मोह, ईर्ष्या, राग-द्वेष आदि दुर्गणों वश मनुष्य का अधिकांश समय पापाचरण में व्यतीत हो जाता है जिसे मनुष्य स्वयं नहीं समझ पाता है अगर चौबीस घंटे में हम थोड़ा समय भी शुभ कार्य में लगा दें तो हमें पुण्य प्राप्त हो कष्ट कम होता है। मनुष्य का जीवन कल्याणकारी बन सकने के लिये हमारे वेद-शास्त्रों में प्रातः काल उठने से लेकर रात्रि-शयन तक और जन्म से लेकर मृत्यु तक सभी क्रिया कलापों का विवेचन विधि निषेध रूप में हुआ है जो मनुष्य के कर्तव्य और धर्म का निर्णय करता है वेदानुसार किये गये सभी कार्यों की पुष्टि विज्ञान करता है। गीता में भगवान ने स्वयं कहा है - 'स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।' इस लिये वेदादि समस्त शास्त्रों में नित्य और नैमित्तिक कर्मों को मानव के लिये परम धर्म और परम कर्तव्य कहा है। प्रत्येक मनुष्य नित्यकर्म करके तीनों प्रकार के ऋणों से मुक्त हो जाता है।

विज्ञान प्रयोगों पर आधारित होता है जो प्रमाण प्रस्तुत करता है जिसे कभी भी कोई भी दोहरा सकता है परिणाम वही आयेगा। विज्ञान निष्कर्ष तक पहुंचता है जो कि गहन संदेहों को हल करके परिमाणित होता है वेद को धारण करने से शरीर शुद्ध हो ईश्वरोन्मुख होकर मनुष्य को परमात्मा के वास्तविक तत्व का परिज्ञान कराता है और मनुष्य अपने जीवन को कल्याणकारी रूप में व्यतीत कर सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म में परिनिष्ठित हो आत्मोद्धार मार्ग प्राप्त कर लेता है।

विज्ञान की शुरूआत वहीं से हो जाती है जब किसी गांव में भी एक निर्धन के घर शिशु जन्म लेता है और दरवाजे पर गोबर के उपलों से आग सुलगाकर रखा जाता है वैज्ञानिक कारण, घर में जीवाणुओं के प्रवेश को रोकना। सवा महीने तक बच्चे माँ को दूर रखा जाता है कारण इन्फेक्शन न हो जाये। छः सौ मिलियन जीवाणु मनुष्य के शरीर में अन्दर बाहर निवास करते हैं

अधिकांशतः जीवाणु अपना घर कखोरी (armpit) में बनाते हैं। यदि हम वेदों का अनुसरण कर ब्रह्ममुहूर्त में जग कर, करावलोकन, भूमि-वन्दना, मंगल-दर्शन, मात, पिता, गुरू एवं ईश्वर अभिवादन और कर्म और उपासना का समुच्चय संकल्प लें तो उन छः सौ मिलियन जीवाणुओं से सुरक्षित रहेंगे, आज जिन तथ्यों की पुष्टि हम विज्ञान द्वारा करते हैं वो हजारों वर्षों पूर्व हमारे वेद पुराण में पायी जाती है अगर हम जीवन की बात करें तो हमने आज एक कोशिका के जरिये डाली भेड़ का निर्माण कर डाला जोकि हमारे पुराण में माता पार्वती जी ने गणेश जी का निर्माण करके किया था।

ये ईश्वर में विश्वास ही है कि मनुष्य आदिमानव अवस्था से आज अंतरिक्ष तक जा पहुंचा है।

मनुष्य किसी भी धर्म को मानता हो, पर उस परम शक्ति को सभी महसूस करते और सभी का लक्ष्य एक ही है।

वेदों में लिखी लेखनी हजारों वर्षों पूर्व से आज तक सत्य बनी हुई हैं। वैज्ञानिक की प्रतिबद्धता एक आस्था और विश्वास लिये सत्य की खोज को पूर्ण कर रही है। बिना आस्था विश्वास के विज्ञान अधूरा और अकेला हो जाता है। तार्किक व्यक्तव्य दे देने से प्रक्रियायें पूर्ण नहीं हो जाया करती हैं, इसे मानव को अकेले कक्षों में जूझते रहना होता है, हर क्षण अपने आप और अपने कर्म को प्रश्नों से बेधते रहना होता है, विज्ञान हर असफलता को प्रयोग की प्रक्रिया या आगे की चुनौती के रूप में ग्रहण करता जाता है। वेद में लिखे छोटे-छोटे तथ्यों को लेकर चले तो हिन्दू धर्म स्वीकार करता है कि पीपल वृक्ष को काटना दोषपूर्ण है क्योंकि उसमें भगवान का वास है सही है, सत्य है पीपल का वृक्ष काटना दोषपूर्ण है क्योंकि ये वृक्ष मानवता के लिये वरदान है 24 घंटे आक्सीजन देकर पर्यावरण को संतुलित करने वाला वृक्ष है।

अतः यदि हम कथित बिन्दुओं पर ध्यन दें तो पायेंगे कि विज्ञान, वेद में समाहित है और ये आज उन तथ्यों की पुष्टि कर रहा जिनकी पुष्टि हमारे वेद में हजारों वर्ष पूर्व ही हो चुकी है।

वैदिक वाङ्मय में धर्म

डॉ. शुचि अग्रवाल मेरठ कॉलेज मेरठ

धर्म, बुद्धि अर्थात् विद्या और ज्ञान का विषय है, इसलिए आर्य-सभ्यता के चारों महान् स्तम्भों में उसका स्थान बहुत ऊँचा है। जिस प्रकार मोक्ष मर्यादित अर्थ के अधीन है, उसी प्रकार मर्यादित अर्थ काम के अधीन है और उसी प्रकार काम को मर्यादित करके उसको अर्थ और मोक्ष के अनुकूल बनाना धर्म के अधीन ही है। धर्म ही है जो निरंकुश काम को मर्यादित करके मोक्ष और अर्थ काम के मध्य सामंजस्य स्थापित करा देता है और बताता है कि धर्मपूर्वक अर्थ और काम का उपयोग करने से ही मोक्ष सुलभ हो सकता

है। अर्थात् धर्मानुसार जीवन बनाने से ही लोक और परलोक दोनों में सुख प्राप्त हो सकता है। शायद इसलिए धर्म का लक्षण करते हुए वैशेषिक दर्शन में कणाद मुनि कहते हैं कि 'यतोऽभ्युदय निःश्रेयस् सिद्धिः स धर्मः' अर्थात् जिससे अर्थ काम सम्बन्धी लोकसुख की और मोक्ष सम्बन्धी परलोक सुख की सिद्धि हो वही धर्म है। यहाँ पर अभ्युदय का तात्पर्य लोकनिर्वाह मात्र नहीं है और वही वेदानुकूल धर्म है। इसलिए धर्म की मीमांसा करते हुए जैमिनी मुनि कहते हैं 'चोदना लक्षणो अर्थो धर्मः' अर्थात् वेद की आज्ञा ही धर्म है। वैदिक धर्म भारतवर्ष के आदितम सभ्य निवासी आर्यो की एक ऐसी पूजा पद्धति, सिद्धान्त अथवा आध्यात्म ज्ञान है जो उनके अद्वितीय दर्शन को परिलक्षित करता है। यह धर्म कभी नष्ट नहीं हुआ वरन् सामान्य श्रेणी के लोग शान्ति से उसका आचरण करते रहे और अन्य सिद्धान्तों तथा पूजा विधियों के सम्पर्क से शनैः शनैः उसका विकास होता रहा। वस्तुतः वैदिक धर्म तथा उससे सम्बन्धित सिद्धान्तों को एक शोधपत्र में समाहित करना दुरूह है। अतः वैदिक धर्म से संबन्धित कुछ बिन्दुओं यथा उनकी पूजा पद्धति, तपस्या, यज्ञ, अध्यात्म ज्ञान आदि पर विचार करने का प्रयास किया गया है।

वैदिक साहित्य में विश्वबन्धुत्व

मीता जे. व्यास, समलदास आर्ट्स कॉलेज, भावनगर (गुजरात)

संस्कृत साहित्य का आरम्भ वेद के आविर्भाव से हुआ है। वेद के ऋषिमुनि मानवजीवनके विविध पहलुओं की पर्याप्त समीक्षा करते हैं। वेद में मात्र यज्ञयाग या स्तुति का समावेश नहीं होता है। बल्कि सामाजिक आर्थिक, सांस्कृतिक, वैज्ञानिक वर्णन के साथ स्वदेश भक्ति, स्वराष्ट्रप्रेम और विश्वबन्धुत्व की भावना भी उद्घाटित होती है। अपनी जन्मभूमि को माता मानने की भावना हमें सर्वप्रथम वेद में उपलब्ध होती है। अपनी मातृभूमि का विकास एवं रक्षा-कार्य में सम्मिलित होना गौरवपूर्ण समझा जाता है। वेद में न केवल राष्ट्रमंगल की कामना होती अपितु अन्ताराष्ट्रिय मांगल्य का सामना भी दृष्टिगोचर होता है। ऋषियों की यह मङ्गलकामना का निर्मल भाव प्रशंसनीय हो उठता है। जब वह हृदय से कामना करते हैं कि विश्व इसे सभी मानव उन्हें मित्र की दृष्टि से देखें।

दृते दृंह् मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम.....
मित्रस्याऽहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे। (यजु.- 36.18)

वैदिक सूक्तियों में सांस्कृतिक आदर्श

डॉ० हेमलता सुमन वरिष्ठ प्रवक्ता (हिन्दी विभाग) नारायण (पी०जी०) कालेज, सिकोहाबाद, उत्तर प्रदेश

वेद न केवल संस्कृत साहित्य के वरन् विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ हैं। भारोपीय परिवार में सर्वप्रथम लिखित प्रमाण वेदों को माना गया है। भारतीय मनीषी वेदों को परम ब्रह्म की श्वाँस मानते हैं। आचार्य बलदेव उपाध्याय ने वेदों के महात्म्य को सहर्ष स्वीकार किया है। उनका कहना है कि वेद, ज्ञान के वे सरोवर हैं, जहाँ से ज्ञान की विमल धारायें विभिन्न मार्गों से बहकर भारत के ही नहीं, वरन् समस्त जगत के प्रदेशों को उर्वर बनाती हैं।

भारत देश वैदिक काल से ही धर्म प्रधान संस्कृति से मण्डित हैं। जहाँ एक ओर धर्म की संप्रभुता एवं प्रतिष्ठा भारतवासियों के लिए सर्वस्वभूत रही है, वहीं सदाचार, नैतिक आदर्श एकता, अखण्डता, दानवीरता, त्याग, बलिदान, प्रेम, भाई-चारा, अतिथि सत्कार, देशप्रेम, राष्ट्रभक्ति, सहिष्णुता आदि हमारे मूल सांस्कृतिक आदर्श एवं सिद्धान्त रहे हैं। जिनमें भारतीय-जनों के प्राण बसते हैं। वैदिक ऋषियों ने धर्म-प्राण भारतीय संस्कृति के विशिष्ट आदर्शो को संस्कृति के प्रारम्भिक काल में ही प्रस्तुत करने का प्रशंसनीय प्रयास किया है। इस महानतम् एवं प्राचीनतम् साहित्य में भारतीय सांस्कृतिक आदर्शों को विविध प्रसंगों में सूक्तियों के माध्यम से उद्घाटित करते हुए सिद्ध किया गया है कि भारतीय संस्कृति ही विश्व की वह प्राचीनतम् संस्कृति है, जिसने अज्ञानान्धकार से आवृत्त विश्व सभ्यता को अपने अलौकिक ज्ञान से आलोकित किया। भारतीय सांस्कृतिक आदर्शो पर यदि विचार करें तो धर्मनिष्ठा, विश्वबन्धुत्व, सदाचार, वर्णाश्रम व्यवस्था, लोक कल्याण भावना, अहिंसा, परस्पर मैत्रीभाव, अध्यात्म परायणता एवं नैतिक आदर्शो की संप्रभुता आदि

सर्व वन्दनीय एवं विश्व प्रेरणीय विशिष्ट आदर्श हैं। इन आदर्शों को वैदिक ऋषियों ने विविध प्रसंगों में सूक्ति-वचनों के माध्यम से प्रस्तुत करते हुए उन्हें सर्व ग्राह्य बनाने का स्तुत्य प्रयास किया है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि वैदिक संहिताओं में प्रयुक्त विविध सूक्तियों में वैदिक कालीन सांस्कृतिक आदर्शों का भव्य एवं समुज्जवल स्वरूप सुस्पष्ट परिलक्षित होता है। वैदिक कालीन समाज का आदर्श स्वरूप तथा सामाजिक मूल्यों, सांस्कृतिक आदर्शों धरोहरों एवं परम्पराओं की उत्कृष्टता वैदिक सूक्तियों में देखने को मिलती है। इन सूक्तियों के आधार पर हम गौरवान्वित हैं कि वैदिक काल में भारतीय समाज पूर्ण उन्नत एवं सांस्कृतिक आदर्शों की यह विशिष्टता सम्पूर्ण विश्व को प्रेरित व प्रभावित करने में पूर्ण सक्षम है।

वेदों में वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना

मौ0 मेराज अहमद सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर

वेद निर्विवाद रूप से विश्व का प्राचीनतम ग्रंथ है, जो न केवल भारत का ही नहीं अपितु विश्व की संस्कृति को समझने के लिए प्रथम स्रोत है। अध्यात्म-परक एवं शान्ति प्रिय संस्कृति की संरचना में इसका महत्वपूर्ण योगदान रहा है। प्राचीन काल से लेकर आज तक वेद वाङ्मय सम्पूर्ण विश्व को विविध कल्याणकारी उपदेश देता रहा है। इसलिए वैश्विक कल्याण की दृष्टि से वेद की महत्ता अप्रतिम है। विश्व-बंधुत्व, एकत्व एवं समत्व का व्यापक संदर्भ वेदों में प्रचुर मात्रा में मिलता है। द्युलोक को पिता एवं पृथिवी को माता मानने वाले वैदिक स्तोता ने अपने विश्व का अधिवासी माना है, इसलिए उनकी प्रार्थनायें सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक है। विश्व-व्यापी आधार पर चिन्तन करने के कारण विश्व शांति एवं विश्व बंधुत्व की उदात्त भावनाओं से ओत-प्रोत वैदिक मंत्रों में मानव मात्र के लिए सौहार्द्ध, मित्रता, समानता, एकता आदि भावनाओं का पाया जाना स्वाभाविक है। आर्य-संस्कृति वैश्विक थी क्योंकि वेदों में कहीं पर भी एक विशेष धर्म या सम्प्रदाय को ध्यान में रखकर उपदेश नहीं दिया गया है, अपितु जगह-जगह पर वसुधैव कुटुम्बकम् की धारणा से ही प्रेरित होकर मानव वर्ग के हित के साधक उपदेश दिए गए हैं। यही कारण है कि वेदों में निहित गूढ़ उपदेश आज भी पूर्ववत् रूप से कल्याणकारी हैं।

मेरे इस लघु शोध पत्र का उद्देश्य निरन्तर आण्विक शक्ति एवं वर्ग-संघर्ष की ओर अग्रसर विश्व को वेद में निहित गूढ़ रहस्य 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की धारणा से अवगत कराना है।

वैदिक सांस्कृतिक कविता

अशोक कुमार मलिक शोध छात्र, हिन्दी विभाग गु० कां० वि० वि० हरिद्वार

प्राचीन साहित्य में कवि को 'स्वयंभू' कहा गया है। सहृदय मानव के मुख से निसृत शब्द या भाव ही काव्य है, लेकिन ये शब्द और भाव सरस और सरस शैली में हों तो इसका प्रभाव अधिक कल्याणकारी होगा। आ० विश्वनाथ ने कहा है-**"वाक्यं रसात्मक काव्यम्"।**

वैदिक ऋचाएं पद्यात्मक गेय शैली में हैं, ये स्वयं पूर्ण कविता हैं। वेद की ऋचाओं में भावावेशपूर्ण काव्य और सुदीर्घ युग की ज्ञान साधना का सामंजस्य है। वैदिक ऋचाएँ ही हमें सिखाती हैं कि-**'यद्दा चरति श्रेष्ठः तत्देवौ तरोजनः'** अर्थात् आप श्रेष्ठ हैं, आर्य हैं जैसा आचरण तुम्हारा होगा दूसरे जन उसी का अनुकरण करेंगे। वेद ही हमें बताते हैं कि सच्चे ज्ञान और विद्या की कसौटी क्या है? **'सा विद्या या विमुक्तये।'** अर्थात् जो ज्ञान या विद्या हर प्रकार के अज्ञान से मुक्ति दे वही वरेण्य है। वैदिक ऋचाएं ही हमें अपने कर्त्तव्य का निर्धारण करना सिखाती हैं-**'माता भूमिः पुत्रोऽह पृथिव्याः।'** यानि यह भूमि मेरी माता है, मैं इसका पुत्र हूँ।

वैदिक युग की संस्कृति

डॉ0 लता शर्मा प्रवक्ता हिंदी विभाग, महिला महाविद्यालय सतीकुंड, कनखल (हरिद्वार)

भारतीय आर्यो के इतिहास के प्राचीनतम युग को वैदिक युग कहते हैं। इसका कारण यह है कि वेद आर्यों के प्राचीनतम ग्रन्थ हैं ओर उनके अनुष्ठीलन से हम इन आर्यों की सभ्यता, संस्कृति और धर्म के सम्बन्ध में बहुत कुछ जान सकते हैं। अनेक ऐतिहासिकों की यह प्रवष्त्ति रही है कि वे प्राचीन भारतीय इतिहास को वैदिक उत्तर वैदिक, सूत्र-धर्म-ष्ठास्त्र, इतिहास और पौराणिक कालों में विभक्त करते हैं। इस काल-विभाग का आधार यह समझा जाता है कि वेद, ब्राह्मण-ग्रन्थ, सूत्र-ग्रन्थ, रामायण-महाभारत रुपी इतिहास ग्रन्थ और पुराण-ग्रन्थ ये एक के बाद एक करके बनें।

वैदिक साहित्य का निर्माण किसी एक समय में नहीं हुआं। उसमें जहाँ वे मन्त्र विद्यमान है, जिनका निर्माण वैवस्वत मनु द्वारा हुआ था। तो वहाँ वे मन्त्र भी हैं, जो राजा सुदास (उत्तर-पंचाल का राजा 86वीं पीढ़ी) के समय में बने थे। राजा सुदास के बाद भी वैदिक सूक्तों का निर्माण हुआ और कुछ मंत्र तो महाभारत-युद्ध के बाद राजा परीक्षित के समय में भी बनें। इस प्रकार वेदों में वैवस्वत मनु के समय से ष्ठुरु कर महाभारत काल तक के मन्त्र संगृहीत हैं। यही कारण है कि वैदिक सूक्तों की भाज़ा एक समान नहीं है।

रुद्राष्टाध्यायी में सांस्कृतिक तत्वों का अनुशीलन

सुंजेता शास्त्री शोधच्छात्रा, लखनऊ विश्वविद्यालय

प्रायः देखा जाए और इसका विस्तृत और गम्भीरात्मक दृष्टि से अध्यापन किया जाये तो हम यह पाते हैं कि रुद्राष्टाध्यायी में भारतीय संस्कृति के धार्मिक दृष्टि में दो संस्कृतियां परिलक्षित होती हैं-

1. **जप संस्कृति**-अर्थात् मंत्रों के जप और पाठ से जहाँ हमारा कल्याण होता है वहीं योगदर्शन के **'तज्जपः तदर्थ भावनम्'** के अनुसार हमें अर्थ पर विचार करते चलें तो मंत्रों का वास्तविक स्वरूप सामने दिखने लगता है।
2. **यज्ञ संस्कृति**-उसमें प्रयुक्त मंत्रों से यज्ञ में आहुतियाँ देकर हम देवताओं को तो प्रसन्नत करते ही हैं क्योंकि देवता लोग अग्नि के माध्यम से ही अपना भोजन स्वीकार करते हैं। इसके साथ ही वातावरण की ष्ठुद्धता के लिए भी इस यज्ञ का विष्ठोज़ महत्व है।

विश्वबन्धुत्वभावदृशा यजुर्वेदस्य द्वात्रिंशत्तमाध्यायस्याध्ययनम्

डॉ. विद्यानन्द आर्यः निजाममहाविद्यालयः, उस्मानिया विश्वविद्यालयः, आन्ध्रप्रदेशः

परमकारुणिकस्य परमेश्वरस्य कृपया सृष्ट्यादौ मानवानां ज्ञानाय प्रादुर्भूतेषु वेदेषु एकनीडवत् विश्वम् अवबुध्यते इति विश्वबन्धुत्वस्य चरमभावयुतः मन्त्रखण्डः 'यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्' इति समुपलभ्यते। एवंविधा भावना अन्यत्र विश्वसाहित्ये दुर्लभा एव। अनेन मन्त्रखण्डेन युतः मन्त्रः यजुर्वेदस्य द्वात्रिंशत्तमेऽध्याये समुपलभ्यते। यजुर्वेदे उपलभ्यमानः सम्पूर्णः मन्त्रः इत्थं वर्तते-

वेनस्तत्पश्यन्निहितं गुहासद्यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्।
तस्मिन्निदं सं च वि चैति सर्व स ओतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु।। इति 32.8

यजुर्वेदस्य द्वात्रिंशत्तमाध्यायस्य विषयाः महर्षिदयानन्दानुसारम् ईश्वरः विद्वान् बुद्धिः धनम् एतेषां च प्राप्त्युपायाः प्रभृतयो विद्यन्ते। अस्मिन् अध्याये स्थितेषु विषयेषु विश्वबन्धुत्वभावाः अति स्थानं भजन्त्येव। विश्वबन्धुत्वभावदृशा अपि अस्य अध्यायस्य महत् माहात्म्यं भवति।

प्रस्तोष्यमाणे विश्वबन्धुत्वभावदृशा यजुर्वेदस्य चतुस्त्रिंशत्तमाध्यायस्याध्ययनम् इति नामयुते शोधलेखे विश्वबन्धुत्वभावदृशा यजुर्वेदस्य द्वात्रिंशत्तमाध्यायस्याध्ययनं करिष्यते। अध्यायेऽस्मिन् बोधिताः विषयाः आधुनिकसमये कथम् उपयोगितां भजन्ते ? कथं वा एते

विषया: संसारे विश्वबन्धुत्वभावनिर्माणे विश्वबन्धुत्वभावप्रसारे वा सहायका: सम्भवन्ति: ? इत्यादय: अंशा अपि परिशीलयिष्यन्ते।

वैदिकवाङ्मये विश्वबन्धुत्वम्

गणेशदत्त उपाध्याय: भगवानदाससंस्कृतमहाविद्याल: हरिद्वारम्

मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे। यजु. 36.18 मित्रस्य मा चक्षुषा

सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्। यजु. 36.18

पारस्परिकमैत्रीभावेन विश्वबन्धुत्वस्य विश्वकल्याणस्य च कामनात्मकोपदेशोऽत्र वैदिकसाहित्ये प्रदत्तोऽस्तीति प्रमाणयति यजुर्वेदस्यायं मन्त्र:। मन्त्रस्यायं भाव: यद्वयं परस्परं मित्रत्वं पश्येमेति। स्वयञ्च अपरान् स्वमित्राणि विचिन्तयाम।

विश्वकल्याणमभिलक्ष्य ऋग्वेदे समुद्घोषितं यद्यदि विश्वकल्याणविश्वबन्धुत्वयोरभिलाषो मानवमात्रस्यास्ति तर्हि नितरामेव सुखे दु:खे च सर्वेऽपि परस्परं सहायका भवन्त्विति। तद्यथा-

आपिर्यजात्यापये। ऋग्. 1.26.3 सखा सखायमतरद् विषूचो:। ऋ 7.18.6

अत्रहि चतुर्ष्वपिदेषु विश्वकल्याणलोककल्याणहेतवे प्रार्थना कृता वर्तते; तदर्थं वेदेषु स्थाने-स्थाने प्रयुक्ता मन्त्रा एव प्रमाणम्। न हि केवलं मानवमात्रस्य सुखशान्तिकामना वेदमन्त्रेषु व्याप्तास्ति, अपितु संसारस्थ निखिलजीवानां सुखमपि समाहितं वर्तते।

सोम दिवे पृथिव्यै शं च प्रजायै। ऋ. 9.109.3

वैदिकसाहित्ये सौमनस्यसहृदयतातादात्म्यैकत्वानि विश्वकल्याणसाधनानि समुद्घोषितानि सन्ति। सर्वश्रेष्ठ-ऋग्वेदस्यान्तिमसूक्ते समभावोपदेश: प्राचुर्येण प्रदत्तो वर्तते। अत्र प्रार्थितं वर्तते यद्वयं जीवा: सुखदु:खे समेकृत्वा भवाम, आपदि च परस्परं सहयोगिनो भवाम: येनास्मत्सुखाधिकार: संरक्षितस्थादिति।

संगच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्। ऋ. 10.191.2

वैदिकसाहित्ये विश्वशान्ति:

हेमचन्द्र बेलवाल: छात्र:- श्रीभगवानदास आ.सं.महा.हरिद्वारम्

अथात्र वेदेषु वेदसम्बन्धितेषु वा ग्रन्थेषु स्थाने-स्थाने विश्वशान्ते: कामना कृता वर्तते। न खलु विश्वशान्ति: हिंसामात्रस्याभाव:, अपितु जगज्जाले जन्मलब्धा: प्राणिन: कथं सुखपूर्वकं जीवनं यापयेयु: ? इतिविषयात्मकं गभीरचिन्तनमेव विश्वशान्तिद्वारम्। विश्वकल्याणसाधने नैकानि साधनानि सन्ति। तत्र प्रथमं तावत् सुखं हि विश्वशान्तिमूलम्। सुखं च-

विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम्। पात्रत्वाद्धनमाप्नोति धनाद् धर्म: तत: सुखम्।।

अत्र सुखस्य मूलं विद्या। अर्थात् विश्वकल्याणकामयिता विद्यासम्पन्नो भवतु, येन स विनयं, पात्रत्वं, धनं, सुखञ्च यथाक्रम प्राप्य विश्वशान्तिनिर्माणे सहायको भवेत्। न हि कश्चित्तादृशोऽपि जनो जगतीतलेऽस्मिन् शिष्यते यो विद्यामहिमानं न जीयात्।

अधुना सर्वोऽपि समाजो बहुविधदु:खप्रदक्रियाभि:, घटनाभि:, प्रसङ्गैश्च परिपीडितो दृश्यते। तर्हि कथं जगदिदं सुखमयं जीवनं यापयेत् ? कथं च प्रत्येकमपि जन: सर्वस्यापि विश्वस्यकल्याणं परिकल्पयेत् इति चिन्तनविषय:, तदर्थं वैदिकसाहित्यस्यावलम्बनं नितान्तमावश्यकं प्रतीयते। यतस्तत्र- **सर्वेभवन्तु सुखिन: सर्वे सन्तु निरामया:। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दु:खभाग् भवेत्।।**

इत्येवंविधविश्व-कल्याणमभिलक्ष्य समुद्घोषितं वर्तते। अथ च नात्र केवलं भूमिस्थचराचराणां शान्ति: वेदेषु परिकल्पिता वर्तते अपितु इहलोक-परलोकशान्तिरपि परिकल्पितास्ति। तद्यथा-

ओम् द्यौ: शान्तिरन्तरिक्षं शान्ति: पृथिवीशान्तिराप: शान्तिरोषधय: शान्ति:।

वनस्पतय: शान्तिर्विश्वेदेवा: शान्तिर्ब्रह्मशान्ति सर्वं शान्ति:। शान्तिरेवशान्ति: सा मा शान्तिरेधि।।

वैदिकसाहित्ये विश्वशान्तिः

डा. देवेन्द्रप्रसादमिश्रः (सहायकः आचार्यः, वेदविभागे) श्रीलालबहादुरशास्त्रिराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठम्, नवदेहली

साम्प्रतं जगति सर्वत्र सर्वे जनाः भयभीताः उद्विग्नाः दुःखिताश्च सन्ति। यतः क्वचिज्जातिवादः क्वचित् प्रान्तवादः कुत्रचित्सम्प्रदायवादश्च प्रचलति। सर्वेषां वादानां निराकरणार्थं सर्वविधकल्याणप्राप्त्यर्थञ्च वेद एव सक्षमो वर्तते। वेदानुशीलनेनैव सर्वेषां जनानां शाश्वतिकं कल्याणं भवितुं शक्नोति। अस्माकमृषयो वेदमन्त्रेष्वेव सर्वेषां वैज्ञानिकानां तत्त्वानामवलोकनं तत्परिवर्तनं शक्तिश्च दृष्टवन्तः परन्तु तैः जगद्विनाशभयात् वेदेषु वैज्ञानिकतत्त्वविचारान् परित्यज्याध्यात्मिकविषय एव सम्यग् विचारितः। अद्य विज्ञानस्यैव फलमिदं यत् कस्मिश्चिदपि देशे कोऽपि मनुष्यः क्षणमात्रमपि स्थिरबुद्ध्या तथा शान्त्या स्थातुं शक्नोति, इति कथयितुं न समर्थः।

साम्प्रतिके काले विरोधिभावना प्रशमनाय ऋग्वेदीय संज्ञानसूक्तस्यावलोकनमत्यावश्यकमस्ति। **संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्। देवाभागं यथापूर्वे संजानाना उपासते।।** स्पष्टरूपेण भगवतः आदेशोऽयम् यत् सर्वे एकीभूय गन्तव्यं वार्तालापञ्च कर्तव्यम् अन्येषां मनांसि ज्ञात्वैव परस्परानुकूलं व्यवहर्तव्यम्। सर्वेषां मानवानां विचाराः हितकराः स्युः सभायां समानता भवेत्, कदापि विषमता न स्यात् सर्वेषां मनः चित्तं च सर्वान् प्रति समानं स्यात्। समानेन मंत्रेण सर्वानभिमन्त्रान् करोमि। सर्वे मिलित्वा देशसेवां कुर्वन्तु।

सर्वेषामन्तःकरणं मनश्च परस्परं विद्वेषरहितं स्यात् यथा नवप्रसूता गौः वत्सं प्रतिप्रेम्णा व्यवहारः तथैव सर्वैः व्यवहर्तव्यम्। पुत्रः पित्रोः इच्छानुकूलं कार्यं कुर्वन्नेव सेवा विदधीत। भार्यापत्ये शान्ति युक्तां मधुमतीं वाचं वदेत् एवम् आचरणे कृते सति कुटुम्बे, समाजे, देशे, विश्वे वा कलहो न भवेत्। साम्प्रतं दाय भागार्थं भ्रातरो भगिन्यश्च परस्परं विवदन्ति। तेषु विवादः न स्यात् इत्यभिप्रायेण अथर्ववेदीयोऽयं मन्त्रः द्रष्टव्यः **-मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा। सम्यञ्चः सव्रता-भूत्वा वाचं वदत भद्रया।।**

अतएव आतंकवादिनां विजेतुं राष्ट्रस्याखण्डतायैः विश्वशान्त्यर्थञ्च वेदोपदेशः एव प्रशस्तः समर्थश्च नान्यः पन्था विद्यते। अनेनैव भावनया ऋषिभिः सततं शान्त्यर्थं प्रार्थना क्रियते- **द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष ꣳ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्मशान्तिः सर्व ꣳ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि।।**

वेदेषु विश्वबन्धुत्ववृतिः

डॉ. सतीशचन्द्रशर्मा वरिष्ठ प्रवक्ता- हरियाणा संस्कृत विद्यापीठम्, पलवल, हरियाणा

वेदेषु प्राप्यन्ते ते बहुश एतादृशाः मन्त्राः येषु विश्वबन्धुत्वम् विश्वशान्तिः, विश्वं प्रति मानवकर्तव्यभावनायाः वर्णनम् वर्तते। वस्तुतः वेदेषु विश्वबन्धुत्व भावनायाः विषये वैदिकदृष्ट्या चिन्तनमत्यन्तमनिवार्यरूपेण आवश्यकं वर्तते, यतोहि अद्य वैज्ञानिकदृष्ट्या तु अस्माभिः उन्नतिशिखरः प्राप्त इव दृश्यते परन्तु आध्यात्मिकदृष्ट्या न कापि उन्नतिः सञ्जाता। अस्मात् कारणादेव समृद्धस्य, शक्तिसम्पन्नस्य च राष्ट्रस्य विश्वस्य वा सदस्याः वयम् अत्यधिकं हिंसकाः, श्रान्ताः, अशान्ताश्च स्म। आवश्यकता वर्तते अद्य विश्वबन्धुत्वदृष्ट्या वेदप्रतिपादितमार्गानुसारम् जीवनयापनस्य। अन्यथा मानवानाम् अस्तित्वसमापनसमस्या समुपस्थिता भवितुं शक्नोति।

अथर्ववेदे विश्वकल्याणभावनायाः दर्शनमेकस्मिन् मन्त्रे दर्शनीयमेवं वर्तते यथा- 'स्वस्ति मात्र उपपित्रे नो अस्तु, स्वस्ति गोभ्यो जगते पुरुषेभ्यः। विश्वं सु-भूतं सुविदत्रं नो अस्तु, ज्योग् एव दृशेम सूर्यम्।। अथर्व. 1.31.4 अर्थात् अस्माकं पित्रो कल्याणमस्तु, विश्वस्य समेषां पुरुषाणाम् कल्याणमस्तु, गवादिपशूनां कल्याणमस्तु, अस्माकं विश्वं सुसम्पन्नं, सुज्ञानसम्पन्नं, सुमतियुक्तञ्च भवेत्। वयं चिरम् यावत् सूर्यं पश्येम। "वसुधैव कुटुम्बकम्" "सर्वे भवन्तु सुखिनः" "सर्वे भद्राणि पश्यन्तु" इत्यादीनि विश्वबन्धुत्वस्य वाक्यानि अस्माकं शास्त्राणमेव सन्ति।

वैदिकसाहित्ये विश्वबन्धुत्वम्

डॉ. शान्तिपोखरेलः असमविश्वविद्यालयः शिलचरः।

भारतीयप्रज्ञायाः अपूर्वासृष्टिः वेदः संहितारूपेण भागचतुष्टये विभाजितः। संहिता ब्राह्मणम् आरण्यकम् उपनिषद् वेदाङ्गानि

चेत्यादि पदवाच्यासु बहुशाखा-प्रशाखासु विस्तृतं वाङ्मयमिदम्। ऋषीणां दिव्यचक्षुषा साक्षात्कृतानि धर्मार्थकाममोक्षप्रतिपादिकानि वेदरूपज्ञानविज्ञानानि मानवकल्याणायैव नियोजितानि सन्ति। यत्र च मन्त्रेषु विश्वकल्याणं विश्वबन्धुत्वं विश्वसंहित: विश्वशान्तिर्वा सर्वदा अनुरणिता। 'नमो मात्रे पृथिव्यै.......', 'माता भूमि: पुत्रोऽहं पृथिव्या:' चेत्युदात्तवचनै: यै: समग्रा पृथिवी मातृत्वेन स्तुता, ये च द्यौ: शान्तिरन्तरिक्षं शान्ति: पृथिवी शान्तिराप: शान्ति:......' 'मधुव्वाता ऋतायते मधुक्षरन्ति सिन्धव:...........' 'चेत्यादिमन्त्रै: लोकत्रयस्य त्रिविधशान्तिं मधुरसोपेतं परिवेशञ्च वाञ्छन्ति तेऽस्माकं पूर्वजा: विश्वबन्धुत्वस्य पथप्रदर्शका: आसन्निति प्रमाणयन्ति वैदिकग्रन्था:। मैत्रीकरुणामुदितादिगुणै: सिक्तहृदयानां वैदिकमनीषिणां 'मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे' इत्युद्घोष: विश्वसौहार्द्यस्य द्वारमुद्घाटयति। मन: यदि सत्यसंकल्पितं भवेत् तदा अमित्रमपि मित्रं कर्तुं शक्यते, येन समचिन्तनस्य सममननस्य च भाव उपजायते यस्य च साहाय्येन 'कृण्वन्तु विश्वमेकनीडम्' इत्युद्यम: सफलो भविष्यति। तदा हि वेदवाणी चेयं मुखे मुखे उच्चार्यते- 'समानो मन्त्र: समिति: समानी समानं मन: सहचित्तमेषाम्.. ......' इति। ब्रह्मणा परिव्याप्तं सर्वमिदं जगत्। अयमात्मा ब्रह्म एव। वेदोऽपि ब्रह्मपदवाच्य:। ब्रह्म बृहत: द्योतक:। अल्पाल्पस्य संयोगेन बृहत: उत्पत्ति:। अल्पे सुखं नास्ति, भूमाहि सुखमित्युपनिषद: सार:। अस्माभिरपि सर्वं विश्वमेकीकृत्य ऐक्यमनसा भ्रातृत्वभावनया च विश्वबन्धुत्वं विश्वैक्यं वा संघटयितुं शक्यते इति आर्षवचनात् ज्ञायते। एवं रीत्या वैदिकग्रन्थे गोपितासु विविधासु विद्यासु विश्वबन्धुत्वमिति विषयमवलम्ब्य शोधप्रबन्धरचनाया: विनम्र: प्रयास: क्रियते इह।

अथर्ववेदे नैतिकता

डॉ. वीना विश्नोई क.गु.महाविद्यालय:, हरिद्वारम्

वेदा: संस्कृतसाहित्ये स्वविशिष्टस्थानं स्थापयन्ति। वेदान् संस्कृतसाहित्यस्य आदिस्रोत: कथयितुं शक्यते। वेदे भारतस्य अमूल्य मौलिकानिधिश्चास्ति। अस्मिन् ज्ञानस्य विशदभण्डारो वर्तते। नीतिशब्देन नैतिकताया: व्युत्पत्ति: मन्यते। वस्तुत: अनेकाभि: नीतिभि: सह मनुष्यस्य सम्बन्धोस्ति परन्तु मुख्यत: सामाजिकप्राणीत्वेन मनुष्येण सह समाजस्य अटूट सम्बन्धोस्ति। कथनमिदमस्ति यत् व्यक्तिसमाजौ च मिथ: अन्योन्यस्य पूरक: स्त: इति असमीचीनं न भविष्यति। समाजे निवसन्नपि अव्यवस्थाया: परिणामस्वरूपागत विसंगतय: निर्मूलनाय मनुष्यै: नीतीनां निर्धारणं कृतम्। यस्रू सामान्यनियम: इदमासीत् यत् मनुष्यं स्वां प्रति तथा च समाजे निवन्नपि अन्यान् प्रति एवं व्यवहयेत् अनेन तस्य मनुष्यता सुरक्षिता भवेत्। एतेषां सामाजिकनियमानाम् अनुकूलाचरन् व्यवहारे यदा- सत्यं प्रति निष्ठा:, परोपकार: परायणता, लोकमंगलकारी पवित्रा भावना सदृशा सतोगुणीवृत्ते: समावेशो भवति तदा नैतिकतायारुदय: मन्यते। नैतिकता देशकालपरिस्थितिभिश्च सदैव प्रभाविता अभवत्। ममावलोच्ये आर्षग्रन्थे अथर्ववेदेऽपि यत्र तत्र नैतिकताया: वर्णनं प्राप्यते। यतोहि तत्कालीन सामाजिक व्यवस्थायारपि तु एक आदर्शोऽसीत्। अथर्ववेदे प्राप्त नैतिकताया: तत्त्वानि निम्नांकितानि सन्ति- पापस्य बहिष्कार:, पुण्यस्य प्रसार:, धर्मस्य प्रचार: असत्याद् घृणा, दुष्टानां विनाश:, द्वेष भावनाया: विनाश:, सत्यं प्रति निष्ठा, तेजस्वितां प्रति निष्ठा, यश: कामना, ज्ञानं प्रति जागरूकता, एकता, अद्रोह:, द्यूतनिदानश्च।

CULTURAL ASPECT OF RIGVEDA

Dr. K. Geetha, Lecturer in Sankrit, Osmania University, College for Women, Hyderadad

The vedic Aryans worshipped many Gods not because of the fear of natural phenomena but for gaining their favours. All the natural phenomena such as the sky, thunder, rain, air etc. were believed to be guided by their presiding duties, Favourable condition of nature was considered as the boon from the deities while natural devastations are taken to be their curse. The Hymns of Rg Veda was mainly for the glorification of the Gods in order to appears them. Indra was the God of war; in times of war people invoked him earnestly and ascribed the victory to his credit. God was regarded as a place where one could live happily through benevolence of God. In the Regvedic period non-religious education was recognized. From the hymns of Rgveda it can be inferred that technical, industrial and commercial education were introduced and as a result of it different kinds of occupation appeared.

THE EFFECT OF RELIGIOSITY ON THE DEVELOPMENT OF HUMAN VALUES

Dr. Alpana Rai, Dr. Mridula Rawal, Dept. of Education J.D. G.P.G. College, Kanpur

From the begining of Civilization religion plays a powerful role in shaping of social behavior. It has psyco-therapeutic value. There is no secret about the impact of religion on different values and social change. The present study was undertaken to investigate the effect of religiosity on the development of human values.

200 Students randomly selected from various schools and colleges of Kanpur. The distribution of boys and girls was equal in both the groups. A 2x2 factorial design was employed involving two independent variables namely-area varied at two levels i.e. rural and urban and gender varied at two levels i.e. boys and girls. Two extreme groups were drawn on the basis of scores on religiosity scale. These groups were investigated on value. Two way analysis of variance was applied for analizing the data. Result revealed that gender and area had exhibited its effect upon the development of human values. Religiosity was also shown its main and interective effect with gender and area on the development of human values.

CONCEPT OF CHARITY IN RIGVEDA

Dr. Umesh G. Shastri, Sr. Lecturer Dr. A.V. Baliga College of Arts & Science, KUMTA Uttara Kannada, Karnataka

Charity is one of the most important human values, which is expected from every human being. We often come across the idiom 'charity beings at home'. Personality of an individual is shaped by the environment that prevalis at home. We Indians give utmost importance to the quality of generosity. If charity becomes a principle of life, naturally it gives solace to the donor as well as to the needy receiver. Ishavasyopanishad begins with this stanza. ईंशावास्यमिदं सर्वं यक्तिञ्च जगत्यां जगत्। तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विघ्दनम्।। Everything on this universe is pervaded by one Supreme Deity, therefore we have to seek environment through sacrific and no one should desire for the wealth of others. We can trace the origin of the concept of charity in the oldest Veda, i.e. Rgveda. A hymns draw our attention towards charity as one of the most important human value. These hymns contain follows values:

- Highly educative in nature.
- Contains ideas and ideals of spiritual and material world.
- Name of Kings or Pious donors mentioned in these hymns may contain historical truth; it may help us to reconstruct our historty.Compassion and kindness for the down-trodden and weaker-sections of the society is an expected quality from every human being.
- By giving to the needy and worthy persons, our riches prosper.
- If charity becomes a principle of life, we can reduce the pain and sufferings of this world to a greater extent. Rgveda shows the right path in this direction.

THE CONCEPT OF DHARMA IN VEDAS

Dr. Shankar Bhat, Dr. A.V. Baliga College Arhs Scemu, Deppt. of Pol. Science, Kumta Uttara Kannada,

A proper integration of the individual and society may be said to constitute the centra problem of all social philosophy. So far as ancient Indian thinkers were concerned, they had developed two distinct disciplinse, namely Dhamasastra and Arthasastar. As s matter of fact, the ancient Indian concept of Dharma is very comprehensive and touches all aspect of man's relation with sociecty. A man by nature religious instinct and this instinct is related to other field of his life. Edmond Burke say, We Know and it is our pride to know, the man is by his constitution a religious animal, that atheism is against, not only our reason but our instinct and that it can prevail long". This paper tries to highlight on the stroy of Voyage of the concept of Dharma from Rigvedic period to end of the Vedic periop.

CULTURAL ASPECT OF Rg. VEDA

Dr. K. Geetha, Lecturer in Sanskrit, Osmania University College for women, Hyderabad

The vedic Aryans worshipped many Gods not because of the fear of natural phenomena but for gaining their favours. All the natural phenomena such as the sky. thunder. rain. air etc. were believed to be guided by their presiding duties. Favourable condition of nature was considered as the boon from the deities while natural devastations are taken to be their cures. The Hymns of Rg Veda was mainly for the glorification of the Gods in order to appease them. Indra was the God of war; in times of war people invoked him earnestly and ascribed the victory to his credit. God was regarded as a place where one could live happily through benevolence of God.

In the Rgvedic period non-religious education was recognized. From the hymns of Rgveda it can be inferred that technical, industrial and commercial education were intoduced and as a result of it different kinds of occupation appeared.divinities. In Rgvedic period the Aryans attained high level in knowledge, power and Social organization. Entire Sanskrit literature praise vedic culture and Civilization.

THE RELIGIOUS PHILOSOPHY IN THE VEDA

Dr. T. Ganesan, Senior Researcher, French Institute, Pondicheny

We may justly be proud of saying that the formal philosophical thinking of man started only with the Upaniad-s that are one of the most outstanding literary pieces of the Bharatadesa and which is the "Memory of mankind". The rsi-s who discuss these points also are aware of man's emotions and feelings. The relogious views with the supreme devotion expressed there, are again, of highest that human mind can reach. These serve as the basics for future evolution of religious doctrines and practices. When we sturdy the meditative discussions in the Upaniad-s where the reality behind the multifarious universe is so beautifully and analytically put forth along with many of the passages in other sections of the Veda lead us to believe that according to these sages Siva is the highest reality, Brahma as so eloquently stated in the Taittiriya Samhita, Taittiriya Aranyaka, Svetasvataropanisad, Atharvasikha, etc. In my brief paper the religio-philosophical discussions of these vedic texts- the samhita portions as well as the Upanisads-will be focused and their method of arriving at Siva as the supreme reality, Brahma will be highlighted.

प्राचीन भारतीय वाङ्मय में धर्म और धर्म निरपेक्षता

अनुपम कुमार शुक्ला, औरैया (उ.प्र.)

प्राचीन काल से ही भारतीयों का जीवन धर्मगत उत्कण्ठा से अनुप्राणित था और धर्म का व्यवहारिक महत्त्व कर्तव्य का समुचित पालन करना था। जिसके चलते व्यक्ति का लौकिक तथा अलौकिक उत्कर्ष होता था। जन्म से लेकर जीवनावसान तक व्यक्ति का जीवन धर्म के प्रत्येक पहलू से ओत-प्रोत था।

हमारे प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद में धर्म शब्द का प्रयोग कई स्थलों पर भिन्न-भिन्न रूपों में किया गया है -

(क) त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाम्यः।
अतो धर्माणि धारयन्।।

(ख) विषां राजानमद् भुतमध्यक्षं धर्मणामिमम्।
अग्निमीळे।।

(ग) यज्ञेय यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।

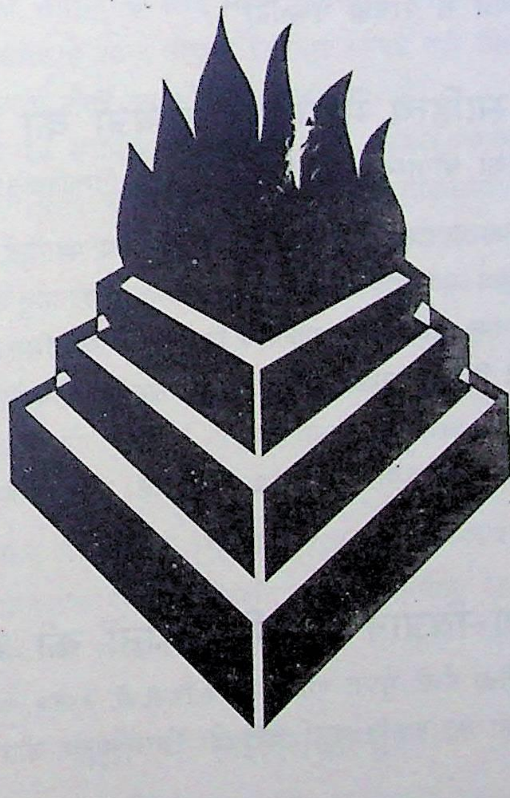
(घ) अचिती यत्व धर्मा युयोपिम।
मानस्तस्मादेनसो देव रीरिषः।।

वैदिकसाहित्य में विश्वशान्ति

डॉ. जया तिवारी उपाचार्य, संस्कृतविभाग, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

वैदिक साहित्य उदात्त सिद्धान्तों और विशाल आदर्शों के साथ-साथ अन्तःकरण की निर्मलता का आधार तथा सम्पूर्ण सद्गुणों के विकास का केन्द्रबिन्दु है। यह समस्त जगत् के जीवन को समय-समय पर आलोकित करता रहता है। आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक, उन्नति का आधार है। इनमें सौहार्द, मित्रता, समानता, संगठन और साहाय्य की भावनाएं हैं। वैदिकसूक्तों में ऐसे अनेक मन्त्र हैं- 'संगच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्। ऋग्वेद 10/291/2 अर्थात् सब साथ चलें आदि। 'सहृदयं सामनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः। अथर्व. 3/30/1 सबके हृदय समानभाव वालें हों। अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एतं सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय । ऋ. 5/60/5 सब मनुष्यों में कोई न तो जन्म से बड़ा है और न जन्म से कोई छोटा है। सब भ्रातृभाव को धारण करते हुए ऐश्वर्य और उन्नति के लिए मिलकर आगे बढ़े। 'प्रियं सर्वस्य पश्त' । अथर्व. 19/62/1 । यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः। वा.सं. 26/2 अर्थात् सब प्राणियों में मुझे प्रिय बनाइए। मैं सारी जनता के लिए कल्याण करने वाले ज्ञान का प्रसार और प्रसार कर सकूं। इन्हीं उदात्तभावनाओं से अभिभूत होकर आचार्यमनु ने 'सर्वज्ञानमयो हि सः' तथा 'धर्म जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः' मनुस्मृति 2/7, 13 कहकर धर्मशास्त्र का मूल स्रोत माना है। धर्म से ही इहलौकिक और पारलौकिक उन्नति निश्चित है। 'धर्मेण लभते सर्व धर्मसारमिदं जगत्' तथा 'यतो धर्मस्ततो जयः' रामायण एवं महाभारत में वर्णित ये कथन धर्मप्रधानता के सूचक हैं। धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धी, विद्या, सत्य, अक्रोध के अतिरिक्त यज्ञ, दान, तप एवं अहिंसा ये सभी भाव विश्वशान्ति के साधन हैं जिनके सम्यक् अनुपालन से प्रत्येक व्यक्ति, परिवार, समाज, राज्य राष्ट्र एवं विश्व का वातावरण शान्त एवं सुखमय बनने में कोई सन्देह नहीं है। निष्कर्षतः वर्तमान परिवेश में विश्वशान्ति की विद्या हमें वैदिकसाहित्य से ही प्राप्त होती है।

यज्ञ संस्कार



वैदिक यज्ञ : एक अध्ययन

डॉ. देवेन्द्र प्रताप सिंह गनपत सहाय पी.जी. कॉलेज, सुल्तानपुर
डॉ. राधा सिंह तिलक कालेज, औरैया (उत्तर प्रदेश)

यज्ञ वैदिक धर्म का मेरुदण्ड है। 'सर्व यज्ञमयं जगत्' यह सम्पूर्ण जगत् यज्ञमय है। प्रकृति सहचरी के सुरमय आंचल में निवसित मानव जाति के कल्याणार्थ तथा स्वास्थ्यवर्धनार्थ यज्ञों की महत्ता सार्वभौमिक है।

ऋग्वेद काल में यज्ञ शब्द 'यजन- के सामान्य अर्थ में आया है परन्तु बाद में, अग्नि में आहुति देने के साथ जो अनेक प्रकार के कर्मानुष्ठान किये जाते हैं, उन्हें 'यज्ञ' कहा जाने लगा। **'उद्दिश्यं देवतां द्रव्यत्यागो यागोऽभिधीयते'** अर्थात् किसी विशिष्ट देवता को उद्देश्य बनाकर द्रव्य के त्याग को 'याग' कहा जाता है। यज्ञ ही वेदों का मुख्य प्रतिपाद्य विषय है। यज्ञों में वेद मंत्रों का प्रयोग किया जाता है। मंत्रों का सार्थक प्रयोग यज्ञों में होता है। यज्ञ ही वेद मंत्रों की प्रयोगशाला है। वेद और यज्ञ एक दूसरे के पूरक हैं। ऋग्वेद के प्रथम मंत्र **'अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्'** में यज्ञ पद पहले आया है। मनुस्मृति के अनुसार यज्ञ सिद्धि हेतु प्रभु ने वेदों की रचना की अतः सिद्ध होता है कि यज्ञ वेद से भी प्राचीन है या वेद और यज्ञ दोनों साथ-साथ अस्तित्व में आये होंगे। यज्ञ को ऋषियों ने सार्वभौम बनाया। यज्ञ को व्यक्तिगत लाभ की दृष्टि न करके 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना से किया जाता था। यज्ञ में दी जाने वाली आहुति सम्बन्धित लक्ष्य तक अग्नि के द्वारा पहुंचायी जाती है। इससे सम्पूर्ण वातावरण भी परिष्कृत हो जाता है। सभी को लाभ मिलता है। यज्ञ के द्वारा लौकिक एवं पारलौकिक दोनों प्राप्तियां सम्भव हैं। यज्ञ से ही सृष्टि चलती है। ऐतरेय ब्राह्मण में कहा गया है- **''यज्ञोऽपि तस्यै जनतायै कल्पते।''** संसार में ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है, जो यज्ञ के द्वारा प्राप्त न हो सके। अतः यज्ञानुष्ठान करने से त्रिविध तापों- अधिदैविक, अधिभौतिक तथा आध्यात्मिक का विनाश होकर जगत् में सुख-शान्ति समृद्धि का साम्राज्य होता है। **'निष्कामः कुरुते यज्ञं स परंब्रह्म गच्छति।''**

वैदिक साहित्य में पञ्च महायज्ञों का विवेचन

डा. प्रतीक्षा श्रीवास्तव संस्कृत विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

वैदिक साहित्य में पञ्च महायज्ञों का उल्लेख प्राप्त होता है। मनु ने पञ्च महायज्ञों को स्वार्थों से ऊपर उठ कर अपनी आत्मा को उच्च बनाने और अपने शरीर को पवित्र कर उच्चतर पदार्थों के योग्य बनाने हेतु इनका वर्णन किया है। पञ्च महायज्ञों को शास्त्रकारों ने प्रत्येक गृहस्थ के लिए आवश्यक बतलाया है। मानवीय विचारों को विकसित करना तथा व्यक्ति को आत्मोन्नति के लिए सजग रहना ही इन यज्ञों की मूल भावना है जिसका मुख्य उद्देश्य विधाता, प्राचीन ऋषियों, पितरों, जीवों एवं सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के प्रति अपने कर्त्तव्यों को पालन करना है।

पञ्चमहायज्ञ प्राचीन काल से आधुनिक काल तक आज भी प्रचलित हैं। प्रस्तुतकर्त्ता द्वारा शोध-पत्र में वैदिक साहित्य में वर्णित पंचमहायज्ञों का विवेचन किया जायेगा।

पर्यावरण-विज्ञान में वैदिक यज्ञों की भूमिका

डॉ. गीता देवी गुप्ता एस.एन.सेन बा.वि.पी.जी. कालेज, कानपुर

ब्रह्म की स्थावर-(जड़) अभिव्यक्ति को प्रकृति कहा जाता है। जिसे मानव जीवन के लिये अपेक्षित पर्यावरण के रूप में जाना जाता है।

वैदिक मान्यता दार्शनिक विचार धारा वैज्ञानिक दृष्टि तथा सामाजिक वांछा सभी दृष्टिकोणों से **पर्यावरण और मानव का अटूट सम्बन्ध है।** आदिकाल से ही मानव ने अपने जीवन के अस्तित्व को प्राकृतिक पर्यावरण की गोद में ही पाया है क्योंकि जड़ और चेतन का समुचित सम्मिलन ही सृष्टि चक्र के प्रवाहित होने का कारण रहा है। इस प्रकार मानव जीवन के सातत्य के लिये पर्यावरण की महती भूमिका सिद्ध होती है किन्तु वर्तमान समय में भौतिकतावादी दृष्टिकोण के चलते आज पर्यावरणीय तत्त्वों में भारी

असन्तुलन उत्पन्न हो रहा है। प्राकृतिक सम्पदाओं के अधिकाधिक दोहन से प्राणी मात्र की रक्षा कवच का कार्य करने वाली ओजोन परत क्षतिग्रस्त होती जा रही है। जिसके भयावह परिणाम हमारे सम्मुख उपस्थित हो रहे हैं। मानव जीवन के अस्तित्व को खतरे में डालने वाली इन्हीं विकृतियों से बचने के लिये वैदिक ऋषिगण यज्ञ यागादि के आयोजन द्वारा पर्यावरण सन्तुलन के लिये सदा से जागरूक रहते आये हैं। पर्यावरण के महत्त्व को समझते हुए ही वैदिक ऋषि समस्त पर्यावरणिक तत्त्वों की शान्ति के लिये सदा से प्रार्थना करते रहें हैं।

पर्यावरण संरक्षण में यज्ञ से एक नवीन पदार्थ उत्पन्न होता है जिसमें सजातीय और विजातीय पदार्थों के सम्मिश्रण से एक नवीन पदार्थ उत्पन्न होता है जो सृष्टि चक्र प्रवाहित होने में सहायक होता है। पंच महाभूतों का अपेक्षित सन्तुलन बनाये रखने में यज्ञ की भूमिका सर्वोपरि है। सम्भवतः वनस्पति विज्ञान का **'एन्वायरमेन्टल इको सिस्टम'** इस यज्ञीय प्रक्रिया का ही एक पक्ष है।

इतना ही नहीं **'अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमौषधम्'** द्वारा गीता ने यज्ञ की भगवद्रूपता भी सिद्ध की है। यही कारण है कि वेदों में **'अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः'** तथा **'यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति'** द्वारा यज्ञ की महिमा का गायन किया है।

इस प्रकार पर्यावरणीय विज्ञान के सन्दर्भ में वेदों में ज्ञान विज्ञान के अथाह रत्न सूत्र निहित है जिन्हें विविध याज्ञिक चक्रों के रूप में देखा जा सकता है जो सृष्टि क्रम के सन्तुलित रूप से प्रवाहित होनें में अपनी बड़ी भूमिका का निर्वहन करते हैं। शोध पत्र में विवेच्य विषय को ही सप्रमाण विस्तार से निरूपित किया जायेगा।

यागों का विभाजन (कात्यायन श्रौतसूत्र के सन्दर्भ में)

डॉ. अरुणिमा लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ

शुक्ल यजुर्वेद के वास्तविक तथ्य को समझने के लिए महर्षि कात्यायन का श्रौतसूत्र बहुत ही उत्कृष्ट ग्रन्थ है। कात्यायन श्रौतसूत्र जितनी सुन्दर व्यवस्थाओं का वर्णन करता है उतना उत्कृष्ट निरूपण अन्यत्र नहीं मिलता, यह ग्रन्थ याज्ञिक दृष्टि से यज्ञ की विधियों, वैदिक ऋषियों के चिन्तन और शास्त्रार्थ शैली का भी एक सुन्दर ग्रन्थ है।

यज्ञ(याग) शब्द यज् धातु से घञ् प्रत्यय से निष्पन्न हुआ, यज्ञ शब्द अत्यन्त विस्तृत है विभिन्न ग्रन्थों में यज्ञ की परिभाषा भिन्न-भिन्न है किन्तु महर्षि कात्यायन ने अपने ग्रन्थ कात्यायन श्रौतसूत्र में 'यज्ञं व्याख्यास्यामः' कहकर यज्ञ की परिभाषा करने की प्रतिज्ञा करते हुए लिखा कि द्रव्यों का देवता निमित्त जो त्याग है वही याग है- 'द्रव्य देवता त्यागः' यही श्रेष्ठतम कर्म है। यज्ञ कर्म स्वरूप है, यज्ञ समस्त कामनाओं का पूरक है। यागादि अतिरिक्त कर्म पापादि में लगाने वाला है।

यज्ञ विभाजन- महर्षि कात्यायन ने अपने ग्रन्थ में यज्ञों का विभाजन भी अनिवार्य समझा। यज्ञ रहस्यमय ज्ञान की गीता है, यज्ञ ही धर्म है और धर्म ही यज्ञ है यज्ञ में समस्त जीवन की ज्योति प्रवाहित होती है, सम्पूर्ण ग्रन्थ में यत्र-तत्र सर्वत्र यज्ञ की सरिता प्रवाहित है।

महर्षि कात्यायन ने यागों का विभाजन कातीय भाष्य के अनुसार सप्त पाक संस्था, सप्त हविः संस्था, सप्तसोमसंस्था किया है-

पाक संस्था के अन्तर्गत-अष्टका, पार्वण, मासि श्राद्ध, श्रावण, आग्रहायणी, चैत्री, अश्वयुजी।

हविः संस्था के अन्तर्गत- अग्न्याधेय, अग्निहोत्र, दर्शपौर्णमास, चातुमार्सस्य, आग्रयण, निरुढपशुबन्ध, सौत्रामर्णी।

सोम संस्था के अन्तर्गत- अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय,अतिरात्र, आप्तोर्याम।

इस निबन्ध में विस्तार से उक्त विषय को स्पष्ट किया जायेगा।

यज्ञों में ललितकला

डॉ. अर्चना लालसिंग सीताबाई कला महाविद्यालय अकोला

वैदिक संस्कृति धर्मप्रधान होती है। यज्ञविधान के बिना वैदिक धर्म की कल्पना भी नहीं कर सकते। 'वेदास्तावद्यज्ञकर्मप्रवृत्ता यज्ञा प्रोक्तास्तेषुकालाश्रयेण।।' वैदिक साहित्य में ही अनेक ललित कलाएं उत्पन्न होकर शनैःशनैः विकसित व पल्लवित होती हैं। ललित कला में काव्यसंगीत और चित्रकला का समावेश होता है। यज्ञ में कलाओं के होने के कारण मनुष्य के मनोरंजन का प्रबलतम साधन हे। अतः यज्ञविधान में ही काव्य, संगीत चित्रण एवं साजसज्जा का पूर्ण प्रबन्ध होता है, फल स्वरूप मानव जाति का अन्तःकरण

सदैव प्रफुल्लित रहता है। मनोरंजन का सर्वाधिक श्रेष्ठ व प्रभावी साधन संगीत को ही माना गया है। 'साहित्य संगीत कलाविहीनः साक्षात् पशु पुच्छविषाणहीनः।' यज्ञों में सामगायन के लिए उद्गाताओं की नियुक्ति की जाती है जो सदैव वीणा के द्वारा सामगायन किया करते हैं। वीणा, मृदंग स्वर और ताल के साथ बनते हैं। सात स्वरों के उदात्त, अनुदात्त और स्वरित भेद से तीनों ग्रामों के साथ श्रुति, मूर्च्छना और तानों को साममन्त्रों के द्वारा प्रकर किया जाता है, जिससे अलौकिक आनन्द की प्राप्ति होती है। संगीत के आदि प्रचारक वैदिक याज्ञिक ही हैं। उनके द्वारा निकाले हुए सात स्वरों के अतिरिक्त आजतक किसी संशोधक जिज्ञासु विद्वान ने आठवें स्वर की उत्पत्ति नहीं की।

ललित कला का दूसरा मनमोहक विषय काव्य, वेद स्वयं काव्यरूप है। ऋग्यजुसाम वेदों के सभी सूक्तों में उच्च कोटि की काव्यात्मकता परिलक्षित होती है चाहे वह सूक्त अग्निदेवता को समर्पित हो या इन्द्र, पृथ्वी सूक्त हो या उषस्। सभी सूक्तों में देवताओं के दिव्य गुणों के सत्य सहृदय ऋषियों की विद्वत्ता के साथ साथ प्रतिभाशक्ति का परिचय होता है। वेदों से अच्छी कविता आज तक संसार में उपलब्ध नहीं है।

ललित कला की तीसरी महानवस्तु चित्रकला है। चित्रकला वैदिक यज्ञविधान का अविभाज्य अंग है। गृहप्रवेश और महादेवों की प्रतिष्ठा के समय सभी ने देखा होगा कि विविध रंगों के अन्नों से किस प्रकार यज्ञ की वेदियाँ चित्रित की जाती हैं। वेदियों की सजावट के लिए अन्नों के साथ पंख तथा रंग बिरंगे पुष्पों का आधार लिया जाता था। फलस्वरूप नयनरम्य चमत्कृति जन्य सज्जा सहज ही हो जाती थी। संगीत से कर्ण, चित्रकला से नेत्र, हवन की सुगन्धि से नासिका, नानाप्रकार के हविष्यान्न, मधुपर्क व फलों से जिह्वा और आग्नेय हवन की गर्मी से और जलीय यज्ञ के तर्पण से त्वचा की तृप्ति होती है। यज्ञों में काव्यात्मकता होने के कारण उसमें अपने आप व्याकरण, स्वर एवं लिपिकला का भी समावेश होता है और इस प्रकार याचक यज्ञ क्रिया के द्वारा प्रमुदित होते हुए अपने इष्टपूर्ति की ओर शनैःशनैः अग्रेसर होता है व मोक्षप्राप्ति के साथ साथ जनकल्याण की कामना करता है।

वेदों में यज्ञ का महत्त्व

डॉ. जीवन आशा संस्कृत विभाग, डी.ए.वी कॉलेज जालन्धर (पंजाब)

यज्ञ भारतीय धर्म का मूल है। आत्म-साक्षात्कार, स्वर्गसुख, बन्धन-मुक्ति, मनःशुद्धि, पाप प्रायश्चित् आत्मबल-वृद्धि , सिद्धियों का केन्द्र यज्ञ ही माना गया है। यज्ञों द्वारा मनुष्य को अनेक आध्यात्मिक एवं भौतिक शुभ परिणाम प्राप्त होते हैं, वेदों में यज्ञाग्नि की पग-पग पर प्रशंसा की गई है जिसमें यज्ञ में सन्निहित शक्तियों एवं उससे प्राप्त होने वाले लाभ का वर्णन किया गया है। यज्ञाग्नि हमारी रक्षा कर दीर्घायु, उत्तम अन्न, प्रजनन-शक्ति, ऐश्वर्य, समृद्धि, श्रेष्ठसन्तति एवं मंगलोन्मुखी पराक्रम के लिए सामर्थ्यशाली है(यजु. 3.63) यज्ञ से रोगों की निवृत्ति की जा सकती है। यज्ञ में प्रदान की गई रोग नाशक हवि की गन्ध शरीर में प्रविष्ट होकर रोग के कीटाणुओं के विरुद्ध अपना कार्य कर उन्हें नष्ट कर देती है। यज्ञ यहां अपनी नाशक शक्ति से प्राणिमात्र के रोगों को दूर करता है वहां यज्ञ की हवियां सूक्ष्म बनकर आकाश मार्ग से ऊपर अन्तरिक्ष में जाकर वृष्टि को उत्पन्न करने का भी कारण बनती है।

यज्ञ के द्वारा वृष्टि का वैज्ञानिक विश्लेषण भी किया गया है। वेद में जल तत्त्व को उत्पन्न करने वाली इन गैसों के 'मित्र' और 'वरुण' के नाम से कहा गया है(ऋ. 1.2.7) इसके अतिरिक्त जीवन शक्ति को संचार का साधन भी यज्ञ को बताया गया है। वेद में बताया है कि जो मनुष्य विधिपूर्वक पुत्रेष्टि आदि यज्ञ करता है उसे अवश्य ही सन्तान की प्राप्ति होती है। इसके अतिरिक्त वेद ने यज्ञ के द्वारा मनुष्य को कीर्तिमान एवं यशस्वी बनने का मार्ग बताया गया है। यज्ञ में उत्तम समिधा आदि सामग्री से और वेद की स्तुतिपरक ऋचाओं से अपने को अर्पण करता है वह धनैश्वर्य से, तेज से तथा यशकीर्ति से मनुष्यों में चमकता है और अन्त में आत्मज्ञानी बनकर अमर हो जाता है। (ऋ. 6.5.55; वेद यज्ञ के द्वारा शारीरिक पवित्रता के साथ-साथ मानसिक पवित्रता की बात भी कहता है। अथर्ववेद में प्रातः और सायं यज्ञ करने का आदेश देते हुए उसकी महिमा का वर्णन किया है कि प्रत्येक सायंकाल को इस गार्हपत्य अग्नि से किया यज्ञ प्रातःकाल तक हमारे मन को शुद्ध, पवित्र तथा प्रसन्न रखने वाला है। यज्ञ हमें सांसारिक सुख प्रदान करने के पश्चात् परमात्मा दर्शन में भी सहायक है।

वैदिक साहित्य में यज्ञविधान

डॉ. रीता शर्मा प्रवक्ता, रायबरेली

भारतीय संस्कृति आदि काल से ही अध्यात्म प्रधान रही है। इस प्राचीन संस्कृति में यज्ञों का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है क्योंकि यज्ञ के माध्यम से ही त्यागमय जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा प्राप्त होती थी। यज्ञ वैदिक संस्कृति की समन्वय भावना का प्रतीक है। वैदिक मान्यताओं के अनुसार यज्ञ इस धरा पर स्वर्गीय देवों के मिलन का दिव्य योग है तथा यज्ञ ही वैदिक युग में आर्थिक, सामाजिक और नैतिक जीवन का केन्द्र रहा है। अत: उसे वैदिक धर्म का स्तम्भ कहा जा सकता है क्योंकि उसमें समस्त देवों की शक्तियाँ और सम्पूर्ण मानवता का स्वरूप समन्वित है।

ऐतरेय ब्राह्मण में वैदिक कर्मों की संख्या पाँच मानी गई है- 1. अग्निहोत्र, 2. दर्शपूर्णमास, 3. चातुर्मास्य, 4. पशु तथा 5. सोम। शतपथ ब्राह्मण में यज्ञ को पञ्चाङ्ग सम्पन्न कहा गया है। ये पञ्चाङ्ग है- 1.देवता, 2. हविर्द्रव्य, 3. मन्त्र, 4. ऋत्विक्, 5. दक्षिणा। यज्ञ की पूर्णता तथा शुद्धि के लिए इन पञ्चाङ्गों की समग्रता अत्यावश्यक है।

गीता में कहा गया है कि निष्कामभाव से किया गया योगस्थ कर्म या स्वभावसिद्ध कर्म ही यज्ञ कहलाता है। यहाँ तेरह प्रकार के यज्ञों का उल्लेख प्राप्त होता है-

1. ब्रह्मार्पण, 2.दैव, 3. ब्रह्माग्नि, 4. संयमाग्नि, 5. इन्द्रियाग्नि, 6. योगाग्नि, 7. द्रव्याग्नि, 8. तपोयज्ञ, 9. भोगयज्ञ, 10. स्वाध्याय यज्ञ, 11. ज्ञानयज्ञ, 12. प्राणापक यज्ञ, 13. प्राणयज्ञ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि यज्ञ के द्वारा ही मनुष्य देवताओं की स्तुति कर उनके लिए आहार प्रस्तुत करता है। जिससे वे पुष्ट होकर मानव कल्याणार्थ नाना कर्मों का सम्पादन स्वयं करते हैं। इन यज्ञों का केवल आध्यात्मिक दृष्टि से महत्त्व नहीं है अपितु ये सामाजिक और प्राकृतिक दृष्टि से भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं अत: यज्ञाराधन ही मानव मंगल के प्रधान पथ हैं।

भारतीय संस्कृति में यज्ञ की महिमा

जीवन वेदालङ्कार (शोधच्छात्र) गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।

'यज्ञ' शब्द 'यज्' धातु से निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ है- "देवपूजा संगतिकरण एवं दान" यह वैदिक धर्म का एक
वेदों में यज्ञों का महत्त्व अनेक स्थानों पर अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में वर्णित किया गया है।
आवश्यक तत्त्व है, इसमें कोई सन्देह नहीं
अत: वैदिक कालीन मनुष्यों में यह धार्मिक भावना कूट-कूट कर भरी थी। वे देवताओं की पूजा एवं तृप्ति, विद्वानों एवं सज्जन पुरुषों
की संगति तथा दान दक्षिणा प्रदान कर सद्गति की प्राप्ति हेतु यज्ञों का अनुष्ठान किया करते थे। इन यज्ञों का स्वरूप ऋग्वैदिक
काल में अत्यन्त सरल था। यज्ञकुण्ड में अग्नि का आधान कर उसमें घृत, अन्न व सोमरस आदि की आहुतियाँ अर्पित की जाती
थीं, जिसके सम्बन्ध में यह धारणा थी कि अग्नि द्वारा वे देवताओं के पास पहुँच जाती हैं।

यज्ञ उस भावना के भी प्रतीक होते हैं जिससे मनुष्य केवल अपने सुख साधन के लिए ही प्रयत्नशील नहीं रहता है अपितु
परार्थ भी देखता है। इसलिए आहुति देते समय भी जिन मन्त्रों का उच्चारण किया जाता है उनके साथ "इदं न मम" यह भावना भी
जुड़ी होती है। अर्थात् उसका द्रव्य केवल उसके अपने लिए नहीं है, अपितु उसका उपयोग सर्वोपकार के लिए किया जाना चाहिए।
यजुर्वेद के ऋषि का भी यही उपदेश है कि तुम लोग वायु औषधि ओर वर्षा जल की शुद्धि द्वारा सबके उपकार हेतु घृतादि शुद्ध
वस्तुओं और समिधा से अतिथि रूप अग्नि को नित्य प्रकाशमान करो तथा यज्ञ करके सबका परोपकार करो। यज्ञ के इस सार्वभौमिक
अर्थ को अंगीकार करते हुए उत्तर काल निर्मित अनेकों ग्रन्थों ने इसे "यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म" कहकर इसकी अनिवार्यता तथा महत्ता
को और अधिक बल प्रदान किया है।

यज्ञ में अग्नि की स्थापना अतिथि रूप में की जाती है। यह प्रथम ही कहा जा चुका है कि यज्ञाग्नि को देवताओं व मनुष्यों
के बीच माध्यम से ही गृहस्थ यज्ञ का सम्पादन करते हैं। वैदिक कालीन मनुष्यों के लिए तो यह अत्यावश्यक कर्म था कि वे
आहिताग्नि बने और आजीवन सपत्नीक यज्ञाग्नि में हवि प्रदान करें। ये यज्ञ दैनिक, पक्षिक, मासिक व वार्षिक होते हैं। इसके अतिरिक्त

महत्त्वपूर्ण अवसरों तथा जीवन सम्बन्धी मुख्य घटनाओं पर विशेष यज्ञों का आयोजन भी किया जाता है। मुख्य रूप से प्रतिदिन किये जाने वाले यज्ञों में पञ्चमहायज्ञों का स्थान महत्त्वपूर्ण एवं सर्वोपरि है। ये पञ्चमहायज्ञ हैं- ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, बलिवैश्वदेव यज्ञ, अतिथि यज्ञ।

वेदों में यज्ञ का महत्त्व

डॉ. ऋतु वार्ष्णेय (स.अ.) ब्रह्म बाजार तिराहा बहजोई (मुरादाबाद)

वेद आर्य सभ्यता एवं संस्कृति का मूलाधार है। ज्ञान विज्ञान का उज्ज्वल धाम है। 'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्' इस बात को पुष्ट करता है कि धर्म का मूल वेद ही है। वेद के छः अंग हैं- शिक्षा, कल्प, निरुक्त, व्याकरण, छन्द व ज्योतिष।

कल्प सूत्र की आधारभित्ति कर्मकाण्ड है जिसके अन्तर्गत श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र तथा शुल्वसूत्र आते हैं। वेद विधि, नियम, न्याय का सारगर्भित वाक्य रूप हैं।

'कल्पोनामवेद विहितानां कर्मणामनुपूर्वेण कल्पनाशास्त्रम्।'

यज्ञ वैदिक कर्म का मेरुदण्ड है। यज्ञ की तीन संस्थायें हैं- सोमयज्ञ, हविर्यज्ञ, पाक यज्ञ। मेरे शोधपत्र में इन तीनों ही संस्थाओं के अन्तर्गत वर्णित यज्ञों अर्थात् इन तीनों की सम्मिलित संख्या इक्कीस यज्ञों का ही विवेचन होगा।

यज्ञ पञ्चांग सम्पन्न होते हैं। यज्ञ ब्रह्मोद्भव माने गये हैं। देह शुद्धि, इन्द्रियशुद्धि, अहंकार शुद्धि, चित्त शुद्धि वाला कर्म ही यज्ञ है जिसका प्रधान फल स्वर्ग प्राप्ति है।

वेद भारतीय चिन्तन का मूल हैं । यद्यपि उनकी महनीयता पर कुछ भी कहना सूर्य को प्रकाश दिखाने के समान ही है तथापि मुख्य रूप से वेद का मूलाधार कल्प अर्थात् यज्ञ का वेदों में महत्त्व ही मेरे शोधपत्र का विवेच्य विषय होगा क्योंकि 'यज्ञः कर्मसमुद्भवः' कहा गया है। इसीयज्ञ पर मेरा यह आलेख आधारित होगा।

वैदिक साहित्य में कर्मकाण्ड

आ. धनीराम संगर(शोधार्थी) गुरुकुल कांगड़ी वि.वि. हरिद्वार

आज वैदिक, पौराणिक, तान्त्रिक और मिश्रित चार प्रकार से कर्मकाण्ड को बांटा जाता है। मूलतया कर्मकाण्ड वैदिक ही था। कालान्तर में कर्मकाण्ड का विस्तार परिवर्तन होता रहा। यह सब ज्ञान व समय की कमी या अन्य परिस्थितियों के कारण हुआ है। नये विचार नयी कल्पनायें, ईश्वराराधना से नई प्रेरणायें, नये उपदेश भी प्रचलित हो गये। पर बीज तो बीज है। जो वेद में है। बीज भी जहाँ भी जिस भी विधि से बोया जाये, अंकुर तो एक जैसा ही फूटता है यही बात कर्मकाण्ड में भी देखी जाती है। मैंने अपने लेख में यही दर्शाने का प्रयास किया है।

वेदों में 'यज्ञ' का स्वरूप

धीरज कुमार(शोधार्थी) बागपत(उत्तरप्रदेश)।

सम्पूर्ण वैदिक संस्कृति को यदि एक शब्द में समाहत करें तो वह शब्द 'यज्ञ' है। 'यज्ञ' शब्द बड़ा ही गम्भीर और व्यापक अर्थ रखता है। धात्वर्थ के अनुसार 'यज्ञ' शब्द के तीन अर्थ होते हैं-

1. **देवपूजा**- जो लोक और परलोक के सुख के लिए विद्या, ज्ञान और धर्म के सेवन से देव अर्थात् विद्वानों का सत्कार करना।
2. **संगतिकरण**' अच्छी प्रकार पदार्थों के गुणों के मेल और विरोध के ज्ञान से शिल्प विद्या का प्रत्यक्ष करना।
3. **दान**- नित्य विद्वानों का समागम अथवा शुभ गुण विद्या, सुख, धर्म और सत्य का नित्य दान करना। इस प्रकार परोपकार आदि उत्तम कार्य तथा धर्म-विज्ञानादि की उन्नति करना यज्ञ है किन्तु मध्यकाल में यज्ञ से अभिप्राय मात्र अग्निहोत्रादि कर्मकाण्ड ही ग्रहण

किया जाने लगा तथा वैदिक अग्निहोत्रादि द्रव्ययज्ञों को विकृत किया गया। 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' यह कहकर अग्निहोत्रादि यज्ञों में पशुहिंसा की जाने लगी। सायण जैसे वेद भाष्यकार भी यथार्थ को न जानकर अन्ध परम्परा में बह गये। आचार्य सायण अथर्ववेद के नवम काण्ड के चतुर्थ सूक्त के भाष्य की उत्थानिका में लिखते हैं- 'ब्राह्मण वृषभ(बैल) को मारकर उनके मांस से भिन्न-भिन्न देवताओं के लिए आहुति देता है इसमें वृषभ की प्रशंसा और उसके अंगों में से कौन-कौन अंग किस-किस देवता को प्रिय है- इसका विवेचन किया गया है और वृषभ की बलि देकर हवन करने के महत्त्व का और उससे प्राप्त होने वाले श्रेय का वर्णन किया गया है। इस प्रकार भाष्यकारों द्वारा वेदमन्त्रों का मनमाना अयथार्थ अर्थ किया गया। जबकि यज्ञ वाची अध्वर शब्द से स्पष्ट है कि यज्ञों में किसी तरह की पशहिंसा नहीं हो सकती। अध्वर शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए यास्काचार्य लिखते हैं- अध्वर इति यज्ञ नाम 'ध्वरति हिंसाकर्मातत्प्रतिषेध:।' वेदों में यज्ञ के परामर्श अथवा कुछ विशेषण के रूप में अध्वर शब्द का प्रयोग सैकड़ों स्थानों पर उपलब्ध होता है जिससे सिद्ध होता है कि यज्ञ हिंसारहित होता है।

संक्षप में यही कहा जा सकता है कि वेदों में 'यज्ञ' समस्त उत्तम कार्यों के लिए प्रयुक्त हुआ है। अतएव शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है- 'यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म।'

वेदों में कर्मकाण्डीय आदेशों का अध्ययन

डॉ. सुदर्शनदेव आचार्य प्रधानाध्यापक, गुरुकुल आश्रम आमसेना खरियार रोड़, नवापारा(उड़ीसा)।

मीमांसा सूत्रों में सम्पूर्ण वेदों का सार वर्णित है। यह दर्शन वेदों को धर्मशास्त्र मानता है और प्रेरणा, आदेश या निर्देश को ही धर्म का लक्षण बताया है। यजुर्वेद को कर्मकाण्ड विषयात्मक माना जाता है। यद्यपि अन्य वेदों में भी कल्प के अनुसार कर्मकाण्ड प्राप्त होते हैं, जिनका वर्णन ऐतरेय, सामब्राह्मण, गोपथब्राह्मणों में उपलब्ध होता है परन्तु अर्थ विशेषात् यजुर्वेद को ही कर्मकाण्ड विषयात्मक कह दिया जाता है। यजुर्वेद में 'होतर्यज' जैसे वाक्यांश बहुत हैं। तथा समिधाग्निं दुवस्यत, घृतैर्बोधयतातिथिम् आस्मिन् हव्या जुहोतन। इस मन्त्र में घृत, समिधा और सामग्री से अग्निहोत्र करने का स्पष्ट आदेश है। यज्ञ ही कर्म है, यज्ञ हीश्रेष्ठतम कर्म है। अत: यज्ञ और श्रेष्ठतम कर्म दोनों एकार्थ हैं।

यज्ञ का स्वरूप आज भी हम किसी न किसी रूप में देखते हैं। वैदिक साहित्य में यह ऋग्वेद उपनिषदों तक सतत् आकर्षण का केन्द्र बना रहा। वैदिक साहित्य दीर्घ समय तक फैला होने के कारण इसमें उतार चढ़ाव अवश्य होता रहा, लेकिन इस संकल्प का प्रवाह पानी की तरह निरन्तर बना रहा। ऋग्वेद में हमें सर्वप्रथम यज्ञ के दिग्दर्शन होते हैं। यहाँ यज्ञ भावना बड़ी सरल है। इसके अवान्तर काल में यज्ञ विकासोन्मुख होता गया। ब्राह्मण साहित्य में तो यज्ञों का ही साम्राज्य दिखाई देता है। सारे विषय यज्ञ विद्या के ही आसपास घूमते दिखाई देते हैं। यज्ञस्थली ऐसा मालूम पड़ती हैं कि मानो वह एक विशाल शिक्षण संस्था हो या एक विशाल मानचित्र हो, जहां अनेक प्रकार के विषयों भूगोल, इतिहास, गणित, शिल्पशास्त्र, संगीत, आयुर्वेद, साहित्य, दर्शन, नक्षत्रविद्या आदि का समुचित ज्ञान दिया जाता है। ब्राह्मणों के काल में यज्ञ पर पुरोहितों का एकाधिकार हो जाता है। ब्राह्मण लोग धरती पर देवता बन बैठते हैं औरइसे लोग जादू टोना समझने लग जाते हैं। इससे यज्ञ की वास्तविक भावना लुप्त होती जाती है, जो याज्ञवल्क्य, जनक विदेह आदि के कोप भाजन और आलोचना का कारण बन जाती है। वे भौतिक यज्ञ को देवताओं को प्रसन्न करने के अतिरिक्त कुछ नहीं समझते और इस प्रकार की भावना जहाँ डर और स्वार्थ की भावना प्रबल होती हैं, किये गये यज्ञ को वे तुच्छ समझते हैं। वे यज्ञ के आध्यात्मिक पक्ष पर अधिक जोर देते हैं। उनका कहना है कि यज्ञ के प्रत्येक मन्त्र को विचार पूर्वक गाया जाये और प्रत्येक क्रिया मन से की जाये। इस प्रकार के विचार अन्त में आरण्यकों और उपनिषदों में परिपक्व अवस्था में पहुँच जाते हैं। जहाँ केवल यज्ञ के आध्यात्मिक पक्ष पर ही जोर दिया गया है। यज्ञ वहाँ आत्मशुद्धि और ब्रह्म प्राप्ति का साधन बन जाता है।

वैदिक यज्ञ : एक समीक्षा

स्वयं प्रभा(शोधच्छात्रा) गुरुकुल कांगड़ी वि.वि. हरिद्वार

यज्ञ वैदिक धर्म का मेरुदण्ड है। ऋग्वेद-काल में 'यज्ञ' शब्द 'यजन' के सामान्य अर्थमे आया है, परन्तु बाद में अग्नि में आहुति देने के साथ जो अनेक प्रकार के कर्मानुष्ठान किये जाते हैं उन्हें 'यज्ञ' कहा जाने लगा। 'उद्दिश्यं देवतां द्रव्यत्यागो यागोऽभिध ीयते' अर्थात् किसी विशिष्ट देवता को उद्देश्य बनाकर द्रव्य के त्याग को 'याग ' कहा जाता है। यज्ञ भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग है। वैदिक साहित्य के अनुशीलन से स्पष्ट होता है कि गर्भाधान से लेकर मृत्यु पर्यन्त जो भी संस्कार वर्णित किये गये हैं, उनमें किसी न किसी रूप में यज्ञ का विधान है। व्यक्ति का जीवनचार आश्रमों (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यास) में विभक्त है। 'यज्ञ' ब्रह्मचर्य, गृहस्थ तथा वानप्रस्थ तीनों आश्रमों के लिए विहित है। समाज को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार वर्णों में बांटा गया है। यज्ञ ब्रह्माण्ड के तीनों लोकों (द्युलोक, अन्तरक्षिलोक, पृथिवीलोक) में व्याप्त है। 'यज्ञ' वैदिक दर्शन को समझने, शाश्वत सत्य को प्राप्त करने और परमात्मा को प्राप्त करने का साधन है।

वैदिक ऋषियों ने जिस परम सत्य का दर्शन किया उसी को अपने जीवन में उतारा और उसी के माध्यम से समाज का निर्माण कियाा आज भी हमें यज्ञ को उसी रूप में समझना है जिसके माध्यम से सबको मधुमय जीवन की प्राप्ति हो सके।

संस्कार विशेष में अग्नि के विविध नाम

डॉ. सुनील कुमार काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

वैदिक सिद्धान्त के अनुसार समग्र सृष्टि के मूल रूप में तेजोमय हिरण्यगर्भ का स्वरूप निरूपित हुआ है। यह परमदेव सृष्टि के चेतन अचेतन रूप समस्त पदार्थों एवं जीव जगत में अन्तर्हित है। इसी तेजोमय तत्व का भोक्ता एवं भोग्यरूप द्विविध भाव क्रियाशील है। मनुष्य का जीवन एवं अस्तित्व सृष्टिगत समस्त प्राणियों में उत्कृष्ट एवं श्रेष्ठ है। मनुष्य की यह उत्कृष्टता एवं श्रेष्ठता उसकी दिव्य बौद्धिक सम्पत्ति के आधार पर निदर्शित हुई है। इस बौद्धिक सम्पत्ति के माध्यम से वेदों में वर्णित संस्कार कर्म एवं यागादि विज्ञानगत प्रयोगों के लिए अग्नि के तत्तद् गुण विशिष्ट स्वरूपों का संयोजन विहित हुआ है। यह संस्कार कर्म एवं यागादि अनुष्ठान आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक सम्पत्ति की समग्र रूप से प्राप्ति तथा स्वयं की पूर्णता प्राप्ति हेतु विवेचित हुए हैं। कोई भी संस्कार कर्म तथा यागादि अनुष्ठान उस विशेष कर्म के लिए विहित विशिष्ट नामगुण युक्त अग्नि के आवाहन एवं प्रतिष्ठा के साथ सम्पन्न होते हैं तो वह कर्मविशेष अभीष्ट फल को प्रदान करने वाला सिद्ध होता है। इस वैज्ञानिक तथ्य के परिप्रेक्ष्य में संस्कार कर्म एवं यागादि के पोषक अग्नि के निम्नलिखित विशिष्ट नाम अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं उपादेय हैं। जिनका वर्णन करना इस शोधपत्र का उद्देश्य है। 'शब्दकल्पद्रुम' आदि के आधार पर शुक्तयजुर्वेद में अग्नि के संस्कार विशेष में विविध नामों का वैज्ञानिक परक अर्थ प्रमाणित किया जायेगा।

वैदिक पञ्चमहायज्ञविधान : एक दयानन्दीय दृष्टि

डॉ. अरुणिमा रानी प्रवक्त्री संस्कृत विभाग सनातन धर्म कॉलेज, भोपा रोड, मुजफ्फरनगर

ब्राह्मणों व श्रौतसूत्रों में वर्णित पवित्र श्रौतयज्ञों का सम्पादन सब मनुष्यों के लिए सम्भव न प्रतीत होने पर, प्राचीन ऋषियों ने मनुष्य मात्र के लिए उसकी भक्ति, कृतज्ञता, सम्मान, प्रियस्मृति, उदारता, सहिष्णुता आदि भावनाओं को प्रकट करने के लिए पञ्चमहायज्ञों का विधान किया। इनका उद्देश्य मनुष्य का स्वार्थभावों से ऊपर उठाकर ब्रह्मोपासना द्वारा सौम्य बनाकर अनादि ईश्वर की प्राप्ति और आत्मा की उन्नति कराना रहा है।

पंचमहायज्ञों का उद्गमस्थल तैत्तिरीयारण्यक को माना जाता है। इसके अनुसार- भूतयज्ञ, मनुष्ययज्ञ, पितृयज्ञ, देवयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ ये पांच महायज्ञ हैं। अथर्ववेद में चार महायज्ञों का नामान्तर से उल्लेख मिलता है। प्राचीन ऋषियों के अनुसार- अहुत, हुत, प्रहुत, ब्राह्महुत

एवं प्राशित ये पांच महायज्ञ हैं, ऐसा मनु का कथन है।

यद्यपि तैत्तिरीयारण्यक व अन्य ग्रन्थों में पाँचों यज्ञों के क्रम में भूतयज्ञ को प्रथम रखा है। किन्तु ऋषि दयानन्द ने प्रचलित विधियों की सघनसमीक्षा के पश्चात् अपनी सूक्ष्मेक्षिका से एक सरल, आडम्बररहित तथा बुद्धिगम्य ब्रह्मयज्ञ का विधान किया। ऋषिवर मनुप्रोक्त 'ऋषियज्ञ' ओर 'ब्रह्मयज्ञ- पदों को समानार्थी मानकर, उसका अर्थ वेदादि शास्त्रों का पढ़ना-पढ़ाना, सन्ध्योपासन व योगाभ्यास करते हैं। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में इसका आशय कुछ इस प्रकार लिखते हैं कि 'उनमें से प्रथम एक ब्रह्मयज्ञ कहाता है, जिसमें अंगों के सहित वेदादि शास्त्रों का पढ़ना-पढ़ाना तथा सन्ध्योपासन अर्थात् प्रातःकाल और सायंकाल में ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना सब मनुष्यों को करनी चाहिए। इस प्रकार स्पष्ट है कि ऋषि दयानन्द की दृष्टि में ब्रह्मयज्ञ का अर्थ केवल वेद वेदाङ्गों का अध्ययन करना नहीं है और न ही आडम्बरों से पूर्णविधि ही है अपितु उनके अुसार ब्रह्मयज्ञ का तात्पर्य स्वाध्याय और योगाभ्यासपूर्वक ईश्वर के सान्निध्य से आत्मज्योति को उद्‌बुद्ध कर आत्मबोध प्राप्त करना है।

प्राचीन ग्रन्थों में प्राप्त ब्रह्मयज्ञ की कुछ आडम्बरपूर्ण झलकियाँ-

आश्वलायनगृह्यसूत्र में ब्रह्मयज्ञ विधि मे ध्यान करते हुए क्षितिज की ओर देखते रहने का विधान प्राप्त होता है। याज्ञवल्क्यस्मृति में ब्रह्मयज्ञ में वेद, इतिहास व दार्शनिक ग्रन्थ पढ़ने का उल्लेख है। धर्मसिन्धु में प्रातः होम मध्याह्न संध्या या वैश्वदेवके उपरान्त मात्र एक बार ब्रह्मयज्ञ करने की बात कही है। साथ ही पितृतर्पण भी विधि का हिस्सा माना है। गायत्री सन्ध्या, त्रिकाल सन्ध्या, सन्ध्या प्रयोग और वैश्यसन्ध्या ये चार हस्तलिखित सन्ध्या पद्धतियाँ वर्णगत भेद को प्रकट करने वाली हैं। तैत्तिरीयारण्यक में ब्रह्मयज्ञ विधि में लिखा है कि "अपने बाएं हाथ को दाहिने पैर पर रखकर, करतल को दाहिने करतल से ढककर और दो हाथों के बीच में दर्भ को रखकर 'ओम्' कहना चाहिए।" ब्रह्मयज्ञ की इन विधियों का पढ़ने से इतना अवश्य प्रतीत होता है कि ये विधियाँ मानों मात्र विधि सम्पन्न करने के लिए हैं, इनका अन्तिम लक्ष्य ईश्वर प्राप्ति व आत्मबोध प्राप्त करना नहीं है। इनमें आडम्बर की पूर्णता व यथार्थ तत्त्व का अभाव दृष्टिगोचर होता है।

वेदों में यज्ञ का स्वरूप

डॉ. शुभा सिंह गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

जिन कर्मों द्वारा देवताओं के लिए अग्न्यादि प्राकृतिक तत्त्वों का गुण संवर्धन होता है। विद्वानों का सत्कार किया जाता है, शिल्पकलाओं की सिद्धि होती है, महापुरुषों का संग होता है तथा आत्मा परमात्मा का संयोग होता है। सांसारिक प्राणियों का उत्कर्ष तथा विद्यादि शुभ कार्य सम्पन्न किये जाते हैं, उस क्रिया को यज्ञ कहते हैं। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने यजुर्वेद के प्रथम अध्याय के द्वितीय मन्त्र के भाष्य में लिखा है कि - 'धात्वर्थाद् यज्ञस्त्रिधा भवति।'

1. विद्याज्ञानधर्मानुष्ठानं वृद्धानां देवानां विदुषाम् ऐहिक पारमार्थिकसुख-सम्पादनाय सत्कारणम्।
2. सम्यक् संमेल-विरोध-ज्ञानं-संगत्या शिल्पविद्या प्रत्यक्षीकरणं नित्यं विद्वत्समागमानुष्ठानम्।
3. विद्या-सुख-धर्मादि शुभगुणानां नित्यं दानकरणमिति।

उक्त विषय की ही प्रस्तुत निबन्ध में विवेचना की जायेगी।

वेदों में यज्ञ महिमा का वर्णन

महेश चन्द्र बहुगुणा वेदाचार्य, ऋषिकुल विद्यापीठ सं. महाविद्यालय, हरिद्वार

यज्ञेषु देवास्तु यन्ति यज्ञे सर्व प्रतिष्ठितम्। यज्ञेनध्रियते पृथ्वी यज्ञस्तारयति प्रजाः।।
अन्नेन भूता जीवन्ति यज्ञे सर्व प्रतिष्ठितम्। पर्जन्यो जायते यज्ञात्सर्व यज्ञमयं ततः।।

यज्ञ वैदिक संस्कृति का प्रधान अंग है। यज्ञ के द्वारा ही समस्त संसार का कल्याण होता है। यज्ञ में लोक कल्याण की भावना विशेष रूप से निहित रहती है। इसीलिए कहा गया है

यज्ञेन तस्यै जनतायै कल्पते ....।

यज्ञ जनता के कल्याण के लिए किया जाता है। यज्ञ से लोक कल्याण की भावना मुख्य है। अत: लोक कल्याण की दृष्टि से सभी युगों में यज्ञ की नितान्त आवश्यकता है।

पञ्चमहायज्ञ विमर्श

सन्दीपन कुमार आर्य व्याख्याता संस्कृत, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,टौंक

भारतीय संस्कृति में यज्ञों का महत्त्व सर्वविदित है। भारतीय संस्कृति अध्यात्म प्रधान संस्कृति है। फलत: उसमें त्याग को सर्वोपरि स्थान दिया गया है। प्राचीन काल में यज्ञ संपादित करना प्रत्येक आर्य गृहस्थ का परम कर्तव्य था क्योंकि यज्ञ के माध्यम से उसे त्यागमय जीवन की प्रेरणा प्राप्त होती थी। यह त्याग की भावना यज्ञ कर्म के द्वारा ही संस्कार रूप में जीवन में ओतप्रोत हो जाती थी। पञ्चमहायज्ञों का विधान मुख्य रूप से नित्यकर्मों में किया गया है। इन यज्ञों को मनुष्य द्वारा अवश्य किया जाना चाहिए। महर्षि मनु ने मनुस्मृति में इन पञ्चमहायज्ञों के विधान का उल्लेख निम्न प्रकार से किया है-

'वैवाहिकेऽग्नौ कुर्वीत गृह्यं कर्म यथाविधि।
पञ्चयज्ञविधानं च पंक्तिं चान्वाहिकीं गृही।। मनु 3/67

अर्थात गृहस्थी पुरुषों द्वारा पञ्चमहायज्ञों को अवश्य करना चाहिए। पञ्चमहायज्ञ ये हैं- ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, बलिवैश्वदेवयज्ञ और अतिथियज्ञ। अत: जो गृहस्थ व्यक्ति इन पञ्चमहायज्ञों को करता है वह नित्य होने वाले पापकर्मों से बचता है। साथ ही देवयज्ञ द्वारा बहुत बड़ा उपकार मानव जाति पर करता है। इसलिए न करने से बहुत बड़ा पाप होता है और करने से बहुत बहुत उपकार होता है।

यज्ञ

इलिका शर्मा लखनऊ

हिन्दु धर्म वाङ्मय में सम्पूर्ण जीवन को ही यज्ञ माना है। ये एक पुनीत कार्य है मानव जीवन का प्रत्येक पल यज्ञ की एक एक आहुति के समान है। शरीर धर्म का निर्वहन करते हुए मनुष्य शरीर की रक्षार्थ जो कुछ करता है वह यज्ञ क विभिन्न चरण हैं उसका सम्पूर्ण जीवन महायज्ञ है। अन्त में अपने जीवन की पूर्ण आहुति के रूप में अपने आप को आग में समर्पित करता है।

मानव जीवन रूपी महायज्ञ की सफलता है विभिन्न यज्ञों का पूर्ण विधान। भारतीय जीवन में यज्ञ का बहुत महत्त्व है प्राचीन भारतीय संस्कृति ही यज्ञमय थी। ब्राह्मण ग्रन्थों में यज्ञ का पूर्ण साम्राज्य है इस लिए शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है 'यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म' अर्थात् समस्त कर्मो में से यज्ञ श्रेष्ठ कर्म है।

वैदिक यज्ञ ही वैदिक धर्म का आधार है यज्ञ को सूर्य के समान तेज माना गया है। शतपथ ब्राह्मण में ही यज्ञ को प्रजापति माना है -एष वै प्रत्यक्षं यज्ञो यत्प्रजापति:'। अर्थात् प्रजापति ही है जो प्रत्यक्ष यज्ञ है। संसार में जड़ जगत में जो यज्ञ हो रहा है सूर्य उसका केन्द्र है इसके सम्बन्ध में शतपथ ब्राह्मण कहाता है 'स य: स यज्ञोऽसौ स आदित्य:' अर्थात् जो यज्ञ है वह यही सूर्य है। अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेध यज्ञ तक सभी परमात्मा कीही पूजा है। यज्ञ की अग्नि में घृत आदि की आहुति दी जाति है यह आहुति सूर्य की ओर जाती हैं सूर्य के प्रभाव से मेघ मण्डल के साथ मिश्रित होकर हवि(यज्ञ में अर्पित की हुई सामग्री) नीचे उतर कर वर्षा करती है जिससे अन्न उत्पन्न होता है अन्न से प्रजा की रक्षा होती है यज्ञ से सृष्टि के नियम को सहायता मिलती है, अश्वमेध यज्ञ से पापों का नाश होता है। यज्ञ से जन्ममरण के बन्धन से मुक्ति मिलती है तथा अनिष्ट का नाश होता है।

संक्षेप में देवताओं को प्रसन्न करके अपनी कामनाओं को पूर्ण करने के लिए उनके निमित्त प्रिय खाद्य पेय पदार्थों का विधि पूर्वक अग्नि में समर्पण ही यज्ञ है।

गृह्यसूत्रोक्त पञ्चमहायज्ञ तथा आधुनिक समाज : एक परिशीलन

सरोज कुमार शुक्ल(शोधच्छात्र) लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

वेदाङ्गों में कल्पवेदाङ्ग के अन्तर्गत गृह्यसूत्रों का समावेश किया गया है। इन गृह्यसूत्रों में विभिन्न विषयों के वर्णन के साथ गृहयज्ञों का उल्लेख प्राप्त होता है। ये गृह्ययज्ञ- पञ्चमहायज्ञ, पाकयज्ञ, इन्द्रयज्ञ तथा सीतायज्ञ आदि हैं। इनमें पञ्चमहायज्ञों का उल्लेख विभिन्न गृह्यसूत्रों तथा अन्य धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में किया गया है। पारस्कर गृह्यसूत्र में पञ्चमहायज्ञों के विषय में कहा गया है- **अथातः पञ्चमहायज्ञाः। वैश्वदेवादन्नात्पर्युक्ष्य स्वाहाकारैर्जुहुयाद्ब्राह्मणो प्रजापतये गृह्याभ्यः कश्यपायानुमतय इति।** (पारस्कर गृह्यसूत्र 2/9/1-2)

ये पञ्चमहायज्ञ हैं- ब्रह्मयज्ञ, पितृयज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ तथा नृयज्ञ। इन पञ्चमहायज्ञों का सम्पादन गृह में ही किया जाता है। इन यज्ञों में श्रौतयाग के समान क्रियायें नहीं होती है फिर भी इनका अत्यन्त ही महत्त्व है। आधुनिक समय में यदि कोई गृहस्थ इन पञ्चमहायज्ञों को विधिवत् सम्पादित करता है तो निश्चित ही उसके धर्म में वृद्धि होती है ऐसा माना जाता है।

प्रस्तुत शोध प्रपत्र में कतिपय सन्दर्भों के आधार पर पञ्चमहायज्ञों का निरूपण तथा उनकी आधुनिक समाज में आवश्यकता-विषय पर शोधार्थी के द्वारा विचार किया जायेगा।

श्रौत यज्ञ प्रक्रिया का रहस्य

प्रा. आचार्य अखिलेश शर्मा संस्कृत विभाग, राजर्षि शाहू महाविद्यालय, लातूर

'प्रयोजनं विना मन्दोऽपि न प्रवर्तते' यह वचन भारतीय संस्कृति के सारे कर्तव्य का कर्मों को वैज्ञानिक तथा प्रामाणिक मानने के लिए काफी है। क्योंकि आज जब सामान्य यज्ञों के साथ-साथ श्रौत यज्ञों के विषय में लोगों में यह भावना दृढ़ होती जा रही है कि इनमें समय बेकार करने के अलावा और कुछ नहीं है। ऐसे समय में पूर्वोक्त वचन को हम जानने का प्रयत्न करें तो हमें ऐसा लगता है कि इन यज्ञों का उद्देश्य केवल सामाजिक या धार्मिक ही नहीं है अपितु सृष्टि निर्माण एवं उत्पत्ति के गहन सिद्धान्त इन यज्ञों में छिपे हुवे हैं।

यद्यपि कुछ लोगों ने इन यज्ञों को छोड़कर गायत्री यज्ञ, गणेश याग, शतचण्डी याग इत्यादि यज्ञ प्रारम्भ कर दिए हैं जो वैदिक परम्परा के विरुद्ध है। क्योंकि न तो कात्यायनश्रौतसूत्र में या दूसरे श्रौत तथा स्मार्त ग्रन्थों में इनका उल्लेख है। अत: श्रौत यज्ञों के छिपे हुए रहस्य से कुछ धूल को साफ करने का प्रयत्न ही इस लेख में किया गया है। जिसको महर्षि दयानन्द ने 'वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है' कहा था।

अग्निहोत्र का पर्यावरण एवं स्वास्थ्य पर प्रभाव

डॉ. प्रदीप कुमार अ.प्रवक्ता(वेदविभाग) गुरुकुल काङ्गड़ी वि.वि. हरिद्वार

यज्ञ शब्द अति व्यापक है पर यह आज अग्निहोत्र अथवा हवन के लिए प्रचलित हो गयाहै। आदिकाल से मानव आनन्द की प्राप्ति एवं आत्मोन्नति हेतु प्रयत्नशील है। योगी, दार्शनिक, वैज्ञानिक सभी इसी लक्ष्य-सिद्धि के लिए साधना करते रहें हैं। अग्निहोत्र एवं यज्ञमयी भावना की सर्वप्रथम प्रेरणा मानव को स्वयं परमपिता परमात्मा से मिली - हे ब्रह्मणस्पते ! उठ खड़ा हो, यज्ञ कर, अन्य उत्तम पुरुषों को यज्ञीय भावना से अवगत करा तथा इस मार्ग का अवलम्बन करते हुए आयु, प्राण, प्रजा, पशु एवं यजमान की कीर्ति को बढ़ा।(अथर्ववेद 9/63/1)

आज जल, वायु, अन्न, मिट्टी........ कुछ भी शुद्ध नहीं हैं। प्रदूषण इतना भयंकर बढ़ गया है कि अमेरिका, कनाड़ा जैसे देशों में तेजाबी वर्षा एक प्रमुख समस्या है। समस्त संसार पर्यावरण प्रदूषण से चिन्तित है। अपने कर्तव्य का सुचारू रूप से पालन करती हुइ प्रकृति वायु के शोधन में अवश्य महत्त्वपूर्ण योगदान करती रही है अन्यथा अब तक वायुमण्डल इतना प्रदूषित हो गया होता कि

श्वास लेना मुश्किल हो जाता । अग्निहोत्र उस महान् प्रभु द्वारा फैलाये गये इस महान् प्राकृतिक यज्ञ का ही एक रूप है। यज्ञ के द्वारा वायु की दुर्गन्ध नष्ट होकर सुगन्ध फैलती है। वेद यज्ञ को वायु की शुद्धि का हेतु मानता है- **वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्रधारम्।** (यजु. 1/3)

ऋषि दयानन्द जी ने यज्ञ को वायु की शुद्धि सर्वोत्तम साधन माना है। इसी कारण यजुर्वेदभाष्य में लिखते हैं- "जैसी यज्ञ के अनुष्ठान से वायु वृष्टि जल की उत्तम शुद्धि एवं पुष्टि होती है, वैसे दूसरे किसी उपाय से नहीं हो सकती।"

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने 20जौलाई 1875 ई. को पूना में सातवें प्रवचन में कहा था-"पुष्टि वधर्न, सुगन्ध-प्रसार एवं नैरोग्य ये चार उपयोग होम अर्थात् हवन करने से होते हैं।"

पहले आर्य लोगों का ऐसा सामाजिक नियम था कि प्रत्येक पुरुष प्रातःकाल स्नान कर 12 आहुतियाँ देता था, क्योंकि प्रातःकाल में मल-मूत्र की जो दुर्गन्ध उत्पन्नहोती थी, वह इस प्रातःकाल के हवन से दूर हो जाती थी। इसीप्रकार सायंकाल में हवन करने से दिनभर की जमी हुई दुर्गन्ध का नाश होकर वायु शुद्ध बहती थी।

वर्तमान में होम(अग्निहोत्र) के न्यून होने के कारण बारम्बार वायु अव्यवस्थित एवं असन्तुलित हो रही है। परिणामस्वरूप विलक्षण रोग उत्पन्नहो रहे हैं। यज्ञ न केवल वायु की दुर्गन्ध को नष्ट करता है अपितु इसे शुद्धकर रोगों से भी रक्षा करता है। महर्षिदयानन्द का यह विचार पूर्णतः सत्य है- "दुर्गन्धयुक्त वायु और जल से रोग, रोग से प्राणियों को दुःख और सुगन्धित वायु से लोगों को आरोग्य एवं रोग के नष्ट होने से मानव को सुख प्राप्त होता है।" ऋषि दयानन्द सरस्वती आगे लिखते हैं- "जब तक होम करने का प्रचार रहा तब तक आर्यावर्त देश रोगों से रहित और सुखों से पूरित था, अब भी प्रचार हो जाए तो वैसा ही हो जाए।" अतः हमें समझना चाहिए कि प्राचीन आर्य लोग अग्निहोत्र द्वारा वायु शुद्धि तथा आरोग्य प्राप्त करते थे।

अहीन-मीमांसा

डॉ. वेदपाल रीडर संस्कृत, ज.वै.(पी.जी.) कॉलेज, बडौत(बागपत)

यज्ञ वैदिक संस्कृति का प्रमुख अपर पर्याय कहा जा सकता है। धात्वर्थ(यज, देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु) की दृष्टि से यह शब्द अनेकार्थक है। जहां प्रत्येक श्रेष्ठतम कर्म यज्ञ (यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म- श.प.)हैं, वही कर्मकाण्डीय दृष्टि से यज्ञ एक सामान्य कर्म न होकर अनेक कर्मो (परस्पर विभिन्न अनेक यज्ञों) का द्योतक भी हैं। प्राचीन आचार्यो ने इसे प्रामुख्येन संस्थात्रय(हविः, सोम, पाक) में विभक्तकर इसके विवेचन का पथ प्रशस्त किया है।

सोमसंस्थान्तर्गत यज्ञ सामान्यतः सोमयाग कहे जाते हैं। प्रामुख्येन सात होते हुए भी अवान्तर रूप में अनेक यज्ञ सोमयागान्तर्गत सम्पन्न किए जाते हैं। सम्पाद्य समय की दृष्टि से इन्हें एकाह, अहीन तथा सत्र नाम से अभिहित किया जाता है। एक दिन में सम्पाद्य यज्ञ 'एकाह' हैं। दो दिन से लेकर ग्यारह दिन मे सम्पन्न होने वाले यज्ञ 'अहीन' हैं। बारह दिन अथवा इससे अधिक (भले ही वह संवत्सर अथवा सहस्रसंवत्सर साध्य हो) समय में सम्पाद्यमान यज्ञ 'सत्र' नाम से कहे गए हैं।

द्वादशाह(बारह दिन में सम्पाद्य यज्ञ) उभयात्मक (द्वादशाहस्तूभयात्मकः) है। अर्थात् वह 'अहीन' तथा 'सत्र' दोनों प्रकार का है। जब उसकी प्रक्रिया विधि अहीनवत् होगी तब अहीन तथा सत्रवत् होने पर सत्रान्तर्गत परिगणित किया जाता है। प्रस्तुत शोधपत्र में अहीन यागों का संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

पारस्कर गृह्यसूत्र में गृह्यविज्ञान की धर्मशास्त्रीय अवधारणा

डॉ. छाया रानी उपाचार्य-संस्कृत, दी.द.उ.गो.वि.वि. गोरखपुर(उ.प्र.)

समस्त प्राणिजगत् में मानव सर्वश्रेष्ठ प्राणी है- 'न मानुषाच्छ्रेष्ठतरं हि किंचित्।' सृष्टि का केन्द्र मानव है, अतः समग्र उपदेश और अतिदेश मानव को लक्ष्य कर प्रवृत्त होते हैं। वेदादि शास्त्रों का प्रवृत्तिनिमित्त भी मनुष्य को सन्मार्ग प्रदर्शन कर उसे सुख की उपलब्धि कराना है। अतः शारीरिक एवं मानसिक विकास के साथ ही आत्मिक विकास की दृष्टि से गृह्यकर्मों की अतिकर्तव्यता

उपदिष्ट है। शरीर के साथ आत्मा के परिष्कारक कर्म को भारतीय मनीषा ने 'संस्कार' पद से अभिहित किया। धार्मिक दृष्टि से गृह्याग्नि में सम्पाद्य संस्कार तथा गृहस्थ जीवन से सम्बद्ध सीतायज्ञ शूलगव आदि के साथ सामाजिक दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण पंचमहायज्ञ गृह्यसूत्रों का प्रमुख प्रतिपाद्य है। षड्वेदांगों में 'कल्प' तथा कल्प में गृह्यसूत्र और गृह्यसूत्रों में नामकरण, विवाह एवं अन्त्येष्टि का विशेष विधान वर्णित है। मनुष्य चाहे आस्तिक हो या नास्तिक, उसके जीवन के साथ कतिपय कृत्य अनिवार्य रूप से संयोजित होते हैं जिनके बिना जीवन निर्वाह की कल्पना असम्भव है।

पंचमहायज्ञों में प्रथम स्थानी ब्रह्मयज्ञ संध्या/स्वाध्याय ही वैयक्तिक की श्रेणी में कहे जा सकते हैं शेष चार महायज्ञ सामाजिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। पारस्कर गृह्यसूत्र सभी गृह्यसूत्रों में शीर्ष स्थानी हैं और उत्तर भारत में सर्वाधिक प्रचलित भी है। यद्यपि स्थूल दृष्टि से पारस्कर का विषय संस्कारों एवं तत्सम्बन्धी गृह्यकर्मों की विधि का वर्णन का है। किन्तु प्रत्येक विधि के अंगभूत रूप में पढ़े जाने वाले मन्त्र अथवा की जाने वाली क्रियाएं जहां समाजीकरण की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं वहीं संस्कृति के निर्माण में भी उसकी महत्ता अक्षुण्ण पारस्कर के वर्ण्य-विषय प्राचीन समाजशास्त्रीय दृष्टि से आधुनिक गृह-विज्ञान के अध्ययन में आधार प्रदान करते हैं- 1. सामाजिक शिष्टाचार, 2. परिवार, संस्था-समृद्धिकर्म, 3. स्वास्थ्य चिकित्सा, 4. शिक्षण सम्बन्धी विधि-प्रविधि, 5. अपराध परिमार्जन, 6. पर्यावरण शोधकर्म इत्यादि।

उक्त संदर्भित प्रसंग ही इस शोधपत्र का विषय है।

वैदिक वाङ्मय में यज्ञानुष्ठान प्रक्रिया

डॉ. अवनीश अग्रवाल रा.सं.सं.(मानित विश्वविद्यालय)लखनऊ परिसर

'यज्ञेन यज्ञमयजन्तदेवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।

यज्ञ से देवों ने यज्ञ रूपी प्रजापति का यजन किया था। यज्ञ क्रियायें ही प्रथम धर्म के रूप में अनुस्यूत हैं। यज्ञानुष्ठान से मानवीय कामनाओं की पूर्ति सम्भव होती है। 'पाङ्क्तौ वै यज्ञः।' यज्ञ पाङ्क्त है। देवता, मन्त्र, ऋत्विज, द्रव्य एवं दक्षिणा- यज्ञ के पाँच अंग हैं।

देवता- कामनाओं के पूरक हैं।

मन्त्र- द्रव्य को देवों तक पहुँचाने एवं उन्हें यज्ञ शाला में आहूत करने के साधन हैं।

ऋत्विज- मन्त्रों का उच्चार करने वाला एवं यथोचित रूप से विनियोग करने वाला ऋत्विक् कहलाता है।

द्रव्य- हवि पदार्थों की संज्ञा द्रव्य है। देवताओं के निमित्त अग्नि में प्रक्षिप्त यज्ञ के साधनभूत द्रव्य को हवि कहते हैं। द्रव्य तीन प्रकार के हैं- आहूति, होम और याग।

दक्षिणा- यज्ञ कर्म की सम्पन्नता पर ऋत्विजों को दिया जाने वाला द्रव्य ही दक्षिणा है।

वैदिक यागों के अन्तर्गत पांच अंग पूर्णतया अन्योन्याश्रित हैं। वैदिक धर्म कर्मकाण्ड प्रधान है। समस्त वैदिक वाङ्मय में यज्ञों की अनुष्ठानिक प्रक्रिया, रहस्य तथा परिणाम दृष्टिगत है। समग्र श्रौत-यज्ञों की सफलता हेतु यज्ञांग तथा निहित विधानों के अनुसार अनुष्ठान सम्पन्न किया जाना नितान्त आवश्यक एवं वैज्ञानिक है।

वैदिक विवाह संस्कार : अश्क के उपन्यासों के संदर्भ में

कु. शिखा कपूर मु.ला.ज.ना.खेमका स्ना. कन्या महा. सहारनपुर

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह अपने समाज की संस्कृति और संस्कारों से बँधा हुआ है। भारतीय व्यक्ति के सभी संस्कार वेदों से अनुप्राणित हैं। हमारी भारतीय जीवन-शैली का तो प्रारम्भ ही संस्कारों से होता है। मन की पवित्रता को ही संस्कार कहा जाता है। हमारी सनातन संस्कृति में लोग इन संस्कारों के महत्त्व को समझते थे। वेदों में सोलह संस्कारों का उल्लेख मिलता है। हमारे ऋषि-मुनियों ने भी इनके महत्त्व को स्वीकार किया है। भारतीय दर्शन के अनुसार मानव-जीवन को चार आश्रमों में बाँटा गया है-

ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम। गृहस्थ आश्रम का प्रारम्भ विवाह-संस्कार से माना गया है। विवाह बंधन नहीं है। विवाह तो एक ऐसी साधना है जिसमें लोभ, स्वार्थ और अहंकार का कोई स्थान न हो। केवल एक-दूसरे के प्रति प्रेम, उदारता और सम्मान की भावना होती है। अनादिकाल से ही भिन्न-भिन्न स्थान, जाति, धर्म, वर्ग एक समुदाय के अनुयायियों ने विवाह की महत्ता को स्वीकार किया है। इस संसार में बँधने के उपरान्त ही स्त्री और पुरुष अपने विभिन्न ऋणों से मुक्ति का मार्ग तय करते हैं और उन्हें मोक्ष की प्राप्ति होती है। उपेन्द्रनाथ 'अश्क' ने भी अपने उपन्यासों में समाज के विभिन्न वर्गो के मनुष्यों के जीवन को आधार बनाया है। उनके उपन्यासों में जहाँ एक ओर सामाजिक चेतना देखने को मिलती हैं वहीं दूसरी ओर पंजाबी परिवार की सांस्कृतिक एवं संस्कारजन्य विशिष्टताओं का स्वरूप भी परिलक्षित होता है। विभिन्न उपन्यासों के विभिन्न वर्गो के पात्रों में विवाह-संस्कार के विविध रूप देखने को मिलते हैं।

वैदिक यज्ञ विज्ञान एवं मानव-कल्याण

डॉ. सुशीला बुन्देला बा.शो.रा. कला महा. अलवर(राज.)

यज्ञ हमारे वैयक्तिक आत्मोद्धार के साथ-साथ परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व का भी कल्याण करते हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों में इस विश्व-जनीय हित के लिए यज्ञ का परिणाम और उसका वैज्ञानिक क्रम बताते हुए कहा है- अग्नि से यज्ञ करने पर जो धुआँ उत्पन्न होता है, वह वायु द्वारा अन्तरिक्ष में जाकर वहीं मेघ बन जाता है, जिससे वृष्टि होती है और अन्नादि उत्पन्न होते हैं। (ऐतरेयब्राह्म 2.41) इस प्रकार वैदिक वाङ्मय में वैज्ञानिक दृष्टि से यज्ञ-विज्ञान का महत्त्व, सूक्ष्म, संतुलित और स्वानुभूत दृष्टि से विश्व कल्याणकारी रूप में बताया गया है।

वेद संहिताओं में हविःस्वरूप

ओमपाल सिंह एन.ए.एस. कॉलेज, मेरठ

हमारी परम्परागत आस्था है कि वेद संहितात्मक ज्ञान राशि आदि और अनन्त है। किन्हीं भी काल-सीमाओं में उसे सीमित नहीं किया जा सकता। फिर भी जो भी पण्डित-मन्य लोग इसे काल की परिधि में ही बांध कर देखना चाहते हैं, वे भी इसकी प्राचीनतमता को स्वीकार करने को बाध्य हैं। उक्त वेदात्मक ज्ञान परमात्मा द्वारा सृष्टि के आरम्भ में ऋषियों के माध्यम से सर्वकल्याणार्थ प्रकट किया गया है। उस ज्ञान के उदात्ततम रूप को यदि एक शब्द में सम्बोधित करना हो तो वह(शब्द) निःसंदेह यज्ञ ही होगा। हवि यज्ञ का अन्यतम साधन है। संहिता-चतुष्टय में 2051 स्थलों पर इसके 232 विविध रूप प्रयुक्त हुए परिलक्षित होते हैं। शोध-लेख की सीमा में यहां उसके केवल सुबन्त प्रयोगों पर आधृत समालोचना का ही उद्यम किया जा रहा है।

यज्ञ

डॉ0 शालिनी त्रिपाठी प्रवक्ता-संस्कृत विभाग, बी.एस.एम.(पी.जी.)कालेज, रूड़की (उत्तराखण्ड)

भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्वों में से यज्ञ एक है। यज्ञ भारतीय संस्कृति का प्राण है। उपनिषद् में लिखा है:-"पुरुषो वाक् यज्ञः।"

मनुष्य का जीवन एक यज्ञ है। उसकी आयु के जो प्रथम चौबीस वर्ष है वे मानो प्रातः सवन है, अगले चौबीस वर्ष माध्यन्दिन सवन है, अगले अड़तालिस वर्ष तृतीय सवन है। इस प्रकार यह 116 वर्ष चलने वाला यज्ञ है। तभी वेद में कहा है:-

आयुर्यज्ञेन कल्पताम् प्राणो यज्ञेन कल्पताम्,
वाग्यज्ञेन कल्पताम्, श्रोत्रं यज्ञेन कल्पताम्,
चक्षुर्यज्ञेन कल्पताम्।-इत्यादि।

वैदिक संस्कृति में यज्ञों का विशेष महत्व है। यह वैदिक संस्कृति का प्राण है। महर्षि मनु ने प्रत्येक गृहस्थ के लिए पंचमहायज्ञों को आवश्यक बताया है। **ईजानाः स्वर्ग यन्ति लोकम्।** यज्ञ करने वाले पुण्यात्मा स्वर्गलोक-सुख विशेष को प्राप्त करते हैं। **होतृषदनं हरितं हिरण्ययम्।** यज्ञ करने वाले का घर अत्यन्त मनोहर, धन-धान्य से परिपूर्ण, हितकारी और रमणीय होता है। महर्षि दयानन्द ने स्वरचित ग्रन्थों संस्कार विधि, वेदभाष्य, पंचमहायज्ञविधि आदि में यज्ञ द्वारा वायु शुद्धि, वृष्टि, रोग-शमन, आयुर्वेदीय यज्ञ चिकित्सा आदि प्रकरणों का विधान प्रस्तुत किया है। यज्ञ से सत्याचरण, अमृत की प्राप्ति, यक्ष्मारोग का निवारण, निरोगता, दीर्घजीवन, शत्रुत्व का अभाव, अभय, सुख, निद्रा, सुन्दर उषःकाल एवं दिन का शुभारम्भ प्राप्त होता है।

ऋतं च मेऽमृतं च मेऽयक्ष्मं च मेऽनामयच्च मे जीवातुश्च
मे दीर्घायुत्वं च मऽनमित्रं च मेऽभयं च मे सुखं च मे
शयनं च मे सुषाश्च मे सुदिनं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।।

इस प्रकार मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उसका परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व के साथ गहरा सम्बन्ध होता है। वेदों में अन्तर्निहित यज्ञ द्वारा सृष्टि-प्रक्रिया का प्रारूप भौगोलिक विज्ञान एवं चिकित्सा के विकास में अत्युपयोगी है। **'सर्वेभवन्तु सुखिनः'** की कामना से ऋषि-मुनियों ने वैदिक यज्ञों का विधान प्रस्तुत कर लोक-परलोक में सुव्यवहार, धार्मिक अनुष्ठान, संस्कार आदि में यज्ञ द्वारा सुखों का उपभोग करना बताया है।

यज्ञोपवीत संस्कार का वैज्ञानिक महत्व

डॉ0 एस.वी. शारदा रमणी प्रवक्ता डायट, गौतमबुद्ध नगर

सर्वप्रथम संस्कार पद से किस का ग्रहण किया जाय तथा इनकी संख्या का निर्धारण कैसे करें। ये संस्कार क्या सभी मानवमात्र के लिए उपयोगी हैं या कुछ विशिष्ट जनों के लिए है। लोक में देखा जाता है कि वैदिक समाज के मात्र ब्राह्मण आदि तीन को ही इसका अधिकार प्राप्त है, इसमें इसकी क्या वैज्ञानिकता है। क्या स्त्रियों को भी यज्ञोपवीत संस्कार जरूरी है या नहीं यदि सभी के लिए जरूरी है तो स्त्रियों को इस अधिकार से क्यों वंचित किया जाता है। जबकि मनुस्मृति में मनु ने कहा है-
"पुराकल्पे तु नारीणां मौञ्जीबन्धनमियते।" जबकि यहाँ यह शंका भी लोक को देख कर हो सकती है कि स्त्रियों के संस्कार युक्त न होने से उनसे उत्पन्न होने वाली संतति संस्कारित कैसे हो सकती है। वेदोक्त संस्कारों में यज्ञोपवीत संस्कार का अपना एक महत्वपूर्ण स्थान है। जहाँ तक इस संस्कार की बात है, यह किसके लिये बनाया गया है और क्यूँ। इस संस्कार से जो संस्कृत होते हैं वे कुछ विशिष्ट लोग ही हैं। इस संस्कार की विशेष व्याख्या पत्र में प्रस्तुत की जायेगी।

वैदिक साहित्य में यज्ञ

स्नेहलता शोधप्रज्ञा जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा, सारण

यज्ञ शब्द यज्+नङ् द्वारा निष्पन्न होता है, इसका अर्थ होता है किसी देवता विशेष को लक्ष्य कर उसका पूजन स्तवन तथा अग्नि में भविष्य प्रदान करना। इस बात की पुष्टि इस पौराणिक श्लोक से होती है-

'देवानां द्रव्य हविषामृकसामयजुषां तथा।
ऋत्विजां दक्षिणानां च संयोगे यज्ञ उच्यते।।''

यज्ञ की ऐतिहासिकता के विषय में 'गीता' का निम्नलिखित श्लोक दृष्टव्य है।-

''सह यज्ञाः प्रजा सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्ट कामधुक्।।'' (3/10)

वैदिक पञ्च महायज्ञ का उल्लेख निम्नप्रकार द्रष्टव्य है-

1. ब्रह्मयज्ञ - विराजे नमः स्वराजे नमः सम्राजे नमः। (अथर्ववेद)

2. देवयज्ञ ''सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यत।'' ।।अथर्ववेद।।

3. पितृयज्ञ ''ऋषय: पितरो देवा भूतान्यतिथयस्तथा।।
अशासते कुटुम्बिभ्यस्तेभ्य: कार्यं विजानता।। (मनुस्मृति)

4. बलिवैश्वदेव यज्ञ ''अघं स केवलं भुङ्क्ते य: पचत्यात्मकारणात्।।
यज्ञशिष्टाशनं ह्येतत् सतामन्नं विधियते।।'' (मनुस्मृति)

5. अतिथियज्ञ ''सर्वे वा एष जग्धपाप्मा यस्यान्नमश्नन्नि।।'' (अथर्ववेद)

इस प्रकार देखते हैं कि वैदिक साहित्य में यज्ञानुष्ठान का सांगोपाँग वर्णन प्राप्त होता है। भारतीय आर्यों का जीवन यज्ञमय था। यज्ञीय हवन से उत्थित धुँए से सम्पूर्ण वातावरण पवित्र, सुगन्धित एवं स्वस्थ होता था, हो रहा है और होता रहेगा।

वेदों में यज्ञ

डॉ० अंजनी राजौरिया सदस्य आर्य दयानंद वेद मंदिर, तात्याटोपे नगर, भोपाल

वैदिक धर्म में यज्ञों का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है प्रत्येक कर्म काण्ड, समस्त संस्कार पर्व एवं प्रत्येक शुभ कार्य में सर्वप्रथम यज्ञ करने का विधान है। किसी भी नवीन भोज्य पदार्थ को सेवन से पूर्व यज्ञार्पण करने का आदेश है। सृष्टि के प्रारम्भ काल से अद्यावधि पर्यन्त आर्य जाति के सम्पूर्ण जीवन में यज्ञ का प्रमुख स्थान उपलब्ध वैदिक वाङ्गमय में मिलता है हमारे देश में ऋषि महर्षियों का जीवन योग साधना तथा तपश्चर्या यज्ञों के आधार पर ही चलती थी समस्त वैदिक शास्त्र यज्ञ की महिमा का बखान कर रहे है। स्वयं वेद भी यज्ञ से मानव के प्रत्येक कार्य की सफलता का विधान करते दिखाई देते हैं।

वैदिक साहित्य में साधारणतया प्रत्येक शुभ कार्य को यज्ञान्तर्गत माना गया है किन्तु मुख्य रूप से यज्ञ का अर्थ होम लिया जाता है, जिसके माध्यम से विद्वानो का सत्कार (देव पूजा) कृषि पदार्थों का सम्यक् प्रकारेण उपयोग (संगतिकरण) तथा होम के माध्यम से संसार केकल्याण के लिए अपने पदार्थों को वितरण करके विश्व को भेंट करना (दान) यह तीन कार्य सम्पन्न होते हैं। यज्ञ के समस्त मन्त्र परमेश्वर से प्रार्थना के लिये होते हैं, और सत्य बात भी यही है कि यज्ञ से अधिक कोष्ठ प्रभु की प्रार्थना करने की अन्य कोई विधि नहीं है। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने यज्ञ के विषय में निम्न प्रकार लिखा हैं।

यज्ञ उसका कहते हैं कि ''जिस में विद्वानों का सत्कार, यथायोग्य शिल्प अर्थात् रसायन जो कि पदार्थ विद्या उससे उपभोग और विद्यादि शुभ गुणों का दान अग्निहोत्रादि जिनसे वायु, वृष्टि जल, औषधि की पवित्रता करके सब जीवों को सुख पहुँचाना है।

अश्वमेध यज्ञ

डॉ. रमेशकुमारी सिंह चौहान सी.एस.एन.(पी.जी.)कॉलेज, हरदोई

धर्मप्राण आर्यो के सम्पूर्ण यज्ञ-विज्ञान में अश्वमेध यज्ञों के सम्राट् के रूप में प्रतिष्ठित हैं। इसे अभिषिक्त क्षत्रिय राजा ही सम्पन्न कर सकता था। अश्वमेध करने का फल समस्त कामनाओं की प्राप्ति बताया गया है; 'सर्वान्ह वै कामान् आप्नोति सर्वाव्युष्टीर्व्युनुते योऽश्वमेधेन यजते।' अश्वमेध के सम्बन्ध में कात्यायनश्रौतसूत्र के 'सर्वकामस्य' पद की व्याख्या में आचार्य कर्क ने लिखा था- 'सर्वकामस्येति मुमुक्षो:'। किन्तु हमें शतपथ में ही 'तदु ब्रह्मण्येवांतत: प्रतिष्ठिति' रूप में एक ऐसा उल्लेख मिलता है जिसे देख लेने के बाद सर्वाङ्गपूर्ण अश्वमेध सम्पन्न करने वाले यजमान की ब्रह्मप्रतिष्ठा में किसी भी प्रकार का शक-संदेह शेष नहीं रह जाता है।

वैदिक साहित्ये कर्मकाण्डम्

डॉ० ओम प्रकाश भट्टः प्रधानाचार्यः श्री रामानुज श्रीवैष्णव संस्कृत महाविद्यालयः, तोताद्रि मठः, भूपतवाला, हरिद्वारम्

समस्तेष्वपि धर्मेषु कर्मकाण्डस्य प्रधानता वर्तते। हिन्दुधर्मे तु कर्मकाण्डं बिना किञ्चिदपि न प्रसरति। वस्तुतस्तु हिन्दुत्व-हिन्दुधर्म-हिन्दु-संस्कृतेश्च प्राणभूतानि सन्ति कल्पसूत्राणि। न केवलं हिन्दु धर्मस्यापितु निखिलानामपि धर्माणां मूलं कर्मकाण्डम्, कर्मकाण्डस्य निखिलमपि विधानं कल्पसूत्रेषु वर्तते। हिन्दुधर्मस्य समस्तान्यपि कर्माणि, निखिलान्यनुष्ठानानि, रीतयश्च कल्पसूत्रेष्वेव वर्णिताः सन्ति। कल्पसूत्राणि त्रिविधानि सन्ति-श्रौतसूत्रम्, गृह्यसूत्रम्, धर्मसूत्रञ्च। वैदिक संहितासु वर्णितानि यज्ञ विधानानि श्रौतसूत्रे विधन्ते। गृहस्थानाम् आजन्ममृत्युपर्यन्तानां समस्तानां कर्मणाम् अनुष्ठानानां वा वर्णनम् गृह्यसूत्रे दृश्यते। विभिन्न पारमार्थिक-सामाजिक-राजनैतिक कर्तव्यानां विविधजातीय-कर्तव्यानां, विवाह-उत्तराधिकारादीनां विवरणं धर्मसूत्रे वर्णितमस्ति। अत एवोच्यते-**"वेदाद्धर्मो हि निर्वभौ"** **"वेदोऽखिलं धर्ममूलम्"**।

विशेषतया ध्यातव्यमस्ति यत् श्रौताः वैदिकाः वा यज्ञाः चतुर्दश प्रकारकाः सन्ति=सप्त हविर्यज्ञाः सप्त च सोम यज्ञाः। गृह्यसूत्रकारैः सप्त-प्रकारकाः गृह्ययज्ञाः अथवा पाकयज्ञाः वर्णिताः। यथा-**"पितृयज्ञः"** पितृश्राद्धम् वा समस्तेष्वपि हिन्दुजातिषु विधीयते। चतुर्दश-श्रौतयज्ञानां सप्त-पाकज्ञानामतिरिक्तं गृह्यसूत्रेषु पञ्च-यज्ञानां वर्णनं वर्तते, यथा-देवयज्ञः, भूतयज्ञः, पितृयज्ञः, ब्रह्मयज्ञः, मनुष्ययज्ञश्च। उक्त सूत्रेषु षोडश-संस्काराणां साङ्गोपाङ्ग-वर्णनं विहितमस्ति।

एतावता 14 श्रौतयज्ञाः, 7 पाकयज्ञाः, 5 महायज्ञाः, 16 संस्काराः, समेषां योगः = भवति, येषां वर्णनं कल्पसूत्रे वर्तते। मनुस्मृतिः, याज्ञवल्क्यस्मृतिः वशिष्ठ स्मृतिः, पाराशरस्मृतिः इत्यादीनां विंशत्यधिक प्रसिद्ध स्मृतीनामुत्पत्तिः कल्पसूत्रैरेव वर्तते। अतः कर्मकाण्डस्य विशदज्ञानाय कल्पसूत्राणां मध्ययनमावश्यकं वर्तते।

वैदिक संस्कृति की प्रेरणादायी आध्यात्मिक विरासतः संस्कार परम्परा

डॉ. सी०आर०कैवर्त्य भारतीय संस्कृति एवं पर्यटन प्रबंधन, देवसंस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार

किसी भी राष्ट्र के अतीत, आधुनिक और आगत को जो परस्पर जोड़े रहती है, जो उसकी कार्यशैली, जीवन-शैली तथा जीवनोद्देश्य का निर्धारण कर इनके बीच सतत् तालमेल बिठाने का कार्य करती है, उस तत्व की अनुभूति ही संस्कृति नाम से जानी जाती है। राष्ट्र का उत्थान व उसके नागरिकों का निर्माण संस्कृति रुपी इसी धुरी पर टिका होता है। जब-जब भी इस प्रक्रिया में अवरोध उत्पन्न होने लगता है उस समाज, राष्ट्र या युग में मूल्यों का ह्रास होते-होते अस्तित्व के संकट की सी घुटन भरी स्थितियाँ पैदा हो जाती हैं। समाज रुग्ण हो जाता है व व्यक्ति विक्षिप्त, विक्षुब्ध, संत्रस्त, मनोरोगों से पीड़ित।

देव संस्कृति अनगढ़ को सुगढ़ बना देने वाला दिव्य रसायन है। इसकी मूलभूत अवधारणा यही रही है कि मानव मात्र को पशुता से उबारकर देवत्व की ओर उन्मुख किया जाय। अनादिकाल से यही दिग्दर्शन वह करती आयी है। देव संस्कृति की एक महत्वपूर्ण स्थापना यह है कि जिस प्रकार धातुओं को अग्नि में तपाकर संस्कारित कर भस्म बनाया जा सकता है, उसी तरह मनुष्य के पाशविक संस्कारों को, जो जन्म-जन्मान्तरों से चले आ रहे हैं, आमूलचूल बदला जा सकता है। मानवी मन की विलक्षण व्याख्या करते हुए वह धर्मतंत्र के विभिन्न प्रयोगों-अध्यात्म उपचारों द्वारा कुसंस्कारों के परिमार्जन तथा सुसंस्कारों के आरोपण की व्यवस्था बनाती है। मानव के अंतःकरण का उपचार कर कैसे उसकी विराट यात्रा में आने वाले महत्वपूर्ण मोड़ों पर उसकी विशिष्टताओं को खरीदा जाय, यह व्यवस्था षोडश संस्कारों के माध्यम से भारतीय संस्कृति में की गयी है।

वैदिक वाङ्मये संस्काराः

रोशन लालः शोधकर्ता हरिद्वार

मनुष्याणां ृरीरस्य एवम् आत्मनः ुद्धयर्थ गर्भाधानात् अन्त्येष्टि पर्यन्तं सामान्यतयाोडश संस्काराः एव लोके प्रचलिताः सन्ति। वस्तुतः संस्कारणां विषये धर्मग्रन्थेषु वैभिन्यं दरीदृश्यते, कुलचित्र चत्वारिंशत् कुत्रचित् पञ्चचत्वारिंशत् इत्यादीनि प्रमाणानि समुप्लभ्यन्ते। प्रसङ्गेऽस्मिन् मनुना अपि उक्तम्- निषेकादिश्मशानान्तो मन्त्रैर्यस्सोदितो विधिः। तस्य शास्त्रेऽधिकारोऽस्मिनज्ञेयो नान्यस्य कस्यचित्।। मनुस्मृतिः 2/16सामान्यतया संस्काराः पञ्चधा विभजयितुं शक्यन्ते।

यज्ञस्य वैज्ञानिकं स्वरूपं तत्र चाग्निहोत्रम्

ऋतेशशर्मा शोधच्छात्रः वेदविभागः श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठम्

प्रगतिपथेऽग्रे सरन्तः संसारस्य, विकसिताः विकासशीलाश्च देशाः, आत्मनः आधुनिकान् मन्यमानाः, विज्ञानस्यानुचितप्रयोगेऽपि आत्मनः वैज्ञानिकान् स्वीकुर्वाणाः पर्यावरणस्य प्रदूषणं वर्धयन्तोऽपि आत्मनः विचारकान् प्रमाणीकुर्वाणाः, राजनीतेरनुचिते प्रयोगेऽपि आत्मनः राजनैतिकान् आददानाः, असभ्यतायाः चरमम् अत्यजन्तोऽपि आत्मनः सभ्यान् ब्रुवाणाः, अविवेकि कर्म कुर्वन्तोऽपि आत्मनः विवकिनः जानानाः असत्साधनप्रयोगेऽपि आत्मनः सत्सेविनः कथयमानाः, यत्-यत् घोरं कर्म कुर्वन्तः सन्ति, तस्माच्च यत्-यत् अहितं विश्वस्य, समाजस्य, सभ्यतायाः, पर्यावरणस्य, प्राणिनां वा जायते, तस्य-तस्य अहितस्य (हानिः + समस्या) पूर्ति समाधानं वा वयं वेदानुसन्धानरताः, स्वसाधनैः (यज्ञादिभि + वेदविद्याभिः) च कथं कर्तुं शक्नुमः? कथं च जायमानेऽस्मिन् परिवर्तने साधुत्वम् आनेतुं शक्नुमः? कथम् असत्साधनप्रयोगकर्तृणाम् उपरि अंकुशं स्थापयितुं शक्नुमः? इत्यस्य सर्वस्याशंस्य प्रतिपादनमेव अस्य मम शोध पत्रस्योद्देश्यं वर्तते।

वेदोक्ताः संस्काराः

पंकजः, सुरेन्द्रप्रसादः श्रीसोमनाथसंस्कृतविश्वविद्यायः, वेरावलम्, गुजरातप्रान्तम्

वेदकालतः एव संस्काराणां आविर्भावः जातः। भिन्न-भिन्न संस्कारसंख्यायां अगल्पा साक्षात् र्वसम्मता संख्याम् अनुसरामि। धर्मशास्त्रे स्मृतिशास्त्रे संस्काराणां 26 संख्या बहुप्रचलिता वर्तते। ते षोडशसंस्काराः एवं प्रकाशने सन्ति।

गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तो जातकर्म च।
नामक्रियानिष्क्रमणोऽन्नाशनं वचन क्रिया।।
कर्णवेधो व्रतादेशो वेदारम्भः क्रियाविधिः।
केशान्त स्नानमुदाहो विवाहाग्नि परिग्रहे।
प्रेताग्नि संग्रहश्चेति संस्काराः योऽशैव हि।
भवैता कर्णवेधानां मन्त्रवर्ज्य क्रियास्त्रियः।। धर्मशास्त्र इतिहासः।

आद्य संस्कारे गर्भाधाने वेदमन्त्रेण बीजारोपनं रेतसः स्थापना स्यात् चेत् तदर्थ बहवः मन्त्राः तत्र तत्तत् स्थाने दत्ताः सन्ति। आदर्श भारतीय समाजे योग्य नागरिकनिर्माणे च संस्काराणां मन्त्राणां महती आवश्यकता भविष्यति। 'छिन्ने मूले नैव पत्रं न पुष्पम्' प्रारम्भतः संस्कृत्याः रक्षणाय सर्व कर्तव्यं भवति। चरकसुश्रुतसंहितायाः महान् उपकारः अत्र भविता। ऋषिभिः मुनिभिः संस्काराणां महती चर्चा कृता विद्यते।

स्वामिदयानन्दसरस्वतिना अपि संस्कारणां प्राधान्यं प्रमुखतया प्रस्थापितं विद्यते। भिन्न-भिन्न गृह्यसूत्रेषु संस्काराणां महती चर्चा समुपलभ्यते। पुत्रो वा पुत्री अवतरिष्यति तदर्थ मनुस्मृतिः प्रभागयति। एका एव माता रावणं जनयति सैव विभीषणं अपि जनयति तयोः मध्ये एतावत् भेदः कथं किमर्थ? कौरवपाण्डवानां जननप्रसंगोऽपि एतादृशी कथा लभ्यते। द्वयोः पुत्रयोः मध्ये भेदाय भेदसनाय च संस्काराः वेदमन्त्राः च प्रमाणभूताः सन्ति।

वेदारम्भसंस्कारे वा गर्भाधाने वा अन्ये संस्कारे वेदविहितानां कर्मणां मन्त्राणां आवश्कता तु भवत्येव।

एकम् उदाहरणम्

= पुसवन् संस्कारः वेदोक्तः यथा साम्प्रतं व्युत्पत्तिर्दृष्ट्या = पुमान् सूयते यस्मात् इति पुंसवनम् 'अयं संस्कारः कदा कुत्र कयारीत्या किमर्थं सद् न अपितु

(1) **पुमां सौ मित्रावरुणौ पुमां सावरिषनावुभौ। पुमानग्निश्च वायुश्चपुमान् गर्भस्तयोदरे।।**
पुमानग्निः पुमानिन्द्रः पुमान्देवा बृहस्पतिः। पुमां सं पुत्रं विन्दस्व तं पुमाननु जायताम्।। सामवेद

वेदोक्तैः संस्कारैर्विना सन्ततिः संस्कारे युताशिष्टासंस्कृतसंस्कृतिस्का रक्षका न स्यात् संस्कारैः वेदोक्ताः कर्तव्याः स्त्रिणां मन्त्र विहाय भवति।

वैदिकसाहित्ये संस्काराः

जगदीश चन्द्र पाण्डेयः सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयः वाराणसी

वस्तुतः धर्मार्थकाममोक्षाख्यचतुवर्गफलप्राप्तिहेतवः वेदाः। चतुर्वगेष्वपि धर्मस्य प्राधान्यं वर्तते, अतः धर्माचरणार्थ काचित् योग्यताऽपि निर्धारिता भवति, तां च योग्यतां प्राप्तुं वेदेषु विविधानां कर्मणां विधानं वर्तते, तान्येव कर्माणि संस्कार इति नाम्ना ज्ञायन्ते।

अस्मिन् प्रसंगे 'संसकार'शब्देन ब्राह्य(वैदिक) संस्काराणां चर्चा उपयुक्ता स्यात्। एतेषां ब्राह्य संस्काराणां वर्णनं वेदानां कतिपयेषु सूक्तेषु, ब्राह्मणग्रन्थेषु, गृह्यसूत्रेषु, स्मृतिषु च समुपलभ्यते। प्रायशः ब्राह्यसंस्काराणां प्रतिपादकानि शास्त्राणि गृह्यसूत्राणि एव सन्ति, परन्तु तत्र संस्काराणां निरूपणं 'संस्कार' इत्याभिधानेन न कृत्वा यज्ञ इति नाम्ना कृतमस्ति।

संख्या दृष्ट्या संस्काराणां विषये प्रायशः मतभेदाः दृश्यन्ते यथा-

आश्वालयनगृह्यसूत्रे - द्वादश संस्काराः

पारस्कर तथा बौधायनगृह्यसूत्रे - त्रयोदश संस्काराः

वैखानसगृह्यसूत्रे - अष्टादश संस्कारा

गौतमः चत्वारिंशत् संस्कारान् स्वीकरोति। अङ्गिरा पंचविंशति संस्कारानाह।

मनुना त्रयोदश संस्काराः स्वीकृताः।

उत्तरवर्ति विदुषां मतानुसारं सम्प्रति षोडशसंस्काराः प्रचलिताः सन्ति ते च निम्नप्रकारेण-

(क) जन्मनः प्राक् क्रियमाणाः- (1) गर्भाधानम्, (2) पुंसवनम्, (3) सीमन्तोन्नयनम्

(ख) जन्मनः पश्चात् क्रियमाणाः (बाल्यावस्थायाम्)- (4)जातकर्म, (5) नामकरणम्, (6) निष्क्रमणम्, (7) अन्नप्राशनम् (8) चूड़ाकर्म (9) कर्णवेधः

(ग) शैक्षणिकावस्थायां क्रियमाणाः- (10) विद्यारम्भः, (11) उपनयनम् (12) वेदारम्भः (अक्षरस्वीकारः) (13) केशान्तो गोदानं वा , (14) समावर्तनम्

(घ) शिक्षोत्तर क्रियमाणः- (15) विवाहः

(ङ) जीवनोत्तरे क्रियमाणः- (16) अन्त्येष्टिः।

यज्ञस्वरूपसमीक्षा

श्यामसुन्दरठाकुरः (शोधच्छात्रः) वेदविभागः, काशीहिन्दू विश्वविद्यालयः

सम्पूर्ण वैदिकवाङ्मयं न केवलं भारतवर्षस्य अपितु विश्वस्य प्राचीनतमं प्रामाणिकञ्च साहित्यायतनमस्ति। समग्रसृष्टिक्रमस्य मूलकारणं वेद एव विद्यते। इदानीं वैज्ञानिकेऽपि युगे सम्पूर्णस्य धराधाम्नः प्राचीनतमो ग्रन्थः वेद एव मन्यते। अस्मिन्नार्यावर्त्तभूमौ वेदास्य आविर्भूतत्वात् अत्र भारतीयभौतिकजगति वाङ्मये च वेदस्यातीव प्रतिष्ठा महत्त्वपूर्ण स्थानञ्च वर्तते। भारतीयसभ्यतायाः संस्कृतश्च मूलस्रोतो वेदोऽस्ति। यज्ञः वेदस्य मुख्यः प्रतिपाद्यविषयोऽस्ति। विश्वात्माप्रभुः यज्ञद्वारा एव संतृप्तो भवति। परमात्मनः निःश्वासभूत-वेदानां मुख्यप्रवृत्तिरेव यज्ञानुष्ठानाय अस्ति। यस्योपयोगिता वर्तते यत् जन्म-मरणारूपबन्धनात् विमुक्तये सर्वैः यज्ञोऽनुष्ठेयः। मानवेन सह यज्ञस्य परस्परो घनिष्ठः सम्बन्धः सृष्टि-प्रारम्भकालादेवागच्छति। गीताचार्येण भगवता श्रीकृष्णेन प्रोक्तम्-

सहयज्ञाः प्रजा सृष्ट्वा पुरावाच प्रजापतिः। अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक्।। गीता 3.10

शतपथब्राह्मणेऽपि कथितमस्ति यद्-यज्ञः साक्षात् भगवत्स्वरूपोऽस्ति। 'यज्ञो वै पुरुषः' 'यज्ञो वै नाराधयणः' (श. ब्रा. 1.1.2.3) यज्ञ एव राम-कृष्ण-इन्द्र-सूर्य-प्रजापति-यज्ञपुरुषप्रभृतिभिः नामभिः उच्चरितोऽस्ति।

कात्यायनश्रौतसूत्रकारेण महर्षिणा कात्यायनेन प्रोक्तम्- 'यज्ञं व्याख्यास्यामः, द्रव्यं देवता त्यागः' (प्रथमाध्यायः) इति आभ्यां सूत्राभ्यां यज्ञस्वरूपं प्रतिपादितम्। अर्थात् अग्नीन्द्रादिदेवतोद्देश्येन दधि-सोम-ब्रीहि-यवादिहविर्द्रव्याणामग्नौ त्यागो यागः उच्यते। 'देवपूजासंगतिकरणदानेषु' इत्यर्थकात् 'यज' धातोः 'यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षोनङ् इति पाणिनीसूत्रेण भावे 'नङ्' प्रत्यये कृते सति

यज्ञशब्दः निष्पद्यते। अर्थात् यज्ञो नाम देवानामर्चनम्। यज्ञे एतत्-त्रयम् आवश्यकं भवति। विष्णवादिदेवानां पूजनं सद्विद्वांसमाहूय तेन सह सङ्गतिः, अन्ते ऋत्विजां विदुषाञ्च कृते वैभवानुसारं दानम्। अनेन सत्कार्यत्रयेण आध्यात्मिक-आधिभौतिक-आधिदैविकेति तापत्रयम् अनयासेनैव समूलं नश्यति। नात्र लेशमात्रोऽपि सन्देहावकाशः। शोधपत्रे यज्ञसम्बन्धिगूढतत्त्वानां विश्लेषणं भविता।

वैदिकसाहित्ये संस्कारः

श्री मञ्जुनाथः एस.जी., हरिद्वार

मनुष्यजीवने संस्कारस्य महत्त्वं वर्तते। अस्मिन्विश्वे सर्वेऽपि पदार्थः यत्किञ्चित्संस्कारमुखेनैव उपयोगमर्हति। यथा भोजनपदार्था अपि संस्कृत्यैवोपयुज्यन्ते। सम् पूर्वक कृ धातोः घञ् प्रत्यये सति संस्कारशब्दो निष्पद्यते। अस्य शब्दस्य प्रयोगः बहुविधेष्वर्थेषु दृश्यते। मीमांसकाः यज्ञाङ्गभूतपुरोडाशादिषु प्रोक्षणादिना शुद्धिसम्पादनं संस्कार इति वदन्ति। अद्वैतिनस्तु तासां क्रियाणां संस्कारव्यपदेशं कुर्वन्ति, याभिः जीवः 'अहं शुद्धः' इति मिथ्याभिमानं प्राप्नोति। नैय्यायिकाः चतुर्विंशतिगुणान्यतमं संस्कारं स्मृतिजनकं स्वीकुर्वन्ति। संस्कृतसाहित्ये तत्र-तत्र शिक्षा, संस्कृतिः, प्रशिक्षणम्, शुद्धिक्रिया, धार्मिकविधय इत्याद्यर्थेषु संस्कारशब्दः प्रयुक्तो दृश्यते। मुख्यतया संस्कारशब्दः धार्मिकविधिविधानेषु गर्भादानादिषु प्रयुज्यते। एतैः धार्मिकविधिविधानैः जीवः संस्कृतो भवतीति मन्यते। भारतीयानामस्माकं प्राचीनतमं धार्मिकसाहित्यं 'वेद' एव। अतः संस्कारमूलस्रोतोऽपि वेद एव। 'वेदो धर्ममूलं तद्विदां च स्मृतिशीले' इति हि गौतमधर्मसूत्रम्। वेदेषु कासुचित्सूक्तिषु कतिपयब्राह्मणग्रन्थेषु च संस्कारसम्बद्धाः विषयाः समुपलभ्यन्ते। एतेषां विकासः व्यवस्थितरीत्या गृह्यसूत्रेषु सम्यक्कृतोऽस्ति।

वैदिकसाहित्येऽपि विशिष्याथर्ववेदे संस्कारविषये यावती सामग्री समुपलभ्यते तावदन्यत्र संहिताभागे नोपलभ्यते। अस्मिन् मानवजीवनस्य प्रत्येकभागसम्बद्धाः मन्त्राः सन्ति। विवाहविषयकानि अन्त्येष्टिविषकानि सूक्तानि च ऋग्वेदापेक्षया विस्तृतानि सन्ति। एकस्मिन् सम्पूर्णसूक्ते (11.5) वैदिकब्रह्मचारिणः प्रशंसा कृतास्ति। गर्भाधानविषयेऽपि ऋग्वेदापेक्षयाधिकसूक्तेषु सामग्री लभ्यते। अष्टादशमण्डले दीर्घायुष्ट्वाय प्रार्थना कृता दृश्यते। एते आयुःकर्माणीति कथ्यन्ते। एवमेव स्त्रीकर्माण्यपि तत्रैवोपदिष्टानि सन्ति। ब्राह्मणग्रन्थेष्वपि संस्कारविषयकसामग्री दृश्यते। तेषु अधिकांशतः श्रौतयज्ञानां निरूपणे एवं श्रद्धादरो दृश्यते। तथापि गणनीयप्रमाणेन संस्कारचर्चा कृतास्ति। गोपथब्राह्मणे उपनयनसंस्कारस्य विवरणं वर्तते। शतपथब्राह्मणे विद्यार्थिनां ब्रह्मचर्यमुपदिष्टम्। तत्राजिनधारणस्योल्लेखः, गोदानसंस्करणस्य वर्णनं कृतं दृश्यते। ताण्ड्यब्राह्मणेषु व्रात्यानां व्रात्यस्तोमयज्ञस्य च वर्णनमस्ति। यस्यानुष्ठानेन व्रात्यः शुद्धो भवति। शतपथब्राह्मणे उपनयनस्वाध्यायान्त्येष्ट्यादि विषयेषु वर्णनमस्ति, यदन्यब्राह्मणेषु नोपलभ्यते।

आरण्यकेषूपनिषत्सु च दार्शनिकविषयाणामेव निरूपणं मुख्यतया कृतमिति संस्कारविषये विशेषतया सामग्री न लभते, तथापि क्वचित् न्यूनप्रमाणे तेषां वर्णनं प्राप्यते। तैत्तरीयारण्यके विवाहब्रह्मयज्ञस्वाध्यायादिविषयाः चर्चिताः तत्र षष्टाध्याये पितृमेधस्य कृते आवश्यकाः मन्त्राः सन्ति। उपनिषत्सु बहुत्रोपनयनसंस्कारसम्बद्धाः सन्दर्भा दृश्यन्ते। एवं स्मृतिधर्मसूत्रगृह्यसूत्रादिषूपलभ्यमानानां संस्कारसम्बद्धविषयाणां मूलं वैदिकसाहित्यमिति निश्चप्रचम्। प्रस्ताविते मदीये शोधपत्रे तेषां विशदतया वर्णनं दृश्यते।

वैदिकवाङ्मये यज्ञस्वरूपम्

श्री के.एस. सतीशः

वेदेषु तादृशस्य कस्यचित् पदार्थस्योपदेशः कृतोऽस्ति येन सर्वोऽपि पुरुषार्थः सिद्ध्यति। सच साधनविशेषः यज्ञः।

यज्ञेन धर्मार्थकाममोक्षाः सर्वेऽपि प्राप्यन्ते। तथा हि- अग्निहोत्रं जुहोति इति वाक्येन ज्ञायते यत् स्वर्गसाधनभूतो धर्मः अग्निहोत्रात् जायते इति। वायव्यं श्वेतमालभेत भूतिकामः इत्यादिवाक्यैः यज्ञानामर्थसाधनत्वमवगम्यते। **चित्रया यजेत पशुकामः** इत्यादिभिस्तेषां कामसाधनभावो निश्चीयते। **विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसाऽनाशकेन** इति यज्ञानां मोक्षसाधनीभूतब्रह्मज्ञानकारणत्वमपि प्राप्यते। तथा च यज्ञः सर्वपुरुषार्थसाधनमिति वेदे तत्प्रतिपादनेऽधिक्यं दृश्यते। उपाये हि यत्नो विधेयो न तूपेये इति न्यायाम्।

'यज्' धातोः नञ् प्रत्यये सति 'यज्ञ' शब्दो निष्पद्यते। धातुरयं देवपूजासंगतिकरणदानेषु अर्थेषु वर्तते। यज्ञशब्दस्य परिभाषां कुर्वन्नाचार्यः कात्यायनो वदति यत् **द्रव्यं देवता त्यागः** इति। तथा च देवतोद्देशेन द्रव्यत्यागः यज्ञ इत्युच्यते। निघण्टौ यज्ञशब्दस्येमे पर्यायाः

दर्शिताः सन्ति- 'यज्ञः, वेनः, अध्वरः, मेघः, विदथः, नार्यः, सवनम्, होत्र, इष्टिः, देवताता, मखः, विष्णुः, इन्दुः, प्रजापतिः, धर्म इति यज्ञस्य इति। यज्ञस्य पञ्चाङ्गानि भवन्ति। तानि च- देवता, मन्त्रः, ऋत्विक्, द्रव्यम्, दक्षिणा चेति। एतेषां न्यूनाधिक्ये यज्ञोविकलाङ्गो भवति। यज्ञानां स्वरूपाधारेण, अग्न्याधारेण, द्रव्याद्याधारेण च वर्गीकरणं कृतमस्ति। स्वरूपतः प्रकृतिविकृतिभेदेन ते वर्गीकृताः। यागेषु आहवनीयगार्हपत्यावसथ्यदक्षिणसभ्यनामानः पञ्चाग्नयो भवन्ति। एते श्रौतस्मार्तभेदेनाऽपि द्विधा विभक्ताः। तत्र अनुष्ठीयमाना यज्ञा अपि श्रौतस्मार्तभेदेन विभक्ता सन्ति। द्रव्याधारेण यज्ञानां त्रयो भेदा भवन्ति- पाकयागसंस्था, हविर्यागसंस्था, सोमयागसंस्था चेति। किञ्च पञ्चयज्ञकल्पनापि वेदे समुपलभ्यते। एवमेव द्रव्ययज्ञादयो यज्ञाः श्रीमद्भगवद्गीतायां दर्शिताः अपि वेदमूलका एव। द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे। स्वाध्यायदानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः।। प्रस्ताविते शोधपत्रे एते सर्वेऽपि विषयाः विशदतया निरूप्यन्ते।?

सृष्टेः मूलाधारो यज्ञः

डॉ. रामचन्द्रः शर्मा श्री ला.ब.शा.रा.सं.विद्यापीठम् नवदेहली

अनादिकालात्प्रवर्तमानो नवनवायमानोऽयं संसारवृक्षः कस्याञ्चिद्यज्ञपदप्रतिपाद्यायां सृष्टिप्रक्रियायामनुस्यूतः सन् तत्सम्पादितस्वसम्पोषकरससिञ्चित एव नानारूपैर्विवर्द्धमानः पल्लवितः पुष्पितश्च भूत्वा आनन्दफलामृतरसनिष्यन्दानिर्भरः सर्वान् सम्प्रह्लादयन्नवतिष्ठते। वस्तुतोऽस्य सृष्टिप्रपञ्चस्य मूलाधारो यज्ञ एव। 'यज्ञेन यज्ञमि'ति अनेन मन्त्रेणेदमभिव्यज्यते यत् सृष्टिप्रक्रियायां काचिद् यज्ञात्मिका प्रक्रिया अनुस्यूता विद्यते। "यज्ञो वै विष्णुः","यज्ञो वै प्रजापतिः", "यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म" इत्यादिभिः श्रुतिभिः यज्ञस्य सर्वरूपत्वमभिव्यज्यते। जगदाधारभूतं किमपि चैतन्यं सृष्टिविस्तारस्य मूलं सर्वरूपञ्चास्ति। पुरुषसूक्ते जगदाधारभूतस्य पुरुषस्य यज्ञरूपत्वं यज्ञाधिष्ठातृत्वञ्च विज्ञापितमस्ति। "यज्ञेन यज्ञमयजन्त" इत्यनेन द्रव्य-देवतां-अनुष्ठानादिकं सर्वं यज्ञरूपमेवेति विज्ञापितम्।

'ब्रह्मार्पणमि'ति अनेन गीतावाक्येनापि सर्वस्य यज्ञरूपमताऽभिव्यज्यते। प्रजया सहैव यज्ञ प्रक्रियायाः समुत्पत्तिर्विज्ञेया। पञ्चमहायज्ञा अपि मनुना सम्प्रदर्शिताः। तद्यथा- "अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः, पितृयज्ञस्तु तर्पणम्। होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्।। (मनु. 3.70) एभिर्यज्ञैः सर्वमपि जगत्परस्परसम्बद्धं सत् आनन्दाभिमुखी भवति। इत्थमुपर्युक्तैर्वचनैर्यज्ञविज्ञानस्य किमपि महत्त्वातिशयं सुस्पष्टमभिव्यज्यते। "यज् देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु"-इत्यस्माद्धातोर्निष्पन्नोऽयं 'यज्ञ' शब्दः समग्रस्यापि लौकिकः पारलौकिक जीवनस्य एकसूत्रतां प्रतिपादयन्नभिविराजत इतिशम्।

वेदों में यज्ञ का महत्त्व

डॉ. जीवन आशा संस्कृत विभाग, डी.ए.वी. कॉलेज, जालन्धर (पंजाब)

यज्ञ भारतीय धर्म का मूल है आत्म-साक्षात्कार, स्वर्गसुख, बन्धन-मुक्ति, मनःशुद्धि, पाप-प्रायश्चित्, आत्मबल-वृद्धि, सिद्धियों का केन्द्र यज्ञ ही माना गया है। यज्ञों द्वारा मनुष्य को अनेक आध्यात्मिक एवं भौतिक शुभ परिणाम प्राप्त होते हैं, वेदों में यज्ञाग्नि की पग-पग पर प्रशंसा की गई है जिसमें यज्ञ में सन्निहित शक्तियों एवं उससे प्राप्त होने वाले लाभ का वर्णन किया गया है। यज्ञाग्नि हमारी रक्षा कर दीर्घायु, उत्तम अन्न, प्रजनन-शक्ति, ऐश्वर्य, समृद्धि, श्रेष्ठसन्तति एवं मंगलोन्मुखी पराक्रम के लिए सामर्थ्यशाली है (यजु. 3.63) यज्ञ से रोगों की निवृत्ति की जा सकती है। यज्ञ में प्रदान की गई रोग नाशक हवि की गन्ध शरीर में प्रविष्ट होकर रोग के कीटाणुओं के विरुद्ध अपना कार्य कर उन्हें नष्ट कर देती है। यज्ञ जहां अपनी नाशक शक्ति से प्रणिमात्र के रोगों को दूर करता है वहां यज्ञ की हवियां सूक्ष्म बनकर आकाश मार्ग से ऊपर अन्तरिक्ष में जाकर वृष्टि को उत्पन्न करने का भी कारण बनती हैं।

वैदिक वाङ्मये संस्काराः

कु. यशोदा (सं.वि.), कन्या गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुरम्, हरिद्वारम्

वैदिकवाङ्मये लिखितम् यत् शारीरिक मानसिकं संस्करमिति आर्य संस्कृतौ षोडश संस्काराणां स्थानं कल्पितमास्ते। मातुः गर्भ प्रवेशादारभ्यान्तिमश्वासपर्यन्तमेतैरेव संस्कारैर्मानवः संस्कारितः भवति। वैदिक वाङ्मये संस्काराणां संख्या विषये मतैक्यं नास्ति। तथापि षोडशं संस्काराः स्वीकृता ऋषिमहर्षिभिः (1) गर्भाधानम्, (2) पुंसवनम्, (3) सीमन्तोन्नयनम्, (4) जातकर्म, (5) नामकरणम्, (6)

निष्क्रमणम्, (7) अन्नप्राशनं, (8) चूड़ाकर्म, (9) कर्णवेधः, (10) उपनयनम्, (11) वेदारम्भः, (12) गोदानम्(केशान्त), (13) समावर्तनम्, (14) विवाह, (15) विवाग्निपरिग्रहः, (16) त्रेताग्निसंग्रहः, अद्यापि भारतभूमौ एतान् संस्कारानुपालयन्ति। षोडशसंस्काराः व्यासोक्त्या इति ज्ञायते। विस्तृत विवेचनम् शोधपत्रे विवर्णिष्यते।

THE PURPORT AND SIGNIFICANCE OF YAJNA IN VEDAS

Dr. Nareendra Kumar Sharma Asso. Professor Dept. of History B.S.R. Govt P.G. Arts College Alwar (Raj.)

Generally the Yajna is considered as the supreme Vedic virtue. In the history of the Vedas reader finds enormous kinds of Yajnas dedicated to a great number of deities. The scholars of the Vedic thought ad practices, despite various kinds of interpreations and explanations, have not yet very much to be unanimous upon. As to what constituted the real purport and the siginificance is still a debatable question amongst the Vedic scholars from various disciplines. The traditional Yajna meant the kindling of the holy wood with the enchanting of the Vedic Hymns along with the performance of elaborate brahaminical Rites. The powers of the nature were accorded the status of the deities and much of the Yajna was undertaken with a view to seeking favours from such natural deities. This paper intends to offer an explanation of the Vedic Yajnas hitherto not given a due consideration. The modern scholarship, it apperas, is so much engrossed in the ritualistic and the textual interpretation of the mantras and the brahaman part of the Vedas that real spirit and the significance; the idea of upliftment and welfare of the common man has somewhat faded into the ignorant oblivion. Restoration of the true and simple Vedic spirit, the persent author believes, is more important than purely intellectual enterprise. Hence this proposal for kind consideration.

SAUTRAMANI SACRIFICE - A MAGICO-MEDICAL TREAT

Dr. C. L. Prabhakar President waves usa India Branch Banglore

In yajurveda, we come across the details, rewards and procedure of this major sacrifice which takes the name after the great deity Indra who came to be famous as Indra sutraman. This sacrifice is called therefore , as sautramani Yajna. Also it is an enterprise to rejuvenate and repair the injured parts of the body of Indra, the hero of gods and the king of the gods. In this strain, Asvins were the divine Physicians to attend on him, Goddess Sarasvati was the Nurse and the lady doctor. The other deities like the Tvastru, Bruhaspat etc became the para medical workers to assist in the eve ot treatment to the Deity Indra. All gods took this role since they cannot find a second strong person to protect them, More so from the attack of demons and other negative forces. This paper point out the details and the procedure presented in the literature of Yajurveda. The paper covers the magico-religio-spiritual significance of the concept and performance.

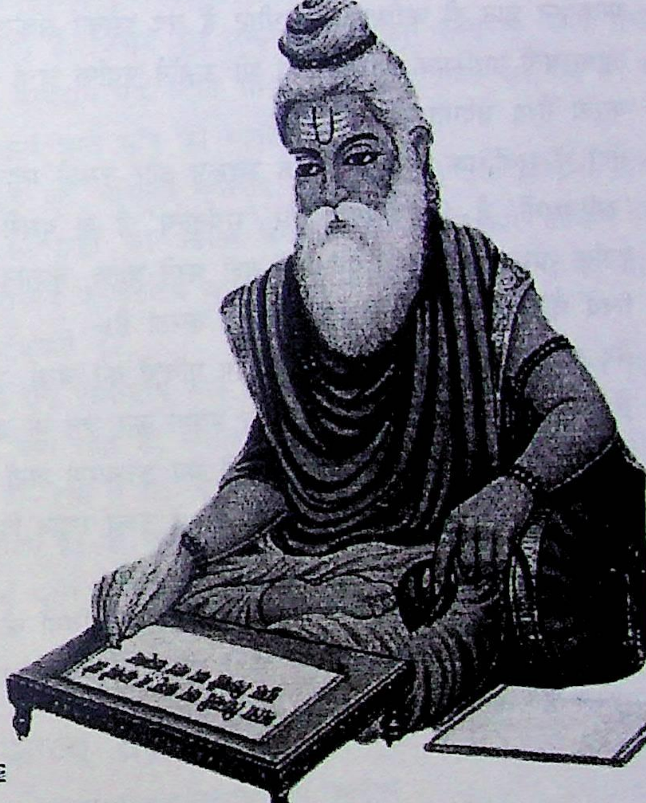
CHANGING CHARACTER OF AGNI IN THE VEDIC PERIOD

Dr. Sishir Kumar Tripathy *Research Scholar*, Ravenshaw University, Cuttack, Orissa

In vedic period Agni played an important role as a God. However, His character changed from time to time. It is revealed from the following descriptions "Agnimile Purohitam Yagnasya Devaritvija, Hotaram Ratna Dhatavam". Further – "Agni Dutam Purodadhe Havyavahamupabrube Devamasa Dayadiha" Like wise examples can be multiplied. The sages composed hymns regarding Agni from time to time situating Him in changing scenario. Sometimes His position became high and at other times, He was subordinate to different Gods. All these aspects have been discussed in this paper.

काव्य शास्त्र





वेदों में कवि एवं काव्य विषयक चिन्तन

डॉ. रंजन तिवारी रीडर- हिन्दी विभाग रा.स्व.ग्रा.उ. स्नातकोत्तर कालेज पुखरायाँ, कानपुर देहात

वेदों की रहस्यमयी, सूत्रात्मक गणितीय भाषा अर्थ उद्घाटन के लिये मन्त्रद्रष्टा ऋषि के समकक्ष भावसमाधि भी अपेक्षा रखती है। इस अर्थ निगूढ़ता ने अनेक वैदिक शब्दों के विषय में विपश्चितों को भी ऊहा में डाल दिया है। वेदों में काव्यत्व विषयक चिन्तन के उद्घाटन के सम्बन्ध में भी यही बात सत्य है। यहाँ गूढ़ रहस्यात्मक शैली में कवि एवं काव्य विषयक अनेक महत्त्वपूर्ण साक्ष्य बिखरे पड़े हैं जिनके आधार पर इस विषय में कुछ महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं-

1) वेदों में कवि के स्वरूप, कवि के दायित्व, समाज के स्थान, काव्य रचना प्रक्रिया, श्रेष्ठ काव्य के गुण तथा काव्य की प्रभविष्णुता आदि के विषय में पर्याप्त अभिव्यक्तियाँ मिलती हैं।
2) वेदों में कवि को स्रष्टा, भावमूल में अधिष्ठित, जन के हृदयों का ज्ञाता, भावापन्न ज्ञान का प्रस्तोता, क्रान्तिदर्शी, पवमान(पवित्र करने वाला) प्रेरक तथा भावों का प्रसार कर्त्ता कहा गया है।
3) वेदों में कवि के लिये सोम, ऋषि, विप्र, ब्राह्मण राज आदि शब्द प्रयुक्त हुए हैं।
4) भावापन्न ज्ञान ही कविता मे अभीष्ट हैं वेद इसका संकेत 'विपश्चित सोम' के रूप में करते हैं। रचना प्रक्रिया में भाव की आधारवर्ती प्रारम्भिक भूमिका की भी उन्होंने पर्याप्त चर्चा की है। कवि का भाव, ज्ञान का और ज्ञान, भाव का तिरस्कार नहीं करता ऐसा वेदमत है।
5) वेदों में सर्वाधिक चर्चा कवि के स्वरूप और उसके महत्त्व को लेकर हुई है। वेद वर्णित कवि एक ओर 'क्रान्तिदर्शी' है, 'अग्निधर्मी' है, 'अग्निव्रती' और 'सूर्यतुल्य' है तो दूसरी ओर 'रसवर्षी' और 'मधुमान'। वह पवित्रकर्त्ता, उन्नायक, दिशा दर्शक, प्रेरक, मन्त्रदाता, दुर्बता में बल भरने वाला, कृशानु कवि है। उसकी अभ्युदय और नि:श्रेयस युक्तवाणी को सुनने के लिये वैदिक ऋषि भी उसका आह्वान करता है।
6) वेद कवि को अपनी वाणी का उपयोग पवित्रों की चर्चा, उनका वर्णन करने में करने की सलाह देती है। वाणी प्रयोग पद्धति से ही कल्याणी बनती है जब उसक प्रयोग जन-जन के उन्नयन उन्हें जोड़ने, पार्थक्य मिटाने सामूहिक एवं आत्मिक उन्नति के लिये हों। ऋषि कवि अपनी वाणी का उच्चारण जनों के लिये करता है।
7) वाग्देवी के ऐसे आराधक कवि को वेदों में उच्च स्थान दिया गया है, तथा उसकी स्तुति और आराधना करने को कहा गया है।
8) जो व्यक्ति या जाति निराश है, पददलित है वह कवियों के द्वारा मंगल भावापन्न होकर पुनः ऊपर उठ जाती है। कवियों की नवजीवन संचारणी, उत्साह भरने वाली भूमिका जिसके लिये प्रेमचन्द ने कहा था कि 'साहित्य समाज के आगे चलने वाली मशाल है' का उल्लेख वेद भी करते हैं।

ऋग्वेद में विविध अलङ्कार

डॉ. डॉली जैन 621, गौतमबुद्ध निवास, वनस्थली विद्यापीठ टोंक(राजस्थान)

विश्वसंस्कृति के आदि स्रोत वेद, सृष्टि ज्ञान की प्रथम रश्मि के रूप में यज्ञ प्रजापति की अद्भुत सर्जना है। लौकिक एवं आध्यात्मिक ज्ञान की अनुपम विभूति हैं। ज्ञान की इस ज्योति ने सम्पूर्ण विश्व को प्रकाशित किया है। इस प्रकार वेद सुव्यवस्थित ज्ञान है, उसमें भी सौन्दर्य है और सौन्दर्य ही अलङ्कार है। अलङ्कार के विषय में आचार्य विश्वनाथ कहते हैं-

''शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्मा शोभातिशायिनः।
रसादीनुपकुर्वन्तोऽलंकारास्तेऽङ्गादिवत्।।' साहित्यदर्पण- 10.1

ऋग्वेद में विविध अलङ्कारों के उदाहरण प्राप्त होते हैं। यथा-

'समित्समित्सुमना बोध्यस्मे शुचाशुचा सुमतिं रासिबह्वः।

आ देव देवान्यजयाय वक्षि सखा सखीन्त्सुमना यक्ष्यसे।। ऋग्वेद - 3.4.1

प्रस्तुत मन्त्र में अनुप्रास अलंकार विद्यमान है। इसी प्रकार निम्न मन्त्र में उपमा अलङ्कार द्रष्टव्य है-

'वृक्षस्य नु तेपुरुहूत वया:।।' ऋग्वेद- 6.24.3

पुरुहूत इन्द्र! तुम्हारी शाखाएँ वृक्ष के समान हैं। यहाँ शाखा उपमेय है, वृक्ष उपमान तथा विस्तार आदि साधारण धर्म एवं 'नु' वाचक शब्द है। इस प्रकार ऋग्वेद में विविध अलङ्कारों को प्रस्तुत करना ही इस शोधपत्र का उद्देश्य है।

रस सिद्धान्त का आधार वेद

डा. कल्पना द्विवेदी प्रवक्ता साहित्य श्री एकरसानन्द संस्कृत महाविद्यालय, मैनपुरी

वेदों ने हमारे जीवन में ज्ञानमयी जो स्रोतस्विनी प्रवाहित की है, वह ज्ञान विज्ञान की सहस्रधारा के रूप में अनवरत प्रवहमान है। छन्द, ज्योतिष, निरुक्त, व्याकरण, कल्प, शिक्षा, आयुर्वेद, धनुर्वेद, धातुविज्ञान, गणितीय ज्ञान इत्यादि सब का आदि उत्स वेद ही है। पुराण धर्मशास्त्र आदि की भाँति ही काव्यशास्त्र का प्राण स्वरूप तत्व रस का उन्मीलन वैदिक साहित्य में ही हुआ है।

अलंकार, गुण, दोष, रीति आदि के विद्यमान होने पर भी काव्यशास्त्र आत्मविहीन सा प्रतीत होता है। क्योंकि काव्य की पूर्णता रस में ही निहित है। काव्य का जीवनदायक तत्व रस है एवं काव्य की सम्पूर्ण चारुत्व तो रस में ही निहित है।

काव्यशास्त्री काव्यशास्त्र को कई सम्प्रदायों से युक्त स्वीकारते है, जिसमें रस सम्प्रदाय, अलंकार सम्प्रदाय, रीति सम्प्रदाय, वक्रोक्ति सम्प्रदाय, औचित्य सम्प्रदाय एवं ध्वनि सम्प्रदाय। इसेमें रस सम्प्रदाय एवं ध्वनि सम्प्रदाय में मात्र शब्दों का भेद है, यथार्थ वस्तु दोनों में एक ही है। काव्यशास्त्री रस सिद्धान्त के प्रवर्तक आचार्य भरत मुनि को मानते हैं।

भरतमुनि के रस सूत्र की भट्टलोल्लट, शंकुक, भट्ट नायक एवं अभिनव गुप्तपाद ने व्याख्या की एवं अन्यान्य ग्रन्थकारों ने भी भरत के रस सूत्र की व्याख्या अपने ढंग से प्रस्तुत की है। इन्हीं को आधार बनाकर काव्यप्रकाशकार आचार्य मम्मट, साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ, ध्वनिकार एवं रसगंगाधरकार आचार्य पण्डितराज जगन्नाथ ने अपने अपने ग्रन्थों में की है। सभी निर्विवाद रूप से रस सिद्धान्त का आदि आचार्य भरत मुनि को स्वीकारते हैं।

रस के स्वरूपानुभूति पर विचार करने पर रस का सातिशय एवं निरतिशय रूप हमारे समक्ष आ जाता है। रस का सातिशय रूप वह सहज सहृदय को रसानुभूति के साथ साथ बाह्य जगत् का भान रहता है, निरतिशय वह जहाँ विगलित वेद्यान्तर रूप में रस समाधि में समाधिस्थ हो जाता है। रस का यह निरतिशय रूप वेदों में 'रसो वै सः' एवं आनन्दालब्धी के रूप में प्राप्त होता है। रस कोई बाह्य वस्तु नहीं है अपितु वह जो जीवगत चैतन्य में सदा विद्यमान है। जो शब्द एवं दृश्य के माध्यम से संवेद्य हो जाता है। रस की चरम सत्ता जीव के अन्तःकरण में स्थित आनन्दरूप है। आचार्य भरत मुनि ने भी अपने ग्रन्थ में रस के इसी स्वरूप का वर्णन किया है, यही वेदों का प्रतिपाद्य रहा है।

ऋग्वेद में काव्य तत्त्व

दीप्ति कुमारी शोधच्छात्रा, संस्कृतविभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़

विश्वसाहित्य में प्राचीनतम प्रतिभा का सुन्दर प्रस्फुटन यदि कहीं दृष्टिगोचर होता है तो वह ऋग्वेद है। ऋग्वेद मानव सभ्यता का आदिम ग्रन्थ है। यद्यपि ऋग्वेद के सभी सूक्त स्तुतिपरक हैं तथापि ऋग्वेद में ऐसे बहुसंख्यक सूक्त उपलब्ध होते हैं जिनमें काव्यगत तत्त्वों का वर्णन प्राप्त होता है। काव्यगत तत्त्वों में प्रमुखतया रस, छन्द, अलंकार का विवेचन होता है।

यद्यपि ऋग्वेद में रस निष्पत्ति का शास्त्रीय रूप दृष्टिगोचर नहीं होता है तथापि विविध वर्णनों में रस तत्त्व की अनुभूति होती है। वैदिक ऋचाओं में गेयता ही प्रमुख गुण है। छन्दोबद्ध गेयता के साथ तन्मय होने पर रसान्विति भी होती है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते है किशृंगार वर्णन में संवाद-सूक्त विशेष महत्त्व के हैं, यथा- यम-यमी, सोम-सूर्या, पुरुरवा-उर्वशी आदि। पुरुरवा-उर्वशी संवाद सूक्त में विरहव्यथित पुरुरवा की उक्तियों में विप्रलम्भ शृंगार रस का अच्छा संकेत मिलता है। उषस् सूक्त में उदय होती हुई उषा को शृंगारिक रूप दिया गया है।

वीर रस के वर्णन में इन्द्रसूक्त, पर्जन्य सूक्त विशेष उल्लेखनीय हैं। मण्डूक सूक्त में हास्य रस का वर्णन भी उपलब्ध होता है। काव्यगत तत्त्वों में छन्दों का भी विशेष महत्त्व है। ऋग्वैदिक छन्दों में गायत्री, उष्णिक्, जगती, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप् आदि छन्द प्रमुख हैं। साहित्यिक सौन्दर्य में अभिवृद्धि करने वाला अन्य तत्त्व अलंकार है। वाणी रूपी शरीर का श्रृंगार अलंकारों द्वारा माना गया है। ऋचाओं में शब्दालंकारों- अनुप्रास, यमक, श्लेष का प्रयोग सीमित हुआ है परन्तु अर्थालंकारों की बहुलता है। उपमा, रूपक, अतिशयोक्ति, व्यतिरेक इत्यादि विविध अलंकारों का प्रयोग मिलता है किन्तु सर्वाधिक प्रयोग उपमा का है। ऋग्वेद में अतिशयोक्ति का उदाहरण वह प्रख्यात मन्त्र है, जिसमें यज्ञ की अथवा शब्द की अथवा काव्य की स्तुति की है-

'चत्वारि श्रृंगा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य।

त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महां देवो मर्त्याविवेश।। ऋग्वेद 4.58.3

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि ऋग्वेद में काव्यगत तत्त्वों का विशद् विवेचन प्राप्त होता है।

वैदिक साहित्य : काव्यतत्त्व

कल्पना शर्मा (शोधच्छात्रा) दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

वेद विश्व का प्राचीनतम साहित्य है। वेद से सम्बद्ध साहित्य को वैदिक साहित्य कहा जाता है। 'साहित्य' का शाब्दिक अर्थ है- शब्द और अर्थ का परस्पर विशिष्ट प्रकार का सम्बन्ध- **"सहितयोर्भावः साहित्यम्"** यह सम्बन्ध शाश्वत है। कालान्तर में साहित्य शब्द काव्य के नाम से भी कहा जाने लगा। साहित्य समाज का दर्पण होता है। समाज के रूप-रंग, वृद्धि-ह्रास, उत्थान-पतन, समृद्धि-व्युद्धि के निश्चित ज्ञान का प्रधान साधन तत्कालीन साहित्य होता है। वेद तत्कालीन साहित्य और समाज को जानने का प्रतिनिधि ग्रन्थ है। मनु ने कहा है- 'सर्व वेदात्प्रसिध्यति' वेद से सब विद्याओं की सिद्धि होती है।

साहित्यिक सौष्ठव की दृष्टि से वैदिक वाङ्मय की गुणवत्ता असन्दिग्ध है। डॉ. वी. राघवन् ने 'संस्कृत साहित्य' में कहा है- कविता के जो बीज ऋग्वेद में बोये गए हैं वे ही पुष्प और कलियों के रूप में बाद के संस्कृत के लौकिक साहित्य में मिलते हैं। वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, भवभूति आदि संस्कृत भाषा के कवियों की कविता वैदिक कविता से निश्चय रूप से प्रभावित है। वेद स्वयं काव्य रूप है और उसमें काव्य के सम्पूर्ण तत्त्व पाये जाते हैं। काव्य सौन्दर्य के आधायक रस, भाव गुण, रीति, अलंकार आदि सभी तत्त्व मूलरूप में वेद में प्राप्त होते हैं। स्वयं भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र को वेद से उद्भूत प्रतिपादित किया है। वैदिक वाङ्मय में अनेक ऐसे मुख्य प्रसंग हैं, जिनमें रस-निष्पत्ति अनुभव होती है। ऋग्वेद के पुरुरवा-उर्वशी संवाद में विप्रलम्भश्रृंगार के हृदयद्रावक प्रसंग सन्निहित हैं। श्रृंगार की भांति वेद में अन्य रसों की भी सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। इन्द्र सूक्त में वीर रस की अभिव्यक्ति हुई है।

शब्द प्रधान वैदिक काव्य में अभिधा के साथ लक्षणा का स्थान-स्थान पर प्रयोग हुआ है। 'श्रृणोत ग्रावाणः', 'आदित्यो यूपः', स्तेनं मनः' आदि वाक्य लाक्षणिक प्रयोग से युक्त है। व्यञ्जना के भी कुछ उदाहरण वेदों में प्राप्त होते हैं। उपमा, रूपक प्रभृति अलंकार वैदिक वाङ्मय में मिलते हैं। पदावृत्ति और अक्षरावृत्तिजन्य नाद सौंदर्य का लालित्य भी वेद की अद्भुत काव्य विशेषता है। यथा हिरण्यगर्भ सूक्त में कस्मै देवाय हविषा विधेम' की आवृत्ति नाद उत्पन्न करने का सुन्दर प्रयास किया गया है।

वस्तुतः काव्य के रूपमें वैदिक काव्य की रमणीयता अपने सम्पूर्ण सन्दर्भों मे अनुद्घाटित ही है। राजशेखर ने इसी लिए 'अलंकार' नामक एक सप्तम वेदांग का प्रस्तांव रखा था।

वेदों में काव्यतत्त्व

डॉ. वन्दना कुलश्रेष्ठ प्रवक्ता, संस्कृत नेहरु महाविद्यालय, ललितपुर

सम्पूर्ण विश्व का समग्र ज्ञान वेदों में मूल रूप से विद्यमान है। इसमें न केवल अध्यात्म, दर्शन, मनोविज्ञान, आयुर्वेद, नीतिशास्त्र, भौतिक विज्ञान आदि का अक्षय भण्डार निहित है, बल्कि काव्यशास्त्रीय दृष्टि से भी विपुल सामग्री उपलब्ध है। वस्तुतः

वेद स्वयं काव्यरूप हैं और तत्त्व मूल रूप से वेदों में विद्यमान हैं। आचार्य भरतमुनि ने भी नाट्यशास्त्र का मूल वेदों को स्वीकारते हुए उसकी उत्पत्ति वेदों से बताई है-

'नाट्यवेदं ततश्चक्रे, चतुर्वेदाङ्गसंभवम्।।
जग्राह पाठ्यमृग्वेदात् सामभ्योगीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयान् रसान् आथर्वणादपि।।(नाट्य. 1.16-17)

अर्थात् ऋग्वेद से संवादों का, सामवेद से गीतों का, यजुर्वेद से अभिनय का और अथर्ववेद से रसों का ग्रहण कर नाट्यरचना सम्पन्न हुई। वेदों में प्राय: सभी रसों का समुचित विधान है। श्रृंगार वीर, हास्य, करुण, रौद्र, भयानक, वीभत्स, अद्भुत तथा शान्त सभी रसों का हृदयाह्लादक वर्णन वेदों में प्राप्त होता है। इन्द्र की स्तुतियों में वीर रस की अभिव्यञ्जना अपने भव्यरूप में उपस्थित होती है-

'यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो यं युध्यमाना अवसे हवन्ते।
यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव यो अच्युतच्युत् स जनास इन्द्र:।। (ऋ. 2.12.9)

ऋग्वेद के अनेक सूक्तों में श्रृंगार रस का भी मनोरम वर्णन प्राप्त होता है। पुरूरवा-उर्वशी संवाद (ऋ. 10.95) विप्रलम्भ श्रृंगार का उत्कृष्ट उदाहरण है- 'पुरूरव: पुनरस्तं परेहि, दुरापना वात इवाहमस्मि' (ऋ. 10.95.2)।

वैदिक मन्त्रों में अलंकारों की भव्य एवं रमणीय छटा पदे-पदे दृष्टिगत होती है। इसमें उपमा और रूपक अलंकारों का प्रयोग प्रचुरता से हुआ है।

ऋग्वेद में नारी-सौन्दर्य का चित्रण

डॉ. मंजुला श्रीवास्तव प्रवक्ता हिन्दी-विभाग डी.जी.पी. कॉलेज, कानपुर

सौन्दर्य में मानव मन का विमुग्ध करने की चमत्कारिक शक्ति है। ऋग्वेद में भी मानव मन का प्रिय यह विषय अछूता नहीं रहा है। वहाँ आन्तरिक सौन्दर्य को विशेष महत्त्व दिया गया है।

नारी-गत सौन्दर्य भावना का प्रादुर्भाव ऋग्वेद से ही प्राप्त होने लगता है। यह परम्परा वैदिक साहित्य से होती हुई, रामायण, महाभारत, पुराण तथा अन्य लौकिक संस्कृत काव्यों में विकसित हुई है। प्राचीन भारतीय दर्शन तथा संस्कृत-साहित्य ने सौन्दर्य के पारिभाषि स्वरूप पर अधिक विवेचना हुई है, यद्यपि रूप, सौन्दर्य और लावण्य के सूक्ष्म भेद-प्रभेद अवश्य प्राप्त होते हैं, परन्तु सौन्दर्य की सामान्य परिभाषा के सम्बन्ध में कोई स्पष्टीकरण नहीं हुआ है। कवियों ने केवल यदा-कदा सौन्दर्य-बोधक मार्मिक उक्तियों द्वारा उसे स्पष्ट किया है कवि माघ ने क्षण-क्षण में नवीनता प्रदान करने वाले रूप को ही सौन्दर्य माना है-

"क्षणे-क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयताया:।"

नारी सौन्दर्य की प्रतीक है, क्योंकि उसमें पुरुष को सौन्दर्य, भोग और अभिव्यक्ति नामक तीनों तत्त्व प्राप्त होते हैं। नारी शरीर में रमणीक रंगों का अपूर्व समन्वय रहता है। उसकी मधुर ध्वनि भी सौन्दर्य-बोण का प्रबल उपकरण होती है। सौन्दर्य की एक विशेषता कोमलता मानी जाती है, स्त्री तो अपने नाम में भी कोमल और मंजुल है। रूप-रंग, रंग-ढंग सुघडता, समता, सापेक्षता, माधुर्य-लावण्य, उदाहरण -सुखक़रता एवं संगति और सन्तुलन सभी दृष्टियों से नारी का सौन्दर्य अप्रतिम है। रूपका विन्यास और अभिव्यक्ति उसकी सजीवता के कारण अत्यन्त कमनीयता उत्पन्न करते हैं। उसकी वाणी की मिठास सौन्दर्य को तरलित और सम्प्रेषित करती है। नारी शरीर में समस्त ललित कलाओं का निवास है। उसकी वाणी में संगीत है।, उसके वचनों में साहित्य का प्राण है, उसका रूप चित्रकला का सजीव उदाहरण है। इससे भी ऊपर मानसिक और शारीरिक वेदनाओं का परमतृप्ति-कोष है। यही कारण है कि भतृहरि ने नारी को सौन्दर्य का सार और कलाओं की सृष्टि के रूप में देखकर अपने उदात्तीकृत सौन्दर्यजन्य 'शून्य' का केन्द्र माना है।

ऋग्वेद में नारी के गुणों व स्वभाव-वर्णन के रूप में इसके आन्तरिक सौन्दर्य का चित्रण किया गया है। उसके श्रेष्ठ गुणों की प्रशंसा है और अश्रेष्ठ व्यवहारों की निन्दा है दुर्गुणों को नारी की आन्तरिक असुन्दरता माना है औरी उसे उनको दूर करने की प्रेरणा दी गयी है। नारी के आन्तरिक सौन्दर्य को व्यक्त करने वाला सबसे महान शब्द है- देवी। वेद ने नारी को देवी घोषित करके उसे दिव्यगुण, स्वभाव, व्यवहार की खान माना है। साथ ही इस शब्द से उसे महानता का पद भी प्रदान किया है। नारी के गुणों, स्वभाव

एवं श्रेष्ठ आचरण को बोध कराने के लिये ऋग्वेद में विभिन्न विशेषणों का सहारा लिया गया है। ऐसे विशेषणों की संख्या पर्याप्त है। इनसे नारी के आन्तरिक सौन्दर्य की अभिव्यक्ति होती है।

वेद में काव्यतत्त्व

डॉ. योगिनी के. पण्डया गुजरात

सर्वोत्तम कोटिका और नूतन-नीवन स्तोत्र स्वरूपे दृष्टिगोचर होता हैं ऋषि की कल्पनाओं में 'नूतनस्तोत्र बनाने की - दर्शन करने की अभिलाषा को झंकृत होतीदेखने को मिलती है यथा-

(1) विप्राः नूतनानि ब्रह्मापि जनयन्तः। 9.22.। (2). मामनि नवानि कृतानि ब्रह्म जुजुषन् इमानि' 9.51.1 (3) जवीयः क्रियमाणं ब्रह्म। (4) पूर्वे ऋषयः ये च नूतनाः ब्रह्मापि जनयन्तः। (5) अग्निः पूर्वेभिर्ऋषभिरीड्यो नूतनैरूत। एक मन्त्र में - देवकृतस्तोत्र हैं। जो नित्यनूतनस्तोत्र काव्य हैं- 'देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति।'

वेद में निहित काव्यतत्त्व - देखने से पूर्व ऋषयः - कवयः सत्यश्रुताः कवये निर्वचनानि नित्य वचांसि।' इस तरह रमणीयार्थप्रतिपादक शब्द'। काव्य और अलंकृत वाणी, सम्यक् प्रयुक्तवाचा कामधेनुः भवति।'

उषसः सूक्त में रोचक, मनोज्ञा काव्यमय कल्पना अद्वितीय है वैदिक- एषा शुभ्रा न तन्वौ विदानोर्ध्वे च स्नाती दृश्ये ना अस्थात्। अय द्वेषो बाधमाना तमास्युष दिवो दुहिताज्यातिषा। अन्यतम् सूक्तो में काव्यतत्त्व आरण्यसूक्त, मण्डूक सूक्त भिक्षुसूक्त, विश्वामित्र-नदीसंवाद- इत्यादि सूक्तों में सृजित, अपूर्वनिधि विद्यातीर्थरूपी महेश्वर के नूतन काव्यतत्त्व का निरूपण किया है।

'यस्यः निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत्।
निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थमहेश्वरम्।।

वेदों में रस

सुनील कुमार शोध छात्र, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

रस शब्द भारतीय संस्कृत वाङ्मय के अत्यन्त प्राचीन शब्दों में से एक है। प्राचीन काल से यह शब्द जल, सार, वीर, द्रव, स्वाद, विष, धातु, मधुर आदि षड्रस, पारद, परमात्मा,शृंगारादि काव्य रस तथा सुरा, शोणित, देह आदि अर्थों में प्रयुक्त होता आ रहा है। वेद, वेदांग आदि में शतशः प्रयुक्त रस शब्द के आधार पर यह निःसन्देह कहा जा सकता है कि आयुर्वेदीय लौकिक रस एवं काव्यशास्त्रीय अलौकिक रस वेदाब्धि से ही निःसृत है। वहीं से प्रेरणा पाकर आयुर्वेद के प्रवर्तकों ने लौकिक रसों का तथा नाट्य या काव्यशास्त्र के आचार्यो ने शृंगारादि अलौकिक रसों का प्रतिपादन किया है।

'रस्यते आस्वाद्यते इति रसः' रस को आस्वाद से जाना गया है रसं जानाति पण्डितः (ऋग्वेद. 1.91.3) यह रस वेद, वैदिक संहिताओं, वेदांगों में व्याप्त है। वेद के उन मर्मो, ऋचाओं तथा उन महामनीषियों की वाणी में यह सदैव रहता है। यजुर्वेद में कहा गया है- 'आ विवासन्ति कवयः सुयसाः(यजु. सं. 7.35) यह वाणी रूपी कामधेनु रस की मधुरता जीवन में देती रहती है। नाट्यशास्त्र प्रणेता आदि रसाचार्य भरत मुनि ने चारों वेदों की उपयोगिता को स्वीकार कर अपने नाट्यशास्त्र का निर्माण किया है। अभिनयदर्पकार नन्दिकेश्वर के अनुसार ब्रह्म ने सर्व प्रथम भरत को नाट्यवेद दिया था। नाट्याचार्य भरत ने नाट्यशास्त्र के लिए ऋग्वेद से पाठ्य, सामवेद से गीत, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रस का ग्रहण किया है।

वैदिक साहित्य में प्रयुक्त श्रृंगार , हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भय, अद्भुत आदि आदि शब्दों के अर्थो से मिलते-जुलते ही काव्यशास्त्रीय श्रृंगार, हास्य आदि शब्दों के अर्थ हैं। जिन रत्नादि मनोभावों का निर्देश वैदिक साहित्य में हुआ है उन्हीं प्रसिद्ध भावों को स्थायी भाव मानकर पीछे साहित्यशास्त्र में रस का निरूपण किया गया है। ऋग्वेद के 'जायेव पत्य उशती सुवासाः' इत्यादि स्थलों में रति भाव का निर्देश स्पष्ट रूप से हुआ ही है। इस लिए कहना असंगत न होगा कि जैसे वेदांचल से रस-सामान्य का स्रोत निकला, वैसे ही रस-विशेषों की भी धारा वहीं से निकल कर प्रवाहित होती जा रही है।

वैदिक कविता में उपमा अलङ्कार

राजमङ्गल यादव शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

जिस प्रकार वेदों में अध्यात्म एवं अन्यान्य ज्ञान-सम्बन्धी विभिन्न विषयों का विवेचन है उसी प्रकार इनमें काव्यतत्व तथा काव्यसौन्दर्य के आधायक समस्त काव्यतत्त्वों का भी निदर्शन होता है। आचार्य भरतमुनि का अधोलिखित कथन इस विषय में प्रमाण है। उनका कथन है कि **'जग्राह पाठ्यमृग्वेदात् सामेभ्यो गीतमेव च। यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि।।'**नाट्यशास्त्र 1/17 अतः भरतमुनि के अनुसार नाट्य(काव्य) के समस्त तत्त्वों का संग्रह वेदों से ही किया गया है वस्तुतः काव्य के समस्त तत्त्व यथा- रस, छन्द, अलंकार, रीति, वक्रोक्ति, ध्वनि आदि वैदिक कविताओं में विद्यमान हैं। ऋग्वेद में कवि, काव्य आदि शब्दों के प्रयोग विभिन्न स्थलों पर दर्शनीय हैं।

ऋग्वेद के तृतीय मण्डल के प्रथम सूक्त के 17वें तथा 18वें मन्त्र में अग्नि को समस्त काव्यों का ज्ञाता कहा गया है। ऋग्वेद में गाथापद का भी प्रयोग हुआ है- **'तं गाथया पुराणया पुनानभ्यनूषत्** (ऋग्वेद 10/6/43)।

विपाशा और शतद्रु नदियों के उच्छ्वसित जलको देखकर ऋषि विश्वामित्र के हृदय से प्रस्फुटित अधोलिखित कविता काव्यत्व का उत्तम उदाहरण है-

प्र पर्वतानामुशती उपस्थादश्वे इव विषिते हासमाने।
गावेव शुक्ते मातरा रिहाणे विपाट्छुतुद्री पयसा जवेते।। ऋग्वेद 3/33/1

प्रस्तुत कविता में उत्तम काव्य के समस्त तत्त्व विद्यमान हैं। इसमें एक साथ श्रृंगार और वात्सल्यरस की माधुरी अभिव्यक्ति, माधुर्यगुण तथा उपमा अलङ्कार का चमत्कारिक सौन्दर्य मन को बरबस आकृष्ट कर लेता है। इस प्रकार वैदिक कविता में शब्द और अर्थ दोनों प्रकार के अलङ्कारों के प्रयोग की बहुलता है।काव्यशास्त्रीय परम्परा का विकास होने के उपरान्त काव्यशास्त्र के विद्वान् आचार्यो ने उपमा को अलङ्कारों की रानी कहा है तथा उसे उपमा देवी के रूप में प्रतिष्ठित किया है। आचार्य अप्पय दीक्षित ने उपमा को काव्यरूपी रङ्गमंच पर नृत्य करती हुई अभिनेत्री कहा जो सहृदय-हृदय का आह्लादन करती है।

परन्तु यहाँ पर केवल उपमा के सामान्य भेदों की चर्चा की जायेगी। ऋग्वेद में उपमम्, उपमे, उपमीहि, उपमात आदि शब्दों का प्रयोग अनेक स्थलों पर हुआ है। ऋग्वेद में कहा गया है- **'स कविः काव्या पुरुरूपं द्यौरिव पुष्यति।** ऋग्वेद 10/41/5 अर्थात् कवि वरुण उसी प्रकार काव्यों का लालन करता है जिस प्रकार द्यौ प्रत्येक वस्तु के पृथक् रूपों का पालन करता है। प्रस्तुत मन्त्र भी उपमा अलङ्कार युक्त है। इस प्रकार वेदों में बिना उपमा के किसी सार्थक वाक्य का प्रयोग नहीं हुआ है। इसका सविस्तार विवेचन शोधपत्र वाचन के समय किया जायेगा।

ऋग्वेद में उपमा

प्रीति सीरौटिया प्रवक्ता नेहरु महाविद्यालय, ललितपुर

वेद में एक ओर यदि संसार भर का अक्षय ज्ञान भराहै तो वहीं दूसरी ओर काव्य का सम्पूर्ण सौन्दर्य पाया जाता है। इसलिये काव्य सौन्दर्य के निरूपक साहित्यशास्त्र में काव्य सौन्दर्य के आधायक जिन रीति, गुण, अलंकार, ध्वनि आदि तत्त्वों का विवेचन किया गया है वे सभी तत्त्व मूलरूप में वेदों में पाये जाते हैं। वेदों में उपमादि अलंकार तो प्रत्येक स्थान पर द्रष्टव्य हैं।

'अलंकरोतीत्यलंकारः' इस व्युत्पत्ति के अनुसार अलंकृत करने वाले पदार्थ को अलंकार कहते हैं। जिस प्रकार देह को अलंकृत करने के कारण कटक-कुण्डल आदि अलंकार कहे जाते हैं। उसी प्रकार काव्य के शब्दार्थ रूपी देह को अलंकृत करने वाले अनुप्रास, उपमादि अलंकार कहे जाते हैं। अग्निपुराण के अनुसार काव्य के शोभाकारक धर्म ही अलंकार हैं- 'काव्यशोभाकरान् धर्मान् अलंकारान् प्रचक्षते।'

सम्पूर्ण जगत् में अलंकार की महिमा बहुत विशाल है। मनुष्य की भाँति प्रकृति भी अंगों को अलंकृत करती है। प्रातः काल जब सूर्य उदित होता है तो प्रकृति प्राची दिशा को अपनी तूलिका से नित-नूतन रंगों से रंग देती है। उपवन के सुन्दर, सुगन्धित, कोमल,

रंग-बिरंगे पुष्पों से उपवन का सौन्दर्य उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त होता है। आशय स्पष्ट है कि प्रकृति भी अलंकार कोप्रेमी है।

भारतीय काव्य परम्परा में यद्यपि अलंकारों की संख्या निश्चित नहीं है, तथापि विद्वानों ने मुख्य रूप से अलंकार दो माने हैं- (1) शब्दालंकार, (2) अर्थालंकार। सुधिजनों को अलंकारों के भेद ज्ञातव्य ही हैं अतः पुनरावृत्ति कर शब्दों का अपव्यय न करूंगी। इस शोधपत्र का शीर्षक 'ऋग्वेद मे उपमा' है। अतः उपमा को आधार बना विषय स्पष्ट करना ही उचित होगा। इस शोधपत्र का मुख्य उद्द्रेश्य वेदों में यत्र-तत्र सर्वत्र जो सुन्दर उपमा मन्त्रद्रष्टाओं ने दी है, उसे विद्वज्जनों के समक्ष प्रकट करने का एक लघु प्रयास भर है।

ऋग्वेद में काव्य सौन्दर्य

शैल त्रिपाठी शोधच्छात्रा, जुहारीदेवी गर्ल्स डिग्री कॉलेज, कानपुर

ऋग्वेद में काव्यात्मक सौन्दर्य की बहुत ही अनुपम विभूति होती है। विविध काव्यकलाकलित ललित भावों के दर्शन होते हैं जिस प्रसंग में काव्यात्मक विधा प्रस्तुत की गई वहाँ पूर्ण ललित कला संयोजित कर दी गई है। ऋषि के रूप में इन्होंने प्रकृति के प्रांगण में दिव्य शक्तियों का साक्षात्कार किया है। वैदिक कवि ने प्राकृतिक दृश्यों में ईश्वरीय शक्ति का मानवीकरण किया है। ऊषा एक सुन्दी युवती एवं नायिका के रूप में हमारे सामने आती है। इन्द्र एक उत्साही योद्धा नायक के रूप में वरुण को एक सर्वाधि कार सम्पन्न राजा के रूप में देखने को मिलते हैं। ऐसे संवाद में यम-यमी, पुरुरवा-उर्वशी आदि के सूक्त भी हैं।

कोमलकान्त पदावली सरसविलास मधुरमाधुर्यलास, प्रसाद गुण की प्रसन्नता सहृदयों के हृदय को सहसा ही आकृष्ट कर लेतीहै। ऋग्वेद में स्थान-स्थान पर रसात्मक अनुभूति होती है रसों में से श्रृंगार रस के दोनों ही भेद संयोग श्रृंगार और वियोग श्रृंगार का वर्णन है इसके साथ ही साथ हास्य रस, वीर की अनुभूति भी मन्त्रों में होती है।

ऋग्वेद में हमें अलंकारों का सुन्दर प्रयोग मिलता है। उपमा, रूपक, अतिशयोक्ति, समासोक्ति, प्रभृति अलंकारों का प्रचुर प्रयोग हुआ है उदाहरण-

'परा हि मे विमन्यवः पतन्ति वस्य इष्टये। वयो न वसती रूप।।' - (1)

अर्थात् जिस प्रकार चिड़ियाँ अपने घोंसलों की ओर दौड़ती हैं उसी प्रकार हमारी क्रोध से रहित चिन्तायें भी धन को प्राप्त करने के लिये दौड़ रही हैं। यह उपमा बहुत ही सुन्दर उदाहरण है।

वेदों में प्रायः छन्दोबद्ध रचना हुई है ऋग्वेद में प्रायः सात छन्दों का प्रयोग हुआ है ये छन्द हैं- गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, जगती और पंक्ति। बिन छन्दों के ज्ञान के मन्त्रों का स्वयं उच्चारण करना पाप के समान है।

वेदों में स्वर का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है यदि किसी शब्द के अक्षर के स्वर को परिवर्तित कर दिया जाये तो उसका अर्थ भी परिवर्तित हो जायेगा। वेदों के अर्थ को ठीक-ठीक से समझने के लिये स्वरों का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। इस प्रकार हम देखते हैं कि ऋग्वेद की भाषा शैली, रस, अलंकार, छन्द, स्वर आदि काव्यगत विशिष्टतायें अपना अनुपम महत्त्व रखती हैं।

हिन्दी के भक्ति साहित्य पर संस्कृत का प्रभाव

प्रा. शुभदा वांजपे प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद

14वीं शताब्दी से 16वीं शताब्दी के मध्ययुगीन काव्य में भक्तिभागीरथी अक्षुण्ण रूप से प्रवाहित हुई है। अतः हिन्दी साहित्य में भक्तिकाल को स्वर्णयुग के रूप में विभूषित किया गया है।

'भक्ति की स्वर्ण भू पर मुखरित सत्साहित्य।
युग युग का कालुष्य मिटाना ही उसका उद्देश्य।।'

'पूज्येषु अनुरागः भक्ति' कहा गया है। शाण्डिल्य भक्तिसूत्र मे 'सा परानुरक्तिरीश्वरः' अर्थात् ईश्वर में परम अनुरक्ति को ही भक्ति माना गया है। इस परमप्रेम रूपा और अमृत स्वरूपा भक्ति को प्राप्त कर मनुष्य तृप्त हो जाता है। आत्मानन्द के साक्षात्कार

से विषय भोगों के प्रति अनासक्त हो जाता है। हिन्दी का भक्तिसाहित्य अमर, चिरन्तन तथा सर्वतोभद्र साहित्य है।

हिन्दी के भक्ति साहित्य पर संस्कृत के आर्ष ग्रन्थों का प्रभाव परिलक्षित होता है। वाल्मीकि रामायण, श्रीमद्भागवत, भगवद्गीता, वेद उपनिषद् आदि भारतीय संस्कृति की धरोहर हैं। इसमें निहित भक्ति तथा दर्शन संबन्धी विचारधारा तथा तत्वों का प्रभाव हिन्दी के संत एवं कविर्मनीषियों ने भी ग्रहण किया क्योंकि यह साहित्य लोकमंगलकारी है तथा उसका उद्देश्य 'सर्वे सुखिनः सन्तु' रहा है। अतः कहा गया है-

'धर्मार्थकाममोक्षाणां ज्ञानवैराग्ययोऽपि
अन्तःकरणशुद्धिश्च भक्तिः परमसाधनम्।।'

हिन्दी की निर्गुण भक्तिधारा में कबीर सारग्राही महात्मा थे। जहाँ कहीं भी उन्हें सत्य तत्त्व की उपलब्धि हुई उसे उहोंने सहर्ष ग्रहण किया। श्रुति ग्रन्थ भारतीय धर्म व्यवस्था के प्राण हैं। 'वेदो हि अखिलो धर्ममूलम्' उक्ति इस बात को पुष्ट करती है। महात्मा कबीर की भी श्रुति ग्रन्थों पर आस्था थी एक स्थान पर 'वेद कतेव कहदु मत झूठा, झूठा जो न विचारे' कहकर उन्होंने वेदों के प्रति श्रद्धाभाव प्रकट किया है। कबीर की ब्रह्म सम्बन्धी धारणा पूर्ण रूप से वैदिक अद्वैतवाद के साँचे में ढ़लकर निकली है। उसमें स्थान-स्थान पर एकत्व का जो आग्रह दर्शित होता है वह वैदिक अद्वैतवाद के अनुकरण पर आधारित है।

वैदिक वाङ्मय में काव्य तत्त्व : पृथ्वी सूक्त के सन्दर्भ में

संजय कुमार मौर्य संस्कृत एवं प्राकृत भाषा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ

वेद ऋषियों की वाणी से प्रकट हुआ स्वाभाविक काव्य है। पृथ्वी सूक्त वास्तव में राष्ट्रीय भावना का पोषक अत्यन्त ही कोमल तथा भावुक उद्गार प्रतीत होता है। अन्य वैदिक ऋषियों की भाँति अथर्ववेद के मन्त्र द्रष्टा ने भूमि की वन्दना में अपना हृदय प्रकट किया है। जब ऋषि कहते हैं-

'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः'

इस कथन में भूमि के ऊपर माँ होने का आरोप किया गया है। ऋषि स्वयं ही पृथ्वी(भूमि) को मातृस्वरूपा तथा स्वयं को पुत्र के रूप मे देखता है। यही चिन्तन कालान्तर में राष्ट्रभावना तथा राष्ट्रीयता की संकल्पना का आधार बना यहाँ पर ऋषि की वाणी में शाश्वत उदार मानवता का सन्देश तो है ही तथा उनके भावोद्गारों में अत्यन्त सहजता होने के कारण स्वभावोक्ति, रूपक, समासोक्ति आदि अलंकार एक साथ उपस्थित दिखाई पड़ते हैं। इसी प्रकार सूक्त के अनेक मन्त्रों में पृथ्वी के सहज स्वाभाविक और सुरूचि पूर्ण चित्र प्रस्तुत करते हुए वैदिक कवि ने अपनी क्रान्तिकारी चेतना का भव्य रूप प्रस्तुत किया है।

प्रस्तुत शोधपत्र में पृथ्वी सूक्त के अन्तर्गत काव्य तत्त्वों के विभिन्न आयामों का प्रस्तुतीकरण शोधच्छात्र द्वारा किया जायेगा।

सौन्दर्यशास्त्र की भारतीय अवधारणा : वैदिक साहित्य के विशेष सन्दर्भ में

कर्मानन्द आर्य शोध अध्येता, हिन्दी विभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

मानव अपनी तीन प्रमुख वृत्तियों से परिचालित है- जिज्ञासा, चिकीर्षा एवं सौन्दर्योपासना। इन्हीं तीनों की तृप्ति के लिए वह ज्ञान, कर्म और सौन्दर्य को खोजता है। इन्हीं के सहारे वह सत्यान्वेषी बना हुआ है। सत्यान्वेषण की अभिलाषा ही मानव को निरन्तर विकास की ओर अग्रसर किए हुए है।

यह जगत् स्वतः आनन्दरूप है। जो कुछ प्रतिबिम्बित हो रहा है, जो कुछ आभासित हो रहा है, वही आनन्द है, सत् और चित् का मंगलमय रूप है। आनन्द का एकमात्र कारण है सौन्दर्यबोध। सौन्दर्य की आकांक्षा आह्लाद का सर्जन करती है, उसकी अनुभूति आनन्द का साकार रूप निर्माण कर विस्मृति प्रदान करती हैं अर्थात् सौन्दर्य जीवन के रोम-रोम में व्याप्त है, क्योंकि अन्तस् भी ब्रह्म का अंश है। ब्रह्म स्वयं परम सुन्दर, परमात्मा है। जो निर्मल स्थली आत्मा को रुचती है, जहां वह रम जाती है वहीं अपना

नीड़ बनाकर बस जाना चाहती है वही सुन्दर है वही सौन्दर्य है। वेद का ऋषि भी कहता है-

उपह्वरे गिरीणां संगमे च नदीनाम्,
धिया विप्रो अजायत्।।

कवि नीरस तूलिका के सहारे सरस भावनाओं को प्रस्फुटित कर देता है, इसी से उसे 'कविरेव प्रजापतिः' कहा गया है, लोक में भी प्रचलित है-

'जहाँ न पहुँचे रवि, वहाँ पहुँचे कवि' वह जहाँ भी सौन्दर्य को सूक्ष्म से सूक्ष रूप में पकड सकता है वहीं उसका एक स्मृति चिह्न रख देता है। सौन्दर्य मानव मन की सहज प्रवृत्ति है और इसकी अनुभूति सार्वजनिक है। जीवन के प्रमुख प्राण-तत्त्वों में से एक होने के कारण सौन्दर्य अनादि काल से देशकाल की सीमाओं से परे मनुष्य हृदय को आकर्षित, प्रभावित एवं स्पंदित करता रहा है।

भारतीय और पाश्चात्य आचार्यों और कवियों ने सौन्दर्य को परिभाषित करने का प्रयास किया है। संस्कृत कवियों में महाकवि माघ उस रूप को रमणीयता की संज्ञा प्रदान करते हैं जिससे- **क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैतितदैव रूपं रमणीयतायाः'।** अर्थात् क्षण-क्षण में नवीनता भी प्राप्ति होती है। महाकवि कालिदास की उक्ति है- **'प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता।'** रूपगोस्वामी के विचार से **'अंग सौष्ठवसे सौन्दर्य की सृष्टि होती है।'** आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है- ''सौन्दर्य बाहर की कोई वस्तु नहीं है, मन के भीतर की वस्तु है। जिस वस्तु के प्रत्यक्ष ज्ञान या भावना से तदाकार परिणति जितनी ही अधिक होगी उतनी ही वह वस्तु हमारे लिए सुन्दर कही जायेगी। इससे स्पष्ट है कि भीतर बाहर का भेद व्यर्थ है अर्थात् जो भीतर है वही बाहर है।' **सौन्दर्यशास्त्र की भारतीय अवधारणा : वैदिक साहित्य के विशेष सन्दर्भ में** शोधपत्र का विस्तृत वाचन सम्मेलन में किया जायेगा।

ऋग्वेद में उपमानभूत पशु-पक्षी

सुश्री कमलेश रानी(शोधच्छात्रा) संस्कृतविभाग, दिल्लीविश्वविद्यालय, दिल्ली

जिस प्रकार वैदिक कवियों ने अपने काव्यों में इन्द्र, रुद्र, मरुत्, उषा, अश्विनौ तथा अन्याय देवों की स्तुतियों में उपमा का अतिशय रोचक प्रयोग किया है। उसी प्रकार इन्होंने पशु-पक्षियों के गुण-विशेष तथा उपयोगिता के वर्णन प्रसंग में भी उपमा का प्रयोग किया है। किन-किन पशु में किस् गुण का विशेष्ज्ञ वैशिष्ट्य होता है? उसको बतलाने के लिए उन्होंने किसी न किसी उपमेय वस्तु को अपनी विवेकशील प्रतिभा के माध्यम से उनकी तुलना के लिए उपस्थापित किया है। यथा- गौरिव नादं कुर्वन्, अश्व इव तीव्रः तथा वृष इव शक्तिमान आदि। उपमा काव्य का प्राण होती है जिसे परवर्ती साहित्यकारों ने भली-भाँति प्रतिपादित किया है। वैदिक कवियों ने अपने काव्यों में इसका अधिकाधिक प्रयोग किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि वे अपनी किसी भी बात को लोक के समक्ष बिना उदाहरण और बिना उपमर के रखना नहीं चाहते थे जिसके कारण उन्होंने प्रत्येक पदार्थ वर्णन में उपमा का बहुतायत मात्रा में प्रयोग किया है। परवर्ती साहित्यशास्त्रियों के काव्यतत्त्वों की मीमांसा का स्रोत वैदिक कविताएँ ही हैं, जहाँ पर प्रत्येक मन्त्र (काव्य) में अलङ्कामयी शैली का प्रयोग किया गया है। विषय का विस्तृत विवेचन शोधपत्र वाचन के समय विस्तृत रूप से प्रस्तुत किया जायेगा।

वैदिकसाहित्य में काव्य-तत्त्व

विजयेन्द्र कुमार पाण्डेय जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

वेदोत्तर अर्थात् लौकिक संस्कृत में निबद्ध महाकाव्य, नाटक गीतिकाव्य आदि के तत्त्व वैदिक साहित्य में उपलब्ध हैं। आचार्य भरत के अनुसार नाटक की रचना के लिए ब्रह्मा ने चार तत्त्वों को चारों वेदों से ग्रहण किया है-

जग्राह पाठ्यमृग्वेदात्सामभ्यो गीतमेव च। यजुर्वेदादभिनयं रसानथर्वणादपि।।

अन्यान्य अलंकारों के अनुसार गुण रीति, अलंकार और रस काव्यके मुख्य तत्त्व हैं। वैदिक साहित्य में इन तत्त्वोंका अस्तित्व द्रष्टव्य है। अलंकार काव्य के शोभाधायक तत्त्व हैं। इससे काव्य में सौन्दर्य की वृद्धि होती है। ऋग्वेद की कविता अलंकारों की चारुता से चमत्कारमयी बन गई है। अलंकार स्वाभाविक रूप से प्रयुक्त होकर कवि के कथन को प्रभावशाली बनाते हुए प्रतिपाद्य विषय को

मनोरमरूप से प्रस्तुत करने में 'हृदयगत भावों को आवर्जित करने में सर्वदा समर्थ हैं। उपमालंकार की रमणीयता ऋग्वेद में द्रष्टव्य है-

अभ्रातेव पुंस एति प्रतीची गार्तारुमिव सनये धनानाम्।
जायेव पत्य उशती सुवासा उषा हस्रेव निरिणीते अप्सः।।ऋ.1.124.7

अन्य अलंकारों में अतिशयोक्ति, व्यतिरेक, समासोक्ति आदि अनेक अलंकारों के भी वर्णन हमें यहाँ मिलता है।
ऋग्वेद में उषा के वर्णन में प्राकृतिक सौन्दर्य और गीतिकाव्य के तत्त्वों का वर्णन द्रष्टव्य है कवि कहता है-

कन्येव तन्वा शाशदाना एषि देवि देवमियक्षमाणम्।
संस्मयमाना युवतिः पुरस्तादाविर्वक्षांसि कृणुषे विभाति।। ऋ 1.123.10

सामवेद में गीतितत्त्व की प्रचुरता है जैसे- 'गीतिषु सामाख्या' से इसकी पुष्टि होती है।
इस प्रकार हम देखते हैं कि वेदों में काव्य तत्त्वों का यथास्थान वर्णन सौन्दर्योत्कर्ष के लिए उपादेय है।

ऋग्वेद में प्रतीकवाद

डॉ. मनोरमा अग्रवाल प्राध्यापक(हिन्दी) शास. स्नातकोत्तर कन्या महाविद्यालय, इन्दौर

विज्ञान की तरह वेद में प्रतीकों का अनवरत प्रयोग है। तदनुसार अदिति, आपः, मित्र, वरुण, अर्यमा, वसिष्ठ, अगस्त्य, अप्सरा, उर्वशी, वृत्र, मरुत, सोम, घृत, पूषा आदि शब्दों का प्रयोग प्रतीकों के रुप में हुआ है। इन प्रतीकों में विज्ञान संबंधी विशिष्ट भौतिक स्थिति निर्दिष्ट है।

उदाहरण के लिए आपः का साधारण अर्थ जल है किन्तु अनेक स्थलों पर आपः शब्द का प्रयोग आप्लृ व्याप्तौ धातु के आधार पर मूल भौतिक तत्व की उस स्थिति के लिए किया गया है जब मूल तत्त्व सृष्टि रचना हेतु नियोजित होता है। किन्तु जहाँ आपः का अर्थ का मूल भौतिक तत्व है वहाँ उसका अर्थ जल कर देने से मूल भावसहित समस्त वैदिक विज्ञान तिरोहित हो जाता है। वेद में अदिति मूल भौतिक तत्व की ब्राम्ही अवस्था का प्रतीक है यह वह स्थिति है जब मूल तत्व प्रलय काल में ईश्वर में मूलरुप में स्थित होता है। इस शोधपत्र में इन प्रतीकों में निहित विज्ञान को प्रकाश में लाया गया है। जिसके प्रमुख बिंदु इस प्रकार हैं-

1. वैदिक पुरुष तत्व
2. कारण कार्य सिद्धान्त
3. भौतिक जगत का मूल कारण त्रिवर्गी है।
4. अखण्ड तत्व की कल्पना
5. भौतिक द्रव्य के दो वर्ग
6. प्रकृति अनादि है।

वेद में अलंकार तत्त्व

श्री तेजप्रताप कुशवाहा शोध-छात्र एवं व्याख्याता, संस्कृत विभाग, देशबन्धु महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

साहित्य जगत् में अलंकार तत्त्व का शास्त्रीय विवेचन वैदिककाल की अपेक्षा परवर्तीकालीन माना जाता है। फिर भी, वैदिक ग्रन्थों में अलंकार विषयक साहित्यक तत्त्व का न केवल बीज रूप बल्कि उसके विकसित रूप का भी दर्शन होता है। विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद में प्रयुक्त 'अरंकृति' शब्द ही परवर्ती काव्यशास्त्रियों का अलंकार है। यहाँ अरम् या अलम् के साथ कृ धातु का प्रयोग सजाने, परिष्कृत करने व परिपूर्ण बनाने के अर्थ में कई स्थलों पर मिलता है जो अलंकार के सौन्दर्य शास्त्रीय अवधारणा के ही बीज है। वेद की इस 'अरंकृति' ने सौन्दर्यमूलक व्यापक धारणा को जन्म दिया जिसका अंगीकार सौन्दर्यवादी आचार्य वामन ने "सौन्दर्यम् अलंकारः तथा अलंकृतिरलंकारः" कहकर किया है। वैदिक साहित्य में अलंकार के साहित्यिक स्वरूप मिलने के साथ-साथ उपमा, रूपक, अतिशयोक्ति जैसे अर्थमूलक विविध अलंकारों का प्रयोग प्रचुर रूप में उपलब्ध है। यहाँ न केवल उपमा अलंकार के अनेकानेक उदाहरण मिलते हैं बल्कि 'उपमा' शब्द भी ऋग्वेद में प्रयुक्त हुआ है।

सायण ने ऋग्वेदीय उपमा शब्द का अर्थ दृष्टान्त या उपमान बताया है। वैदिक निर्वचन ग्रन्थ निघण्टु एवं निरुक्त में इसके शास्त्रीय स्वरूप भी दिखाई पड़ते हैं। अर्थालंकार के साथ-साथ वैदिक ग्रन्थों में अनुप्रास आदि शब्दालंकार के उदाहरण भी मिलते हैं। वेदों में अलंकार विषयक सामग्री की व्यापकता को देखते हुए भी काव्यमीमांसाकार राजशेखर ने इसे वेद का सातवाँ अंग घोषित करते हुए वेदार्थ के सम्यक् ज्ञान को अलंकार ज्ञान के बिना असम्भव बताया है-"उपकारकत्वादलङ्कारः सप्तमङ्गम्" इति यायावरीयः। ऋते च तत्स्वरूपपरिज्ञानाद्वेदार्थानवगतिः।

प्रस्तुत शोधपत्र के माध्यम से वेदों में बिखरे रूप में उपलब्ध अलंकारसामग्रियों को एकत्रित कर राजशेखर के कथन की उपादेयता को सिद्ध करने का प्रयास किया जाएगा।

वेद का काव्यत्व विमर्श

डॉ0 रामप्रकाश वर्णी जसराना, उ०प्र०

काव्य के मर्मज्ञ आचार्यो ने काव्य को अनेक प्रकार से परिभाषित करते हुए उसे 'रसात्मक वाक्य' के रुप में प्रतिष्ठित किया है। 'शब्द' और 'अर्थ' को काव्य का शरीर 'रस' को आत्मा, 'गुणों' को शौर्यादिवत् तथा 'दोषों' को काणत्वादिवत्, अपकर्षक व 'रीतियों' को अवयवसंस्थान विशेषवत् स्वीकारते हुए उन्होंने 'अलंकारों' को कटककुण्डलादिवत् माना है। इसी परिप्रेक्ष्य में वेद के काव्यत्व का परीक्षण यहाँ किया जा रहा है। यों तो शब्दार्थ को काव्य का शरीर मानने वाले इन काव्यशास्त्रियों के अनुसार 'शब्दार्थमय' होने से वेद का काव्यत्व स्वतः ही सिद्ध है, तथापि लौकिक काव्यों और वेद के काव्यत्व में कुछ मौलिक भेद है। लौकिक काव्यों में शब्द से अनिवार्यतः चमत्कृतिपूर्ण अर्थ का अवबोध करने के लिए 'अभिधा, लक्षणा और व्यंजना' रुप वृत्तित्रय का यथापेक्ष अवलम्बन किया जाता है परन्तु वेद में ऐसा नहीं होता है। वहाँ 'अभिधा, अभिधामूल व्यंजना और कुत्रचित्, तात्पर्यवृत्ति' का तो समाश्रयण होता है किन्तु 'लक्षणावृत्ति' का व्यवहार तो सर्वथा नहीं ही होता है। यतोहि उसे स्वीकार करने से वेद के पद स्वकीय अभिध ेय के कथन में अशक्त और आरोपितार्थ के अभिधान में प्रसक्त माने जायेंगे, जबकि वैदिक पद यौगिक होने से अभिधेयार्थ के स्पष्टतः प्रख्यापक होते हैं। इसका यह परिणाम यह होगा कि वेद का अपौरुषेयत्व सन्देह के घेरे में आ जायेगा। क्योंकि लक्षणा के मूल में विद्यमान 'रूढ़ि' अथवा 'प्रयोजन' उसके योगार्थ को विनष्ट कर देगा। यह एक स्थापित आर्षसिद्धान्त है कि वेद के शब्दों से अभिधाशक्ति के द्वारा ईश्वरीय संकेतकृत अर्थ का बोध होता है। जैसा कि योगदर्शन 1/27 के व्यासभाष्य से स्पष्ट है। पूर्वमीमांसा और वैशेषिकदर्शनों के भी इस विषय में ये ही विचार हैं। इसके साथ ही यह भी ध्यातव्य है कि लौकिक काव्यों में 'रस' और 'रसाभास' को काव्य की 'आत्मा' माना जाता है, परन्तु वेद में केवल 'वीर' आदि रस तो हैं पर 'रसाभास' नहीं। रसों के होने पर भी वेद का काव्यत्व वैसा नहीं है जैसा कि लौकिक काव्यों का है। यतोहि रस लौकिक काव्यों की आत्मा है परन्तु वेद की दृष्टि से 'अर्थ' ही वेदवाणी का 'पुष्प-फल' और वही 'आत्मा' है। वेद में लौकिक काव्यों की भाँति 'ओज' आदि 'गुण' तो हैं परन्तु 'श्रुतिकटु, च्युतसंस्कृति' आदि दोष बिल्कुल नहीं है। वेद में वैदर्भी आदि रीतिचतुष्टय का पूर्ण अभाव है, क्योंकि ये रीतियाँ देश और प्रान्त से प्रभावित होती हैं। इसके साथ ही यह भी जानना अत्यावश्यक है कि वेद में प्रधानतः 'उपमा' और 'श्लेष' अलंकारों का ही व्यवहार हुआ है, काव्यप्रकाशादि ग्रन्थों में प्रतिपादित सभी अलंकारों का नहीं। जहाँ कहीं वेद में 'रूपक' की चर्चा भाष्यकारों ने की है वहाँ भी रूपक अलंकार अभिप्रेत नहीं है। इस प्रकार वेद का काव्यत्व सर्वलोकातिविलक्षण है। इसी कारण शंकराचार्य को लिखना पड़ा- 'नहीदृशस्य शास्त्रस्यर्ग्वेदादिलक्षणस्य सर्वज्ञगुणान्वितस्य सर्वज्ञादन्यतः सम्भवोऽस्ति" अतः सर्वज्ञ-कति की कृति होने से 'वेद' भी 'काव्य' है।

ऋग्वेद के उषस् सूक्तों में काव्य-सौन्दर्य

श्रीमती शालिनी सिंह शोधच्छात्रा-संस्कृत, बैसवारा पी० जी० कालेज, लालगंज, रायबरेली

उषा' शब्द वस् अर्थ वाली धातु से निष्पन्न है। 'उषा' शब्द का अर्थ है-'प्रकाशित होने वाली देवी' इसके ऋषि विश्वामित्र

है। काव्य में उषः सूक्तों का सर्वाधिक उन्मेष प्राप्त होता है। ऋग्वेद के बीस सूक्तों में उषा देवी की स्तुति गायी गई है, वह सौन्दर्य की देवी है। उषा के वर्णनों में ऋग्वेद के कवियों ने अपनी अलौकिक प्रतिभा को अभिव्यञ्जित किया है। वैदिक साहित्य में उषा देवी के समान मनोहारी स्वरूप अन्य किसी भी देवता को नहीं प्राप्त होता। उषा नर्तकी की भाँति सजी हुई और चमकीले वस्त्र पहने हुए पूर्व दिशा में अपना आकर्षक रूप प्रकट करती है। पृथ्वी से द्युलोक तक सर्वत्र उसका ही सौन्दर्य दिखाई पड़ता है।

"अव स्यूमेव चिन्वती मघोन्युषा याति स्वसरस्य पत्नी।

स्वर्जनन्ती सुभगा सुदंसा आन्ताद् दिवः पप्रथ आ पृथ्व्याः।।

उषा की अपनी अरूणिमा अपने रूचिर मुखचन्द, झिलमिलाता वक्षस्थल, पतली-पतली लाल-लाल परियों जैसी खुली अंगुलियां आकाश के रंगमंच पर अद्भुत नृत्य और दुग्धभरा हास्य इन सबके द्वारा वैदिक ऋषि को विवश कर देती है अपने स्वरूप गान के लिए तथा आपा खो बैठने के लिए। उषा स्वर्णिम रंग वाली सुन्दर मुख वाली तथा किरणों से अभिव्यक्त होने वाली है। वह नित्य युवती है, नवोढ़ा है। उषा को एक सुन्दरी कन्या का रूप देते हुए सूर्य रूपी पति से मिलने के लिए आतुर प्रेमिका के रूप में उसका वर्णन किया गया है वह मुस्करायी हुई और वक्षःस्थल को अनावृत्त करती हुई सूर्य के सम्मुख जाती है।

कन्येव तन्वा शाशदानां एवि देवि देवमियक्षमाणम्।

संस्मयमाना युवतिः पुरस्ताद् आविर्वक्षांसि कृणुते विभाती।।

उषा वैदिक ऋषियों की प्रमुख देवी हैं। यज्ञों में उषा का उसका विशेष स्थान है। मघोनी विश्वारा प्रचेताः सुभगा, रेवती आदि उसके विशेषण हैं। वह प्रकाश पुञ्ज का उसी प्रकार आवर्तन करती है, जैसे कोई पहिये को लुढ़काता है। उषा देवी की उपमा अनेक स्थलों पर की गई है। उक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए देवी के काव्यात्मक सौन्दर्य की विस्तृत रूपरेखा शोध पत्र में प्रस्तुत की जायेगी।

वैदिक काल में भारतीय सौन्दर्य बोध

डॉ0 अंजुली श्रीवास्तव श्रीमती मुक्ता कुलश्रेष्ठ (रीडर)(शोध छात्रा) शोध निर्देशिका गुरूनानक गर्ल्स पी०जी० कालेज कानपुर

वेदों में सौन्दर्य तत्व को 'स्वस्ति' की संज्ञा दी गयी है। स्वस्ति शब्द सु और अस्ति के योग से बना है सु का अर्थ है सुन्दर, **अस्ति सत्ता का द्योतक है अर्थात् 'सुन्दर सत्य'।**

सौन्दर्य साधन की यह मूल प्रवृति वाणी के माध्यम से वैदिक ऋचाओं के रूप में और कर्म के माध्यम से हवन पूजा आदि रूपों में व्यक्त हुई। वैदिक जीवन के परिप्रेक्ष्य में सौन्दर्य व धर्म एक दूसरे से जुड़े थे। ऋग्वेद में कल्पना की उन्मुक्तता से प्राकृतिक रुपों व शक्तियों का वर्णन किया गया जिसमें कल्पना या सौन्दर्य चेतना दिखाई पड़ती है। इस प्रकार ऋग्वेद में सौन्दर्य का पर्याप्त वर्णन मिलता है। उदाहरण के लिए सौन्दर्य के मधुर पक्ष का ऊषः सूक्त में और उदात्त पक्ष का मरूत पुरूष, विष्णु, इन्द्र आदि से सम्बद्ध सूक्तों ने अत्यन्त भव्य चित्रण है। ऊषः सूक्त में प्रकृति के गोचर सौन्दर्य का अपूर्व उल्लास है-ऋग्वेद के 5/80/5 श्लोकानुसार आलोकवसना ऊषा प्राची दिशा में उदित होकर अपने सौन्दर्य को अनावृत करती है उसकी तनद्युति सद्यस्नाता की भाँति उज्जवल है। इस प्रकार वैदिक जीवन सौन्दर्य व शक्ति उपासना का जीवन रहा। सुन्दरता आकर्षण, दिव्य प्रेम आदि के अनेकों रुप ऋग्वेद में दिखाई देते हैं।

ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर ललित कलाओं का स्पष्ट उल्लेख भी हुआ है जैसे (1/1/415) इसमें चर्म पर अग्नि देव के चित्र का उल्लेख है, इसी प्रकार 1/5/5 में यज्ञशालाओं की चौखटों पर विशाल हिरण्यमयी द्वार देवीयों के अंकन का वर्णन है। 10/34/14 में भृगु ऋषि के वंशजों को लकड़ी के काग का विशेषज्ञ बताया गया है। ये सभी बातें उस समय के समाज में कला की स्थिति और सौन्दर्य प्रेम की भावना को उल्लेखित करती है। इन उल्लेखों से माना जा सकता है कि वैदिक युग में अर्द्ध चित्र या पूर्ण चित्रों की परम्परा रही होगी जिनके उदाहरण हमें उपलब्ध नहीं है। प्रो० पी०सी० शास्त्री के अनुसार "ऋग्वैदिक कवि हमेशा सौन्दर्य की खोज में रहते थे और उसे प्राप्त करते थे।" इस प्रकार हम ये मान सकते हैं कि वैदिक साहित्य सौन्दर्य की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है तथा इस काल की सशक्त सौन्दर्य विचारधारा तत्कालीन साहित्य के रूप में प्राप्त होती है।

वेदों में काव्यतत्त्व

आचार्य कमलापति शास्त्री प्राचार्य, ऋषिकुल विद्यापीठ ब्रह्मचर्याश्रम संस्कृत महाविद्यालय, हरिद्वार

वेद सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के आधारभूत ग्रन्थ हैं। वेद में विविध विद्याओं के साथ-साथ मानवीयमूल्य और काव्यतत्त्वों का समावेश भी प्रभूतमात्रा में प्राप्त होता है। इसलिए वेद को सम्पूर्ण सृष्टि का अमर काव्य कहा गया है। **'देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति'**। वेद काव्य स्वरूप है और **कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूः** आदि वेदवाक्यों से वैदिक ऋषियों को ही कवि माना गया है। वैदिक साहित्य में सौन्दर्य की विवेचना करने के लिए वैदिक ऋषियों ने अलंकार, रस, छंद की उद्भावना की थी।

वस्तुतः वेदों के मन्त्रदृष्टा ऋषियों ने स्थल-स्थल पर काव्यात्मक अभिव्यक्तियां दर्शायी हैं। इनकी वाणी में उपमा अलंकारों का गुम्फन बड़ी सहजता से प्राप्त होता है ऐसा प्रतीत होता है कि वैदिक ऋषियों की वाणी के माध्यम से कविता के अवतरण के साथ ही उपमा अलंकार भी अवतरित हुआ है।

यजुर्वेद में कहा गया है कि **आ विवासन्ति कवयः सुयसाः। यजुर्वेद 7.35** यह वाणी रूपी कामधेनु रस की मधुरता जीवन में देती रहती है। वह ईश्वर रसपूर्ण है। ऋग्वेद का प्रथम मन्त्र अग्निमीले पुरोहितं समस्त रसों की निधि है। वेदों से निकला रस उन मानसपुत्रों, भरत, महावियों, देवर्षि नारद, वाल्मीकि, कालीदास, विश्वनाथ, पण्डितराजजगन्नाथादि तक अविछिन्न रूप से प्रवाहित होता रहा।

वैदिककाव्यतत्त्वम्

डॉ. सन्तोष कुमार जोशी रिसर्च असि. संस्कृत अकादमी उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद

समस्तेऽस्मिन् जगति प्रथमं छन्दोरूपेणावतीर्णं काव्यं ऋग्वेद इति सर्वसम्मतो विषयः। यस्यां भाषायां वैदिकं काव्यं उपनिबद्धं सा भाषा वैदिकभाषेति व्यपदेशः प्राचीनैः कृतः। अनन्तरं लौकिकभाषायाम् उपनिबद्धं काव्यजातं रामायणमहाभारतादिकं लौकिकं वाङ्मयं इत्युच्यते।

वैदिकवाङ्मये सर्वेऽपि देवाःकवि, कवितर, कवितम इत्यादि शब्दैः विशेषिताः।

अग्निः- अग्निमीळे कविक्रतुम्। ऋ. 3.27.12

सूर्यः- कविर्दीदिमद् गोषु गच्छन् । ऋ 5.45.9

वैदिकैः कविभिः देववीर्यमहिमावर्णनपरं वैदिकभाषायाम् उपनिबद्धं काव्यम् अजरामरं इति अथर्वणवेदे उद्घोषितम् -

अंति सन्तं न जहात्यन्ति सन्तं न पश्यति।

देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति।। अथर्वणवेद 10.8.32

वेदाः अपौरुषेयाः ते परमात्मनः समुद्भूताः इति स्मृतिसंप्रदायकाः वदन्ति। वेदाः परमेश्वराभिव्यक्ताः भवन्ति इति वेदकाव्यस्य शाश्वतब्रह्मसंबन्धित्वं उपपून्नं भवति। वेदकाव्यप्रवर्तकः परमात्मा कवि इति स्मृतिपुराणेषु प्रतिपादितम् -

1. गणानां त्वा गणपतिं कविं कवीनाम् । ऋ. 2.23.1
2. अनन्तमव्ययं कविम्। तै. आ. 10.11.2
3. कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूः । ईशा. 3.8

वेदेषु काव्यतत्त्वानि

महेशानन्द नौड़ियालः हे.न.ब.गढ़वालविश्वविद्यालयः श्रीनगरम्

जनमानसानां कृते आह्लादकारकमिदं काव्यतत्त्वं न लौकिकसाहित्ये एवं अपितु वैदिकसाहित्येऽपि प्रचुर मात्रायां लोचनपथे आयाति। अतः इत्युक्तेरपि नातिशयोक्तिर्वर्तते यत् वेदाः एव काव्यस्योद्भावकाः काव्यतत्त्वस्य च परिचयदायकाः सन्ति। यथोक्तमपि कुत्रचित्- सर्वं ज्ञानमयो हि सः।।

अतः समस्तज्ञाननिधानेषु वेदेषु काव्यतत्त्वानि बहुलता अस्त्यैव इत्यत्र न कश्चित् सन्देहः। यतो हि- वाक्यं रसात्मकं काव्यम्।।

सा. द. विश्वनाथस्य समुचितमिदं लक्षणं वयं काव्यलक्षणं स्वीकुर्मश्चेत् वेदाः अपि सरसा सन् काव्यत्वं धारयन्ति। यथा चोक्तम्-उत्कर्षहेतवः प्रोक्तागुणालङ्काररीतयः।।अतः रससमयोत्कर्षकरूपाः रीतिगुणलङ्कारादयः एवं काव्य तत्वानि सन्तीति। तथा चैतेषां प्रचुरता अपि वेदेषु दृश्यते एव। नाट्यशास्त्रस्य तु रचना एव वैदिक संवादान् सूक्तान् चाधिकृत्यैव वर्तते। यतो हि वेदोक्त विश्वामित्र-नदी संवाद(नद्य:सूक्तं) पुरुरवा-उर्वशी, संवादान्यैव नाट्यस्थ संवादानां आदर्शाः प्रेरणादायकाश्च सन्ति। अर्थात् वेदेभ्यः एव दृश्यश्रव्योभयकाव्ययोरुत्पत्तिः इत्यत्र न कश्चित् सन्देहः। अतः वेदेषु विद्यमानानां काव्यतत्त्वानां विवेचनदिशायां मम शोधकार्य शोधपत्रं वा कथं भवेत् तस्य प्रारूपमत्र दिङ्मात्रेण प्रस्तौमीति संक्षेपः। 1. वेद शब्दव्युत्पत्तिः, 2. वेदानां संक्षिप्त परिचयः, 3. काव्यशब्दव्युत्पत्तिः, 4. काव्यलक्षणश्च, 5. वेद-काव्ययोः पारस्परिक सम्बन्धः, वेदेषु निहितानि काव्यतत्त्वानि।

वैदिकसाहित्ये काव्यतत्त्वानि

डॉ. छोटूकुमारमिश्रः ह.सं.विद्यापीठम् बघौला, पलवल

विचारणीयं वर्तते कुत्र काव्यतत्त्वानि वेदेषु? जिज्ञासायां समाधानं संक्षेपतः स्वबुद्ध्या मया लघुनिबन्धे दीयते। काव्यशब्दस्य कविशब्दस्य च प्रयोगोऽनादिप्रवाहपतितो दृश्यते। स्रष्टुः नामान्तरेण कविरिति शब्दः वेदेऽस्ति प्रयुक्तः। यथा-**कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूः।** सृष्टेश्च नामान्तरं काव्यमपि तथैव वेदे परिदृश्यते- **'पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति।'**इति संस्कृतस्य प्रथमं विद्यास्थानं काव्यमस्ति। अष्टाशसु विद्यास्थानेषु यस्य प्राथम्यं तदधिवैदिकं वाङ्मयमेव। तस्य च प्रथमतः स्कन्धः संहितारूपः संहितास्वपि 'ऋक्संहिता' प्रथमतमा। सा च काव्यमस्ति। विद्यास्थानेषु काव्यस्य यत्प्राथम्यं तत्र नास्ति संशीतिलेशोऽपि। अतएव पौनरुक्तभिया विद्यास्थानगणनायां काव्यं तच्छास्त्रं वा न केनापि गणितम्। प्रथमं काव्यं संहितात्मकम्। तस्य यानि वाक्यानि तेषां तात्पर्यानिर्णयाय प्रवृत्तं पूर्वमीमांसाशास्त्रम्। फलतः पूर्वमीमांसाशास्त्रमेव प्रथमं काव्यशास्त्रमित्यस्माकं गुरवः समुपदिशन्ति। वस्तुतः काव्यस्य जीवातुभूतस्य सौन्दर्यतत्त्वस्य संहितास्वपि चमत्कारजनकत्वात् तासां तासां च संहितानां काव्यत्वमक्षुण्णमेव। उपमारूपकातिशयोक्तिव्यतिरेकादीनामलङ्काराणां सुमहद् वैशिष्ट्यसम्पादकत्वं तत्र समास्वाद्यते सहृदयैः। यथा-

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषष्वजाते। तयोरेकः पिप्पलं स्वाद्वति अनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति।।

उपर्युक्ते मन्त्रे रूपकालङ्कारस्य चमत्कारजनकत्वमस्त्यगूढमेव। ऋतेऽलङ्कारप्रतिपत्तेः मन्त्रस्यास्य सम्यक् तात्पर्यनिर्णयो नैव सम्भवः। एवंविधानि सन्ति बहूनि सूक्तानि वेदेषु। यथाऽनुप्रासः- **'हिरण्यकर्ण मणिग्रीवमर्णः', 'चत्वारो मा मशर्शारस्य शिश्वः'** इत्यादयः।

वैदिकवाङ्मये अलंकारतत्त्वम्

डॉ. जनार्दनप्रसाद पाण्डेयः वी.एन. मेहता संस्कृत महाविद्यालयः, प्रतापगढ

वैदिकवाङ्मयेऽलंकारशास्त्रविषयको ग्रन्थः न प्राप्यते। तथापि महामुनिना यास्केन उपमालंकारस्वरूपविषये प्रोक्तम्। यदतत् तत्सदृशमिति गार्ग्यस्तदासां कर्म। इति ज्ञायसा वा गुणेन प्रख्याततमेन वा कनीयांसं वा अप्रख्यातं वोपमीयते। अथापि कनीयसा ज्यायांसम्। -निरुक्त 3.3 निरुक्ते उपमावाचकशब्दानां प्रयोगोऽपि प्राप्यते। इव, यथा, था, न, चित्, नु, अ, वत् प्रभृतयः तेषां कानिचित् उदाहरणानि यथा वातो यथा वनं यथा समुद्रे एजति। अ- जार आभगम्। था- तं प्रत्नथा पूर्वथा बिष्वमथेमथा। वत्- प्रियमेधवत् अत्रिवत् जातवेदोऽविरूपवत्। निरुक्ते कर्मोपमा, भूतोपमा, स्वरूपोपमा, सिद्धोपमादीनां वर्णनमपिवर्तते। वैदिकवाङ्मये उपमा, रूपक, श्लेष, स्वभावोक्ति, उल्लेख, सहोक्ति अतिशयोक्ति विभावना विरोधप्रभृतयः अलंकाराः प्राप्यन्ते।

ऋग्वेदे काव्यशास्त्रम्

आचार्य डॉ. नागेशचन्द्रः पाण्डेयः प्रतापगढ़, उ.प्र.

न केवलम् ऋग्वेदे काव्यतत्त्वानाम् अस्तित्वमेव प्रत्युत तस्य काव्यत्वमपि सिद्ध्यति। अतो विविधकाव्यतत्त्वानां दृष्ट्या ऋग्वेदस्यामूलचूलमध्ययनं नितरामावश्यकमेवेत्यस्माकं दृढा मतिः। तच्चाध्ययनं बहुभिर्विद्वद्भिरल्याधिकतया प्रस्तुतमपि भूयो विस्तरमपेक्षते। तत्रापि शरीरधर्मत्वेन बाह्यधर्मत्वेन वा विभाव्यमानोऽत एव च न्यूनत्वेन संभाव्यमानोऽलङ्कारपक्षो विशेषत उपेक्षाविषयीकृतो विद्वद्भिः। भूयसी उपमा बहूनि च रूपकाणि प्रतिपदं समवाप्य ते केवलं केषाञ्चनालङ्काराणामेव नैसिर्ककत्वमभ्युपगच्छन्त इतरेषां पुनः पर्यवेक्षणाभावादभावमेव पश्यन्ति। किं च महान् खल्वत्रारोपः क्रियते कैश्चित् परम्परापोषणपटुभिर्विद्वद्भिर्यदलङ्कारविवेचनं भूयोऽर्वाक्कालिकम्, ऋग्वेदश्च नितरां प्राक्कालिकः। तत्कथं नाम तत्रालङ्कारस्थितिः? एतज्जातीयकजिज्ञासाशमनायैवायं सप्रश्रयः प्रयत्नः।

वैदिकसाहित्ये काव्यतत्त्वानि

डॉ. राजकुमारमिश्रः, पलवल(हरियाणा)

काव्यशास्त्रीयसिद्धान्तानां मूलं वेदेषु वर्तते। वेदस्यापि काव्यत्वमुपपादितं वेदे पश्यदेवस्य काव्यम् इति श्रुतेः। यद्यपि तत्र काव्यशब्दस्यार्थो वेदभाष्यकृद्भिरन्यथा वर्णितस्तथाऽपि तत्र स एवार्थो नापर इति वक्तुं न क्षम्यते, चत्वारिशृङ्गा त्रया अस्य पादा(ऋ. 4. 58.3) इति मन्त्रस्य मीमांसकैर्यज्ञपरतया वैय्याकरणैः शब्दपरतया भरतेन च नाट्परतया राजशेखरेण काव्यपरतया व्याख्यानात्। नैकविध स्थलविशेषेषु काव्यत्वं तदीयबीजञ्च वेदेषु सुस्फुटं साटोपञ्च प्राप्यते। यथाऽन्योक्त्यलङ्कृतिसंदर्भे- द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।(.164.20)

अत्र कैश्चिदाचार्य्यैरन्योक्ति-अलङ्कारतया मन्त्रोऽयं स्वीकृतः, अपरैश्चाप्रस्तुतालङ्कारतया समर्थितः। इत्थमेव न केवलमलङ्कारबीजमेव वेदेषु विद्यते प्रत्युत रस-गुण-रीति-ध्वनिनां मनोहारिवर्णनं स्फुटतया दृंग्गोचरी भवति। यथा पुरुरवा-उर्वशीसंवादे(10.193) तथा सूर्यासोमविवाहे च उभावपि सूक्तौ ऋग्वेदस्थौ, यौ हि शृङ्गाररसस्य सम्भोगविप्रलम्भभेदेन चित्रितौ। एवमेव ऋग्वेदस्य मण्डूकसूक्त(7. 103) सोमसूक्त(10.117) द्यूतकरसूक्तेषु(10.34) शान्तरसोपस्थितिरतिमात्रं विलोक्यते। इत्थमेव इन्द्रसूक्ते वीररसावस्थितिरपि नितान्तं जेगीयते। गुणानामवधारणायाः स्वरूपं वेदे यथा- शुध्युवं वरुणाय श्रेष्ठां मतिं वशिष्ठं मीऽहुषे भरस्व(17.88.4) मन्त्रेऽस्मिन् श् ध् ण् ठ् ष् स् घ् इत्येतेषां बहुलतया प्रयोगः समुपलभ्यते। यो हि सर्वथा ओजो गुणानुकूलः। एतद्विवरीतं माधुर्यगुणोपेतमुदाहरणम्- चर्षणीघृतं मघवानमुक्थ्यमिन्द्र गिरो बृहतीरभ्यनूषत(3.51.1) इह प्रथमतृतीयपञ्चमाक्षराणाम् एवमेव अन्यान्यकोमलवर्णानां रुचिरो विन्यासः सहजमेव स्वान्ततलममलं सन्तोषपथं नयतीति। किम्बहुना वेदेषु प्रायेण समेषां काव्यशास्त्रीयसिद्धान्तानां बीजं प्राप्यते। अत्र तु दिङ्मात्रमेव लक्षितम् अग्रे दास्यमाण शोधपत्रे बृहत्तया प्रस्तोष्यते।

RIGVEDIC APPROACH TO POETIC ART

Dr. B.L. Nadoni, Reader P.G. Dept. of Sanskrit Karnatak University, Dharwad

The present paper aims at bringing out the salient features of poetic art reflected in the Rgveda following the lines of ancient Indian rhetoricians. Anandavardhana himself tracced the germs of Dhvani to the Ramayana and Mahadharata (Karika 1.1). Some steps going behind to Vedic age, one does find maya lustrous similes in the prayers of the Rgvedic poest. The mantra V.80.5 speaks that a rosiness is gradually developing in the middle of the white light pervading the east; and this very rosiness is the charming form to Usas of light. Here, the poet compares Usas to a beautiful and graceful woman. The whole of the hymn X.34 describes the pathetic state of a defeated gambler. Engulfed in sorrow due to gambling, the gambler remembers his wife and laments for whom

he discarded just for sake of gambling. He ponders over how chaste she was (10.34.2). This hymn is the best example illustrating the development of Karuna-rasa.Likewise a mantra (8.45.4) reflects the development of Vira-rasa. So too, the Adbhuta-rasa is spoken of in the mantra 8.14.5. There are number of examples in the Rgveda conveying deva-visayaka-rati. An evalution of such Rgvedic examples is made here in words of classical rhetoricians to unveil the poetic art concealed therein.

KNOWLEDGE AND POETRY: AN OBSERVATION FROM VEDIC PERSPECTIVE

Jay Saha Rachnesh Scholar, Jawaharlal Nehru University

Now, let us come to the metaphysical aspect of this observation. Poetry is not interrelated with the Vedas but it is called the very soul of all the Vedas and Upavedas (Vedopavedatma). We have to remember here that 'Veda' primarily signifies Supreme Knowledge. Supreme knowledge is again freedom. Freedom notonly to liberate but also to cexatc crcativies the feature because of which because of which jnana is also Amanda. This Ananda is practically what we call the poetic delight or Rasa! And creativity the poetry! It is because of this that poet is recognized as the human counterpart of the creator. Knowledge and poetry is one and the same. We miss the freedom of Jana and thus we miss the poetry! Vedic mantras are the breathe of the Supreme who is both Jnanarupa and rasarupa at the same time. This is the reason for which we get so much of poetry in the Vedas.

RAUDRA RASHA ITS USE AND EFFECT ON SHAKESPEARE'S (OTHELLO)

Aparna Sharma, Research Scholar, Dept. of English K.G.M Haridwar
Swati Chauhan, P.R.C. Degree College Rohalki-Kishanpur, Bahadrabad

The object of this paper is show the effect of Raudra Rasa in Shakespeare's tragedy Othello. The main progressive point of these Rasa in loss, anger result and condemn. In this, we observe that how the hero come in the contact of these aspects and suddenly changed his temperament and due to this all the tragic incidents take place. In this paper I have a lot to co-relate the Raudra Rasa in the reference of Othello. By which the hero make a victim of his misfortune and at last he is responsible all his deep failure due to Raudra. Any serious crime which is committed by the any enemy party and other bad person is the provoking deed in these Rasa.

VEDANTIC PHILOSOPHY AS KARMA IN RAJA RAO'S FIRST THREE NOVELS

Dr. Suprita Jha, Dept. of English Mata Sundri College, University of Dehli

Raja Rao has been widely acclaimed as one of the greatest of Indian novelists, writing in English. He looks upon creative writing as SADHNA or spiritual experience which leads him to the goal of self knowledge, self transcendence or liberation of soul from illusion or MAYA. He has established his own eminence as a novelist of Indian philosophy and metaphysics on the basis of his three novels, KANTHAPURA, THE SERPENT AND THE ROPE and THE CAT AND SHAKESPEARE. The Indian Vedantic vision and the wisdom of age old Indian scriptures are woven into the very fabric of his novels. In KANTHAPURA, Moorthy is the metaphysical man who liberates not only his own soul but also of his villagers' by following the path of non-

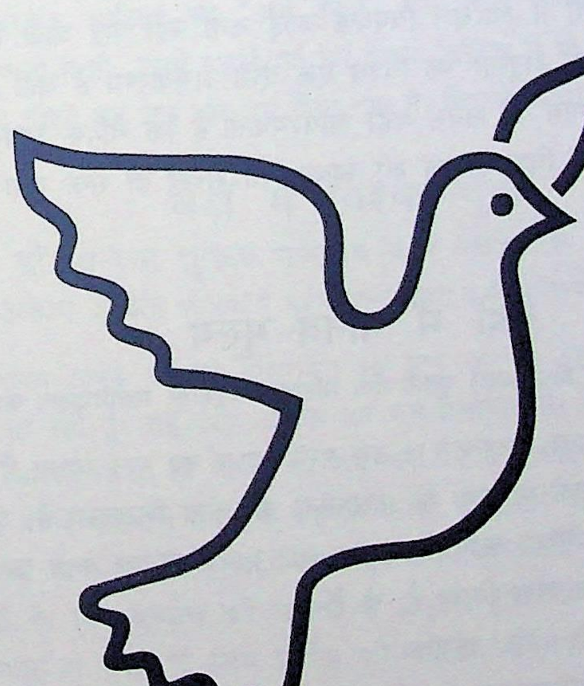
violence and truth. In THE SERPENT AND THE ROPE, Ramaswamy presents his own pilgrimage of life through the anti-thesis between appearance and reality, and realizes that spiritual truth is a higher truth than physical or factual truth. The Vedantic philosophy of Advaita, 'Oneness of all' (non – duality) is the central theme of his novel. THE CAT AND SHAKESPEARE is appreciated as 'a philosophical comedy' by the writer himself, because it presents the concept of spiritual illumination through the comical antics of a cat. The story deals with theme of falsehood and reality in the physical world which finally leads to the reality of the soul. Raja Rao's three novels, KANTHAPURA, THE SERPENT AND THE ROPE and THE CAT AND SHAKESPEARE, have been appreciated as KARMA – YOGA, GYANA – YOGA and BHAKTI – YOGA respectively. His fiction obviously lacks the social dimension of his two major contemporaries, Mulk Raj Anand and R.K. Narayan because he does not write about life in terms of social realities. Instead, he portrays man's spiritual aspects, his relationship with his self, and finally his quest for self hood. Even with his small output, his position as perhaps the most 'Indian' of Indian English novelists, as probably the finest painter of east west confrontation, as symbolist, stylist and philosophical novelist, undoubtedly remains secure. The main purpose of my paper is to present the Vedantic philosophy or vision, which is necessary for self – transcendence and that Raja Rao reflects through his first three novels.

वैदिक मिथकः स्वरूप और भंगिमाएं

डॉ. सुचित्रा मलिक रीडर - हिन्दीविभाग, गु.कां.वि.वि. हरिद्वार

मिथक की अवधारणा : भारतीय और पाश्चात्य चिन्तन पारस्परिक आख्यान और मिथक मानव समाज की सामूहिक चेतना और मिथकों का निर्माण वैदिक मिथक का स्वरूप और प्रकार वैदिक मिथक की नारी चेतना वैदिक मिथकीय नारी और हिन्दी साहित्य के कुछ सन्दर्भ मिथ रचना मानव जीवन की स्वाभाविक कलात्मक सांस्कृतिक चेष्टा है। मिथ का मानव सभ्यता और संस्कृति से गहन सम्बन्ध है। यह किसी भी समाज की तत्कालीन आदर्श मानसिक सृष्टि है। मिथ अतीत से जुड़कर भी वर्तमान में प्रासंगिक हो सकते हैं। किसी भी सभ्यता की भाषा और संस्कृति के विकास का अपूर्व योगदान होता है। मिथक का साहित्यिक अवदान सर्व विदित है। वैदिक वाङ्मय मिथकों का अपूर्व भण्डार है। उसी के सन्दर्भ में उपर्युक्त शीर्षकों के अन्तर्गत वेदों की आस्था इस शोधपत्र का ध्येय है।

◆ वैदिक जीवन-मूल्य
◆ विश्वबन्धुत्व



वेदों में विश्वबन्धुत्व की अवधारणा

डॉ. भीमसिंह प्रोफेसर एवं अध्यक्ष संस्कृत, पाली एवं प्राकृत विभाग कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

वेदों में देश-काल की संकीर्ण सीमाओं से ऊपर उठकर मनुष्यमात्र के कल्याण के लिए कामना की गई है। फलतः वैदिक ऋषि भूमि और मनुष्यों को खण्डों में न बांटकर सर्वत्र एकत्व का अनुभव करता है। वास्तव में समस्त मानव और अन्यभूतजात भिन्न-भिन्न होते हुए भी आत्मरूपेण एक ही हैं। इसीलिए अथर्ववेद में कहा गया है- 'यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्'। यही भाव 'वसुध व कुटुम्बकम्' के माध्यम से आज 'ग्लोबल विलेज' या 'ग्लोबलाईजेशन' के नाम से जाना जा सकता है। परन्तु इस वैश्वीकरण की दृष्टि से वेदों में जहाँ सहयोग या परिवार भावना का प्राधान्य है वहाँ अद्यतनीय ग्लोबलाइजेशन में क्रमशः गलाकाट प्रतिस्पर्धा तथा बाजारभावना अधिक पायी जाती है।

वैदिक विचारधारा मनसा वाचा कर्मणा सबको संगठित करने वाला दर्शन है तदनुसार यहां यम-नियमों द्वारा क्रमशः व्यष्टि के साथ-साथ समष्टि के लिए भी अभ्युदय की कामना की गई है। वैदिक दृष्टि तो इतनी उदार है कि वह तो पानीयशाला आदि सभी वस्तुओं पर सभी का समान अधिकार मानती है। स्वयं अकेला खाने वाला तो यहां 'केवलादी' तक कहा जाता है।

वेद संकल्प तथा संवाद के ग्रन्थ हैं, विकल्प तथा विवाद के नहीं। यहाँ नानाधर्मा तथा विवाचस् सभी के लिए आदरपूर्ण स्थान हैं। फलतः वेदों में आतंकवाद कोई समस्या नहीं है। विश्वबन्धुत्व की दृष्टि से वेदों में स्वार्थ-परार्थ में, प्रवृत्ति-निवृत्ति में, भोग-त्याग में तथा समता-विषमता में अद्भुत सामञ्जस्य प्रतिपादित किया गया है। यज्ञ में प्रयुक्त 'इदं न मम' यह समन्वयकारक वाक्य वेदों की आत्मा है। मानवमन को उदार या विशाल बनाने के लिए यहां उसके शिवसंकल्प वाला होने की प्रार्थना की गई है। सबको समानभाव से देखने के कारण ही वेदों में आरक्षण विषयक कोई चर्चा नहीं पाई जाती है।

वस्तुतः 'विश्ववारा' वैदिक संस्कृति के अनुसार यह विश्व एक ऐसा अभयारण्य है जहाँ छोटे-बड़े सभी जीव यथेच्छ विहार करने का अधिकार रखते हैं। इसलिए आज समय की सबसे बड़ी आवश्यकता है कि वैदिक मानवमूल्यों को समाज में एकबार पुनः स्थापित किया जाए जिससे समस्त भूमण्डल में विश्वबन्धुत्व की भावना का संचार हो सके तथा 'जीओ एवं जीने दो' के सिद्धान्त की पालना हो सके।

वेदों में मानव-मूल्य

माण्डवी गुप्ता (शोधच्छात्रा) जुहारी देवी महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय कानपुर

वेदों का परम साध्य है अत्यात्म(परमात्म साक्षात्कार)। उस परम साध्य का मूल साधन है- मानवता। मानवता को ही दूसरे शब्दों में मानवमूल्य भी कह सकते हैं। सर्वव्यापक परमात्मा के साक्षात्कार का केन्द्र शिखरस्थ है। वहाँ तक पहुँचने का सर्वोच्च साध न या सोपान मानवता/ मानवमूल्य हैं। इसलिए वैदिक ऋषि ने ऋग्वेद 10.53.6 में मनुष्य बनने का प्रेरक संदेश देते हुए मनुष्य-धर्म या मानव मूल्य के तीन मूलभूत आधारों का उल्लेख किया है, वे हैं-

1.सूर्यानुसरण, 2. ज्योतिष्पथिकता, 3. ऋजुता।

इन तीनों गुणों के क्रियान्वयन से ही मानवता का विकास व अभ्युदय हो सकता है, ये मानव मूल्यों के मूलस्वरूप हैं। इन्हीं तीनों के अविच्छिन्न अभ्यासपूर्ण क्रियान्वयन से विशुद्ध मानव बनकर परमात्म-साक्षात्कार साध्य है।

मानव-जीवन-मूल्यों की सुरक्षा के लिए मर्यादित-जीवन-यापन या मर्यादाओं का सांकेतिक उल्लेख करते हुए कहा गया है कि ये मर्यादाएँ आयु/जीवन के आधारस्तम्भ हैं। इनमें से एक भी मर्यादा के हनन या अतिक्रमण से मनुष्य पाप का भागी होता है और पतनोन्मुख हो जाता है। ये मर्यादाएँ हैं- 1. सुविचार, 2. सुदृष्टि, 3. सुश्रुति, 4. सुभाषण, 5. सुभक्षण, 6. सुभावना और सुस्पर्श। इन्हीं सात मर्यादाओं में सम्पूर्ण मानव-जीवन मूल्यों का गहन समावेश है।

मानव-निर्माण-प्रक्रिया के महत्त्वपूर्ण तत्त्वों सूर्यानुसरण, ज्योतिष्पथिकता आदि के क्रियान्वयन तथा सुविचार सुदृष्टि सुश्रुति आदि सप्तमर्यादाओं के पालन में विविध पशु-प्रवृत्तियाँ बाधा डालकर उन्हें नष्ट करती रहती हैं। वेद में इन पशु-प्रवृत्तियों को राक्षस

भी कहा गया है और इनसे जागरूक रहते हुए इनके समूल उन्मूलन का उपदेश दिया गया है- ये पशु प्रवृत्तियाँ हैं- 1. उलूकवृत्ति, 2. शुशुलूकवृत्ति, 3. श्ववृत्ति, 4. कोकवृत्ति, 5. सुपर्णवृत्ति और 6. गृध्रवृत्ति (ऋग्. 07.104.22)। इस प्रकार इन वेद मन्त्रों के द्वारा विविध शैलियों में मानव-मूल्यों का प्रतिपादन उनकी ग्रहणीयता और अमानवीय वृत्तियों के परित्याग का उपदेश दिया गया है। मन्त्रों के विस्तृत विवेचन से यह सुस्पष्ट प्रमाणित है कि राक्षसीय-पशु-प्रवृत्तियों के परित्याग से अथवा मर्यादाओं के पालन से और त्रिस्तंभीय मानव-धर्म-प्रतिपादन के द्वारा प्रकारान्तर से मानव मूल्यों का ही प्रतिपादन किया गया है। यह सभी मानव मूल्य किसी वर्ग, स्थान या काल विशेष के लोगों के लिए न होकर सार्वभौम तथा सार्वकालिक स्तर पर निर्विशेषरूप से मानवमात्र के लिए उपादेय है। संस्कृत, हिन्दी अथवा विश्व की किसी भी भाषा में, उसके साहित्य में जहाँ कहीं भी मानव मूल्यों का प्रतिपादन किया गया है उसके लिए वे सभी वेद, वैदिक वाङ्मय और वैदिक संस्कृति के ऋणी हैं। वेद प्रतिपादित-मानव-मूल्य सनातन हैं। इन्हीं के विकास, आवृंहण और सम्यक् सदुपयोग से मानवता की रक्षा होती है और मनुष्य आध्यात्मिक तथा आधिभौतिक दोनों प्रकार के परमलक्ष्यों की सिद्धि करता है।

वेदों में विश्व-एकता का उद्घोष

डॉ. दलबीर सिंह चाहल अध्यक्ष- संस्कृत विभाग, गु. ना. दे. विश्वविद्यालय, अमृतसर

आज चारों ओर क्षेत्रीयता, साम्प्रदायिकता आदि संकीर्णभाव अपने पैर पसार रहे हैं। परिणामस्वरूप, मनुष्यों की सोच संकुचित होती जा रही है। इस संकुचित विचारधारा ने मनुष्यों को तो बांटा ही, सृष्टिकर्ता को भी बाँट लिया है।

विश्व-एकता के बोध हेतु संस्कृत साहित्य का अवलोकन उपयुक्त उपाय है क्योंकि इसमें अनेक स्थानों पर विश्व-एकता का प्रतिपादन हुआ है। लौकिक संस्कृत साहित्य का **'अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्, उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्'** (हितोपदेश 1/70) उद्घोष तो है ही, उससे सहस्रों वर्ष पूर्व वैदिक साहित्य में भी इस मत की स्थापना मिलती है। वैदिक साहित्य के आधार स्तम्भ वेद हैं। उनमें एकरूप विश्व का ज्ञान बार-बार दिया गया है। जिनके आधार पर विवेच्य विषय को स्पष्ट किया जायेगा।

वेदों में विश्वबन्धुता

डॉ. वन्दना शुक्ला शासकीय विज्ञान महाविद्यालय, जबलपुर
डॉ. अरुण शुक्ल शासकीय महाकोशल कला एवं वाणिज्य म.वि., जबलपुर

आज विश्व का प्रत्येक मानव अपने आपको असुरक्षित सा मान रहा है। इसी दृष्टि से परिवार में, समाज में दुःख और असन्तोष की भावना बलवती होती जा रही है। चहुँ ओर आतंक का भय विद्यमान है। यह आतंक मनुष्य को प्राकृतिक तत्वों से नहीं मिल रहा और न ही पशु जगत् से, अपितु मानव ही मानव का शत्रु बन कर उसे आतंकित कर रहा है। ऐसी भयावह स्थिति में वेदों में प्रदर्शित विश्वबन्धुत्व की भावना हमारे कल्याण का पथ प्रदर्शित करती है। हमारे ऋषियों ने 'वसुधैव कुटुम्बकम्' कह कर विश्व की सम्पूर्ण धरा को ही अपना कुटुम्ब माना है और इसके निवासियों के कल्याण की कामना की है। यह भावना सभी को एक सूत्र में बाँधती है, मित्रता की दृष्टि देती है। विश्वबन्धुत्व की भावना के अनुरूप ही वैदिक वाङ्मय में सभी मनुष्यों की दीर्घजीवन की कामना की गई है। उनके सभी प्रकार के सुखों के लिये प्रार्थना की गई है। 'सर्वमेवशमस्तुः' (अथर्ववेद 19.09.14)। यहाँ सर्वनाम पद सर्व के द्वारा विश्वरूपी कुटुम्ब की भावना ही दृढ़ होती है। यजुर्वेद का यह स्वस्तिवचन विश्व शान्ति के संदेश को ही प्रसारित कर रहा है।

ऊँ द्यौ शान्तिरन्तरिक्षंशान्तिः पृथिवीशान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः।
वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वं शान्तिः। शान्तिरेवशान्तिः। सामाशान्तिरेधि। (यजुर्वेद 30.03)

यहाँ पर प्रार्थना की गई है कि पंचमहाभूतों, वनस्पतियों और सभी मानव मन में शान्ति का साम्राज्य हो। शान्ति से तात्पर्य निरुपद्रवता से हैं उपद्रव तो अशान्त पक्ष से ही आरम्भ होता है जो आतंक का जनक है। अस्तु प्रकृति शान्त रहेगी तभी जनकल्याण हो सकेगा। सार्वभौमिक विकास के लिये इस संसार में बन्धुत्व की भावना का चरमोत्कर्ष ही दिखाई देता है।

वेदों में व्यक्तित्व-निर्माण

डॉ. निरुपमा त्रिपाठी वरिष्ठ प्रवक्ता(संस्कृत) कानपुर विद्यामन्दिर महिला महाविद्यालय कानपुर

पञ्चमाहभूतों से निर्मित परमात्मा की सम्पूर्ण सृष्टि में सर्वश्रेष्ठ है मनुष्य। प्रत्येक मनुष्य का अपना पृथक्-पृथक् व्यक्तित्व होता है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार 'व्यक्तित्व' एक ऐसा तन्त्र है जिसके मानसिक तथा शारीरिक दोनों ही पक्ष होते हैं। व्यक्ति के विकास में उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। व्यक्तित्व-निर्माण में आनुवांशिक कारकों के साथ-साथ कुछ ऐसे भी कारक होते हैं जिनका सम्बन्ध मनुष्य के वातावरण, समाज एवं संस्कृति से होता है।

मानव-जीवन के प्रत्येक पक्ष से सम्बन्ध रखने वाले ज्ञान-भण्डार वेदों में व्यक्तित्व-निर्माण के भी अनेक उपाय निहित हैं। किसी भी व्यक्ति के विकास का प्रथम सोपान है उसका पारिवारिक वातावरण। परिवार में सुखशान्ति व्याप्त रहे इसके सुन्दर उपाय वेद में हैं। पिता पुत्र के प्रति कैसा व्यवहार करे, पुत्र माता-पिता के प्रति कैसा भाव रखे, इन सबका विस्तार से वर्णन अथर्ववेद में प्राप्त होता है। परिवार में इस प्रकार का सामञ्जस्य रखने वाला व्यक्ति ही मानव मात्र से सहभाव स्थापित कर सकेगा। इसके लिए मानसिक शान्ति को दृढ बनाते हुए मन एवं आत्मा को शुद्ध करने कीआवश्यकता है। **ऋतस्य पन्था न तरन्ति दुष्कृत:'** कहते हुए ऋग्वेद में स्पष्ट है कि अनाचरण में लिप्त दुष्कर्म करने वाले कभी ऋत के मार्ग पर नहीं चल सकते। यजुर्वेद के 'शिवसंकल्प' सूक्त में आन्तरिक प्रकाश रूप मन के लिए शुभ संकल्पों वाला होने की कामना की गयी है, जिसके बिना कोई भी कर्म सम्भव नहीं है। मन को शान्त एवं सन्तुलित रखने में शुभ एवं कल्याणप्रद वाणी सर्वथा सहायक होती है। अत: ऋग्वेद में कल्याणकारी वाणी की गई है।

व्यक्ति में संयमित वाणी के साथ ही सद्बुद्धि का होना भी अत्यावश्यक है। इसीलिए ऋग्वेद में सर्वजन हितकारिणी शोभनबुद्धि प्रदान करने की प्रार्थना की गई है। कभी-कभी विपरीत परिस्थितियों के कारण अवसाद से ग्रसित मनुष्य के मन मे आत्महत्या के भी विचार आ जाते हैं। मानसिक तनाव से उपजा आत्महत्या का विचार वेद के अनुसार पाप है। यजुर्वेद में वर्णित है कि आत्महत्या करने वाला व्यक्ति अंधकारमय लोक को प्राप्त होता है। जीवेम शरद: शतम्' की भावना से युक्त वैदिक समाज का मानव दीर्घायु के लिए सदा प्रयासरत रहता था। पृथ्वी पर परमात्मा ने सभी प्राणियों के लिए धन धान्य आदि के माध्यम से सुख की व्यवस्था की है। इस प्रकार की सृष्टि में योग्यता के अनुकूल पुरुषार्थ करते हुए उत्तम भावनाओं से युक्त व्यक्ति अपने प्राप्य तक सहज ही पहुँच सकता है। वेदों में निहित जीवनोत्कर्ष हेतु निर्देशों का पालन करते हुए पाप के अंधकार से मुक्त रहकर सूर्य की भाँति चमकने की पूर्ण सम्भावना सदा विद्यमान है।

वैदिक साहित्य में मानवीय मूल्य

डॉ. संध्या कुमारी वरिष्ठ प्रवक्ता- संस्कृत विभाग, पी.सी. बांगला कॉलेज हाथरस, उत्तरप्रदेश

मनुष्यत्व की रक्षा के निमित्त जिन गुणों की अपेक्षा की जाती है वे ही मानवीय मूल्य से अभिप्रेत हैं। मानवीय मूल्य को हम इस प्रकार भी परिभाषित कर सकते हैं कि मानव के लिए क्या करणीय है और क्या अकरणीय है, इन विषयों का मार्गदर्शन जिन तत्त्वों के द्वारा किया जाता है उन्हें मानवीय मूल्य कहते हैं।

यदि हम वैदिक साहित्य में मानवीय मूल्यों पर दृष्टिपात करें तो हमें समस्त वैदिक साहित्य मानवीय मूल्यों से युक्त मिलेगा। वैदिक संहिताओं से लेकर वेदांगों में जहाँ एक और सत्यवदिता, श्रेष्ठजनों के प्रति सम्मान, त्याग, सदाचार, सत्संगति, अतिथि-सत्कार एवं 'ईशावास्यम्...' सदृश मन्त्रों द्वारा ईश्वर की व्यापकता एवं अनासक्तभाव का सम्पोषण जैसे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण मानवीय मूल्य दृष्टिगोचर होते हैं, वहीं दूसरी ओर पारिवारिक सौमनस्य, विश्वबन्धुत्व की भावना एवं देशानुराग भी भारतीय आर्यों में चरमोत्कर्ष पर था, जो आज समग्र मानव जाति के लिए पथ-प्रदर्शन का कार्य सम्पन्न करता है।

इस शोधपत्रसंक्षेपिका के अन्तर्गत समस्त उपक्रमों का समावेश तो संभव नहीं था, किन्तु समासत: जिन बिन्दुओं का उपस्थापन किया गया है, वे मानवीय मूल्य या मानवतव की रक्षा के घटकतत्त्व हैं।

यजुर्वेद संहिता में प्राप्त नैतिक एवं मानवीय मूल्य

ममता मेहरा (शोधच्छात्रा) वेदविभाग, संस्कृतविद्याधर्मविज्ञानसंकाय, काशीहिन्दू विश्वविद्यालय

वेदों में प्रतिपादित नैतिक एवं मानवीय मूल्य किसी स्थान, काल या देश-धर्म की परिधि में बँधे हुए नहीं हैं अपितु शाश्वत, सार्वभौम तथा सार्वकालिक हैं। यही कारण है कि युगों से मानवमात्र का मार्गदर्शन करता हुआ यह वैदिक-साहित्य आज भी तथा आने वाले युगों पर्यन्त 'सर्वजन हिताय एवं सर्वजन सुखाय' कल्याणकारक नीति-नियमों, आदर्शों तथा संस्कारों का दिग्दर्शन तथा उद्घोष करने में समर्थ है।

नैतिक गुणों अथवा मानवीय मूल्यों या नीतियों पर यदि विचार करें तो नीतियाँ मुख्यत: दो प्रकार की हो सकती हैं- एक तो व्यक्तिपरक नीतियाँ यथा- मन, वचन, कर्म, विवेक, ज्ञान, सत्याचरण आदि और दूसरी समाजपरक नीतियाँ यथा- समत्वभावना, मैत्री, सत्संगति, दान, धर्म, परोपकार, अतिथि सत्कार आदि। वाणी-माधुर्यादि उभयविध नीति कहीं जा सकती है। इसके अतिरिक्त लोकसंग्रहकारक विश्वबन्धुत्व, शान्ति, प्रेमादि तथा सर्वोन्नति एवं सर्वकल्याण आदि की कामना वे नैतिक एवं मानवीय गुण हैं, जो मनुष्य को अन्यों से श्रेष्ठ बनाते हैं।

यजुर्वेद में इन सभी प्रकार के नैतिकएवं मानवीय गुणों का उद्घोष तथा इसमें प्रवृत्ति का प्रोत्साहन उपलब्ध होता है, साथ ही इन सभी नीतिपरक नियमों, कर्तव्यों, शुद्धाचरण आदि के अनुकरण एवं अनुसरण की विशिष्टता का भीप्रतिपादन हुआ है। यजुर्वेद वस्तुत: 'कर्मवेद' माना जाता है और इसमें उन सभी शुभ एवं प्रशस्तकर्मों व नीतियों का समर्थन है, जिनका यथावत् अनुष्ठान करना मानव के उद्धार तथा उत्कर्ष के लिए परमावश्यक है। सम्भवत: यही कारण है कि यजुर्वेद में कर्तव्यों व नैतिक मूल्यों की वह पृष्ठभूमि तैयार की गई है जिसको आधार बनाकर और उसका यथा रूप अनुसरण करता हुआ मनुष्य श्रेष्ठत्व को प्राप्त कर सकता है।

'तन्मे मन: शिवसंकल्पमस्तु' (शु. यजु0 34/1), 'धियो यो न: प्रचोदयात्'(शु.यजु. 3/35), मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे' (शु. यजु. 36/18), 'इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि' (शु. यजु. 5/1), 'भद्रं कर्णेभि: शृणुयाम' (शु.यजु. 25/21), 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा' (शु. यजु. 40/1) इत्यादि अनेक मन्त्रों में वैदिक आदर्शों तथा जीवन के उचित दृष्टिकोण एवं उत्तम मार्ग को उजागर करते हुए यजुर्वेद मानवमात्र के लिए दिव्यलोक तक पहुँचाले वाले प्रशस्ततम मार्ग को प्रदर्शित एवं प्रोत्साहित करता है, जो कर्तव्य-कर्म करते हुए जीने वाले प्रत्येक सामाजिक के लिए निश्चित रूप से आदरणीय एवं अनुकरणीय है।

आधुनिक परिप्रेक्ष्य में वैदिक मूल्यों की प्रासंगिकता

डॉ. प्रज्ञा सहाय रीडर एवं विभागाध्यक्ष- दर्शनशास्त्र विभाग, डी.जी.पी.जी. कालेज, कानपुर

जहाँ तक वैदिक मूल्यों का प्रश्न है वेद में 'ऋत्', सत्य, अहिंसा की भावना, लोक कल्याण की भावना एकता और मित्रता की भावना, सत्य और सत्कर्म की प्रतिज्ञा, दूसरो की सेवा की भावना, दानशीलता की भावना आदि विभिन्न नैतिक मूल्यों को स्वीकार किया गया है, जिनकी समाज में महती उपयोगिता है। इनमें से 'ऋत्' शब्द का प्रयोग वेद में कई अर्थों में किया गया है। यह वैदिक वाङ्मय का एक अद्भुत शब्द है, जो अपने में अनेक गम्भीर, गूढ़ एवं महत्वपूर्ण अर्थों को निहित किये हुए है।

वेदों में यह माना गया है कि 'ऋत' के पालन से ही सत्य अर्थात् ब्रह्म को प्राप्त किया जा सकता है। वैदिक ऋषि 'ऋत' को राष्ट्र की प्रतिष्ठा का आधार मानते थे। मानव जगत् में ऋत् उन नैतिक मूल्यों एवं आदर्शों का अधिष्ठाता है जो जीवन को प्रेरित करते हैं तथा जिनपर मानव समाज की प्रतिष्ठा आधारित है।

इन विभिन्न मूल्यों के अतिरिक्त सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय में यज्ञ और कर्म पर भी अत्यधिक जोर दिया गया है, जिनमें से यज्ञ को सर्वाधिक महत्वपूर्ण कर्म की श्रेणी प्रदान की गई है। वैदिक मानव अपने और अपने समाज के लिए सुख संपति, उन्नति और शांति चाहते थे तथा इसके लिए वे यथाशक्ति प्रयास करते थे और न्याय तथा सत्य के पथ पर चलकर तथा पाप से बचकर इसे प्राप्त करना चाहते थे।

ऊपर वर्णित इन सभी मूल्यों की चर्चा यदि हम आज के परिप्रेक्ष्य में करें तो यह पाएँगें कि आज के इस भौतिकवादी युग में समस्त मूल्य लुप्त होते जा रहें हैं। आज दया, करूणा, प्रेम, लोक-कल्याण, सत्य और अहिंसा, धर्म आदि की जगह झूठ, धोखा, बेईमानी, हिंसा, चोरी तथा विश्वासघात आदि जैसे अवगुणों ने ले लिया है। धर्म के नाम पर लोग एक दूसरे को मारते-काटते जा रहे हैं। आज के युवा वर्ग ने पाश्चात्य देशों की नकल में अपनी सभ्यता और संस्कृति को भुला दिया है। ऐसी अवस्था में उन प्राचीन वैदिक मूल्यों को पुन: जीवित कर उसे अपने व्यवहार में आत्मसात करने की आवश्यकता है, तभी समाज का, देश का और राष्ट्र का उत्थान संभव है।

वैदिक साहित्य में जीवन मूल्य

डॉ. ममता गंगवार वरिष्ठ प्रवक्ता (हिन्दी विभाग) आ.न.दे.न.नि.म.म. कानपुर

जिस आचरण को करते हुए जीवित रह सकें वह मूल्य कहलाते हैं। मूल्य वे हैं जिन आचरणों को अपनाने से जीवन उपयोगी बनता है। दुर्गुण, दुर्व्यसन पाप तथा दुर्भावनाओं को हृदय से निकाल कर निष्पाप तथा शुभगुणों से युक्त करती है। जीवन में सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक मूल्यों के अन्तर्गत जीवन यापन करते हुए धर्म, अर्थ,काम और मोक्ष को प्राप्त करता है। पुरुषार्थ चतुष्टय प्राप्त करता है। जीवन को सुसंगठित एवं सुव्यवस्थित करने की प्रवृत्ति के आधार पर याज्ञिक कर्मकाण्ड का विशिष्ट प्रावधान था। ऋतु एवं सत्य वैदिक जीवन की प्रथम विशेषता है एक स्थान पर कहा है-

मातृवत् परदारेषु पर द्रव्येषु लोष्ठवत्।
आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः।।

इस प्रकार मानव इन जीवन मूल्यों को आत्मसात् करके चलता था। ईशोपनिषद् में अपनी विचारधारा को ऋषियों ने आध्यात्मिक, सामाजिक, आर्थिक एवं शारीरिक सभी क्षेत्रों में मानवीय मूल्यों एवं कर्तव्यों को एक सूत्र में निबद्ध किया है-

ईशावास्यमिदं सर्व यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।।

चतुर्थ आधार आत्मविश्वास है आत्मा का हनन करना पाप है। पाँचवा पुनर्जन्मवाद है। जो पारलौकिक भावना मानव को शुभ आचरण करनें को प्रेरित करती है। यही नहीं मानव सदाचार का पालन करता हुआ विश्व बन्धुत्व एवं वसुधैव कुटुम्बकम् की भाावना से विश्वशान्ति की उदात्त भाावना से जीवन व्यतीत करें। 'असतो मा सद्गमय' की तरफ जाये। सहिष्णुता पूर्वक, समन्वयवाद एवं धार्मिक विश्वास एवं पूजा पाठ की विधियों को अपनानें में स्वतन्त्र हैं। प्रत्येक भारतीय हृदय में बद्धमूल मन्त्र- 'धर्म सखा परम हो परलोक माने।' इस प्रकार हम कह सकते हैं कि वैदिक साहित्य में जीवन मूल्य चिरन्तन काल तक भारतीय संस्कृति के प्रकाश स्तम्भ रहें हैं और रहेंगे। भारतीय समाज के संगठन एवं जीवनचर्या के नियम और व्यवस्था के साथ आध्यात्मिक उन्नति व अन्य भावनाओं की प्रेरणा एवं मानव मूल्यों का स्थान रहा है।

विश्वशान्ति का मार्ग-वैदिक जीवनदर्शन

डॉ.प्रीति वाधवानी वरिष्ठप्रवक्ता- तिलक महाविद्यालय औरैया (उ.प्र.)

आज इक्कीसवीं सदी में भय और लोभ के दो पाटों के बीच फंसी मानव जाति आर्तनाद कर रही है। चहुँ ओर अशान्ति एवं आशंका से घिरी मानवता के त्राण के लिये जब हम रास्ता खोजना चाहते हैं और मानव जाति के इतिहास को देखते हैं तो एक बात निर्विवाद सामने आती है और वह यह कि मनुष्य की आद्यावस्था शान्त थी। आज की तरह उसमें अशान्ति नहीं थी वह एक आदर्श अवस्था थी। आर्ष परम्परा का पक्ष यह है कि उस आद्य शान्त एवं पवित्र अवस्था का मूल कारण परमपिता परमात्मा द्वारा अपने पुत्रों को दिया गया ज्ञान था जिसे वेदों के नाम से अभिहित किया जाता है। इस परम्परा के पक्षधर विचारकों का यह मानना है कि आज भी वैदिक वाङ्मय में वह शक्ति है कि उसके अनुसार चलकर विश्वशान्ति की जा सकती है।

विश्व शान्ति के लिये वैदिक योजना आदर्श के काल्पनिक प्रवचन नहीं है बल्कि यथार्थ केधरातल पर अनुभूत समाज दर्शन है। वैदिक योजना तीन चरणों में कार्य करती है- प्रथम मानव का निर्माण जिसके अन्तर्गत परिवार भी आ जाता है, द्वितीय समाज का निर्माण जिसकी परिधि राष्ट्र तक है तथा तृतीय चरण में प्रणिमात्र का कल्याण। पुनश्च मानव निर्माण का आधार है- जीवन के प्रति स्पष्ट समझ का विकास। जीवन का एक लक्ष्य सुनिश्चित हो तो पथ निश्चित हो जाता है फिर पथ का पार कराने वाले संसाधनों का विनिश्चय उचित होता है। इसी तारतम्यता को ध्यान मे रखते हुए वैदिक आदर्श पुरुषार्थ चतुष्टय धर्म, अर्थ काम और मोक्ष को अपनाने का मार्ग प्रस्तुत करताहै। लक्ष्य मोक्ष है पथ धर्म है और साधन अर्थ व काम हैं।

विश्व शान्ति की वैदिक विधि के चार स्तम्भ हैं- वर्णाश्रम व्यवस्था, यज्ञ, संस्कारएवं योग। वर्णाश्रम व्यवस्था में दो भाग हैं- आश्रम व्यवस्था के अन्तर्गत समाज जीवन की संरचना की जाती है। यहाँ ध्यातव्य है कि इस व्यवस्था में व्यक्ति-व्यक्ति की अन्तरतम क्षमताओं का सम्पूर्ण विकास एवं उनका समाज हित में अनुप्रयोग लक्ष्य है।

वैश्विक अशान्ति का मूल कारण है- भोगवाद केप्रति तीव्र लिप्सा। इस विधि में अपने सुख के लिये दूसरे के शोषण एवं उसके प्रयोग का सिद्धान्त शामिल है, परन्तु वैदिक विधि त्यागवाद है जिसका आधार है- यज्ञ। 'इदं न मम' का प्रतिपल प्रशिक्षण। इस विधि में सबकी उन्नति में ही अपनी उन्नति समझने की भावना सन्निहित है।तीसरे स्तम्भ के रूप में हम संस्कारों को लेते हैं। संस्कारों के द्वारा व्यक्ति के जन्म काल से ही, और कदाचित् उसके पूर्व से ही उसकी आन्तरिक शक्तियों के विकास तथा दोषों के अपनयन का प्रयास किया जाता है ताकि वह एक सशक्त सामाजिक कड़ी बन सके। संस्कारों के माध्यम से व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक उन्नति का प्रयास किया जाता है। इसी प्रकार वैदिक मानव निर्माण पद्धति का चतुर्थ स्तम्भ है- योग। इस पद्धति के अन्तर्गत व्यक्ति को यम(अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह) और नियमों(शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय,ईश्वरप्रणिधान) का प्रशिक्षण देकर आन्तरिक रूप से पवित्र किया जाता है। आसन, प्राणायाम के द्वारा शरीर एवं मन को स्वस्थ करते हैं तथा फिर प्रत्याहार से आगे चलते हुए धारणा, ध्यान के जरिये समाधि तक पहुँचाने का प्रयास किया जाता है जो आध्यात्मिक रूपसे सबल बनादेता है।

इस प्रकार संक्षेपत: उपर्युक्त जीवन निर्माण की पद्धतियों के द्वारा मानव निर्माण का प्रयास किया जाता है और स्वस्थ शिक्षित एवं शान्त मानव ही विश्व शान्ति का मूलाधार बन सकता है।

वैदिक वाङ्मय में सामाजिक जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा

डॉ. मीता अरोडा वरिष्ठ प्रवक्ता हिन्दी विभाग, राजकीय महाविद्यालय, उन्नाव

डॉ. सुमन सिंह वरिष्ठ प्रवक्ता हिन्दी विभाग, दयानन्द गर्ल्स कालेज, कानपुर

राजकीय सद्वृत्तियों का विकास करते हुए उनके व्यक्तित्त्व का सर्वांगीण विकास करना ही साहित्य का उद्देश्य है। अपने इस लोकोपयोगी स्वरूप के कारण मानव जीवन के साथ अविच्छिन्न रूप से सम्बद्ध है। विश्व के उपलब्ध साहित्य में वैदिक वाङ्मय सर्वप्राचीन है। वैदिक साहित्य में जीवन और जगत् की सभी धाराएँ प्रवाहित हैं। मानवीय मूल्य व्यक्ति के आचरण को निर्देशित और मूल्यांकन करने के आदर्श या मानदण्ड हैं। साहित्य का सामाजिक जीवन मूल्यों के साथ दोहरा सम्बन्ध है। एक ओर जहाँ स्वच्छ दर्पण बनकर वह अपने समय के सामाजिक जीवन मूल्यों को प्रतिबिम्बित करता है, तो दूसरी ओर उनकी मीमांसा करके उनका संशोधित रूप प्रस्तुत कर समाज विशेष के सदस्यों को नये जीवन मूल्यों के निर्माण की प्रेरणा देता है। वेदों का 'ऋत सिद्धान्त मानवीय मूल्यों और चारित्रिक श्रेष्ठता का वाहक है। वेदों में मानवीय आचार-विचार शुद्धता और लोकमंगल स्वरूप पर विशेष बल दिया गया है। वेद मानव जीवन को एक यज्ञमय जीवन की संज्ञा देता है। वेदों में उल्लेख है कि सभी कार्य लोकहित में हों और उनसे किसी को हानि न हो। सामाजिक जीवन में छोटे से छोटे कार्य अर्थात् मोची तथा भंगी के कार्य से लेकर सुन्दर आभूषण बनाने वाले तक के सब कार्य कर्म यज्ञ होते हैं। पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित होने के कारण समाज में प्रतिस्पर्धा की भावना बलवती होती जा रही है, जिसके परिणाम स्वरूप ईर्ष्या, द्वेष शोषण की भावना बलवती होती है और हम निष्काम कर्म को भूलते जा रहे हैं। हमें निष्काम कर्म की प्रेरणा सूर्य सूक्त से लेनी चाहिए। जिससे समाज में समरसता, प्रकाश और गतिमयता बनी रहे। वेद ही है जो व्यक्ति के सामने देव ऋण, ऋषि व पितृ ऋण के द्वारा कर्म की भावना को दृढ़ बनाता है। वेद मनुष्य के सद्विचारों का कोश है। सम्भवत: मानवीय

आचरण के सर्वहितकारी स्वरूप की अभिव्यक्ति वेदों में है। वैदिक मन्त्रों में सामाजिक जीवन की सम्पन्नता, समृद्धि, एकता, प्रेम आदि मानवीय मूल्यों का ईश्वरीय वरदान है। जिसे अपनाकर आज का मानव अपहरण, आतंक, शोषण, हिंसा, भेद-भाव एवं स्वार्थ से मुक्त होकर स्वस्थ समाज का निर्माण कर सकता है। आज चाहे संसार ने कितनी ही उन्नति क्यों न कर ली हो परन्तु सामाजिक मूल्यों जैसी समस्या का समाधान वेदों में है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है।

अथर्ववेद की ऐक्य-भावना का विश्वशान्ति में प्रदान

डॉ. महाकान्त जे. जोशी अध्यक्ष- संस्कृतविभाग, प्रमुखस्वामी सायन्स एण्ड एच.डी. पटेल आर्ट्स कालेज, कड़ी
सर्वविद्यालय कैम्पस्, मु.पो.ता. फड़ी, जिला महसाना(नोर्थ गुजरात) 382715

आज सारे विश्व के हितार्थाओं के हृदय में विश्वशान्ति कैसे बने इस की चिन्ता है, पर वेदों में पहले चिन्तन है। अगर हम वेदों को आत्मसात् कर लें तो सारे विश्व में शान्ति फैल जायेगी। विशेषत: अथर्ववेद में तो मित्र और शत्रु में भी ऐक्य जगाने की परमेश्वर को प्रार्थना की गई है। इतना ही नहीं अपितु चारों दिशाओं में से भी वैर को खत्म करने की कामना जताई है। अगर हम सचमुच विश्वशान्ति चाहते हैं, तो ऐसे विश्वप्रेमनिर्माण करने वाले वेदोद्‌गारों को हमें आदर से अपनाने की आवश्यकता है। प्रस्तुत लेख में अथर्ववेद के (कतिपय) ऐक्य भावना विषयक विचारों का विश्वशान्ति में क्या प्रदान है। इसकी चर्चा की गई है।

वेदों में विश्वशान्ति के सन्देश

श्रीमती राजश्री पटेल (उच्च वर्ग शिक्षिका) ग्राम बालोद(आमापारा) जिला-दुर्ग (छ.ग.)

संसार में अनेक पुस्तकें प्रसिद्ध हैं और सबका विषय भी अलग-अलग है और सबका उद्‌देश्य लोगों को सुख-शान्ति-समाधान ही होता है किन्तु अल्पज्ञ जीव काम क्रोध लोभ मोह आदि से ग्रस्त होने के कारण कभी भी विश्वशान्ति की चिन्ता नहीं कर सकता। ऋषि लोग वेद के शान्ति सन्देश से प्रेरित होकर ही विश्वशान्ति सन्देश को विश्व में दिए। वेदों का रचयिता ईश्वर है ऐसा स्वामी दयानन्द ने प्रमाणित किया है। यह सत्य भी है क्योंकि वेदों में विश्वशान्ति के अनेक मन्त्र उपलब्ध होते हैं। जिनका पाठ सारे विश्व में होता है जैसे-

ओम् द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिः...............आदि यह मन्त्र सारे विश्व को शान्ति का सन्देश दे रहा है।

वेदों में कहीं भी अमानवीय आचरण की न तो प्रशंसा है और न ही विधान। बल्कि निन्दा तो की गई है। सर्वत्र विश्वप्रेम का पाठ है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, सन्तोष, तप आदि शुभ आचरणों का ही आदेश है धर्म का सच्चा स्वरूप वेदों में ही मिलता है। जिससे चाणक्य जैसे मनस्वी ने प्रेरणा प्राप्त करके 'सुखस्य मूलं धर्मः' जैसे सूत्रों का प्रणयन किया है और मनु ने भी धर्मशास्त्र बनाया। वेद त्रिकाल में मान्य है। वेदों को छोड़कर विश्ववारा संस्कृति की कल्पना नहीं हो सकती।

वेदों में वैयक्तिक शान्ति के लिए मोक्ष मार्ग का उपदेश है। पारिवारिक शान्ति के लिए माता-पिता, भ्राता-स्वसा, मित्र सबको द्वेष रहित होने का उपदेश है। सामाजिक शान्ति के लिए सम्मेलन, संगठन और समानता का उपदेश है।

वेद विश्वविशान्ति हेतु महायज्ञों का विधान करते हैं। जिनसे संसार में शान्ति की स्थापना हो सकती है।

वेदों में विश्वशान्ति के साधक तत्त्व

डॉ. सुनीता जायसवाल विभागाध्यक्ष- संस्कृतविभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, चकिया-चन्दौली (उ. प्र.)

मूलशोधपत्र में वेदों से उद्धृत लगभग 55सन्दर्भों का गहनानुशीलन एवं विश्लेषण करने के पश्चात् यह ज्ञात होता है कि सृष्टि की आदिम रचना वेद विश्वशान्ति की भावना से परिपूर्ण है, क्योंकि वेदों में पञ्चेन्द्रिय तथा मन का संयम एव दोषरहितता, त्यागवृत्ति, मैत्रीभाव, सद्‌भाव, सहयोग, संगठन, एकत्वभाव, मनोमालिन्य परिष्कार एवं ईर्ष्या त्याग, सहृदयता, सौमनस्य, बन्धुत्वभाव, भेदभाव का

अभाव, सत्य एवं ऋत, अहिंसा, अभय, मन्युत्याग, अनुचित साधनों से शीघ्र धनाढ्य बनने की प्रवृत्ति का त्याग, राष्ट्र के शासक की ऐश्वर्य एवं शक्ति सम्पन्नता, सशक्त आयुधों की विद्यमानता, वीर योद्धाओं की पर्याप्तता, सुरक्षा की भावना एवं विश्वास, शत्रुविहीन साम्राज्य, आत्मवत्भाव, समदृष्टि एवं विश्वबन्धुत्व का भाव, वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना तथा पर्यावरण की शुद्धि आदि अनेक विश्वशान्ति के साधकतत्त्वों का उल्लेख प्राप्त होता है।

इस प्रकार वैदिक संस्कृति प्रकारान्तर से शान्ति की ही संस्कृति थी क्योंकि वेदों में विश्वशान्ति के साधक विविध तत्त्वों एवं उपायों का वर्णन करके वैदिक ऋषियों ने विश्वशान्ति का सन्देश प्रदान करने का सुदृढ़ प्रयास किया है। वेदोक्त विश्वशान्ति के विविध सार्थक, उपयोगी प्रेरक एवं प्रभावशाली जिन उपायों एवं तत्त्वों को वर्णित किया गया है। वे न केवल आधुनिक परिप्रेक्ष्य में ही प्रामाणिक, प्रासंगिक एवं उपयोगी हैं बल्कि इनकी उपादेयता एवं सार्थकता सार्वकालिक, सार्वदेशिक एवं सार्वभौमिक है। यदि हम वेदोक्त विश्वशान्ति के साधक तत्त्वों को स्वीकार कर व्यवहार में अपनाएँ तो विश्वशान्ति के इस महनीय मांगलिक उद्देश्य को प्राप्त करने में समक्ष एवं समर्थ हो सकते हैं।

वेदों में जीवनमूल्य

प्रा. श्रीमती रंजन अहारिया संस्कृत (विभागाध्यक्ष -निवृत्त) श्रीमती गांधी महिला कालेज, भावनगर गुजरात

ईश्वरनिर्मित इस संसार में मनुष्य की गिनती प्राणीवर्ग में की गई है। इस वर्ग में होने से उनकी कई प्रवृत्तियाँ पशु सदृश हैं। किन्तु धर्म के आचरण से मनुष्य प्राणियों से ऊपर उठता है। और मनुष्य और पशु के बीच का साम्य और वैषम्य इस संस्कृत सुभाषित में बताया गया है–

आहारनिद्राभयमैथुनं च सामान्यमेतद् पशुभिः नराणाम्।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो धर्मेणहीनाः पशुभि समानाः।।

किन्तु मनुष्य की सब प्रवृत्तियाँ आचरण में समाविष्ट हैं, अतः उनकी प्रत्येक प्रवृत्तियाँ मूल्यनिष्ठ होनी चाहिए, मूल्य का अर्थ है जीवनदृष्टि या स्थापित वैचारिक इकाई। मूल्य परंपरित भी हो सकता है और देश, काल एवं परिस्थिति अनुसार परिवर्तित भी हो सकता है। मूल्य सिद्धि के लिए मनुष्यों के आचरण ही धर्म कहा जाता है। इन धर्मो का पालन करते समय अथवा मूल्यों का जतन करते समय यदि मृत्यु भी आये तो उसकी परवाह वे नहीं करते।

मूल्य चरितार्थ करने में सर्वप्रथम मन में उत्तम कल्याणकारी विचारों का उद्भव होना आवश्यक है वेदों के विधानों में कल्याणकारी विचारों वाले मन की कामना की गई है। ''आ नो भद्रा क्रतवो यन्तु विश्वतः''- इस मन्त्र में मन में चारों ओर से शुभ विचार प्राप्ति की कामना ऋषि ने की है। वैदिक साहित्य में अभिव्यक्त जीवन मूल्यों की चर्चा तीन दृष्टिकोणों से करने का इस शोध पत्र का उद्देश्य है।

वैदिक संस्कृति शाश्वत मूल्यों पर आधारित थी। वेदों के अध्ययन से मानवी का व्यक्तिगत मूल्य शुद्ध होगा और प्रजा नागरिक धर्मो का पालन करेगी। जिससे सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन आयेगा। विचारशील और सुदृढ़ समाज चारित्र्यवान शासक को चुनेगा। ऐसा शासक राष्ट्ररूपी नैया को योग्य दिशा में ले जायेगा। ''यत्र विश्वं भवत्येक नीडम्'' वैदिक उक्ति चरितार्थ होगी और प्रजा सुख समृद्धि का अनुभव करेगी।

ऋग्वेद में मैत्री भाव

डॉ. शालिमा तबस्सुम उपाचार्य, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, सोबन सिंह जीना परिसर, अल्मोड़ा

मैत्री जीवन का अभिन्न अंग होती है। जिसके पास मित्र नहीं उनका जीवन व्यर्थ होता है। मित्र के बिना मानव श्रेय के मार्ग को प्राप्त नहीं कर सकता है। मित्रता किसी से भी हो सकती है। ऋग्वेद में मित्रता के सम्बन्ध में हैं कि मित्रता चाहे देवताओं से हो चाहे मानवों से, पशु-पक्षियों से या फिर प्रकृति के प्रति अपने समाज से हो या सम्पूर्ण विश्व से। सभी में उदार भावना निहित

होती चाहिए। वेदों में ऋषियों ने स्तुतियों के माध्यम से देवी देवताओं, प्रकृति, राष्ट्र एवं विश्व के प्रति मित्रता प्रदर्शित की है। मानव ने देवताओं से ही सभी प्रकार की मैत्री, कल्याण, सत्य इत्यादि नैतिक आदर्शों को ग्रहण किया है और उन आदर्शों पर दृढ़ता से चलने की इच्छा भी व्यक्त की है। इन्हीं आदर्शों द्वारा मानव समाज, राष्ट्र को सुव्यवस्थित कर प्रेमपूर्वक एक सूत्र में बाँध सकता है। सर्वप्रथम देवताओं से मित्रता की कामना करते हुए ऋग्वेद में है कि सभी मानव देवताओं का अनुग्रह अर्थात् मित्रता प्राप्त करें-

देवानां सख्यमुपसेदिमावयं। 1.89.2

प्रथम मण्डल में अग्नि की स्तुति करते हुए उसे मानव मात्र का बन्धु, मित्र एवं प्रिय सखा कहा गया है। देवताओं के साथ-साथ मनुष्यों से मित्रता भी जीवन के लिए अत्यन्त उपयोगी है। अग्नि को मित्र के समान हितैषी बताया गया है। ऋग्वेद में मित्र की प्रशंसा उसकी महत्ता बताते हुए किस प्रकार की मित्रता उपयोगी है, इन सबके विषय में विस्तारपूर्वक सुन्दर शब्दों में चर्चा की गयी है।

ऋग्वेद में विश्वशान्ति

डॉ. गीता परिहार रीडर, संस्कृत विभाग, गोकुलदास हिन्दू गर्ल्स कॉलेज, मुरादाबाद (उ.प्र.)

आज संसार मे चारों ओर फैली अराजकता, अशान्ति, भय, आतंक, बेईमानी तथा रिश्वतखोरी आदि का हल वेद में ही निहित है। इन सबके पीछे एक ही कारण निहित है कि आज मानव उन जीवन मूल्यों को भुला चुका है, जो मानव के मानवीय अर्थात् आत्मिक विकास के लिए आवश्यक हैं।

ऋग्वेद अपने दशम मण्डल में यह आदेश देता है कि प्रत्येक मनुष्य को धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह तथा धैर्य आदि नैतिकता के गुणों से अपना जीवन विभूषित करना चाहिए।

सर्वधर्म समभाव का निर्देश भी हमें ऋग्वेद में प्राप्त होता है-

'समानी वः आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।। (ऋ. 10.191.4)

श्रीमद्दयानन्द सरस्वती ने ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका में तैत्तरीय आरण्यक के जिस मन्त्र को ईश-प्रार्थना में प्रथम नम्बर पर रखा है, उसमें परस्पर विरोध भाव का परित्याग तथा मित्रवत् रहने की बात कही गई है-

ओम् सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्य करवावहै। तेजस्विनावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै। ओम् शान्तिःशान्तिःशान्तिः।।

वेद में विश्वशान्ति

डॉ. छाया रानी महात्मा ज्योतिबाफुले रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय बरेली (उत्तरप्रदेश)

यजुर्वेद के 36/17 मन्त्र में मनुष्यों की ही नहीं, सम्पूर्ण लोकों एवं जीवों की शान्ति की प्रार्थना की गई है। 'शान्ति' शब्द संस्कृत की 'शम्' धातु में 'क्तिन्' प्रत्यय लगाने से बनता है, 'शम्' का अर्थ है उपशम या समन्वित होना। यही वास्तविक शान्ति है। पृथिवी के गर्भ में जितनी सम्पत्ति छिपी पड़ी है वह उस प्रत्येक प्राणी के लिए है जिसने माता के पेट से जन्म लिया है। वेदों का यह नवीन तथा अद्भुत विचार है कि माता की हर सन्तान का भूमिमाता द्वारा उत्पन्न हर वस्तु पर जन्मसिद्ध अधिकार है। ईश्वर के पितृत्व और भूमि के मातृत्व को स्वीकार करके वेद ने मनुष्यों को एक ही परिवार के सदस्य मानकर उनको घृणा और वैमनस्य से पृथक् रहकर मानसिक एकता का उपदेश दिया है। वेद द्वारा विश्वशान्ति का यही एक उपाय बतलया गया है-

'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः'
अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते संभ्रातरो, वावृधुः सौभगाय।

ऋग्वेद 5.60.5

अथर्ववेद के तीसरे काण्ड के तीसवें सूक्त में तो विश्व शान्ति-स्थापना के लिए जो उपदेश दिये गये हैं वे अद्भुत हैं-

"सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाध्न्या।।" (अथर्व वेद 3.30.1)

विश्व को शान्ति के एक सूत्र में बांधने के उपाय भी वेद में बताए गए हैं (अथर्ववेद-12.1.1) में बताया गया है-

"सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति।"

विश्व में शान्ति की स्थापना के लिए छह साधन आवश्यक हैं। सत्य विचार, सत्यकार्य यह नहीं कि मन में कुछ और वाणी में कुछ और। विश्वशान्ति के लिए मन से ईश्वरीय अखण्ड़ नियमों का पालन करना होगा। ईश्वर के नियम अटूट हैं उन्हें तोड़ना सरल नहीं, पर जो तोड़ेगा, वह व्यक्ति या राष्ट्र अशान्ति का कारण होगा। समाजसेवा का व्रत लेना होगा हम दूसरों को तो समाज सेवा या मानव-प्रेम की दीक्षा देते हैं किन्तु समाज के लिए जब आत्मत्याग का प्रश्न आता है तब हम स्वार्थपूजन में लग जाते हैं। भोगविलास और वासना में न पड़कर तपस्यामय जीवन बिताना ही तम है दैवी शक्ति में विश्वास और दूसरों की भलाई में अपने स्वार्थ का उत्सर्ग। ये छह गुण धारण करके ही विश्व में शान्ति स्थापित हो सकती है।

वैदिक साहित्य मे 'विश्वबन्धुत्व'

डॉ. लोकेश चन्द्र प्रवक्ता- संस्कृत, राजकीय इण्टर कॉलेज बदायूँ

वेद सम्पूर्ण आर्ष वाङ्मय के प्राण तथा सांस्कृतिक ज्ञान गंगा के आदि स्रोत हैं। वेदों एवं समस्त वैदिक साहित्य में विश्वबन्धुत्व तथा सार्वजनीन हित एवं कल्याण की भावना प्रमुख रूप से सन्निहित हैं। वेद साम्यवाद तथा मानसिक एवं हार्दिक एकता के प्रबल पोषक हैं। ऐसे वेदों से निःसृत संस्कृति एवं साहित्य में प्राणिमात्र के साथ समता और ममता की भावना का उत्तमता के साथ सम्बद्ध होना नैसर्गिक ही है। इसीलिए वैदिकी संस्कृति को विश्व की प्रथम और वरणीय संस्कृति कहा गया है-

'सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा।' यजु. 7.14

व्यापक एवं समतामूलक संगठन की दृष्टि से वेदों का उपदेश सर्वथा ग्राह्य है। संगठन के प्रथम सोपान परिवार से लेकर समाज, राष्ट्र और विश्वस्तर के संगठन के निर्माण में मानव ही प्रथमतः उत्तरदायी कारक हैं। स्वस्थ रूप से विकसित मानव में परस्पर बन्धुत्व की भावना जितनी बलवती होगी, संगठन की स्थिति उतनी ही सुदृढ़ होगी। सम्पूर्ण विश्व को एक सूत्र में आबद्ध करने के लिए मनुष्य को पारिवारिक़, सामाजिक और राष्ट्रीय भावना के साथ-साथ विश्वबन्धुत्व या विश्वप्रेम की व्यापक भावना को सहजतया आत्मसात् करके विश्वनसगरिकता की श्रेणी में एकरूप होना परम आवश्यक है। समस्त विश्व में एकत्व का भाव स्थापित करने के लिये यजुर्वेद (40.6,7) में विश्व के समस्त प्राणियों के साथ एकत्व की अनुभूति करने का सन्देश प्रदान किया गया है। ऋग्वेद के अन्तिम सूक्त में सभी के मन, हृदय और विचारों की एकता पर विशेष बल दिया गया है। अथर्ववेद में प्रेम, सामंजस्य और सौहार्द की परम्परा का उल्लंघन करने वालों के लिये सचेत करते हुएकहा है कि परस्पर वैर विरोध कर आपस में संघर्ष करने वाले मृत्यु का ग्रास बनते हैं।

इस प्रकार परमपिता परमात्मा द्वारा विश्वजनीन हितार्थ प्रदत्त वेदों में प्राणियों के सार्वत्रिक कल्याण की भावना का दिग्दर्शन होता है। वस्तुतः वैदिक साहित्य में केवल हिन्दू, मुस्लिम, जैन, ईसाई आदि से ही नहीं, अपितु प्राणिमात्र से प्रेम करने पर बल दिया गया है। वैदिक साहित्य में विश्वबन्धुत्व एवं प्रेम का जैसा उच्चतम आदर्श उपस्थापित किया गया है, वैसा भव्य् भाव विश्व के किसी साहित्य में दृष्टिगोचर नहीं होता है। वैदिक साहित्य में तो पदे-पदे विश्वबन्धुत्व, प्रेम और सामंजस्य की उत्कृष्ट भावनाओं की झंकार श्रोतों को अनवरत झंकृत कर रही है। इसीलिये वैदिकी मनीषा में सम्पूर्ण पृथिवीस्थ प्राणियों के प्रति कौटुम्बिक दृष्टि स्थापित करते हुए बर्ताव करने का उदात्त भाव प्रकट किया गया है।

विश्वबन्धुत्व

डॉ. देवेन्द्र कुमार उपाध्याय प्रवक्ता-संस्कृत रामकृष्ण परमहंस डिग्री कॉलेज, केसरगंज, बहराइच (उ.प्र.)

वैदिक साहित्य कीएक अनोखी विशेषता है कि वह मानव मात्र के कल्याण की भावना को अग्रसर करता है। वैदिक ऋषि व्यक्ति एवं समष्टि के कल्याण के लिए जगदीश्वर से प्रार्थना नहीं करता प्रत्युत वह समग्र सृष्टि के लिए आशीर्वाद मांगता है। वह व्यक्ति तथा समाज से ऊपर उठकर समस्त विश्व के सुख समृद्धि तथा मंगल के निमित्त ही प्रार्थना करता है-

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव।
यद भद्रं तन्न आ सुव।।(यजु. 30.3)

विश्व शान्ति और विश्वबन्धुत्व की उदात्त भावनासे ओत-प्रोत वैदिक मन्त्रों में मानव मात्र में परस्पर सौहार्द, मैत्री तथा सद्भावना की उपलब्धि नितान्त आवश्यक है-

मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।। (यजु.36.18)

वैदिक साहित्य में विश्व कल्याण के हर पहलुओं पर विचार हुआ है, विचार ही नहीं उसे भारत के लोगों ने अपने जीवन में भी उतारा है। जिसमें भारतीय चिन्तकों ने वैयक्तिक मंगल के लिए भगवान् से प्रार्थना नहीं करता प्रत्युत वह मानव मात्र के हित का प्रार्थी है।

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।

इस लिए प्रत्यक धार्मिक अनुष्ठान की समाप्ति पर साधक पुरुष अपना आदर्श इस प्रसिद्ध श्लोक के द्वारा प्रकट करता है-

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत्।।

ऐसे उदात्त विश्वबन्धुत्व की भावना का व्यवहार तथा विचार उभय पक्षों में सुन्दर अभिव्यक्ति वैदिक संस्कृत साहित्य की अपनी निजी विशिष्टता है।

अथर्ववेद के आलोक में नीतिशिक्षा

प्रवीण बाला (शोधच्छात्रा) जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

अथर्ववेद वैदिक वाङ्मय का शिरोभूषण है। यह धार्मिक, सांस्कृतिक, दार्शनिक, आध्यात्मिक एवं समाजशास्त्रीय दृष्टि से है अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। अथर्ववेद में नीति विषयक विविध शिक्षाएं तथा कर्तव्योपदेश परायन सज्जन पुरुषों के लक्षण बताए गए हैं। वह सभय समाज सेवी तथा यज्ञकर्त्ता होता है। वह पत्नी से प्रेम करता है, युद्ध में जाता है हम ओजस्वी तथा यशस्वी हों क्योंकि यश से मनुष्य प्रगतिशील तथा दूरदर्शी होता है क्योंकि यश यज्ञ के तुल्य है। अथर्ववेद में काम तथा क्रोध के दो गृह कहा गया है यह दोनों शोक के कारण है तथा हृदय को सुखाने वाले हैं। ईर्ष्या करने वाले का मन मृत अर्थात् मरा हुआ होता है। क्योंकि ईर्ष्या मुनष्य को दावाग्नि के तुल्य जलाती है। द्वेष वाली वाणी ब्लेलने वाले, सदा दुर्गति को प्राप्त होते हैं। चोरी करने को दुर्गुण तथा पाप कहा गया है। चोरी से ही मनुष्य का सर्वनाशी होती है। द्रोह करना, असत्य बोलना, गाली देना, परस्त्रीगमन इत्यादि पाप है इससे व्यक्ति का पतन होता है। सत्कर्म करके इन पापों को नष्ट क़रे।

उत्तमनीति को अपनावें। निरन्तर कार्य करने से अभ्यास बढ़ता है। निरन्तर अभ्यास से ही उत्तम वैद्य बनता है।

वैदिक साहित्य में 'विश्वबन्धुत्व'

डॉ. लोकेश चन्द्र प्रवक्ता- संस्कृत, राजकीय इण्टर कॉलेज, बदायूँ

वेद सम्पूर्ण आर्ष वाङ्मय के प्राण तथा सांस्कृतिक ज्ञान गंगा के आदि स्रोत हैं। वेदों एवं समस्त वैदिक साहित्य में विश्वबन्धुत्व तथा सार्वजनीन हित एवं कल्याण की भावना प्रमुख रूप से सन्निहित है। वेद साम्यवाद तथा मानसिक एवं हार्दिक एकता के प्रबल पोषक हैं। ऐसे वेदों से निःसृत संस्कृति एवं साहित्य में प्राणिमात्र के साथ समता और ममता की भावना का उत्तमता के साथ सम्बद्ध होना नैसर्गिक ही है। इसीलिए वैदिकी संस्कृति को विश्व की प्रथम और वरणीय संस्कृति कहा गया है-

सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा (यजु. 7.14)

व्यापक एवं समतामूलक संगठन की दृष्टि से वेदों का उपदेश सर्वथा ग्राह्य है। संगठन के प्रथम सोपान परिवार से लेकर समाज,

राष्ट्र और विश्वस्तर के संगठन के निर्माण में मानव ही प्रथमतः उत्तरदायी कारक है। स्वस्थ रूप से विकसित मानव में परस्पर बन्धुत्व की भावना जितनी बलवती होगी, संगठन की स्थिति उतनी ही सुदृढ़ होगी। सम्पूर्ण विश्व को एक सूत्र में आबद्ध करने के लिये मनुष्य को पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रीय भावना के साथ साथ विश्वबन्धुत्व या विश्वप्रेम की व्यापक भावना को सहजतया आत्मसात् करके विश्वनागरिकता की श्रेणी में एकरूप होना परम आवश्यक है। समस्त विश्व में एकत्व का भाव स्थापित करने के लिए यजुर्वेद (40.6,7) में विश्व के समस्त प्राणियों के साथ एकत्व की अनुभूति करने का सन्देश प्रदान किया गया है।

वैदिक साहित्य में विश्वबन्धुत्व एवं प्रेम का जैसा उच्चतम आदर्श उपस्थापित किया गया है।, वैसा भव्यभाव विश्व के किसी साहित्य में दृष्टिगोचर नहीं होता है। वैदिक साहित्य में तो पदे-पदे विश्वबन्धुत्व, प्रेम और सामंजस्य की उत्कृष्ट भावनाओं की झङ्कार श्रोतों को अनवरत झङ्कृत कर रही है। इसी लिये वैदिकी मनीषा में सम्पूर्ण पृथिवीस्थ प्राणियों के प्रति कौटुम्बिक दृष्टि स्थापित करते हुए बर्ताव करने का उदात्त भाव प्रकट किया गया है-

'वसुधैव कुटुम्बकम्' (शार्ङ्गधर पद्धति)

वैदिक साहित्य में विश्वबन्धुत्व की परिकल्पना

डॉ. अरविन्द कुमार व्याख्याता, साहित्य विभाग, श्री ला.ब.शा.सं.विद्यापीठ, नई दिल्ली

'भारतस्य प्रतिष्ठे द्वे संस्कृतं संस्कृतिस्तथा' इस प्रसिद्ध उक्ति के अनुसार संस्कृत और संस्कृति भारत के दो मूल स्तम्भ है जिनके द्वारा विश्व में भारत की प्रतिष्ठा अग्रगण्य है। संस्कृत साहित्य काविश्व की संस्कृति को संरक्षित रखने में अनुपम योगदान है तथा भारतीय संस्कृति भी संस्कृत के ही आश्रित हैं। मानवीय जीवनमूल्यों कर्तव्याकर्तव्य विचार नीति मीमांसा विश्वबन्धुत्व, एकता, अखण्डता, सहिष्णुता आदि का जो चित्रण संस्कृत वाङ्मय में प्राप्त है वह अन्यत्र नहीं। वैदिक ऋषि सम्पूर्ण विश्व सकल मानव समुदाय को एक सूत्र में बाँधने का जो विलक्षण प्रयास किया है वह निश्चय ही स्तुत्य है। ऋषि कहता है-

'संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्'

इस मन्त्र के द्वारा वैदिक ऋषि ने मानवतावाद की जो स्थापना की है, वह भारतीय संस्कृति एवं संस्कृत के माहात्म्य का ही प्रतीक हैं। अथर्ववेद में तो समग्र पृथिवी को माता के रूप में उपदेश किया है-

'माताभूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।'

इस मन्त्र से न केवल मानवमात्र अपितु विश्व के समस्त प्राणिमात्र के लिये जो विश्वबन्धुत्व का संदेश दिया गया है वह भारतीय संस्कृति और संस्कृत ही कर सकता है।

वैदिक संस्कृति में विश्वबन्धुत्व

डॉ. दिवांशु कुमार प्राध्यापक-स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

संसार में सिर्फ एक ही देश है जिसने विश्व-बन्धुत्व की दिशा में बाहुबल के स्थान में आत्मबल का प्रयोग किया, सैन्यबल के स्थान में धर्मबल का प्रयोग किया, दूसरों का खून बहाने के स्थान में अपना बलिदान देने का मार्ग अपनाया। वह देश है - भारतवर्ष। भारत ही वह देश है जिसने अपने सैनिक अन्य देशों पर आक्रान्ता के रूप में भेजने के स्थान में विश्व की आत्मा को जीतने के लिए अपने धर्म-गुरु भेजे।

बुद्ध का संदेश भारत के संत-महात्माओं का संदेश था, ऋषि-मुनियों का संदेश था, वह संदेश जिसे पतंजलि मुनि ने योगदर्शन में 'अहिंसा - सत्य - अस्तेय - ब्रह्मचर्य - अपरिग्रह' का नाम दिया था। यह वेदों का संदेश था। मनु ने लिखा था -

''एतद् देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।।''

भारत की सीख चरित्र का निर्माण करना था, भारत का संदेश ऐसे युवकों का निर्माण करना था जो संसार के बड़े- से - बड़े प्रलोभनों के सामने भी न डिगें - 'चरित्रं शिक्षेरन्' का यही अर्थ है। जब चरित्रवाले व्यक्ति देश में होंगें - ऐसे व्यक्ति जो यम-नियम की साधाना में से गुजरे हो- वे सरकारी नौकरी करें, व्यापार करें, शासन करें, ऐसे व्यक्ति जिनके चरित्र पर कोई आँच नहीं आ सकती, तब किसी व्यक्ति, समाज, धार्म या देश की कोई समस्या बनी नहीं रह सकती। आज हमारे पास सब-कुछ है, धन है, सम्पत्ति है, मकान है, मोटर है, हवाई जहाज है, परन्तु हम सब अनार्य हैं, स्वार्थ में इतने लिप्त है कि सब कुछ होते हुए भी भाई-भाई को नहीं देख सकता, देश-देश को नहीं देख सकता। सब कुछ पाकर हमने चरित्र को खो दिया है। यही कारण है कि वह प्रेम-भावना कहीं नहीं जो मानव-मात्र में एक-सी आत्मा को देख सके। संसार में वैदिक संस्कृति ही एक संस्कृति थी जिसने मुक्त स्वर से यजुर्वेद (11-5) के शब्दों में उद्घोष किया था -

'शृण्वन्तु सर्वे अमृतस्य पुत्राः' - ऐ दुनिया के लोगों ! तुम सब अजर-अमर भगवान् की संतान हो, भाई-भाई की तरह ही एक-दूसरे के साथ व्यवहार करों। ऋग्वेद (10,192,2) में कहा गया है -

"संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम् देवाः भागं यथा पूर्वे संजानानामुपासते।"

वेद का सहकार, सौमनस्य भाव- श्री मोरारि बापू के जीवन व्यवहार में

राज्यगुरु हितायु

साम्प्रत समय में हम देखें तो हर जगह काल ही दिखाई देता है। परिवार के सभ्यों के बीच, संघ के साथ जुड़ी हुई लोगों के बीच और राष्ट्रों के बीच भी संघर्ष दिखाई देता है। समाज में और भी कई समस्याएं प्रवर्तित है जो सबके बीच सामंजस्य और सहकार की भावना न होने के कारण हैं। जिसका मुकेले हमें वेद में मिलता है। वेद की सहकार और सामंजस्य की भावना को जाने उसका आचरण और प्रसार जिसने किया है ऐसे सन्त समान श्री मोरारि बापू के जीवन व्यवहार को अपनायें तो इस समस्या का समाधान मिल सकता है।

हमारी 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना पूरे विश्व को आकर्षित करती है। कोई भी जाति, कोई भी धर्म, कोई भी राष्ट्र किसी व्यक्ति को अपना समझे। सबके साथ मन से एक होकर रहा यही बात वेद कहते हैं। 'अहं राष्ट्री संङ्गमनि'(अथर्ववेद 4/30/2) क्योंकि सहकार और सामंजस्य की भावना पर ही समाज का अस्तित्व टिका हुआ है।

सांप्रत समय में श्री मोरारि बापू एक ऐसी विभूति हैं जिसके जीवन व्यवहार में वेद की इस भावना का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है। वे अपनी कथा में राष्ट्र में रचनात्मक कार्य हो इसलिए सबको बुलाते हैं। जितना हो सके इतना सहकार सबको देते हैं वे सीताराम सेवा ट्रस्ट द्वारा गुरुकुल, गौशाला, होस्पिटल आदि का संचालन करके कई लोगों को अपनी समस्या सुलझाने में मदद देते हैं। जो संस्था लोगों के सहकार के लिए कार्य करती है उसे कथा के माध्यम से मददरूप बनाते हैं।

वैदिक ऋषियों ने जिस भारतीय मूल्यों का जतन और परिवर्धन किया है उसी परम्परा का निर्वाह श्री बापू अपने जीवन व्यवहार में मनसावाचाकर्मणा कर रहे हैं।

वेद और विश्वबन्धुत्व

भूपेन्द्र कुमार राठौर (शेधच्छात्र) नई दिल्ली

वैदिक संस्कृत साहित्य में विश्वबन्धुत्व की भावना उसके प्रारम्भिक काल से ही उपस्थिल रही है। सृष्टि सृजन से लेकर संस्कृत राष्ट्र का गौरव ही नहीं अपितु प्राणिमात्र के प्रति कल्याण की कामना मनुष्य को **'सर्वे भवन्तु सुखिनः'** , **'सर्वे सन्तु निरामयाः'**, **'वसुधैव कुटुम्बकम्'**, **'अहिंसा परमोधर्मः'** इत्यादि अनेक नीति परक उपदेश देती रही है।

सत्येनोत्तभिता भूमि:

प्रतिमा त्रिपाठी(शोधच्छात्रा) संस्कृत एवं प्राकृत भाषा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

सत्येनोत्तभिता भूमि: सूर्येणोत्तभिता द्यौ:।

ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति दिवि सोमो अधिश्रित:।। अथर्ववेद 14.1।

अर्थात् सत्य से पृथिवी रुकी हुई है और सूर्य से द्युलोक रुका हुआ है, सत्य से सूर्य रुके हुए हैं तथा परमात्मा सोम्यगुण युक्त होकर द्युलोक में व्याप्त है।

सम्पूर्ण ऋग्वैदिक धर्म का मूलाधार सत्य है इसी का दूसरा नाम ऋत है। ये सृष्टि के वे शाश्वत नियम हैं जिनके अनुसरण और पालन से ही संसार अपनी स्वाभाविक गति से चल पाता है। चाहे वह देवता हों, ऋषि हो या नदियाँ, सभी सत्य का पालन कर स्थित हैं। तभी तो ऋषि ऋतसाप और ऋतावृध कहे गये, नदियाँ ऋतावरी कही गयी। जीवन के आधार जल की उत्पत्ति भ्री ऋत से ही हुई। ऋत का पालन धर्म है जो इसका पालन करते हैं वे सुखी जीवन व्यतीत करते हैं, समृद्धि प्राप्त करते हैं और संयमी बनकर अपना लक्ष्य प्राप्त करते हैं। शोध-पत्र के द्वारा सत्य से सम्बन्धित वैदिक मान्यता का निरूपण वर्तमान आवश्यकता के परिप्रेक्ष्य में करने का लघु प्रयास किया जायेगा क्योंकि सत्य के मार्ग से ही ऋग्वेद में दुखों को पार करने की कामना नाव से नदी पार करने की उपमा से की गयी है-

ता भूरिपाशावनृतस्य सेतू, दूरत्येतू रिपवे मर्त्याय।

ऋतस्य मित्रावरुणा पथा वा, मथो न नावा दुरिता तरेम।ऋग्वेद 7.65.3

भार्गवी वारुणी विद्या का जीवन में महत्त्व

प्रो. दिनेश आर. माछी सरकारी विनयन कालेज, शहेरा, गुजरात

कृष्णयजुर्वेदीय तैत्तिरीयारण्यक के नवम अनुवाक में एवं तैत्तिरीयोपनिषद् की भृगुवल्ली में अनुवाक 1 से 6 तक भार्गवी वारुणी विद्या का निरूपण किया गया है। भृगुवल्ली में जिस ब्रह्मविद्या का निरूपण किया गया है उसके सम्प्रदायप्रवर्तक वरुण हैं, इसलिये यह विद्या वारुणी विद्या कहलाती हैं। - 'भार्गवी, भृगुणा विदिता वरुणेन प्रोक्ता वारुणी विद्या।' अर्थात् भार्गवी- भृगु की जानी हुई और वारुणी- वरुण की कही हुई विद्या भार्गवी वारुणी विद्या। इस विद्या की उपलब्धि के लिये चित्त की एकाग्रता एवं गुरुकृपा की आवश्यकता है।

भार्गवी वारुणी विद्या में जीवन दर्शन है। अन्नब्रह्म की उपासना से जीवन शुद्ध होता है, प्राणब्रह्म की उपासना से प्राण तेजस्वी बनता है, मनोब्रह्म की उपासना से मन भव्य और दिव्य बनता है, और विज्ञान ब्रह्म की उपासना से जीवनज्ञान आत्मस्पर्शी होता है। यह विद्या जीवन में लाने से इहलोक और परलोक में महान् कीर्ति मिलती हैं।

यह वारुणी विद्या राजविद्या है क्योंकि यह जीव को राजा बनाती है। जगत् में मै राजा हूँ इस प्रकार गौरव जीव महसूस करता है। इस प्रकार भार्गवी विद्या का मनुष्य जीवन में बहुत महत्त्व है। यह बात प्रस्तुत लेख में प्रकट की है।

ऋग्वेदीय वायुसूक्तों में सनातन मूल्य

डॉ. माला प्यासी सहायक प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष शासकीय महाकोशल कला एवं वाणिज्य म.वि., जबलपुर

'ते वायवे मनवे बाधिताया' ऋक् 7.91.01

इस ऋचा में ऋषि वायु का आह्वान कर कह रहा है कि यह छवि दु:खी मानवों के हित के लिये है जो आपदग्रस्त मनुष्यों के कष्ट दूर करने की भावना को संकेतित करता है। ऋग्वेद में सूर्य, अग्नि, इन्द्र, मरुत् आदि अन्य देवों के साथ-साथ वायु के भी अनेकों सूक्त उपलब्ध हैं जिनमें कतिपय ऋचा खण्ड जीवनदायिनी भावना से सम्बन्धित हैं तो कुछ परोपकार और कल्याण की भावना से सम्बन्धि हैं।

दशम मण्डल में वायु की उत्पत्ति विराट् पुरुष के प्राणों से कही गई है। 'प्राणाद्वायुरजायत' ऋक्.10.90.13 । छान्दोग्योपनिषद् में भी वायु को प्राण के रूप में ब्रह्म का चतुर्थपाद कहा गया है। छान्दो. उप. 03.18.04। इस प्राण वायु का द्युलोक और अन्तरिक्ष के मध्य का स्थान है अर्थात् जो पृथ्वी के चारों ओर का वातावरण है वह वायु का ही स्थान है। जो शक्ति जीवधारियों के प्राण माने जाने के लिये अधिकृत हैं, वह हैं वायु।

देशकाल की सीमा से परे वे कर्त्तव्य, वे आदर्श जो नित्य हैं, शाश्वत हैं, प्राचीनकाल में भी जिनकी सत्ता थी आज भी वे सत्य हैं, ऐसे मूल्य ही सनातन कहे जाते हैं। ऋग्वेद में यत्र तत्र वर्णन उपलब्ध होते हैं कि त्रिविध स्वरूपा वायु शरीरधारियों की आत्मा के रूप में स्थित होकर भौतिक जगत् का विस्तार करते हुए जनकल्याण में रत रहते हैं। वायु के ऐसे ही कतिपय सनातन मूल्यों की चर्चा प्रस्तुत आलेख का लक्ष्य है।

वेदों में समसामयिकी समस्याओं की निवृत्ति : सत्यतत्व निरूपण

डॉ. रजनी शर्मा प्रवक्ता संस्कृत, श्री भगवान शिव स्ना. महाविद्यालय उमेदपुर(एटा)

जहाँ वेद में पदे-पदे मानवीय जीवन मूल्यों के सन्दर्भ में प्रेम, शान्ति, एकता, समता, स्वतन्त्रता, न्याय, निर्भयता, परमार्थता, विश्वबन्धुता आदि का उल्लेख प्राप्त है, वहीं सृष्टि का प्रथम मानव **'सत्यमेव जयते'** का उद्घोष कर सत्य को भूतल की समस्त मानवीयता का मूल आधार मानता है।

1. वैदिक मनीषियों ने मानवीय जीवन मूल्यों में सत्य को जीवनोत्कर्ष का प्राथमिक व महत्त्वपूर्ण आधार मान कर ही सत्य ही जीवन है, सत्य ही ब्रह्म है, सत्य ही ज्ञान है, का निर्देश दिया है यथा **'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'** (तैत्तिरीयोपनिषद्)

2. ऋग्वेद के ऋषि मनीषियों का कहना है- यद्यपि सत्य का मार्ग जटिल एवं कंटकपूर्ण बाधायुक्त अवश्यमेव होता है फिर भी मानवीयता का उत्कर्ष सत्य पर अटल-दृढ़ रहने में ही है- सत्य से विमुखता में नहीं। यथा द्रष्टव्य -

'ऋतस्य पन्थामन्वेति साधु'(ऋग्वेद 1.24.3)

अथर्ववेद के काण्ड चौदह के प्रथम सूक्त के प्रथम मन्त्र-

'सत्येनोत्तभिता भूमिः' से स्पष्ट ही सत्याचार तथा सत्यानुष्ठान की पुष्टि होती है।

3. वर्तमान में बिखरते समस्त जीवनमूल्यों का सूत्राधार सत्य ही असत्य में स्थान्तरित हो गया है, इसी कारण सर्वत्र अशान्ति, असभ्यता, अशिष्टाचार से अहर्निश अपहत मानवीयता का ह्रास हो रहा है। इन गिरते जीवन मूल्यों से मानव स्वयं का संहार कर रहा है, उसकी ही आत्मा का अनवरत पतन हो रहा है।

4. इसकी निवृत्ति के लिए मनुष्य को अज्ञानता के अन्धकार से निकालकर सत्यमय प्रकाश-पथ के अधिग्रहण की महती आवश्यकता है। वेद **'आरोह तमसो ज्योतिः'**(अथर्ववेद 8.1.8) द्वारा स्पष्ट ही दर्शाता है कि तम स्वरूप अमानवीय गुणों का नाश सत्त्व गुण के अधिग्रहण में ही निहित है।

5. एतदर्थ अद्यतन इन मूल कुप्रवृत्तियों की पूर्ण निवृत्ति पर विचार करना परम आवश्यक हैं, जिसका सविस्तार वर्णन शोध पत्र में प्रस्तुत किया जायेगा।

ऋग्वेद में नैतिकता की अवधारणा

राम अवधेश शर्मा रीडर, समाजशास्त्र विभाग, एम.जे.एस. शासकीय स्ना. महाविद्यालय, भिण्ड (म.प्र.)

ऋग्वेद का यह कथन है कि'पुलुकामो हि मर्त्यः' (ऋ. 1.179.5) मनुष्य अनेक कामनाओं वाला है, प्राचीनकाल से लेकर आज तक मानव मस्तिष्क की व्यापक कथा का परिचायक है। व्यक्ति को, समाज को अथवा जीवन को एक सुनिश्चित एवं व्यवस्थित विकास की गति देने के लिए यह आवश्यक है कि जीवन को कुछ विशिष्ट नियमों के अन्तर्गत आबद्ध किया जाये। इन्हीं नियमों की कल्पना का साकार रूप ही नैतिक अवधारणा के अन्तर्गत समाहित किया जा सकता है।

विश्व के अधिकांश धर्मों में प्राय: समष्टि की नैतिकता से व्यष्टि की नैतिकता का विकास हुआ है, वैसे इसके विपरीत भी कहा जा सकता है जैसा कि श्रीमद्भगवद्गीता(3.21) में कहा गया है कि जेसे-जैसे श्रेष्ठ व्यक्ति आचरण करता है वैसे-वैसे ही समष्टि या लोक उसका अनुसरण करता है किन्तु जहां तक समाज शास्त्रीय नियमों की बात है। वहां यह मानकर चला जाता है कि समष्टि की नैतिक अवधारणाएं ही प्रबल होती हैं और उन्हीं से व्यष्टि में उनका ग्रहण होता है। ऋग्वेद में नैतिक अवधारणाओं की गतिशीलता समूह की ओर या रीति-रिवाजों से अन्तरात्मा की ओर प्रवाहमान प्रतीत होती हैं किन्तु जहां सामूहिक नीतिशास्त्र की जो विकृतियां हैं वे किसी श्रेष्ठ के आचरण के माध्यम से परिष्कृत होकर विकसित नैतिक धारणाओं का स्वरूप धारण करती है। इससे प्रतीत होता है कि लोग सामूहिक उत्तरदायित्वों के प्रति अधिक जागरूक थे।

ऋत जो सत्य का प्रतीक है वह नैतिक और यज्ञीय शाश्वत नियमों का रूप भी माना जाता है इसलिए इसका अतिक्रमण नहीं किया जा सकता है। नैतिक मूल्यों का प्रचार-प्रसार समाज में सह-अस्तित्व, मित्रता एवं बन्धुत्व की भावना के विकास के लिए किया गया था।

वैदिक समाज के लोग इस तथ्य को अच्छी प्रकार जानते थे इसीलिए उन्होंने सर्वजनहिताय ही समस्त नियमों की व्यवस्था की।

प्रस्तुत शोधपत्र में इन्हीं नैतिक मान्यताओं की ओर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

मानव जीवन का आधार है 'वेद'

बिन्दु लखनऊ, वि.वि. लखनऊ

धारणाद्धर्म इत्याहु: धर्मो धारयति प्रजा:।। (महाभारत शान्तिपर्व 108/11) के अनुसार धारण करने से ही धर्म है और धर्म ही समस्त प्रजा को धारणा करता है और प्रजा की आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक, सर्वोन्नति कराने वाला ज्ञान ही तो धर्ममार्ग है। उसका परम-लक्ष्य है और यही धर्म-ज्ञान वेदों का सार है। वेद ही महानतम् वैदिक संस्कृति की आधारभूत शिला है। वेद वाक्य स्वयं परमात्मा की वाणी है जो सृष्टि के आरम्भ से समस्त मानव कल्याण के लिए मुखरित है। संस्कृत की विद् धातु से उद्भूत हय शब्द वेद अपने अर्थ में ज्ञान अथवा जानना है- का ही परिचायक है। भूत, भविष्य व वर्तमान सभी के सन्दर्भ में जीवन लक्ष्य, आचार आह्निक व पारलौकिक प्राप्ति- तात्पर्य यह कि वेदों में सब कुछ है। भारतीय मनीषी तो वदों को अपौरुषेय व ब्रह्मवाणी मानते हैं धर्म का सार व आधार भी पश्चात्य विद्वान् भी भारतीय वैदिक सिद्धान्तों व उसमें वर्णित ज्ञान से अभिभूत रहते आये हैं।

विन्टरनिट्ज, ओल्डन बर्ग, मैक्समूलर जैसे न जाने कितने विद्वज्जन हमारी वेद वाणी के प्रति कृतज्ञ व नमन भाव रखते आये हैं। ब्लूमफील्ड ने तो वेदों को ही धार्मिक विचारधारा का मूलस्रोत माना है। वेद ईश्वर रचित हैं, वैदिक ज्ञान तो नित्य है और सृष्टि के आरम्भ में स्वयं परब्रह्म ने ही इनको रचा है। ऋषियों के हृदय में प्रकाशित होकर यह प्रचलन में व ऋचाओं के रूप में सम्मुख आये। स्वयं चार प्रमुख वेदों में जो प्रथम ऋग्वेद में यह उल्लिखित है कि परमात्मा ने ही इन्हें प्रकट किया।

> तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋच: सामानि जज्ञिरे।
> छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत।। (ऋ. 10/10/1)

हमारे जीवन में वेदों का महत्त्व

डॉ. हरीतिमा कुमार विभागाध्यक्ष(हिन्दी) डी.जी. कॉलेज, सिविल लाइन्स, कानपुर नगर

विश्व में वेदों का महत्त्व सर्वोपरि है। वेद ईश्वर की वाणी माने जाते हैं, सृष्टि के साथ ही उद्भूत वाणी मानी जाती है, अपौरुषेय वाणी मानी जाती है, वेद प्राचीन ग्रन्थ होने के कारण विश्व में इन्हें सर्वोच्च श्रद्धा प्राप्त है। ज्ञान का प्रथम प्रमाण भी इन्हें माना जाता है और सब सिद्धियों की कुंजी भी। 'सर्व वेदात् प्रसिध्यति।' प्राचीनतम होनेके कारण ही इन्हें अनुसरणीय ज्ञानरराशि माना गया है।

इस देश की ज्ञानराशि, चिन्तन, सरणी, साधना पद्धति, संस्कार, आचार-विचार यहाँ तक कि मानव जीवन का प्रत्येक पक्ष वेदों से अनुप्राणित है, और वेदों की महिमा से रंजित है। इस देश के समस्त पूर्ववर्ती साहित्य पर वेदों की महिमा की छाप प्रत्यक्ष देखी जा सकती है। भारत की धन सम्पदा संस्कृति भाषा साहित्य, विद्या कला सभी के विकास एवं अभ्युदय में वेदों का सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

मानव जाति को अभ्युदय और निःश्रेयस-ऐहिक और पारलौकिक सुख प्राप्ति का सत्य और सरल मार्ग दिखाने के लिए सृष्टि आरम्भ में वेदों का प्रकाश हुआ था। ब्राह्मण और उपनषिद् दर्शन और स्मृति ग्रन्थ, पुराण तथा रामायण और महाभारत सबके सब वेदों के इस परम महत्त्व की ऊँचे स्वर से घोषणा करते हैं। वेद ज्ञान की संचित निधि है यह महत्त्वपूर्ण बात है कि सारे देशवासियों की वेद के प्रति इतनी श्रद्धा रही है कि इन्हें धर्मग्रन्थ माना जाने लगा और जीवन का प्रत्येक कार्य वेदमन्त्र बोलकर किया जाने लगा। वेदों की श्रद्धा ने इस देश को हजारों वर्षो से एक सूत्र में बांधे रखा है साथ ही वेदों की उत्तमोत्तम काव्य रत्न प्रमाणित है जैसे सूर्य-चन्द्रमा नक्षत्र आदि में ईश्वर का आलोक है वैसे ही संसार के समस्त साहित्य में श्रुति का कल्याण है। वेद जिज्ञासा निरन्तर अध्यवसाय से ज्ञान की कड़ियों को जोड़ते जानेकी, उसका क्रमिक उद्विकास करने की साथ ही मीमांसा और तर्क बुद्धि ज्ञान को महत्त्व देने की जो प्रवृत्ति है वह भारतीय ज्ञान निधि की है। वेद संसार की प्राचीनतम ज्ञानराशि है। वेद संतप्त और दुःखी मानवजाति को कल्याणमार्ग बताने वाला प्रकाश-स्तम्भ है। मानवमात्र को वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रीय कर्तव्यों का ज्ञान कराकर उसे सुख, शान्ति और आनन्द का सच्चा मार्ग बताना वेदों का पवित्र उद्देश्य है।

वेदों में साम्प्रदायिक सौहार्द

डॉ. अर्चना दुबे असि.प्रोफेसर, राष्ट्रीय सं.सं. भोपाल परिसर, भोपाल

एक विशेष विधा, मत अथवा पूजा पद्धति को मानने वाले समूह को 'संप्रदाय' कहते हैं। विभिन्न संप्रदाय अपनी-अपनी अलग विशेषताओं के कारण एक दूसरे से भिन्न होते हैं। जब तक विभिन्न सम्प्रदाय विरोधों के बावजमद मेलजोल से रहते हैं तबतक सांप्रदायिकता का जन्म नहीं होता। परन्तु जब विविध संप्रदाय अपने प्रति अंधभक्ति रखकर दूसरे सम्प्रदायों के प्रति घृणा, द्वेष और हिंसा से भर उठते हैं तो साम्प्रदायिकता वैमनस्य का उदय होता है यह समस्या विश्वव्याप्त समस्याहै। अमेरिका, इंगलैण्ड में रोमन कैथोलिकों और प्रोटेस्टेंटों के मध्य आपसी झगड़े चलते रहते हैं। ईराक में शिया सुन्नी के झगड़े हैं, श्रीलंका में सिंहलियों और तमिलों के झगड़े हैं। भारत में अनेक सम्प्रदाय हैं। इसलिए यहाँ साम्प्रदायिकता की समस्या अधिक संवेदनशील है और थी। इस साम्प्रदायिकता से उत्पन्न आतंकवाद, सबसे भयानक है। रूस इंगलैण्ड अमेरिका, अरब देश फिलिस्तीन, भारत, पाकिस्तान अफगानिस्तान कोई इसके जहरीले दंश से बचा नहीं है। भारत मूलतः शान्तिप्रिय देश हैं इस लिए यहाँ की धरती ने बुद्ध महावीर, गाँधी जैसे अहिंसक नेता पैदा किए हैं। आतंकवाद की प्रवृत्ति यहाँ की भूमि से मेल नहीं खाती है भारतीय परम्परा के परम पावन ग्रन्थ'वेद' इसका साक्षात् प्रमाण हैं। वेदों में कहा गया है-

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यदभद्रं तन्न आसुव।

अर्थात् हे प्रेरक देव! सब बुराइयों को दूर कीजिए। जो कल्याणकारक वस्तु हो वह हमारे लिए दिलाइए। यह ऋषि दयानन्द का प्रियतम मन्त्र है। अपने वेदभाष्य के प्रत्येक अध्याय के आरम्भ में ऋषि ने इसी मन्त्र से ईश्वर से सहायता के लिए प्रार्थना की है। प्रत्येक मतमतान्तर को मानने वाले व्यक्ति इस मन्त्र से बिना संकोच के प्रार्थना कर सकता है। इस प्रकार की प्रार्थना सब प्रकार की साम्प्रदायिकताओं से मुक्त है। पुरुषसूक्त में मानव सृष्टि का कर्म के आधार पर चतुर्धा विभाजन बताया है। समाज को शरीर मानते हुए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ओर शूद्रों को शरीर के अंगों के रूप में माना गया है, ये चारों वर्ण एक प्राणी के अवयवों की तरह से अन्तरंग व्यवस्था का निर्माण करते हैं। इनमें कोई अंग आवश्यक अथवा अनावश्यक नहीं माना गया है। सभी प्राण धारण की दृष्टि से समान महत्त्व के हैं। इतना तो निश्चित है कि पूर्ववैदिक काल में वर्ण भेद जन्म से नहीं था किन्तु उत्तरवैदिक युग में वर्णभेद जन्माश्रित हो गया। एक स्थान पर वेदमन्त्र कहता है कि**'वःमनांसि संजानताम्'** अर्थात् तुम्हारे मन साथ मिलकर विचार करें, झगड़ा विचारों के भेद से आरम्भ होता है। समाज निर्माण का सबसे उत्कृष्ट साधन परस्पर विचार करना है। वास्तव में तात्कालिक समय में वेदों मे निहित

यह शिक्षा ही सांप्रदायिक वैमनस्य को दूर करके भ्रातृत्व की स्थापना कर सकती है।

नागार्जुन और त्रिलोचन की कविता में वैदिक मूल्य

दीपशिखा शील(शोधच्छात्रा) कन्या गुरुकुल महाविद्यालय

वैदिक वाङ्मय में वर्णित मूल्य वह शाश्वत जीवन मूल्य है जो मानवीय सम्बन्धों में सद्गुणों का विकास कर उसे नैतिक सामाजिक एवं सांस्कृतिक दायित्त्वों का निर्वहन करने में सहयोग देते हैं। मुख्यत: ये मूल्य सतय, दया, प्रेम, दान, आनन्द, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, शान्ति, करुणा, क्षमा आदि हैं।

वेदों में दया धर्म अहिंसापरक जैसे भावों के विचार हैं जो सभी दिशाओं में फैलाना ही वेदों का उद्देश्य है 'आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु' (ऋ. 1/89/1)

क्योंकि ये गुण ही मनुष्य में मानवीय गुणों को प्रस्फुटित करते हैं। वैदिक मूल्यों में प्रेम भी एक ऐसा तत्त्व है जो व्यष्टि व समष्टि एक सूत्र में पिरोकर रखता है। प्रेम ही मनुष्य को जोड़कर प्रेम का प्रसार करता है।

'सहृदयं सामनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः। अन्योऽन्यमभिहर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या।। (यजु. 31/18)

वैदिककालीन समाज हो या नागार्जुन और त्रिलोचन की सुन्दर समाजकी कल्पना का आधार दोनों में एक ही है। वैदिक समाज एक ऐसे आदर्श समाज की परिकल्पना करता है जहाँ सभी समान हो सबके हृदय एक हों सभी की विचारधारा एक हो-

'समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः, समानमस्तु वो मनो यथा व सुसहासति।(ऋ. 10/191/4)

नागार्जुन भी कुछ ऐसी ही भावना रखते हैं-

'पुलकित तन हो मुकुलित मन हो,
सरस और सक्षम जीवन हो।
अन्न वस्त्रदा / सुखदा, शुभदा
प्राणों से भी बढ़कर प्यारी
हिमकिरीटिनी/ जलाधि पैंजनी।
बने स्वर्ग ये भूमि प्यारी।
अधर-अधर पर अभिताभ ताज हो।
सतत अभ्युदित जन-जन प्रमुदित
सर्व सुखद सुन्दर समाज हो। ' (सतरंगे पंखों वाली पृ. 46/47)

प्रतिवादी कवि नागार्जुन और त्रिलोचन हिन्दी साहित्य के सशक्त हस्ताक्षर हैं। प्रस्तुत शोधपत्र में उनके काव्य में अभिव्यक्त वैदिक मूल्यों को अन्वेषित करने का विनम्र प्रयास होगा।

युवा-असन्तोष; इसके नियन्त्रण के उपागम एवं एक उपनिषद् वाक्य

पवन कुमार रा.सं.सं.(मानित वि.वि.) लखनऊ परिसर, गोमती नगर, लखनऊ

प्रस्तुत आलेख 'युवा-असन्तोष' एवं इसको नियन्त्रित करने के लिए एक उपनिषद् वाक्य से निःसृत होने वाले उपायों की चर्चा पर केन्द्रित है। सर्वप्रथम 'युवा' के संप्रत्यय को मनोदैहिक एवं सामाजिक-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में परिभाषित करते हुए इसी क्रम में 'असन्तोष' तथा 'सामाजिक-असन्तोष' को स्पष्ट किया गया है। सामाजिक असन्तोष के एक प्रकार के रूप में युवा-असन्तोष की अवध ारणा को प्रतिमानों' के सन्दर्भ में परिभाषित करते हुए उसके लक्षण बताए गए हैं तथा 'युवा-असन्तोष'( )के कारण किस प्रकार युवा उत्तेजनापूर्ण आन्दोलन ( ) जैसी सामाजिक विरोध की स्थिति जन्म लेती है, इसे भी संक्षेप में स्पष्ट कियां गया है।

इसके पश्चात् 'युवा-असन्तोष' के कारण सम्भव हो सकने वाले दुष्प्रभावों को देखते हुए इसके नियन्त्रण की आवश्यकता बताई

गई है तथा तैत्तिरीयोपनिषद् के एक वाक्य को 'युवा-असन्तोष' के नियन्त्रण के उपाय के एक उपागम के रूप में प्रस्तावित किया गयाहै। इस उपनिषद् वाक्य का 'युवा-असन्तोष' एवं उत्तेजना के नियन्त्रक उपागम के रूप में क्या औचित्य है? इसका विश्लेषण एवं परीक्षण कतिपय स्थापित एवं मान्य मनोवैज्ञानिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों के सन्दर्भ में किया गया है। आलेख से स्पष्ट होता है कि उपनिषद् वाक्य एक बृहत्तर एवं व्यापक उपागम उपलब्ध कराता है जिसमें अन्य अनेक सिद्धान्त अनुस्यूत हो जाते हैं।

वैदिक आर्यों का जीवनदर्शन

डॉ. पद्मजा अमित रीडर- मु.ज.ना.खे. कन्या महाविद्यालय सहारनपुर

विश्व के प्राचीनतम साहित्य वेद का गुणगान सदा से एक स्वर से किया जाता रहा है। वेद भारतीय संस्कृति की शाश्वत निधि है तथा मानवजाति के लिए सार्वभौम तथा सार्वकालिक सन्देश के वाहक हैं।

वेद की शिक्षायें उदात्त हैं। आध्यात्मिक ज्ञान के स्रोत वेद जीवन के प्रत्येक अंग को सम्पूर्ण बनाते हैं। डॉ. मंगलदेव शास्त्री ने स्पष्ट कहा है 'संकीर्ण हित में आस्था रखने वाले सभ्यताभिमानी मानव को वैदिकधारा की विश्वव्यापिनी दृष्टि आश्चर्य में डाले बिना नहीं रह सकती।

वैदिक आर्यों ने जीवन की सर्वोच्च स्थिति तक पहुँचने के लिए कर्मशीलता का आश्रय लिया। जीवन के सर्वतोमुखी विकास के लिए जिस कर्मशीलता की परम आवश्यकता है तथा जो जीवन का प्रत्येक स्रोत है वह कर्मवाद आर्यों के जीवन में सदा विद्यमान देखा जा सकता है।

आर्यों ने जीवन को उस परमतत्त्व की प्राप्ति का साधन माना जो स्वयं में ही सर्वस्व है। आर्यों का कर्मसिद्धान्त उन्नतिमूलक था। उनकी सदा यह कामना रही कि व्यक्ति का प्रत्येक कर्म ज्ञान पर आधारित हो।

अपवित्रता की धारणा का शास्त्रीय दृष्टिकोण

डॉ. सुमनलता श्रीवास्तव विभागाध्यक्ष-समाजशास्त्र विभाग, डी.एस.एन. कॉलेज, उन्नाव

मिट्टी, अग्नि प्रकाश तथा जल आदि को शुद्धता का प्रतीक माना गया है। शुद्धि के अन्तर्गत(जन्म-मरण) के समय अशौच किसी पवित्र वस्तु के स्पर्श से तथा कुछ घटनाओं के कारण उत्पन्न अपवित्रता, पात्रों(बर्तनों) कूप, भोजन आदि की शुद्धि का विवेचन होता है। पद्‌मपुराण (2.66.73-74) का कथन है कि शरीर अशुद्ध है क्योंकि इससे मलमूत्र आदि निकलता है।

अस्पृश्य शब्द छुआछूत के सन्दर्भ में पहली बार विष्णु धर्म सूत्र(104, लगभग ई.से 300 ई.) में पहली बार प्रयोग हुआ। आपस्तम्ब का मत है कि चांडाल को छूना व देखना पाप है। किन्तु यह परिच्छेत उसके धर्म सूत्र की पहले की दो पाण्डुलिपियों में नहीं मिलता, जिससे पता चलता है कि अस्पृश्यता प्रायः मौर्यकाल के अन्त में आई। इसी प्रकार का एक उपबन्ध गौतम के परवर्ती ग्रन्थ में मिलता है कि यदि किसी चाण्डाल के स्पर्श से शरीर अपवित्र हो जाए तो सभी वस्त्रों के साथ स्नान करके उसे पवित्र किया जा सकता है। धर्मसूत्रों में भी बहुत सारे शब्द जैसे अस्पृश्य, अन्त्य, अन्त्यज, अन्त्यवासिन बाह्य इत्यादि का प्रयोग है। इन शब्दों का प्रयोग वाद की स्मृतियों में भी हुआ है। विभिन्न सूत्रों एवं स्मृतियों द्वारा हमें ऐसे शब्दों के बारे में महत्त्वपूर्ण जानकारी मिलती है।

भारतीय शास्त्रीय परम्परा में दलितों की अपवित्रता की स्थिति के विषय में अस्पष्ट वर्णन मिलता है। घुरिए का मत है कि ऋग्वेद में मौलिक रूप से तीन वर्णों का ही उल्लेख है, केवल पुरुषसूक्त में ही चार वर्ण उल्लिखित हैं। श्रीनिवास भी ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में चार वर्णो के अतिरिक्त पाँचवें वर्ण के अस्तित्व से इन्कार करते हैं। ड्यूमा ने पवित्रता और अपवित्रता (शुचिता और प्रदूषण) की धारणा के आधार पर परम्परागत भारतीय समाजिक व्यवस्था में चार वर्गों के अस्तित्तव को स्वीकार करते हैं। उसके मतानुसार वेदों में विशेषाधिकार प्राप्त ब्राह्मण (पुरोहित), क्षत्रिय(योद्धा), वैश्य(व्यापारी) और शूद्रों(नौकर अथवा वंचितवर्ग) के अतिरिक्त किसी अन्य पाँचवें वर्ग का उल्लेख नहीं है। वास्तव में अछूत इस वर्गीकरण से बाहर हैं।

अतः स्पष्ट है कि जिस प्रकार प्राचीन काल में मानव में दुर्गन्ध से दूरी तथा सुगन्ध से लगाव के कारण अस्वच्छता से अशुद्धता

तथा अशुद्धता से अपवित्रता का समुदायगत छुआछूत या अस्पृश्यता की हीन भावना में बदलाव की अस्पृश्यता का रूप बदलकर अब व्यवहार में असमानता रूपी मानसिक अस्पृश्यता का हो गया है, जो सभी जातियों एवं वर्गों में व्याप्त होकर अपनी जड़ें जमाता जा रहा है, जिसने अपनी जाति व उपजाति के प्रति कठोर जुड़ाव(झुकाव) व अन्य के प्रति कठोर दुराव आप प्रचलन में है जो स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। निष्पक्षता का संकट अज्ञात भय (मानसिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक व राजनीतिक आदि) से दूर होने से ही समाप्त होगा। मेरी राय में किसी व्यक्ति द्वारा सम्पादित किये गये कार्यों के मूलयांकन के बदले वेतन या सुविधायें दी जानी चाहिए तथा निजी सम्पत्ति का सामान्य विचार समाप्त होना उचित होगा एवं 'सरनेम' न हो तो समाज में व्याप्त कुरीतियां समाप्त हो सकती हैं।

यजुर्वेद में प्रतिपादित मानव-मूल्य

डॉ. सविता भट्ट डी.ए.वी.(पी.जी.) कॉलेज, देहरादून

जिन स्तम्भों पर मानव ने सभ्य एवं सुसंस्कृत जीवन का प्रासाद खड़ा किया, उसका नाम ही मानवमूल्य है। आइए- उन मानव मूल्यों की बात करें जो मानव को मानव बनाते हैं- वे गुण हैं- "अहिंसा, सत्य,अस्तेय, ज्ञान, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शील,अतिथि सेवा, श्रद्धा, क्षमा, मधुर वचन, शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान, काम्य एवं निषिद्ध कर्मों का त्याग परिश्रम, परोपकार, सत्संगति, अनुशासन, संतोष" आदि।

मानव मूल्यों के संदर्भ में धर्म का विवेचन आवश्यक है। यजुर्वेद की बात करें तो उसमें मानवमात्र के लिए कल्याणकारी नियमों व शिक्षाओं का संग्रह है। यजुर्वेद के अनेक मन्त्र सत्य को धारण करने और सत्याचरण की शिक्षा से परिपूर्ण हैं। यथा-

इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि (यजु. 1.15.11)

वाचः सत्यमशीय (यजु. 4.39)

अर्थात् मैं वाणी के सत्य को प्राप्त करुं। अहिंसा के सन्दर्भ में एक स्थल पर कहा गया-

मा मा हिंसिष्ट (यजु. 5.34)

अर्थात् हे विद्वानों आप मेरी विद्या बुद्धि आदि को नष्ट मत करो।

प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है कि वह अपने शरीर और मन मस्तिष्क को पवित्र रखे। यजुर्वेद में- 'मा गृधः कस्य स्विद्धनम्' कहकर अपरिग्रह का सन्देश दिया गया है। इसके अतिरिक्त ब्रह्मचर्य(यजु.6.14), सन्तोष(यजु. 40.1), स्वाध्याय(यजु 26.2), ईश्वरीय शक्ति में विश्वास(यजु 22.9), विश्व कल्याण की भावना(यजु. 16.48), विश्वप्रेम(यजु. 40.6), कर्मशीलता(यजु. 40.2), सत्संग(यजु. 12.9), धैर्य (यजु. 1.23), क्षमा, तप, शुभसंकल्प, वाणी में मधुरता, आत्म निरीक्षण, सदाचार, सन्मार्ग गमन आदि अनेक मानव गुणों का संकेत किया गयाहै जो कि आज के समाज के लिए ग्रहण किए जाने योग्य हैं।

इस प्रकार यजुर्वेद मानव धर्म के रूप में ऐसे कर्तव्यों एवं नियमों का ज्ञान कराता है जिससे समस्त प्राणियों का कल्याण होता है। इसके अध्ययन से मनुष्य ने मनुष्य बनना सीखा है तथा श्रेष्ठतम कर्तव्यों का निर्वाह करते हुए देव पद एवं परमपद की प्राप्ति की है। इसी विषय को मैंने अपने शोध-पत्र में वर्णित करने का प्रयास किया है।

ऋग्वेद में लोक कल्याण की भावना

डॉ. उमाकान्त यादव इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

विश्ववाङ्मय में प्राचीनता एवं उत्कृष्टता की दृष्टि से ऋग्वेद का सर्वोच्च स्थान है। ऋग्वेद में मानवीय नैतिक मूल्यों के विविध पक्षों की पर्याप्त मीमांसा प्राप्त होती है। लोककल्याण की भावना इन्हीं नैतिक मान्यताओं में एक विशिष्ट है। प्राणिमात्र के प्रति कल्याण की भावना मानव जीवन का आदर्श है। ऋग्वैदिक ऋचाओं पर दृष्टिपात करने से ऐसा प्रतीत होता है कि ऋषियों ने प्राकृतिक शक्तियों एवं उनके उपादानों से लोककल्याण की नैतिक प्रेरणा ग्रहण की जिसकी अभिव्यक्ति हमें भिन्न-भिन्न रूपों में परिलक्षित होती है।

ऋग्वेद में प्राणिमात्र के प्रति अतिशय उदार भावनायें दृष्टिगत होती हैं। एक मन्त्र में समस्त द्विपाद एवं चतुष्पाद प्राणियों के कल्याण की कामना की गयी है- शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे (ऋ. 7.54.1)। एक अन्य मन्त्र में प्राणियों के कल्याण के साथ-साथ समस्त विश्व के स्वास्थ्य एवं आरोग्य की कामना की गयी है(ऋ. 1.114.1)। अग्नि को सम्बोधित एक मन्त्र में 'विश्वजनीन सुमति' की कामना की गयी है(ऋ. 3.57.6)। इसी तरह विष्णु से भी 'विश्वजनीनसुमति' प्रदान करने की प्रार्थना है(ऋ. 7.100.2)। एक मन्त्र में समस्त विश्व को आर्य बनाने की संकल्पना है(ऋ 9.63.5) तो ऋग्वेद के दशम मण्डल में मन, वचन एवं कर्म से एकता की भावना व्यक्त की गयी है साथ ही समष्टिगत दृष्टि से सुख-शान्ति एवं माधुर्य हेतु समान संकल्प, समान हृदय एवं समान की भी कामना की गयी है। ऋचाओं में परस्पर कल्याण एवं रक्षा के लिए तत्पर रहने का भी निर्देश है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, तैत्तिरीय संहिता एवं निरुक्त में वर्णित एक मन्त्र में कहा गया है कि प्रत्येक पुरुष दूसरे पुरुष की सब ओर से रक्षा करे- 'पुमान् पुमांसं परिपातु विश्वतः।'

इस तरह ऋग्वेद की ऋचाओं में वर्णित ऋषियों की प्राणिमात्र के प्रति अतिशय उदार भावना विश्वजनित सुमति की परिकल्पना, एकता, समानता, सहृदयता तथा संगठन का उच्च आदर्श, समस्त विश्व को आर्य बनाने की संकल्पना तथा परस्पर कल्याण की भावना आदि संदर्भ लोक कल्याण की भावना को प्रतिपादित करते हैं।

वेदों में सदाचार

डॉ. रेखा जौहरी डी.बी.एस. कॉलेज, कानपुर

वेद केवल भारतवासियों के लिए ही नहीं अपितु विश्व के समस्त विद्वत् जगत् के लिए अपार ज्ञान का स्रोत हैं। वेद ज्ञान के भण्डार, धर्म के मूल स्रोत और भारतीय संस्कृति के मूल आधार हैं। वेद वाक्य, राष्ट्रिय भावना, समाज सुधार एवं सामाजिक कल्याण की भावना से ओत-प्रोत हैं। वे मानव मात्र को सदाचरण की ओर प्रेरित करते हैं। वैदिक संस्कृति सदाचार को जितना महत्त्व प्रदान करती है, उतना अन्य उपादानों को नहीं। सदाचारी व्यक्ति ही सत्य पथ का अनुसरण कर सकता है। सदाचार ही मनुष्य को ऊपर उठाता है। वेद सदाचार के लिए ही मन को कल्याणकारी संकल्प करने वाले बनने की आज्ञा देते हैं। परस्पर सौहार्द्र की भावना हो, यही सदाचार का मूल है। विषम भाव अशान्ति एवं दुःख का प्रयोजक है तथा समभाव शान्ति एवं आनन्द को प्रदान करने वाला है। अतः विषमभाव के समान त्याग करके अमृत के समान समभाव को धारण करने का वेद में उपदेश दिया गया है- वेदाध्ययन का सार है- सत्यभाषण, सत्यभाषण का सार है- इन्द्रियसंयम और इन्द्रियसंयम का सार है मोक्ष। यही सम्पूर्ण वेदों का सदुपदेश एवं सदाचरण का उपदेश है। सदाचरण में सत्यवचन का महत्त्व तो है ही, परोपकार का भी महत्त्व है। हमारे मन में स्थित समस्त पाप भावनाओं का विनाश हो, ऐसी प्रार्थना भी वेदों में की गयी है। इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि वैदिक संस्कृति में सदाचरण का बड़ा महत्त्व है।

वेदों में भक्ष्याभक्ष्य पदार्थ : एक विवेचन

डॉ. दिनेशचन्द्र शास्त्री वेद विभाग गु.कां.वि.वि. हरिद्वार

वेदों की भाषा रहस्यात्मक, प्रतीकात्मक और दुरूह है। इस कारण विदेशी विद्वानों, इतिहासकारों और एतद्देशीय मध्यकालीन भाष्यकारों द्वारा बहुत से वेदस्थलों की समुचित व्याख्या न होने के कारण वेदों में मांसभक्षण करने, इन्द्र द्वारा बैल का मांस खाना, विवाहसंस्कार में गोवध कर अतिथियों को उसका मांस परोसना, शवदाह में गोवध कर उसकी चर्बी से शब को आच्छादित करना, गाय की चर्बी से पितृयज्ञ का अनुष्ठान करना आदि अलीक और वेदविरुद्ध मान्यताऐं प्रचलित हो गयीं। जो भी मन्त्र मांसभक्षण के पोषण में दिये जाते हैं उनकी परीक्षा करने से मांसभक्षण की पुष्टि नहीं होती। वेदों में ऐसा एक भी मन्त्र नहीं है, जिसमें यह कहा गया हो कि मैं गोमांस की हवि देने के लिए या गोमांस खाने के लिए गौएं पालता हूँ। लगभग 12 प्रकार के अन्नों की वृद्धि की कामना यजुर्वेद में यज्ञ द्वारा की गयी है उनमें कहीं भी अभक्ष्य मांस की वृद्धि की कामना नहीं है। वेदों की अन्तः साक्षी और अन्य अनेक वैदिक उदाहरणों से इस शोधनिबन्ध में जहाँ यह सिद्ध किया जायेगा कि वैदिक इन्द्र बैल का मांस नहीं खाता अपितु उसका भोज्य तो धना(भुने

जौं), करम्भ(दधिमिश्रितसत्तु) और पुरोडाश (अपूप) है। इसके साथ ही इन्द्र के पेय सोमरस की भी विवेचना की जायेगी जिसके वेदप्रमाण से यह बताने का प्रयास किया जायेगा कि सोम 'Exhilaration' पदार्थ है और सुरा 'Intoxication'। सोमपान से मद की वृद्धि होती है और सुरापान से दुर्मद बढ़ता है- 'दुर्मदासो न सुरायाम्।' ऋ 8.2.12

सोमस्य ता मद इन्द्रश्कार,
यस्ते मदो युज्यश्चारुरस्ति।। ऋ 7.22.2

वैदिक साहित्य में जीवन मूल्य

डॉ. प्रीति राठौर डी.बी.एस. कॉलेज, कानपुर

विश्व के प्राचीन साहित्यों में वैदिक साहितय का विशिष्ट स्थान है। उसमें निहित जीवन मूल्यों का सम्बन्ध किसी युगविशेष, देशविशेष या व्यक्तिविशेष से न होकर मानव की अन्तश्चेतना से है। पारस्परिक एकता, सहयोग, सद्भाव, एवं संगठन आदि के अनेक शिक्षाप्रद उदाहरण वेदमन्त्रों में सुरक्षित हैं। वैदिक साहित्य में निहित जीवन मूल्य आज भी शाश्वत है, जिनके कारण हमारी भारतीय संस्कृति उन्नति की ओर अग्रसर है।

मूल्यों से हमारा तात्पर्य 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया' या 'सत्यं शिवं सुन्दरं' की अवधारणा से है। इसके लिये आवश्यक है कि मनुष्य की नैतिक भावनाओं का सम्यक् विकास किया जाय। मानव प्रेम, दया, सौहार्द्र की भावना होने पर ही वह समाज के विकास में सहायक हो सकता है एवं अपनी संस्कृति को श्रेष्ठ एवं उन्नत बनाकर उसे संरक्षण प्रदान कर सकता है। यह तभी सम्भव हो सकता है जब हम वैदिक वाङ्मय में निहित जीवनमूल्यों पर दृष्टिपात करें।

वैदिक साहित्य में 'मातृदेवो भव', 'पितृदेवो भव', 'आचार्यदेवो भव', 'सत्यं वद्', धर्म चर', 'वसुधैव कुटुम्बकम्' आदि जीवन मूल्यों के सार्वभौम स्वरूप का सम्यक् विश्लेषण किया गया है। सम्पूर्ण मानव जाति को एक ही पिता की सन्तान मानकर एकता एवं अखण्डता के सूत्र में बँधने की बात कही गयी है(ऋ. 1.1.9)। इस प्रकार की भावना से पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष स्वतः समाप्त हो सकते हे। इसी प्रकार ऋग्वेद में अन्यत्र कहा गया है- हम सब परस्पर मिल कर रहें, एक साथ स्त्रोत पाठ करें, हम सबका मन एक समान हो, हम सब उसी प्रकार एक साथ अपना प्राप्य ग्रहण करें, जैसे देवतागण एक साथ मिलकर अविरोध भाव से अपना हविर्भाग ग्रहण करते हैं (ऋ. 10.191.2)। यजुर्वेद में कहा गया है कि वह व्यवहार जो दूसरों के द्वारा अपने साथ होने पर मनुष्य को उचित न लगे, उसको वैसा व्यवहार दूसरों के साथ कदापि नहीं करना चाहिये। मनुष्य जैसे अपने लिये सुख की इच्छा करता है, वैसे ही दूसरों के लिये भी सुख की इच्छा करें, वही सत्कार के योग्य होता है (यजु. 12.110)

अस्तु, मानव कल्याण के लिये जिन जीवन मूल्यों की आवश्यकता है, वे मानवतावादी जीवन मूल्य वैदिक वाङ्मय में सहज ही सुलभ हैं। यदि आज हम इन वैदिक मूल्यों एवं सिद्धान्तों को अपने जीवन में स्थापित करें, तो पुनः विश्व में प्रेम, दया, करुणा, परोपकार, सौहार्द की भावना आदि का विकास करके समाज को दृढ़ बनाया जा सकता है।

वैदिक साहित्य में जीवन मूल्य

डॉ. रमन रानी एम.एम.एच. कॉलेज गाजियाबाद

समस्त भारतीय संस्कृति का मूलाधार वैदिक संस्कृति भी ज्ञान और कर्म का समन्वयात्मक रूप है। इसमें प्रत्येक पक्ष के विषय में सार्वभौम प्रकाश प्राप्त कर मानवमात्र के कल्याण हेतु वितरित किया गया है। वैदिक धार्मिक दर्शन वस्तुतः एक ऐसा बिन्दु है, जहाँ मानव पृथक् पृथक् देवताओं के विषय में न सोचकर एक दिव्य सत्ता को स्वीकार करता है उसी के आधार पर सारे विश्व की स्थिति है और वह स्थिति शाश्वत नियमों पर आधारित है। उसके नियम अटल हैं, जिन्हें वैदिक भाषा में "ऋत" कहा गया है। सृष्टि के आरम्भ में ही ऋत की उत्पत्ति हो गई थी, उसी के साथ साथ सत्य भी उत्पन्न हुआ, 'ऋतं च सत्य चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत। (ऋ 10.190.1) सत्य मनुष्य के धर्मों में प्रमुख है। दुष्कृत ऋत मार्ग को पार नहीं कर सकता(ऋ. 9.73.6)।

कल्याणबुद्धि मनुष्यता की सर्वोच्च सम्पत्ति है। (वा.सं. 34.1) अहिंसा व्यक्ति को दीर्घ जीवन प्राप्त करने की प्रेरणा देती है। वाणी का माधुर्य प्रार्थनीय है(ऋ. 2.21.6)। कल्याणपरक सुबुद्धि हेतु प्रार्थनाएं उपलब्ध हैं(ऋ. 1.89.2)। सद्‌गुणों में द्वेष-राहित्य सर्वकाम्य है (ऋ. 2.8.6)। 'विश्वा द्वेषांसि प्रमुमुग्ध्यस्मत्'(ऋ. 1.168.7) और यज्ञ (ऋ. 10.90.16) की प्रवृत्ति को विशेष महत्त्व मिला। देवपूजा, संगतिकरण और दान तीनों अर्थों में यज्ञ उपर्युक्त लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायक है। मनुष्यों को परस्पर संगति के निमित्त और सौमनस्य के लिए प्रेरित किया गया है। अकेला खाने वाला केवल पाप का भागी होता है(ऋ. 10.117.6) संगठन सूक्त (ऋ. 10.191.2-4) में साथ चलने, एक साथ बोलने, एक समान मन में चिन्तन मन्त्रणा का परामर्श दिया गया है। (अथर्ववेद.20.1) में गाय और बछड़े के निस्स्वार्थ प्रेम को उदाहरण रूप में प्रस्तुत किया गया है। 'चरैवेति' का उद्‌घोष वेद का प्रसिद्ध आदर्श वाक्य है। ज्ञात, क्षत्र(शारीरिक बल), आयु और दृढ़ता की प्रार्थना की गई है (वा.सं. 5.27.)। निष्पाप होकर परमेश्वर के समीप जाने का उल्लेख है(अथर्व. 6.115.1, ऋ. 7.86.4) रुद्र देव से प्रार्थना की गई है कि 'हम आपको (कर्म, नियम, विहीन) नमस्कार से क्रुद्ध न करें(ऋ. 2.33.4)। वेद में पूर्ण स्वस्थ दीर्घ जीवन की कामना अभिप्रेत है(वा.सं. 36.24.)। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतंशृणुयाम शरदः शतम् भूयश्च शरदः शतात्। ऋ. 7.66.16

वैदिक शिक्षा और नैतिक मूल्य

शारदा दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

वैदिक शिक्षा में मानव के क्या-क्या मौलिक कर्तव्य तथा अधिकार हैं, इन सबका वैदिक ऋषियों ने अच्छी तरह निरूपण किया है। माता-पिता-गुरु, समस्त परिवार के साथ किस प्रकार का व्यवहार(आचरण) करना चाहिए? वैदिक शिक्षा इसकी उपदेशक है। शिक्षा के सन्दर्भ में माता-पिता के अनन्तर गुरु का महत्त्वपूर्ण स्थान है क्योंकि बाल्यावस्था में ही विद्यार्थी बालक-बालिका गुरु के समीप अध्ययन के निमित्त रहकर अधिक समय व्यतीत करते हैं। अतः गुरु-शिष्य में कोई भेद-भाव न अभिव्यक्त करते हुए शुक्ल यजुर्वेदीय बृहदारण्यक उपनिषद् में कहा गया है-

सहनाववतु सह नौ भुनक्तु सहवीर्य करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै।। कठोपनिषद् 2.1.11

अर्थात् गुरु और शिक्षक दोनों एक साथ अध्ययन-अध्यापन, पूजा-प्रार्थना तथा समस्त कार्यों को करते हुए एक साथ तेजस्विता को प्राप्त करें। इस वैदिक मन्त्र में जो शिक्षा बतलायी गयी है उसको आत्मसात् कर इस संसार का कोई ऐसा विद्यार्थी नहीं रह जायेगा जो अपने गुरु के प्रति निरादर भाव रखे। इसी प्रकार शिक्षा(विद्या)के दार्शनिक व्यावहारिक दोनों पक्षों के महत्त्व को बतलाते हुए कहा गया है-

विद्याञ्चाविद्याञ्च यस्तद्वेदोभयं सह।
अविधयामृत्युं तीर्त्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते।। यजुर्वेद-40.15

इसी प्रकार कृष्णयजुर्वेदीय तैत्तिरीयोपनिषद् में शिक्षा में नैतिक मूल्य का महत्त्वपूर्ण उपदेश देखने को मिलता है जिसमें कहा गया है- सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्माप्रमदः। सत्यान्नप्रमदितव्यम्।......मातृदेवोभव। पितृदेवो भव। आचार्य देवो भव। अतिथि देवो भव। श्रद्धया देयम्।। तैत्तिरीयोपनिषद्- 1.11.1-3

इसी प्रकार के अन्यान्य उदाहरणों का भण्डार वेदों में भरा हुआ है। जो अन्य शास्त्रों में देखने को नहीं मिलता। भारतीय सभ्यता और संस्कृति के आधारबिन्दु इन समस्त शिक्षाओं का उपदेश हमें वैदिक वाङ्मय में ही प्राप्त होता है। इसी का क्रमशः व्याख्यान परम्परा द्वारा होता हुआ हमारी लौकिक संस्कृत में भी देखने को मिलता है। भारत के अन्य शास्त्रों के अध्ययन द्वारा व्यक्ति उस विषय-विशेष की शिक्षा भले ही प्राप्त कर ले परन्तु मानवीय मूल्यों एवं उनके नैतिक आचार-विचार की शिक्षा प्रदान करने वाली संस्कृत भाषा के अतिरिक्त अन्य भाषा नहीं है। इस भाषा में ही विरचित इस शिक्षा का महत्त्वपूर्ण उपदेश देने वाले संस्कृत साहित्य के चारों वेद हैं। प्रस्तुत विषय का विस्तारशः विवेचन पत्र पढ़ते समय किया जायेगा।

वेद संहिताओं में मानवीय जीवन मूल्य

आर.पी. आर्य्यः शोधच्छात्रः, सर एम.यू.डिग्री कालेज, सहावर काशीराम नगर

आज यह तथ्य किसी भी वेदविद् से अस्पृष्ट नहीं है कि मानव जीवन को अभ्युदय और निःश्रेयस् से सम्पृक्त कर देने वाली भगवतीश्रुति सारे विश्वसाहित्य में सर्वाधिक प्राक्तन और अनुपम शेवधि है। प्राच्य भारतीय मनीषा और सम्पूर्ण आर्षपरम्परा इसे परम पावन ईश्वरीय ज्ञान के रुप में सर्गारम्भ से ही अपौरुषेय कहकर असकृत् सत्कृत् करती रही है। इसी कारण इसे यथार्थ विद्यानिधि और परम प्रमाण माना जाता है। सर्गारम्भ में तपःभूत नितान्त निर्मलस्वान्तः अग्नि आदि चार ऋषियों के माध्यम से प्रकट होने वाला यह वेदज्ञान जहाँ प्राणिमात्र का हित सम्पादन करता है वहीं वह मनुष्यों के अन्तःकरण का परिपवन भी करता है। ऋषियों ने इसे निजशक्ति अभिव्यक्ति में स्वतः प्रमाण माना है। जबकि इतर ग्रंथराशि को परतः प्रमाण माना जाता है। इस प्राचीन ज्ञाननिधि में सत्य, प्रेम, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अर्थ, उद्योगित्व, सौमनस्य, समता, समष्टि, सहयोग, जनकल्याण और सहिष्णुता आदि सभी जीवन मूल्यों का वर्णन पाया जाता है। 'दृष्ट्वा रुपे व्याकरोत् सत्यानृते प्रजापतिः', 'शतहस्त समाहर सहस्रहस्त संकिर', 'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत् शतं समाः', 'उद्यानं ते पुरुष नावयानम्, पुमान् पुमान्सं परिपातु विश्वतः' जैसे वेदवचन हमारे उपर्युक्त तथ्य के उपोद्वलक हैं।

वैदिक साहित्य में जीवन-मूल्य, कर्म एवं कर्मयोग

डा० रामसेवक दुबे उपाचार्य, संस्कृत विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

अशेष वैदिकवाङ्मय में मानवीय जीवन मूल्यों का विवचेन ही हुआ है। कर्मकाण्ड, ज्ञानकाण्ड, भक्तिकाण्ड के प्रामुख्य को धारण किये हुए वेद पुरुषार्थ चतुष्टय को उपदिष्ट करता है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष तथा इन्हें प्राप्त करने के शास्त्रीय उपायों को मानव मात्र के जीवनमूल्य के रूप में स्विकार किया जाता है। जहाँ धर्म, अर्थ और काम मानव जीवन के सामान्य पुरुषार्थ हैं वही मोक्ष को परम् पुरुषार्थ के रूप में प्रतिष्ठित किया जाता है। भारतीय जीवनमूल्य के अन्तर्गत इन पुरुषार्थों की प्राप्ति के लिय विविध मार्ग उपदिष्ट किये गये हैं। जिसका इस पत्र में वर्णन किया जाता है।

वैदिक कालीन नैतिक मान्यताएँ

डॉ० मञ्जुला सहदेव पूर्वाचार्या एवं अध्यक्षा महर्षि वाल्मीकि पीठ पञ्जाबी विश्वविद्यालय, पटियाला, पंजाब

मानव जीवन के सम्यक् विकास, समाज के सुचारु निर्वाह और राष्ट्र की प्रगगति हेतु नियमता तथा नैतिकता (कर्त्तव्य - अकर्तव्य विवेकशीलता) दोनों ही अनिवार्य हैं। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का कहीं हनन न हो और वह स्वतन्त्रता अन्य के लिए घातक न हो, यह दृष्टिकोण अपेक्षित रहता है। विवेकपूर्ण यह नियमबद्धता ही नीति, आचार तथा धर्म शब्दों से अभिहित की गई है। साहित्य में ये तीनों शब्द पर्याय के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। नीति, आचार अथवा धर्म का निर्धारण परिवार और समाज के प्रज्ञावान , समदर्शी तत्त्ववेत्ताओं द्वारा, कहीं चारित्र्य से, कहीं सिद्धान्त, कहीं उपदेश के रूप में होता है। वस्तुतः परिवार और समाज व्यक्तित्व विकास के आधारभूत स्तम्भ हैं और व्यक्ति का शीलसौजन्य ही इन दोनों की मान्यताओं को प्रतिबिम्बित एवं दृढ़ करता है। यहीं कारण है कि वैदिक ऋषियों ने मानव जीवन का वैज्ञानिक पद्धति पर निरीक्षण करके उसके लिए उन नैतिक मूल्यों का निर्धारण किया जो उसे उचित दिशा प्रदान कर सके। उन्होंने व्यक्तित्व निर्माण में शारीरिक और मानसिक शुद्धता को प्राथमिकता दी है। एक स्थल पर यजुर्वेद का ऋषि कहता है:-

वाचं ते शुन्धामि प्राणं ते शुन्धामि चक्षुस्ते शुन्धामि श्रोत्रं ते शुन्धामि।
नाभिं ते शुन्धामि मेढ्रं ते शुन्धामि पायुं ते शुन्धामि चरित्रांस्ते शुन्धामि॥ ६.१४॥

अर्थात्, मैं तुम्हारी वाणी, तुम्हारे प्राण, तुम्हारे चक्षु, तुम्हारे श्रोत्र, तुम्हारी नाभि, तुम्हारे मेढ़ (जननेन्द्रिय, लिङ्ग), तुम्हारे पायु (गुदा) को शुद्ध करता हूँ। तेरे चरित्र का शोधन करता हूँ। N.D. प्रस्तुत शोधपत्र में इस विषय का पल्लवन किया गया है।

वैदिक वाङमय में 'जीवन-मूल्यों' की वैश्विक परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता

श्री जी.सी.उपाध्याय बरन (राजस्थान)

डॉ. अञ्जना पालिवाल रा.मीरा कन्या पी.जी. कॉलेज, उदयपुर राजस्थान

वैदिक कालीन समाज अनुशासन, समानता, मर्यादा, सामाजिक आदर्श मानदण्डों पर आधारित था। वैदिक मानव 'जीवन-मूल्यों' के प्रति सदैव सजग व जागरूक रहा है। उसका जीवन विवेकसम्मत बुद्धि द्वारा सुस्थापित एक अनुशासनपूर्ण संयमित सत्य संकल्प था, प्रगति का वेग था और कल्याण मूलक मनन का चिरस्पन्दन था। वह ईश्वर से 'असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय' में अनुश्रुत श्रेष्ठ जीवन मूल्यों की प्रार्थना करता है।'सत्यं वद', धर्म चर', स्वाध्यायान्मा प्रमदः', मातृदेवो भव, पितृदेवो भव के साथ साथ अतिथि सत्कार परायणता का श्रेष्ठ मूल्य कठोपनिषद् के यम-नचिकेता संवाद के आख्यान (कठोपनिषद् 1.1.7, 8, 9) में प्राप्त होता है। तो वहीं ऋग्वेद के अक्ष सूक्त में जुआ खेलकर हार जाने वाले जुआरी का परिवार व समाज 'द्वेष्टि श्वश्रूरप जाया रुणद्धि, न नाथितो विन्दते मर्डितारम्' (ऋ 10.34.3) वर्णनानुसार विरोधी हो जाता है। इसी प्रकार समानता, अनुशासन, नैतिक मर्यादाएँ, सदाचार, शील, वर्णाश्रम परम्परा, पवित्र यज्ञानुष्ठान, सामुदायिक विकास, असाम्प्रदायिकता एवं राष्ट्रियता के मूल्यों के अनेक उद्धरण वैदिक वाङ्मय को आज वैश्विक परिप्रेक्ष्य में नितान्त प्रासंगिक, समसामयिक व महत्त्वपूर्ण सिद्ध करते हैं। स्वस्थ समाज के संरचना करने वाली, आत्म कल्याण के साथ साथ मानवता की प्रतिष्ठा के लिए तथा भावी पीढ़ी की मार्गदर्शिका, आदर्श जीवन मूल्यों की पुनर्स्थापना के लिए प्रयुक्त जीवन सूत्रों का 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' रूप में पावन् उद्घोष ही वेदों का परम् जीवन मूल्य है। निःसन्देह वैदिक संस्कृति, साहित्य व समाज के आधारभूत सारस्वत मूल्य आज भी अपने चिन्तन, सुव्यस्थित सत्कर्म एवं पुरुषार्थ की पूर्णता के उपक्रम के रूप में एवं विश्व की शान्ति के लिए सार्वभौमिक, सार्वकालिक व अनुकरणीय आदर्शो की संजीवनी है।

वैदिकजीवनमूल्यम्

डॉ० शिवशंकर मिश्रः संस्कृतविभागाध्यक्षः राजकीय-स्नातकोत्तर-महाविद्यालयः, कोटद्वारम् (उत्तराखण्ड)

वेदानुसारिजीवनपद्धतेः व्यावहारिकं स्वरूपं किं स्यादिति जिज्ञासायां संक्षेपतः इत्येव निगदितुं शक्यते यद् वेदानुसारि शिक्षा-दीक्षा एवं समीक्षा सम्भवेत्। अथातो धर्म जिज्ञासा, वेदोऽखिलो धर्ममूलम्, यज्ञो वै धर्म इत्यादि प्रमाणैः सर्ववेदानां धर्मवाचकत्वं, धर्मः सर्ववेदवेद्यः, वाच्यः इति सिध्यति। वेदस्तु अपौरुषेयः अथवा अनादिनिधनेश्वरस्य श्वासभूतो वा, स च वेदः अनन्तः अप्रमेयश्च। अनन्ताप्रमेय वेदानुसारं गन्तुं, व्यवहर्तुं, कर्तुं वा कः शक्नुयात्, पुरुषस्य सीमितशक्तिमत्वात्, अत्यल्पकालिकत्वाच्च। किन्तु यथा अनन्ततरलतरंगप्रवाहमीय विमलजलधारा गंगा भवति, तत्र यावच्छक्तिः तावद्भक्तिरित्यधिकृत्य यथा मज्जितुं, असितुं, पातुं च पुरुषः प्रवृत्तो भवति, तद्वत् वेदानुसारिव्यावहारिकजीवनविषयेऽपि पुरुषस्य प्रवृत्तिः भवितुं शक्नोति। अतः सर्वधर्मबोधकवेदानुसारं जीवनं अंगीकृत्य शक्त्यनुसारं धर्ममाचरेत् इत्येव वेदानुसारि जीवनपद्धतेः तात्पर्यम्।

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
ईशावास्यमिदं सर्व यत्किंचित् जगत्यां जगत्।

तेन त्यक्तेन भुंजीथाः मा गृधः कस्य स्विद्धनम् इति वेदोक्त पद्धत्यनुसारमनाशक्तसंयमितजीवनं भवति चेत् सर्वानन्दमयी वार्ता, मातृ देवो भव, पितृ देवो भव, आचार्य देवो भव, अतिथि देवो भव, यानि-यानि अनवद्यानि कर्माणि तानि तानि सेवितव्यानि नेतराणि, ये च अलूख्या धर्मकाया विद्वांसः स्युस्ते तत्र यथा वर्तन्ते तथा त्वं वर्तेथ इत्यादि वेदान्तप्रधानशिक्षोपनिषिदि निर्देशानुसारं मानवेन। जीवनव्यवहारपद्धतिरादरणीया, तदैव धार्मिकसुखशीतलतरुच्छाया प्रशरिष्यति भूतले। वैदिकजीवनमूल्यविषये उपनिषदि पतिपादितमिदं तथ्यं सततं मनसा मननीयं-

किं कारणं ब्रह्म कुतस्म जाताः,
जीवाम केन क्व च सम्प्रतिष्ठा।
अधिष्ठिता केन सुखान्तरेषु,

वर्तामहे ब्रह्मविदो व्यवस्थाम्।। (श्वेताश्वतर उपनिषद्)

जीवितं तस्य शोभते, योऽन्तश्शीतलया बुद्धया रागद्वेषविमुक्तया, साक्षिवत्पश्यतीदं हि

सन्यासोपनिषद 02/39-40

वेदानुसारं स्वशक्तिमनुसृत्य यदि व्यवहारजीवनपद्धतिः प्रसरति चेत-पश्येम शरदः शतम्, जीवेम शरदः सतम्, श्रृणुयां, शरदः सतम्, प्रब्रवाम् शरदः सतमदीनां स्याम शरदः सतम् भूयश्च शरदः सतादित्युपनिषद्भाषितभावावली स्वजीवने अवतरिष्यतीति संक्षेपः।

मनोवैज्ञानिक एवं वैदिक (सामवेद) दृष्टिकोण से उत्तम चरित्र (व्यवहार) एवं चारित्रिक विकृति का तुलनात्मक अध्ययन

आरसी प्रसाद झा, कुमार विमलेंदु शेखर, रानी कुमारी, उदय शंकर, पटना (बिहार)

वर्तमान शोध अध्ययन में व्यक्ति की उत्तम चरित्र (व्यवहार) की कसौटी (पहचान) व चारित्रिक समस्या की उत्पत्ति, सम्प्रत्यय एवं समाधान के संदर्भ में वैदिक (सामवेद) एवं मनोवैज्ञानिक रुप से तुलनात्मक अध्ययन करना है। क्योंकि ऐसी समस्यायें लम्बे समय तक बनी रहे तो व्यक्ति भावी समय में इसके दुष्परिणाम के रूप में अपराधी, मद्यव्यसनी, चोर, डकैत आदि हो सकते हैं जो कि स्वयं ही नहीं समाज के लिए भी नुकसानदेह हो सकते हैं। सामवेद एवं मनोविज्ञान को सूक्ष्म स्तर पर अध्ययन किया जाए तो दयाशीलता, उदारता, परोपकार, क्षमा, प्राणी कल्याण, पारस्परिक सहयोग, एकता आदि मानव के उत्तम व्यवहार, विकास एवं उत्थान की कुंज़ी मानी गई है।

वेदों में मानव जीवन

प्रविन्द्र कुमार शोधार्थी-हिन्दी विभाग गु.कां.वि.वि. हरिद्वार

वेद में समस्त संसार की निर्माण कला का जीवन साधना का रहस्य संन्निहित है। वेद के अनुसार मानव जीवन एक साधना है। जो मानव देह प्राप्त हुई है, वह दुर्लभ एवं अमूल्य है और जीवन को दिव्यता की ओर ले जाने का साधन है। किन्तु जीवन को कैसे जिया जाये? यह वेद में निर्दिष्ट है। यजुर्वेद 35/10 के अनुसार मानव को देव बनाना ही वेद का उपदेश है। अशुभ संकल्पों एवं आचरणों को छोड़कर शुभ संकल्पों और आचरणों का सहारा लेना ही महामानव बनने का राजमार्ग है।

वैदिक जीवन के मूल में **भद्र अर्थात् कल्याण** साधना है-

भ्रदं कर्णेभिः श्रृणुयाम देवा भ्रदं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। यजु० 25/21

अर्थात् भद्र ही कानों से सुनें, भद्र ही आँखों से देखें और यजनशील भद्र बनकर अपनी आयु व्यतीत करें। भद्र मार्ग पर चलते हुए पूर्ण आयु को प्राप्त करें- **भद्रं जीवन्तों जरणामशीमहि। ऋ०10/37/6।**

वेद एवं आचार्य शंकर की दृष्टि से जीवन मूल्य की उपयोगिता

डॉ० दुर्गा प्रसाद पाण्डेय, देवरिया

वेद भारतीय ज्ञान विज्ञान आध्यात्म विद्या का आदिग्रंथ है। वेद का अर्थ जानना है और जीवन शब्द जीव से युक्त है। यदि शाब्दिक दृष्टि से वेद शब्द पर ध्यान दिया जाय तो वेद शब्द विद् धातु से निश्पन्न है। वेद भारतीय संस्कृति का आधारभूत ग्रंथ है जो मानवीय मूल्यों का समुचित आदर्श प्रस्तुत करता है। वस्तुतः जीवन का चरम उद्देश्य ही धर्म है और वेद सम्पूर्ण धरम का मूल्य स्तम्भ है। इसलिए तो कहा है-**वेदो अखिलों धर्ममूलम्।** धर्म के मूलभूत सिद्धान्तों की जो गणनाएं है उसका वर्णन वेद करता है और वह अन्यत्र दुष्प्राप्य है। सम्पूर्ण मानव जीवन का मूल्यांकन वहीं अपने रसों, छन्दों में प्रकट करता है और इसी का समर्थन आचार्य शंकर अपने स्तोत्र साहित्य में करते है। वैदिक साहित्य में जीव का वर्णन अनेक स्थानों पर प्राप्त होता है। वैदिक मंत्रों की कूक कोयल की मिठास से भी तीव्र है। जीवन का आदर्श पुरूषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति जीवन मूल्य का सही रूप है जिसका ज्ञान वेद कराता है।

धर्म एवं मानव मूल्य-एक अनुशीलन

सुमित्रा कुमारी शोध छात्रा, दर्शन शास्त्र सिदो-कान्हू, मुर्मू विश्वविद्यालय दुमका (झारखण्ड)

'धर्म' शब्द जितना अधिक व्यापक स्तर पर प्रचलित है और उसका उपयोग किया जा रहा है उतनी ही उसकी सूक्ष्मतर विवेचना नहीं की जा रही है। इस दिशा में उचित प्रयत्न जो अपेक्षित है वो नहीं के बराबर है और जो कुछ है भी वे मानव चेतना को कभी-कभी धुंधलके में डाल देती है। विश्व जगत में यत्र-तत्र अनेक उपद्रव, विरोधी संघर्ष यहां तक कि नर-संहार भी अतीत के इतिहास से लेकर वर्तमान तक में देखते हैं। आज इंसान का खून बेदर्दी से बहाया जा रहा है। अतः धर्म तत्त्व की समस्या का समाधान कहां है? इस पर कुछ न कुछ चिन्तन करना आवश्यक है। मानव धरती पर के प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ माना गया है। उससे बढ़कर अन्य कोई प्राणी नहीं है। प्रसिद्ध विचारक, दार्शनिक संत श्री बृजमोहन लालजी ने कहा है-

विषय वासना के आनन्दी मिथ्या जनम बिगार।
मानुष जनम 'गरीब' न फिर-फिर हरि सों प्यार।।

धर्म एवं मानव मूल्य-एक अनुशीलन

सुमित्रा कुमारी शोधच्छात्रा, दर्शन शास्त्र सिदो-कान्हू मुर्मू विश्वविद्यालय दुमका (झारखण्ड)

इस शोध आलेख "धर्म एवं मानव मूल्य-एक अनुशीलन" के अन्तर्गत एक खोजपूर्ण अध्ययन धर्म एवं मानव मूल्य के सन्दर्भ में प्रस्तुत किया गया है। धर्म मानव मूल्य का स्रोत और संरक्षक दोनों है। आदिकाल से आजतक मानव मूल्य की स्थापना और सम्बर्धन, संधारण की मुख्य जवाबदेही समाज ने धर्म-नेतृत्व पर डाला। राज्य-संस्थाएँ, सरकार-संस्थाएँ, समाज-संस्थाएँ व न्याय-संस्थाएँ सहयोगी भूमिका में रहीं। इतिहास में कहीं-कहीं इनका दुर्लभ वर्चस्व दिखाई पड़ता है। विश्व-जगत की वर्तमान परिस्थिति भौतिक विकास के बावजूद भी सहज और शांत नहीं है। प्रस्तुत शोध आलेख में विश्व की अशांति का मुख्य कारण और समाधान ढूंढ़ने का प्रयास किया गया है। वेद के इस उद्घोष-

'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःख भाग्भवेत।।'

मूल्यशब्दार्थानुशीलनम्

प्रो० अयोध्या दास श्री वैष्णव आचार्य एवं अध्यक्ष प्राच्य संस्कृत विभाग लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

वस्तुतस्तु मूल्यशब्दस्य विभिन्ना विच्छित्तयः वर्तमान सन्दर्भे विलसन्ति। ताः असम्बद्धाः न सन्ति। तत्र मूलशब्दस्य तत्त्वानि प्रतायन्ते। तानि सर्वाणि विकाससमन्वितानि। तस्मात् मूल्यशब्दस्य दर्शनादिसम्बद्धं सर्वं निगूढं रहस्यं मौलिकरूपेणास्माभिः समुन्मीलिते मूल पदे एव वर्तते। निष्कर्षस्तु मूल्यं तदेव यदाश्रित्य जनः विकासमञ्चति। अत एव नेदं विस्मार्यं यत् सृष्टिप्रपञ्चभूतस्य ब्राह्मणः प्रापकत्वात् इन्द्रियादीनां सत्यप्रवृत्तिरेव स्वसमाजस्य राष्ट्रस्य च वास्तविकं मूल्यम्। अतस्तत्संरक्षणमेव मूल्यसंरक्षणम्, तद्धानिरेव मूल्यहानिरिति राष्ट्रहितचिन्तकैरात्मकल्याणपरायणैः सामाजिकैश्चिन्तनीयमिति तत्त्वम्।

"रामायणे नैतिकसंस्काराः"

डॉ. (श्रीमती) कृष्णा आचार्य रीडर म०द० विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)

संस्करणं सम्यक् करणं वा संस्कारः। अस्मिन् सन्दर्भे संस्कारशब्दस्य अर्थो वस्तुनः व्यक्तर्वा परिष्कारो भवति। प्रकरणवशात् संस्कार-शब्दो बहुस्वर्थेषु प्रयुज्यते। अस्मिन् शोधलेखे संस्कार शब्देन आत्मनः परिष्काराय क्रियमाणानि कृत्यानि गृहीतानि।

जैमनीय सूत्र भाष्ये शबरस्वामिना लिखितम् "संस्कारोनाम् स भवति यस्मिन् जाते पदार्थो भवति योग्यः कस्यचिदर्थस्य" जैमनीय सूत्र- ३.२.३

मनुस्मृतौ उल्लेखो वर्तते यद् "संस्कारैः शरीरः पावनो भवति"-

गार्भैहोमैर्जातकर्मचौलमौञ्जी निबन्धनैः।

कार्य शरीर संस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च।। मनु0=२.२६

वैदिक संस्काराणामुल्लेखो गृह्यसूत्रेषु धर्मसूत्रेषु च विस्तृतरूपेणोपलभ्यते। संस्कारणां संख्या विषये नैकमतं विदुषाम्। तेषां समेषां मतं संगृह्य: महर्षिणा दयानन्देन संस्कारविधौ बोधगम्या व्याख्या विहिता। रामायणे वाल्मीकिना प्रसङ्गवशादेव कतिपयानां संस्काराणामुल्लेखः कृतः। एकस्मिन् सन्दर्भे उल्लेखो वर्तते यत् महर्षि वसिष्ठो रामलक्ष्मणभरतशत्रूघ्नानां जातकर्मादयः संस्काराः अकारयत्।

तेषां जन्मक्रियादीनि सर्वकर्माण्यकारयत्।

तेषां केतुखि ज्येष्ठो रामो रतिकरः पितुः।। रामायण, १.१८.२४

प्रत्यक्षरूपेण रामायणे निम्नलिखितानां संस्काराणामुल्लेखो वर्तते।

1.गर्भाधान संस्कारः, 2.जातकर्म संस्कारः, 3. नामकरण संस्कारः, 4. विवाह संस्कारः, 5. अन्त्येष्ठि संस्कारः

अप्रत्यक्षरूपेण च "पुंस वन संस्कारः सीमन्तोनयन संस्कारः, निष्क्रमण संस्कारः अन्नप्राशन संस्कारः, चूड़ाकर्म संस्कारः, उपनयन संस्कारः, आदीनामपि प्रसङ्गमायाति।

वैदिकसाहित्ये जीवनमूल्यानि

डॉ. आशुतोष गुप्तः प्रवक्ता,संस्कृत-विभागे, हे.न.ब.ग. वि.वि. बिडलापरिसरः, श्रीनगरम् उत्तराखण्डम्

चरन् वै मुध विन्दति चरन् स्वादुमुदुम्बरम्।
सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं यो न तन्द्रयते चरंश्चरैवेति।।

वेदाः भारतीयानां प्राणाः शक्तिस्रोताः कर्त्तव्याकर्त्तव्यनिर्देशकाश्च सन्ति। वेदेषु वैदिकसाहित्येषु च जीवनाय यानि महत्त्वपूर्णानि मूल्यानि वर्णितानि तेषामुल्लेखः अस्मिन् शोधपत्रे भविष्यति यतोहि गुणान् विज्ञाय जनाः दोषान् परित्यक्तुम् उद्यकामाः भवन्ति। वेदब्राह्मणारण्यकोपनिषत्सु जीवमूल्यानि विकीर्णानि सन्ति यैः मानवजीवनस्य परिष्कारः कर्त्तु शक्यते।

प्रत्येक राष्ट्रस्य रक्षणाय संवर्धनाय च तेषां नागरिकानां जीवने कानिचित् जीवनमूल्यानि महत्त्वपूर्णानि भवन्ति। अनेन प्रयोगेन परिवारसमाजराज्यसंरचना सहजतया सञ्चाल्यते सम्पत्स्यते च।

किं नाम जीवनम्? जीवनस्य लक्ष्यं किम्? लक्ष्यप्राप्त्यर्थं को मार्गः ? किं नाम मूल्यम् ? मूल्यस्य का आवश्यकता? आदर्शजीवनाय कीदृशानि मूल्यानि ? वस्तुतः मूल्यरहितं जीवनं पशुवत् जीवनं च मनुष्यस्य। सचेतनशरीरेण जीवः व्यवहरति। व्यवहारे मानवोऽपि लोभमोहमदमात्सर्य इत्यादिभिः ग्रस्तो भवति ततः एतस्य मुक्तिर्भवेत् इति वेदचिन्तनं वर्तते। मनुष्यः विश्वस्य केन्द्रे तिष्ठति तस्मात् तेषां जीवनं कीदृशं भवेत् कथम् आचरणः भवेत्, स्वार्थाय परिवाराय समाजाय राष्ट्राय तेषां किं दायित्वम्? इत्यपि अत्र प्रस्तुतपत्रे विवेचनं करिष्यते।

वैदिकसाहित्ये जीवन-मूल्यानि

दीपक कोठारीः श्रीभगवानदास आ.सं.महाविद्यानलयः, हरिद्वारम्

"कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एव त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।।

ईशावास्योपनिषदो मन्त्रमिदमेव समग्रं वैदिकजीवनमूल्यं समुद्घाटयति यस्य सारं, सततं कर्म कुर्वन्नेव सकलं जीवनयापनमिति।

जीवन शब्दः, 'जीव' इति धातुनिष्पन्नो वर्तते। यस्यार्थः 'प्राणधारणम्'। कश्चिदपि प्राणिविशेषो मनुष्यो वा संसारेऽस्मिन् यावत् कालपर्यन्तं प्राणान् धारयति तदेव हि तस्य जीवनमिति। व्यापकोऽस्यार्थो दृश्यते चेत्तदा न केवलं यथा धर्मविषयकम्, अर्थविषयकं, कामनाविषयकं, मोक्षविषयकं, मातृविषयकं, समाजविषयकं, राष्ट्रविषयकञ्चेत्येतत् सर्वमतितत्वं तस्य जीवनमिति वक्तुं शक्यते।

तत्र वेदेषु एकेन मनुष्येण कथं जीवनं यापनीयं किं करणीयं किमकरणीयमिति एतादृशेषु विषयेषु पर्याप्तं चिन्तनं कृतं वर्तते। तत्र सकलं मनुष्यजीवनं चतुर्षु भागेषु विभक्तम्। यथा- 'ब्रह्मचर्यगृहस्थवानप्रस्थसन्यासाः।- तत्र स प्रथमे जीवने ब्रह्मचर्यव्रते व्रतीभूत्वा गुरोरन्तेवासी भवति सकलां इहलोकपरलोकहितकराञ्च विद्यामधीते। ततश्च गृहस्थे प्रविशति। गृहस्थे प्रविश्यमाणं तमाचार्या उपदिशन्ति- "सत्यं वद, धर्मं चर, स्वाध्यायान्मा प्रमद, यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि त्वया सेवितव्यानि नो इतराणि" इति। अस्मिन्नेवाश्रमे स सर्वमपि सांसारिकं कर्तव्यं पालयति तत्र गुरुशुश्रूषा मातृपितृ भक्तिः, सन्तानोत्पत्तिः , तस्य पालनं, समाजाय कार्य, राष्ट्रस्य विकासाय सर्वविधोन्नत्यै च यदपि तस्य कर्तव्यं तस्य निर्वहनमिति प्रमुखम्। ततो गृहस्थाश्रमोपभोक्ता स वानप्रस्थमाचरति। तत्र पुरुषार्थशिरोमणेर्मोक्षरूपपुरुषार्थस्य प्राप्तये यतते। ततश्च सन्यासाश्रमे प्रविश्य मोक्षार्थ साधनां विहाय तत् प्राप्य च तत्रैव परमां शान्तिमाप्नोतीति वैदिकी जीवनपद्धतिः वैदिकानि जीवनमूल्यानीति। यथोक्तम- तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय इति।।

वैदिकवाङ्मये जीवनमूल्यानामुपदेशः

डॉ. कुलदीपकुमारः दिल्ली

वेदेषु निहिता नियमा एव नीतिज्ञाने प्रमाणम्। समग्रवेदस्य स्थूलतयाऽवलोकनेनेत्थं प्रतीयते यत् सर्वोऽपि वेदभागः मनुष्य जीवनरीतिं शिक्षयितुमेव प्रवृत्त इति। वेदे जीवनमूल्यानां तन्महत्त्वस्य चोपदेशः चतुर्धा कृतोऽस्ति। यथा-
1. पुनर्जन्मनिरूपणप्रकारेण, 2. पापपुण्यभावनाजननद्वारा, 3. आनृण्यभावनाजननद्वारा, 4. पुरुषार्थचतुष्टयनिरूपणद्वारा। वैदिकवाङ्मये समुपलभ्यमानानां जीवनमूल्यानां कानिचनोदाहरणानि स्थालीपुलाकन्यायेनात्र प्रदर्श्यन्ते-1. अथर्ववेदस्य सांमनस्यसूक्ते परिवारे समाजे सौमनस्यं स्यादिति प्रार्थना लभ्यते येन तादृशी भावना जीवनायावश्यकीति उपदेशो भवति। तथाहि- सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः। अन्योऽन्यमभिहर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्याः।। इति 2. पुत्रः पितुः वचनपालनकर्ता स्यात्। पत्नी च पतिं प्रति मधुरं वदेत् इति बोधयति वेदः। यथा-अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवति संमना। जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्ति वाम्।। 3. ऋतं च सत्यं च पृथिव्याः प्रमुखे धारकतत्त्वे 'सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा पृथिवीं धारयन्तिं। (अथर्ववेद 12.1.1) एवं जीवनमूल्योपदेशः सर्वत्र वैदिकवाङ्मये उपलभ्यते।

वैदिक जीवनमूल्य : वर्तमान प्रासङ्गिकाता

डॉ. राजेश राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय

जीवनमूल्य एक सापेक्ष तत्त्व है। मूल्यों का सम्बन्ध सम्पूर्ण जगत के मानव चिन्तन एवं व्यवहार से होता है। जीवन व्यवहार विभिन्न प्रवृत्तियों में विभक्त है और विभिन्न व्यावहारिक क्षेत्रों के साध्य ही सामान्यतः मूल्य कहलाते हैं। ये समाज द्वारा स्वीकृत धारणाऐं एवं मान्यताऐं हैं। मूल्य जीवन के प्रति एक गुण है एवं जीवन के प्रति एक दृष्टिकोण है। ये जीवन को एक सूत्र में बांधकर उसका परिष्कार एवं विकास करते हैं। जीवनमूल्य जीवन चेतना को अनुशासित करने वाले तत्त्व हैं। इन तत्त्वों का संस्कृति समाज, भौतिकतावाद, राजनीति, व्यक्ति, परिवार, समाज एवं आध्यात्मिकता आदि के सामूहिक प्रयास एवं संतुलन से निर्माण होता है। जीवनमूल्यों के आधार पर ही किसी भी सभ्यता और संस्कृति का प्रासाद निर्मित होता है।

वैदिक साहित्य में जीवन-मूल्य

डॉ. डी.आर. अवस्थी व्याख्याता- संस्कृत, केंन्द्रिय विद्यालय, कौसानी

समस्त वैदिक वाङ्मय जीवन मूल्यपरक है। वेदों के हर एक मन्त्र जीवन को गति देने वाले हैं। सत्य, अहिंसा, परदुःखकातरता, पवित्रता आदि ऐसे जीवनमूल्य हैं जिनका पदे-पदे वेदों में वर्णन मिलता है। मा हिंस्यात्, मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे, पशून् पाहि, शन्नोऽस्तु द्विपदे चतुष्पदे, सत्यं वद, धर्मं चर, सत्यं वदिष्यामि, ऋतं वदिष्यामि आदि ऐसे ही कतिपय उदाहरण हैं जिनके आधार पर प्रस्तुत शोधपत्र को विस्तार दिया जायेगा

IDEALS HUMANISM REFLECTED IN THE VEDAS

Dr. Manjula Devi, Reader, Dept. of Sanskrit Gauhati University, Guwahati-14, Assam

The Vedas are considered as the fountain-head of the Indian culture which have diffused and trasnmitted philosophy, Literature and traditions to the society through the ages. The Vedic seers have visualized as well utmost concern for the all round welfare of the people which is the key point in Humanism. Humanism is defined as an outlook or system of though tattaching prime importance to human rather than devine or supernatural matters. Humanism preachesin favour of human interest in always aimed at imparting priority to human interest, values and dignit. All people are the creation of the one mother Earth- mata bhumih putro aham prthivyah (Atharvaveda, 12.12.) These humanistic ideals are more ennobling and socialistic that the present day theories propounded by the exponents of Humanism and so no.

FOUNDATIONAL ETHICAL IDEAS IN EARLY RIGVEDA

Dr. Deepak Srivastava Asst. Professor H.O.D. Dept. of Philosophy B.S.R. Govt P.G. Arts College Alwar (Raj.)

It is a well accepted historical and a literary fact that the Hymns of the Vedas, So big in number and content, were not produced on one occasion by any one author. The addition of the Hymns from time establishes a development perspective, wherein newer and more condensed ideas were becoming gradually more explicit. One of the basic features of the Hymns of the early Rig-Veda (The1st mandala), it can be noticed, is the existence of some ethical ideas in them. Jan Gonda, countering the view that there is nothing of moral significance in the Rig-Veda, has opined that there are a few passages of moral significance in the Rig-Veda[1]. The present paper in an attempt not only to argue in favor of the presence of moral and ethical ideas even in the very starting parts of the Rig-Veda but also to establish that these ideas have proved to be foundational to the consequent more developed and complex moral conceptualisations not only in the Vedic discourses but also in the most heterodox schools of thought.

IDEALS OF HUMANISM REFLECTED IN THE VEDAS

Dr. Manjula Devi Reader, Dept. of Sanskrit Gauhati University Guwahati-14, Assam

The Vedas are considered as the fountain-head of the Indian culture which have diffused and transmitted philosophy. literature and traditions to the society through the ages. The Vedic seers have visualized as well utmost concern for the all round welfare of the people which is the key point in the Humanism. Humanism is defined as an outlook or system of thought attaching prime importance to human rather than divine or supernatural matters' Humanism preaches in favour of human interest in general and shows commitment to the service of mankind wihout any bias for any class of it . The Vedic seers always aimed at imparting priority to human interest, values and dignity. All people are the creation of the one mother Earth - mata bhumih putro aham prthivyah (Atharvaveda, 12.1.12.) The Vedas have prescribed certain social duties for every individual. Human beings do not live only for their own sake but for the society also, of which they form a part. There are prayers with a specific ethical code for peaceful life and co-operative living. (cf., Vajasaneyisamhita, 9.22;18.9;30.3; Atharvaveda, 3.30.1-7;7.54.1;19.15.6;19.62.1). These humanistic ideals are more ennobling and socialistic than the present day theories propounded by the exponents of Humanism and so on.

UPANISHADIC0 WAY OF LIFE

Dr. Trinath Hota

In this 21st century the human beings their lives with hopes and horror. The advent rise of new political systems in the world is making the position more confusing by trial of strenght and the domination of one suppressing the other, people are being divided into two warring camps, specially in the field of religion. One continues to have

faith in the god while the other condemns it and preaches staunch ateism. Conflictc between man, society and nations thus widen and there is very little hope for retrieval, if the move is allowed to continue. In this critical moment of our life we have to pay deep thought for finding a way out of these uncertainties. A way must be found out to lead a harmonious life. The Upanishadic way of life can save us and can be our only hope. This thought will create humanity. It can assure the humanity a meaningful life and can guarantee safeguard against apprehensions, suspicion and fear. It can lead confused world society to mantal peace and material prosperity. The present study is exclusively meant to discuss the Upanishadic way of life both for earthly happiness and eternal bliss.

वैदिक वाङ्मय में मानवतावादी सन्देश

डॉ. मौहर सिंह मीणा, असिस्टेण्ट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

वर्तमान के भौतिकवादी युग में मानवमात्र में आर्थिक प्रतिस्पर्धा, आत्मपरक-प्रवृत्ति, चरित्रहीनता, कृतघ्नता, असन्मार्ग का अवलम्बन, मिथ्या-प्रलाप, समाज एवं संस्कृति के प्रति उदासीनता आदि अनेक ऐसे दोष मानवीय समाज में व्याप्त हो गये हैं, जो मानवता विरोधी तथा मानव समाज के विनाशक हैं। इनके विद्यमान रहते हुये मानव कल्याण का लक्ष्य निश्चित ही अधूरा प्रतीत होता है। यदि हम यथार्थ रूप में मानव का उत्कर्ष एवं मानवीय मूल्यों की स्थापना करना चाहते हैं तो हमें वैदिक विचारधारा की ओर पुनः लौटना होगा क्योंकि वैदिक वाङ्मय ही मानवीय मूल्यों, जीवनपरक आदर्शो, मानवीय प्रेम, संस्कृति, समाज, धर्म दर्शन आदि उन महत्त्वपूर्ण सत्यों की व्यञ्जना करता है जो मानवता एवं युगीन दृष्टि से आज वाञ्छनीय ही नहीं अपितु अत्यावश्यक भी हैं।

चरैवेति चरैवेति........

डॉ. अनिता त्यागी वरिष्ठ प्रवक्ता-संस्कृत, राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रामपुर

आस्ते भग आसीनस्योर्ध्वस्तिष्ठतिः तिष्ठतः। भोते निपद्यमानस्य चराति चरतो भग।। चरैवेति। चरैवेति- एतरेयब्राह्मण 3.13

अर्थात् बैठे हुए व्यक्ति का भाग्य भी बैठा ही रहता है, बढ़ता नहीं। उठकर चलने वाले का भाग्य उन्नति की ओर बढ़ता है। भूमि पर सोते रहने वाले का भाग्य भी सोता है। जो देश देशान्तर में अर्जन के लिए निकल पडता है, उसका भाग्य दिन प्रतिदिन बढ़ता है। संस्कृत वाङ्मय अतीत काल से ही कर्मवाद का पोशक रहा है। वेद उपनिशद आदि सभी कर्म में लीन रहने का संदे देते हैं। सृश्टि की उत्पत्ति तप और कर्म से मानी गई है। अतः कर्म सर्वोत्तम है। कर्म से ही तप और संसार की उत्पत्ति होती है। **"कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीवेच्छतं समाः"** यजुर्वेद-40.2 वेदों का परम लक्ष्य है-

"उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्। देवं देवत्र सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्।यजुर्वेद-20.21

अर्थात् अज्ञान से प्रकाश की ओर बढ़ते हुए हम स्वयं को उत्तरोत्तर समुन्नत करें।

अन्ततः कह सकते हैं कि हमारा लक्ष्य कर्म में लीन होकर वाहय (भौतिक) और आभ्यन्तर (आध्यात्मिक) रूप से स्वयं को उत्तरोत्तर समुन्नत करना होना चाहिए।

◆ वैदिक कृषि



वैदिक कालीन कृषि व्यवस्था

डॉ. नगेन्द्र नाथ झा वरिष्ठ व्याख्याता, श्री रणवीर परिसर, जम्मू

विश्व में मनुष्य की इच्छाएं अनन्त हैं। प्राचीन काल में मनुष्य आवश्यकतानुसार ही इच्छा को प्रकट करते थे, परन्तु आजकल साधन तो सीमित हैं, पर आवश्यकताएं अनन्त हैं। इस आवश्यकता की पूर्ति हेतु वैदिक-कालीन कुछ साधन आज के युग में कारगर हो सकते हैं। प्राचीन काल अर्थात् वैदिक काल में भी कृषि कर्म हुआ करता था। किसी भी वस्तु को नवीनतम या नूतन विधियों को अपनाने के लिए किसी जीवन को खुशहाल रख सकते हैं। कोई भी ज्ञान-विज्ञान ऐसा नहीं है जो हमारे वेदों में उपलब्ध न हो। कृषि कर्म के लिए तो ऋग्वेद में ही भरपूर मात्रा में लिखा जा चुका है। वैदिक काल में जो कृषि कर्म होता था, वो आज के वैज्ञानिक ढंग से पीछे नहीं था। वैदिक काल में हम जो ऋषि कर्म करते थे, उसमें हल का प्रयोग ज्यादा होता था, लेकिन आज के युग में जो लोग ट्रैक्टर से खेती करते हैं, उसमें सीत यानी शिरा का अभाव दिखता है। वैदिक कालीन सभी व्यक्ति प्रायः कृषि पर ही निर्भर रहते थे। आज भी हम कहते हैं कि भारत की 65 प्रतिशत जनता कृषि पर ही निर्भर है। प्राचीन काल में सभी ऋतु में कुछ न कुछ कृषि कर्म होता था। वैदिक काल में भी सभी तरह के फसल होते थे बल्कि सभी तरह के फसल आज नहीं देखने को मिलता है। वैदिक काल में यव, माष, तिल, ब्रीहि, इक्षु इत्यादि दलहन तेलहन सभी प्रचुर मात्रा में होता था। ऋग्वेद में ऐसा वर्णन मिलता है कि सर्वप्रथम अश्विनी कुमारों ने लोगों को हल के माध्यम से खेती करना सिखाया। अतः कृषि प्रबन्धन से सम्बन्धित समस्त व्यवस्था का दर्शन वैदिक काल में मिलता है। जिसका उल्लेख शोधपत्र में किया जायेगा।

वेदों में कृषि-विज्ञान

डॉ. उमा जैन रीडर संस्कृत विभाग, मु.ला. एण्ड जयना. खे. गर्ल्स कॉलेज, सहारनपुर

मानव-जीवन अन्न पर निर्भर है जिनकी प्राप्ति कृषि से होती है, अतः कृषि मानव मात्र के जीवन का आधार है। सृष्टि के प्रारम्भ से ही अन्न की समस्या उत्पन्न हुई। जिसके निवारणार्थ कृषि का आविष्कार हुआ। वैदिक युग में कृषि कर्म अत्यन्त पवित्र और गौरव का कार्य माना जाता था। इसलिए इन्द्र और पूषा देवों को इसमें लगाया गया। कवि और विद्वान् भी इस कर्म को करते थे। जो कृषि विद्या में निपुण होते थे, उन्हें कृष्टराधि और उपजीवनीय(सफल आजीविका वाला) कहा जाता था। अथर्ववेद में अन्न को मानव-जीवन का आधार कहा है इसके बिना मनुष्य जीवित नहीं रह सकता है। यजुर्वेद में कृषि के प्रति राजा का कर्तव्य बताते हुए कहा है कि वह कृषि की उन्नति करे और धन-धान्य की वृद्धि करे।

वैदिक साहित्य में वर्णित कृषि विज्ञान

डॉ. दीपा गुप्ता प्रवक्ता, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, कन्या गुरुकुल महाविद्यालय हरिद्वार

वेद ज्ञान विज्ञान के अपार भण्डार हैं, तथा हमारी भारतीय संस्कृति के आधार हैं, वेद की सत्ता रसायन, पर्यावरण, गणित, वनस्पति वास्तुशास्त्र आदि सभी क्षेत्रों में रही है, परन्तु कृषि विज्ञान वेदों मे अधिक महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि प्रारम्भ से ही भारतवर्ष अर्थ व्यवस्था के सन्दर्भ में कृषि पर ही निर्भर रहा है। कृषि ही भारतीय जन-जीवन का मुख्य आर्थिक व्यवसाय रही है। यही कारण रहा है कि सम्पूर्ण वैदिक साहित्य में कृषि विज्ञान को मानव जीवन के विकास के प्रथम अध्याय के रूप में लिया गया है। कृषि ही वह तंतु है जिसने असभ्य मानव समाज को सभ्यता एवं संस्कृति के अटूट बंधन में बाँधा। यह कृषि कर्म ही मनुष्य के जीवन की प्रथम कला एवं विज्ञान है क्योंकि आर्यो की आस्था के शाश्वत केन्द्र एवं विश्व साहित्य के प्राचीनतम ग्रन्थ 'ऋग्वेद' में कृषि-विज्ञान का विशद् वर्णन है। वैदिक ऋषियों ने मनुष्य के लिए कृषि को मुख्य व्यवसाय बतलाया है।

ऋग्वेद में ऐसा वर्णित है कि सर्वप्रथम अश्विनी कुमारों ने वैदिक मानव को हल आदि के माध्यम से कृषि कार्य करना सिखाया। इसके पश्चात् कृषि का आरम्भ वेनपुत्र पृथी ने किया। ऋग्वेद में कृषि भूमि को 'उर्वर' एवं 'क्षेत्र' आदि नामों से जाना जाता

था। वैदिक साहित्य में भी हल से जोती गई भूमि को 'उर्वर' तथा क्षेत्र' कहते थे। वैदिक साहित्य में हल के लिए 'सिर' सील' एवं 'लाँगन' आदि शब्दों का प्रयोग किया है। हल चलाने वाले को 'कीनाश' कहते थे।(ऋग्वेद- 4.57.8) हल प्राय: लकड़ी के बने होते थे। जो दो बैलों की सहायता से खींचे जाते थे। यद्यपि 'ऋग्वेद' में कहीं कहीं पर हलों में छह से बारह बैलों के जोते जाने का भी उल्लेख मिलता हैं(ऋग्वेद- 6.91.1) वैदिक काल में खेतों पर स्वामित्व किसी एक व्यक्ति का नहीं था, अपितु यह भूमि सामूहिक रूप से परिवार के सदस्यों द्वारा की जाती थी। वर्तमान समय में तो आज हमारा समाज तकनीकी रूप से अत्यधिक विकसित है किन्तु प्राचीन काल में तो कृषि परम्परागत रूप में की जाती थी। उस समय कृषि करने के लिए पशु बल सर्वाधिक सहायक था। हिन्दुओं की आस्था की केन्द्रस्थली गाय सर्वाधिक उपयोगी थी। गाय के बछड़े कृषि में सहायक थे, एवं उसका गोबर आदि खाद के रूप में प्रयोग किया जाता था। वैदिक काल में ऐसा स्पष्ट उल्लेखा है कि अनाज बोने का कार्य भिन्न-भिन्न ऋतु में किया जाता था। मुख्यत: 6 बोये जाने वाले अनाजों में यव(जौं), माष, गेहूँ, मुद्ग, नीवार (जंगली धान) श्यामक(सांवा), तिल, मसूर, ब्रीहि(धान) उर्वारू आदि का नामोल्लेख प्राप्त होता है। ऋग्वेद में कृषि के लिए कई स्रोतों से जल प्राप्त करने की बात भी कही गयी है। तालाबों, नालों, जलाशयों आदि से खेतो की सिंचाई होती थी। वैदिक काल में सिंचाई के आधुनिक युग की तरह साधन नहीं थे। मुख्यत: खेतों की सिंचाई हेतु वर्षा पर ही निर्भर रहना पड़ता था। सम्पूर्ण वैदिक साहित्य में वर्णित कृषि विज्ञान से यही स्पष्ट होता है कि कृषि का कार्य वैदिकआर्यो के लिए अत्यधिक पूजित एवं आदरणीय था, इसका आंकलन अथर्ववेदमें वर्णित पृथिवी सूक्त से किया जा सकता है। इस सूक्त में मातृ स्वरूपा पृथ्वी को ही समग्र पार्थिव पदार्थों की जननी तथा पोषिका कहा गया है।

वेद कालीन कृषि विज्ञान

डॉ. मीना गुप्ता वरिष्ठ प्रवक्ता, संस्कृत-विभाग पी.पी.एन. कॉलेज, कानपुर

कृषि विज्ञान से सम्बद्ध विशिष्ट तथ्यों का विवरण हमें ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में प्राप्त होता है। भारतवर्ष प्राचीनकाल से ही कृषि पर आधृत देश के रूप में जाना जाता रहा है। वैदिक आर्यो का जीवन कृषि एवं पशु पालन पर आधारित है हमें कृषि सूक्त, वर्षा सूक्त एवं वृषभ सूक्त के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि वैदिक आर्य कृषि कर्म में पूर्णतया निपुण थे उन्हें खेती की भूमि का उपजाऊ बनाकर प्रचुर अन्न प्राप्त करने की कला पर्याप्त ज्ञान था। ऋग्वेद के एक मन्त्र में जुआरी की दुर्दशा का चित्रण करते हुए उसकी निन्दा की गयी है और उसे कृषि कर्म करने की प्रेरणा देते हुए समझाया गया है।

चतुर्विध पुरुषार्थों में आचार्य कौटिल्य ने अर्थ को प्रधान माना है। 'अर्थ एवं प्रधान:' सभी प्रकार के धनो में अन्न धन सबसे महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यही जीवन का साधन है अत: आर्यो ने 'अन्नं बहु कुर्वीत' को अपने जीवन में सूत्र रूप में उतारा। आर्यो को ऋतुओं के अनुसार कृषि करने का सम्पूर्ण ज्ञान था। तैत्तिरीय संहिता के अनुसार वर्ष में दो बार फसल काटी जाती है। आर्य किस प्रकार प्रभूत धन उत्पन्न किया जाए इस विज्ञान से वह सुपरिचित थे। वेदों का अध्ययन करने से हमें कृषि से सम्बद्ध उपकरणों का भी उल्लेख प्राप्त होता है हल के लिए सीर तथा लाङ्गलज शब्द का प्रयोग प्राप्त होता है किसान के लिए कीनाश हल की रस्सी के लिए वरत्रा तथा बैलों को हाँकने वाले चावुक के लिए अष्ट्रा शब्द का व्यवहार देखने को मिलता है। हल के निचले हिस्से पर एक लोहे की पत्ती होती थी। जिसे फाल कहा जाता था फाल से भूमि में जो रेखा बनती है उसे सीता कहते हैं।

शुनं वाहा: शुनं नर: शुनं कृषतु लाङ्गलम्

शुन वरत्रा वध्यन्तां शुनमस्ट्रामुदिङ्गय।। ऋ. 4.57.4

अथर्ववेद में कृषि से सम्बद्ध तथ्यों के विवरण से हमें यह ज्ञात होता है कि वर्तमान कृषि प्रक्रिया तथा अथर्ववेद में वर्णित कृषि प्रक्रिया में पर्याप्त साम्य है। शतपथ ब्राह्मण में पूरे कृषि कर्म को चार शब्दों द्वारा कहा गया है- कर्षण, वपन, लुनन तथा मर्दन।

वैदिक युग में कृषि और उसका विकास

राजेश कुमार, शोधच्छात्र अ.मु.वि.वि. अलीगढ़

वैदिक संहिताओं और उत्तरवर्ती साहित्य में आजीविका के साधनों, कृषि-पशुपालन, वाणिज्य-उद्योग का विस्तृत वर्णन है। जो उस युग के आर्थिक विकास का परिचय देता है। वैदिक आर्यो में कृषि-कर्म प्रचार और प्रसार, विशेष रूप से था। वैदिक उपदेश है। 'अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित् कृषस्व' जुआ खेलना छोड़ दो और खेती करो। (ऋ. 10.34.7)

कृषि का आविष्कार दो सन्दर्भो में हुआ- एक के अनुसार देवों ने जंगलों को काटकर भूमि को कृषि योग्य बनाया तथा दूसरे के अनुसार कृषि का आविष्कार बेनपुत्र पृथु ने किया। भू-स्वामित्व वैयक्तिक था न कि सामुदायिक। कृषि योग्य भूमि का 'अप्रस्वती' तथा ऊपर भूमि का 'आर्तना' कहते थे। सिंचाई के लिए प्रायःवर्षा का आलम्बन था। परन्तु कुल्या, कूप, वापी, जलाशय आदि से भी खेतों का सिंचाई उपलब्ध हो जाती थी। वैदिक आर्यो ने सिंचाई के अन्य साधनों का विकास करके जैसे- नदियों पर बाँध बनाकर, नहरें निकाल कर खेतों में जल पहुँचाया था।

वैदिक युग में फसल की पैदावार बढ़ाने के लिए गोबर की खाद का प्रयोग किया जाता था यह परम्परा आज भी चली आ रही है।

वैदिक वाङ्मय में औषधीय कृषि विज्ञान

डॉ. अर.के. जखमोला आई.पी.जी.टी. एण्ड आर.ए. गुजरात आयुर्वेद वि.वि. जामनगर, गुजरात

पृथ्वी पर जितने भी द्रव्य उपलब्ध होते हैं, वे सभी औषधभूत हैं, अर्थात् यदि उनका शास्त्रसम्मत उपयोग किया जाए तो वे औषधियों के समुचित कर्म को कर सकते हैं। प्रतिद्रव्य में निहित विशिष्ट गुणों की जानकारी कई प्रकार से मानवजाति को कालक्रमानुसार होती रही है, भौगोलिक एवं भूगर्भविद्या सम्बन्धी तथ्यों से यह अनुमान लगाया जाता है कि, सर्व प्रथम भूमण्डल पर खनिज या पार्थिव द्रव्य रहे थे। क्योंकि तप्त सूर्य से पृथक् होने पर बहुत समय तक पृथ्वी में अत्यधिक उष्णता रही थी, जिसके कारण वनस्पति के उत्पन्न होने की संभावना भी नहीं हो सकती। खनिज द्रव्य भी उस समय द्रवावस्था में रहे होंगे। इसके बाद क्रमशः पृथ्वी के ठण्डा होने पर कोई भी प्राथमिक वनस्पति हुई और फिर अन्य विविध प्रकार की वनस्पतियाँ और प्राणीवर्ग की उत्पत्ति हुई होगी। विकास की चरम कोटि मनुष्य की उत्पत्ति बाद और फिर उसके मस्तिष्क के क्रमशः विकसित हो जाने पर उसने अपने चारों ओर के वनस्पति संसार पर दृष्टिपात करके उसमें से कुछ एक वनस्पतियों से अपना परिचय किया और धीरे-धीरे अपने इस ज्ञान की परिधि का बढाते हुए अधिकांश भोज्य पदार्थो एवं औषधियों के गुणधर्मो का ज्ञान किया, सर्व प्रथम ज्ञान के स्रोत वेदों के समय में मानव ने अपने एक सुशिक्षित समाज का निर्माण कर लिया था और सभ्य व्यवस्था प्रचलित हो गई थी। सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक व्यवस्थाएं सुचारु रूप से प्रचलित थीं। अपनी साधनसामग्री को आवश्यकतानुसार प्राप्त करने के लिए वेदकालीन मानव ने कृषि सम्बन्धी उत्तमोत्तम उपाय अपनायें। उन कृषि सम्बन्धी तथ्यों के अनेक सन्दर्भ हमें वेदों में मिलते हैं।

वैदिक कालीन कृषिविज्ञान

लवकुमार मिश्र (शोधच्छात्र) प्रा.सं.विभाग लखनऊ वि.वि. लखनऊ

वेद में निहित सामाजिक-आर्थिक पक्ष के अध्ययन से कृषि से सम्बन्धित विभिन्न तथ्य उपस्थित होते हैं, जिससे स्पष्ट होता है कि लगभग 1500ई.पू. के पश्चात् भारतीय आर्यो के समाज के जीवनयापन का मुख्याधार 'कृषि' ही था। कृषि बैलों द्वारा होती थी, नदी, नहर, जलाशय, कुओं आदि के माध्यम से सिंचाई करके गेहूँ, जौ, धान, चना, माष(उड़द) और तिल मुख्य रूप से उपजाये जाते थे। कृषि कर्म में गाय के महत्त्व को समझते हुए ही उसे 'अदिति' और 'माता' कहा गया है तथा भोज्य के रूप में गोमांस ही नहीं अपितु पशुमांस का भी सर्वथा निषेध था-

> **'यः पौरुषेण क्रविषा समङ्क्ते, यो अश्व्येन पशुना यातुधानः।**
> **यो अघ्न्याया भरति क्षीमग्ने, तेषां शीर्षाणि हरसापि वृश्च।।'**

कृषि वैदिक कालीन समाज के लिए जीवनधायक तत्त्व होने के कारण ही ऋग्वेद के 'अक्षरसूक्त' में कृषि को श्रेष्ठ बतलाया गया है। कृषि से सम्बन्धित विभिन्न यन्त्रों, विधियों आदि का विस्तृत वर्णत अथर्ववेद के काण्ड-3 में मिलता ही है, साथ ही साथ अन्य काण्डों में भी खाद डालना, बैलों वाला हल, सिंचाई आदि का वर्णन भी मिलता है। शेष इस विषय पर विस्तृत चर्चा शोधपत्र में प्रस्तुत की गयी है।

वैदिक कालीन कृषि व्यवस्था

डॉ. राजेश मीणा संस्कृत विभाग, राजस्थान वि.वि. जयपुर

प्रजा का आधार अन्न है। 'अन्नं वै विशः' अन्नदातृ कृषि के लिए वैदिक आर्यो का असीम अनुराग था। ये लोग कृषि कार्य के लिए विभिन्न साधनों को उपयोग में लाते थे। बोये जाने वाले अनाजों के नाम- ब्रीहि, यव, मुद्ग, माष, गोधूम, नीवार इत्यादिखाद्यान्नों में गेहूँ का प्रमुख स्थान था। ऋतुओं के अनुसार विभिन्न प्रकार के अनाजों को बोने का प्रमाण मिलता है। कीड़ों से भी फसल को नुकसान पहुंचाने के प्रमाण भी मिलते है। अथर्ववेद में कृषि नाशक कीड़ों में उपवक्स, जभ्य तथा पतंग आदिथे। वैदिक आर्य अपनी खेती के लिए वृष्टि पर अवलम्बित रहने के साथ ही कृत्रिम सिंचाई की व्यवस्था भी करते थे। इसलिये ही वृष्टि के देवता को वेद में प्रमुख देव माना है। वैदिक आर्यो के जीवन निर्वाह के लिए कृषि का इतना अधिक महत्त्व तथा उपयोग था कि उन्होंने क्षेत्रपति नामक देवता की स्वतन्त्र सत्ता मानी। इस निबन्ध में विस्तार से वैदिक कृषि पर प्रकाश डाला जायेगा।

वैदिक संस्कृति में कृषि विज्ञान

कु. पूजा मलिक (शोधच्छात्रा) संस्कृतविभाग, गुरुकुल कांगड़ी वि.वि. हरिद्वार

वेद आर्य जाति के प्राण-स्वरूपहैं। वेद विश्व संस्कृति के आधार स्तम्भ हैं। वेदों में ज्ञान-विज्ञान का अनन्त भण्डार विद्यमान है। जहाँ वेदों में विविध ज्ञान और विज्ञान का वर्णन दिया गयाहै, वहीं कृषि विज्ञान का भी विस्तृत वर्णन किया गया है। वेदों में कृषि विज्ञान से सम्बन्धित अनेक उल्लेख प्राप्त होते हैं।

मानव जीवन अन्न पर निर्भर है। अन्नों की प्राप्ति कृषि से होती है। अतः कृषि मानव जीवन का आधार है कि सृष्टि की उत्पत्ति के साथ ही अन्न कीसमस्या उत्पन्न हुई। इसके निवारण के लिए कृषि का आविष्कार हुआ। प्राचीनकाल से ही कृषि कार्य गौरव का कार्य माना जाता था इसलिए इन्द्र और पूषा देवों को इसमें लगाया गया। कवि और विद्वान् भी कृषि कार्य करते थे। **अथर्ववेद** में वर्णन है कि विराट् ब्रह्मा जब मनुष्यों के पास पहुंचा तो उन्होंने उसे इरावती(अन्नसमृद्धि) कहा। इस इरावती को दुहकर उन्होंने कृषि और सस्य(अन्न) प्राप्त किया। कृषि को मानवीय कल्याण का साधन माना गया है। यजुर्वेद में राजा का प्रमुख कर्तव्य बताया गया है कि वह कृषि की उन्नति करे, जन-कल्याण करें और धन-धान्य की वृद्धि करें।

शतपथ ब्राह्मण में पूरे कृषि कार्य का चार शब्दों में वर्णन किया गया है- 1. **कर्षणः** खेत की जुताई करना, 2. **वपनः** बीज बोना, 3. **लवनः** पके खेत की कटाई करना, 4. **मर्दनः** मडाई करके स्वच्छ अन्न को प्राप्त करना। वेदों में कृषि यन्त्रों के नामों का भी उल्लेख किया गया है। प्रस्तुत शोध-पत्र में वैदिक संस्कृति और कृषि की आवश्यकता पर प्रकाश डाला जायेगा।

वैदिक साहित्य में कृषि-विज्ञान

डॉ. अर्चना आर्या प्रवक्ता- हिन्दीविभाग, सी.सी.ए.एस. जैन गर्ल्सकॉलेज गन्नौर (सोनीपत)

कृषि, वैदिक अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार रहा है। आजीविका का मुख्य साधन होने से वैदिक युग मे कृषि की गुणवत्ता पर विशेष ध्यान दिया गया है। अन्न की प्राप्ति का मुख्य साधन कृषि है। इसी से कृषि समस्त मनुष्यों के जीवन का आधार है।

ऋग्वेद और अथर्ववेद में स्पष्ट कहा गया है कि मेधावी दूरदर्शी विद्वान् कृषि कार्य को अपनाते थे। आज भी अधिकांश व्यक्ति

कृषि के लिए फार्म हाउस का निर्माण करते हैं। वैदिक युग में कृषि को गौरव का कार्य माना जाता था। इसीलिए इन्द्र और पूषन् देवों को इसमें लगाया गयाथा। (इन्द्रः सीतां निगृहषतु तां पूषा) अथर्ववेद 3/17/4

वेद में कृषि विद्या में सफल व्यक्तियों को 'कृष्टराधि' कहा गया है और उन्हें 'उपजीवनीय' अर्थात् सफल परामर्श दाता माना गया है। अथर्ववेद के एक मन्त्र में - 'यद यामं चक्रु-- कार्षीवण अन्नविदः' (अथर्ववेद 6/116/1) में कृषिविशेषज्ञों को 'अन्नविद्' नाम दिया गया है। क्योंकि उन्होंने ही सर्वप्रथम कृषि के नियम(याम) बनाए थे। इसी मन्त्र में कृषक के लिए 'कार्णीवण' शब्द दिया गया है। ऋग्वेद और अथर्ववेद के अध्ययन से ज्ञाता होता है कि राजावेन का पुत्र पृथु कृषि विद्या का प्रथम आविष्कारक था। उसने ही सर्वप्रथम कृषिविद्या केद्वारा अनेक प्रकार के अन्नों के उत्पादन का रहस्य ज्ञात किया था। अथर्ववेद में स्पष्ट रूप से पृथी वैन्य को कृषि-विद्या का आविष्कारक बताया गयाहै। 'तां पृथी वैन्याऽधोक। तां कृषिं च सस्यंचाधोक्।' (अथर्ववेद 8/10/24)

अथर्ववेद का कथन है कि इन्द्र कृषि कर्म के अधिष्ठाता थे और मरुत् देवों ने किसान का कार्य किया था- 'इन्द्रः आसीत् सीर पतिः शतक्रतुः कीनाशा आसन्, मरुतः सुदानवः। (अथर्ववेद 6/30/1) इस प्रकार कृषि कार्य की प्रेरणा इन्द्र ने दी और उसे क्षेत्रपति का अधिष्ठाता कहा गया। अथर्ववेद में खेत के स्वामी के लिए 'क्षेत्रस्य पतये' (अथर्ववेद 2/8/5) तथा यजुर्वेद में 'क्षेत्राणां पतये' कहा गया है। इससे ज्ञात होता है कि कुछ लोगों के पास एक खेत और कुछ के पास अनेक खेत कृषि कार्य के लिए होते थे। यजुर्वेद अथर्व वेद और तैत्तिरीय संहिता में भूमि तीन भेदों का उल्लेख मिलता है- उर्वरा(उपजाऊ) इरिणः(ऊसर, क्षार मिट्टी का क्षेत्र) और शष्पः अर्थात् चरागाह योग्य भूमि। इसी प्रकार वहाँ मिट्टी के कुछ भेदों का भी उल्लेख मिलता है। जैस- मृद, मृत्तिका (चिकनी मिट्टी) किंशिल (छोटे कंकड़वाली मिट्टी) इरिष्य(खेती के लिए अनुपयुक्त) उर्वर्य (खेती योग्य भूमि) और सिकता(बालू वाली मिट्टी) यजुर्वेद 18/13, 16/45, 16/43 अथर्ववेद 12/1/26

इसी के साथ वहाँ कृषि के दो मुख्य भेद बताए गए हैं-

1. वर्ष्य अर्थात् वर्षा पर निर्भर रहने वाली।
2. अवर्ष्य अर्थात् नहर, कूप तथा अन्य स्थानों पर निर्भर रहने वाली। यजुर्वेद 16/38, तैत्तिरीय संहिता 4.5.7.2, यजुर्वेद में उत्तम कृषि हेतु राष्ट्रीय प्रार्थना ' आ ब्रह्मन्, ब्राह्मणो, ब्रह्मवर्चसी जायताम्,' मन्त्र में यथा समय वर्षा की प्रार्थना की गई है क्योंकि कृषि और वर्षा दोनों परस्पर संबद्ध हैं। इस प्रकार वेदों में कृषि के महत्त्व को दर्शाया गया है।

वेद और कृषिविज्ञान

दौलत राम(शोधार्थी) हिन्दीविभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़

प्राचीन भारत में आजीविका के साधनों, आर्थिक उत्पादन के उपकरणों का विकास वैदिक संहिताओं तथा वैदिक साहित्य में उपलब्ध है। इन साधनों और उपकरणों को तीन वर्गों में विभक्त किया गया है- कृषि, पशुपालन और वाणिज्य। जीवन के साधनों में कृषि का सबसे अधिक महत्त्व था और सदा से अब तक रहा है। कृषिप्रधान भारत देश की अधिकांश जनसंख्या कृषि पर अभी तक निर्भर है। कृषि के लिए अति आधुनिक उपकरणों का आविष्कार हो जाने पर भी भारत की अधिकांश जनसंख्या ग्रामों में निवास करती है और कृषि से जीवन यापन करती है।

यजुर्वेद 4/10 में कहा गया है- 'इन्द्रस्य योनिरसि सुसस्याः कृषिस्कृधि।' अर्थात् परम ऐश्वर्य रूप सुख के कारण हैं मनुष्य तू सुन्दर-सुन्दर धान्यों को उत्पन्न करने वाली कृषि को किया कर।

ऋग्वेद का 10/34/13 मन्त्र कहता है -'अक्षैर्मा दीव्य कृषिमित्कृषस्व। वित्ते रमस्व बहु मन्यमानः।' अर्थात् हे जुआरी ! तू जूएं के पासों से मत खेत प्रत्युत् कृषि ही किया कर कृषि से जो अन्नादि प्राप्त हो उसमें ही आनन्द से रहा कर और उसे ही बहुत समझा कर। अभिधावृत्ति से जहाँ कृषि का अर्थ खेती मात्र माना जा सकता है, वहाँ लक्षणा और व्यञ्जना आश्रय ले तो लगता है कि कृषि शब्द अन्य अनेक प्रकार से जीवनोपयोगी शिल्पों एवं उद्योग धन्धों का उपलक्षण भी है। अभी यहाँ चर्चा मात्र कृषि विज्ञान की ही करेंगे।

वैदिक साहित्य में कृषि-व्यवस्था

डॉ. अजय सिंह चौहान, प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, फिरोज गाँधी कॉलेज रायबरेली

वैदिक आर्यो का सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक जीवन बहुत अच्छा था। पशुपालन एवं कृषि उनकी अर्थव्यवस्था के प्रमुख आधार थे। 'रयि' (सम्पत्ति) की गणना का मानदण्ड मवेशी ही होते थे। मवेशियों में गाय का विशिष्ट स्थान था, जिसके पास जितनी अधिक गाय होती थी वह आर्थिक दृष्टि से उतना ही शक्तिशाली माना जाता था। गाय के लिये युद्ध होना स्वावभाविक बात थी। गायों को पाने के लिये देवताओं से प्रार्थनायें की जाती थी। गायों के अतिरिक्त बकरियां, बैल, भेंडे और घोड़े भी पाले जाते थे। बैलों से खेती की जाती थी एवं घोडे युद्ध के समय घुड़सवारी के काम आते थे। अथर्ववेद में हाथी के पाले जाने का उल्लेख मिला है।

ऋग्वैदिक काल में पशुचारण की तुलना मे कृषि व्यवस्था गौण थी। ऋग्वेद में 10462 मन्त्रों में केवल 24 में ही कृषि का उल्लेख प्राप्त होता है। इनमें से भी अधिकांश उल्लेख क्षेपक माने जाते हैं। कृषि योग्य भूमि को 'उर्वरा' अथवा 'क्षेत्र' कहा जाता था। ऋग्वेद में फाल का संकेत प्राप्त होता है जो सम्भवत: लकड़ी का बना होता था। हल में 6-8या 12 बैल जोड़े जाते थे। बुआई, कटाई, मड़ाई आदि क्रियाओं से लोग परिचित थे। पकी हुई फसलों को काटने के लिये हंसिये (दात्र, सृणि) का प्रयोग किया जाता था। संहिता के मूल-भाग में तो केवल कृषि के महत्व में तीन ही शब्द प्राप्त होते हैं उर्दर, धान्य एवं वपन्ति। ऋग्वेद में एक ही अनाज 'यव' का उल्लेख हुआ है। सम्भवत: 'यव' सभी प्रकार के अनाजों का द्योतक है या फिर एक विशेष प्रकार के अनाज जौ का। ऋग्वेद में 'यव' के 15 उल्लेख में से 3 ही मूल पाठ में मिलते हैं।

ऋग्वेद की कृषि व्यवस्था पर कृष्ण मोहन श्रीमाली की टिप्पणी है कि 'हाल ही में एक शोध प्रबन्ध (टुक-टुक घोष 'अर्ली हिस्ट्री आफ राईस इन इण्डिया, दिल्ली विश्वविद्यालय एम.फिल. शोध प्रबन्ध, 1979 ई.') में यह दर्शाने का प्रयास किया गया है' ऋग्वेद में सामान्यतया कृषि आधार सुचारु रूप से स्थापित हो चुका था। इसके पक्ष में चतुर्थ मण्डल का वही 57वां सूक्त उद्धृत किया गया है, जिसे हम पहले ही क्षेपक बता चुके हैं। इसी प्रकार कर्मकाण्डों में अनाजों के प्रयोग के सन्दर्भ में ऋग्वेद 1, 135.8 का उल्लेख करते हुये भी इस बात का ध्यान नही रखा गया है कि प्रथम मण्डल भी सामान्यत: परवर्तीकालीन माना जाता है। यद्यपि धान शब्द का प्रयोग कुछ मूलखण्डों (ऋग्वेद IV.24.7,V.53.13) में हुआ है। किन्तु इसके सन्दर्भ इतने अस्पष्ट है कि उसकी पहचान किसी विशेष अनाज से निश्चित रूप से नही की जा सकती है। उत्तर वैदिक साहित्य में चावल के विशद् उल्लेखों के आधार पर यह कहना कि ऋग्वेद में भी लोगो का इसका ज्ञान था, एक जबरदस्ती वाला तर्क प्रतीत होता है। कुल मिलाकर हम इस मत को दोहराना चाहेंगे कि ऋग्वेद से प्राप्त आर्थिक जीवन के चित्र में कम से कम आरम्भिक चरणों में कृषि का महत्व पशुचारण की तुलना में बहुत कम था। (प्राचीन भारत का इतिहास, पृ.सं. 124)

वैदिक-गौ सूक्त

कु. पूजा गोयल(शोधच्छात्रा) सहारनपुर

ऋग्वेद के षष्ठ मण्डल का 28वां सूक्त 'गौ' सूक्त के नाम से अभिहित है। इसके अतिरिक्त शुक्ल यजुर्वेद तथा अथर्ववेद में भी 'गौ' का स्तवन किया गया है।

वेदों में 'गौ' ऋषियों के याज्ञिक आचार का एक महत्त्वपूर्ण अंग थी। वेदों में यज्ञादिक विधियों के सम्पादन में 'गौ' की महत्ता को विशेष रूप से प्रतिपादित किया गया है। यज्ञ में हवि आदि देने में 'गौ' के दूध, घी एवं दही विशेषरूप से प्रयोग में आते थे। इसके साथ ही 'गौ' यज्ञ सम्बन्धी समस्त ऋत्विजों की तथा यजमान की आयु को बढ़ाने वाली, यज्ञ के समस्त कार्यों का सम्पादन करने वाली, समस्त देवताओं का पोषण करने वाली अर्थात् दुग्धादि हवि-पदार्थ देने वाली हैं।

शतपथ ब्राह्मण में भी कहा गया है कि गौ मानव-जाति को प्रतिधुक्(ताजा दुग्ध), शृत(गरम दुग्ध), शर(मक्खन निकला हुआ दुग्ध), दही, मट्ठा, घृत और मक्खन आदि पदार्थ देकर अनन्त उपकार करती है। जिसको खा-पीकर आरोग्य, बल, वृद्धि की कामना की गई है। गौ के संरक्षण के लिए वैदिक ऋषि सतर्क थे। गौ की रक्षा करने तथा वध न करने का आग्रह ऋषियों की वाणी में मिलता

है। गौ के कल्याणकारी स्वरूप का अवलोकन कर ऋषियों ने गौ के लिए आवश्यक जल, चारा, गोष्ठ आदि की स्वच्छा पर भी ध्यान दिया। ऋग्वेद के कुछ मन्त्रों में गौओं की गोष्ठ(गोशाला) में आकर सुखपूर्वक दीर्घ-काल तक अपनी बहुत सी सन्तानों के साथ रहने की प्रार्थना भी की गयी है। इसके साथ ही गौओं की पुष्टि और निरोगता के सन्दर्भ में भी ऋग्वेद में वर्णन प्राप्त होता है।

वैदिक ऋषियों की दृष्टि में 'गौ' का कल्याणकारी रूप केवल कपोल-कल्पना नहीं अपितु आधुनिक विज्ञान भी इस तथ्य को स्वीकार करता है कि गौ से प्राप्त दुग्ध, दही, घृत, गोमय-मूत्र आदि तत्त्व बहुत उपयोगी हैं। प्रस्तुत शोधपत्र में इन्हीं बातों को विस्तार से स्पष्ट किया जायेगा।

ऋग्वैदिक कृषि-व्यवस्था का वर्तमानकालिक महत्त्व

सन्तोष कुमार मिश्र(शोधच्छात्र) सर्वोदय पी.जी. कॉलेज, घोसी- मऊ (उ.प्र)

अन्न मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताओं में प्रमुख है। मनुष्य अपने प्रादुर्भाव काल से ही क्षुधा-तृप्ति के लिए प्रयत्नशील रहा है। अन्नोत्पत्ति के लिए कृषि की समुचित व्यवस्था का वर्णन हमें सर्वप्रथम ऋग्वेद में ही प्राप्त होता है। उत्तम खेती के लिए खेत को बार बार जोतना, हल जुती क्यारी में बीज का बोना, फसल को आवश्यकतानुसार सींचना तथा पक जाने पर उसे काटना इत्यादि ऋग्वेद में यथावसर वर्णित है। ऋग्वैदिक मानव खेती की सिंचाई के लिए केवल वर्षा पर ही निर्भर नहीं हैं, अपितु कुओं एवं जलाशय आदि के निर्माण पर बल देता है। ऋग्वेद के दशम मण्डल के अनेक सूक्तों में भूमि की उर्वरकता एवं व्यवस्थित खेती का विवरण देखा जा सकता है।

वस्तुतः भारत एक कृषि प्रधान देश है। आज जीविका के अनेक साधन उपलब्ध होने पर भी हमारी अर्थव्यवस्था पूरी तरह कृषि पर ही टिकी है। वैसे तो हमारा देश कृषि के क्षेत्र में अपार उन्नति कर चुका है। मशीनी युग होने के नाते वर्तमान में खेती में यान्त्रिक प्रयोग तथा बीज शोधन जैसी प्रणाली के विकास से अन्न की प्रचुरता देखी जाती है, किन्तु अन्न की गुणवत्ता की प्रश्न प्रमुख रूप से उभरा है।

आज दीर्घायुष्य की कामना रखने वाले प्रत्येक मनुष्य के लिए हितकारी अन्न की आवश्यकता है, जो ऋग्वैदिक कृषि-व्यवस्था पर अमल करने से ही प्राप्त हो सकता है।

प्रस्तुत शोध-पत्र के माध्यम से ऋग्वेद में स्थित कृषि सम्बन्धी उन विवरणों पर प्रकाश डाला जायेगा, जिनका महत्त्व वर्तमानकालिक खेती में भी अक्षुण्ण बना हुआ है।

ब्राह्मणकालीन कृषि एवं पशुपालन

विजय शंकर द्विवेदी वरिष्ठ शोध अध्येता, संस्कृतविभाग, इ.वि.वि. इलाहाबाद

अन्न ही ब्रह्म है, सम्पूर्ण प्राणियों का जीवनाधार है। इसलिए ब्राह्मण ग्रन्थों में कृषि कर्म को महत्त्वपूर्ण बताया गया है। साथ ही साथ कृषि का उन्नत स्वरूप भी दृष्टिगोचर होता है। ब्राह्मण काल में जिस किसान के पास अधिक अन्न पैदा होता था। वह समृद्ध एवं धनवान् माना जाता था। कृषि करने का महान् स्थान भूमि को बताया गया है। ब्राह्मण काल में भूमि को कृषि योग्य बनाकर हल से जोतकर बीज बोया जाता था एवं खाद का भी प्रयोग किया जाता था। कृषि में मुख्य चार प्रक्रिया होती थी। कृषन्तः, वपन्तः, लुनन्तः एवं भृजन्तः। (शतपथ 1.6.1.3-2.7.2.6) ब्राह्मण कालीन हल बड़े आकार के होते थे जिसमें कम से कम छह बैल जोते जाते थे। बैलों के अतिरिक्त ऊँट और अश्व का भी प्रयोग किया जाता था । कृषि से अच्छी फसल प्राप्त करने के लिए सिंचाई की अत्यधि क आवश्यकता होती थी। किसान वर्षा पर निर्भरता के साथ ही सिंचाई के लिए कूपों, तालाबों आदि की भी व्यवस्था किया करते थे। वर्षा के समय किसान खुशी के गीत गाते थे। (ऐतरेय ब्राह्मण 21.3) कृषि को उपजाऊ बनाने के लिए गाय के गोबर को खाद के रूप में प्रयोग किया जाता था। खेतों को छोटे-छोटे टुकड़ों में बांटकर कृषि की जाती थी। प्रमुख फसलों में 'जौ' की खेती की जाती थी। क्योंकि 'जौ' में ओषधपरक गुण विद्यमान रहते थे। इसे आधुनिक वैज्ञानिक भी स्वीकार करते हैं। जौ के पश्चात् धान की खेती

को महत्त्व दिया जाता था। उस समय भी कम से कम दिनों में पकने वाली धान को प्राथमिकता दी जाती थी। रोपाई विधि का प्रयोग किया जाता था। इसके अतिरिक्त गेहूँ, तिल, उड़द, खल्व, प्रियगु(काकुनि) श्यामक, मसूर आदि की खेती की जाती थी।

इन्द्र जौ जो आजकल गेहूँ में खरपतवार माना जाता है उसका ब्राह्मण काल में सत्तू बनाया जाता था। (शतपथ ब्राह्मण 12.7. 1.3. , 12.9.15) ब्राह्मण काल में लोग गुड़ के शौकीन थे जिसका प्रयोग भिन्न-भिन्न रूपों में करते थे इसलिए गन्ने की खेती करते थे। इसके अतिरिक्त फलों के लिए बाग भी लगाते थे। रूई के लिए कपास तथा सेमल का प्रयोग करते थे। राजा भी प्रजा को कृषि कार्य में प्रेरित करता था। कृषि की सफलता के लिए देवी-देवताओं की आराधना की जाती थी तथा नये अन्न को पहली बार ग्रहण करने के अवसर पर उत्सव मनाया जाता था।

कृषि कर्म के अतिरिक्त पशुपालन भी किया जाता था। मुख्य रूप से दुग्ध के लिए गाय तथा भैंस पाला जाता था। बकरी के दूध को उत्तम माना जाता था। क्योंकि अनेक प्रकार की वनौषधियों को ये चरती थीं। बैल कृषि करने के लिए पाले जाते थे। अश्वों को यातायात के लिए तथा ऊँट और गदर्भ का भारवाहक के रूप में प्रयोग किया जाता था। भेड़ के बाल का प्रयोग ऊन के लिए किया जाता था। साथ ही साथ कुत्ते और कुक्कुट भी पाले जाते थे। हाथी पालन गौरव की बात होती थी। उसे राजकीय सवारी समझा जाता था। इस प्रकार ब्राह्मण काल में कृषि तथा पशुपालन की उपयोगिता तथा कलात्मकता दोनों ही रूपों में उच्च स्तरीय थी।

वैदिक साहित्य में कृषि विज्ञान

डॉ. देवी प्रसाद द्विवेदी रा.सं.सं.(मानित विश्वविद्यालय)लखनऊ परिसर

वैदिक साहित्य में कृषि का महत्त्वपूर्ण स्थान है। कृषि के बिना अन्नोत्पादन सम्भव नहीं है। अन्नोत्पादन से सम्बन्धित कृषि-कर्म हेतु विभिन्न उपयोगी निर्देशन प्राप्त होते हैं, जैसे-

शुनं वाहाः शुनं नरः शुनं कृषतु लांगलम्।
शुन वरत्र बंध्यन्तां शुनमष्ट्रामुतदिंगय।।ऋ. 4.56.4

बिना क्षेत्र जोते कृषि समृद्धि असंभव है। अतः 'शुनं कृषतु लांगलम्' में वर्णित कृषि यन्त्र हल के फाल के उपयोग के बिना कृषि असंभव है। हल की उपयोगिता के विषय में निम्नलिखित मन्त्र द्रष्टव्य है-

यवं वृकेणाश्विना वपन्तेषं दुहन्ता मानुषाय दस्त्रा। ऋ. 1.117.2

उपर्युक्त मन्त्र में हल द्वारा जौ बोने का वर्णन है। वर्तमान काल में भी बीज वपन करने के लिये हल का महत्त्व अत्यधिक है। कृषि कार्य के लिए जल की अत्यधिक आश्यकता पड़ती है। ऋग्वेद में जल को गोघृत एवं दुग्ध के समान बताया गया है।

क्षत्रस्य पते मधुमन्तमूर्मि धेनुरिवपयो अस्मासु धुक्ष्व।
मधुश्चुतं घृतमिव सुपूतमृतस्य नः पतयो मृलयन्तु।। ऋ. 4.58.2

आधुनिक वैज्ञानिक भी स्वीकार करते हैं कि जल का कोई विकल्प नहीं है। कृषि विज्ञान के अन्तर्गत कृषि-उपकरण, खाद, बीज आदि के साथ सिंचाई का बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। निकामे-निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु- ।। यजु 22.22।। अर्थात् कृषि कार्य के लिए अनुकूल समय पर मेघ जल की वर्षा करें। कृषि विशेषज्ञों की भी स्तुति की गई है।

नमो मीढुष्टमाय। नमो वीध्याय च।
नमो मेध्याय च। नमो अतप्याय च।
नमो विद्युत्याय च। नमो वर्ष्याय च। यजु. 16.29.38

यजुर्वेद में यज्ञ के द्वारा वृष्टि की कामना की गई है- वृष्टिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्। यजु. 18.9।। वैदिक साहित्य में कृषि का बड़ ही सुन्दर वर्णन किया गया है, जो कि आधुनिक युग में भी प्रासंगिक है।

गौ संस्कृति : भारतीय संस्कृति का मूलाधार

डॉ. मीरा त्रिपाठी महिला महा. किदवईनगर, कानपुर

भारतीय संस्कृति कर्म-प्रधान है। यज्ञ भी कर्म का ही एक रूप है। जिस प्रकार यज्ञचक्र गौ के बिना सम्भव नहीं, उसी प्रकार कर्म-चक्र को भी सुन्दर, सुखद और अनुकूल बनाने के लिये गौ की आवश्यकता है। गौ के पाँचों गत्यों का उपयोग जिस प्रकार यज्ञ में होता है, उसी प्रकार मानव-जीवन में भी पंचगत्य का बहुत उपयोग है। वेद में गौ की इतनी महिमा लिखी है कि देवताओं की माता अदिति को 'धेनू' कहा गया है और देवताओं को गोजात बताया गया है। यत्र-तत्र दूध और घी की आहुति को 'इडा' कहा गया है। वाजसनेयी संहिता में गौ को चित्त, मन, धी तथा दक्षिणा आदि अनेक नामों से अभिहित किया गया है। यही नहीं अथर्ववेद में तो 'रूपायाध्न्ये ते नमः' कहकर गौ की देववत् पूजा का विधान है। भारत की संस्कृति मूलतः गौ संस्कृति है।

वैदिक युगीन कृषि का स्वरूप

डॉ० रमाकान्त वरिष्ठ प्रवक्ता (प्राचीन इतिहास) नागरिक पी.जी. कॉलेज जंघई, जौनपुर

वेद भारतीय साहित्य रूपी ज्ञानराशि के सर्वप्राचीन ग्रन्थ हैं, जिनमें भारतीय आर्यो के धार्मिक जीवन का सर्वांगीण चित्रण मिलता है। यद्यपि वेदों का वर्ण्य विषय पूर्णतया धर्म से सम्बन्धित है; फिर भी इन ग्रन्थों में प्रकारान्तर से आर्यो के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक जीवन की स्पष्ट झलक मिलती है।

हमारे आज के जीवन के विभिन्न पक्षों का मूल आधार वेद युगीन जीवन है जो निरन्तर विकसित होकर आज इस मुकाम पर पहुंचा है। इस दृष्टि से हमारे लिए वेदों का महत्व विशेष रूप से बढ़ जाता है। अत्यन्त प्राचीन काल से ही कृषि भारतीय जीवन का मूल आधार रही है। अप्रत्यक्ष रूप से हमारा सारा व्यापार कृषि पर ही आधारित है।

भारत तथा विश्व के सम्बन्ध में कृषि की शुरूआत मध्य पाषाणिक युग में स्त्रियों द्वारा किचेन गार्डेन के रूप में होती है। मध्य पाषाणिक युग से लेकर अद्यतन कृषि का विकास अनेक आयामों तथा अन्तर्द्वन्द्वों से गुजरा है। वैदिक युगीन कृषि भी भारतीय कृषि के विकास का एक महत्वपूर्ण चरण है। वेदों में हमें तत्युगीन कृषि के विभिन्न पक्षों का सुन्दर परिचय मिलता है। इस शोध पत्र में वैदिक ग्रन्थों को आधार मानकर वैदिक युगीन **कृषि योग्य भूमि, भू-स्वामित्व, कृषि सम्बन्धी उपकरण, खेती की पद्धति, उत्पादित अनाजों की कोटियां, खाद देने की पद्धति, सिंचाई के साधनों का प्रयोग करने तथा कटाई-मड़ाई आदि की विवेचनोपरान्त वैदिक युगीन कृषि के स्वरूप को समग्रता में प्रस्तुत किया गया है।** विगत कुछ वर्षो में भारतीय इतिहास के अनुसंधानकर्ताओं यथा- प्रो0 बी0 बी0 लाल, स्व0 डॉ0 एस0पी0 गुप्ता, डॉ0 भगवान सिंह, शिवाजी सिंह आदि ने यह स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया है कि हड़प्पा सभ्यता और वैदिक संस्कृति दोनों ऐ ही संस्कृति के शहरी तथा ग्रामीण स्वरूप हैं। ऐसी स्थिति में वैदिक कृषि का स्वरूप एक नया आयाम प्राप्त करेगा। इस शोध पत्र में उक्त अवधारणा के आलोक में भी वैदिबक कृषि के स्वरूप के सम्बन्ध में कुछ सम्भावनाओं की पड़ताल की गयी है।

वैदिकवाङ्मये वर्णिताः कृषिविषयकसन्दर्भाः-एकः परिचयः

डॉ. मिलिन्द एस. जोषी, संशोधनाधिकारी, प्राच्यविद्यामन्दिरम्, म.स.विश्वविद्यालयः, बड़ोदरा, गुजरात

कृषिः सर्वेषामपि प्राणिनां विशेषतः मानवानां जीवनाधारो वर्तते। कृषिः न केवलं भोज्यान्नं ददाति, अपि तु कार्पासादिकं शणादिकं व्यावसायिकं वस्तुजातं चापि कृष्या एव लभ्यन्ते। आयुष्यप्रदायिन्यः ओषधयः प्रसाधनसम्भाराणि पशूनामाहारादिकं च कृषिसाध्यमेव। कृषिः समाजस्य सार्वकालिकी आवश्यकता वर्तते। अतः कृषिविज्ञानस्य उपादेयता प्रतिदेशं सर्वदा भवति। कृषिविकासमाध्यमेन राष्ट्रविकासस्य सूत्रं भवति। वैदिकसाहित्ये कृष्युत्पादनानां गुणवर्धनाय परिमाणवर्धनाय च उर्वरकाणां योगाः, कर्षणसेचनवपनादीनामुल्लेखः प्राप्यते। कृषेः सम्बन्धो धर्मार्थकामेति त्रिभिः सह वर्तते।

अथर्ववेदे कृषिविषयकानि बहूनि सूक्तानि प्राप्यन्ते। कृषिविषयके सूक्ते कर्षणप्रक्रिया, लाङ्गलेन बीजवपनं सेचनम् ओषधि कर्तनमित्यादिः विधिः वर्णितः। वृष्टिकारकतत्त्वानां मरुत्-पर्जन्य-प्रजापति-वरुण-मण्डूक-वात-इत्यादीनां वर्णनं प्राप्यते। वपनविधिः ओषधिभेदाः पादपावयवादयः विविधसूक्तेषु वर्णिताः सन्ति। अथर्ववेदे एकस्मिन् सूक्ते कृषिक्रमस्य क्रमिकविवेचनं प्राप्यते। अथर्ववेदे बीजवृद्धौ बाधकानां तत्त्वानामुल्लेखः तद्रक्षणोपायोऽप्युल्लेखितः। अथर्ववेदस्य पृथिवीसूक्ते नाना-ओषधीर्बिभ्रती नानावर्णरसा पृथिवी मातृरूपेण स्मृता स्तुता च। "माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः" इति उद्घोषः मानवस्य पृथिव्याः सम्बन्धस्य विधायकोऽस्ति।

वैदिकसंहितासु ऋग्वेदः प्राचीनतमः इति सर्वेषामेकमतं वर्तते। विश्वस्य प्राचीनतमा सिन्धूपत्यकायाः सभ्यता वैदिकसमाजस्य समानान्तरमेव प्रतीयते। वैदिकऋषयः कृषिविज्ञानस्य तत्त्वानां सम्यग् ज्ञातार आसन्। अनेकेषु सूक्तेषु कृषिविषयकतत्त्वानां विवेचनं प्राप्यते। वैदिक ऋषिः कथयति-कृषिः समृद्धिं कर्म इति कृत्वा दुर्व्यसनापेक्षया कृषिं कृत्वा वित्तार्जनस्य उपदेशं कृतवान्-अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमत् कृषिस्व, वित्ते रमस्व बहुमानः।। **ऋग्वेद-5/83/10।।**

वेदेषु कृषिविज्ञानम्

प्रकाश चन्द्र जांगी शोधच्छात्रः (Ph.D.) श्रीलालबहादुरशास्त्रिराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठम

संसारेऽस्मिन् मानवः अन्नेन विना जीवितुं न शक्नोति। वस्तुतस्तु मानवस्य जीवनमन्न-मेवाधारीकृत्य तिष्ठति। तदन्नमपि कृषेरुत्पद्यते। अत एव मानवजीवनस्य आधारस्तु कृषिरेवास्ति। यथाथर्ववेदे उक्तम्-

जीवन्ति स्वधयाऽन्नेन मर्त्याः।1।

वेदेषु कृषिः कृषियन्त्राणि कृषिपद्धतिश्च ज्ञानबीजरूपे प्रतिपादिता अस्ति। अथर्ववेदस्य तृतीयकाण्डे त्वेकं कृषिसूक्तमेवास्ति। यस्य सूक्तस्यारम्भ एवं भवति।

सीरा युंजन्ति कवयो युगा वि तन्वते पृथक्।

धीरा देवेषु सुम्नया।।2।।

यजुर्वेदस्य शतपथब्राह्मणे तु कृषिकार्यमिदं चतुर्भिशशब्दैः प्रतिपादितमस्ति। यत्र कृषेः कृते कृषवन्तः वपन्तः लुनन्तः मृणन्तश्चेति ३ शब्दाः वर्णितास्सन्ति। सा च कृषिः वृष्टेरूपरि निर्भरा भवति। तत्रैव प्राचीनकाले भारते वृष्टिज्ञानाय यान्त्रिकविधयोऽपि प्रकटिता आसन्। यत्र नदीजलतलांकनेन कुम्भप्रयागेन तुलाप्रयोगेन च आगामिनी वृष्ट्यादेः यान्त्रिकैर्जनैः पूर्वानुमानं पूर्वोद्घोषणा वा क्रियते स्म। एवं वेदेषु विविधस्थलेषु अन्ननामानि अन्नप्रकाराः सिंचनशिक्षा बीजवपनशिक्षा च विशदतया प्रतिपादिता सन्ति। परञ्च एताषां विविधशिक्षाणां विवेचनं वर्णनं वा मया सविस्तरं शोधपत्रे करिष्ये।

वैदिकसाहित्ये कृषिविज्ञानम्

प्रो. धनश्याम.जे.भोजविया संस्कृत व्याख्याता, यू.एल.एम.वोरा आदर्श एण्ड कॉमर्स कॉलेज, सायला-जि. सुरेन्द्रनगरम्

अस्माकं देशः कृषि प्रधानदेशः, कृषिः भारतीय अर्थव्यवस्थायाः मुख्याधारः। अधुना कृषि पद्धतौ बहुविधं संसोधनं जातं किन्तु तस्य मूलाधारः तु वेदाः एव। अस्मन् शोधपत्रे मया वेदकालीन् कृषिपद्धतिः, कृषे प्रकाशः, भूमेः प्रकाशः, क्षेत्र प्रकाशः, क्षेत्र कर्षणपद्धतिः, कृषिसेचन व्यवस्था, कृषेः साधनानि, पाक संरक्षणं सस्यानां वर्णनम्, इत्यादिनां विषयानामुपरि विवेचनं कर्तुं प्रयत्नः कृतोऽस्ति।

वेदे कृषिविज्ञानम्

डॉ. डायालालः एम. मीकरिया श्रीसोमनाथसंस्कृतविश्वविद्यालयः वेरावलम्, (गुजरातप्रान्तम्)।

वेदः भारतीयसंस्कृतेः आत्मा अस्ति। तस्मिन् निहितं तत्त्वज्ञानम् अतुलनीयम् अस्ति। अद्य यत् विद्यमानम् अस्ति, पूर्वे यत् विद्यमानम् आसीत् पश्चात् च यत् विद्यमानं भविष्यति तत् सर्वं वेदे अस्ति। वेदः ज्ञानस्य भाण्डागारः अस्ति। वेदे भारतीयसंस्कृतेः समुद्धेः

स्पष्टचित्रं दृश्यते। वैदिककाले जनाः विविधरीत्या सुखभोक्तारः आसन्। यथा आधुनिककाले जनाः नूतन-आविष्काराणाम् अन्वेषणं कृत्वा सुखं प्राप्नुवन्ति तथैव प्राचीनकाले अपि जनाः नूतन-संशोधनं कृत्वा सुखं प्राप्नुवन्तः। तस्मिन् काले अपि जना निपुणाः आसन्। पशुपालनम् कृषि च अकुर्वन्। वैदिकालस्य कृषिकार्यम् अपि ध्यानाकर्षकम् आसीत्। आधुनिककाले जनाः कृषिकार्यं कृत्वा यथा धनधान्यं प्राप्नुवन्ति आनन्दं च अनुभवन्ति तथैव तदा अपि जनाः वैज्ञानिकीं कृषिं कृत्वा आनन्दान्विताः आसन्। अक्षसूक्ते ऋषिः पश्यति यत्-

अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित् कृषष्व......।

अत्र अपि कृषिम् एव प्राधान्यं ददातु एतादृशः भावः अस्ति। वैदिककाले कृषेः अधिकं महत्त्वम् आसीत्। अस्मिन् शोधपत्रे वैदिककालस्य जनानां कृषिकर्मस्य अन्वेषणम् अस्ति। वैदिकजनानां कृषिपद्धत्यः किदृश्यः आसन्, कृषिकर्मणि पशूनां किदृशः उपयोगः कृतवन्तः आसन्, कृषिकार्ये कानि कानि साधनानि आसन्, पाकस्य रक्षणं कया रीत्या कृतवन्तः आसन्, इति विषयानां अस्मिन् शोधपत्रे वर्णनम् अस्ति।

अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित् कृषस्व(कृषिविज्ञानम्)

डॉ. जयनारायण पाण्डेयः स्ना.सं.विभाग, राँची (झारखण्ड)

कृषिविज्ञानमपि इतस्ततः वर्णयति। तेषां विवेचनमेवात्र क्रियते।

ऋग्वेदस्य दशममण्डले कृषिकर्मणः वैशिष्ट्यं विवेचितं विद्यते। मन्त्रद्रष्टारः ऋषयः कृषिं सौभाग्यवर्द्धकं हृदयशोधकं मानवतायाः विकासञ्च वर्णितवन्तः। प्रसिद्धेभ्यः अनेकविधश्रमेभ्यः कृषिरेव श्रमाणां पराकाष्ठारूपेण स्वीकृतो विद्यते। अतएव ऋषिः मानवानां हिताय कृषिनिमित्तम् उपदिशति- **अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित् कृषस्व वित्ते रमस्व बहुमन्यमानः। तत्र गावः कितव तत्र जाया तन्मे विचष्टे सवितायमर्यः॥(ऋ. 10.34..13)** अत्र द्यूतं परित्यज्य कृषिकर्मणा एव कुटुम्बीजनस्य भरणपोषणाय उपदेशः प्रदत्तोऽस्ति इत्थमनेके मन्त्राः कृषिकर्मकरणार्थमादिशति। शुक्लयजुर्वेदः कथयति-'कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा।" शोभनकृषिकर्मणा अभिवर्द्धिता सुशोभिता भूमिमात अस्मान् सर्वप्रकारेण समुन्नतिं प्रददातु। अस्माकं राजानः कृषिं वितनोतु। मानवाः तण्डूलानां गोधूमानाञ्च उत्पादनं प्रकर्षेण कुर्वन्तु। अथर्ववेदस्य तृतीयकाण्डस्य सप्तदशसूक्तं कृषिसूक्तं कथ्यते। मन्त्रद्रष्टारः ऋषयः कृषिं सौभाग्यवर्द्धकं वर्णयन्ति। कृषिरेकः उत्तमः उद्योगः, मानवजीवनस्य उद्धारकश्चास्ति। ऋतो आनुकूल्यं भूमेः उत्कृष्टत्वं कठोरश्रमञ्च कृषिनिमित्तम् आवश्यकं भवति। हलकर्षितां पृथिवीम् इन्द्रदेवः उत्तममेघेन सिञ्चतु, सूर्यदेवाश्च उत्तमकिरणैः ताम् अभिरक्षन्तु, एतदर्थमृषिभिः कामना कृतास्ति- "सीरा युञ्जन्ति कवयो, युगा वितन्वते पृथक्। धीरा देवेषु सुम्नयौ।"(अथर्ववेद 3.17.1) देवेषु विश्वसन्तः विज्ञजनाः विशेषसुखकामनया भूमिं हलेन कर्षन्ति स्म। वृषभस्कन्धेषु स्थापितां युगामन्यत्र स्थापयन्ति स्म। लाङ्गलेषु अयस्निर्मितं फलकं काष्ठमयं मुष्टकं च भवति स्म। हलेषु प्लावनाय गो वृषभमेषछागादीनाञ्च व्यवहारः अभवत्। यज्ञैः हवनीयद्रव्यैः वायुसूर्यादयः देवाः श्रेष्ठां रसपूर्णाम् औषधिं प्रदानाय प्रार्थिताः अभवन्। अस्माभिः प्रार्थिताः एते देवाः नभसि विद्यमानं जलं मेघरूपेण वर्षणं कृत्वा भूमिं सिञ्चन्तु। अस्माभिः वन्दिता धरा सर्वदा उत्तमान्नं प्रददातु। अथर्ववेदस्य तृतीयकाण्डस्य चतुर्विंशतिसूक्ते सप्तमन्त्राः कृषकसम्बन्धिताः विद्यन्ते। अनेके मन्त्राः गोसम्बद्धाः सन्ति। कृषिसूक्ते आलंकारिकभाषया कृषिः एकः उत्तमः उद्योगः वर्णितः अस्ति। बुद्धिमन्तः ज्ञानिनश्च दैवीसुखार्थं मानवकल्याणार्थञ्च कृषिं कुर्वन्ति स्म। गावः अस्माकं भौतिकम् आध्यात्मिकञ्च उन्नतेः प्रधानबलाः आसन्। अनेन प्रतीयते यद् वैदिककाले कृषिः सम्यक् प्रकारेण भवति स्म।

वैदिक साहित्य में अर्थव्यवस्था : कृषि

खिलानन्द जोशी ऋषिकुल विद्यापीठ, ब्रह्मचर्याश्रम संस्कृत महाविद्यालय, हरिद्वार

वैदिक अर्थ-व्यवस्था का प्रमुख आधार कृषि था। कृषि से उत्पन्न अन्न आजीविका का मुख्य साधन था, अतएव वैदिक काल में कृषि की गुणवत्ता पर विशेष ध्यान दिया गया था, मानव मात्र का जीवन अन्न पर निर्भर है। अन्न की प्राप्ति का प्रमुख साधन कृषि है अतः कृषि समस्त मानवों के जीवन का आधार है। सृष्टि की उत्पत्ति के साथ ही अन्न, वस्त्र, आवास इत्यादि की समस्या

उत्पन्न हुई. इसके निवारण के लिए कृषि विद्या का आविष्कार हुआ। ऋग्वेद और अथर्ववेद से ज्ञात होता है कि कवि (मेधावी, दूरदर्शी) और धीर (विद्वान्) मनुष्य कृषि कार्य को अपनाते थे। कृषि गौरव का कार्य था। अतः इन्द्र और पूषा (पूषन्) देवों को इसमें लगाया गया था। अथर्ववेद का कथन है कि मानव जीवन की प्रमुख समस्या अन्न है, कृषि और अन्न पर मनुष्यों का जीवन निर्भर है। अतः इस समस्या का समाधान करने के लिए कृषि की उपज बढ़ाना उसके सहायक तत्त्वों बीज आदि की उन्नत किस्म तैयार करना आवश्यक है।

IRRIGATION IN VEDAS

Dr. S. Ramadevi, Senior Lecturer in Sanskrit, Sri Ramachandra Degree P.G. College, Hyderabad

Nature is the most worshipped god or goddes of our ancient people. Volumes are written on the worship of nature. Nature is full of resources. One of such is rainfall. A number of references are found in Rg. Veda, Yajurveda etc. where rainfall is described as the chief source of water. Water along with soil, plays an important role in bringing up crops. Our ancient people used to perform sacrifices to get rains in proper time. Hundreds of verses are written in Vedas in praise of gods of rain such as indra, Varuna, Vishedeva. Rainfall is the source of agriculture indeed the life itself depends upon it, therefore one should with full efforts acquire the knowledge of rainfall.The poper enumerat quite a number of examples to astablish that our ancient people recognized the importance of watere, and that they have enjoyed well maintained irrigation methods. It is attempted here in this paper to bring out quite s number of hymns form Vedic literature which describe the different sources of that could be useful for the Irrigation.

वैदिक शिक्षा-दर्शन



भारतीय शिक्षा का विकास : वैदिक काल में

डा. रश्मि पाण्डेय प्रवक्ता-रामजानकी कन्या महाविद्यालय, सरायँ

भारतीय शिक्षा का जो स्वरूप आज दिखायी देता है वस्तुतः वह प्रारम्भ से ऐसा नहीं था। इसके विकास का विराट् इतिहास है जो विभिन्न चरणों में, विकसित होते हुये आज इस स्वरूप में विद्यमान है।

विश्व की प्राचीनतम शिक्षा व्यवस्था 'यज्ञशाला' के रूप में थी। प्राथमिक विद्यालय कहिये या विश्वविद्यालय सब कुछ यह यज्ञशाला ही थी। आचार्य, उपाचार्य या प्रवक्ता ऋषि मुनिगण होते थे तथा यज्ञ में सहायता करने वाले शिष्यगण होते थे, प्रातःकाल एवं संध्याकाल में यज्ञ किया जाता था, यज्ञ प्रधान ऋषियों द्वारा किया जाता था तथा शिष्यगण अनिवार्य रूप से यज्ञ के समय उपस्थित रहते थे। यज्ञ के पश्चात् ज्ञान चर्चा होती थी। ऋषि मुनिगण प्रमुख वक्ता होते थे शिष्यगण मूक श्रोता ही नहीं होते थे वरन् अपनी समस्यायें भी ऋषियों के सम्मुख रखते थे जिसका निवारण ऋषि मुनियों द्वारा किया जाता था। ज्ञान चर्चा मन्त्रों पर आधारित होती थी। ऋषियों को ज्ञान विज्ञान सम्बन्धी अनेकों मन्त्र कण्ठस्थ होते थे। जिसका वर्णन वे स्वयं करते थे। मन्त्रों में प्राचीनतम् मन्त्र गायत्री मन्त्र था। अनुमानतः यह मन्त्र लगभग 8000 वर्ष पुराना था और इसका दर्शन सर्वप्रथम विश्वामित्र को हुआ था। मूलतः भारतवर्ष में ज्ञान एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को स्थानान्तरित हुआ। शिक्षा व्यवस्था का दूसरा स्वरूप प्राचीन काल में गुरुकुल के रूप में मिलता है। काशी भी तक्षशिला और नालन्दा के समय के बीच में शिक्षा केन्द्र के रूप में सामने आया। वैदिक कालीन शिक्षा बहुत ही उच्च कोटि की थी। झोपड़ी में बैठकर नक्षत्रों की गणना, चरक संहिता का आज भी प्रयोग यह सिद्ध करता है।

वेदों में पंचमुखी शिक्षा

मंजू सिंह शोधच्छात्रा, इतिहास लखनऊ विश्वविद्यालय

शिक्षा किसी भी देश की सभ्यता और संस्कृति का अनिवार्य अंग है। शिक्षा के द्वारा न केवल व्यक्ति का सर्वाङ्गीण विकास होता है। वरन् सामाजिक एवं सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण भी इसी शिक्षा से होता है। शिक्षा ज्ञान की साधना है। आत्मज्ञान का प्रकाश है। शिक्षा के उद्देश्य मनुष्य जीवन के उद्देश्यों से भिन्न नहीं है शिक्षा एक प्रणाली है जिससे जीवन के उद्देश्य प्राप्त होते हैं। शिक्षा विकास की उन अन्तर्निहित शक्तियों, कुशलताओं तथा गुणों का विकास करती है। जिससे वह अपनी जीवन के उद्देश्यों को प्राप्त करने में सफलता प्राप्त करता है। मानव जीवन का लक्ष्य है, धर्माचरण के द्वारा अर्थ और काम पुरुषार्थों की साधना करते हुए परम पुरुषार्थ मोक्ष अर्थात्, सत्, चित्, आनन्द स्वरूप परमात्मा की प्राप्ति करना। भारतीय दृष्टि से विद्या का मुख्य उद्देश्य यही बतलाया है- 'सा विद्या या विमुक्तये' इस परम लक्ष्य की प्राप्ति हुए व्यावहारिक पक्ष की शिक्षा भी आवश्यक मानी गयी है।

भारतीय आचार्यों की दृष्टि में शिक्षा का लक्ष्य जीवन निर्माण, मनुष्य निर्माण तथा चरित्र निर्माण है। शिक्षा मानव को शारीरिक, प्राणिक, मानसिक, अन्तरात्मिक एवं आध्यात्मिक पूर्णता प्रदान करती है। इन उद्देश्यों को दृष्टिगत रखते हुए इसे हमने पंचमुखी शिक्षा कहा है जो निम्नलिखित हैं-

1. शारीरिक शिक्षा, 2. व्यावसायिक शिक्षा, 3. मानसिक, 4. नैतिक शिक्षा, 5. आध्यात्मिक शिक्षा।

वैदिकी शिक्षा

सुश्री सुषमा शर्मा लखनऊ

'असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मामृतं गमय, 'विद्ययामृतमश्नुते' वैदिक शिक्षा का उद्देश्य आधुनिक शिक्षा की भांति कौशलोत्पादन कर बालक को जीवित मशीन के रूप में परिवर्तित करना नहीं था, वरन बालक में सदाचार को अधिष्ठित कर आदर्श व्यक्तित्व, उत्तम चरित्र का निर्माण करना, सामाजिक-व्यावसायिक कुशलता प्रदान कर ज़ीवन में स्थायित्व प्रदान करना तथा इनके माध्यम से आदर्श संस्कृति और आदर्श राष्ट्र का सृजन करते हुए मानव-जीवन के परमपुरुषार्थ मोक्ष का मार्ग प्रशस्त करना

ही वैदिक शिक्षा का प्रधान उद्देश्य रहा। वैदिक शिक्षा का ही प्रतिफलन है कि भारत विश्वगुरु बना और यहां के प्रत्येक व्यक्ति को देवतुल्य माना गया। व्यक्ति में अन्तर्निहित शक्तियों के विकास का यह उद्देश्य तभी सफल हो सकता है जबकि उचित मार्गनिर्देश, आदर्श गुरु, संस्कारी बालक तथा आदर्श गुरुशिष्य सम्बन्ध हों। प्रस्तुत शोध पत्र वैदिक शिक्षा प्रणाली पर प्रकाश प्रक्षेपण करेगा। अस्तु।

वैदिक वाङ्मय में शिक्षा-व्यवस्था

हर्ष खत्री (शोधच्छात्रा) गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वैदिक समाज में शिक्षा के प्रचार व प्रसार का दायित्व शिक्षकों के साथ-साथ राजा का भी माना गया है। स्वामी दयानन्द ने वरुण, मित्र, सविता आदि वैदिक देवों का राजपरक अर्थ करते हुए शिक्षा सम्बन्धी कई निर्देश वेदों से ग्रहण किए हैं। दिव्यगुण सम्पन्न, शुभकर्म प्रेरक राजा शिक्षा यज्ञ का प्रचारक व रक्षक होता है। वह वाणी को धारण करने वाले वाचस्पति पुरुषों व उपदेशकों के माध्यम से वेदादि विद्याओं का प्रचार करवाता है।

एक मन्त्र में कोई मनुष्य कह रहा है कि यदि मैं वाणी का व विज्ञान का स्वामी हो जाऊं तो मैं विद्या के इच्छुक विद्यार्थियों को खूब विद्यादान करुं।

शिक्षेयमस्मै दित्सेयं शचीपते मनीषिणे मनीषिणे।
मनीषिणे। यदहं गोपतिः स्याम्।

वेद में शिक्षा के तीन उद्देश्य बताये हैं- मनुष्य का शारीरिक, मानसिक(बौद्धिक) व आत्मिक विकास करना। आचार्य से प्रार्थना की गयी है कि हमारे शरीर के रोगों को दूर करो, हिंसा की भावना को दूर करो, कुटिलता और पाप युक्त बुद्धि को दूर करो। इस प्रकार हमें पापों से दूर करो। इस निबन्ध में वैदिक वाङ्मय में निर्दिष्ट शिक्षा का निरूपण विस्तार से किया जायेगा।

वैदिक शिक्षा का स्वरूप

डॉ. विजेन्द्र शास्त्री गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

शिक्षा की परिभाषा करते हुए श्रुति कहती है कि-'या विद्या सा विमुक्तये' अर्थात् विद्या वह है जो हमें बन्धन से मुक्त कराती है, आत्मज्ञान कराती है। महर्षि दयानन्द के अनुसार जिससे विद्या सभ्यता, धर्मात्मा, जितेन्द्रियता आदि की बढ़ती होवे और विद्या आदि दोष छूटे, उसको शिक्षा कहते हैं। यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय में लिखा है-

'विद्ययाऽमृतमश्नुते' विद्या से अमरत्व की उपलब्धि होती है। योगेश्वर कृष्ण ने भी गीता में कहा है- 'ऋतेज्ञानान्न मुक्तिः' अर्थात् ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं होती है आज भटकाव की स्थिति मे मार्गदर्शन एवं शीतलता, तृप्ति और शान्ति की प्राप्ति के लिए वेद तरु की छाया में बैठकर चिन्तन करना होगा, क्योंकि भगवती श्रुति ही वह गंगोत्री है, जहाँ से पवित्र ज्ञान की भगीरथी प्रवाहित होती है।

वेदों तथा अन्य वाङ्मय में शिक्षा के विषय में उत्तमोत्तम उपदेश प्राप्त होते हैं मैक्समूलर ने अपनी पुस्तक 'इण्डिया ह्वाट कैन इट टीच अस' में एक स्थान पर लिखा है "अगर मैं विश्वभर में उस देश को ढूंढने के लिए चारों दिशाओं में आँखें उठाकर देखूँ, जिस पर प्रकृति देवी ने अपना सम्पूर्ण वैभव, पराक्रम तथा सौन्दर्य खुले हाथों से लुटाकर उसे पृथ्वी का स्वर्ग बना दिया है, तो मेरी अंगुली भारत की ओर उठेगी।" सम्भवतः इस देश की वैदिक ज्ञानगंगा और प्राकृतिक सौन्दर्य-राशि को देखकर ही मैक्समूलर के हृदय में भारत के प्रति अपार श्रद्धा उमड पड़ी होगी।

वेदों में संसार की समस्त विद्याओं के बीज सूक्ष्म रूप से देखें जा सकते हैं। वेदों के अध्ययन के लिए जिन वेदाङ्गों के अध्ययन का निर्देश पतंजलि ने व्याकरण महाभाष्य में किया है उन वेदाङ्गों का मूल भी वैदिक संहिताओं में विद्यमान है।

वैदिक कालीन शिक्षा का स्वरूप

डॉ. सरोज रायजादा प्रवक्ता समाजशास्त्र विभाग, डी.जी. कालेज, कानपुर

वैदिक काल को शिक्षा की दृष्टि से दो कालों में विभाजित किया गया है। प्रारम्भिक वैदिककाल और उत्तर वैदिक काल। उत्तर वैदिक कालीन शिक्षा पर ब्राह्मणीय शिक्षा प्रणाली भी कहते है। 2000 वर्ष लम्बे वैदिक काल की शिक्षा में मूलभूत समानता रही। ज्ञान के विकास के साथ-साथ इसकी पाठ्यचर्या तथा शिक्षण विधियों में भी विकास हुआ।

वैदिक काल में शिक्षा का प्रयोग ज्ञान, विद्या, विनय और अनुशासन के पर्याय रूप में किया जाता था। सामान्यत: परिवारों में विद्यारम्भ संस्कारों और गुरुजनों में उपनयन संस्कार के बाद विभिन्न विषयों में दिये जाने वाले ज्ञान एवं कला कौशल को शिक्षा कहा जाता था। यह संस्कार पूर्णरूपेण शिक्षा से सम्बन्ध था और बालक की शिक्षा इसके बाद से ही अविलम्ब गुरु के सानिध्य में प्रारम्भ हो जाती है। शूद्रों के अतिरिक्त अन्य तीन वर्षो के लिये उपनयन संस्कार अनिवार्य था। वैदिक युग में आचार्य अथवा गुरू का स्थान देवता के रूप में अत्यन्त आदरयुक्त, गरिमामय और प्रतिष्ठित था।

वैदिक युग में नारी-शिक्षा पर विशेष बल दिया जाता था। ज्ञान और शिक्षा में वे किसी भी प्रकार पुरुषों से कम नहीं थी। ऋग्वेद से अनेक ऋषिकाओं के विषय में जानकारी प्राप्त होती है।

वैदिक वाङ्मय में शिक्षा का प्रयोजन

श्रीमती सुनीता कश्यप शोधच्छात्रा संस्कृतविभाग गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

मानव जीवन का परम लक्ष्य वैदिक वाङ्मय में परमाह्लाद बताया गया है। उसकी अनुभूति बिना ज्ञान के सम्भव नहीं है। जैसा कि कहा भी गया है- ज्ञानेन हीनाः पशुभिः समानाः।' मानव में इस पशु सदृशता दोष को पनपने से रोकने के लिये धर्माचार्यों ने संस्कारों में विद्यारम्भ और उपनयन का षोडश संस्कारों में विधान किया है। जिसकी महत्ता को किसी भी रूप में झुठलाया नहीं जा सकता। यह संस्कार प्रथम सोपान के रूप में मानव को संस्कारी बनाता हुआ, उसके अन्तर में निहित गहन अन्धकार का विनाश करता है। शिक्षा के विषय में वैदिक वाङ्मय में पर्याप्त निर्देश उद्धृत है। इन निर्देशों को शिक्षा-शास्त्रीय शब्दावली में शिक्षा के प्रयोजन के नाम से व्यवहृत किया गया है। जिन्हें मानव जीवन के लिये शिक्षा के द्वारा उज्ज्वल भविष्य की कामना की जाती है। वैदिक वाङ्मय में मानवीय जीवन उन्नत बनाने के लिये वैयक्तिक व सामाजिक आधार पर शिक्षा प्रयोजनका आंकलन किया गया है। जिससे मानव आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक नामक तीनों दुःखों के अभिघात से निवृत्त होता हुआ आत्मतत्त्व के अवशेष में तत्पर हो सके। शिक्षा के मुख्य प्रयोजनों में व्यक्तित्व विकास, आचरण की शुद्धता, शारीरिक सम्पुष्टता, अनुशासनात्मक जीवन, सामाजिकता का विकास, राष्ट्रभावना उद्धृत है। जिनका विस्तृत विवरण शोधपत्र में किया जायेगा।

वैदिक शिक्षा पद्धति का स्वरूप एवं महत्त्व

कु. साधना बहुखण्डी शोधच्छात्रा, संस्कृतविभाग, गुरुकुल कांगड़ी वि.वि. हरिद्वार

ज्ञान या शिक्षा एक ऐसा मार्ग है जो हमें सत्य-असत्य, कर्तव्य-अकर्तव्य एवं हित-अहित का निर्णय लेने की योग्यता प्रदान करता है। वेदों में बुद्धि और ज्ञान के अर्थ में मति, सुमति, प्रमति, अनुमति और ब्रह्मन् आदि शब्दों का प्रयोग मिलता है। विद्या से मनुष्य को जीवनशक्ति, यश, प्रतिष्ठा, योगक्षेम, अक्षय-वैभव और श्री आदि की प्राप्ति होती है। वेद में शिक्षा से आत्मिक उन्नति द्वारा मुक्ति या ब्रह्म की प्राप्ति का कथन है- 'सा विद्या या विमुक्तये।' प्रस्तुत पंक्ति भी विद्या के महत्त्व को स्पष्ट करती है।

वैदिक शिक्षा प्रणाली के अन्तर्गत शिक्षाकी ऐसी आदर्श व्यवस्था की गयी थी, जो मनुष्य के भौतिक एव आध्यात्मिक जीवन को सफल बनाने में सहायक थी। तत्कालीन समाज में आदर्श शिक्षकों एवं योग्य शिष्यों द्वारा समाज को समुन्नत एवं सुविकसित बनाने में पूर्णतया योगदान दिया जाता था। शिक्षा को रोचक एवं मनोरंजनपूर्ण बनाने हेतु विविध शिक्षण विधियों यथा- वाद-विवाद विधि,

परियोजना विधि, प्रश्नोत्तर विधि आदि का प्रयोग किया जाता था। शिक्षा ग्रहण करने से पूर्व शिष्य का उपनयन संस्कार होता था और शिक्षा समाप्ति पर शिष्य गुरु को गुरुदक्षिणा देने का भी उल्लेख मिलता है। बालकों के समान बालिकाओं को भी शिक्षा ग्रहण करने की स्वतन्त्रता थी। वैदिक काल मे शिक्षा पद्धति में नैतिक, धार्मिक, आध्यात्मिक एवं मानवीय मूल्यें पर विशेष बल दिया जाता था।

अत: स्पष्ट है कि वैदिक शिक्षा पद्धति की अपनी विशेषतायें हैं जिनका वर्तमान शिक्षा पद्धति में अभाव होने केकारण अनेक समस्यायें उत्पन्न हो गयी हैं। यद्यपि वर्तमान परिस्थितियों में यह सम्भव नहीं है कि प्राचीन वैदिक शिक्षा प्रणाली की पुनर्स्थापना हो सके किन्तु तत्कालीन शिक्षा के उद्देश्य, विशेषतायें, आदर्श शिक्षकों एवं योग्य शिक्षकों की भूमिका, गुरुशिष्य परम्परा आदि को वर्तमान शिक्षा प्रणाली में समाहित कर शिक्षा के स्तर में कुछ तो सुधार अवश्य किया जा सकता है।

वेदों में शिक्षायें एवं वैदिक सूक्तों के अध्ययन का महत्त्व

डॉ. सुधीर पाठक प्रवक्ता, संस्कृत विभाग, चौ.चरणसिंह पी.जी. कॉलेज हेंवरा, इटावा

विश्व में ज्ञान की प्रथम सम्पदा वेद है और वह वेद ऋग्वेद है ऋक् अर्थात् ऋचायें। ये ऋचायें सात प्रकार के छन्दों में गुम्फित हैं और उस गुम्फन में उस अतीतातीत काल का ज्ञान विन्यास पूर्वक समेटा हुआ है सीधे न कहकर विन्यास पूर्वक समेटे जाने के कारण उसकी व्याख्या सरल नहीं है। सरल इसलिए भी नहीं है कि उस अतीत की देववाक् की अर्थप्रकृति की पहचान करना कठिन है। ऋग्वेद के बाद ऋषियों ने पहले यजुर्वेद, सामवेद तथा बाद में अथर्ववेद का साक्षात्कार किया। मुख्य रूप से ऋक्, यजु, साम तीन वेद ही त्रयी नाम से प्रसिद्ध हैं। अथर्ववेद पृथ्वी लोक के अधिक निकट है, इसको लेकर चार वेद होते हैं। वेद की भाषा संस्कृत है।

वेदों की शिक्षा मानवीय जीवन के लिए अत्याश्यक है, क्योंकि इनमें वैदिक मन्त्र, कर्मकाण्ड से सम्बन्धित सामग्री एवं गायन की शक्ति व सिद्धान्त निहित है।

जिन योग्य विद्वानों ने इन प्राचीन धार्मिक ग्रन्थों का जीवन भर अध्ययन किया है, उनके वैदिक सूक्तों के भाव के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न मत है। फ्लीडरर का मत है कि ऋग्वेद की प्रार्थना का प्रारम्भिक, बच्चों की सी निश्चल प्रार्थना के रूप में वर्णन किया जाना चाहिए। ऋग्वेद के आर्य एकेश्वरवादी थे। भले ही यह विचार अस्पष्ट एवं पिछड़ा हुआ क्यों न हो, लेकिन आर्य समाज के संस्थापक इसी मत से सहमति प्रकट करते हैं। जबकि अन्य विद्वान् (राममोहन राय) की सम्मति में वैदिक देवता परमब्रह्म के भिन्न-भिन्न गुणों के आलंकारिक प्रतिनिधि के रूप में हैं।

वैदिक साहित्य में वर्णित नारी शिक्षा का विवेचनात्मक अध्ययन

डॉ. रेखा सिंह प्रा.भा.इतिहास संस्कृत एवं पुरातत्त्वविभाग कन्या गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर हरिद्वार

प्राचीन भारत के सांस्कृतिक इतिहास का अवलोकन करने से विदित होता है कि भारतवर्ष में ईसा से हजारों वर्ष पूर्व ही, वैदिक काल से ही स्त्री शिक्षा की गौरवमयी परम्परा विद्यमान थी। भारतीयआर्यों के समाज में नारी का महनीय स्थान था। उसको पुरुषों के तुल्य ही शिक्षा प्राप्त करने के सम्पूर्ण अधिकार प्राप्त थे। वह किसी भी रूप में पुरुषों से हीन नहीं थी। वस्तुत: वह समाज रूपी रथ के दो पहियों में से एक पहिया थी। वह पुरुष की सहयोगिनी होकर परिवार, समाज और देश की गति-विधियो का संचालन करती थी। वैदिक युग की स्त्रियों के पूर्ण रूप से शिक्षित होने के प्रमाण प्राप्त होते हैं। पुरुष विद्वानों और ऋषियों से वे किसी प्रकार भी कम नहीं थी। वैदिक साहित्य में अनेक ब्रह्मवादिनी महिलाओं का वर्णन है। ब्रह्मचर्य का पालन करके, योग्य पति को प्राप्त करने वाली युवतियों के संकेत हैं। ऋग्वेद के एक मन्त्र में आयु की प्रथम अवस्था में विद्या प्राप्त करने वाली युवा पुत्रियों के वर्णन हैं। एक अन्य मन्त्र में वर्णन है कि युवतियाँ ब्रह्मचारिणी के रूप में विद्या प्राप्त करके योग्य पति को उसी प्रकार प्राप्त करती हैं, जैसे समुद्र से नदी मिल जाती है। यजुर्वेद का एक मन्त्र है कि ब्रह्मचर्य व्रत को पूर्ण करके युवती कन्या का अपने योग्य शिक्षित युवा पति से विवाह होना चाहिए। अथर्ववेद का भी आदेश है कि युवतियों को ब्रह्मचर्य का व्रत का पालन करके अपने योग्य पति को प्राप्त करना चाहिए। इन मन्त्रों के स्पष्ट है कि वेदों ने नारी को पुरुषों के समान ही ब्रह्मचर्य व्रत कापालन करने और विद्या का अध्ययन करने की अनुमति दी है।

वैदिक साहित्य में वर्णित शिक्षा के स्वरूप की वर्तमान परिप्रेक्ष्य में उपादेयता

डॉ. शारदा भण्डारी राजकीय महाविद्यालय सिरोही (राजस्थान)

वर्णों के स्थान, प्रकरण, प्रयत्न, उच्चारण आदि का विशेष विवेचन किया गया है, वह इस पत्रवाचन में अभिप्रेत नहीं है। इस लेख में सामान्यतः ज्ञान आदि की साधनभूत शिक्षा पर ही विचार किया गया है।

शिक्षा के व्युत्पत्तिपरक तीन अर्थ हैं- इनतीनों अर्थों में मुख्यस्थान शक्तिसम्पादन करने की इच्छा का है। अपने में शक्ति सम्पादन अर्थात् सामर्थ्य लाने के दो उपाय हैं, प्रथम स्वानुभव और द्वितीय है दूसरे के अनुभव को ग्रहण करना। वर्तमान में दूसरे के अनुभव को ग्रहण करने के अर्थ में शिक्षा शब्द विशेष रूप से प्रचलित है इसी भावना से आज कुकुरमुत्तों की भाँति हर जगह कोचिंग सेन्टर खुल हुवे हैं, जहाँ पर विज्ञापन चस्पा होता है कि 'अनुभवी व्यक्तियों के द्वारा अध्यापन', '25वर्ष का अध्यापन अनुभव'।

लेकिन वास्तविक रूप से देखा जाए तो प्रधानता स्वानुभव की है, दूसरे के द्वारा दिया गया उपदेश भी जब तक स्वानुभव में न लाया जायेगा तब तक वह सफल नहीं होगा। उपनिषद् में कहा गया है-

अनुभूतिं विना मूढो वृथा ब्रह्मणि मोदते।

प्रतिबिम्बित शाखाग्रफलास्वादनमोदवत्।।

वेदों के अनुसार यह स्वानुभव भी व्यक्तिविशेष के पूर्वार्जित संस्कार और विद्या को ग्रहण करने की क्षमता पर निर्भर रहता है। अर्थात् समान रूप से उद्योग और अध्ययन करने वालों में कुछ तो लक्ष्य से युक्त हो जाते हैं कुछ नहीं हो पाते हैं। इससे स्पष्ट है कि शिष्यगत प्रज्ञा ही नियामिका है।

पैसा कमाने के साधन बने इन कोचिंग सेन्टर में प्रवेश पाने की एक होड़ मची हुई है, जो कि उचित नहीं है। क्योंकि यह जरूरी नहीं है कि उसमें पढ़ने वाला प्रत्येक विद्यार्थी अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सके। वे ही विद्यार्थी लक्ष्य को प्राप्त करते हैं जिनमें ग्रहण करने की शक्ति या सामर्थ्य है। सामर्थ्य के अभाव में जो जीवन के लक्ष्यों से भटक जाते हैं।

परन्तु यह निर्विवाद है कि गुरु के उपदेश से शिष्य का कार्य सरल हो जाता है। प्राचीन वैदिककाल के महर्षियों ने तपोयोग के द्वारा विशुद्ध किये गये अन्तःकरण में जिन अतीन्द्रिय पदार्थों के धर्मों का साक्षात्कार किया था उनका जो स्वानुभव था, वह उपदेश द्वारा उन योग्य शिष्यों में संक्रान्त करते थे जो शिष्य स्वतः उन धर्मो का साक्षात् करने में समर्थ नहीं थे। लेकिन वे शिष्य उन उपदेशों को ग्रहण करने की योग्यता रखते थे और साथ ही उनका आचरण इतना पवित्र था कि वे उन अमूल्य उपदेशों को ग्रहण करके उनका दुरुपयोग नहीं करते थे। वर्तमान काल में भी उच्च वैज्ञानिक तत्त्वों को ग्रहण करने की शक्ति जब तक नहीं होगी तब तक उन(कोचिंग) उपदेश का भी कोई फल होना सम्भव नहीं है।

वैदिक काल में अपने द्वारा अनुभव किये गये ज्ञान का अन्य सामान्य व्यक्तियों में वितरण करना कर्तव्य समझा जाता था। यही गुरु-शिष्य परम्परा का बीज है। अध्ययन-अध्यापन के प्रारम्भ में गुरु-शिष्य 'सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु ।.........' शान्ति पाठ में उदात्त विचारों को अभिव्यक्त करते थे। इतना ही नहीं गुरु अपने अध्यापन कार्य की सफलता के लिए देवानुग्रह प्राप्त करने की प्रार्थना करते थे। यदि वर्तमान में भी अध्यापक धन को महत्त्व न देता हुआ अपने पवित्र कर्तव्य का यथाविधि अनुष्ठान करें तो निस्सन्देह वर्तमान कालीन अनुशासन हीनता समाप्त हो जायेगी।

वैदिक काल में शिक्षा

कु. ज्योति बैसवारा, पी.जी.कॉलेज, लालगंज, रायबरेली उ.प्र.

वैदिक शिक्षा मूलतः वेदों - ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद पर आधारित थी। शिक्षा को अन्तर्ज्योति माना जाता था, जिसे प्राप्त करके मनुष्य संसार के सभी बंधनों के सभी बंधनों से मुक्त होकर जन्म-मरण से छुटकारा पा जाता था अर्थात् मोक्ष पा लेता था। प्राचीन भारत में शिक्षा का विकास केवल ज्ञान प्राप्त करने के लिए ही नहीं हुआ था, अपितु धर्म के मार्ग पर चल कर मोक्ष प्राप्ति का सतत् प्रयास भी था। मनुस्मृति में वर्णित है- "सभी वेदों का ज्ञाता विद्वान भी, सच्चरित्रता के अभाव में, श्रेष्ठ नहीं है किन्तु

गायत्री मन्त्र का ज्ञाता पण्डित भी, यदि वह चरित्रवान है तो श्रेष्ठ कहलानें योग्य है।" वैदिक कालीन शिक्षा तत्कालीन परिस्थितियों के अनुरूप सर्वोत्तम व्यवस्था थी। इसनें शिक्षा केक्षेत्र में महान विचारकों एवं तत्त्व अन्वेषकों को उत्पन्न किया था। इसके अलावा सदियों तक भारतीय साहित्य एंव संस्कृति के संरक्षण में इसका विशेष योगदान रहा है। शिक्षा शास्त्री ए.एस.अल्तेकर ने लिखा है- "इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि देश की शिक्षा प्रणाली, उच्चस्तर के राष्ट्रिय चरित्र के उत्थान के अपने आदर्श में सफल रहा है।

शोधपत्र में वैदिक कालीन शिक्षा के प्रमुख पहलुओं पर विस्तृत विचार किया जायेगा।

विद्यालयी वेद शिक्षा और वेद दिग्दर्शिका

ब्रह्मप्रकाश लाहोटी सुजानगढ़, राजस्थान

तत् ते बध्नाम्यायुषे वर्चस ओजसे च बलाय चास्तृतस्त्वाभि रक्षतु। अथर्ववेद 19/46/1

परमात्मा ने सृष्टि के आदि में मनुष्यादि के पुरूषार्थ करने और सुख भोगने के लिए वेद शास्त्र द्वारा नियम ठहराये गये हैं। मनुष्य उन नियमों में सुरक्षित होकर जीवन सफल करे।

पूर्ण ज्ञान तो वेदों में दे दिया, इसकी जानकारी सबको कराने से ही सत्य ज्ञान, सत्य नीति के नियमों की जानकारी होगी। सतत् सही जानकारी से आचरणों में सुधार होगा, सुसंस्कार बनेंगे। मानवेतर प्राणियों के लिए धर्म अधर्म का प्रश्न नहीं है। वे केवल स्वाभाविक ज्ञान के सहारे जीवन चला लेते हैं। गाय के बच्चे को उठने, चलने, बोलने, खाने या तैरने आदि को सिखाने के लिए किसी शिक्षक की आवश्यकता नहीं है किन्तु मानव शिशु को सब कुछ सिखाना पड़ता है। मानव को नैमेतिक ज्ञान की आवश्यकता है। उसके बिना वह कुछ भी नहीं सीख सकता है। इसलिए परमात्मा ने सृष्टि के आदि में उसे कर्तव्य कर्मो का ज्ञान कराने के लिए वेद ज्ञान दिया है। वेद ज्ञान की जानकारी देने हेतु विश्व की विद्यालयी शिक्षा में 1-12 तक वेद सम्मत् शिक्षा का पठन-पाठन चालू कराना है। वेद के बीज को बोना है, पल्लवित करना, फिर फल-फूलों का आनन्द लेना, विद्यालयों में पठन-पाठन से ही शुरूआत होगी। रस्सी का बराबर सम्पर्क होने से पत्थर धिसने के निशान पड़ जाते हैं, इसी तरह विद्यालयी वेद शिक्षा अन्तर्मन में घर जमावेगी, सुसंस्कारित करेगी।

अनेन वैदिकेन ज्ञानविज्ञानेन संसारे विश्वबन्धुत्वस्य, मित्रत्वस्य, करुणाया:, अहिंसायाश्च स्रोतस्विनी प्रवहन्ती सर्वान् आनन्दयति स्म।

वैदिक साहित्य में मूल्य शिक्षा

कैलाशचन्द्र मीना शोध अध्येता, प्रवक्ता राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, जयपुर परिसर, जयपुर

शुद्धात्मप्रकाश जैन राष्ट्रिय, रसायन कॉलेज ऑफ एजुकेशन, मानसरोवर, जयपुर

वैदिक साहित्य में 'मूल्य' शब्द का प्रयोग 'शील' के अर्थ में किया गया है। 'शील' शब्द मूल्य का पर्याय नहीं, अपितु तत्समवाची शब्द हैं, इसका अंग्रेजी शब्द होता है। Value यह शब्द लैटिन भाषा के Valere शब्द से उत्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ होता है किसी वस्तु के मूल्य गुण, विशेषता और उपयोगिता को बनाना। मूल्य सद्‌गुणों का समूह होता है। मूल्य आधारित व्यक्ति-व्यक्तित्व का विकास करने में समर्थ होता है। यहाँ मानव की धारणा, विचार, विश्वास, मनोवृत्ति तथा स्थिति समन्वित होती है। जीवन में शील ही सद्‌गुणों का साधन होता है। सभी गुणों का आधार शील होता है।

भारतीय वैदिक संस्कृति और दसमें निहित मूलय हमारी गौरवमयी धरोहर है। भारतीय संस्कृति अपनी मौलिकता है और उनकी विशिष्ठताओं का अलग ही संसार है। हर राष्ट्र का गौरव वैशिष्ट्य उसकी संस्कृति में प्रतिबिम्बित होता है, जिसे लोक कलाएं त्यौ हसा, गीत, व्रत उपवास, कीर्तन, भजर, उत्सव आदि अक्षुण्ण बनाए रखने में महती भूमिका निभाते हैं, हमारे संस्कार पीढ़ी हस्तांतरित होकर ही चिरन्तरता पाते हैं, जिनमें जीवन की सारी मिठास समावेशित रहती है, 500 साल पुरानी सभ्यता भारतीय संस्कृति न केवल विशद, व्यापक एवं विराट रही है, अपितु विविध रूप एवं बहुआयामी रही है। जीवन के प्रत्येक कर्मक्षेत्र में युद्ध और शान्ति

की प्रत्येक कला में राजनीति एवं शासन व्यवस्था में संगीत, साहित्य, स्थापत्य एवं शिल्प तथा अन्य ललित कलाओं में हमारी संस्कृति ने ऐसे चच्चादर्श प्रस्तुत किये हैं, जो अनुकरणीय हैं, यह सब हमारी संस्कृति में अन्तर्निहित प्राणदायिनी शक्ति का ही प्रतिफल है।

भारतीय वैदिक संस्कृति विश्व की लगभग सभी संस्कृतियों की जननी है, यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा, क्योंकि यह सर्वमान्य तथ्य है कि भारतीय संस्कृति विश्व की सबसे समृद्ध और साथ ही वैविध्यपूर्ण संस्कृति है, इसमें निहित मूल्य आज सभी विश्व को दाँतो तले अंगुली दबाने के लिए मजबूर कर रहे हैं।

नैतिकशिक्षा के लिए औपनिषद शिक्षादर्शन की उपादेयता

डॉ० अर्चना शर्मा रीडर, शिक्षाशास्त्र विभाग सदानन्द महाविद्यालय, छिवलहा, फतेहपुर (उ०प्र०)

उपनिषदों की शिक्षा के उत्कृष्ट नैतिकसिद्धान्त अनुकरणीय हैं। नैतिकशिक्षा से सम्बन्धित कठिनाईयों का समाधान उपनिषदों के मौलिक तथा प्राचीन व्यापक दृष्टिकोण को अपनाकर ही किया जा सकता है। कठोपनिषद में कहा गया है कि जो दुश्चरित है, अथवा दुर्नीति से विरत नहीं है, जो एकाग्रचित नहीं है, जिनका तन असंयत है, वह ज्ञान मात्र से अथवा कोरे बुद्धिवाद से आत्मा को, अपने विशुद्धरूप को अथवा परमात्मा को प्राप्त नहीं कर सकता। जीवन के चरमलक्ष्य की प्राप्ति के लिये मनुष्य को दुष्प्रवृत्तियों पर विजय प्राप्त करना परमावश्यक है। नैतिक आदर्शो का अनुसरण ही विशुद्ध सत्वता का एकमात्र साधन है। उपनिषदों की श्रेष्ठ विचारों की संकल्पना से सम्पूर्ण मानवता का हित निहित है। नैतिकता से विमुख ज्ञानवान व्यक्ति का जीवन भी व्यर्थ है।

उपनिषदों में सर्वत्र नैतिकशिक्षा सम्बन्धी विचार विद्यमान है, जिनको शिक्षा में महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान कर समाज में व्याप्त नैतिकता के पतन को रोकना राष्ट्र की प्रगति के लिए आवश्यक है। अतः निसन्देह नैतिकशिक्षा के लिये औषनिषद शिक्षादर्शन की उपादेयता अद्यावधि प्रासंगिक तथा अनुकरणीय है।

वैदिक समाज में शिक्षा

डॉ. अनिल कुमार जा.मि.इ. नयी दिल्ली

वैदिक युग में शिक्षा प्राप्त करने के जीवन में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण माना जाता था। शिक्षा द्वारा प्रत्येक व्यक्ति अपनी शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक उन्नति करके लोक और परलोक में वास्तविक सुख को प्राप्त करता था। वह अन्य व्यक्तियों को शिक्षा देकर पूर्वजों से उऋण होता था। ब्रह्मचर्य आश्रम में ज्ञान की प्राप्ति और चरित्र-निर्माण करके प्रत्येक विद्यार्थी स्वयं को समाज के लिए उपयोगी बनाता था। शिक्षा का प्रारम्भ गायत्री मन्त्र से होता था। इस मन्त्र में विद्यार्थी प्रार्थना करता था कि ईश्वर उसकी बुद्धि को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करें। वह गुरुकुल में तपस्वियों जैसा सादा एवं कठोर जीवन व्यतीत करता था, उसे ऐसी नैतिक एवं आध्यात्मिक शिक्षा दी जाती थी ताकि वह समाज के प्रति अपने कर्तव्यों का सफलतापूर्वक निर्वहण कर सके। तथा व्यक्तिगत रूप से धर्म की मर्यादा के भीतर धनार्जन करके सांसारिक सुख को प्राप्त कर सके।

वैदिक-शिक्षा की श्रेणीबद्ध शिक्षण-व्यवस्था

डॉ० आर. एस. मिश्र रीडर, शिक्षाशास्त्र विभाग, भारतीय डिग्री कालेज, फरूखाबाद

डॉ० मधुरिमा सिंह रीडर, शिक्षाशास्त्र विभाग, डी०जी०पी० कालेज, सिविल लाइन्स, कानपुर

प्रत्येक शिशु भौतिक शरीर अपने माता पिता से पाता है परन्तु विलक्षण मानसिक-विशेषता वह पूर्वजन्म से पाता है यही पूर्वजन्म ही वर्तमान जन्म का नियामक है प्राक्तन कर्मो के अनुसार शिशु बढ़कर मनुष्य बनता है। इस पर वैदिक ऋषियों ने अपने चिंतन एवं मनन से गम्भीर अन्वेषण करन एक आदर्श गुरुकुल प्रणाली विकसित की तथा प्रणाली द्वारा उस ज्ञान संस्कार और वृत्तियों की निधियों के बालक को सत्य अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह जैसे निर्माणकारी साधनों से मन, वचन और कर्म से

सत्यनिष्ठा की प्रवृत्ति की पूर्णता देकर श्रेष्ठ मनुष्य बनाया।

स्वानुभवमूलक वातावरण प्रकृति की गोद देकर प्राचीन ऋषियों ने मनोविज्ञान के सत्य को समझते हुए शिक्षण की जो विधियां अपनाई जिसमें उनका वह उपनिषदीय संदेश था कि शिशु मानव का जनक है। सृष्टि की रहस्यमयी प्रक्रिया में बालक नित्य नूतन का रूप है। नवो नवो भवति जायमानः कहकर स्वीकार किया कि नवीन जन्म का सबसे सुंदर और कलात्मक रूप बालक है। बालक में अनन्त सम्भावनाओं के बीज है विश्व का सब कुछ भीतर है।

संस्कार का तात्पर्य-किसी वस्तु को भूषित किया जाय होता है। जिस तरह रेखाचित्र पर विभिन्न रंगों से बार-बार तूलिका घुमाने से एक विचित्र चमक एवं सजीवता सी आ जाती है ठीक उसी प्रकार ऋषियों एवं गुरुकुल आचार्यो ने शिष्यों में संस्कारों द्वारा गुणों का आधान किया। मानव शिशु के दोषों को संस्कारों जातकर्म, चूड़ाकर्म एवं उपनयन संस्कार आदि द्वारा मलीनताओं को दूर किया।

ऋषियों ने गृहस्थ-धर्म में माता-पिता के सुन्दर प्रयत्न से बालक का जन्म स्वर्ग की अन्तर्ज्योति के रूप में स्वीकार किया। गृहस्थाश्रम को बालक के सशक्त संकल्प का स्थल माना और सृष्टि की इस आवश्यकता पूर्ति हेतु विश्व की सभी कुछ अनन्त सम्भावनाओं के बीज निहित बालक को समय पाकर असतोमासदगमय की ओर विकसित और संवर्धित करने का सार्थक प्रयत्न गुरुकुल की प्रयोगशाला में किया था।

पश्चिमोन्मुखी शिक्षा बनाम आधुनिक सन्दर्भो में विलीन होते वैदिक मूल्य

डॉ० सीमा कौशिक रीडर, शिक्षा शास्त्र विभाग टीकाराम कन्या महाविद्यालय, अलीगढ़

वेदों के ज्ञान के कारण ही भारत की अपनी गौरवशाली परम्परायें रही हैं। परन्तु आधुनिक समय में मूल्य में अनास्था एवं पारस्परिक अविश्वास बढ़ता जा रहा है। व्यक्ति अपने मूल्य अपने आदर्श अपनी सांस्कृतिक विरासत आदि को छोड़ता जा रहा है और उसके स्थान पर पश्चिमी वातावरण को अपना रहा है जिसके परिणामस्वरूप हमारे मूल्य दब गये हैं। प्राचीन भारतीय शिक्षा मूल्य परक थी परन्तु पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव के कारण हमारे मूल्य विलीन हो रहे हैं। आज यदि राष्ट्र के भावी निर्माता को बचाना है तो हमें मूल्य परक शिक्षा की आवश्यकता है अतः हमने वैदिक शिक्षा के मूल तत्वों को अपनाना होगा ताकि व्यक्ति वेदोक्व श्रेष्ठ विचार और सर्वोत्तम मार्ग को अपनाये। इस समय जबकि हम अपनी शिक्षा का पुनर्निर्माण कर रहे है तब इस बात की सबसे बड़ी आवश्यकता है कि हम उन तात्विक सिद्धान्तों पर विचार करे जिसकी बुनियाद पर हम भारत वर्ष की शिक्षा पद्धति का निर्माण कर सकें।

वैदिकसाहित्यस्य व्यावसायिकविषयाणां समीक्षणम् वर्तमाने प्रासङ्गिकता च

प्रतिमा शर्मा शोधच्छात्रा राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम् (मानितविश्वविद्यालयः) जयपुर परिसरः, जयपुर

विश्वस्मिन् विश्वे गौरवास्पदस्यास्य भारतदेशस्य महर्षिणः मनुष्यस्य सर्वविद्याभ्युदयार्थ श्रेष्ठजीवनपद्धतौ सार्वकालिकं चिन्तनं विधाय अस्माकं शाश्वतपथप्रदर्शनम् अकुर्वन्। युगद्रष्टारः महर्षयः न केवलं धर्मकर्मोपासनादिभ्यः महत्त्वम् अददुः, अपितु "अर्थम्" अपि पुरुषार्थचतुष्टये सम्मेल्य मनुष्यस्यार्थिकावश्यकतायै अपि एकां दृष्टिम् अयच्छन्।

"भारतीयव्यावसायिकचिन्तनम" अल्पकालिकार्थिकलाभाय नासीत्, अपितु सार्वकालिकं, सार्वदेशिकञ्चासीत्। तस्य प्राक्काले यथा महत्त्वमासीत, तथैवाद्यापि वर्तते, भविष्यति च भविष्यति। एतादृशीनाम् आर्थिकनीतीनां चिन्तनस्य च कारणादेव देशोऽयं विश्वे "स्वर्णमयी-चटका" इति नाम्ना प्रसिद्धो आसीत्।

तर्हि, कानि च तानि व्यावसायिकसूत्राणि, अथ किञ्च तेषां वर्तमानेऽपि वर्तते व्यावसायिकमहत्त्वम, इति जिज्ञासा मनसि उदेति। वैदिकसाहित्यस्य वर्तमाने व्यावसायिकदृशा कथं प्रासङ्गिकताऽस्ति इति जिज्ञासाम् उररीकृत्यैव शोधपत्रमिदं प्रवर्तते।

उपनिषत्साहित्ये शिष्यगुणानां निरूपणम्

डॉ० रामरतन खण्डेलवाल 30/38 गंगा बिहार ऋषिकेश, देहरादून

प्राचीनकाले सर्वेषां कृते शिक्षाग्रहणस्य अधिकार: न सुलभ: आसीत्। ममायं न तात्पर्य: यत् तत्र वर्ण व्यवस्थाऽथवा जाति व्यवस्थासीद् बांधिकी। किन्तु तत्र विद्याग्रहणाय समागतेषु छात्रेषु केचन गुणविशेषा: आवश्यक: आसन्। विद्या योग्याय शिष्याय एव अदीयत्। यस्य ध्यानमध्ययने न रमते यश्च मन्दबुद्धिरस्ति तस्मै विद्यादानमासीन्निषिद्धम्। यथोक्तं श्वेताश्वतरोपनिषदि-

"नाप्रशान्ताय दातव्यं नापुत्रायाशिज्याय वा पुन:। यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।।" (श्वेता०- 6/22-23)

साम्प्रतिक शिक्षणविधौ व्यावसायिकपाठ्यक्रमेषु प्रवेशाय छात्राणं योग्यताया: मूल्यांकनं विविधप्रवेशपरिक्षाभि: (यथा-AIEEE, PMT, CAT, IIT.......) क्रियते। अत: तत्र अधीतविधानां छात्राणं कृते शिक्षा फलवती वर्तते। इदं वस्तुत: औपनिषद् शिज्यगुणानामांशिक मनुसरणमेव। अत: नाम भौतिकजीवन एव, ते साफल्यं तु प्राप्नवन्त्येव। इत्थं वयमौपनिषद्शिक्षाया: प्रयोगात्मकरुपमवलोकयाम:। यदि नाम इह जीवने सिद्धिरवाप्तव्या यदि वा परलोके, उभयत्र वा सर्वास्वपि स्थितिषु उपनिषत्साहित्ये प्रतिपादितानां शिज्येज्वपेक्षितानां गुणानां स्वजीवने आधानमावश्यकम्।

आचार्यो मृत्युर्वरुण:..........आदर्शवैदिकशिक्षक:

दीप्तांशुभास्कर: (अनुसन्धाता) रा.सं.सं.(मानित वि.वि.) लखनऊ परिसर:

सुयोग्यानां नागरिकाणां निर्माणाय सम्पूर्णे जगति श्रेष्ठाध्यापकानां महतीम् आवश्यकतामनुभवन्त: शिक्षक-प्रशिक्षणकार्यक्रमान् सञ्चालयन्ति तद्देशीयसर्वकारा:। किं स्वरूपं शिक्षकस्य ? के गुणा: कानि च कर्त्तव्यनि तस्य ? इत्येषां प्रश्नानामुत्तराय नैके भारतीयवैदेशिकाश्च विद्वान्स: सानुसन्धानं वैयक्तिकव्यावसायिकगुणान् राष्ट्रियव्यावसायिकसामाजिकमानवीयनैतिकादीनि कर्त्तव्यानि च प्रत्यपादयन् नास्तिसन्देह:। परन्तु ते सर्वेगुणा: सर्वाणि कर्त्तव्यानि च स्पष्टतया वैदिकाचार्याणां कृते उक्तानीति प्रमाणानि प्राप्यन्ते वेदेषु। यथा शिक्षकगुणान् प्रतिपादयति ऋग्वेदस्य मन्त्रोऽयम् - वेधा उट्टप्तो अग्निर्विजानन् ऊधर्न गोनां स्वाद्मा पितूनाम्।। ऋ. 1.69.1 पिता पुत्र: सन्।

अर्थात् आचार्य: वेघस्-चरित्रनिर्माता, अट्टप्त:- निराभिमानी, अग्नि:- आग्निवत् तेजस्वी, विजानन्- विविधविषयज्ञाता, ऊधर्न गोनाम्- गोवत् ज्ञानामृतप्रदाता, स्वाद्मा पितुनाम्- अध्ययनविषयं सुमधुरकर्त्ता, पिता पुत्र: सन् - पुत्र: शिष्य: वा सत्यपि ज्ञानागुणं पितृवत् समादरणीय: स्यात्। तस्मादेव अथर्ववेदे शिक्षकाय आचार्यशब्द: प्रयुक्त: ऋग्वेदे विप्र: विपाश्चर्न, ब्रघन्, पित्तर:, शिक्षानर:, ब्रह्मणाद्य: शब्दाश्च। गुणसामर्थ्यकारणात् यमसोमवरुणवाचस्पतिसदृशै: वैदिकदेवसम्बोधनै: सम्बोधिता: आचार्या:।यथा-

आचार्यो मृत्युर्वरुण: सोम ओषधय: पय:। जीमूता आसन्सत्वानस्तैरिदं स्वारामृतम्।। अथर्व. 11.5.14

अर्थात् आचार्य: स्वकृतकर्मानुसारं यम:, वरुण: सोम ओषधय: पयश्च वर्त्तते भिन्नासु परिस्थितिषु च किं कार्य तस्य प्रश्ने सति अथर्ववेदे उत्तरं वर्तते- आचार्यस्ततक्ष नमसी उभे इमे। उर्वी गम्भीरं पृथिवीं दिवं च ।। अथर्ववेद 11.3.8

अर्थात् आचार्य: ज्ञानसागर: आभूमि नभ पर्यन्तं विद्यमानगम्भीरगुप्तशक्तिनां ज्ञाता ज्ञापकश्च अद्वितीयो जन: वर्तते।

वर्तमान समय में गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की आवश्यकता

डॉ. अनिल 'योगी' इटर्नल ब्लीस रिसर्च फाउंडेशन, हरिद्वार

किसी भी देश के विकास का आधार उसके समाज में फैली शिक्षा के स्तर पर निर्भर होता है। मनुष्य, शिक्षा के माध्यम से अपनी समस्याओं का समाधान सरलता से कर सकता है ज्ञान या शिक्षा ही एक साधन है जो हमें असत् से सत् की ओर, तमस् से ज्योति की ओर तथा मृत्यु से अमरत्व की ओर ले जाने वाला है यही महान बनने की आधारशिला है तथा समस्त संसार का स्वामित्व प्रदान करने वाला, यदि कोई है, तो वह ज्ञान है।

प्रस्तुत शोधलेख में गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की विशेषताओं को बतलाने का प्रयास किया गया है जो विद्यार्थी के मानसिक व शारीरिक विकास ही नहीं बल्कि नैतिक, व्यावहारिक गुणों के साथ-साथ आध्यात्मिक विकास में सहायक होती है।

अध्यात्म विद्या के ग्रन्थों में उपनिषदों का महत्त्व और स्थान

मनोज कुमार (शोधच्छात्र वेदविभाग) गु.कां. वि.वि. हरिद्वार

सभी उपनिषदों का सम्बन्ध किसी न किसी वेद के साथ रहा है। छान्दोग्य उपनिषद् का सम्बन्ध सामवेद के साथ है। योग के मूलतत्त्व धर्म व प्राणविद्या का विकास उपनिषद् युग की देन है। ऐसा माना जाता है कि उपनिषद् श्रवण का विषय हैं। इसमें योग तत्त्व की पूर्णत: अनदेखी हो जाती है। कभी-कभी उन तत्त्वों में विभिन्न धारणाओं से साधकों के मानस पर शंका के बादल घिर आते हैं जो किसी भी साधक के लिए आत्मघाती स्थिति है।

शोधार्थी का प्रयास है कि छान्दोग्य व योग शास्त्र के बीच सेतु का निर्माण हो। छान्दोग्य के तत्त्व योग शास्त्रीय तत्त्वों को ही प्रतिपादित करते हैं। योग के आदि प्रवक्ता हिरण्यगर्भ माने गये हैं। अब प्राण तत्त्व को ही लें, सामान्य रूप से यह श्वास-प्रश्वास तक सीमित है। वहीं छान्दोग्य में प्राण की रोचक, सरल, सुन्दर व्याख्या की गयी है। इसके अन्तिम अध्याय में इन्द्र व विरोचन की कथा के माध्यम से आत्मतत्त्व की प्राप्ति के उपायों को स्पष्ट किया गया है। यही योग का उद्देश्य भी है। अध्यात्म विद्या के नूतन रहस्यों को उद्घाटित करने का शोधार्थी ने प्रयास किया है।

CONCEPT OF KNOWLEDGE IN VEDAS

Ms. Vandana Rajoriya[1], Research Scearch Scholar, Dr. H.S. Gour University, Sagar, M.P.
Dr. Bhavatosh Indra Guru[2] Astt. Prof., Dept. of English and European Languages
Ms. Krishnakanti Rajoriya[3] Guest Lecturer, Sociology, Night College Sagar, M.P.

The 'Veda' is the most ancient as well as the most lasting knowledge (or Sastra) discovered by man rather recollected by man in the serene of the soul. Vedic Hymns manifest truth higher and deeper than the truth of the outer existence, they depict a light greater and higher than the light of human understanding which comes only by extra ordinary and trans human sight and hearing. Rg Veda, the earliest book to declare that knowledge is infinite, is full of spiritual, psychological and material wisdom. So powerful are the Rg Vedic Mantras, That when chanted with precision and accuracy can bring into the consciousness, the thrill of the infinite, and the force of the universal absolute and perpetuated the miracle of supreme utterance. The sages (Rsis) of Rg Veda have expressed in it their wisdom about the goal of existence and method of achieving it by means of a four-fold formula of immortality-all - round - perfection, bliss, freedom and knowledge- which integrates all the aspects of existence.

The great wealth of knowledge available in Vedas is a secret not meant to be a secret. It is to be studied, deciphered, understood, realized and disclosed to the benefit of the present and upcoming generation. The paper attempts to give a taste of this wealth to the readers while highlighting the supreme knowledge identified and thus prescribed in Indian wisdom expecially from the Rg Veda.

21st CENTURY GIRL CHILD EDUCATION COMPARED WITH THAT OF EDUCATION DURING THE VEDIC AGE

Ashok Kumar Gusain Research scholar, P.D.B. Himalaayan Govt. P.G. College Kotdwar

A short school level survey conducted during preparation of the presentation shows that most of the girls studying in grade X, XI and XII still are in he grip of social taboos and miracles of black magic and household treatment. Girls who were covered within the study survey; 30 students who often undergo abdominal pain or some other sort of disorders on the advice of their parents first take to the worship of local deity etc. as superficial remedies rather than taking to the nearby primary heath centre or to a medical practitioner. Even having seen the clear clinical symptoms of jaundice or other infections mothers advise their daughters taking for the traditional

treatment rather than modern ones. This is the shortcoming of our modern education that rather fails to strengthen the mind sets of students and their mothers (who had once been students) to understand the true meaning of education to achieve its objectives and remove the socially biased mentality to identify her as a perfect person and part and parcel of the society.

RELEVANCE OF VEDIC VALUSE IN MODERN SYSTEM OF EDUCATION

Dr. Mridula Rawal, Reader, **Mrs. Neeta Agnihotri** Lecturer, **Dr. Sita Tripathi Dixit** Lecturer, Kanpur

In the present times when the whole world seems to be in turmoil, with fabric of social life being gradually shattered with the degradation of hyman values and moral ethics, it has become necessary to seriously consider this enormous problem to ensure the survival of the humanity at large. To achive that end, it is felt that only the right values enshrined in sacred scriptures like Vedas and Vedanta (Upànishads) can give us an appropriate direction to lead a more peaceful, stress free, harmonious and really progressive life. Man-Values-Education is a sacred triangle, where education is vital medium to imbibe, foster and perpetuate values in man. All the three strategies- formal, non-formal and informal channels working simultaneously will bring rich dividends.

THE PLACE OF 'ART' IN ANCIENT AND MODERN SYSTEM OF INDIA

Madhvi Parmar Lecturer Shardagram college Mangrol

Art is always become a companion of man from the ancient time sometimes it becomes the media of expression Sometime it becomes source of joy or delight.

We Indian people belive that there are 64-Art in our culture, which is useful our day to day life still from many years ago. We can not imegine our Indian culture of society without any art or. Because Art is the soul of our life our Indian culture and society. We can see our different dances, Songs, folk-cultures in every state of India.

In Indian philosophy we can see the art as a one part of spiritualin also. The place of ereature is like that the worshipper of God who is always engrossed in his art or God with grew faith from inside.

Art which is useful for life.

We can use this art in to our day to day life to prove our proficiency. Ex cooking.

Art which is useful to express the beauty or charm in this paper. I will try to light on that concept deeply.

VALUE BASED EDUCATION IN TAITTIRIYOPANISHAD

Smita Talwar Assistant Professor Dept. of Vadic Darshan Banaras Hindu University, Varansai

The Upanishads furnish us with glorious system of education that prevailed in ancient India. In the Upanishadic society of education exerted influence on the Individuals and aimed at up bring of man for the Progress of community as a whole. The Upanishadic education gives a particular angle of vision, a sense of perception and prediction in which the material and the moral, the physical and the spiritual, the perishable and the permanent values of life are clearly defined and strictly differentiated. The present paper is an attempt to chalk out the value education as depicted in Taittiriyopanishad.

THE VEDIC EDUCATIONAL PHILOSOPHY

Dr. Surendra Sharma Lecturer in English, Govt. Sr. Sec School, Dundara, Jodhpur, Rajasthan, India

Vedic Educational philosopy accepts the way of study step by step. It does not gives stress to teach all the subjects altogether. The methods of leaning of Vedas - To study the Vedas there is a specific system which is known as Sharwanchatushtya. there are four steps in it for learning the Vedas. They are - (i) Sharwan, (ii) Manan, (iii) Nididhyasan and (iv) Saksthatkar.

Specific Characters of Vedic Educatuionl Philosophy-

An Educational System which possesses the equal opportunity for all- it is only the Educational Philosophy which provides equal opportunity for all students.

वैदिक शिक्षा : आधुनिक समाजवादी आवश्यकता

प्रा. संजीवनी श्रीपाद नेरकर, बी.डी.एम.डी.कॉलेज बेगलूर, नांदेड

वैदिक शिक्षा या वेद ही एकमात्र हैं, जैसे व्यक्तित्व विकास, सत्यकी प्रतिष्ठापना, आचरण की शुद्धता, आत्माभ्युदय, अध्यात्मिक शिक्षा, शारीरिक सबलता इ, वह आज समाज में आवश्यक हैं। क्योंकि आज समाज में भयगंड, न्यूनगंड, अहंगंड बढ़ गया है। आज की, शिक्षा व्यवस्था में 'नौकरी तथा रोटी के लिए ही शिक्षण' यह सोच बढ़ गयी है। पारिवारिक व्यवस्था में विश्वास उठ चला है। आज की व्यवस्था भी ढ़ीली पड़ गई है। आज की शिक्षा के द्वारा- "साक्षरा विपरीता श्चेदं राक्षसा एवं केवलम्" इस उक्ति को मूर्त रूप दिया जा रहा है। समाज की यह विपरीत परिस्थिती को अगर जड़ से उखाडना है तो जो तांत्रिवाद, भौतिकवाद आया है, अगर उसकी जगह आध्यात्मिकवाद लाना है, भोगवाद को, बदलकर यदि उसको भाववाद में परिणत करना है तो स्वामीविवेकानन्द जी ने जो शिक्षा के बारे में जो विचार प्रकट किये हैं, हमें याद करना पड़ेगा।

शिक्षा मनुष्य में पहले से विद्यमान दैवी पूर्णता का प्रत्यक्षीकरण है। और अगर इस दृष्टि से विचार करें तो वैदिक शिक्षा ऐसी शिक्षा है। इसी कारण आधुनिक समाज में , समाज की सम्पूर्ण व्यवस्थाओं में संतुलितता, समन्वय और स्थिरता निर्माण हो सकती है और यह आधुनिक भारतीय समाज संपूर्ण विश्व को एक नई दृष्टिदेकर फिर से आदर्श बन सकता है।

वैदिक प्रबन्धन



प्रबन्धकीय सिद्धान्तों का वैदिक दृष्टिकोण

डॉ. अनीता जैन असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत दर्शन एवं वैदिक अध्ययन विभाग, वनस्थली विद्यापीठ वनस्थली टोंक, राजस्थान

प्रबन्ध के विषय में सामान्य अवधारणा है कि प्रबन्ध चिन्तन पाश्चात्य सभ्यता की देन है। परन्तु अथाह ज्ञान के स्रोत वेद उक्त धारणा को निर्मूल सिद्ध करते हैं, जहाँ प्रबन्ध के सभी क्षेत्रों जैसे राजनैतिक, आर्थिक, प्रशासनिक, व्यवसायिक, औद्योगिक आदि से सम्बद्ध अनेक सन्दर्भ प्राप्त होते हैं। आधुनिक प्रबन्ध के सिद्धान्तों की छवि वदों में स्पष्ट परिलक्षित होती है, जिनके व्यावहारिक प्रयोग से एवं योजनाबन्दी, संगठन, तालमेल, नियन्त्रणादि कार्यो के माध्यम से आधुनिक- प्रबन्धक दक्षता प्राप्त कर, अपने उद्देश्यों की प्राप्ति कर सकते हैं तथा अपनी गतिविधियों में होने वाली बुनियादी गल्तियों को रोक सकते हैं।

प्रस्तुत शोधपत्र के माध्यम से काम का विभाजन, अधिकार एवं दायित्व, अनुशासन, आदेश की एकता, दिशा निर्देश का एकात, निजी हितों की तुलना में संयुक्त हितों की पहल, सेवा-फल, केन्द्रीयकरण, सम्पर्क-कड़ी, क्रम, समानता, कार्यकाल में स्थिरता, पहलकदमी एवं सहयोग भावना आदि आधुनिक प्रबन्ध के सांकेतिक सिद्धान्तों के प्रति वैदिक दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई है।

वेदों के सन्दर्भ में प्रबन्धन की भूमिका

प्रतिभा आर्य एम.बी.ए., कन्या गुरुकुल महाविद्यालय, देहरादून

'प्रबन्धन' - मानव जीवन के विकास एवं व्यवस्था का महत्त्वपूर्ण अंग है। इसे वर्तमान आर्थिक विकास कीएक प्रमुख ध ुरी भी कहा जा सकताहै। दिनोदिन आर्थिक विकास के बढ़ते दौर में प्रबन्धन की निर्णायक भूमिका सुविदित ही है। परन्तु प्रबन्धक की बढ़ती हुई भूमिका के कारण कुशल तथा क्षमतावान प्रबन्धक निर्माण की चुनौती प्रबन्धन संस्थानों के सम्मुख विशेष रूप से विचारणीय होती जा रही है। व्यावसायिक शिक्षा के क्षेत्र में बढ़ रही प्रतिस्पर्धा के कारण यह समस्या अतिरिक्त रूप से शोधकर्त्ताओं और विशेषज्ञों का ध्यान बराबर आकर्षित कर रही है।

कुशल एवं सफल प्रबन्धक के लिये कुछ गुणों का उल्लेख करना यहां संक्षेप में आवश्यक है। यथा- प्रेरणा, नेतृत्व, सामूहिक कार्य संस्कृति, सम्प्रेषणीयता संचार प्रभावी व्यक्तित्व, कार्य मूल्य, दृष्टिकोण तथा चिन्तन आदि।

प्रस्तुत उच्च मानवीय सद्‌गुणों के सन्दर्भ में वेदों का अध्ययन करने से यह विदित होता है कि वेदों में ऐसे सद्‌गुणों का मन्त्ररूप में उल्लेख मिलता है जिनके आधार पर उच्च कोटि के कर्त्तव्य निष्ठ एवं क्षमतावान प्रबन्धकों का निर्माण किया जा सकता है। जिन्हें संक्षेप में विचार हेतु यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है-

क. नेतृत्व विकास,

1. असतो मा सद्‌गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मा अमृतं गमय। (यजु. 19/9)
2. ब्रह्मचर्येण तपसा देवामृत्युमुपाघ्नत।। (अथर्ववेद 11/5/19)

ख. प्रेरणा:

1. उत्क्रामातः पुरुष। (अथर्ववेद 8/1/4)
2. यद् भद्रं तन्न आसुव (यजु. 30/3)

ग. सामूहिक कार्य संस्कृति :

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्। (ऋ. 10/191/2)

घ. सम्प्रेषणीयता :

1. वयं राष्ट्रे जागृयाम। (यजु. 3/23)
2. कृतं में दक्षिणे हस्ते जयो मे सत्य आहितः (वेद)

ङ. संचार :

1. पुमान् पुमांसं परिपातु विश्वतः तथा मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन् मा स्वसारमुत स्वसा। (अ.वे0 3/30/3)

च. दृष्टिकोण :

1. भद्रं कर्णेभिः श्रृणुयाम। भद्रं पश्येमाक्षभिः। (ऋ. 1/89/08)

छ. व्यक्तित्वः

1. कामः संकल्पो विचिकित्सा श्रद्धाऽश्रद्धा............मनसा विजानाति । (श.का.अ. 14/4)

इन मन्त्रों के अतिरिक्त प्रस्तुत सन्दर्भ में अनेक वेद मन्त्रों का भी उल्लेख किया जा सकता है। जिनके आलोक में प्रबन्धक की नेतृत्वकारी भूमिका का विकास सम्भव है। औरइसी के साथ-साथ निवेशक और कर्मचारियों के बीच की महत्त्वपूर्ण कड़ी होने के नाते उसकी सामंजस्य मूलक क्षमता का विकास भी इन उदात्त जीवन मूल्यों के आधार पर सम्भव है।

वेदों में प्रबन्ध-चिन्तन

डॉ. इन्दिरा गुप्ता व्याख्याता संस्कृत, राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर

प्रबन्धन शब्द 'बन्ध्' धातु के साथ 'प्र' उपसर्ग एवं ल्युट् प्रत्यय लगाकर व्युत्पन्न होता है, जिसका शाब्दिक अर्थ है- विशेष व्यवस्था, योजना या नैरन्तर्य। व्यापक दृष्टि से प्रबन्धन के क्षेत्र में नियोजन, नीति-निर्धारण, समन्वय, अनुशासन, मनोबल और सम्पूर्ण क्रिया कलापों के नियन्त्रण सम्बन्धी कार्यों को सम्मिलित करना होगा। यह प्रक्रिया समय, परिस्थितियों एवं वातावरण के अनुसार परिवर्तित होती रहती हैं। हमारे विश्ववन्दनीय वेदों में प्रबन्धन के सभी क्षेत्रों जैसे- प्रशासनिक, राजनैतिक, व्यावसायिक, सामाजिक, आर्थिक न्याय आदि पर पर्याप्त मात्रा में विचारों को प्रस्तुत किया गया है।

वेदकालीन मन्त्रों में राष्ट्र, राष्ट्री, राष्ट्राणाम्, राष्ट्राय, राज, राजा, राट्, स्वराज्य, राजसु, राजसि आदि पदों के प्रयोग मिलते हैं। राष्ट्र आर्यों के संघठित, सुचालित और तंत्रित भू-भाग का गरिमामय स्वरूप था। वैदिक सूक्तों में 34 स्थानों पर 'सभा' और 21 स्थानों पर 'समिति' शब्द अपने शुद्ध, सरल और तद्धित रूपों में आये हैं- 'समानो मन्त्र समिति समानी'। सभा और समिति के अतिरिक्त न्याय शासन से सम्बद्ध 'नरिष्ठा' नाम की सर्वोच्च परिषद भी थी। वैदिक देवों के लिए प्रयुक्त विशिष्ट विशेषणों से उनके द्वारा संचालित विशिष्ट विभागों की ओर संकेत होता है। ये सभी संस्थाएं एवं देव-विशेषण तत्कालीन राजनैतिक, न्यायिक एवं प्रशासनिक प्रबन्धन का परिलक्षक है। ऋग्वेद के 'पुरुष सूक्त' में चारों वर्णों की उत्पत्ति परमेश्वर से स्वीकार कर शरीर के प्रत्येक अंग की अनिवार्यता एवं महत्ता के सदृश ही समाज के प्रत्येक वर्ग की अनिवार्यता एवं महत्ता को प्रदर्शित कर समत्व भावना, समदृष्टि विश्व को प्रदान की। जो कि सामाजिक प्रबन्ध-चिन्तन को संकेति करते हैं।

अहं प्रवदिता स्याम्। मैं सर्वत्र प्रगल्भता से बोलने वाला बनूँ।

निर्दुरर्मण्य ऊर्जा मधुमति वाक्- हमारी शक्तिशाली मीठी वाणी कभी भी दुष्ट स्वभाव वाली न हों।

कृतं मे दक्षिणें हस्ते जयो मे स्व्य आहितः। अर्थात् मेरे दाहिने हाथ में पुरुषार्थ है और मेरे बाँये हाथ में विजय। ये वैदिक उपदेश वैयक्तिक विकास एवं स्वयं के श्रेष्ठ कार्य निष्पादन के साथ-साथ वैदिक जीवन प्रबन्ध चिन्तन को भी इंगित करते है। इस प्रकार वेद विविध बहुमूल्य विचाररूप रत्नों के रत्नाकर हैं। इनमें जीवन के केवल एक पक्ष पर ही विचार नहीं किया गया अपितु जीवन को सम्पूर्ण घटकों से मिली हुई एक पूर्ण इकाई के रूप में देखा गया है। समाज और राष्ट्र का समग्र विकास तब ही सम्भव है जब प्रत्येक घटक को जोड़कर गहराई से चिन्तन किया जावे। अतः वेदों में प्रतिपादित प्रबन्धकीय अवधारणाओं पर गम्भीरता से चिन्तन कर उन्हें समसामयिक, व्यवस्थित, क्रमबद्ध रूप से स्थापित करने एवं वर्तमान युग के अनुसार समझने और इन्हें सर्वजन सुलभ एवं सर्वजन सुगम बनाने की भूयसी आवश्यकता है।

'प्राणः पूर्वस्मै सुविताय वोचत मक्षू सूम्नाय नव्यसे। हे ईश्वर! हमें प्राचीन परम ऐश्वर्य की ओर ले चलें तथा अति नवीन अभ्युदय की ओर भी तुरन्त ले चलें।

वैदिक युग में व्यवसाय-प्रबन्धन

डॉ. पी.एन. यादव, वरिष्ठप्रवक्ता- अर्थशास्त्र, राजकीय स्ना. महाविद्याल, कोटद्वार

प्राचीन भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के आधारस्तम्भ वेद मानवीय कर्तव्य-बोध के लिए सर्वाधिक प्राचीन एवं प्रामाणिक ग्रन्थ हैं। वेदों में विविध व्यावसायिक प्रवृत्तियों का व्यापार एवं वाणिज्य के स्वरूप का विविध-धातुओं, नाप-तौल के साधनों एवं प्रचलित मुद्राओं का तथा विविध शिल्पों अन्न-वस्त्रादि के क्रय-विक्रय का वर्णन प्राप्त होता है। वैदिक मन्त्रों में परमात्मा से धन प्राप्ति की कामनाओं के अनेक मन्त्र हैं-

स नो वसून्याभर(यजु.15/30) उभा हि हस्ता वसुना प्रणस्व(यजु. 5/9)

वयं भगवन्तः स्याम(यजु. 34/38) वयं स्याम पतयो रयीणाम् (यजु. 10/20)

यजुर्वेद में 50 से अधिक व्यवसायों का वर्णन किया गया है। व्यावसायिक व्यवस्था में जाति या वर्ण को नहीं अपितु शारीरिक सामर्थ्य एवं बौद्धिक कौशल को प्रधानता दी गयी है।

भौतिक अर्थशास्त्र में समाज का व्यवहार आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विनिमय के आधारपर चलता है। देश, काल, परिस्थिति के अनुसार विविध प्रकार के विनिमय प्रचलित हो सकते हैं। यद्यपि यह पृथ्वी ऐश्वर्य पूर्णहै किन्तु ऐश्वर्य परिश्रम से प्राप्त हो सकता है। वेदों में सम्पत्ति के तीन आधार बताए गए हैं- 1. भूमि, 2. पशु, 3. मनुष्य।

अथर्ववेद में पृथिवी से निवेदन किया गया है कि वह अविचलित गौ के समान हमें ऐश्वर्य एवं सुख सम्पत्ति प्रदान करें। वैदिक संहिताओं में व्यापारिक सफलता हेतु दो गुणों कीअनिवार्यता बतायी गयी है- चरित एवं उत्थित-'शुनं नो अस्तु चरितमुत्थितञ्च (अथर्ववेद 3/15/4)। प्रस्तुत मन्त्र में चरित का तात्पर्य है चरित्र की शुद्धता एवं व्यवहारिक कुशलता तथा उत्थित का तात्पर्य है- श्रम, दृढ़निश्चय एवं उत्साह। यजुर्वेद में व्यावसायिक प्रबन्धन के तीन आयाम निरूपित हैं-

'देहि मे ददामि ते नि मे धेहि नि ते दधे।

निहारञ्च हरासि मे निहारं नि हराणि ते।। यजु. 3/50

एवमेव क्रय की जाने वाली वस्तुओं की योग्यता का भी चित्रण वेदों में प्राप्त होता है-

1. द्रव्य या पदार्थ की अपनी योग्यता, उपादेयता एवं श्रेष्ठता।
2. क्रय करने वाले व्यक्ति की विनिमय द्रव्य को देने की क्षमता।
3. ग्राहक की उत्कण्ठा, प्रेम व श्रद्धा।

सम्प्रति उपर्युक्त भावनाओं को जाग्रत करने केलिए ही विज्ञापनादि साधन अपनाए जा रहे हैं। इसके साथ ही व्यावसायिक प्रबन्धन के लिए मरुत्(वायु) सदृश गुणों वाले व्यक्तियों को नियुक्त करने का निर्देश दिया गया है, जैसे वायु एक स्थान की गन्ध को या मेघों को या रजःकणों को इतस्ततः लाती और ले जाती है, उसी प्रकार जो एक स्थान के पदार्थों को दूसरे स्थान या देशों में भेजने और वहाँ के पदार्थो को अपने स्थान में लाने की प्रक्रिया में निपुण हों, उनकों व्यापार-प्रबन्धन में नियुक्त किया जाये। आधुनिक बहुराष्ट्रीय व्यापारिक प्रतिष्ठान वैदिक दिशा-निर्देशों से प्रेरणा प्राप्त कर प्रतिष्ठित एवं लाभान्वित हो रहे हैं। शोधपत्र में वैदिक युग की उपर्युक्त व्यावसायिक-प्रवृत्तियों का विशद विवेचन किया जायेगा।

अष्टांग योग : आदर्श जीवन-प्रबन्धन का सूत्र

डॉ. सन्तोष कुमार पाण्डेय वरिष्ठ प्रवक्ता संस्कृत-विभाग, एम.डी.पी.जी. कालेज, प्रतापगढ़ (उ.प्र.)

चिन्तनशील मानव के स्वाभाविक गुण चिन्तन-मनन के विकास एवं संरक्षा हेतु शरीर का स्वस्थ रहना और चित्त का एकाग्र रहना परमावश्यक है। आदर्श एवं नैतिक जीवन-प्रबन्धन हेतु भारतीय मनीषा ने जिस आवश्यक, उपयोगी एवं उपयुक्त व्यावहारिक प्रविधि को अपनाया उसे 'योगशास्त्र' के रूप में जाना गया। पातंजल योगसूत्र में 'योग समाधिः' एवं 'योगश्चित्तवृत्तनिरोधः'

योग का अभीष्ट अर्थ स्वीकृत है। मानवीय प्रकृति के भिन्न-2 तत्वों के नियंत्रण द्वारा परम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए विधिपूर्वक प्रयत्न ही योग है। पतंजलि का योगदर्शन क्रियापरक साधना-पद्धति पर बल देता है। योग समाधि है, योग आत्मदर्शन या आत्मबोध की कला है। योग जीवन्त जीवन-दर्शन एवं जीवन-प्रबन्धन का मूल है। योग शारीरिक व्यायाम मात्र नहीं अपितु आदर्श एवं नैतिक जीवनशैली है। योगचित्त को निर्मल एवं बीजरहित करने की अध्यात्मविद्या है। जीवन-प्रबन्धन का सम्पूर्ण विज्ञान एवं कला-दोनों योग में समाहित है। योग में व्यक्ति, समाज, राष्ट्र एवं विश्व की सम्पूर्ण समस्याओं के समाधान हेतु व्यावहारिक सूत्र निहित हैं।

महर्षि पतंजलि ने आदर्श जीवन-प्रबन्धन हेतु योग साधना के आठ व्यावहारिक अंगों को स्वीकार किया है- अष्टांग योग की साधना के बिना कोई योगी नहीं बन सकता है। भारतीय संस्कृति एवं समाज के मूलाधार अष्टांग योग के पालन से हम अपने कर्त्तव्यों को करने में तत्पर रहते हैं तथा हमारी मानवीय चेतना में वैश्विक चेतना का उदय होने लगता है। जीवन के लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु हम प्रेम, करुणा, शान्ति, वात्सल्य, मैत्री जैसे स्वधर्मों के पालन में तत्पर होकर आदर्श जीवन-प्रबन्धन की आधारशिला तैयार कर सकते हैं।

वैदिक जीवन व्यवस्थापन

प्रा. सत्यकाम पाठक संस्कृत विभाग प्रमुख, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस महाविद्यालय, नांदेड़

वैदिक साहित्य का यदि हम विचार करें तो उसमें निर्दिष्ट समस्त विचार प्रणाली आज भी व्यावहारिक और आवश्यक दिखाई देती है। विज्ञान और तंत्रज्ञान का सकारात्मक दृष्टिकोण जितना आधुनिक जीवन पर हुआ है उतना ही उसका नकारात्मक परिणाम भी आधुनिक जीवन पर हुआ है। अत: मानवी अस्तित्व का, उनके तत्वों का, मूल्यों का रक्षण करना आवश्यक हो गया है। आधुनिक जीवन शैली को व्यक्ति व समाज को सुस्थापित करने के लिए यह जीवनपर तत्व मार्गदर्शक है। शाश्वत विकास के व्यापक संकल्पना को पूर्ण करने के लिए इन मूल्यों का परिपालन आवश्यक है। इन तत्वों के व्यवस्थापन के द्वारा ही व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और विश्व सम्पन्न और सुखसमृद्ध होगा।

वैदिक साहित्य में जीवन प्रबन्धन

डॉ० विनय कुमार विद्यालंकार संस्कृत विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय रामनगर, नैनीताल

ऐतरेय उपनिषद् का छोटा सा कथानक है- सृष्टि के आरम्भ में परमात्मा ने अग्नि, वायु, आदित्य आदि देवों की रचना की वे देव जब जगत् में अवतीर्ण हुए तब कहने लगे कि हमें रहने के लिए घर दीजिए, जहां रहकर हम अपने-अपने भोगों को भोग सकें परमात्मा ने उनके समक्ष गौ का शरीर प्रस्तुत किया। देवों ने कहा यह हमें पसन्द नहीं, परमात्मा ने अश्व का शरीर प्रस्तुत किया देव पुन: बोले हमें यह भी पसन्द नहीं तब परमात्मा ने उनके सम्मुख मानव शरीर प्रस्तुत किया उसे देखते ही वे उछल पड़े और वे बोले यह बहुत अच्छा बना है यह हमें पसन्द है तुरन्त सब देव उसमें प्रविष्ट हो गये और उन्होंने अपना-अपना स्थान चुन लिया। यह कथानक मानव शरीर की महत्ता बताता है। जिसे वेद में ''अष्टाचक्रा, नवद्वारा देवानां पूरयोध्या'' कहा है। उस देवों की नगरी की मानव शरीर के द्वारा इस संसार सागर से सकुशल पान होने का सूत्र वेदों में है। आज हम देखते हैं कि हताशा, निराशा, अवसाद व तनाव युक्त जीवन बिता रहें लोगों की संख्या निरन्तर बढ़ती जा रही है और यहीं तक नहीं प्रतिपर्ष लाखों लोग आत्महत्या तक कर रहें हैं।

वेदों में जीवन प्रबंधन

डॉ. रवीन्द्र सिंह देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वेद शब्द का अर्थ है ज्ञान। वेदों में जीवन के समस्त संबंधित ज्ञान समाहित हैं। वेदों में वर्णित जीवन प्रबंधन के सूत्रों का अनुकरणीय योगदान मनुज्य के जीवन में हो सकता है।

वैदिक काल से भारत का बहुभाषी और बहुधर्मी समाज रहा है। फिर भी जीवन के प्रति दृष्टि एक समान रही है। व्यक्ति में निहित सम्भावनाओं को व्यक्त करने के लिए समान अवसर दिया जाना चाहिए। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और समाजवाद का वास्तविक अर्थ है सबके लिए समान अवसर या सुविधाएं उपलब्ध कराना। मनुष्य जब लगातार संघर्ष करता है तब वह जीवन की उपलब्धियाँ हासिल करता है। आत्मबल के द्वारा ही मनुज्य बुराइयों का, समाज के ष्ट्रत्रुओं का तथा भ्रज्टाचार का सामना करता है। अच्छी क्रियाविधियों को अपनाता है और जीवन में ईमानदारी बनाए रखता है। मनुज्य अपने जीवन में सदैव आन्तरिक रुप से तभी खुष्ठा एवं बलवान रह सकता है जब वह अच्छे कार्य करे। कठिनाइयाँ हमारे मस्तिज्क को तीक्ष्ण (पैना) करती हैं। (अथर्ववेद 20/5/3) ऋग्वेद में सबका नेतष्ट्त्व करने वाले अग्नि को ही श्रेज्ठ प्रज्ञावाला बताया गया है। वही जीवन प्रदान करने के कारण हमारा परम पिता है-सबका एक समान पिता है। हम उसके साधारण संबंधी हैं। (ऋग्वेद 1/31/10) इसी सूत्र में नेतष्ट्त्व के गुणों को बताया गया है। मानव जीवन में समय ही सबसे कीमती धन है। विष्ठव के प्रत्येक व्यक्ति ने अपने जीवन में समय का सदुपयोग करते हुए ही अनेक उपलब्धियाँ हासिल की हैं। अतः मानव को अपने जीवन में समय का उचित नियोजन अवष्ठय करना चाहिए।

वेदेषु प्रबन्धनविज्ञानस्य स्रोतांसि

आचार्य धनञ्जय शास्त्री 'जातवेदाः'

सन्ति वेदाश्चत्वारः संसारे प्रसिद्धतमाः। सन्ति च तेषु सर्वासामपि पुराणीनाम् आधुनिकानां च विद्यानां स्रोतांसि। न तथा त्रिलोक्यां प्रत्यक्षम् अप्रत्यक्षं वा ज्ञानं विज्ञानं वा अस्ति यस्य वेदे मौलिकः सिद्धान्तः न दृश्यते। तत्र 'उपलब्धौ यत्नः क्रियताम्' इति महाभाष्यसरणिरेव शरणं जिज्ञासूनाम्। यदीदं सत्यमस्ति यद् वेदाः सृष्टिकर्त्रा विनिर्मिताः प्रकाशिताः तर्हि सत्यमिदमपि यत् तत्र प्रबन्धनस्य अनुकरणीयं विज्ञानं मानवैः ग्राह्यं विलसतितराम् इति। यः विधाता इत्युच्यते स खलु महाप्रबन्धकः जगतः अन्तर्जगतः च। तर्हि किं मनुष्याणां प्रबन्धनविज्ञानं तत् ईश्वरीयं प्रबन्धनविज्ञानम् अतिशयितुं शक्नोति? कदापि न। यथा शरीरेषु रक्तनिर्माणप्रबन्धनम्। किं वर्तमानं विज्ञानं शक्नोति रक्तं निर्मातुम्, शक्नुयात्, किन्तु स एव पूर्वेयां गुरुः यस्य प्रबन्धनस्य महता तपसा क्रियते। अस्तु विस्तरेणालम्।

वेदेषु सर्वविधप्रबन्धनस्य सर्वातिशायि प्रबन्धनस्य विज्ञानं वर्तते‍तमाम् इति द्रष्टव्याः केचन तथाविधाः अंशा यैः शक्येतानुमातुं तत्। यद्यपि व्यवस्था, प्रबन्धः, प्रबन्धनम् Management इत्यादयः शब्दाः वेदे न सन्ति किन्तु प्रबन्धनस्य प्रकृष्टं स्वरूपं ज्ञापयितुम् अनेके मन्त्राः सन्ति येषु 1. व्यक्तिप्रबन्धनम्, 2. परिवारप्रबन्धनम्, 3. समाजप्रबन्धनम्, 4. राष्ट्रप्रबन्धनम्, 5. विश्वप्रबन्धनम् च सुतरां दृश्यते। तत्र प्राणिनां जीवनप्रबन्धनम्, पर्यावरणप्रबन्धनं, विद्याप्रबन्धनम्, कर्मफलप्रबन्धनम् इत्यादीनि वैज्ञानिकैः अवश्यम् अनुसन्धेयानि। प्रबन्धनस्य मूलं किम् इति जिज्ञासायाम् एकम् एव उत्तरं संमुखे अवतरति तच्च 'यज्ञः' यज्ञः परमप्रबन्धः इति, कर्तुः कर्मणः, करणस्य, संप्रदानस्य, अपादानस्य, अधिकरणस्य च सर्वोच्च विज्ञानं प्राप्यते। चतुर्णा वेदानाम् आदिमाः मन्त्राः सन्ति प्रबन्धनस्य इङ्गितारः।

ऋक्संहितायां प्रबन्धनम्

डॉ.प्रीति सिन्हा लखनऊ विश्वविद्यालयः, लखनऊ

वैदिकसंहितासु ऋक्संहिता प्राचीनतमा। ऋङ्मन्त्रात्मिकायां सत्यामप्येषा संहिता न केवलं देवानां स्तुतिसंग्रहरूपा तथा प्रार्थनानिष्ठा अपितु स्वकीयैशब्दप्रमाणात्मकैर्मन्त्रैः जीवनस्य प्रबन्धनकलां शिक्षयति, कलाया एतस्याः सार्थकतामभिव्यनक्ति च। ऋक्संहिता जीवनस्य सुनियोजनार्थं, व्यवस्थापनार्थं साफल्यार्थञ्च व्यावहारिकं ज्ञानमपि ददाति। खण्डत्रये विभक्तेऽस्मिन् शोधपत्रे सर्वप्रथमं प्रस्तावनारूपेण प्रबन्धस्यार्थः प्रकाराश्च प्रस्तोष्यन्ते। भागेऽस्मिन् जीवने प्रबन्धनस्यावश्यकतापि विवेचयिष्यते। शोधपत्रस्य द्वितीयः खण्डः प्रतिपाद्यविषस्य प्रमुखखण्डः वर्तते यस्मिन् ऋक्संहितायाः स्वरूपं सङ्क्षेपेण निरूप्य एतस्यामुपलब्धाः प्रबन्धनस्य प्रकारा ऋङ्मन्त्रोदाहरणमाध्यमेन प्रस्तोष्यन्ते। ऋक्संहितायां प्रामुख्येन वैयक्तिकं, पारिवारिकं, सामाजिकं, राष्ट्रियं वैश्विकञ्च प्रबन्धनं प्रतिपादयिष्यन्ते। शोधपत्रस्यास्यान्तिमे उपसंहारात्मके च चरणे आधुनिकजीवनशैलीपरिमार्जनाय, जीवनस्योन्नत्यै, समाजात् स्वार्थपरायणतेर्ष्यालोभासत्यवादितादीनामपसारणार्थमेतान् सर्वान् विषयानवलम्ब्य निष्कर्षरूपेण ऋङ्मन्त्रोदाहरणपुरस्सरं प्रबन्धनविद्याया उपयोगिता प्रतिपादयिष्यते।

वैदिकव्यापारे वाहन-प्रबन्धनम्

सुश्रुत सामश्रमी आर्यकॉलेज, पानीपत

वेदेषु धर्मार्थकाममोक्षाणां चर्चा बहुशो विद्यते। तत्र च अर्थस्य विशिष्टं महत्त्वं, तं विना लोक-यात्रा कथमपि न चलति अत एव अधिकाधिकम् धनं प्राप्तुं दृढा भावना वेदेषूपलभ्यते। 'वयं स्याम पतयो रयीणाम्, स नो वसून्याभर' इत्यादि वचांसि तामेव कामनां पोषयन्ति। अर्थश्चायाति परिश्रमेण व्यापारेण वा। व्यापारो भवति कृषि -वन्य-जन्यानां वस्तूनां विक्रयेण खनिजोद्योगेन शिल्पेन पशुपालन-विक्रयादिना वा। व्यापाराय विस्तृता मार्गा वाहनानि च आवश्यकानि। अतः वेदेषु वाहनप्रबन्धनाय बहु लिखितम्। 'येन धनेन प्रपणं चरामि तन्मे भूयो भवतु न कनीयः' इत्यादि वचनैः व्यापारेण धनवृद्धेः भावना दृश्यते। वेदाध्ययनेन प्रतीयते यत् आधुनिककालवत्, वैदिकराष्ट्रेऽपि सर्वविध नां विकसित-वाहनानां प्रबन्धनमासीत्। त्रिविधानि वाहनानि तत्र विलोक्यन्ते, भूचराणि वाहनानि, जलचराणि वाहनानि, नभश्चराणि च वाहनानि। भूचरवाहनेषु अश्वेन, अश्वैर्वानीयमानो रथः, वृषभगन्त्री, कारवाहनम् अनसः(लघुगन्त्री) हस्तीवृषभोष्ट्र-गर्दभ-वाहनानि, पुरुषवाहनञ्च। एतेषां गमनाय मार्गा अपि विस्तृता अभवन्। एकस्मिन् विस्तृते मार्गे एव त्रिविधाः पन्थानोऽभवन्।

जलचरवाहनेशु नौ-उडुप-प्रभृतयः पञ्चविधा नावः प्राप्यन्ते वेद-संहितासु। लघुनावा जना पारेनदं यान्ति स्म। नावः शतारित्रा अपि आसन्। या बहुभिः नरैः शतैररित्रैश्च संचाल्यन्ते स्म। ताभिश्च नौभिः व्यापारिक-वस्तूनि, नगरान्नगरान्तरं देशाद्देशान्तरञ्च नीयन्ते स्म। पनपडुब्बी नामकस्य वाहनस्य अन्तः समुद्रे गमनशीलस्यापि वर्णनं प्राप्यते। यजुर्वेदे मन्त्रोऽस्ति **समुद्रं गच्छ स्वाहा अन्तरिक्षं गच्छ स्वाहा** एतेन प्रतीयते यत् समुद्रे, गगने वा गन्तुं वाहनान्यभूवन्। पूर्वं जलचरवाहनानि वर्णितानि। नभश्चरवाहनानां वर्णनमपि पदे-पदे विलोक्यते। तदर्थञ्च देवयाना मार्गा अभवन्। नभश्चर-वाहनेषु विमानं प्रमुखमस्ति। वेदे अनश्वः रथः यन्त्रचालितो रथः बहुशः विचरन् विलोक्यन्ते। तस्य चक्राणि त्रीणि आसन् तत् मनोजवमासीत्, गगनयानं त्रिभुजाकारं वर्णितं ननु। तत् यानं केवलं गगनचारि वायुयानमेव वर्तते। वेदे रथशब्दः सामान्ययानायापि वर्तते, विशिष्ट यानापि वर्तते यत् समुद्रे अपि धावति आकाशेऽपि गरुडवत् तीव्रं धावति। इत्थं विचित्रा आश्चर्यजनिका वाहन-व्यवस्था वेदे विलोक्यते। शोध-पत्रे तस्या एवं वाहनव्यवस्थाया विस्तृतं वर्णनं वरीवर्ति।

वेद में व्यापार प्रबन्धन

प्रो. देव दत्त भाटी वैदिक रिसर्च हाउस, आगार नगर, मालेरकोटला

वैदिक साहित्य में कृषि, घरेलू उद्योग-धन्धों, शिल्प, वास्तुकला तथा स्थापत्यकला आदि के प्रमाण भूरिमात्रा में उपलब्ध होते हैं। वेदों में विमान, जलमान(नौका) तथा विभिन्न प्रकार के यन्त्रों का भी उल्लेख है।

पणि सरमा प्रकरण वेदों में व्यापार प्रबन्धन पर भी प्रकाश डालता है। कृषि के लिए दो, चार, छः आठ, दश बारह सोलह संख्या तक बैलों का प्रयोग किया जाता था। इससे कृषि के बहुल मात्रा में किये जाने का वर्णन अनेकत्र मिलता है। वैदिक युग में कृषि कार्य प्रधान व्यवसाय था। इस कर्म में विशेष रूप से वैश्य गृहस्थी प्रवृत्त होते थे। वेदों में कहीं भी किसी खाद्य वस्तु के अभाव का उल्लेख नहीं है, इससे व्यापार प्रबन्धन के सुदृढ़ होने की बात प्रमाणित होती है।

LEADERSHIP IN KNOWLEDGE ECONOMY- A VEDIC PERSPECTIVE

Dr. Rajat Agrawal, Assistant Professor Dept. of Management Studies Indian Institute of Technology, Roorkee.
Dr. Payal Agrawal, Lecturer Methodist Girls Degree College Roorkee.

Knowledge revolution of 21st century is a story of full circle. India was very late to react for Industrial revolution. Fortunately we could show a significant presence of India during Information Technology revolution. But the most appropriate time to be proactive is to understand the knocking of knowledge revolution. Knowledge and ignorance lead to different results. Whatever is performed with knowledge, faith and concentration is more effective. There is no purifier in this world like knowledge. Gita suggests that one can acquire the right type of knowledge from individual pursuits. The role of leadership will be very important in coming period. As

knowledge will govern the period, many current characteristics of leadership have to be looked in new context. The paper discusses the leadership's importance and its role in knowledge revolution.

MANAGEMENT POLICIES FOR LIFE FROM THE KIRTANAS OF TYAGARAJA

Dr. T. Seetharamalakshmi, Professor of Music (Retd) Bangalore University

Tyagaraja is the doyen in the realm of Music. He is a vaggeyakara who has to his compositions which number to six hundred and more. He is immortal since he is the best social reformer and provider of spiritual bliss and happiness to a large number of people since the times from17th century. His compositions have the value that of Upanishads. Infact all his compositions put together are designated as the Tyagopanishd. His Muse is Sri Ramachandra, the best in Human Beings and Kings. His compositions have clues to suggest the policies of Management. Referring to life styles and the subject Music and its Learning. The chief aim of life according to our scriptures is to maintain and increase in the power of the purusharthas viz Dharma (duty), Artha (Money and sense of real object of birth), Kama (the desire pertaining several aspect of human life and finally the Moksha, the consummation and Liberation.

CORPORATE SOCIAL RESPONSIBILITY (CSR)- AN EMERGING TREND TO MAINTAIN VEDIC VISION IN THE ORGANIZIATION

Dr. Deepak Gupta, Director - Rawal Institute of Management, Faridabad, Haryana

The Vedas says that they are concerned about unethical and profit driven activities and its impact on society and the environment. the Organizations really face the impact of unethical work done in their different departments/ walk of life and the organization is paying the price for the unsocial work. Today, major industries and service organizations have felt the mistakes and the awareness have come into mind for corporate social responsibility.

The concept of CSR is to consider the interest of society while taking responsibility for their activities on customers, employees, shareholders, communities and environment in all respects of their operations based on based on Vedas. The focus of CSR can be studied on the role of individual dimensions related with dharma, fair means of wealth-acquisitions through ethical and moral practices. Social distribution of wealth and towards importance of environmental protection and purity.

LEADERSHIP AND LABOR ACCORDING TO VEDIC MANAGEMENT

Mihir S. Upadhyay, Lecturer in Sanskrit, Shree P.H. Umarao College of Arts & Com. Kim, Station road, Kim. Surat Gujarat

The Vedas accord highest significance to leadership. They are full of references to various characteristics and dimensions of leadership. The leader is supposed to be an evolved, mature and all- round personality with a number of positive characters. Leadership is to bestowed in a befitting manner to one who deserves. (Vajasneyi Samhita 10/4). The Veads elaborately discuss about the qualities of leadership in a number of hymn.
The analysis of the Vedic statements discloses that a leader has to possess number of positive qualities. Characteristics of leaderships according to the Veads can be classified as follows.

(a) Effectiveness. (b) Touching. (c) Ethical.

The Vedas also indicate the disqualifications of a leader. A person possessing negative qualities is expelled from becoming a leader. The Vedas state that the leader is elected by the choice of others. The learned men assembled elect the leader. (Vajasneyi Samhita 27/3) The Vedas adore labor in positive terms. They inspire people to work with joy and achieve superiority.

MANAGING CONCEPTS IN INDIAN SCRIPTURES : ITS RELEVENCE IN MODERN CONTEXT

Dr. P. Kumari, Associate Professor, Dept. of Management Studies Kanya Gurukul, Dehradun,
Ms. VijyayaShree Sangwan, 2nd Campus Gurukul Kangri Vishwavidyalaya, Haridwar

The advancement and development at various levels have been witnessed by us as a human race over the years due to economic, technological and socio-cultural changes. At individual level, however, the progress is almost at the same state where it was observed by our great visionary seers years ago. The Rishis of ancient times observed and analyzed meticulously that the internal improvement at the mindset of each individual unit of the society or nation is directly proportionate to the development and proper management of tasks at external level (which includes management of work, varying situations and circumstances, relations etc.). The wisdom based observations of the respected seers emerged out to be the universal principles, concepts or guidelines that are applicable irrespective of the place, situations and time. If the development structure is personified by linking the advances at various levels as limbs, it will be found to be without consciousness. This very consciousness in the development structure comes when the improvement in the thinking level of the each individual comes. This paper explores the universal principles, concepts or guidelines contained in the Indian Scriptures which make a part of the Ancient Sanskrit Literature. These, if applied sincerely, will prove to be very beneficial and effective in the management of the tasks leading to real development in all the concerned fields.

THE APPLICATION OF ETERNAL CONCEPTS OF SHRIMAD BHAGVAD GEETA IN MANAGEMENT

Dr. Surekha Rana, Asst. Prof. Dept. of Management Studies **Ms. Priyanka** Gurukul Kangri Vishwavidyalaya, Haridwar

In modem times, various hindrances in the way of development at personal and social level can be attributed to the mind-set of individuals involved in the developmental process of all the organizations that form part of the society. In Indian philosophy, it has been emphasized that the change in the thinking of each individual units of society can bring a positive change in outer world. For the eff ctive management of all the concerned affairs, one has to manage him/herself first by possessing strong and healthy mind-set and outlook towards the things that have to be managed.

Shrimad Bhagvad Geeta has many things to contribute in different area of Management like leadership, motivation, management of men, development of proper work culture etc. It teaches self management which plays a pivotal role in managing the outer world. In Shrimad Bhagvad Geeta the essence of all the Vedas and Upanishad has been explained by Lord Shri Krishana to his disciple Arjuna. Shri Krishana who can be considered a great counselor, a leader or management guru has guided Arjuna well through the state of anxiety, stress, tensions and confusion that he faces in the battle field. Today, individuals bear almost the same state of mind like Arjuna's while managing his/her personal/professional life. This paper highlights significance of eternal concepts of Shri Madbhagvad Geeta in management.

HUMAN RESOURSE MANAGEMENT: VEDIC CONCEPT

Dr. Harekrushna Mishra, Visva Bharati

According to some scholars Vedas are nothing but ritual literature, in some others view it is collection of bogus poems of ancient India, others have the opinion that this is historical data-source of Vedic Indian and some other scholars have the opinion that Vedas are the source of all knowledge. To this scholar it is very-much dependable on the attitude of interpretion of the individul scholar. Interpretation of word as well as a sentence is very-much dependable on the knowledge of the individual on the following aspects- which interpretation is right and which is not, this cannot be determined by any scholar at any point of time. This paper is an attempt to have

an analytical survey of the Vedic concepts which may be interpreted in the light of modern managerial science.

VEDAS IN MODERN MANAGEMENT PRACTICES

Dr. Deepa Lecturer, KIET, Ghaziabad, UP

The Vedas have great practical relevance and significance. The Vedic wisdom can be deployed fruitfully to the contemporary business organizations as well. The Vedic statements apply stunningly to the modern business managment practices such as financial managment, knowledge managment, corporate governance, change managment, cultural managment, Total quality managment etc. The Vedas advise the business organizations to design and implement focused planning strategies for ensuring career growth avenues for the all levels besides uninterrupted and continuous business operations. **Tasmat yat puruso manasabhi gacchati, Tad vaca vadati, Tal karmao karoti.** (There fore Whatever man Contemplates in his mind, That he exppresses in words and dose inaction). The Vedas denounce untruthfulness and command everyone to fully true and transparent resulting in good corporate governance. They advocate a clear-cut transparent link in terms of planning,communication and action at all organizational levels. An in-depth analysis of the Vedas proves that the wide spectrum of modern business management practices are con vincingly of Vediv origin. This article looks at how the Vedas plays the vital and significant role in organizing various modern management practices.

Keywords : Modern Management; Vadyam; Wealth Maximization; Knowledge acquisit ion; Social responsidilities; Banchmarking.

VEDIC MANAGEMENT AS A CARDINAL CONCEPT OF CORPORATE SOCIAL RESPONSIBILITY IN INDIAN CONTEXT

Dr. Surekha Rana G.K.V., Haridwar **& Padma Misra** B.I.T Meerut

Vedic management principles are neither religious nor spiritual. They are given in Vedas and Vedic related literature including Vedas, Upanishads, Darsanas, Puranas and Ithasas. They are based on individual social, national and universal principles and are always complementing and never contracting. They are coordinating and never conflicting. They are meant for revolutionary and violent internal changes and evolutionary and silent external changes. These messages are applicable to everyone in the world whatever may be their without the barrier of religion, caste, language, nation of origin, race or age and gender.

Corporate Social Responsibility (CSR) is a term coined in the 20th century. It has evolved from the history of the industrial revolution, the period that depicts the labour movement, the creation of the business enterprise and the years of perfecting 'Corporate Giving' as a power 'to do good for society'. Vedic Vision stresses on 'action with self contentment' although it recognizes business's core function of creating wealth but, it also emphasizes to work for a 'Economic Structure' based on 'SARVA LOKA HITAM' meaning 'The Well-Being Of All Stakeholders'. The CSR concept is incomplete without understanding the cardinal nature of Vedic management in Indian context. The paper discusses the centrality of Vedic vision and Vedic management in CSR. It identifies the Vedic Management as complementing rather than conflicting to CSR for internal and external changes in Business.

A STUDY OF ORGANIZATIONAL CLIMATE IN RELATION TO JOB INVOLVEMENT IN PUBLIC SECTOR ORGANIZATIONS

Dr. Surekha Rana, *Dr. Nirupama, Reader, *Assistant Professor, Dept. of Management Studies Kanya Gurukul, Dehradun, 2nd Campus Gurukul Kangri Vishwavidyalaya, Haridwar

The present study was conducted on 200 managers for assessing the relationship between Organizational climate and Job involvement in public sector. organizations. Two units were selected for the purpose of data collection. Organization I was manufacturing unit and Organization II was corporate office of a different public sector organization. Data for study were acquired using a structured questionnaire, Organizational climate measuring Results, Rewards & Interpersonal Relations, Organizational Processes, Clarity of Roles and Sharing of information and Altruistic Behaviour and Job involvement measuring True key & False key. The current study reports significant correlations between Clarity of Roles & Sharing of Information and Altruistic Behaviour, dimensions of Organizational climate with True key of Job involvement. False key, dimension of job involvement showed significant relationship with Results, Rewards & Inierpersonul Relations, Organizational Processes and Clarity of Roles & Sharing of Information, measures of Organizational climate. The study concludes with implications for practitioners and explores areas for further research.

Keywords: Organizational climate, Job Involvement.





वेदाङ्ग



वेदाङ्गों का महत्त्व

डम्बर प्रसाद पौडेल (शोधच्छात्र) वेद विभाग, गुरुकुल कांगड़ी वि.वि. हरिद्वार

भारतीय परम्परा के अनुसार वेद सृष्टिक्रम की प्रथम वाणी है। इस चराचर विश्व का धारण एवं पोषण भी शाश्वत वेद शब्द राशि के द्वारा ही होता है। विश्व में मानवीय सभ्याता का यत्किमपि सृजित मूलभूत ज्ञान है, तो वह वेद ही सब संस्कृत वाङ्मयों में धागे में बूदी गई मणियों की तरह सुप्रतिष्ठित है। अत: मैं वेदों में वर्णित विभिन्न विद्याओं में से वैदिक साहित्य सम्बन्धित मुख्य विद्यायें निम्न हैं 1. वेदांग, 2. उपांग 3. ब्राह्मण, 4. आरण्यक, 5. उपनिषद्। इन में से मैं वेदांगों पर चर्चा करना अत्यावश्यक समझता हूँ। (क्योंकि वेद एक विद्यमान पुरुष होता हुआभी अदृश्य बना हुआ है, जो कि षडङ्गात्मक पुरुष को भावात्मक रूप में प्रकट करुंगा।) इनमें से हम वेदांग की आवश्यकता एवं उसमें वर्णित विद्या के विषय में वर्णन करेंगे। वेदांग के बिना वेदों का अर्थ जानना कठिन ही नहीं अपितु असम्भव है। जिस प्रकार हाथ-पैरादि अंगों के बिना शरीर का ज्ञान कठिन है। इसी प्रकार वेद का वास्तविक अर्थ नहीं जान सकते। अत: वेदांग का वैदिकसाहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

निघण्टु : एक परिचयात्मक अध्ययन

कु. भाग्यलक्ष्मी पंडया शोधच्छात्रा, सौराष्ट्र यूनिवर्सिटी जामनगर

प्रो. डी.टी.एन. पंडया आई.पी.जी.टी.एण्ड आर.ए.गुज. आयु. यूनि. जामनगर

प्राचीन संस्कृत वाङ्मय और आयुर्वेदीय द्रव्यगुण शास्त्र में निघण्टु शब्द प्रचलित है। निघण्टु शब्द के कई अर्थ होते हैं। निघण्टु शब्द से विभिन्न अर्थ लिए जाते है। आयुर्वेद में द्रव्यगुण शास्त्र का अनिवार्य अङ्ग निघण्टु शास्त्र है।

वैदिक वाङ्मय के अन्तर्गत प्रयुक्त दुरूह एवं अनेकार्थक पदों का यथार्थ निवर्चन निरुक्त का विवेच्य विषय है। यद्यपि अनेक निघण्टुओं और निरुक्तों की चर्चा तथा प्रमुख निरुक्तकारों के रूप में निरुक्ताचार्यों की चर्चा आती है। निघण्टु वैदिक शब्द है। निघण्टु का मूल निरुक्त में है। समय समय पर निघण्टु के अर्थ में अन्तर आता गया है। वेदों के दुष्कर कठिन शब्दों एवं सूत्रों को समझने के लिए वैदिक शब्दों के अर्थों को लेकर निघण्टु एवं निरुक्त ग्रन्थ बनाये गये हैं। आयुर्वेदार्थबोध में आने वाली कठिनाईयों और आयुर्वेदार्थ के अन्यथाबोध में उपस्थित होने वाली विसंगतियों के कारण निघण्टु निरतिशय महत्त्वपूर्ण हो जाना है। वेदों से लेकर वर्तमान युग तक के निघण्टु देखे जाए तो निघण्टु शब्द की व्याख्या में और निघण्टु के स्वरूप में कुछ न कुछ अन्तर आ गया है।

भिन्न भिन्न आचार्यों के मतानुसार निघण्टु शब्द की व्युत्पत्तियाँ भिन्न हैं। निघण्टु ग्रन्थ को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है। प्राचीनकालीन निघण्टु मध्यकालीन निघण्टु और आधुनिक कालीन निघण्टु। संस्कृत साहित्य में उपलभ्यमान ग्रन्थ अनेक हैं। इस में से कई निघण्टु ग्रन्थ ऐसे हैं जो कि अधिक प्रचलित हैं, एवं पूर्ण स्वरूप में मिलते है। अनेक निघण्टु ऐसे भी हैं, जो कि निघण्टु होते हुए भी जिस के अन्तर्गत विषय वस्तु भिन्न प्रकार की है। कुछ निघण्टु ऐसे भी हैं जिसका केवल नाम का ही उल्लेख मिलता है, निघण्टु अप्राप्य है।

प्रस्तुत शोधपत्र में उपरोक्त विषय की सन्दर्भ सहित विवचना करने का यथासम्भव प्रयत्न किया जाएगा। अस्तु ।

ऋग्वेद में 'हि' निपात का अर्थ चिन्तन

अवधेश कुमार उमराव(शोधच्छात्र) वेदविभाग, गुरुकुल कां.वि.वि. हरिद्वार

ऋग्वेद सम्पूर्ण जगत् के उपलब्ध साहित्य में सर्वप्राचीन ग्रन्थ है, ऐसा अनेक पाश्चात्य विद्वानों का मत है। संस्कृत का प्राचीनतम रूप ऋग्वेद मे ही सुरक्षित है।अति प्राचीन काल में जब मनुष्य के पास परिष्कृत वाणी का अभाव रहा होगा तो, वह मूल धातुओं एवं निपात जैसे सूक्ष्म पदों के द्वारा ही अपने भावों का व्यक्तीकरण करता रहा होगा। भाषा वैज्ञानिकों के विचार में तो भाषा की उत्पत्ति एवं विकास का आधार ही निपात रहे हैं।

'उच्चावचेषु अर्थेषु निपतन्तीति निपाता:' यह आचार्य यास्क का कथन है। आचार्य यास्क के अनुसार उपमा, अर्थोपसंग्रह और पदपूर्ति अर्थों ने निपातों का प्रयोग होताहै। इव, न, चित्, नु, च, आ, वा, अह, उ, हि, किल, मा, खलु, शश्वत्, नूनम्, सीम, त्व, त्वत्, कम्, ईम्, इत् आदि 21 निपात निरुक्त में आचार्य यास्क ने सोदाहरण दिखाये हैं। इनमें से 'हि' निपात वेदों में अनेक अर्थों में प्रयुक्त है। इसीलिए यास्क ने कहा है- 'हि' इत्येषोऽनेककर्मा। ऋग्वेद की शाकल संहिता में एव, अवधारणा, खलु, पदपूरण, हेतु, प्रसिद्धि आदि छ: अर्थों में इसका प्रयोग हुआ है।

इस विषय में प्रस्तुत शोधपत्र में विस्तार से विवेचन किया जायेगा।

वेद ही व्याकरण के मूल आधार

डॉ. राजनारायण संस्कृत अध्यापक, फतेहाबाद(हरियाणा)

भाषाओं में संस्कृत भाषा महत्त्वपूर्ण है, और संस्कृत भाषा में व्याकरण का स्थान सर्वोपरि है। संस्कृत वाङ्मय के अध्ययन के लिए व्याकरण का पूर्व ज्ञान अनिवार्य है। व्याकरण विद्या का मूल रूप हमें वेदों से प्राप्त होता है।

सर्वप्रथम व्या+कृ का व्याकरण, विवेचन या विश्लेषण अर्थ में प्रयोग यजुर्वेद में प्राप्त होता है-

दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत् सत्यानृते प्रजापति:।
अश्रद्धामनृतेऽदधाच्छ्रद्धां सत्ये प्रजापति:।।(यजु.19/77)

परमात्मा को माना गया है। उसने ही सत्य और अनृत का व्याकरण अर्थात् विवेचन किया है। तात्विक दृष्टि के द्वारा उसने सत्य में श्रद्धा और असत्य में अश्रद्धा रखी। यही सत्य और असत्य का विश्लेषण बाद में प्रकृति और प्रत्यय का विश्लेषण होकर व्याकरण बना। प्रकृति और प्रत्यय का दार्शनिक विवेचन ही व्याकरण दर्शन को जन्म देता है।

महर्षि पतञ्जलि ने व्याकरण के पाँच उद्देश्यों में सर्वप्रथम वेदों की रक्षा करना प्रतिपादित किया था।

रक्षोहागमलघ्वसन्देहा: प्रयोजनम्। (महाभाष्य नवा. 9)

हमें वेदों से ही सर्वप्रथम व्याकरण का ज्ञान प्राप्त होता है। ऋग्वेद का एक मन्त्र है-

चत्वारि श्रृंगा त्रयो अस्या पादा द्वे शीर्षे सप्तहस्तासो अस्य।
त्रिधा बद्धों वृषभो रोरवीति, महादेवो मर्त्या आविवेश।।(ऋ. 4/58/3)

महर्षि पतञ्जलि के अनुसार शब्द(व्याकरण) रूपी वृषभ के चार सींग हैं- नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात। इसके तीन पैर हैं, दो सिर हैं, तथा प्रथमा आदि सात विभक्तियां हैं।

वैदिक पद तथा निर्वचन-विज्ञान

विश्व बन्धु(शोधच्छात्र) जवाहरलाल नेहरु यूनिवर्सिटी

मानव-बुद्धि की सर्वार्थरूपता तथा सर्वाभिधानरूपता ही व्यवहार का हेतु है। बुद्धिस्थ-तत्त्वों की अभिव्यक्त्यर्थ पाणिविहाराक्ष्यादि अभिनयों की संदिग्धता तथा शब्द की अर्थविषयक नि:संदिग्धता ही शब्द को व्यवहार का प्रकृष्टतम साधन बना देती है। शब्द की इसी महिमा से अभिप्रेत हो ऋषि अन्त:गुह्य में विद्यमान तत्त्वों की अभिव्यक्ति शब्दराशि-रूप में करता है। विशिष्ट शब्दराशि विशिष्ट तत्त्व को याथातथ्य उपस्थित करती है। इसी तापसी क्रिया को दुर्गाद्याचार्य ऋषि का 'साक्षात्कृतधर्मत्व' कहते हैं-

तदेतत्कर्मण: फलविपरिणामदर्शनं धर्म उपचर्यते।(नि. 1/20)

इन लौकिक पदों की अलौकिकता अलौकिकतत्त्वों की अलौकिक प्रकार से अभिव्यक्ति ही है। यही ऋषि का ऋषित्व है-

ऋषिदर्शनात्। स्तोमान् ददर्शेत्यौपमन्यव:(नि 2/2)

वेदभाष्यकार इन पदों का अर्थाभिधानशक्तिदृष्ट्या चतुर्धा विभाजन करते हैं- नाम, आख्यात, उपसर्ग, निपात। उपसर्ग तथा निपात पदों की परिमितता उनका प्रतिपद पाठ सम्भव करती है। परन्तु नाम तथा आख्यात पदों की अपरिमितता उनके लक्षणकथनार्थ उपदेश

करती है। नामपद का प्राधान्य 'सत्त्व' वस्तुत: आख्यातपद के प्राधान्य 'भाव' का ही परिणाम है-

संख्याविभत्यव्ययलिङ्‌युक्तो भावस्तदा द्रव्यमिवोपलक्ष्य:। (बृहद्देवता 1/55)

निर्वचन का उद्देश्य नामपद के इसी मूल रूप को प्रकट करना है। साधारण शब्दों में निरन्तर क्रियमाण तत्त्व की विशिष्ट क्रिया का निर्देश करते हुए शब्द की तदर्थप्रवृत्ति का निर्देश करना ही निर्वचन का प्रयोजन है। यह प्रवृत्तनिर्देश अर्थानुसारी, अर्थ के सूक्ष्म स्वरूप का बोधक होता है।

वैदिकपदों के सन्दर्भ में प्रस्तुत विधा की इसी विज्ञानरूपता को निरूपित करना शोधार्थी का लक्ष्य है।

वेदों में शैक्षिक सूत्र

डॉ. एस. सी. बहुगुणा प्राध्यापक-बी. एड. विभाग रा. स्ना. महा. विद्यालय कोटद्वार, गढ़वाल, उत्तराखण्ड

मनुस्मृति के अनुसार-वेदों को ही धर्म का मूल कहा गया है। वेदों में ही मनुश्य की समस्त उन्नति का अनमोल उपहार है। धर्म के दस लक्षणों में सातवां लक्षण धी: अर्थात बुद्धि को कहा गया है। मनुश्य के पास जितनी विकसित और क्षमतावान बुद्धि उपलब्ध है उतनी किसी प्राणी के पास नहीं है। बुद्धि को स्वस्थ, सक्रिय व उपयोगी बनाये रखने के लिये स्वाध्याय नितान्त आवश्यक है। इसीलिये वैदिक काल से आज तक गुरू अपने शिष्यों से स्वाध्याय करने में जीवन पर्यन्त कभी-भी आलस्य न करने का उपदेश देते रहें हैं। वेद विभिन्न विचार रूप रत्नों के रत्नाकार है। मानव के लिये उपयोगी समस्त ज्ञान, विज्ञान, सदुपयोग व सत् प्रेरणायें इसमें निहित हैं। अत: इन्हे गुरू शिष्य की आचार संहिता भी कहा जा सकता है। वेदों का अध्ययन करते हुये हमें वैदिक वाङ्मय मे शिक्षक विधार्थी के सन्दर्भ में शिक्षा भाास्त्र के कई उपयोगी सूत्र प्राप्त होते हैं जो आज भी शैक्षणिक परिवेश को मजबूत बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। इसमें सबसे अहम भूमिका शिक्षक की होती है। शिक्षक के अन्दर बालक में व्याप्त कु:संस्कारों को समाप्त करने की सामर्थ्य होनी चाहिए। शिक्षा का वैदिक उद्देश्य यह है कि छात्र गुरु के सानिध्य में रहकर शारीरिक, मानसिक नैतिक एवं संस्कार युक्त शिक्षा प्राप्त करे। खुशहाल जीवन के लिये सु:संस्कारित होना अति आवश्यक है। मानव जीवन में संस्कारों का महत्व सर्वोपरि है। संस्कारों का प्रमुख सम्बन्ध माता-पिता तथा गुरू द्वारा दी ग: शिक्षा और उनके आचरण से सम्बन्धित है। वेदों में पर्यावरण को शुद्ध रखने की सलाह दी गई है। ऋग्वेद में पांच यज्ञों - जीवन यज्ञ, परिवार यज्ञ, समाज यज्ञ, राष्ट्र यज्ञ तथा विश्व यज्ञ का संचालन जब वेदों या सत्पुरुषों के हाथ में होता है तो संसार में सुख की प्राप्ति होती है। प्रस्तुत लेख में लेखक के द्वारा वेदों में जो शैक्षिक सूत्र वर्णित हैं उनका उल्लेख किया गया है जिससे कि इस विश्व में छात्र अध्यापक सम्बन्धों मे मधुरता आये। छात्र का कल्याण गुरू के हाथों से हो तथा वर्तमान समय में संस्कारों एवं नैतिक मूल्यों में जो कमी आयी है हमारी वैदिक शिक्षा के प्रभाव से दूर हो। भारत वर्श की वेदों की शिक्षा जो लाखों करोड़ों वर्षो की तपस्या के बाद हमारे ऋषि मुनियों ने प्राप्त की उसको पाकर सभी व्यक्ति सुखी रहें।

धर्मशास्त्र में वर्णित कर्म एवं पुनर्जन्म के सिद्धान्त की वर्तमान में प्रासङ्गिकता

डॉ उषा चौहान सिरोही

धर्मशास्त्र के मौलिक सिद्धान्तों में 'कर्म एवं पुनर्जन्म का सिद्धान्त' परिगणित है। यह सिद्धान्त मननशील व्यक्तियों के मन में उठने वाले उस प्रश्न का उत्तर देने का भरसक प्रयास करता है कि 'शरीर की मृत्यु के पश्चात् मनुष्य का क्या होता है? इस विषय में यह संभावनाएँ हो सकती हैं-

1. मनुष्य का एक आत्मा होता है, जो नित्य और भौतिक शरीर से पृथक् है।
2. अन्य जीवों यथा- पशुओं, औषधियों एवं संभव निर्जीव पदार्थों में भी आत्मतत्त्व होता है।
3. मनुष्य एवं निम्नस्तर के पशुओं का आत्मा एक भौतिक शरीर से दूसरे में प्रविष्ट हो सकता है।
4. आत्मा कर्म करने वाला एवं दु:ख सहने वाला होता है।

भारतीय धर्मशास्त्र के प्रतिपादक ग्रन्थों यथा ऋग्वेद बृहदारण्यक, छान्दोग्य, कौषीतकि आदि उपनिषद्, अथर्ववेद तथा वाजसनेय संहिता में मनुष्य की मृत्यु के पश्चात् देवयान तथा पितृयाण का उल्लेख है। तैत्तरीय संहिता एवं वनपर्व, प्रत्येक जीवन को पूर्व अस्तित्व के कर्मों का फल कहकर, संसार को अनादि मानते हैं फलतः संसार में पहले कौन आया शरीर या कर्म ? इस विषय में निश्चित नहीं कहा जा सकता। इस विषय में उपर्युक्त ग्रन्थों का सार यह है कि-

1. वर्तमान अस्तित्व को अतीत अस्तित्वों में किये गये कर्मों का फल माना जाए।
2. बुरे कर्मों का नाश सत्कर्मों से कदापि नहीं हो सकता। इनका फल भोगना नितान्त आवश्यक है।
3. दुष्कर्मों का दण्ड व्यक्तिगत रूप से होता है, संयोग तथा भाग्य से नहीं।

और भी- इसी सारांश से पुनर्जन्म के सिद्धान्त पर पहुँचा जाता है क्योंकि एक व्यक्ति के कर्मों का फल अचानक या वर्तमान जीवन में घटित ही हो आवश्यक नहीं, आदिपर्व एवं मनुस्मृति कहते हैं-

'नाधर्मश्चरितो लोके सघः फलति गौरिव, शनैरावर्तमानस्तु कर्तुर्मूलानि कृन्तति।'

मनुष्यों में परस्पर लाभ-हानि, सुख-दुःख, संयोग-वियोग सम्बन्धी वैषम्य होने पर यह सिद्धान्त सकारात्मक प्रभाव डालता तो है ही, साथ ही भौतिक कल्याण एवं अस्वस्थ शारीरिक दशाओं की पारस्परिक विभिन्नताओं का भान भी प्रकट करता है। कतिपय मनुष्यों में जो विलक्षण बुद्धि, समर्थता एवं योग्यता पाई जाती हैं, जिसके बल पर वे संसार को चकित करते हैं उसके मूल में भी कर्म एवं पुनर्जन्म का सिद्धान्त ही है। सम्यक् प्रकार से मनन करने पर यह सिद्धान्त आनुवांशिक गुणों, संस्कारों या भाग्यवादिता को नहीं कहता अपितु इसी जीवन में पूर्ण रूप से मानवीय उद्योग करने पर बल देता है।

संस्कृत वैय्याकरण परम्परा

डॉ. रीता तिवारी ए.पी.एन.पी.जी. कॉलेज बस्ती उ.प्र.

'व्याक्रियन्ते व्युत्पाद्यन्ते शब्दा अनेनेति व्याकरणम्' अर्थात् जिस तन्त्र से साधु शब्द का ज्ञान होता है, उसे व्याकरण' कहते हैं। छः वेदाङ्गों में व्याकरण मुख्य अङ्ग है-'षड्ष्वङ्गेषु व्याकरणं प्रधानम्'।

संस्कृत व्याकरणशास्त्र की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। ऋक् तन्त्रकार के अनुसार व्याकरणशास्त्र का आदि प्रवक्ता ब्रह्मा है। ब्रह्मा ने बृहस्पति को और बृहस्पति ने इन्द्र को शब्दोपदेश किया। श्री युधिष्ठिर मीमांसक के मतानुसार उपलब्ध वैदिक पदपाठों की रचना से पूर्व व्याकरणशास्त्र अपनी पूर्णता को प्राप्त हो चुका था। इन्द्र से लेकर महर्षि पाणिनि तक अनेक वैय्याकरण हुए। इनमें कुछ का निर्देश प्रातिशाख्य आदि प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है। युधिष्ठिर मीमांसक ने 80 वैय्याकरणों का उल्लेख किया है जिसे पाणिनि के पूर्व का बताया है।

पाणिनि ने भी 'अष्टाध्यायी' में काश्यप, गार्ग्य, भारद्वाज, आपिशलि, शाकल्य, शाकटायन, स्फोटायन आदि शब्दों के माध्यम से उल्लेख किया है परन्तु इनमें से किसी का कभी व्याकरण पूर्णरूप से प्राप्त नहीं होता है। केवल महर्षि पाणिनि का ही व्याकरण पूर्ण रूप से प्राप्त होता है। पाणिनि के पश्चात् वररूचि कात्यायन का नाम आता है। जिन्होंने वार्तिक पाठ की रचना की जो पाणिनि व्याकरण का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अंग है। वररूचि के बाद पाणिनीय व्याकरण परम्परा में तीसरा महत्त्वपूर्ण नाम पतञ्जलि का है। इनकी प्रमुख रचना 'महाभाष्य' है। इसके अतिरिक्त योगसूत्र और चरकसंहिता भी मानी जाती है। इसके पश्चात् इस परम्परा में जयादित्य-वामन, भर्तृहरि, भट्टोजि दीक्षित, वरदराज तथा नागेश भट्टादि का नाम आता है।

पाञ्चरात्रागमप्रतिपादित 'शब्दब्रह्मस्वरूप' विमर्शः

डॉ. कन्हैया प्रसाद शर्मा वरिष्ठ शोध-अध्येता सांख्ययोगतन्त्रागम विभाग सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

पाञ्चरात्रतन्त्रं पञ्चवियदादिभोगाद्विनिवृत्तिदायकं शास्त्रम्। अत्रैव तन्त्रे पाञ्चराशब्दस्यापरोप्यर्थः प्रतिपादितः। अव्यक्तं मनः बुद्धिः अहंकारः चितं गन्धादिपञ्चतन्मात्राश्च शरीरिणां रात्रयः प्रोक्ताः। अव्यक्तादिभिः समन्वितैर्देहैः। स्थितानां शारीरिणां मुक्तिमुक्तिप्रदं साधनं

पाञ्चरात्रविधानम्। तदाराधनविधिप्रतिपादकं शास्त्रं पाञ्चरात्रमिति। परमहंससंहितामते भूतवर्गः अव्यक्तः पुरुषश्चेति रात्रिसंज्ञकः। तत्र प्राणिनां कृते रात्रिभूतानां महाभूतानां पञ्चगुणानाञ्च निवृत्तिसाधनकत्वादेतच्छात्रं पाञ्चरात्रमित्युक्तम्। पाञ्चरात्रागमग्रन्थेषु प्रायः न्युनाधिक विस्तारसंकोचरुपेण ज्ञानयोगक्रियाचर्येति एते चत्वारो विषयाः सन्ति वर्णिताः।

पाञ्चरामागमा द्विधाः-दिव्या अदिव्याश्च। भगवता नारायणेन स्वयमुपदिष्टाः पौष्करजयदिसंहिता दिव्याः। अदिव्याः मुनिभाषिता आप्तांक्ताश्चेति। भारद्वाजादिऋषिप्रोक्ता भारद्वाजसंहितादयो मनिभाषिताः आप्तैर्मनुजकुलोद्भूतैराचार्यैर्विरचिता आप्तोक्ताः। एतेषामहात्य संख्या सं एकोनविंशत्युत्तरद्विशतमिति पञ्चविंशत्युत्तरद्विशतमिति वा संप्रदायविदां व्यवहारः।

तदेवं वैष्णवागमाः वैखानसपाञ्चरात्रसमयभेदेन द्विविधा अपि प्रामाणिक एवेति सिद्धान्तः। एवं स्थिते यान्युभयत्रापि परस्परनिन्दा पराणि कानिचित् वचनानि, तानि न हि निन्दा न्यायेन स्वस्वागतप्राशस्त्यपराणीति मन्तव्यम्। तथाहि वैखानसमरीचिप्रोक्तायामानन्दसंहितायाम्।

शतपथकार की वैदिक भाषा संबंधी विचारधारा

डॉ० सुकेशी रानी गुप्ता रीडर संस्कृत विभाग, रघुनाथ गर्ल्स (पो०ग्रे०) कॉलिज, मेरठ

भाषाविज्ञान में भाषा समान्य के उत्पत्ति और विकास क्रमिक और दीर्घकालीन माने गए हैं। बालक जब भाषा सीखता है तब क्रमशः एक एक अक्षर से अपना भाव अभिव्यक्त करता है और धीरे-धीरे अनेकाक्षर पदों को ग्रहण कर बोलने लगता है। अपने मूल रूप में वैदिक भाषा एकाक्षरात्मक रही होगी। उस काल में एक-एक अक्षर से ही विभिन्न भावों का द्योतन होता रहा होगा। अकारादि स्वर और स्वर-व्यंजन वर्णों के एकाक्षर समुदाय भाषा में पूर्ण पद पर रहे होंगे। वाक्य में उनके स्थान से ही उनके स्वरूप और अर्थ आदि का बोध होता रहा होगा।

वैदिक भाषा के वह्वक्षरा और उपलब्ध स्वरूप दीर्घकालव्यापी विकास का परिणाम है। इस विकास में शतपथकार की पदावली में मिथुन-प्रक्रिया (पाणिनी की पदावली में समास प्रक्रिया) का महान् योग रहा। शतपथकार ने अपना भाषाविषयक अभिमत पर्यायों की योजना, निर्वचनों और पदों के अर्थों की अभिव्यक्ति, देवों, ऋषियों, छंदों और यज्ञों आदि की कल्पना आदि के माध्यम से अप्रत्यक्ष रूप से प्रस्तुत किया है।

शतपथकार ने अनेक पदों में एक, दो अथवा अधिक पदांशों को एकाक्षरात्मक मानकर व्याख्या किया है। वहाँ किसी व्याकरणिक लिंग अथवा व्युत्पत्ति की सत्ता नहीं है, तथापि एकाक्षरात्मक पदों के विभिन्न अर्थों को अभिव्यक्ति देने के लिए अक्षरों से मिलते जुलते समान अर्थ वाले धातुओं की सहायता ली गई है। ब्राह्मणकार के व्याख्यान में पदों के एकाक्षर, द्वयक्षर, बह्वक्षर विभाग, निर्वचन द्वारा धातुज, यौगिक और योगरूढ़ि अर्थ, समानार्थक पद, प्रतीक और अनेकार्थक पद अथवा समान रूप वाले विभिन्न अर्थों के द्योतक अनेक पदों की समिष्टियाँ मिलती हैं।

वेदार्थज्ञाने व्याकरणस्योपादेयता

डॉ0 ब्रजभूषण ओझाः सहायकप्राध्यापकः, व्याकरणम् राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्, भोपालपरिसरः, भोपालम् (मध्यप्रदेशः)

वेदो हि सम्पूर्णस्य धर्मस्य ज्ञानविज्ञानस्य आचारव्यहारस्य च मूलं विद्यते। अतो वेदानां तत्त्वार्थज्ञानमस्माकं समेषां कृते परममावश्यकं वर्तते। तत्र ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोध्येयो ज्ञेयश्चेति। प्रधानं च षट्स्वङ्गेषु व्याकरणमिति भाष्यवचनात् वेदार्थज्ञाने सर्वापेक्षया प्रधानं साधनं व्याकरणमेव स्वीक्रियते। यतो हि लोपागमवर्णविकारज्ञ एव सम्यग् वेदान् पठित्वा तदर्थपरिज्ञाने समर्थो भवति। वेदार्थज्ञाने कथं व्याकरणस्योपादेयतेति सर्वमस्मिन् शोधप्रबन्धे प्रस्तोस्यते।

वैदिकसाहित्ये धर्मशास्त्रम्

प्रियम तोमर (शोधच्छात्रा) संस्कृतविभाग, बरेली कॉलेज, बरेली (उत्तर प्रदेश)

भारतीयाया: संस्कृतेर्मूलाधारं पुरुषार्थचतुष्टयमस्ति। पुरुषार्थचतुष्टये धर्मस्य प्रथमस्थानमस्ति। अत: पुरुषार्थचतुष्टये धर्मस्य प्रध नतास्त्येव।

पाणिनिव्याकरणे 'धृञ् धारणे' इतिधातोरौणादिकमन्प्रत्यये कृते धर्मशब्दोऽयं सिध्यति। इत्थं धरति लोकान् यद्वा धियते पुण्यात्मभिर्य: स धर्म इति धर्मशब्दस्य व्युत्पत्तिलभ्योऽर्थो वर्तते। शास्त्रशब्दस्य व्युत्पत्तावुक्तम्- **'शिष्यतेऽननेति शास्त्रम्'**। शास्त्रशब्दस्य व्याख्या-

'प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च पुंसां येनोपदिश्यते।
तद्धर्माश्चोपदिश्यन्ते शास्त्रं शास्त्रविदो विदु:।।'

अर्थात् यस्मिन् प्रवृत्ति: (इदं कर्तव्यम्), निवृत्ति: (इदं न कर्तव्यम्) इत्यनयोर्मानवायोपदेशो भवति, शास्त्रविद: तं शास्त्रं कथयन्ति।

वस्तुतो य: सार्वभौमसिद्धान्तोऽखिलसंसारं धारयति स एव धर्म:। तस्मिन्नेव मानवस्य, परिवारस्य, समाजस्य, राष्ट्रस्य सम्पूर्णसंसारस्य च स्थिति: प्रतिष्ठा वा वर्तते। जगतो धारकानि तत्त्वानि सार्वभौमसिद्धान्तानि च महर्षिणा पतञ्जलिनैकस्मिन्नेव योगसूत्र उक्तानि- **'अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमा:'**। (योगदर्शन 2/30)

शास्त्रेष्वाचारस्य श्रेष्ठताया वर्णनं सर्वत्र प्राप्नोति। उत्तमो व्यवहार एवाचार:। सतां सज्जनानामाचार: सदाचार: कथ्यते। ये जना: सदाचरणं कुर्वन्ति तेषां जीवं सफलं धन्यं च भवति। ये जना आचारहीना: सन्ति तेषां जगति सर्वत्र निन्दा भवति। आचारहीनं जनं वेदा अपि पावयितुमसमर्था: सन्ति। अत एवोक्तम्- **'आचारहीनं न पुनन्ति वेदा:'** (विष्णुधर्म. 3/250/5)

श्रीमद्भगवद्गीतायामुक्तं भगवता श्रीकृष्णेन। यत्र धर्माचरणं भवति तत्र विजयस्यागमनं भवति। तत्र विजयस्यागमनं सुनिश्चितमेव। धर्ममार्गे बहूनि दु:खानि समापतन्ति किन्तु तानि सर्वाणि दु:खानि सहमानो यो जनो धर्माचरणं करोति, एकस्मिन्दिवसेऽवश्यमेव सफलता तस्य मानवस्य चरणकमलस्य चुम्बनं करोति। नात्र शङ्कापङ्कलङ्कलेश:। इतिहास साक्षी वर्तते यत् सर्वदा सर्वत्र धर्मस्य विजयो बभूव। यथा- रामस्य, कृष्णस्य पाण्डवानां जीवने चानेकानि दु:खानि समापतितानि परन्त्वन्ते धर्मयुद्धरतानां रामस्य, कृष्णस्य पाण्डवानां च विजयों वस्तुतो धर्मस्य विजयोऽस्ति।

संसारे वरणीय:, सहचर एक एव धर्मोऽस्ति। वस्तुतो धर्मो मानवस्य शाश्वतं मित्रमस्ति यतो हि उन्नताववनतौ, सुखेदु:खे, सम्पत्तौ विपत्तौ, जीवने मरणे, लोके परलोके च धर्म एक एव परमसहचरोऽस्ति। यदामूल्यपन्नापुखराजादिरत्नानि पशव:, नार्य:, सखाय:, अन्ये सर्वे शुभचिन्तका बान्धवाश्च परलोकयात्रायां मानवेन सह गन्तुमसमर्था भवन्ति तदैकाकी धर्म एवं परलोकयात्रायां तमनुगच्छति।

अत्र केवलं विषयस्य दिग्दर्शनमस्ति। विषयस्य विस्तार: शोधपत्रे करिष्यते।

वेदमूलकं व्याकरणदर्शनम्

डॉ. कामदेव झा प्राचार्य- डी.ए.वी. कॉलेज, नन्योला(अम्बाला)

व्याकरणदर्शनं वेदमूलकमस्तीत्यत्र नास्ति सन्देह:। कृत्स्नं व्याकरणदर्शनं वेदाधृतं प्रतिभाति। वैदिकमन्त्रस्य प्रभाव: सर्वत्रापि व्याकरणदर्शने दृश्यत एव। महाभाष्यकृता पतञ्जलिना तु महो देवों मर्त्याँ आविवेश इति मन्त्रस्यास्य व्याख्यायाम्- महान् देव5 शब्द:। मर्त्या मरणधर्माणो मनुष्यास्तानाविवेश। महता देवेन न: साम्यं यथा स्यादित्यध्येयं व्याकरणमिति प्रोक्तम्। इममेव मन्त्रमनुसृत्य भर्तृहरिणा स्वकारिकायां यथावदेव व्याकृतं तत्र -

अपि प्रयोक्तुरात्मानं शब्दमन्तरवस्थितम्।
प्राहुर्महान्तमृषमं येनसायुज्यमिष्यते।। (वा. प. 1.130)

चत्वारि वाक् परिमितापदानीति ऋग्वेदमन्त्रमनुसृत्य निरुक्तकारोप्यत्र नामाख्यातोपसर्गनिपातरूपेण चतुर्विधं रूपं व्याकरोति। इममेव मन्त्रं वीक्ष्य नागेशभट्टोऽपि परापश्यन्तीमध्यमावैखरीति चतुर्विधं रूपं तत्र वाच: प्रतिपादितं खलु। यद्यपि भर्तृहरिस्तत्र केवलं त्रिविधं रूपमेव

तत्र वाक्यपदीये निर्दिशति। केचन विद्वांसः निगदन्ति यत् परेति न खलु भवति व्याकरणस्य विषय इति तत्र नोद्धरतीति भावः। नागेशभट्टोऽपि इत्थमेव मनुते। वाचः महिमा ऋग्वेदे सर्वथा चमत्करोतीति नास्ति सन्देहः।

जायेव पत्य उशती सुवासाः (ऋ. 10.17.4) इत्यत्र मन्त्रे स्पष्टं भवति यत् यः कश्चित् साधकः बुधः वेतिकरोति साधनां किल, तस्याग्रे वाग्देवी सर्वस्वं ज्ञानरूपं प्रकटयतीति भावः। वागेव विश्वा भुवनाति जज्ञे इति तु विदितमेव। व्याकरणदर्शने खलु सृष्टिः प्रक्रिया एव नैव केवलमपितु मोक्षागमदृष्टिरपि सर्वथा परिदृश्यते। गोपथब्राह्मणे तु को धातुः किं प्रतिपदिकमिति रूपेण सम्पूर्ण व्याकरणदर्शनं मानसचित्रे निवेशयति। सर्वमिदं समीक्ष्य प्रतीयते यत् व्याकरणदर्शनं निश्चप्रचं वेदमूलकमस्तीति शम्।

वेदकालीनविविधशास्त्रविज्ञानम्

डॉ. वी. श्रीनिवास शर्मा संस्कृत अकादमी, उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद

विज्ञानस्य शिल्पकलादीनां च साहाय्येन मनुष्यः संसारस्य महत्तममुपयोगमुपभोगञ्च कर्तु समर्थो भवति। मानवसंस्कृतरादिकालदेव नित्यमेतेषां प्रगत्या सह मानवस्य भोगविलासादीनां परिधिः सुविस्तृतोऽभूत्। उपभोगपरिधौ वस्तूनां भोज्यत्वमभोज्यत्वं वा ज्ञातुमेव प्रथममायुर्वेदविज्ञानस्य समारम्भः सम्भावनीयः। उपयोगिवस्तूनां वैपुल्यं विधातुमेव कृषिविज्ञान्स्य विकासः कृतः। गृहरचना प्रसाधनकर्मादिकमधि कृत्य साधारणतो गणितस्य सविशेषं ज्यामितेः प्रयोगः समुद्भावितः। प्राकृतकसृष्टिषु प्रायःयथाप्रमाणतावयवसङ्गतिर्वा वर्तते। मानवकृतिषु सरलतया तस्या नियोजनं कर्तुमपि गणितस्यापेक्षासीत्। आयुर्वेदस्य कृषिविज्ञानस्य च सम्यक् प्रगतये वनस्पतिशास्त्रम् भौतिकविज्ञानम्, रसायनशास्त्रम् भूतत्त्वद्यायाश्च विकासः अपेक्षित एव।

वैदिकसमाजे प्रजाः वेदवेदाङ्गादिभिस्समन्यशास्त्रेषु गतिरासीत् तत्परिचयः एवं कृतः।

वैदिकसाहित्ये वाग्विज्ञानम्

डॉ. पशुपतिनाथ मिश्रः व.प्रवक्ता(व्याकरणम्), ह.सं.विद्यापीठ बघौला पलवल, हरियाणा

यां विना जगत्शून्यायितं जीवनञ्च पङ्गुवदवतिष्ठते जगतः समोऽपि व्यवहारः यद् व्यापारमाश्रयते यस्या उत्सङ्गे सभ्यतासंस्कृतिश्च विकसित फलति च। लोके यत् किमपि सत्यं शिवं सुन्दरं विद्यते तस्य अभिव्यञ्जिता वागेव इति वैदिकसाहित्ये बहुधा निरूप्यते। ऋग्वेदानुसारम् इयं वाक् देवैः आविष्कृता "देवीं वाचमयजन्त देवाः।" लोकयात्रायां अद्वितीयसहायिका इयं वाक् बीज-बिन्दु-नादादिरूपेण वर्णिता। सूर्ये अस्तङ्गते चन्द्रमसि च निलीने वह्नौ च शान्ते यदि किमपि प्रकाशिकं वस्तु अवशिष्यते तर्हि तद्वागेव। अतः छान्दोग्योपनिषदि वागुपासना निरूपिता। इयञ्च वाक् ज्ञानस्य एकमात्रमधिष्ठानम्। यथोक्तं बृहदारण्यके- "सर्वेषां वेदानां वागेवायतनम्।" वाचः कलापक्षस्य अभिव्यञ्जना। यदा सा आह्लादकतां माधुर्य सत्त्वोद्रेकञ्च जागरयितुं समर्था भवति, तदा तस्याः कलात्मकं रूपमभिव्यज्यते - यथोक्तं छान्दोग्ये- "वाचः ऋग्रसः, ऋचः सामरसः, साम्नः उद्गीथो रसः। इदं जगत् तस्या एव वाचो विवर्तभूतम्। अतस्तस्याः सर्वकारणभूतायाः वैज्ञानिकं विश्लेषणं शास्त्रेषु कृतमत्रनिबन्धे समुन्नेष्यते। वैदिकसाहित्ये परा-पश्यन्ती-मध्यमा-वैखरीरूपेण भवतु, नामाख्यातोपसर्गनिपातरूपेण वा भवतु, चातुर्विध्यं भजमानायाः अस्या वाचो विज्ञानं ब्रह्मरूपत्वञ्च इत्थं प्रतिपाद्यते। "ब्रह्म वै वाचः परमं व्योम" अनेन तैत्तिरीयवचनेन वाग्विज्ञानस्य परमव्योमरूपेण ब्रह्म एव तिष्ठतीति सुव्यक्तं भवति। वस्तुतो मैत्रायण्यां ब्रह्मणः स्वरूपद्वयस्योल्लेखः प्राप्यते। तद्यथा-

द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्दब्रह्मपरञ्च यत्। शाब्दे ब्रह्मणि निष्णातः परब्रह्माधिगच्छति।।

इत्यनेन वचनेन स्फुटं भवति यत् शब्दब्रह्म, तस्मात्पृथक् कञ्चिदन्यदर्थभूतं ब्रह्मवर्ततेति विज्ञायते। तस्यैवार्थब्रह्मणः मूलस्वरूपस्योपवर्णनमृगादिवेदेषु शब्दमुखेनोपवर्णितमित्ययं भावः। तदुक्तमृग्वेदे- "ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधिविश्वे निषेदुः।" अर्थात् यस्मिन् परमव्योम्नि परमाकाशे विश्वेदेवाः प्रतिष्ठिन्ति तत् स्थानं खलु ऋग्रूपमेवास्ति। ऋगितिपदेनात्र सर्वेषामपि वेदानावबोधो जायत एव। तस्मात् ऋगादिवेदेषु वाग्ब्रह्मरूपाः शब्दराशयः परमतत्त्वस्योद्बोधकाः ब्रह्मरूपा एवं सन्ति, नास्त्यत्र काचिद् विप्रतिपत्तिः। वेदेषु ये शब्दसमूहास्ते मन्त्रपदवाच्याः सन्ति। मन्त्राः प्राचीनैर्वैज्ञानिकैः परमतत्त्वद्रष्टृभिः परमर्षिभिर्दृष्टाः। तैश्च पुनः स्वशिष्येभ्य उपदिष्टाः।

अस्या वाचो बहुधा वर्णनं श्रुतिषूउपलभ्यते "वाचं देवा उपजीवन्ति विश्वे वाचं गन्धर्वाः पशवो मनुष्याः। वाचीमा विश्वा भुवनान्यर्पिता सा नो हवं जुषतामिन्द्रपत्नी।।" "यदि वे प्रजापतेः परमस्ति वागेव तत्।" "यावद् ब्रह्मविष्ठितं तावती वाक्" "वाग्वै ब्रह्म, तस्यै वाचः सत्यमेव ब्रह्म, ता वा एता सत्यमेव व्याहृतयो भवन्ति।" इत्याद्यासु। सेयं सर्वकारणभूतावाक्। महीदासेनैतरेयेण "वागेवेदं सर्वम्" इत्यनेन वाचः सर्वात्मकत्वमुक्तम्। एते वाग्विज्ञानात्मकाः मन्त्राः वेदेषु वर्तन्ते। ते च वेदा ईश्वररूपाः, ईश्वरनिःश्वासरूपाः, ईश्वरकृताः वा मन्यन्ते। तपः प्रभावात् यस्यान्तःकरणं विशुद्धमभवद्यस्य च हृदि ईश्वरयज्ञानरूपप्रकाशस्याविर्भावोऽभूत्, या चाति सूक्ष्मान्, व्यवहितान् पदार्थान् यच्च सामान्यपुरुषाणामिन्द्रियैः नैव शक्यते ज्ञातुं तान् द्रष्टुं समर्थाः, ये तेषां महर्षिणां हृदि एतन्नित्यसिद्धो वेदः काले काले स्वयमेवाविर्भवतीति। तथा च श्रूयते- "अनादि निधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा। आदौ वेदमयी दिव्या यतः सर्वाः प्रवृत्तयः।।" इत्यादिस्मृत्या वाग्विज्ञानस्य पारमार्थिकं रहस्यमत्यन्तमुत्कृष्टमस्तीति सिद्ध्यतीत्यलम्।

स्वराः- भेदोच्चारणात्मकं विवेचनम्

प्रो. भवानीशङ्करः शर्मा 'महाजनीयः' राजकीय लोहिया स्नातकोत्तरमहाविद्यालयः, चुरू(राजस्थानम्)

भाषा कापि भूयात्, तस्याः भाषणं ध्वनीन् विना न सम्भवति। यतोहि ध्वनिसमूहे यदा सार्थकत्वं समायाति, तदा स ध्वनिसमूहः पदमिति व्यवह्रियते। एषा भाषा तावदेव वक्तुर्मनोभावान् प्रकटयितुं समर्थाऽस्ति, यावत् तस्याः पदानां शुद्धोच्चारणं भवति। यावत् कस्याप्येकस्य ध्वनेरेवाशुद्धोच्चारणं क्रियते, तावत् अभीप्सितोऽर्थोऽस्माभिर्न प्राप्यते। यथा संस्कृतमेका भाषा वर्तते, तस्या वैशिष्ट्यं वर्तते- यथा लिख्यते तथा पठ्यते, यथा उच्यते तथा लिख्यते। अतः कस्यापि ध्वरेरशुद्धोच्चारणस्य तात्पर्यमस्ति-स्वाभीष्टस्याप्राप्तिरिति। अतस्मादेवोक्तम्- मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा, मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह। स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति, यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोपराधात्।।

भाषाध्वनयो द्विधा विभक्तम्- स्वरा व्यञ्जनानि चेति। अत्राहं केवलं स्वरभेदान् तेषामुच्चारणञ्चाधिकृत्यैव वक्तुकामये। यतोहि केवलं स्वराणां विषये ह्येतावल्लेखितुं शक्यते, येन बहवो ग्रन्था विरचिता भवेयुः। कति स्वराः कथञ्च तेषामुच्चारणम्- विषयेऽस्मिन् सन्ति बह्वयो विप्रतिपत्तयः। केचन विद्वांसः स्वराणामुदात्तादिभेदत्रयं स्वीकुर्वन्ति, अपरे चत्वारः स्वरा अन्ये च पञ्च स्वरा भवन्तीति मन्यन्ते। महाभाष्यकारादयो वैय्याकरणाः सप्त स्वरा इति कथयन्ति। पुनः कस्य मतं समीचीनमिति विवेच्यमस्ति। स्वराणामुच्चारणविषयेऽपि बहूनि मतान्तराणि दृश्यन्ते। पुनः केषां मतं समुचितमिति विवचनानन्तरमेव बोधमव्यमस्ति। अत्राऽहं सङ्क्षेपेण स्वरभेदविप्रतिपत्तिं तस्योच्चारण-विप्रतिपत्तिञ्च प्रस्तौमि। कतिस्वराः? विषयेऽस्मिन् विविधानामाचार्याणां मतान्येवं सन्ति। महाभाष्यकारः कथयति- सप्त स्वरा भवन्ति - उदात्तः, उदात्ततरः, अनुदात्तः, अनुदात्ततरः, स्वरितः, स्वरिते ये उदात्तः सोऽन्येन विशिष्टः, एकश्रुतिः सप्तमः। नारदीयशिक्षायामपि सप्त स्वराः कथिताः- षड्जः, ऋषभः, गान्धारः, पञ्चमः, धैवतः, निषादश्चेति। तैत्तिरीयसंहितायां नामान्तरपूर्वकं सप्त स्वरा विवेचिताः सन्ति। नारदशिक्षायां पञ्च स्वरा इति स्थापितम्- उदात्तः, अनुदात्तः, स्वरितः, प्रचितः, निघातश्चेति। केचन विद्वांसो वदन्ति यच्चत्वारः स्वराः - उदात्तः, अनुदात्तः, स्वरितः, प्रचयश्चेति। अनन्तदेवः प्रतिज्ञापरिशिष्टे (1.8) स्वटीकायां लिखति यच्चरकब्राह्मणे त्रयः स्वराः सन्ति। एवमेव केचन द्वौ स्वराविति मन्यन्ते। अन्ये कथयन्ति स्वरः केवलमेको भवति। वस्तुतः स्वरसङ्ख्याभेदो विविध-वेदेषु प्रत्येकं शाखायां च पृथक्-पृथक् भवति। पुरनप्येतादृशी विविधता स्वरभेदात्वादेव जाता। एवमेव स्वराणामुच्चारणवैविध्यमति प्राप्यते। केचन स्थानाधारेण स्वराणामुच्चारणं कुर्वन्ति। केचन उच्चैर्नीचैर्मध्यम इति कृत्वा भेदान् स्थापयन्ति, त्वन्ये स्वरमिश्रणत्वात् भेदान् स्वीकुर्वन्ति। एतत् सर्वं मम विवेच्यं वर्तते, विद्वद्भिश्चानुसन्धेयमस्ति। परिचर्चादिभिर्विषयोऽयं विप्रतिपत्तिशून्यश्च भूयाद् एतन्ममास्ति लक्ष्यम्।

वैदिकसाहित्ये व्याकरणविद्या

डॉ. भगवतशरणशुक्लः उपाचार्यः व्याकरणविभागे, संस्कृतविद्याधर्मविज्ञानसंकायः, काशीहिन्दू वि.वि. वाराणसी

अनेके वैयाकरणाः व्याकरणग्रन्थाः च सूच्यन्ते, तेन न हि व्याकरणं वेदवदपौरुषेयं तिष्ठति। तथापि व्याकरणविद्यामूलतत्त्वानि वैदिकसाहित्ये निहितानि। तानि वेदस्थ तत्त्वानि समालोच्य विचार्य इन्द्रप्रभृतय आचार्याः वैशद्येन व्याकरणग्रन्थान् निर्मितवन्तः।

वेदेषु लोकव्यवहारे च वाक्यानि सन्ति, तत्र कथं पदविभागः तत्रापि कथं प्रकृतिप्रत्ययविभाग इति जिज्ञासायां तैत्तरीययजुर्वेदसंहितायामुदीरितं

यत् "वाग्वै पराच्या व्याकृताऽवदत्। ते देवा इन्द्रमब्रुवन् इमां नो वाचं व्याकुर्विति..................तामिन्द्रो मध्यतोऽवक्रम्य व्याकरोद् याव इति। तै. सं. 6.4.7 मैत्रायणीसंहितायामपि शाब्दिकसिद्धान्तानुसारेण वाण्याः चत्वारि रूपाणि कथितानि- "सा वै वाक् सृष्टा चतुर्धा व्यभवत्, एषु लोकेषु त्रीणि तुरीयाणि, पशुषु तुरीयं या पृथिव्यां साऽग्नौ सा रथन्तरे यान्तरिक्षे सा वाते सा वामदेव्ये; या दिवि सा वृहति सा स्तनयित्नौ अथ पशुषु ततो या वागत्यरिच्यत वां ब्राह्मणे न्यदधुः तस्माद् ब्राह्मण उभयीं वाचं वदति यश्च वेद यश्च न। या बृहद्रथन्तरयोर्यज्ञादेनं तथा गच्छति।" मै. सं. 1.11.5 महाभाष्यानुसारेण चतस्रो वाचः परा पश्यन्ती वैखरी इत्येवम्भूताः सन्ति। तासु तिस्रः पश्यन्ती पध्यमा वैखरी रूपाः वैयाकरणलोकेषु वर्तन्ते। सामान्यलोकेषु पपशुपक्ष्यादिषु च केवला वैखरी तुरीया वागेव भवति। वाण्याः चतस्रः परापश्यन्तीमध्यमावैखरीभेदाः काठकसंहितायां 14.5, कपिष्ठलसंहितायां 42.2, चत्वारि वाक् परिमितानि पदानि इत्येवरूपेण ऋग्वेदे 1.164.45 च प्रतिपादिताः। गोपथब्राह्मणे तु विविधाः व्याकरणस्य पारिभाषिकशब्दाप्रयुक्ताः येषां तथैव पाणिनीयादिव्याकरणेषु ग्रहणमस्ति- "ओङ्कारं पृच्छामः को धातुः किं प्रातिपदिकं, किं नामाख्यातं किं लिङ्गं, किं वचनं, का विभक्तिः, कः प्रत्ययः, कः स्वरः, क उपसर्गो निपातः, किं वैयाकरणं, को विकारः, को विकारी, कति मात्रः कति वर्णाः, कत्यक्षरः, कति पदः, कः संयोगः किं स्थानं नादानुप्रदानानुकरणम्..............।"

बहुषु मन्त्रेषु व्युत्पत्तिरपि प्रदर्शिता यथा- (1) यजनं यज्ञः इत्येवं व्युत्पत्तिः यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः इत्यत्र यजु. 31.16 (2) केतपूः इत्यस्य केतं पुनातु इत्येवं व्युत्पत्तिः केतपूः केतं नः पुनातु। यजु. 11.7 इत्थं वैदिकसाहित्ये व्याकरणविद्यायाः अनेके सिद्धान्ताः मूलतत्त्वानि च समागतानि सन्ति।

वैदिकसाहित्ये धर्मशास्त्रम्

डॉ. गिरीशचन्द्र पाण्डेयः श्रीसनातनधर्म संस्कृत महाविद्यालयः हल्द्वानी(नैनीताल)

वैदिकसाहित्ये ज्ञान-विज्ञानसम्बन्धिनः बहवः विषयाः सन्ति। वेदेषु भारतीय संस्कृतेरङ्गभूता विषयाः। अनेकेषु स्थलेषु वर्णिताः सन्ति। ज्ञान-विज्ञान, राजनीति, धर्मनीति, अर्थनीति, आयुर्वेद, वनस्पति ज्ञानं यज्ञतत्त्वानि, काव्यतत्त्वानि, जीवनमूल्यानि, आध्यात्मिक चिन्तन विषयकाः अनेके प्रसंगाः सन्ति। चत्वारो वेदाः ऋग्, यजु, सामानि, अथर्ववेदाश्च। चत्वारः उपवेदाः- आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धव, अथर्ववेदाश्च। वेदानाम् अंगानि षड्- शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिषश्च। बहु विस्तृतं साहित्यम् अस्य। ज्ञानार्थकाद् विद् धातोर्घञि वेद इति रूपं निष्पद्यते। सत्तार्थकाद् विचारणार्थकात्प्राप्त्यर्थकाद् विद धातोरपि रूपमेतद् निष्पद्यते। विद्यन्ते धर्मादयः पुरुषार्था यैस्ते वेदाः। सायणेन भाष्यभूमिकायाम् उक्तं - अपौरुषेयं वाक्यं वेदाः। इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपायं यो वेदयति कथयति स वेदः। मानवः एकः सामाजिकप्रणि अस्ति। अतः सः समाजे निवसति। स्व राष्ट्र, देशः ग्रामे वा कुलस्य विकास एव उन्नति विषयं प्रयासं करोति। समाज निमित्त धर्मस्य आवश्यकता अस्ति। धर्मशास्त्रवले सः सुसंस्कृतसमाजस्य निर्माणं करोति। ईश्वरोऽभिवदति - हे मानवा:! मयोक्तं न्याय्यं रहितं सत्य लक्ष्णोज्ज्वलं धर्म यूयं संगच्छध्वं सम्यक् प्राप्नुत अर्थात् तत्प्राप्त्यर्थं सर्व विरोधं विहाय परस्परं संगता भवत येन युष्माकमुत्तमं सुखं सर्वदा वर्धेत सर्व दुःखनाशश्च भवेत संगता भूत्वा परस्परं जल्पपितण्डादिविरुद्धवादं विहाय संप्रीत्या प्रश्नोत्तर विधानेन संवादं कुरुत, यतो युष्मासु सम्यक् सत्यविधाधुत्तम गुणाः सदा वर्धेरन्, यूयं जानन्तो विज्ञानवन्तो भवत्, जानतां वो युष्माकं मनांसि यथा ज्ञानवन्ति यवेयुस्तथा सम्यक् पुरुषार्थं कुरुत, अर्थाधेन युष्मन्मनांसि सदानन्द युक्तानि स्युस्तथा प्रयतध्वम्। युष्माभिर्धर्म एव सेवनीयो, नाध मश्चेत्यत्र दृष्टान्त उच्यते-यथापूर्णे संजानानां ये सम्यग् ज्ञानवन्तो देवा विद्वांस आप्ताः पक्षपाता रहिता ईश्वर धर्मोपदेश प्रियाश्चासन, युष्मत्पूर्वं विद्यामधीत्य वर्तन्ते, किंवा ये मृतास्ते यथा भागं भजनीयं सर्वशक्तिमदादिलक्षणमीश्वरंमदुक्तं धर्मं चोपासते। तथैव युष्माभिरपि स एव धर्म उपासनीयो यतो वेद प्रतिपाद्यो धर्मो निश्शंकतया विदितश्च भवेत्-संगच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्। देवा भागं यथापूर्वे संजानानामुपासते।। ऋ.

वेदव्याख्याने वेदाङ्गनाम् उपयोगिता

प्रो. मनुदेव बन्धु आचार्योऽध्यक्षः वेदविभागस्य अधिष्ठाताप्राच्यविद्यासंकायस्य, गु.कां.वि.वि. हरिद्वारम्

सृष्ट्यादौ परमकारुणिकेन जगदीश्वरेण प्राणिमात्रकल्याणाय ऋग्यजुस्सामाथर्वाख्याः चत्वारो वेदा निरमायिषत। ते च वेदा क्रमशः अग्नि-वयु-आदित्य-अङ्गिरसां हृदयेषु न्यधायिष।श्रुतिरूपेण परम्परया वेदाः अस्माकं पार्श्वे समागताः। एतेषां वेदानाम् अध्ययनमध्यापनं

समारब्धम्। वेदानां व्याख्यानं कथं भवेदिति जिज्ञासायामुच्यते- वेदानां सम्यगर्थावबोधनाय वेदाङ्गानिप्रवृत्तानि। तानि चैतानि शिक्षा-कल्प-व्याकरण-निरुक्त- छन्दो-ज्योतिषमिति षट्संख्यकानि। वेदाङ्गानां ज्ञानमन्तरा वेदार्थः सम्यक्तया प्रतिपत्तुं न शक्येत। "साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः। तेऽवरेभ्योऽसाक्षात्कृतधर्मभ्य उपदेशेन मन्त्रान् सम्प्रादुरुपदेशाय ग्लायन्तोऽवरेभ्यः बिल्मग्रहणायेमं ग्रन्थं समाम्नासिषुर्वेदं च वेदाङ्गानि च।" तदेवं वेदार्थावबोधसौकर्यायैव वेदाङ्गानि समाम्नातानि महर्षिभिरिति। एषां षण्णां प्रबन्धानामेव वेदाङ्गत्वं पाणिनीयशिक्षायां स्वीकृतम्- छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते। ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते।। शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्। तस्मात्साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते।। पाणिनीय शिक्षा 41-42 इत्थं वेदानां व्याख्याने वेदाङ्गानां महती उपयोगिता वरीवर्त्ति।

वैदिकसन्दर्भे वाक्तत्त्वानुशीलनम्

डॉ. रमाकान्तपाण्डेयः काशीहिन्दूविश्वविद्यालयः, वाराणसी

वेदेषु वाक्पदेन सजातीयविजातीयस्वगतभेदशून्यस्य शब्दस्वरूपस्यैव ग्रहणं भवति। वाक्तत्त्वं शब्दरूपमित्यत्रानेकाः श्रुतयः प्रमाणभूताः सन्ति। तद्यथा- 'वागेव विश्वाभूतानि जज्ञे'। किञ्च- चत्वारि वाक्परिमिता पदानि, तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः। गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति, तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति।। एताषां श्रुतीनां प्रमाण्यात् निश्चीयते, यत् शब्दतत्त्ववाक्तत्त्वयोः न कश्चन भेदः। एतावता शब्दस्वरूपप्रतिपादनेनैव वाक्तत्त्वस्य प्रतिपादनं स्वयमेव भविष्यति। भगवता भाष्यकारेण पश्पशाह्निके 'अथ गौरित्यत्र कः शब्दः इति' प्रश्नमुपस्थाप्य, 'येनोच्चारितेन सास्नालाङ्गूलककुदखुरविषाणिनां सम्प्रत्ययो भवति सः शब्दः' इति समाहितम्। अत्र राजलक्ष्मीकृता- 'येन' इत्यस्य 'स्फोटेन' इत्यर्थः कृतः। एवञ्चात्र तत्त्वालोके स्फोटाभिप्रयोगेणैव येनेत्यत्रैकवचन प्रयुक्तं भगवता। तत्रैव कैय्यटेनाऽपि निरूपितम् "वैयोरणाः वर्णव्यतिरिक्तस्य पदस्य वाक्यस्य वाचकत्वमिच्छन्ति। वर्णानां प्रत्येकं वाचकत्वे द्वितीयादिवर्णोच्चारणानर्थक्यप्रसङ्गात्, आनर्थक्ये तु प्रत्येकमुत्पत्तिपक्षे यौगपद्येनोत्पत्यभावात्, अभिव्यक्तिपक्षे क्रमेणैवाभिव्यक्त्या समुदायाभावादेक स्मृत्युपरुदानाञ्च वाचकत्वे सरो रस इत्यादावर्थप्रतिपत्यविशेषप्रसङ्गात्तद्व्यतिरिक्तः स्फोटो नादाभिव्यङ्ग्यो वाचक इति।" तत् शब्दमधारीकृत्यैव जागतिकव्यवहारः प्रचलति। अत एवात्र विषये प्रत्यपादि भर्तृहरिणा- "न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते। अनुविद्धमिवज्ञानं सर्व शब्देन भासते।।"

वैदिकवाङ्मये वाग्-विज्ञानम्

डॉ. बी.बी. त्रिपाठी रा.स्ना.महा.कोटद्वार

अखिलेऽस्मिन् विश्वस्मिन् ज्ञानमीमांसायाः पारमार्थिकी परिणतिः आध्यात्मिकम् इत्यामनन्ति मनीषिणः। आर्षकालादेव च भारतराष्ट्रस्य जीवनपद्धतेः परिचिन्तनम् परमार्थपरकमेव, अतः शब्दशास्त्रीयचिन्तनमपि आध्यात्मिकमेव। अद्यापि प्रतिकूलपरिस्थितौ शब्दब्रह्मरूपः परमेश्वरः एव परिपालनाय प्रभुरिति विश्वसन्ति शब्दविदः। भारतीयचिन्तनपरम्परायाः आदिस्वरूपं वेदेष्वेव सुरक्षितं परिलक्ष्यते। वैदिकर्षीणाम् ''सार्थकशब्दा एव प्रयोक्ताः नानर्थकाः "इत्युद्घोषणा अद्यापि सार्थकी भवति, यतोहि निरर्थका शब्दाः फलपुष्पाभाववान् वृक्ष इव निष्प्रयोजना एव सन्ति। अथ च सच्छब्दोपासकाय वागियं सर्वान् रहस्यान् उद्घाटयति। ऋग्वेदे स्वीकृताः वाण्याश्चत्वारो भेदा अद्यापि भाषातत्त्वचिन्तनपराणां विदुषां व्याख्यानविषयाः भवन्ति। ऋग्वेदे तु वाचमधिकृत्य सम्पूर्ण सूक्तमस्त्येव, ब्राह्मणारण्यकोपनिषंदग्रन्थेषु अपि वाग्विषयकाः अतिसूक्ष्मविचाराः दृष्टिपथमायान्ति। वैयाकरणाः वाक्-तत्त्वमिदं स्फोटरूपेण प्रतिपादयन्ति।

वाग्ब्रह्म

डॉ. भारतभूषण त्रिपाठी रा.सं.सं.(मानितविश्वविद्यालयः) लखनऊपरिसरः

'वाग्वै ब्रह्म' इति श्रुत्या ब्रह्मणः वाग्रूपता सिद्ध्यति। "वाग्वै समुद्रो न वैवाक् क्षीयते न समुद्रः क्षीयते, यद्वैवा वाङ्नाभविष्यत्, न धर्मो नाऽधर्मो व्यज्ञपयिष्यत् न सत्यं नानृतं वागेवैतत्सर्वं" विज्ञापयति वाचमुपास्व वाक्यपदीयकारेण भर्तृहरिणा प्रत्यपादि- 'अनादिनिधनं .... ' इत्यादि श्रुत्या शब्दब्रह्मणः अनादित्वं, व्यापकत्वं, जगदुपादानकारणता ब्रह्मपदवाच्यता च सिद्धा। इदं ब्रह्म सदसदविलक्षणमनिर्वचनीयम्

इति अद्वैतिभि: प्रतिपादितस्य लक्षणस्य श्रीमता नागेशेन व्याख्यायि, यत् सदसद्विलक्षणतृतीयपदार्थ एव नास्ति। अत: अनिर्वचनीयम् उभयात्मकम्। एकम् आरोपितम् अपरञ्च अनारोपितम्। वस्तुत: एषा वाग्रूपता चेद् उद्गच्छते् तर्हि ज्ञानं न प्रकाशेत। तत्र भर्तृहरिणा लिखितम् 'वाग्रूपता चेदुत्क्रामेत् अवबोधस्य शाश्वती न प्रकाश: प्रकाशेत् साहि प्रत्यवमर्शिनी।" अत: सर्व वाङ्मयं जगत्, सर्व ज्ञानं वागनुविद्धम्। एषा वाक् चतुर्विधा इति ऋषिभि: प्रतिपादितं परापश्यन्तिमध्यमावैखरीतिभेदात्। कैश्चिच्च वाच: भेदत्रयं निरूपितम्- पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी चेति। येषां मते वाच: चातुर्विध्यं, तत्र परारूपा वाग् ब्रह्म, यै: वाच: त्रिधा स्वरूपं कृतं, तत्र पश्यन्ती रूपा वाग् ब्रह्मेति।

वाग् विज्ञानम्

डॉ. सुदेशगौतम: हि.आ.सं.महा.जांगला रोहडू (शिमला)

श्रौतवाङ्मये वाग्विज्ञानस्य विशदं वर्णनं मिलति। तत्र वाग्वै गो: (यजु. 12.38) वाग्वै धेनु:(गो.पू. 2.27) वाग्वै गवली कामधेनु:(ताण्डय. 21.3.1) वाग्सरस्वती(ऐ.3.1) वाग्वै सरस्वती पापीरणी(ऐ. 3.36) वाग्वै सरिरंछन्द:(यजु. 11.15) वाग्ब्रह्म(गो. पू. 2.10)वाग्घिब्रह्म (ऐ. 2.15, 4.21) वाग्वैब्रह्म (ऐ. 6.3, शतपथ 2.1.6.10) वाग्वैब्रह्म सुब्रह्म चोते (ऐ. 6.3) उर्ध्वोक्ति कितिचित्-मन्त्रपदै:प्रतीयते वैदिक-वाङ्मये वाग्विज्ञानस्य किदृशं विस्तृत विज्ञानं वर्तते।

वाग् शब्दस्य निष्पत्ति वच् धातो: क्विप् प्रत्यये कृते सति भवति यथा "वागर्थाविवसम्पृक्तौ" (रघुवंश 1.1) यस्यार्थ लौकिक संस्कृतभाषायां वचनं वार्ता भाषा वाणी-(वाचिपुण्यापुण्यहेतव:) संजायते परञ्च वैदिक वाङ्मये वाग् शब्दस्य विज्ञानमतिविस्तृतं मिलति। अर्थात् पूर्वमन्त्राणां प्रयोगेन ज्ञायते यत् वाग्-एव सर्वमस्ति। यथा वाग्वै ब्रह्म, सुब्रह्म चेति(ऐ.6.3)। अत: वाच: विशेषज्ञानं विज्ञानमिति। विज्ञानशब्दस्य निष्पत्ति: वि पूर्वाद् ज्ञा अवबोधने धातो: ल्युट् प्रत्ययेकृते सति संजायते। यथा गीतायाः सप्तमाध्याय: ज्ञानविज्ञायोगो नाम अस्ति। गीताया: तस्मिनध्याये विज्ञानं वर्णितमस्ति। कस्यापि पदार्थस्य विज्ञानाय तस्य पञ्चमूलतत्त्वानामध्ययनं भवति यथा तत्र प्रथमो (1) जिज्ञासा वैज्ञानिकभाषायाम् इमा शोध समस्यापि कथ्यते। (2) प्रकृति स्थित्योनुरूपा साधनाविधि: अपि वा अनुसन्धानविधि:। (3) नियन्त्रित दशायां कृता: क्रियाप्रयोगा: च तेषां सर्वेक्षणं Experiment in observation of any action under control condition. (4) परीक्षणञ्च सततांकलनम् (5) सम्यक् निष्कर्ष:। अस्मिन् शोधपत्रे वाग्विज्ञानस्य विवरणम् इत्थं भविष्यति।

व्याकरण-शास्त्रे शब्दसंस्कार:

डॉ. विनोद कुमार झा वनस्थली विद्यापीठम्, टोंक (राज.)

संस्करणं संस्क्रियते अनेन वा संस्कार:। संस्कार-शब्द: 'सम्' उपसर्गपूर्वकात् 'कृ' धातो: भावे करणे वा 'ल्युट्' प्रत्यये निष्पद्यते। व्याकरण-शास्त्रं शब्दसंस्कारविषयकं शास्त्रमस्ति। उक्तमपि व्याक्रियन्ते, व्युत्पाद्यन्ते, साध्यन्ते शब्दा: अनेनेति व्याकरणम्। व्याकरणं शब्दमलं दूरीकृत्य शब्दान् शुद्धरूपे परिणतान्। करोति। वाक्यपदीये यथा- तद्द्वारमपवर्गस्य वाङ्मलानां चिकित्सतम्। पवित्र सर्वविद्यानामधिविद्यं प्रकाशते।(ब्रह्मकाण्डे-14) विभक्ति-वचन-धातु-प्रत्यय-प्रत्ययान्तादिरहित: शब्द: "अर्थवदधातुरप्रत्यय: प्रातिपदिकम्" इति सूत्रेण प्रातिपदिकसंज्ञा प्राप्नोति। यथा- राम इति। अनन्तरं "स्वौजस्मौट्......", "विरामोऽवसानम्", "खरवसानयोर्विसर्जनीय:" इत्यादिभि: सूत्रै: 'राम:' इति परिष्कृतं रूपं सम्पन्नतां याति। किन्तु भगवता पतञ्जलिना शब्दापशब्दविवेकद्वारैव परिष्क्रियन्ते शब्दा:। संगीतशास्त्रे नाद: ब्रह्मस्वरूप: मन्यते, परन्तु व्याकरण-शास्त्रे शब्द: ब्रह्म स्वीक्रियते। वाक्यपदीये यथा- अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम्। विवर्त्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यत:।।(ब्रह्मकाण्डे 1) महाभाष्यकारेण शब्दस्य नित्यत्वपक्षे 'येनोच्चारितेन सास्नालाङ्गूलककुदखुरविषाणिनां सम्प्रत्ययो भवति स शब्द:' लोकानुसारञ्च 'प्रतीतपदार्थको लोके ध्वनि: शब्द:' इति उच्यते। प्रस्तुतशोध पत्रेऽस्मिन् व्याकरण-शास्त्रे शब्दसंस्कारकत्वं कथमस्तीति विस्तृतरूपेण प्रतिपादितं भविष्यति।

WORD ETYMOLOGY: SCIENTIFIC SENSIBILITY OF VEDIC SEER

Bidisha Choudhury

Nighantu, the Vedic lexicography is known for its unique character, whereas Nirukta has been regarded to be the most essential for the knowledge of Vedas and for the meaning of the Vedic words. it contains the conception of semantic etymology. Still we can find here the history of a word; which tells us that a word in a modern language is derived from another word belonging to an earlier language, or to an earlier stage of the same language. Having been handed down by tradition the Vedic words of Nighantu, sometimes become very uncommon to the Vedic and latter Vedic age. Because the Sources of history and semantics of those words are not frequent in any of the Vedic texts, the words become 'Unpopular'. It is noteworthy that 'etymologizing' is very old tradition and and an approved way to figure out the historical and post historical feature of a word. So in this way we can find out the gradualness of changing of a word over time.

This paper is a humble attend to make an analysis of these obscured words and find out the changing pattern of those 'Unpopular' words. At the same time here this abstract of that proposed paper is a hint of this purpose or it can be said that it is an introduction of that paper containing the needs of such kind of work.

PRATISAKHYAS AND IT'S RELEVENCE

Dr. Sidharth Shankar Singh Department of Sanskrit Jai Prakash University Chhapra

Vedas are essential for the knowledge of the Vedas. The Vedas could not be preserved excluding grammar (Vyakarana), Phonetics (Siksa) and prosody (Pingala), Nirukta (Etymylogy) and the rest Vedas have the importance for understanding the intent of the Vedas. Pratisakhyas has all along capacity to protect the Vedic text and from of Vedas. The Pratisakhyas as each of them belonged to a particular branch or text of a Veda, tried to conserve and describe everything with regard to the from and text of the particular Branch.

We find Pratisakhyas the combination of all the three branches of grammar, phonetics and prodody. But in other Pratisakhyas we do not find the prosody. A good knowledge of the Vedas requires a good deal of awareness.

VEDAS: AN ORAL TRADITION

Prof. A. Ramulu Prof. of Sanskrit Osmania University Hyderabad

The vedas, being in the form of word, have been preserved through the ages in the form of a highly slphisicated orat tradition. Greatcave was taken to safeguard the purity of every word through the correct intonation of the words ar enunuated in the Siksha texts. The words were also preserved by chanting them manifoed combination. The combinations of indivedual words based proxkriti on
सँहिता पाठ, पदापाठ and (क्रमपाठ) vikrity (जटापाठ, सिखापाठ and घनापाठ) This पाठ will be discussed with suitable examples.

WATER THERAPY IN VEDAS AN ANALYTICAL STUDY IN MODERN CONTEXT

Dr. Shalini Shukla, Department of Sanskrit, Post. Graduate Coollege, Kotdwar

The water have their Healing Power, Water Drive Disease Away. The Waters have A Balm for All: Let Them Make Medicine for Thee.1 We live one of the most beautiful and unique planet earth. More than 75% of this planet is covered with water. Water is a crucial natural resource for human survival. It is a renewable natural resource that is purified and circulated continually between the atmosphere and the earth surface through the hydrologic cycle. All forms of life in nature are dependent on the continuous circulation of water.

Health is a part and parcel based of socio economic development. Only the better health would allow one to enjoy the benefits of life. We do not prize the health unless it is disturbed. However health remains as a basic

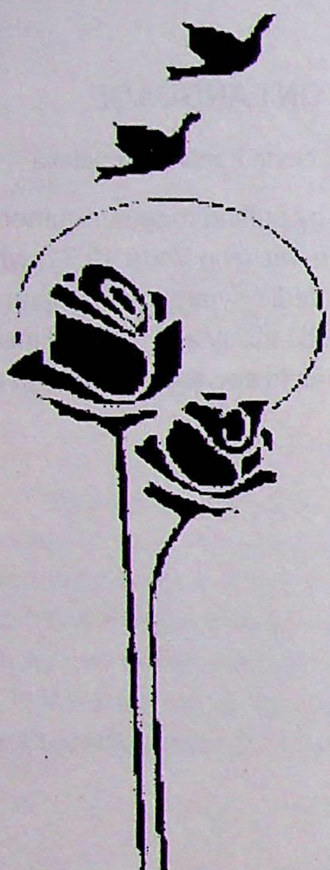
force for improving life standards. Many systems of medication v;z Alloypathy; Ayurveda, Homeopathy are in practice to make man healthy and disease free beet the result is not satisfactory. We have to back to the nature because nature is gifted with many valuable things of medicinal use. Our insisters were fully aware of the importance of natural resources. They worshipped natural phenomenon as gods and goddesses. In four Vedas water's socio cultural and medicinal description is found. In my full length paper step discussion is shortly given below. Introductory note on Water, structure of water, water borne diseases, water therapy in four Vedas (Rigveda, Yajurveda, Samveda and Atharvaveda).

RECONCEPTUALIZING LINGUISTICS:VEDIC MEDITATIONS ON LANGUAGE

M.G. Hegde Lecturer in English, Dr. A.V. Baliga College of Arts and Science, Kumta, North Kanara, Karnataka

The object of this paper is to propose an outline for a science of language by putting together numerous references to language in Vidic hymns and by offering a close nanalysis of Hymn to Vac (Rig VedA 10.71) which happens to be the most extensive and well-known meditations on language. The Vedic hymns reflect upon the origin, nature and functions of language by establishing a close link between linguistic ability and spiritual insight and by specifying the relationship of speech to the performance. What Veda itself has to say about language and its operation is also a curious and earliest instance of self-conscious exposition.

प्रकीर्ण





वैदिक वाङ्मय में संगीत

सुश्री निष्ठा शर्मा प्रवक्ता संगीत गायन, महिला महाविद्यालय, कानपुर

आर्यों को संगीत से अत्यन्त लगाव था। अत: 'ऋग्वेद' काल में गीत, वाद्य, नृत्य तीनों का उल्लेख है- 'त्रिबद्धै शिल्पं नृत्यं गीतं वादितमिति'। ऋग्वेद के स्तोत्र मन्त्रों की विशेषता उसके गान में निहित है। गीत प्रबन्धों का उल्लेख 'गीति' गाथा, गायन तथा साम के नाम से पाया जाता है। गाथाओं के गायक 'गथिन' कहलाते थे। स्तोत्र का गान उद्गाता ऋत्विक् करता था। वैदिक युग का 'समन' उत्सव तत्कालीन जनजीवन की कलाप्रियता और मनोरंजन का पुष्ट प्रमाण है।

यजुर्वेद की शुक्ल और कृष्ण दोनों शाखाओं में सामगान की प्रशंसा की गई है। इसमें मन्त्रों का उच्चारण उपांशु स्वर में किया जाता है। इसमें सात प्रकार के सामों- स्थन्तर, वैराज, वैश्वानर, वामदेव्य, शाक्वर, रैवर्त, अभिवर्त का उल्लेख है। कुछ ऋतु विशेष में ही गाये जाते थे, जैसे- बसन्त, वैरूप आदि। यह हमारे वर्तमान ऋतुकालीन रागों की तरफ इंगित करते हैं। यज्ञ में उद्गाता के स्वर में स्वर मिलाकर सामूहिक गायन करने का विधान था।

'गीतिषुसामाख्या' अर्थात् जो मन्त्र गाये जाते हैं, वही 'साम' कहलाते हैं। साम का मूल अर्थ 'गान' है। ऋग्वेद की ऋचाओं के आश्रय से साम गान किया जाता है। संगीत की दृष्टि से सामवेद का विशिष्ट स्थान है। भगवान् कृष्ण के मुख से वेदव्यास के अनुसार यह शब्द निकले- 'मैं वेदों में सामवेद हूँ।' इसका प्राणभूत तत्व 'स्वर' है।·'ताल' का वर्णन नहीं मिलता, किन्तु 'गणक' नामक कलाकार मात्रा गिनता रहता था। सामगान में सप्त-स्वरों का प्रयोग होता था।

वेद-चतुष्टयी में 'अथर्ववेद' क विशेष स्थान है। इसको 'अंगिरा' अथवा 'अथर्वांगिरस्' वेद भी कहते हैं। इसमें उल्लिखित सभी शान्ति-कर्मों, यज्ञों आदि में सामगान का विधि विधान पूर्वोक्त ही है। अत:सामगान की समृद्धि अथर्वकाल में पूर्णता को प्राप्त हो गई थी। विभिन्न यज्ञों, पितरों की इष्टपूर्ति आदि के लिए सामगान आवश्यक था। अथर्ववेद में 'व्रात्य' और 'मागध' दो प्रकार के गायकों का वर्णन है। व्रात्य का संबन्ध सामगान से तथा मागधों का गाथागान तथा प्रात:कालीन प्रबोधन संगीत से था। आमोद-प्रमोद, यात्राओं तथा अनेक व्यवसायिक अवसरों पर भी गायन का वर्णन मिलता है।

वैदिक कालीन स्वरों में उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, मुख्य तीन थे। उदात्त स्वर निषाद व गन्धार हैं, अनुदात्त में ऋषभ, धैवत तथा स्वरित में षड्ज, मध्यम, पंचम को कहा गया है। सामगान में सप्तस्वरों के नाम थे- प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मन्द्र, क्रुष्टु तथा अतिस्वार्य।

वेदों में उल्लिखित कुछ वाद्यों के नाम हैं- वीणा, शततन्त्री, बाण, पिच्छोला, दुन्दुभि, वेणु, करताल, मंजीरा, आघाट इत्यादि। इस प्रकार तत् अवनद्य, सुषिर तथा घन सभी प्रकार के वाद्यों का प्रचलन वैदिक काल में था। तन्तु वाद्यों में वीणा सर्वोत्तम मानी जाती है, उसका वैदिक युग में प्रचलन, हमारे यहाँ संगीत कला की उन्नति का परिचायक है।

वैदिक वाङ्मय में लोक संगीत : एक चिन्तन

डॉ. निशा पाठक वरिष्ठ प्रवक्ता- कानपुर विद्या मन्दिर महिला महाविद्यालय, कानपुर

भारत का सबसे प्राचीन, नियमित और सुसम्बद्ध संगीत वैदिक काल में मिलता है। वैदिक साहित्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उस काल तक संगीत की दों धाराएँ प्रचलित हो चुकी थी- शास्त्रीय संगीत तथा लोक संगीत। 'साम' वैदिक काल का शास्त्रीय संगीत था और गाथा, नाराशंसी, रैभी आदि गीत प्रकार लोक संगीत के अन्तर्गत थे जो लोक मनोरंजन के लिए गाये जाते थे। गीत को अधिक आकर्षक एवं रोचक बनाने के लिए उसके साथ वाद्य एवं नृत्य की संगति कर संगीत को पूर्णता प्रदान की गई। ऋग्वेद के 'यमसूक्त' (10.135.7) में यम का सदन नानाविध गीतों तथा 'नाड़ी' नामक वाद्य की ध्वनि से व्याप्त बताया गया है।

वास्तव में यज्ञ जैसे धार्मिक क्रियाओं में भी गायन, वादन और नृत्य का सामंजस्यपूर्ण प्रयोग तत्कालीन समाज एवं ऋषियों की कलाप्रियता का सूचक है। यज्ञों के अतिरिक्त विभिन्न व्यवसायों के अवसर पर व्यवसायी लोग मनोविनोद के लिए तत्सम्बन्धी गीत गाया करते थे। जिसमें नर और नारी दोनों भाग लेते थे।

वैदिक समाज में कला का निरूपण

डॉ. वंदना शर्मा वरिष्ठ प्रवक्ता- चित्रकला, महिला महाविद्यालय पी.जी. कॉलेज, किदवई नगर, कानपुर

वैदिक ऋचाओं में कलाओं के सभी रूपों के दर्शन किये जा सकते हैं। शिल्प अथवा शास्त्र कोई भी वर्ग उससे अछूता नहीं था। समाज में स्त्री हो अथवा पुरुष सभी की, उसमें समान अभिरूचि थी। राजा से लेकर सामान्य नागरिक तक उसका सामान्य प्रवेश था। वैदिक युग से ही 'कला' को कला के लिए न मानकर उसका सम्बन्ध सामाजिक जीवन से स्थापित किया गया है। जीवन के लिए कला की उपयोगिता बढ़ी, उसने सामाजिक, नैतिक, धार्मिक आदर्शों को रूपायित किया। चित्रों के माध्यम से उसने लोक चेतना को उत्तेजित कर परंपरा व मर्यादा की रक्षा की तथा दूसरी ओर नवीन मान्यताओं की स्थापना कर जीवन की नयी दिशाएँ खोलीं। निराकार को साकार रूप प्रदान करने तथा निर्गुण में सगुण का आधान करने के कारण ही समाज में कलाकार को भी सम्मानित स्थान प्राप्त था, जिसमें वह अनेक प्रतिमानों का आश्रय लेकर अपने लक्ष्य की पूर्ति करता था।

वैदिक वाङ्मय में रूप शृंगार कला : एक विवेचन

डॉ. भावना आर्या व्याख्याता- संस्कृत, राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपुर, राजस्थान

भारतीय वाङ्मय के आदि ग्रन्थ ऋग्वेद में देवी-देवताओं के दिव्य वर्णन द्वारा उसमें मण्डन-कला के प्राचीनतम सन्दर्भ स्पष्ट रूप में प्राप्त होते हैं। इसके साथ ही सम्पूर्ण वैदिक साहित्य में भी रूपशृंगार के चतुर्विध स्वरूपों, वस्त्र, आभूषण, माल्य तथा अनुलेपन का विस्तृत उल्लेख मिलता है।

सौन्दर्यमूलक रूपशृंगार के इन्हीं चार घटकों का विवेचन तथा शृंगार-भावना और आरोग्य-दृष्टि के महत्त्व के साथ वैदिक साहित्य के विवरणों के आधार पर देहालंकरण के सौन्दर्य-पक्ष का महत्त्व प्रतिपादित करना प्रस्तुत शोधपत्र का प्रयोजन है।

ऋग्वेद एवं भाषा

अवधेश कुमार पाण्डेय शोधच्छात्र संस्कृतविभाग, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

वेद सृष्टि की आरम्भिक रचना है। ऋग्वेद आर्यों की लिखित सर्वप्रथम कृति है। वेद ज्ञान के भण्डार हैं। वेदों के अध्ययन के पूर्व वेदांगों का अध्ययन अनिवार्य है। वेदांगों से ही वेद के अर्थ स्पष्ट किये जाते हैं। वेदांगों में शिक्षा एवं व्याकरण भाषा के ही अंग हैं तथापि वेदों में भाषा विषयक दार्शनिक तत्त्व पहले ही मौजूद हैं। प्रस्तुत निबन्ध में इन्हीं भाषा विषयक चिन्ता का स्वरूप प्रस्तुत किया जायेगा।

वेदों में भौगोलिक प्रतिमान

डॉ. रीता झिंगरन प्रवक्ता- हीरालाल यादव बालिका डिग्री कॉलेज, लखनऊ

ज्ञानकी अक्षुण्ण धारा को प्रवाहित करने वाले वेद सम्पूर्ण मानव जाति के लिए अक्षुण्ण धरोहर हैं। सृष्टि रचना की उत्पत्ति एवं सिद्धान्तों का सूक्ष्म एवं वैज्ञानिक विश्लेषण वेदों में उपलब्ध हैं। एकतः परमाणुओं के संक्षोभ से जहाँ भौगोलिक प्रतिमान सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, नक्षत्र, ऋतु, काल, दिन-रात की उत्पत्ति एवं तत्कालीन भौगोलिक परिस्थितियों का सूक्ष्म विवेचन हमें उपलब्ध होता है। अपरतः पञ्च तत्त्वों, वनस्पतियों औषधियों की उत्पत्ति का विवेचन स्थल-स्थल पर वर्णित है। वेदों में विज्ञान सम्मत उस तर्क की पुष्टि के प्रबल प्रमाणों का विवेचन जिसमें पृथ्वी की संरचना का विस्तृत विवरण प्राप्त होताहै। नदियों, पर्वतों, समुद्रों, पशु, पक्षी, खगोलीय, भूगोल, सृष्टि रचना, ज्योतिष चक्र एवं सृष्टि रचना के पूर्व एवं पश्चात् की स्थिति का उल्लेख प्राप्त होता है। ऋग्वेद में वर्णित है-

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम।। (ऋ. अ. 8/ मं. 1)

शतपथ ब्राह्मण में जहाँ विभिन्न भौगोलिक विधाओं का वर्णन है, वहीं ऐतरेय ब्राह्मण में धरातलीय संरचना की परिकल्पना की

गयी है। पृथ्वी आदि नवग्रह सूर्य के चारों ओर घूमते रहते हैं वहीं चन्द्रमा पृथ्वी का उपग्रह होने से उसके चारों ओर चक्कर काटता रहता है। ऋग्वेद के ऐतरेय एवं तैत्तिरीय ब्राह्मण में ऋतुओं का उल्लेख है वहीं पृथ्वी की गोलाभ आकृति, सौर मण्डल में भ्रमण करते हुये ग्रहों एवं उपग्रहों का सूक्ष्म विवरण प्राप्त होता है। प्रस्तुत लेख में भौगोलिक प्रतिमानों पर आधारित कतिपय बिन्दुओं को प्रकाशित करने का प्रयत्न किया गया है।

वैदिक ऋषियों की अवधारणा-ऋग्वैदिक अनुक्रमणियों के सन्दर्भ में

डॉ. मीरा रानी रावत रीडर, संस्कृतविभाग, आर्य कन्या महाविद्यालय, हरदोई

विस्तृत वैदिक साहित्य का संरक्षण मौखिक परम्परा द्वारा दुष्कर था। अत: वेदों को सुरक्षित रखने के उद्देश्य से अनुक्रमणी ग्रन्थ लिखे गये। इनमें वैदिक ऋषियों, देवताओं और छन्दों की सूचियाँ रची गयीं। साथ ही मन्त्र, मन्त्रगत पदों और वर्णों की गणना का भी अनुक्रमणीकारो ने की। वैदिक मूलपाठ को सुरक्षित रखनें एवं मन्त्रों के यथार्थ ज्ञान का साधन सुलभ कराने का श्रेय अनुक्रमणियों की सुरक्षात्मक चक्रव्यूह प्रणाली को जाता है।

ऋषि तत्व के सम्बन्ध में विचार करने पर दो प्रधान विचारधाराएं सामने आती हैं- प्रथम विचारधारा के अनुसार 'ऋषयो मन्त्र:दृष्टार:' अर्थात् ऋषियों ने समाधि की अलौकिक स्थिति में मन्त्रों का दर्शन किया। वेद मन्त्रों का सर्वप्रथम दर्शन करने के कारण ही उनका ऋषि अभिधान हुआ। वाणी उनको सिद्ध हो चुकी थी। वे आलौकिक प्रतिभा एवं दिव्य दृष्टि सम्पन्न ज्ञान पुत्र एवं आत्मदर्शी थे। वेद मन्त्रों में मन्त्र द्रष्टा होने के अनेकों प्रमाण सुरक्षित हैं।

ऋषि तत्त्व की द्वितीय विचारधारा के अनुसार 'यस्य वाक्यं स ऋषि' अर्थात् मन्त्र रूप वाक्यों के वक्ता ऋषि हैं। वेदों के प्रणेता ऋषि जिन मन्त्रों से सम्बद्ध हैं, वे ही उनके रचयिता हैं। तात्पर्य यह है कि जब ऋषि ने अपनी कामनाओं की पूर्ति के लिये देवताओं की स्तुति की तब उसी ऋषि को उन मन्त्रों का ऋषि माना गया।

यहाँ यह ध्यातव्य है कि ऋषि चाहे मन्त्रों के द्रष्टा हों या रचयिता दोनों ही रूपों में स्तुत्य हैं। वेदार्थ के सम्यक् ज्ञान में ऋषियों का महत्त्व अकथनीय है। सर्वानुक्रमणी में समुल्लिखित है कि ऋषियों के ज्ञान के बिना श्रौत स्मार्त कर्मों की सिद्धि नहीं होती-

'न ह्येतज्ज्ञानमृते श्रौत स्मार्त कर्म प्रसिद्धि:। सर्वानुक्रमणी 1.2

आचार्य शौनक ने आर्षानुक्रमणी में ऋग्वेद के द्रष्टा ऋषियों का विस्तृत वर्णन किया है। प्रत्येक सूक्त के ऋषि का नाम निर्देश किया है। अनुक्रमणियों में ऋषियों से सम्बन्धित विस्तृत विवेचन मिलता है। प्रथम मण्डल से दशम मण्डल तक ऋषियों के विवेचन के साथ-साथ ऋषिकाओं का भी वर्णन है। अमित तथा मित ऋषियों पर भी विचार किया गया है। वेंकट माधव ने ऋग्वेदानुक्रमणी में भिन्न ऋषित्व, सम्मिलित ऋषित्व तथा वैकल्पिक ऋषित्व जैसे गम्भीर विषयों पर भी विचार किया है। पिता-पुत्र द्वारा मन्त्र द्रष्टव्य पर भी प्रकाश डाला गया है। देवताओं का ऋषियों के समान मन्त्र द्रष्टा होने का भी उल्लेख मिलता है। कतिपय स्थलों पर किसी भावना, गुण, क्रिया अथवा विशेष स्थिति के वाचक शब्दों में भी ऋषित्व माना गया है।

इस प्रकार प्रस्तुत आलेख में ऋग्वैदिक अनुक्रमणियों में उपलब्ध ऋषियों के स्वरूप की विवेचना की गयी है। सभी वेदों के ऋषियों का परिगणन कर अनुक्रमणीकारों ने सराहनीय कार्य किया है।

ऋग्वेद की ऋषिकाएँ

डॉ. लज्जा पन्त(भट्ट) संस्कृत विभाग, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनिताल, उत्तराखण्ड

वैदिक संहिताओं में नारी के सुशिक्षित तथा ज्ञानसम्पन्न रूप का वर्णन प्राप्त होता है। नारियाँ वेद-विद्या मे पारंगत होने के साथ-साथ यज्ञादि कर्मो एवं शास्त्रार्थ करने में भी समर्थ थीं। प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद में, ऋषियों के साथ-साथ ऋषिकाओं (अर्थात् स्त्री ऋषि) के उल्लेख भी मिलते हैं।

ऋषि का तात्पर्य है-''ऋषयो मन्त्र द्रष्टार:'। यास्क ने 'ऋषि' शब्द का अर्थ किया है- ''ऋषिर्दर्शनात्।'' अर्थात् मन्त्रों के अर्थों

का दर्शन करने वाले व्यक्ति को ऋषि कहा गया है। ये ऋषि मन्त्रों के रचयिता नहीं थे, अपितु इन ऋषियों ने सर्वप्रथम उन सूक्तों के अर्थों का दर्शन करके उनका लोक में प्रचार किया-

"साक्षात्कृधर्माण: ऋषयो बभूवु: ते अवरेभ्योऽसाक्षात्कृत धर्मम्य: उपदेशेन मन्त्रान् सम्प्रादु:।" (निरुक्त 1.6.4)

ऋग्वेद में एक महत्त्वपूर्ण तथ्य यह दृग्गोचर होता है कि उसमें ऋषि तथा ऋषिका (स्त्री ऋषिका) दोनों के सम्बन्धों में विवरण बराबर-बराबर है। अनुमानत: 26(छब्बीस) ऋषिकाओं के मन्त्र ऋग्वेद में संकलित हैं। यह अत्यन्त प्रसन्नता का विषय है कि जिस प्रकार ऋषि (पुरुष) मन्त्रों के द्रष्टा थे उसी प्रकार ऋषिकाओं के द्वारा भी दृष्ट ऋग्वेद के मन्त्रों के प्रमाण मिलते हैं।

प्रस्तुत शोध-पत्र में उक्त 26 ऋषिकाओं का अध्ययन तथा उनके सूक्तों के सार को मेरे द्वारा प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

वर्णसमीक्षा ग्रन्थाधारित मातृका स्वरूप-विमर्श

डॉ. यादराम मीना, सुमन सहायकाचार्य, संस्कृतविभाग, जयनारायण व्यास वि.वि. जोधपुर, राजस्थान

महामहोपाध्याय पण्डित शिवकुमार शास्त्री के अन्यतम शिष्य 'पण्डित मधुसूदन ओझा' ने वेदाङ्ग प्रकरण के अन्तर्गत व्याकरण-विषय को ध्यान में रखकर वैदिक-व्याकरण का सम्यक् आलोडन करके वर्णसमीक्षा, पथ्यास्वस्ति एवं पदनिरुक्तम् नामक महनीय ग्रन्थों की रचना की है। इनमें वर्णसमीक्षा ग्रन्थ के अन्तर्गत उन्होंने आर्यमातृ का एवं अनार्यमातृका भेद से दो प्रकार की मातृकाओं का निरूपण किया है। इनमें भी उन्होंने आर्यमातृका को ब्रह्म, अक्ष, सिद्ध तथा भूत भेद से चार प्रकार का एवं अनार्यमातृका को होडा मातृका के रूप में निरूपित किया है। इसमें स्वर, व्यञ्जन-विभाग रहित को अनार्य अर्थात् हीनक्रम मातृका के रूप में वर्णित किया है।

इन मातृकाओं के विवेचन मे पण्डित ओझा ने प्रातिशाख्य ग्रन्थों को आधार बनाकर कतिपय ऐसी संज्ञाओं का विवेचन किया है, जिनसे पाणिनीय व्याकरण के अध्येता सुपरिचित नहीं हैं। उदाहरणत: सिम्, नामि, भावी, जित्, मुत् एवं घि। फलत: प्रातिशाख्य ग्रन्थों तथा पाणिनीय व्याकरण का सम्यक् परिशीलन करते हुए दोनों ही महनीय शास्त्रों के आधार पर तत्तद् संज्ञाओं की विशेषताओं का प्रतिपादन एवं मातृका से सम्बन्धित विवेचन ही प्रकृत शोध-आलेख का मुख्य प्रतिपाद्य है।

वेद वाणी की वर्तमान सन्दर्भ में प्रासंगिकता

डॉ. टी.एल. श्रीमाली राजकोट, गुजरात

भारतीय धर्म, भाषा, सभ्यता-संस्कृति तथा समाज का भव्य प्रासाद वेदों पर ही विनिर्मित हुआ है। यथार्थ रूप में कहा जाय तो वेद किसी युग विशेष का जड़ीभूत साहित्य नहीं है, अपितु मनुष्य के वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रिय जीवन से नित्यप्रति सम्बन्ध रखने वाला, सदा प्रवाही स्रोत रहा है।

नित्य-नवीन प्रेरणा प्रदान करनेवाली वेदवाणी वैदिक विद्वानों के सतत् अवगाहन का विषय रही है। मनुष्य की मानवीयता को बरकरार रखते हुए अपनी विचारधारा को उदार बनाकर सम्पूर्ण विश्व को व्यापार-बाजार की दृष्टि से नहीं, अपितु मानवीय संवेदना के धरातल पर एक मानना वेद का विषय रहा है। वर्तमान परिवेश में आज जहाँ आतंकवाद, स्वार्थपरायणता, छल-कपट, भ्रष्टाचार, व्यभिचार, संवेदन हीनता एवं अहंकार रूपी असुर समाज में चहुँ ओर अपना शक्तिप्रदर्शन करते हुए दिखाई दे रहा है, वहाँ वेद वाणी का महत्त्व और भी बढ़ जाता है। आज समाज में नासूर बनते जा रहे उपर्युक्त दुर्गुणों को जड़-मूल से उखाड़ फेकने का एक मात्र समाधान वेद वचनों में निहित है। मानव अपने जीवन के परम लक्ष्य से कहीं भटक न जाये अपितु उसमें **'संगच्छध्वं संवदध्वम्, समाना हृदयानि व:'** जैसे असंख्य उदात्त वेद वचनों द्वारा अपनत्व की भावना विकसित कर निखिल विश्व में विश्वबन्धुत्व के भाव जागृत करें, हमारे वैदिक महर्षि सदैव इसी के हिमायती रहे हैं। इतना ही नहीं अपनी प्राकृतिक-सम्पदा को अक्षुण्ण रखकर पर्यावरण समस्या के समाधान का मार्ग भी वेद वाणी में निहित है।

प्रस्तुत शोध पत्र में ऐसे ही कुछ जटिल प्रश्नों के समाधान में वेद वचनों की क्या भूमिका हो सकती है? वर्तमान सन्दर्भ में वेद वाणी की कितनी अधिक प्रासंगिकता है? इसी विषय पर चिन्तन करने का विनम्र प्रयास है।

ऋग्वैदिक वरुण सूक्त (१/२५) : एक समीक्षा

विश्वमोहिनी पाण्डेय लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

ऋग्वैदिक सूक्तों में वरुण सूक्त अत्यन्त सहज एवं सांस्कृतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। शुनः शेप ऋषि के आत्मोद्गार के रूप में प्रकट हुआ है। यह ऋषि अपने पिता की तीन संतानों में से मध्यम थे और आर्थिक समस्याओं तथा जीवन यापन की सामग्री के अभाव मे जी रहे माता-पिता के द्वारा राजा के प्रतिनिधियों के हाथ में बेच दिये गये थे इस प्रकार वे जलोदर ग्रस्त राजा के स्वास्थ्य हेतु किये जा रहे यज्ञ में पशु के रूप में बाँध दिये गये। ऋषि के सम्मुख तीन प्रश्न थे-

1) माता पिता के द्वारा विक्रय किये जाने के बाद क्रय करने वाले राजा के यज्ञ में पूरक होना।

2) जलोदर ग्रस्त राजा रोगमुक्त हो इस निमित्त इष्ट देवता (वरुण देव) से प्रार्थना।

3) पशु के रूप में निरीह बंधे हुए शुनःशेप का मृत्यु के मुख से निकलने का प्रयत्न और उस निमित्त देवाधिदेव वरुण की कृपा की याचना। इन विचित्र परिस्थितियों मे ऋषि शुनः शेप देवता के प्रसाद हेतु पूरे मनोयोग से प्रार्थना करते हैं।

वि मृलीकायं ते मनो रथीरश्वं न संदितम्। गीर्भिर्वरुण सीमहि।।

उपनिषदों में अङ्गिरस्

किरणकुमारी शोधच्छात्रा बरेली कॉलेज, बरेली

आस्तिक समुदाय में जीवन के लिए आराध्य एक अनिवार्य आलम्बन होता है। अतः वेदों में आराध्य के रूप में अन्यान्य देवों की परिकल्पना है। इन वैदिक देवताओं का स्वरूप अत्यन्त जटिल है। वैदिक काल में मुख्यतः तीन प्रकार के देवों की स्तुतियाँ की गयी हैं। प्रथम एकल रूप में यथा- इन्द्र, अग्नि, मरुत्, रुद्र आदि। द्वितीय यग्म रूप में यथा- इन्द्राग्नि, मित्रावरुण, इन्द्रवरुण, आदि। तृतीय समूह रूप में । समूह रूप में जिन देवताओं की स्तुति की गयी है, उनमें अङ्गिरसों का नाम विशेष-रूप से उल्लेखनीय है। सम्पूर्ण वैदिक साहित्य में अङ्गिरस अपने वैशिष्ट्य के कारण अद्वितीय स्थान रखते हैं।

अङ्गिरस् आकाश के पुत्र हैं। एक अङ्गिरस् को अन्य सभी अङ्गिरसों का पूर्वज मानकर इन्हें अङ्गिरस् पुत्र की संज्ञा दी गई है। सम्भवतः यही कारण है कि ऋषियों ने इन्हें हमारे पूर्व पिता कहकर सम्बोधित किया है। वेदों में अङ्गिरसों को देव ऋषि और पितृ आदि विविध स्वरूप के दर्शन होते हैं। अङ्गिरसों को देवोचित गुणों से संयुक्त करते हुए मुख्यतः इन्द्र, अग्नि, आदित्य, यम, मरुत्, विषणु एवं रुद्र आदि देवों के साथ संबद्ध किया गया है। ऋषि रूप में अङ्गिरस विभिन्न यज्ञों का सम्पादन कर देवों को हर्षित करते हुए उनकी मित्रता प्राप्त करते हैं। पितरों के रूप में अङ्गिरसों को अथर्वन्, भृगु, नवग्वा, दशग्वा आदि के साथ विशेष रूप से उल्लिखित किया गया है। न केवल वेदों एवं ब्राह्मणों में अपितु उपनिषदों में भी अङ्गिरसविषयक सामग्री की गहन समालोचना की गयी है। उपनिषदों में अङ्गिरसों को मुख्यतः दर्शन के शिक्षकों एवं ब्रह्म विद्या के वेत्ताओं के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

इन्हीं अङ्गिरसों के स्वरूप, विकास एवं महत्त्व को उपनिषदों के आधार पर प्रस्तुत करना मेरे शोधपत्र का विषय है।

वेद साहित्य का महत्व वर्तमान परिप्रेक्ष्य में

दीपिका श्रीवास्तव प्रवक्ता, समाजशास्त्र विभाग डी.जी. पी.जी. कालेज, कानपुर

वेदों का महत्व केवल उनकी प्राचीनता और प्राचीन साहित्य में उपलब्ध गौरव वर्णन अथवा निहित ज्ञान विज्ञान के कारण ही नहीं है, अपितु इनके अधययन से अनेक नव्यशोधों का प्रवर्तन हुआ है और बहुत सारे नये तथ्य उद्घाटित हुयें हैं। वेदों के अध्ययन

से आधुनिक भाषा एवं लौकिक संस्कृत की आश्चर्यजनक समानता पाश्चात्य ग्रीक लैटिन इंग्लिश आदि भाषाओं में फारसी आदि मध्य पूर्व की भाषाओं में दृष्टिगत हुई। इससे जहाँ आर्य जाति के प्राचीन इतिहास और स्वरूप पर प्रकाश पड़ा, वहाँ आधुनिक भाषा विज्ञान का महत्व बड़ा। इस शोध से हमें यह ज्ञान हुआ कि भारतवर्ष से लेकर इंग्लैण्ड तक जितनी भाषायें बोली जाती हैं, उनका मूल रूप एक ही था, और उन भाषाओं को बोलने वाली जातियों के मूल पुरुष एक ही परिवार से सम्बन्ध रखते थे।

वेदों में ऐतिहासिक तत्व को स्वीकार करने वाले विद्वानों ने वेदों के अध्ययन से वेद कालीन इतिहास, समाज एवं संस्कृति सभ्यता का अन्वेषण किया और इस बात को स्पष्ट करने में सफलता प्राप्त की कि हमारे पूर्वजों का रहन सहन कैसा था? उनकी दिनचर्या रीति रिवाज कैसे थे ? क्या मान्यताऐं थी ? किस प्रकार राजा का चुनाव होता था? और क्या राज्य पद्धति थी ? सामाजिक परम्पराऐं क्या थी? आदि-आदि।

वेदों का महत्व केवल भारत तक ही सीमित नहीं रहा है, अपितु उसने अनेक देशों के साहित्य समाज और संस्कृति सभ्यता को प्रभावित किया। वेदों में निहित ज्ञान विज्ञान और उनके वैशिष्ट्य को देखकर पाश्चात्य लोग भी उनके अधययन के मोह का संवरण नहीं कर सके। अनेक पाश्चात्य विद्वानों मैकडानल, मैक्समूलर, राथ विन्टरनिट्ज, कालब्रुक आदि ने वैदिक साहित्य का अध्ययन किया और उस पर कार्य करने के लिये अपना पूरा जीवन समर्पित कर दिया। वेदों के सम्पादन और प्रकाशन का श्रेय भी वर्तमान युग में इन्ही विद्वानों को जाता है। इन विद्वानों ने वेदों का गम्भीर अध्ययन करके और उनकी भाषा का भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से विश्लेषण करके वेदों को संसार का प्राचीनतम साहित्य घोषित किया और माना कि इनमें आर्य जाति के हजारों वर्ष पुराने इतिहास, मान्यताओं, संस्कृति एवं सभ्यता का समावेष है। इनमें मानव मन को शान्ति देने वाला यह अध्यात्मिक ज्ञान निहित है जिसकी आज के भौतिकवादी वैज्ञानिक युग में आवश्यकता है।

आधुनिक युग में वेद साहित्य का दृष्टिकोण

डा. मंजू सिंह रीडर एवं अध्यक्ष समाजशास्त्र विभाग, डी.जी. पी.जी. कालेज कानपुर
डा. आर.के. सिंह रीडर एवं अध्यक्ष समाजशास्त्र विभाग, डी.बी.एस. कालेज, कानपुर

साहित्य सृजन का मूल उद्देश्य मात्र मनोरंजन न होकर, मानवता की पथ पर अग्रसर होने की प्रेरणा एवं मानव समाज को सुशिक्षित करना होता है।

वैदिक संस्कृत साहित्य नि:सन्देह सामान्य जनता को सुशिक्षित करने एवं मानव मुक्ति हेतु संघर्ष की शुभ प्रेरणा देती है। वेद व्यास जी, शंकराचार्य, महर्षि दयानन्द, रामानुजाचार्य, बाल गंगाधार तिलक आदि मनीषियों ने वेद दर्श एवं भारतीय संस्कृति का प्रकाश देश देशान्तर में करते रहें। यही वैदिक संस्कृति की आत्मा की देन रही। भारतीय संस्कृति की स्थापिका प्राचीन विरासतों वेदों के कारण बनी हुई है। उस भारतीय संस्कृति जो प्राय: असम्भव ऐतिहासिक परिस्थितियों में भी सहस्र वर्षो से जीवित है। राष्ट्रिय भावना जिस देश में हम रहते हैं, उसकी भूमि के प्रति प्रेम तथा एक सर्वनिष्ठ भविष्य की आशा के कारण जीवित रहता है। हम अतीत का स्मरण करते हैं। वर्तमान के प्रति जागरूक रहते हैं और भविष्य के लिये कर्म करते हैं। वैदिक धातु से ही भारत का बहुभाषी, बहुजातीय और बहुधर्मी समाज रहा है यह विविध जातियों एवं संस्कृतियों का संगम स्थल रहा है। भारत में राष्ट्रिय एकता प्राचीन समय से लगातार और अखण्डित चली आ रही है। भारतीय संस्कृति की आधारभूत धारणाऐं आध्यात्मिक, नैतिक एवं सामाजिक प्रासंगिकता आज भी बनी हुई है।

वेदों में देवता-तत्त्व

आभा शोधच्छात्रा, जनता वैदिक कॉलेज, बडौत

वेद परमेश्वर के नि:श्वासभूत हैं। वेद के प्रत्येक मन्त्र में देवता तत्त्व समाहित है। सिद्धान्तकौमुदी में 'साऽस्य देवता' सूत्र(4. 2.24) की वृत्ति में 'देवता ' शब्द के दो लक्षण दिये गये हैं- 1. 'त्यज्यमान द्रव्ये उद्देश्यविशेषो देवता' अर्थात् जिसके उद्देश्य से हविर्द्रव्य का त्याग किया जाए वह देवता होता है। तथा 2. 'मन्त्रस्तुत्या च' अर्थात् मन्त्र से जिसकी स्तुति की जाये वह देवता होता

है। अतः मन्त्र में ऋषि जिस देवता की स्तुति करते हैं उस मन्त्र के देवता वे ही माने जाते हैं। जिसकी स्तुति की जाये उसे देवता मान लेने में मन्त्र द्वारा प्रतिपाद्य जड़ तथा चेतन उभयविध पदार्थ, 'देवता' पदवाच्य हो जाते हैं। अतः द्यूतनिन्दा, दान, विवाहादि लौकिक पदार्थों का भी देवता के रूप में उल्लेख है, किन्तु निरुक्त की निरुक्ति के अनुसार दाता, वरप्रदाता, द्योतमान तथा द्युलोक-निवासी व्यक्तिविशेष को देव मानने से स्तवन-मात्र के सादृश्य से संगृहीत लौकिक द्यूतनिन्दा आदि उपदेवों के संग्रह का परिहार हो जाता है।

वेदमन्त्रों का अध्ययन करते समय ऋषि, छन्द विनियोग के समान प्रत्येक मन्त्र के देवता का भी सप्रयत्न परिज्ञान करना चाहिए 'वेदितव्यं दैवतं हि मन्त्रे-मन्त्रे प्रयत्नतः।' इस परिज्ञान की प्रक्रिया का विवेचन भी निरुक्त के देवताकाण्ड का मूल उद्देश्य है। यास्क ने तीन प्रकार के देवता माने हैं-

(1) पृथवीस्थानीय देवता, (2) अन्तरिक्षस्थानीय देवता, (3) द्युस्थानीय देवता।

वेदों में एकदेवतावाद का प्रतिपादन किया गया है, अतः एकदेवतावाद से बहुदेवतावाद का विकास मानना असंगत है। यास्क ने 'एकस्य सतः' (निरुक्त 7.2.5) उक्ति के द्वारा एकदेवतावाद का समर्थन किया है। सूर्य को स्थावर-जंगम समस्त विश्व का आत्मा कहा गया है।

गांधीजी का न्यासिता सिद्धान्त : ऋग्वेद के सन्दर्भ में

सुरेन्द्र डी. सोनी व्याख्याता इतिहास, रा.लोहिया महाविद्यालय, चूरू, राजस्थान

आर्थिक मन्दी की पृष्ठभूमि में आज विश्व के देशों में जो हाहाकार मचा हुआ है, उसे लेकर चिन्ता होना स्वाभाविक है, मन्दी के इस संकट के लिए विकसित और अविकसित देश एक-दूसरे को दोषारोपित करने में लगे हुए हैं, हम व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्धों पर विचार करें या देशों के पारस्परिक सम्बन्धों पर, अर्थव्यवस्था के स्तर पर उत्पन्न हुए किसी भी संकट के पीछे मूल कारण संसाधनों के बँटवारे और उनके यांत्रिक उपयोग से प्राप्त मुनाफे का असमान वितरण ही होता है, इस समानता के चलते धन का एक वर्ग-विशेष की ओर ही प्रवाह होता है, जिसका परिणाम समाज में अशान्ति के रूप में सामने आता है, धन के इस इकतरफा प्रवाह को रोकने के लिए समय-समय पर अनेक मनीषियों ने विभिन्न उपाय सुझाए हैं, ऐसे ही एक मनीषी हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी हैं, जिन्होंने इस बात पर बल दिया कि धनिकों के हृदय -परिवर्तन के माध्यम से धन का पुनः कृषकों ओर श्रमिकों की ओर प्रवाह हो, इसके लिए आवश्यक है कि धनिक स्वयं को समाज के लिए धन का न्यासी समझें।

गांधी जी के लिए यह कहने वाले प्रबुद्धजनों की कमी नहीं है कि उन्होंने न्यासिता का विचार रस्कि, टॉलस्टाय आदि पाश्चात्य चिंतकों से लिया जबकि भारत में यह विचार युगों से प्रचलित है, ऋग्वेद, जिसे विश्व अब तक की सर्वाधिक प्राचीन बौद्धिक सम्पदा स्वीकार कर चुका है, के विभिन्न सूक्तों में न्यासिता के सिद्धान्त को बहुत ही सजगता से प्रस्तुत किया गया है। स्वयं गांधी जी के जीवन चरित्र और लेखन से प्रमाणित होता है कि उन पर मौलिक प्रभाव भारतीय दर्शन का ही रहा है।

कोई भी उत्तम विचार, जिससे सभी के कल्याण का मार्ग प्रशस्त होता हो, निश्चय ही पूर्व और पश्चिम के मनीषियों में बँटकर नहीं आता। कल्याण की भावना पर पूर्व और पश्चिम की मुहर लगाई जाये, यह ठीक नहीं है, किन्तु कोई सिद्धान्त संसार की विभिन्न संस्कृतियों में से किस संस्कृति-विशेष से निःसृत हुआ है, यह जानना न केवल समाजशास्त्रीय अध्ययन की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है, अपितु इस दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है कि मनुष्य को उपभोक्ता मानने वाले पश्चिम के लोग न्यासिता जैसे सर्वकल्याणकारी विचार को गलत रूप में प्रस्तुत न करें। अतः ऋग्वेद की मूल विचारणा को विश्व समुदाय के समक्ष सक्षम तरीके से प्रकट करना होगा। ऋग्वेद के दसवें मण्डल में कहा गया है-

मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत्स तस्य।
नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी।। 117.6

जिस ग्रन्थ में इस प्रकार के भाव प्रकट हों कि अकेला खाने वाला पापी होता है और वह किसी भी दृष्टि से धन के प्राप्त होने के योग्य नहीं है, निश्चय ही वर्तमान के उपभोक्तावादी वातावरण में संसार को सन्मार्ग की ओर प्रवृत्त करने में सक्षम हैं। गांधीय न्यासिता का आधार हमें ऋग्वैदिक साहित्य में ही तलाश करना होगा न कि इससे बाहर पश्चिमी विचारकों के यांत्रिक उपदेशों में, ताकि

धन के लिए मरने मारने पर उतारू मात्र बाजार को भगवान् मानने वाले पूँजीपति जग के समस्त प्राणियों के कल्याण की कामना करना वाले निर्मल हृदय जन बन सकें।

वैदिक काल में संगीत

विजयकृष्ण रेखा साह संगीत विभाग कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

भारतीय संगीत का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है, किन्तु प्रारम्भ में संगीत कला के रूप में विद्यमान नहीं था। कला का रूप धारण करने से पूर्व एक बहुत लम्बा युग रहा जिसमें प्रकृति की ध्वनियों को लय में बाँधकर संगीत को रूप दिया होगा। संगीत का कला के रूप में व्यवस्थित स्वरूप वैदिक काल में ही प्राप्त होता है अतः यह माना जा सकता है कि संगीत में कलात्मकता का उद्भव एवं विकास वैदिक युग में ही हुआ। यूँ तो संगीत का सन्दर्भ चारों वेद, ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद तथा अथर्ववेद में प्राप्त होता है परन्तु संगीत का विशेष सन्दर्भ सामवेद से प्राप्त है जिसके आधार पर भारतीय संगीत का विकास हुआ। वेदों में विभिन्न लय वाद्यों का उल्लेख प्राप्त है परन्तु ताल स्वरूपों का विवेचन इनमें नहीं किया गया है। सामगान में स्वरोच्चारण के निर्देश एवं लिपि संकेत होते थे और उन्हीं निर्देशों के अनुसार सामगान होता था। सामगान में द्रुत, लघु, गुरू, प्लुत आदि मात्राओं का महत्वपूर्ण स्थान होता था जो कि वर्तमान में भी प्रयोग में हैं। ऋग्वेद के अष्टम मण्डल प्रगाथ में 92 सूक्त हैं जिनका स्वरूप गेय है, मन्त्रों या सूक्तों का केवल पाठ ही नहीं वरन् स्वर, छन्द एवं लय समन्वित कर उन्हें गाने की परिपाटी थी। सामगान के चार प्रकार ग्राम गेय, अरण्य गेय, उह्य एवं उह थे। ग्राम गेय गान से ही गान्धर्व अथवा मार्ग संगीत एवं मार्ग संगीत से क्रमशः देसी एवं वर्तमान का शास्त्रीय संगीत की पद्धतियों का विकास हुआ। शोध पत्र में वैदिक काल में संगीत के स्वरूप एवं सन्दर्भो का समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जायेगा।

वैदिक काल में संगीत

डॉ. उमा सक्सेना रीडर एवं विभागाध्यक्ष संगीत महिला महाविद्यालय, किदवईनगर, कानपुर

ऋग्वेद संसार का प्राचीनतम ग्रन्थ है। इसमें संगीत सम्बन्धी प्रचुर सामग्री मिलती है। सभी मन्त्र संगीतमय हैं, इस वेद में मृदंग, वीणा, वंशी, डमरू आदि वाद्य-यन्त्रों का वर्णन मिलता है। ऋग्वेद में गीत वाद्य का अस्तित्व भी पाया जाता है।

सामवेद का दूसरा नाम गन्धर्व वेद है। यह ऐसा वेद है जिसमें उद्गाता देवताओं की उपासना के लिये यज्ञ मन्त्रों का उच्चारण विभिन्न वाद्यों की संगत करते हुए गेय रूप में करता था। सामवेद में उदात्त, अनुदात्त एवं स्वरित तीनों प्रकार के स्वर ईश्वर आराधना के स्रोत थे। सामवेद का गायक उद्गाता कहलाता था और वह छन्दोबद्ध गायन करता था। इन्द्र, वायु, अग्नि, वरुण आदि अनेक देवताओं की उपासना करने के लिए मन्त्रों का साधन प्रचलित था। ये मन्त्र संगीतमय एवं गेय होते थे।

यजुर्वेद के सोम भागों में ऋक्, यजु तथा साम तीनों प्रकार के मन्त्रों का अनिवार्य स्थान है। अन्तर यह है कि 'यजु' का केवल उपांशु उच्चारण किया जाता है। ऋक् का पाठ किया जाता है तथा साम का यथाविधि गान किया जाता है। यजुर्वेद संहिता में वीणा, वाण, तूणव, दुन्दुभि, शंख आदि का उल्लेख है। अथर्ववेद में अनेक स्थलों पर सामवेद की विशिष्ट प्रशंसा उपलब्ध होती है। विशिष्ट सामों के स्तोत्रों के अतिरिक्त गाथ, नाराशंसी, रैभी आदि लौकिक गीत प्रकारों का उल्लेख अथर्ववेद में उपलब्ध होता है।

अन्त में हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वैदिक काल में संगीत को समझने की शक्ति सर्वसाधारण में पूर्ण रूप से पाई जाती थी। सुप्रसिद्ध इतिहासकार जार्जबुलर्स ने अपनी पुस्तक "The origin of Universal Devotion" में लिखा है, "इसी युग में इस तथ्य में विश्वास किया गया है कि ईश्वार की सत्ता संगीत से पृथक् नहीं है। यदि ईश्वर को रिझाना है, उस तक पहुँचना चाहते हैं, तो संगीत के माध्यम को पकड़ लें, यही सुन्दर माध्यम आपको पृथ्वी से स्वर्ग के दिव्य प्रांगण में पहुँचा देगा।" अतः वैदिक युग से ही सम्पूर्ण विश्व में संगीतमय उपासना की मौलिक भावना फैली।

वेदों में संगीत विषयक तत्त्व : एक विश्लेषण

डॉ. सुनीता द्विवेदी वरिष्ठ प्रवक्ता, संगीत विभाग जु.दे.गर्ल्स पी.जी. कॉलेज, केनाल रोड, कानपुर

आनन्द स्वरूप ब्रह्म की कलामयी सृष्टि की संवेदनशील प्राणी को गहरी अनुभूति होती है। इस अनुभूति को वह स्वयं भोगकर अपने ही अन्दर समाप्त नहीं हो जाने देता वरन् उसे एक नये रूप में पुनः व्यक्त कर देने के लिये व्यग्र हो उठता है। अनुभूति जितनी गहरी होगी कला भी मन की उतनी ही गहराई से उत्पन्न होकर सामाजिक के मनरंजन का तथा चरमोत्कर्ष पर पहुँचकर आत्मारंजन का हेतु बनेगी। ऐसी ही आत्मरंजक कलाओं में सर्वोपरि संगीत कला है जो कि सामाजिक की विधायक भावनाओं को जन्म देनें में उनके पोषण में सर्वदा समर्थ है।

संगीत कला मुख्यतः प्रयोगात्मक कला है तथापि उसका विज्ञान पक्ष भी उपेक्षणीय नही है। सांगीतिक तत्त्वो पर ऐतिहासिक दृष्टि डालने से ज्ञात होता है कि इनका उद्गम सीधो वेदों में मिलता है। वैदिक युग भारत के सांस्कृतिक इतिहास में प्राचीनतम युग माना जाता है। वैदिक वाङ्मय का गौरव इस बात में है कि संसार की प्राचीनतम् संस्कृतियों में से एक का सम्पूर्ण दिग्दर्शन करते हुए समकालीन अन्य प्राचीन संस्कृतियों के संबंध में अमूल्य सामग्री से उपलब्ध होते हैं।

वैदिक युग के इस विस्तृत खण्ड में तत्कालीन संगीत साधना के अनेकों उल्लेख पाये जाते हैं। वेदों में सांगीतिक तत्त्वावलोकन के लिए वैदिक साहित्य को तीन खण्डों में पृथक् कर विश्लेषण किया जा सकता है:-

सा. ऋक्, अथर्व और यजुस् में संगीत।

रे. सामवेद में संगीत।

ग. ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् तथा शिक्षा ग्रन्थों में संगीत।

भारतीय संगीत मे जो सबसे प्राचीन नियमित और सुसम्बद्ध संगीत मिलता है वह वैदिक काल का है। वेदमन्त्रें के संग्रह का नाम संहिता है। ये संहितायें चार हैं:- ऋक्, यजुस्, साम, अथर्व। यूं तो सभी वेदों में संगीत के तत्त्वों का उल्लेख है किन्तु भारतवर्ष का सारा संगीत शास्त्र संगीत का मूल सामवेद को मानता है। नाट्यशास्त्र एवं संगीत रत्नाकर जैसे संगीत शास्त्र के सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ दोनों यही कहते हैं कि ब्रह्मा ने सामवेद से गीत का संग्रह किया है। गेयगुणों से सम्पन्न होने के कारण ही भगवान् कृष्ण भी यहीं कहते हैः ''वेदानां सामवेदोऽस्मि''। सामवेद में विविध गान, स्वर-संख्या और क्रमशः विस्तारण एवं स्वरूप, गान क्रिया परिवर्तन के 6 प्रकार, समुचित स्वरलिपि, गीत की पाँच भक्तियॉ, छन्द-लय का दार्शनिक आधार आदि का विस्तृत वर्णन मिलताहै।

वेदों के अद्वितीय खण्ड-शिक्षा ग्रन्थों में ग्रामरागों के भेद दिये गये हैं। नारदीय शिक्षा में स्वरों के वर्ण का भी उल्लेख मिलता है तथा गान के गुण-दोषों पर भी पर्याप्त विचार किया गया है जिससे बहुत स्पष्ट है कि कलात्मक सौन्दर्य के आवश्यक तत्त्वों का ज्ञान भी उस समय तक हो चुका था। इस प्रकार वेदों में प्राप्त संगीत विषयक तत्त्व इस बात का प्रमाण है कि सनातनधर्मी आदिग्रन्थ भी संगीत शास्त्र एवं प्रयोगविधि की तर्कपूर्ण विवेचना का उत्कृष्टतम सामर्थ्य रखते हैं।

वैदिक वाङ्मय में वाक्विद्या

प्रो. शारदा शर्मा संस्कृतविभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली

संसार के समस्त पदार्थो का बोध कराने वाली वाक्शक्ति ही है। वैदिक साहित्य में इसके चार रूप परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी निर्धारित किए गये हैं। यद्यपि वाक्शक्ति का सञ्चार सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के समस्त जीवधारियों में होताहै जिसके द्वारा वह अपनी विचाराभिव्यक्ति को प्रकट करते हैं, लेकिन मनुष्य इस समस्त प्राणधारियों में उत्तम है जिसकी वाक्शक्ति इस प्रकार स्पष्टतः स्फुटित होती है जिसके द्वारा अन्य अबोध व्यक्ति को, वाणी जिस विषय, वस्तु या पदार्थ की ओर संकेत करती है, वह उसे अबोध सम्यक् रूप से जान समझ लेता है। यद्यपि मानव शरीर में ज्ञान-विज्ञान की अनेक इन्द्रियाँ विद्यमान हैं पर उनमें यह इन्द्रिय समस्त अनुभूत ज्ञान विज्ञान को लोक में तथा लोक के समक्ष प्रकट करने वाली है। विषय चाहे अन्तः करण का हो अथवा वाह्यजगत् का दोनों का ही अनुभव जन्य ज्ञान के साथ प्रस्तुति करने वाली यह वाणी ही है। इस जगत् के समस्त जीवधारियों में परमात्मा ने सब में जीव-तत्त्व

को ही पिरोया है तथा ज्ञानेन्द्रियों को भी परन्तु मनुष्यों में जो ज्ञानेन्द्रियाँ हैं वो उनसे भिन्न हैं। जैसे यदि मनुष्य वाणी से मूक भी है तो वह अपनी ऊंगली (वाह्य कर्मेन्द्रिय) से संकेत के माध्यम से अथवा पढ़ा लिखा व्यक्ति है तो लिखकर भी अपनी आन्तरिक अनुभूति, संवेदना अथवा विचाराभिव्यक्ति को प्रकट कर सकता है। परन्तु इस विधाता की विलक्षण सृष्टि में आविर्भूत हुए समस्त जीव-जगत् में मनुष्य सर्वश्रेष्ठ संरचना है जिसमें परमात्मा ने वाक्तत्त्व जैसी अमूल्य निधि को ज्ञानेन्द्रिय के रूप में संयोजित किया है। वस्तुत: इस वाक्तत्त्व को ही प्राणतत्त्व की संज्ञा दे दी जाए तो इस में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी, क्योंकि इस ब्राह्माण्ड में जो भी गोचर (प्रत्यक्ष) अगोचर(अप्रत्यक्ष) है उन सब का ज्ञान कराने वाली वाक्विद्या ही है। इसी के द्वारा त्रैलोक्य ही समस्त जड़-चेतन पदार्थों का ज्ञान सम्भव है। तथा संसार की प्रत्येक क्रियाओं के मध्य वाक् एक अभिन्न कड़ी है।

शब्द शास्त्री वैयाकरणों ने इस वाक्तत्त्व के आधार पर ही भाषा के विधिवत् स्वरूप को इसके आविर्भाव की संकल्पना को स्फोट तत्त्व से माना है तथा वर्तमान में जिसे ध्वनि अथवा ध्वनि विज्ञान के नाम से जाना जाता है।

वैदिक ऋषियों ने इस वाक्तत्त्व के विविध स्वरूपों का अपने मन्त्रों में वर्णन किया है। वेदों में वाक्तत्त्व सम्बन्धी अनेक प्रसंग प्राप्त होते हैं। वाक् शब्द ऋग्वेद के कई स्थलों पर प्रयुक्त हुआ है। ऋग्वेद में वाक्तत्त्व को ज्ञान की देवी की संज्ञा से अभिहित किया गया है। ऋग्वेद में वाक्तत्त्व के (वाग्देवी) के तीप रूपों (नामों) का वर्णन मिलता है- सरस्वती, इला भारती (मही) इन तीनों देवियों को आन्तरिक प्रेरणा की प्रदात्री तथा ज्ञान को जागृत करने वाली देवी कहा गया है।

इन देवियों को वाक्तत्त्व की अधिष्ठातृ देवी कहा गया है तथा सूनृत अथवा सत्य की प्रेरक कहा गया है- **चोदयित्री सूनृतानाम्, चेतन्ती सुमतीनाम्। यज्ञं दधे सरस्वती।** 1/3/11 सरस्वती को श्रुति का, इला को दृष्टि और भारती अथवा मही देवी को विवेक (ज्ञान) का प्रतिनिधित्व करने वाली देवी के रूप में बतलाया है।

वेदों में प्रतिपादित वाक् के इन तीनों स्वरूपों का परवर्ती साहित्य में विलय हो गया तथा समस्त को एक ही रूप में जाना जाने लगा।सरस्वती, भारती, गीर्वाणि तथा अन्य अनेक नाम वस्तुत: वागधिष्ठात्री देवी के ही पर्यायवाची हैं। परन्तु वेदों में इनके (तीनों के) अलग-अलग स्वरूपों तथा कार्यों का विवेचन है। ऋग्वेद में वाक्विद्या के चार पदों का भी ऋषियों ने निर्धारण किया है तथा कहा कि उन्हें केवल ब्रह्मज्ञानी जन जानते हैं-

चत्वारि वाक्यपरिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिण:।
गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति।। ऋ. 1/164/45

इस प्रकार वाक्विद्या का विज्ञान वस्तुत: ब्रह्मविज्ञान के ज्ञान की भाँति गूढतत्त्वमय है अत: इसे समझ पाने के लिए कठिन तप और साधना की आवश्यकता है, परन्तु जिस पर वाक्देवी की कृपा हो जाये वह इसे अनायास ही समझ लेता है। प्रस्तुत शोध पत्र में इसी विषय पर पत्रवाचन के समय विस्तृत विचार-विश्लेषण किया जायेगा।

वेद और आर्य

डॉ. रानी अग्रवाल, रीडर, हिन्दी विभाग, जुहारी देवी गर्ल्स पी.जी. कॉलेज, कानपुर
डॉ. अलका द्विवेदी वरिष्ठ प्रवक्ता- हिन्दी विभाग, जुहारी देवी गर्ल्स पी.जी. कॉलेज, कानपुर

वेदों के अनुसार मानवजाति दो भागों में विभक्त है। यह विभाजन प्रवृत्ति के आधार पर है। कुछ मनुष्य बुद्धि और सदाचार की दृष्टि से इतने हीन होते हैं कि वे न सत्पथ का अनुसरण कर पाते हैं और न उसे पहचान ही पाते हैं। इसे प्रवृत्तिगत असमर्थता भी कह सकते हैं। वेद में इन्हें दास कहा गयाहै। कुछ दास ऐसे भी होते हैं जो जानबूझकर सत्पथ का अतिक्रमण करते हैं। ये अपराधी हैं और समाज के लिए घातक भी। दासों के विपरीत आर्य होते हैं। आर्य अर्य का पुत्र है। अर्य का अर्थ है स्वामी। संसार का स्वामी परमेश्वर है। परमेश्वर का पुत्र कहलाने वाला आर्य सत्पथ का अनुगामी होता है। उसमें इतनी बुद्धि और सामर्थ्य होताहै कि वह सत् को जान सके और उस पर चल सके। आर्य भले पुरुष को कहते हैं। दास उत्तेजनाओं के वशीभूत होता है। आर्य उत्तेजनाओं पर शासन करता है। वेद के निम्नांकित मन्त्र में आर्य और दास का भेद इस प्रकार स्पष्ट किया गया है-

विजानीह्यार्यान् ये च दस्यवो बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान्।

शाकी भव यजमानस्य चोदिता विश्वताते सधमादेषु चाकन।। ऋ. 1/51/8

शासक का कर्तव्य है कि वह आर्यों की, नियम पालन करने वालों की रक्षा करे तथा दस्युओं को नियम भंग करने से रोके। दास को वश में करने के लिए नियन्ता को शक्ति की आवश्यकता है। दासों को आर्य बनाना और मनुष्यों को सुशील संतान वाला बनाना तभी संभव है जब हम स्वयं स्वस्ति से सम्पन्न हों।

वैदिक कालीन वाद्य

डॉ. सुश्री सरिता निगम रीडर एवं अध्यक्ष, संगीत, जे.डी.वी.एम. पी.जी. कालेज, कानपुर

'गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीतमुच्यते'

संगीत रत्नाकर के अनुसार संगीत का द्वितीय महत्वपूर्ण घटक 'वाद्य है' इसके अन्तर्गत वाद्यों का निर्माण, वाद्यों की वाद्यन विधि एवं वाद्यों के प्रकार आदि का विवेचन आता है। वैदिक काल में कौन से वाद्य प्रचलित थे, उनकी निर्माण विधि क्या थी ? उनका विभाजन किस प्रकार का था? जब इन बिन्दुओं पर विचारार्थ वैदिक वाङ्मय का अध्ययन करते हैं जिनके आधार पर उस काल में प्रचलित वाद्यों की जानकारी प्राप्त की जा सकती है। यहाँ हमने वैदिक काल में प्रचलित वाद्यों का विवेचन करने का प्रयास किया है।

पंचविंश ब्राह्मण में यह कहा गया है कि वाणी देवताओं के पास थी। देवताओं के पास से वह वाणी वनस्पतियों में प्रविष्ट हो गयी। वनस्पतियों ने उस वाणी को चार भागों में विभाजित कर दिया।

1 वीणा 2- दुन्दुभि 3- वेणु 4- भेरी

इसलिये वनस्पतियों की ध्वनि (काष्ठ निर्मित वाद्यों के रूप में) ऊँची तथा मधुर है क्योंकि यह देवताओं की ध्वनि है। वैदिक युग में प्रचलित चारों तरह के वाद्य प्रचलित थे जो कि इस प्रकार हैं

1 **तंत्री वाद्य:**

इस वर्ग का प्रमुख वाद्य 'वीणा' है। वैदिक काल में वीणाओं के कई नाम प्राप्त होते हैं, जैसै वाण, वीणा, कर्करि, कांडवीणा, अपघाटिला, गोधा आदि।

2 **अवनद्ध वाद्य:**

वैदिक काल में अवनद्ध वाद्यों के अर्न्तगत सवार्धिक प्रचलित वाद्य दुन्दभि था। ऋग्वेद में इसका स्पष्ट उल्लेख किया गया है।

3 **सुषिर वाद्य:-**

सुषिर वाद्यों के अर्न्तगत वेणु का उल्लेख प्राप्त होता है। पूर्व वैदिक काल में 'वेणु' बहुधा बाँस के लिये प्रयोग किया गया है।

4 **घन वाद्य:-**

धातु या लकड़ी का वाद्य जो आघात से बजता है 'घन वाद्य' कहलाता है। घन वाद्यों में करताल मंजीरा आदि आते हैं।

इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि वैदिक काल में वाद्यों के विभिन्न प्रकार प्रचलित थे। इस दिशा में और शोध आपेक्षित है जो वैदिक साहित्य के गहन तथा सूक्ष्म अध्ययन से ही सम्भव है।

ऋग्वेद में संगीत

स्मिता पुरोहित शोधच्छात्रा

ऋग्वैदिक काल में मनोरंजन हेतु विभिन्न साधानों का प्रयोग किया जाता रहा। घुड़दौड़, शिकार, रथ दौड़ के अतिरिक्त इस युग में रचनात्मक कला के अन्तर्गत संगीत अर्थात् नृत्य गीत वाद्य तीनों विधाओं का पर्याप्त परिचय प्राप्त होता है।

'स्वर'

उदात्त अनुदात्त स्वरित स्वर-धर्मों के अतिरिक्त इस समय भी 7 स्वरों के प्रयोग का उल्लेख- क्रुष्ट प्रथम, द्वितीय, तृतीय,

चतुर्थ, मन्द्र व अतिस्वार्य के रूप में प्राप्त होता है।

'वाणस्य सप्तधतुरिज्जनः (ऋग्वेद - 10.32.4)

सायण ने 'सप्तधातु' का अर्थ सात स्वरों से लिया तथा 'वाण' का वाद्य से।

'गायन'

ऋग्वेद में गायक के लिए 'गाथिन्' शब्द का प्रयोग प्राप्त होता है

'इन्द्रभिद्गाथितो वृहदिन्द्रकर्मेभिरर्किणः, इन्द्रंवाणीरनूजत - ऋग्वेद 1.7.1।

'वादन'

ऋग्वैदिक जनसाधारण चारों प्रकार के वाद्यों तत् (तार वाले), अवन (चमड़े से मढ़े), घन (आघात) व सुषिर - (छेद वाले, वायु से बजने) वाद्यों से परिचित थे। यथा -................ धमन्तों वाणं मरूतः सुदानवो मदे सोमस्य रण्यानि चक्रिरे ....वाण धामन्तों अर्थात् वाण बजाते हुए ....। 'वाण' शब्द का अर्थ सायण भाज्य में शततन्त्री वीणा बताया। .... घुमत्तमु वद जयतामिव दुन्दुभिः। (ऋ. 1.28.5) 'दुन्दुभि' अवनद्ध वाद्य है - 'आघाट' एक घन वाद्य है जिसका उल्लेख ऋ. (10.46.2) में है। दो सुजिर वाद्यों - बाकुर व नाली का भी उल्लेख प्राप्त होता है।

'नृत्य'

ऋग्वेद में ताल-लय के साथ संचालन का परिचय प्राप्त होता है। नर्तक के लिए 'नृत' व नर्तकी के लिए 'नृत्' शब्द का प्रयोग होता था। विभिन्न अवसरों पर नृत्य करने की परम्परा इस समय थी।

वाद्य, कण्ठ संगीत तथा नृत्य वर्तमान समय के समान ऋग्वैदिक समाज में भी समान रूप से लोकप्रिय था।

नचिकेतोपाख्यान : 'कठोपनिषद्' से कुँवरनारायणकृत 'आत्मजयी' तक

प्रो. नीरजा टण्डन हिन्दीविभागाध्यक्ष, डी.एस.बी. परिसर, कुमाऊँ वि.वि., नैनीताल

वैदिक वाङ्मय अनेकानेक आख्यानों से समृद्ध रहा है। ऋग्वेद से आरम्भ हुई आख्यान परम्परा में अनेक ऐसे आख्यान हैं, जिन्हें उत्तरवर्ती साहित्यकारों ने नई अर्थवत्ता से सम्पन्न करके, उन्हें युगानुरूप बनाकर प्रस्तुत किया है। ऐसे आख्यानों में नचिकेतोपाख्यान का भी जिक्र किया जासकता है। नचिकेतोपाख्यान मूलतः कठोपनिषद् में वर्णित आख्यान है। इस आख्यान में नचिकेता द्वारा अपने पिता उद्दालक द्वारा वृद्ध गायों के दान करते देखकर बार-बार यह पूछा गया कि 'आप मुझे किसे दान में देंगे?' पुत्र के प्रश्न से खीझे उद्दालक ने उत्तर में कहा कि 'तुम्हें यमराज को दूँगा।' पिता के कथन को सत्य करने के लिए नचिकेता यमलोक जाकर यमराज को प्रसन्न करके उससे आत्मज्ञान का उपदेश सुनकर जीवन्मुक्त हो जाता है। कठोपनिषद् का यह आख्यान तैत्तिरीयोपनिषद् तथा महाभारत में भी मिलता है। कालक्रमानुसार यह आख्यान परिवर्तित होता रहा है और हिन्दी साहित्य में इस आख्यान को कुँवरनारायण ने 'आत्मजयी' नामक कृति में प्रस्तुत किया है। यह पौराणिक आख्यान यहाँ अस्तित्ववादी दर्शन के आधार पर नई अर्थवर्त्ता से सम्पन्न होकर प्रस्तुत किया गयाहै। इस आख्यान के मूल में नचिकेता की कथा सुनाना रचनाकारों का लक्ष्य नहीं है अपितु उनका लक्ष्य उस जीवनदर्शन को समझाना है, जो जीवन और जगत् से जुड़े तमाम प्रश्नों को सुलझाने का प्रयास करता है। प्रस्तुत शोधलेख द्वारा 'कठोपनिषद्' तथा 'आत्मजयी' में वर्णित इस जीवनदर्शन को समझने का प्रयास किया गया है, जिसका मूलमन्त्र है-

यदा सर्वे प्रभिद्यन्ते हृदयस्येह ग्रन्थयः। अथ मर्त्योऽमृतो भवत्येतावद्धयनुशासनम्।। (कठो. 2/2/15)

वैदिक वाङ्मय में सूर्य देवता

प्रा. गिरा टी. अटालीवाला पालडी, अहमदाबाद, गुजरात

वेद भारतीय धर्म और संस्कृति के आदिस्रोत हैं। वैदिक मन्त्रों में देवताओं के स्थूल-सूक्ष्म रूपों की मनोरम कल्पना है। सूर्य इस जगत् में ऊर्जा के सबसे महान् शक्तिसम्पन्न स्रोत माने जाते हैं, इसी लिए विश्व के अनेक भागों में वे देवता के रूप में पूजे जाते

हैं। ऋग्वैदिक ऋषियों द्वारा परिकल्पित देवताओं में से सूर्यदेवता की स्तुति युग युगान्तर तक प्रचलित रही है। भारत में सभी कालों और सभी वर्गों के लोगों ने सौर-मण्डल की भव्यता और सुन्दरता की ओर आकृष्ट होकर प्राणी-जीवन की सृष्टि और अवस्थिति के लिए सूर्य की महत्ता को स्वीकार कर उन्हें एक महान् देवता पर पर सुप्रतिष्ठित किया है। सूर्य आकाशस्थित भौतिक ज्योतिष्पिण्ड के देवता हैं। ऋक्संहिता में 'सूर्य' एक महान् और व्यापक देवता का नाम है और विविध रूपों के वाचक है। ऋग्वेद में सूर्य को सभी ज्योतियों में उत्तम ज्योति कहा गया है, क्योंकि वे सभी ज्योतियों के प्रकाश कारण हैं। सूर्य को चक्षु के रूप में मानना वैदिक ऋषियों के वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर आधृत है। ऋग्वेद के स्तोता ने 'इष्टप्रदाता' के रूप में सूर्यदेवता के प्रभुत्व का विविध चित्रण किया है। आज भी रोग शान्ति के लिए ऋग्वेद के सूर्यमन्त्रों की उपासना की जाती है।

यजुर्वेद की संहिता के मन्त्रों में सविता 'प्रेरकों के ईश्वर' हैं। शुक्ल यजुर्वेद संहिता में गायत्री मन्त्र सविता की प्रेरणा की प्रसिद्धि का भी द्योतक है। अथर्ववेदानुसार सूर्य आरोग्य देते हैं और शरीर के सब दोष बाहर निकाल देते हैं। 'विवस्वान्' उपासनीय हैं, क्योंकि मृत्यु से बचाते हैं। अथर्ववेद में भी सात सूक्तों में आदित्य नाम से सूर्यदेवता की स्तुति की गई है। संक्षेप में प्रस्तुत शोधलेख में वैदिक वाङ्मय में सूर्यदेवता के बारे में सविस्तार प्रकाश डाला गया है।

विजयवल्लभचरितम् महाकाव्य में वेद-तत्त्व विवेचन

मोहनलाल खटीक राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

विजयवल्लभचरितम् महाकाव्य प्रो. सुभाषवेदालङ्कार (पूर्वाचार्य एवं संस्कृत-विभागाध्यक्ष) द्वारा रचित पन्द्रह सर्गात्मक आधुनिक महाकाव्य है। यह काव्य जैन आचार्य विजयवल्लभसूरि के जीवन-चरित्र को लक्ष्य बनाकर लिखा गया है। काव्य के माध्यम से कवि ने वेद संहिताओं में विद्यमान अनेक तत्त्वों का विवेचन किया है। वेद में एकेश्वरवाद का प्रतिपादन है- **एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति।** यह मन्त्र इसका मूल सूत्र है।

विजयवल्लभचरितम् महाकाव्य में एकेश्वरवाद के स्वरूप का पद पद पर विवेचन किया गया है। महाकाव्य के द्वितीय सर्ग के प्रथम पद्य में ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, शिव, शंकर, जगत्रक्षक, पालक एवं निराकार कहा गया है। तृतीय सर्ग में उस परमेश्वर को सभी का आश्रय, सर्वज्ञ, सर्वकर्मद्रष्टा बताया गया है।(3.16) इसी सर्ग के दो पद्यों में कहा गया है कि ईश्वर एक है उसके नाम अनेक हैं

ईश्वर एक एवास्ति तन्नामानि बहूनि च।(3.30)

नवम सर्ग में परमेश्वर के स्वरूप पर विस्तार से प्रकाश डालते हुए उसको नित्य, अजर-अमर, व्यापक अजन्मा, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, सर्वाधार, अनन्त, सर्वेश्वर, अनादि, निर्विकार, अभय, दयालु एवं सभी प्रजाओं का पालनक कहा गया है।(9.58, 59, 60)

महाकाव्य के तृतीय सर्ग में वेदों का महत्त्व बताते हुए उन्हें सभी धर्मों और ज्ञान का मूल स्रोत कहा गया है।'3.28) उन वेदों से ही आध्यात्म गंगा प्रवाहित है। (3.33) ईश्वर ही वेद ज्ञान को देने वाला बताया गया है।

वेदों में 'ध्रुवेण धर्मणा' आदि शब्दों के द्वारा शाश्वत सिद्धान्तों को धर्म कहा गयाहै, उनमें भी अहिंसा(4.11) यम नियम का पालन(5.11), सन्तोष(5.3), ब्रह्मचर्य पालन(6.34, 35), तप(6.45 ,46), परोपकार(9.15), दान(7.11), सदाचार(11.1), धृति, क्षमा आदि जीवन धारक तत्त्वों को धर्म कहा गया है। अथर्ववेद भूमिसूक्त के प्रथम मन्त्र में सत्य, ऋत(कर्मशक्ति), दीक्षा(संकल्पशक्ति), उग्र(तेज) तप, ब्रह्म(स्वाध्याय) और यज्ञ ये जीवन-धारक तत्त्व बताये गये हैं, इन्हीं शाश्वत तत्त्वों का उल्लेख महाकाव्य के एकादश सर्ग के 56 58 पद्यों में किया गया है, इनके अतिरिक्त वेद में जिन माता पिता, गुरु, आचार्य, अतिथि एवं परमेश्वर इन पांच देवताओं की पूजा का विधान है, उनका विस्तृत विवरण 'विजयवल्लभचरितम्' महाकाव्य के नवम सर्ग में किय गया है। वेद में कर्म एवं दान की महिमा गायी गई है एवं नारी के महत्त्व को उजागर किया गया है। मातृभूमि के प्रति जो भक्ति(माताभूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः) वेदों में दर्शित है वह भक्ति इस महाकाव्य में दृष्टिगोचर होती है। इन सभी का दिग्दर्शन विस्तार से 11.45-46, 9.43-44, 13.48-49 आदि पद्यों में विवेचित है। उपर्युक्त अनेक वेद प्रतिपादित तत्त्वों का विवेचन 'विजयवल्लभचरितम्' महाकाव्य के आधार पर इस शोध पत्र में प्रस्तुत किया गया है।

जन्द-अवेस्ता पर वैदिक प्रभाव

डॉ. दिनेशचन्द्र शास्त्री वेद विभाग, गु.कां.वि.वि. हरिद्वार
डॉ. अमित कुमार, श्र.वै.शो.संस्थान, गु.कां.वि.वि. हरिद्वार

मानव जीवन को सर्वप्रथम प्राप्त होने वाली प्राचीनतम ज्ञाननिधि 'वेद' है। इस तथ्य के आलोक में 'विश्ववारा प्रथमा संस्कृति- अर्थात् धरा पर विकसित होने वाली प्रथम संस्कृति वैदिक है।' इस स्वयंसिद्ध सिद्धान्त को भी किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। कालान्तर में वेद पठन पाठन में आई शिथिलता के कारण वेदाधारित धर्माचरण में प्रमाद दोष अवश्यंभावी था। फलत: धर्म के नये नये व्याख्याकार हुए। उनकी धर्म-व्याख्या अथवा समय-समय के साथ नया नाम लेकर एक धर्म विशेष के रूप में प्रचलित हो गई। चूंकि 'वेदोऽखिलों धर्ममूलम्' से धर्म का मूल वेद है। अत: धर्म की नवीन व्याख्याओं का वैदिक छाया से मुक्त होना सम्भव न था। इसी कारण धर्म की वे सभी नूतन व्याख्याएँ, धर्मग्रन्थ व उनके व्याख्याता सन्त अपने धर्मतत्त्व के लिए वेद के ऋणी हैं।

इसी कड़ी में जिस सन्त ने सर्वप्रथम यह कार्य किया। उनका नाम जरथ्रुस्त था। उनका धार्मिकमत पारसी(जरथ्रुस्त्री) और उनकी व्याख्या जन्द अवेस्ता में आबद्ध है। इस ग्रन्थ में वैदिक शब्द जैसे 'छन्द' अर्थात् जन्द के रूप में और ईश्वर का वैदिक नाम असुर व महद् अहुर मज्दा के रूप में प्राप्त होते हैं। इस ग्रन्थ में वेद मन्त्रांश भी बहुतायत रूप में प्राप्त होते हैं यथा-

आपो याचामि(ऋ. 10.9.5), जन्द अवेस्ता के यस्त 65.11 में **आपो..........यासामि** के रूप में प्राप्त होता है। इसी प्रकार गाथा(जन्द अवेस्ता) 37.1 का यह अंश **इथा आत् यजमहदे अहुरम् मज्दामं यँ गामंचा...........संस्कृत में इत्था अत्र यजामहे असुरम् महान्तम् य: गाम् च** के रूप में परिवर्तित होकर वैदिक संस्कृत भाषा विन्यास के समान स्पष्ट दिखता है। यजु. 26.2 और यस्त्र (जन्द-अवेस्ता) 45.4, 5 में मनुष्य को ईश्वर द्वारा दिया गया सर्वोत्तम उपहार वेद(ज्ञान) है जैसी दार्शनिक समानता के साथ-साथ ईश्वर का मनुष्य से सम्बन्ध वर्णित करता वेद मन्त्र **'स न पिता जनिता'** अथर्ववेद 2.1.3 गाथा- 2.2.3 **'कस्ना जांथा पता**- अर्थात् जो सृष्टिकर्ता और रक्षक है' को इसी विचारधारा सम्प्रेषण से पोषित करता स्पष्ट प्रतीत होता है। प्रस्तुत शोधपत्र में जन्द-अवेस्ता से प्राप्त वैदिक सामग्री द्वारा जन्द-अवेस्ता पर प्रत्यक्ष रूप से पड़े वैदिक प्रभाव का विवेचन किया जाएगा।

आर्यों के मूल निवास स्थान की समस्या

डॉ. राजेन्द्र कैड़ा हिन्दी विभाग, एस.एस.जे. कैम्पस, अल्मोड़ा
डा. इला साह, एस.एस.जे. कैम्पस, अल्मोड़ा कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

भारतीय समाज ही नहीं अपितु विश्व स्तर पर किसी भी समाज, संस्कृति, सभ्यता के अध्ययन के मूल स्रोत की खोज का एक सिरा वैदिक साहित्य, संस्कृति एवं सभ्यता से जुड़ा हुआ है। इस वाक्य के पीछे निरी भारत व्याकुलता की प्रेरणा न होकर व्यवहारिक रूप से मानवीय सभ्यता के क्रमिक विकास की अन्त: प्रक्रिया का दबाव है। मानवीय सभ्यता के अध्ययन के एकदम आरम्भिक स्तर पर भाषाओं के अध्ययन के आधार पर यह चिन्हित कर लिया गया था कि विभिन्न मानवीय सभ्यताओं के बीच बेहद मजबूत संबंध रहा होगा। भाषिक तत्वों की समानता के आधार पर तथा साथ ही सामाजिक स्तर की भी अनेक समानताओं के आधार पर एक सभ्यता का दूसरी सभ्यता से सम्पर्क एवं संबंध स्पष्टत: परिलक्षित किया जा सकता है। समानता के इन तत्वों ने आर्यो के मूल निवास की ऐतिहासिक समस्या को बेहद महत्वपूर्ण एवं निर्णायक बना दिया। इस ऐतिहासिक समस्या ने न केवल अध्ययन के स्तर पर शोध को जटिल बना दिया अपितु इसकी महत्ता ने शोध के निष्कर्षो के आधार पर राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक शक्तियों को भी वैश्विक स्तर पर प्रभावित किया। भारतीय समाज, संस्कृति एवं सभ्यता के सामाजिक एवं साहित्यिक अध्येता होने के नाते हम प्रस्तुत शोध निबंध में आर्यो के मूल निवास स्थान की समस्या के दो ध्रुवांतों का विश्लेषण करने का प्रयत्न करेंगे।

हमने देखा है कि आर्यों के मूल स्थान की व्याख्या करते हुए एक तरफ जहाँ इस प्रश्न का उत्तर साम्राज्यवादी विचारधारा को पुष्ट करने के संकल्प से प्रेरित है वहीं दूसरी तरफ इसके उत्तर के पीछे राष्ट्रवादी एवं कभी-कभी अंध राष्ट्रवादी दबाव भी कार्य

करते हैं। इस प्रश्न की महत्ता से तटस्थ नहीं रहा जा सकता। सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, साहित्यिक, ऐतिहासिक तथा भाषिक स्तर के सभी महत्वपूर्ण निष्कर्ष आर्यों के मूल निवास स्थान के उत्तर से प्रभावित होते हैं। प्रस्तुत शोध निबंध का उद्देश्य विचारात्मक स्तर पर आर्यों के मूल निवास स्थान के प्रश्न के दो ध्रुवांतो के विश्लेषण से चालित है। यह शोध निबंध एक ऐसी प्रकिया है जो समाप्त या सिद्ध होने में अपना महत्व नहीं रखती अपितु मानवीय ज्ञान-पिपासा के अनवरत यात्राक्रम की सहयात्री मात्र बनने का संकल्प करती है।

श्री गुरुग्रन्थ साहिब में 'वेद' की अवधारणा

डॉ. पवन कुमार गुरुनानकदेव वि.वि. अमृतसर, पंजाब

वेद विश्व का प्राचीनतम वाङ्मय है। भारतीय सनातन परम्परा अनुसार वेद अपौरुषेय एवं परमात्मा की लोकहिताय रचना है। वेद की समस्त शिक्षाएँ सार्वभौम हैं। 'वेद' मानव मात्र को हिन्दू, सिक्ख, मुसलमान, ईसाई, बौद्ध, जैन आदि कुछ भी बनने के लिये नहीं कहते। वेद की आज्ञा है- 'मनुर्भव।' अर्थात् मनुष्य बनो। यही कारण है कि सिक्ख धर्म के पावन ग्रन्थ 'श्री गुरु ग्रन्थ साहिब' में वेद की महिमा का वर्णन करते हुए कहा गया है-

बेद कतेब कहहु मत झूठे झूठा जो न बिचारे।।(गुरुग्रन्थसाहिब पृ. 1350)

गुरुवाणी के वाणीकारों की वेदों के प्रति अपार श्रद्धा है। यद्यपि गुरुवाणी में 'वेद' शब्द 42 बार आया है तथापि बेद शब्द का प्रयोग अत्यधिक है। सिक्ख धर्म अपनी धर्म पुस्तक में पूर्णत: भारतीय हैं और राष्ट्रिय दृष्टिकोण को धारण करने वाला है। श्री गुरुग्रन्थ साहिब अपने आप में एक वेद है।' जब तक किसी मनुष्य को भारतीय धर्म ग्रन्थों का सम्यक् ज्ञान नहीं, जो हमारी परम्परागत निधि है, तब तक वह इस वेद (गुरुग्रन्थ साहिब) को नहीं समझ सकेगा। यह महान् ग्रन्थ उसी प्राचीन सनातन ज्ञान से आविर्भूत हुआ है तथा उसी परम्परा को विकास प्रदान करता है। इस तरह यह नयी कृति भी है, परन्तु सर्वथा नयी नहीं है, क्योंकि इसकी जड़ वेद में है। भारतीय ब्रह्मविद्या का सम्यक् ज्ञान ही किसी मनुष्य को श्री गुरु ग्रन्थ साहिब की वाणी का बोध प्राप्त करने के लिये सहायक सिद्ध हो सकता है। इसके बिना इस ग्रन्थ के रहस्यमय भेदों को समझना कठिन है।' सिक्ख गुरु वेद के प्रति अपनी श्रद्धा का जयघोष करते हुए कहते हैं कि-

बेद सासत्र जन पुकारहि सुनै नाही डोरा।।

निपटि बाजी हारि मुका पछुताइओ मनि भोरा।।(गुरु ग्रन्थ साहिब, पृ. 408)

वेद शास्त्र एवं सन्त जन आदि पुकार-पुकार कर मानव को सत्य मार्ग पर चलने को कहते हैं, परन्तु माया के नशे में बहरा हो चुका मनुष्य उन्हें नहीं सुनता। जब पूर्णत: जीवन-संग्राम हारकर अन्त समय पर आ पहुंचा तब मूर्ख अपने मन में पछताता है। श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में 'वेद' के अन्य जिन पक्षों को उद्धृत किया है, उनका वर्णन अपने शोध पत्र में करूँगा।

ऋग्वेद में वर्णित सङ्गीतकला

डॉ0 अनीता सोनकर रीडर-संस्कृत विभाग, वी.एस.एस.डी. कॉलेज, कानपुर

सङ्गीतकला में तीन-कलाएँ समाहित की गई हैं-गायनकला, वादनकला और नृत्यकला। आत्मप्रकटन गीतिकाव्य का चरमलक्ष्य है। ऋग्वेद में स्वरों के लिए 'वाणी' शब्द का प्रयोग होता था। सप्त-स्वरों में अग्नि व्याप्त है, अत: उसे सप्तवाणियों का गर्भ कहा गया है। जो गायन में कुशल हैं, उन्हें गायक कहा गया। जो छन्द बहुत गाया जाता था, उसे गायत्री नाम दिया गया। एक मन्त्र में प्राप्त होता है कि उद्गाता के समान है पक्षी! तुम साम-गायन करते हो। साम एक प्रकार का गीत है, उसे जो गाता है, उसे 'उद्गाता' कहा गया है (ऋग्वेद-2/43/2)। गीत के लिए 'गातु' और 'गाथा' शब्दों का व्यवहार होता था। गाथाएँ गाने वाले को 'गाथिन' और प्रशस्तियाँ गायन करने वाले को 'उक्थिन' तथा प्रशस्ति को 'उक्थ' कहा गया।

ऋग्वेद में तीन प्रकार के वाद्ययन्त्रों का विवरण प्राप्त होता है-आघात से बजने वाले ढोल, तार से बने हुए, यथा-वीणा और वायुसञ्चार से बजने वाले, यथा-बाँसुरी। बकुर नामक वाद्य भी था।

ऋग्वेद में नृत्य के भी प्रमाण मिलते हैं। उषा की तुलना नर्तकी से की गई है। ऋग्वेद में एकस्थान पर इन्द्र को नृतो, अर्थात् नाचने वाला कहकर सम्बोधित किया गया है। इसी प्रकार अश्विनी देव भी नृतू; अर्थात् नृत्य करने वाले हैं। एक मन्त्र में प्राप्त होता है नृत्य धरा पर ही नहीं, वरन् प्रकृति में अन्यत्र भी हो रहा है। उत्तमरीति से गिरने वाले पाषाण अन्तरिक्ष में सतत शब्द करते हैं। मृगों के स्थान पर गमनशील कृष्णसार मृगों के समान सूर्य की श्वेतकिरण के सदृश ये जलबिन्दु नृत्य कर रहे हैं-

सुपर्णा वाचमक्रतोपं द्यत्याखरे कृष्णा दूषिरा अनर्तिषुः।

न्यङ्नि यन्त्युपरस्य निष्कृतं पुरू रेतो दधिरे सूर्यश्वितः॥ (ऋग्वेद १०/९४/०५)

अतः ऋग्वेद में सङ्गीतकला से सम्बन्धित अनेक मन्त्र प्राप्त होते हैं; जिससे ज्ञात होता है कि तत्कालीन मानव की रुचि सङ्गीत में थी।

ऋग्वैदिक ऋचाओं का गूढ़ार्थ और कृतयुग का आगमन

डॉ. कला जोशी प्राध्यापक(हिन्दी) शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मोती तबेला इन्दौर, म.प्र.

इस शोधपत्र में ऋग्वैदिक ऋचाओं की सूत्र शब्दावली के गूढ़ार्थ के आधार पर मानवीय मूल्यों की पड़ताल की गई है। आज संचारक्रांति ने मोबाइल, इंटरनेट के द्वारा नई युवा पीढ़ी को नई दिशा दी है, क्या यह सृष्टि चक्र के विस्तार का चतुर्थ चरण नहीं है? इसके द्वारा इस शोध पत्र में 'कृतयुग के आगमन' की संभावना तलाशी गई है।

इतिहास-पुराण के द्वारा वैदिक तथ्यों का प्रकाशन

डॉ० श्रीकृष्ण त्रिपाठी, वरिष्ठ प्रवक्ता, वैदिक दर्शन विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

वैदिक वाङ्मय का क्षेत्र अति विशाल है। इसके अन्तर्गत संहिताएँ, ब्राह्मण, आरण्यक, सूत्र-साहित्य एवं उपनिषदों का विशाल भण्डार समाहित होता है। वैदिक साहित्य की भाषा, जब हम उपनिषद-साहित्य से क्रमशः ऋग्वेद की ओर बढ़ते हैं, तो कठिन से कठिनतर एवं कठिनतम होती जाती है। वैदिक-साहित्य के इसी भाषा-काठिन्य को समाहित करने के लिए ही वैदिक-व्याकरण, निरुक्त आदि का निर्माण हुआ। किन्तु फिर भी वैदिक भाषा जन-सामान्य के लिए दुर्बोध ही बनी रही। भाषा की दुष्प्रवेशता के अरण्य में वैदिक कथाओं की संरचना हुई। इन कथाओं के स्वारस्य को समझना सबके बस की बात न थी। इस परिस्थिति का, भाषा की इस विषमता का समाधान प्रस्तुत करने का पौराणिक वाङ्मय ने संकल्प किया। फलतः वैदिक प्रतीकों एवं आख्यानों का पौराणिक उपबृंहण किया गया। इस उपबृंहण के सत्प्रयास ने वेद की दुष्प्रवेशता को समाप्त कर वैदिक स्वारस्य को सबके लिये प्रस्तुत कर दिया। यह प्रस्तुतिकरण कहीं रूपकों के माध्यम से तो कहीं आख्यान, उपाख्यान एवं गाथाओं के माध्यम से किया गया। इससे सामान्य जन के मनोरञ्जन के साथ ही ज्ञानसंवर्द्धन का महान् परिणाम सामने आया। साधारण जनता भी पुराणों के माध्यम से वेदों के जटिल रहस्यों को समझने में समर्थ हुई।

वेद में प्रदर्शित जिन प्रतीकों की पौराणिक व्याख्या करके सुगमता प्रदान की गयी है, उसका एक निदर्शन प्रस्तुत किया जा रहा है अहल्यायै जारः- यह कथन शतपथ ब्राह्मण (3/3/4/18), तैत्तिरीयसंहिता (1/12/4) में उपलब्ध होता है। अथर्ववेद (11/2/17) के एक मन्त्र में उपलब्ध होता है कि पूर्व दिशा का स्वामी इन्द्र सहस्राक्ष हो जाने से अतिपश्य अर्थात् क्रान्तदर्शी हुआ। इस कथन ,का विस्तार देवीभागवत (1/5/46) तथा ब्रह्मवैवर्तपुराण के कृष्णजन्म खण्ड (61/44-46) में उपलब्ध होता है। एतदतिरिक्त 'तारापतिश्चन्द्रमा' इत्यादि अनेक विषयों का विवेचन प्रस्तावित शोध-पत्र में किया जायेगा।

वेदों की समकालीन प्रासंगिकता

डॉ0 नरेन्द्र देवसंस्कृति विश्वविद्यालय, शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार

वेदों से ज्ञान के द्वारा भूत, वर्तमान और भविष्य हमेशा आलेकित होता रहा था, होता रहा है और होता रहेगा क्योंकि वेद मानव जीवन के अंग हैं। इसमें संस्कारों एवं यज्ञीय कर्मकाण्डों का संबंध अद्वितीय है। वेदों को अपौरुषेय, धर्म, संस्कृति एवं सभ्यता का भव्य प्रसाद कहा जाता है। मनुष्य के आचार-विचार, रहन-सहन तथा धर्म-कर्म को समझने के लिए वेदों को जानना आवश्यक है। वेद शाश्वत यथार्थ ज्ञान का समुच्चय हैं। वेदों की ऋचाओं में समस्त जीवधारियों-घटकों के कल्याण एवं सुख-शांति की भावना समाहित है। मनुस्मृति में ज्ञान का आधार वेद को बताया गया है भूतं भव्यं भविष्यञ्च सर्वं वेदात् प्रसिध्यति-(मनु० 12-17।)

वेदों का दिव्य संदेश व्यक्ति के गुण, कर्म, स्वभाव की उत्कृष्टता और लोकहित के लिए अपने जीवन का समर्पण ही है। इसमें ईश्वर के अस्तित्व, उपासना और श्रेष्ठ पुरुषों के दायित्वों पर प्रकाश डाला गया है। आत्मबल सम्पन्न मनुष्य को जीवन लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सतत संघर्ष करना होता है। समझदारी, जिम्मेदारी, बहादुरी और ईमानदारी को जीवन में धारण करने के लिए आत्मशक्ति उपयोगी होती है। इस उद्देश्य की पूर्ति में वेद मंत्र सहायक होते हैं। आत्मोन्नति के लिए उत्कृष्ट चरित्र की आवश्यकता सर्वप्रथम होती है। वेद मंत्र जीवन के श्रेष्ठ गुणों को प्रदर्शित करते हैं। गृहस्थ आश्रम पूरी समाज व्यवस्था की रीढ़ है। इसकी उत्कृष्टता पर समाज में सुख, शांति तथा समृद्धि होती है। सुखी परिवार, सुगढ़ एवं सुसंस्कृत नारी तथा उत्तम स्वास्थ्य को दर्शाते मंत्रों की प्रेरणा वेदों में है। इनका स्वाध्याय हमारे जीवन में आशा एवं उल्लास की वृद्धि करता है। यह व्याकुल एवं भ्रमित मन को सचेत करके उचित मार्गदर्शन भी देते हैं। इनमें आध्यात्मिक सिद्धांत, विद्या, कला और व्यवहार संबंधी ज्ञान का समावेश है। वेदों के ज्ञान की विशेषता सार्वभौमिकता है।

वेदों में बुद्धिसंगत एवं विज्ञानसम्मत प्रतिपादन मिलता है। इस सृजनशील रचना से पूरी मानव संस्कृति और उसकी बौद्धिक, आत्मिक तथा आध्यात्मिक सम्पदा गौरवान्वित हुई है। इसीलिए वेदों का प्रभाव तीनों कालों में हमेशा रहा है। चारों वेदों में जनमानस के अभिनव निर्माण की प्रेरणा समाहित है जिसके श्रवण-पठन से वर्तमान कलयुगी वातावरण को सतयुगी स्वरूप में परिवर्तन किया जा सकता है।

वेदों में कला

डॉ0 अंजुली बिसारिया रीडर, चित्रकला विभाग, गुरु नानक गर्ल्स पी० जी० कॉलेज, कानपुर

यद्येक वृषोऽसि सृजारसोऽसि।
चर्तुवृषो..........पञ्चवृषोऽसि..........षड्वृषोऽसि..........
सप्तवृषोऽसि..............अष्टवृषोऽसि............नववृषोऽसि
सृजारसोऽसि। यद्येकादशोऽसि सोपोदकोऽसि............ अथर्ववेद ५, १६, २-११

"यदि तुममें एक गुना, दो गुना, तीन गुना, चार गुना, पांच गुना, छः गुना, सात गुना, आठ गुना, नव गुना एवं दस गुना या असंख्य तक सृजनशक्ति हो अर्थात् चाहे जितनी शक्ति हो, अपनी क्षमता के अनुसार अवश्य करो।"

वेद का यह आदेश कार्य में संलग्न एवं व्यस्त रहने की प्रेरणा देता है। सृजन ही मानव धर्म है। चित्र रचना, काव्य रचना, मूर्ति गढ़ना आदि सभी उसी दिव्य सृजन प्रतिभा के उज्जवल परिणाम हैं। इसी सृजन शक्ति के परिणाम स्वरूप हमें कला के विविध स्वरूपों के दर्शन होते हैं। वैदिक ग्रन्थ 'ऋग्वेद', 'अथर्ववेद', 'शतपथ ब्राह्मण', ऐतरेय ब्राह्मण' आदि में 'कला' शब्द के अनेक प्रयोग प्राप्त होते हैं 'कला' का सर्वप्रथम प्रयोग 'ऋग्वेद' में हुआ है-

"यथा कलां यथा शफं यथा ऋणं संनयामसि।" ऋग्वेद ८/४७/१६

कला के प्राचीन अर्थो में उसे 'शिल्प' माना गया है। जिसका अर्थ है हस्तकौशल। वैदिक युग में 'ऋभु' शब्द हस्तकुशलता, या निपुणता के सम्बन्ध में प्रयुक्त हुआ है। इस तरह के कुशल व्यक्ति या कलाकार वेदिकाओं का भव्य निर्माण करते थे। 'ऋग्वेद'

में भृगु ऋषि के वंशजों को लकड़ी के काम का विशेषज्ञ बताया गया है। वैदिक ऋषियों का चिन्तन कलामय था। उषा और रात्रि के स्वरुपों को निहारकर ऋषियों द्वारा उनकी अर्धभास्य प्रतिकृतियां निर्मित करने के उल्लेख मिले हैं। ऋग्वेद में चमड़े पर बने अग्निदेव के चित्र का सन्दर्भ भी मिलता है। 'शतपथ ब्राह्मण' में याज्ञिक के वस्त्रों पर यज्ञ रूपों का काढ़ना अनिवार्य बताया गया है। यज्ञ शालाओं की चारों चौखटों को द्वार देवियों की प्रतिकृतियों से अलंकृत करने का भी उल्लेख है। इन प्रतिकृतियों की पुजारी पूजा करते थे।

इन प्राचीन उल्लेखों से चित्रकला की परम्परा वैदिक युग में प्रमाणित हो जाती है। उस युग में कला का स्वरूप आध्यात्मिक भावभूमि पर सुस्थापित था। कला को सत्य शाश्वत नित्य और अनादि कहा गया तथा उसे परमेश्वर की प्राप्ति एवं आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग बताया गया। इस प्रकार कला को वैदिक युग में विराट सृष्टि का पर्याय मानकर सृष्टिकर्ता ईश्वर की चिरंतन त्रिमूर्ति सत्यं शिवं सुन्दरं का उसमें समावेश करते हुए परमानन्द प्राप्ति तथा मोक्ष प्राप्ति का साधन माना गया।

संस्कृत एवं मशीनी अनुवाद

डॉ0 धनीन्द्र कुमार झा व्याख्याता, व्याकरण विभाग, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान (मानित विश्वविद्यालय) लखनऊ परिसर, लखनऊ

कम्प्यूटर के लिए संस्कृत सबसे उपयुक्त भाषा है," यह वाक्य आज प्राय: महाकाव्य बन गया है। साथ ही भाषा सम्बद्ध गोष्ठी का यह एक रुचिकर विषय हो गया है। इसी सन्दर्भ में प्रस्तुत है यह निबंध।

संस्कृत एवं कम्प्यूटर साइंस दोनों परस्पर विपरीत विषय की ओर संकेत करते हैं। जहाँ संस्कृत विश्व की एक सबसे प्राचीन और सबसे परिष्कृत भाषा है, वहीं कम्प्यूटर साइंस बीसवीं शताब्दी में आविष्कृत आज के विश्व की एक अत्याधुनिक प्रौद्योगिकी है। प्रस्तुत निबंध में दो विपरीत ध्रुवों को एक प्लेटफार्म पर लाकर दोनों के बीच एक सह-संबंध स्थापित करना ही मेरा उद्देश्य है। भाषा के विषय में प्राचीन तथा अर्वाचीन दोनों धाराओं में यह प्रसिद्ध है कि भाषा सम्प्रेषण का एक माध्यम है। जहाँ पाश्चात्य मत में भाषा को भाव एवं सूचना के सम्प्रेषण का माध्यम मात्र माना जाता है, वहीं भारतीय संदर्भ में भाषा को चेतना का एक अभिन्न अंग और व्याकरणशास्त्र के संदर्भ में उस विचार सारणि से भी ऊपर भाषा को माना गया है। हमारा उद्देश्य यहाँ भाषा के व्यापक रुप की चर्चा करना नहीं है। हम यहाँ पर संस्कृत भाषा में निहित कतिपय तत्वों को संगणकीय परिधि में लाना चाहते हैं।

Translation Work के लिये एक Control System की आवश्यकता है। और आज के भारतीय कम्प्यूटर वैज्ञानिकों को यह विश्वास हो गया है कि भाषान्तर/अनुवाद Translation का Control System पाणिनीय व्याकरण में विद्यमान है। अक्षर भारती द्वारा विकसित अनुवाद संबंधी साफ्ट वेयर का नाम अनुसार करदिया गया है। अत्यंत विचार और गहन अध्ययन के पश्चात् इसका नामकरण अनुसाकर किया गया है। संस्कृतज्ञों के लिये इसका अर्थ लगाना अत्यंत सरल है। अनुसारक के द्वारा सर्वप्रथम कन्नड़ से हिन्दी का अनुवाद कार्य किया गया है। जिस प्रकार का अनुवाद कम्प्यूटरहमें उपलब्ध कराता है उसको सही दिशा में किया गया अनुवाद नहीं कह सकते फिर भी हमें यहाँ यह समझ लेना चाहिए कि कम्प्यूटर द्वारा अनुदित वाक्य सूचनाओं को प्रेषित कर देता है। भाषा विशेषज्ञों द्वारा उस अनुदित अंश को भाषा की प्रकृति के अनुसार बना दिया जाता है। यहाँ यह विचार करने की बात है कि हम किसी ऐसे प्रदेश देश और स्थानों में जाते हैं जहाँ की भाषा हम नहीं जानते और वहाँ के लोग हमारी भाषा को नहीं जानते हैं। ऐसी परिस्थिति में भाषा/वाक्य के किन्हीं एक या दो इकाईयों के उच्चारण/अनुवाद से भी हम सूचनाओं का आदान-प्रदान कर लेते हैं। आज वही लक्ष्य Machine Translation में संस्कृत की उपयोगिता सिद्ध हो चुकी है। अत: अब हम स्वाभिमानपूर्वक कह सकते हैं कि-संस्कृत कम्प्यूटर के लिये सबसे उपयोगी भाषा है।

आधुनिक युग में वेदों का महत्त्व

डॉ० शशि प्रभा वाजपेयी रीडर हिन्दी विभाग भ.दी.आर्य क.स्ना.म., लखीपुर खीरी

आधुनिक युग में सार्वभौमिक चेतना से युक्त, मानव मन को शिव संकल्पमय करने वाले, आलोकता आशापथ का विस्तार का [illegible]स्तार करने वाले, सत्कर्म से संयुक्त करने वाले वेदों की महती आवश्यकता है। इस युग का एक ही सूत्र वाक्य हो सकता

है "चलो वेद की ओर" तब मनुष्य सोच सकेगा- 'सर्वाआशा मम् मित्रं भवन्तु' तब वह प्रयत्न करेगा।- 'मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे' वैदिक सप्तमर्यादा

सप्तमर्यादा कवयस्त् तक्षुस्तासामेकामिद्मभ्यंहुरोगात्।

आयोर्ह स्कम्भ उपमस्य नीळ पथां विसर्गे पथां विसर्गे धरुणेषु तस्थौ। (ऋग्वेद १०/५/६)

निसन्देह सत्समाज की रचना में सहायक होगी। 'उपसर्प मातरं भूमिम्' निश्चय ही राष्ट्र प्रेम जागृत कर सकेगा, 'वयं राष्ट्रे जाग्रयाम् पुरोहिता:' नेतृत्व को सचेत कर सकेगा। साथ ही विश्व को आतंकवाद से बचाने के लिए शक्ति की प्रेरणा देगा-

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि व:।

अन्यो अन्यामभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या। (अथर्व 3/301)

इसी प्रकार वेदों में प्राय: सभी पक्षों की समस्याओं के समाधान सूत्र निहित हैं।

वेदों के परिप्रेक्ष्य में सुखी जीवन

डॉ. केशवप्रसाद उपाध्याय उपाचार्य, गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर, हरिद्वार

वेदों की जो उपयोगिता प्राचीन काल में थी, वही आज भी है। वेद हमारे जीवन का मूल आधार हैं। जो व्यक्ति वेदों के अनुसार जीवन व्यतीत करता है। वही सही अर्थों में सुखी जीवन व्यतीत करता है। सुखी जीवन के लिए हमारा सारा परिवार ईश्वर भक्त होना चाहिए तथा ज्ञान का होना भी आवश्यक है। क्योंकि ज्ञान के बिला मानव की उन्नति संभव नहीं है। वेदों में कहा गया है कि जो व्यक्ति सत्य और संयम को जीवन में धारण करता है, वह सुख-शान्ति रूपी निधि को प्राप्त करता है। प्रत्येक मनुष्य को सुखी जीवन बिताने के लिए अनासक्ति भाव से कार्य करना चाहिए। वेदों के अनुसार हम कतिपय तथ्यों को ध्यान में रखें, जैसे अच्छी बातों का सुनना सुनाना, आँखों से अच्छा देखना, तथा अच्छी वाणी को बोलना आदि। ये तथ्य हमारे जीवन के उत्कृष्ट भाव हैं। उच्च भाव से ही नियमों का पालन करना भी मनुष्य के सुख के लिए आवश्यक है। तभी मानव का जीवन सुखी संभव है।

उपर्युक्त सुखी जीवन के लक्षणों को वेदों के आधार पर विवेचन करना ही शोधपत्र का उद्देश्य है-

भद्रं कर्णेभि: शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्रा:।

स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांsः सस्तनुभिर्व्यसेमहि देवहितं यदायु:।।(यजु. 25.21)

मधुमन्मे परायणं मधुमत् पुरायनम्। ता नो देवा देवतया युवं मधुमतस्कृतम्।।(ऋ. 10.24.6)

शतपथस्य प्रथमं ब्राह्मणम्

रामनारायण: शास्त्री प्रवक्ता (सं. वि.) राज. स्नातकोत्तर महाविद्यालय:, सिरोही, राज०

कस्यापि कार्यस्य सिद्धये मानवो व्रतमाचरेद् एतदर्थमेव पौर्णमासयज्ञस्य प्राक् व्रतोपायन विधिं विधत्ते शतपथे ब्राह्मणे महर्षिर्याज्ञवल्क्य:। सुसन्तानप्राप्तिरेव पौर्णमासयज्ञ:। **"अतएव योषा वा आपो वृषा वाग्निर्गृहा वै गार्हपत्यस्तद् गृहेष्वेवैतत् मिथुनं प्रजननं क्रियते"** इति कथयति शतपथब्राह्मणम्। सन्तान प्राप्तये क्रियमाणं कर्म सामाजिकं कर्म विद्यत् अनेनैव कारणेन न आप: प्रणयन समये **"ता उत्सिच्योत्तरजाबृवनीयं सादयति"** इति वाक्येन आप: उत्तरस्यां दिशि सादयति। अग्रेऽपि **"उत्तरतो हि स्त्री पुमांसमुपशेति"** इति निगदति। संसारस्य सर्वेऽपि पदार्था: परस्परं सहयोगिन: सन्ति एतावता सहयोगेनैव कार्यं सम्पद्यते यतोहि संघे शक्तिर्भवति। एनमेव तथ्यं द्वन्द्वं वै वीर्यमिति निजगाद।

पौर्णमासयज्ञ: समाजाय राष्ट्राय च क्रियते भाविन्यै सन्तव्यै क्रियत इतिभाव:। राष्ट्रस्य क्रियमाणं कर्म सामान्यं कर्म नास्ति तस्तु विराजं कर्म, अतएव द्वन्द्वं पात्राण्युदाहृत्य दशसंख्या कथनेन यज्ञस्य विराट्स्वरुपं प्रदर्शयति। यज्ञस्य विराट् स्वरुपप्रदर्शनमापि साभिप्रायम्, यतोहि यजँ धातोरर्थ:-देवपूजासंगतिकरणदानिमिति। यत्र दानदेवापूजयो र्द्वयोरपि भाव: सन्निहितो भवेत तदेव संगतिकरणं प्रमुखम्। कथमिति कृत्वा-किमपि सामाजिकं राष्ट्रियं वा कर्म संगतिकरणेनैव प्रसिद्धयति। एतदेव यज्ञस्य विराट्स्वरुपम् एषैव च यज्ञस्य पराकाष्ठा।

वैदिक साहित्य में वर्णित मनोरंजन

महेन्द्र सिंह राणा शोधच्छात्र प्रा० भा० इति० संस्कृति एवं पुरातत्व, गु० कां० वि० वि० हरिद्वार

भारत के आदि वाङ्मय वेदों में मनोरंजन के साधनों की रुपरेखा स्पष्ट रुप से दृष्टिगोचर होती है। वैदिक कालीन आर्य अपने विश्राम काल में किस प्रकार समय का सदुपयोग कर क्षण भर के लिए संसार के प्रपंचों से दूर रहते थे तथा वे इसके लिए तत्कालीन किन किन मनोरंजन के साधनों का उपयोग करते थे इन सभी तथ्यों की अधिकांश जानकारी चारों वेदों के अतिरिक्त इनसे सम्बन्धित ब्राह्मण ग्रन्थ, उपनिषद्, कल्पसूत्र इत्यादि द्वारा होती है।

वैदिक कालीन समाज में मनोरंजन के साधनों का विशिष्ट स्थान था। विभिन्न प्रकार के खेलकूद, दौड़ प्रतियोगिताएं, द्यूत क्रीडा, इन्द्रजाल, समन व उत्सव, संगीत एवं नृत्य इत्यादि में वैदिक कालीन आर्य अत्यन्त रुचि रखते थे। यज्य के अवसर पर विशेष रुप से सामगान आवश्यक था। इसके बिना यज्य अपूर्ण माना जाता था। गायक के लिए 'गातुविद' तथा गीत के लिए 'गायदा' शब्द का उल्लेख ऋग्वेद में आया है। तैत्तिरीय संहिता में सामगान के अवसर पर कलश लेकर मार्जालीय की परिक्रमा करते हुए दास कुमारियों के नाचने गाने का उल्लेख हुआ है। वीणा, वेणु, मृदंग, पणव, नाड़ी अघाट, करताल, दुदुंभि, कर्करी आदि वैदिक कालीन आर्यो के प्रमुख वाद्य यन्त्र थे।

वेद को श्रुति क्यों माना है

डॉ. संजय पंडित विभागाध्यक्ष-वाणिज्य माता जीजाबाई शा. कन्या स्नातकोत्तर महा. मोती तबेला, इन्दौर

वेद के अनेक पर्यायवाची शब्द है। उन्हें श्रुति, आगम, निगम, आम्नाय, मंत्र, ब्रह्म आदि अनेक अभिधानों से जाना जाता है। इनमें से वेदों का सबसे अधिक प्रचलित और महत्वपूर्ण पर्यायवाची शब्द श्रुति है। श्रुति का शाब्दिक अर्थ है, 'जो सुने जाते हैं-**श्रूयते इति श्रुतिः।'** वेदों के सनातन और नित्य मंत्रों का ऋषियों ने समाधि अवस्था में श्रवण किया था। वेद मंत्रों का दर्शन करने वाले, साक्षात्कार करने वाले मनीषियों को ही ऋषि कहा गया। ये वैदिक मन्त्रों के द्रष्टा हैं, श्रोता हैं, स्मर्ता हैं। जिस ऋषि ने जिस मंत्र का श्रवण, दर्शन या साक्षात्कार किया था उनका या उनके वंशद्योतक नाम सूक्त के ऊपर रहता है। वेद मंत्रों का सही अर्थ और मर्म समझने के लिए उनके ऋषि, देवता, छन्द और विनियोग का ज्ञान आवश्यक है। इनको जाने बिना वेद का अध्ययन और अध्यापन, वैदिक हवन-यजन-याजन आदि अनुष्ठान निष्फल होते हैं। मंत्रों के ऋषि, देवता, छन्द और विनियोग को जानकर किये गये वेदाध्ययन और वैदिक कर्म फलप्रद होते हैं। उपर्युक्त चारों के साथ ही जो वेदार्थ को भी जानते हैं उन्हें अतिशय फल प्राप्त होता है यह शास्त्रीय मान्यता है।

ऊपर दिये गये वेद के विभिन्न पर्यायवाची शब्दों में श्रुति शब्द पर विशेष रूप से विचार किया जाना आवश्यक है। वेद को श्रुति क्यों कहा जाता है? इस विषय में पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि जब वेदों की रचना हुई उस समय भारत में लेखन कला का विकास नहीं हुआ था, इसलिए उस युग में ज्ञान का आदान-प्रदान गुरू-शिष्य परम्परा से मौखिक रूप में ही संभव था, अतः वेदों को श्रुति कहा जाता है। पाश्चात्य विद्वानों की इस धारणा का कोई निश्चित आधार नहीं है। यह पूर्वाग्रहयुक्त तर्क से उत्पन्न धारणा है। इसके विरूद्ध अनेक प्रमाण उपलब्ध है। ऋग्वेद में ही संख्यावाचक शब्दों का वर्णन है। शतपथ ब्राह्मण, ऐतरेय आरण्यक, छान्दोग्य उपनिषद् आदि वैदिक साहित्य में लिपि का स्पष्ट संकेत है। वैदिक साहित्य में ही लेखन-कला के साक्ष्य मिलते हैं। अतः पाश्चात्य विद्वानों की यह धारणा उचित नहीं है कि वैदिक युग में भारतीय लेखन कला से परिचित नहीं थे या लेखन कला का विकास नहीं हुआ था। इसलिए ज्ञान के मौखिक आदान-प्रदान की पद्धति स्वीकार की गयी। इसी कारण वेद को श्रुति कहा जाता है।

वेद भारत की प्राचीन विरासत

डॉ. एम. चित्रे अतिथि सहा. प्राध्यापक-वाणिज्य, माता जीजाबाई शा. कन्या स्नातकोत्तर महा. मोती तबेला, इन्दौर

वेद किसी ग्रंथ का नाम नहीं, बल्कि ग्रंथ समूह कहलाता है। इसको लेकर खासे विवाद भी है। कुछ लोग आरण्यक और उपनिषद् के हिस्सों को निकालते हुए महज मंत्र ब्राह्मणों के संग्रह को वेद मानकर चलते हैं तो कुछ चारों के जोड़ को वेद की संज्ञा

देते हैं। इस तरह से मंत्र-आरण्यक-ब्राह्मण-उपनिषद्-वेद-समूह। चार वेद हैं ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद।

ऋग्वेद के जानने वाले को ऋत्विक, यजुर्वेद ज्ञाता को अध्वर्य, सामवेद ज्ञानी को उदगाता और अथर्ववेदी को ब्राह्मा कहा जाता है। ऋग्वेद में जहाँ विषयों की भरमार है, वहीं यह ज्ञानप्रदान भी माना जाता है। यजुर्वेद जीवन के कर्मपक्ष के बारे में है और इसमें याज्ञिक मंत्रों का संग्रह है। सामवेद की विषयवस्तु उपासना प्रधान है और इसके मंत्रों में अनेक दिव्य स्तुतियाँ भरी पड़ी हैं। रचनाक्रम में आखिरी माना गया अथर्ववेद, तंत्र के लिहाज से समृद्ध है और इसमें नाना प्रकार के टोने-टोटके भी सँजोए गए हैं।

सभी वेदों की अपनी-अपनी संहिताएँ हैं। यजुर्वेद को छोड़कर जिसकी कृष्ण और शुक्ल नामक दो संहिताएं हैं, बाकी तीनों वेदों की एक एक संहिता है। ऋग्वेद की संहिता से सिलसिलेवार ढंग से एक हजार अट्ठाईस सूत्र हैं। यजुर्वेद की संहिता से यंत्र-मंत्र की विधि और क्रियाओं का ब्यौरा है। सामवेद की भाषा में गाने योग्य पद हैं, जबकि अथर्ववेद संहिता की भाषा में मिले जुले ढंग से गद्य पद्य का इस्तेमाल हुआ है।

ऋग्वेदे देवतातत्त्वम्

डॉ. व्रजेन्द्रकुमारसिंहदेवः साहित्यविभागः, श्रीभगवानदास-संस्कृतमहाविद्यालयः, हरिद्वारम्

ऋग्वेदो हि विश्ववाङ्मयस्य प्राचीनतमो निधिविशेषः। ऋक्सूक्तेषु विशेषतया देवतानां श्रद्धाभक्त्यनुप्राणिता स्तुतिरेव परिलक्ष्यते। किन्नाम देवतेति जिज्ञासायामुच्यते यत् **'सास्यदेवता'** इति अष्टाध्यायीसूत्रानुसारम्। सिद्धान्तकौमुद्यां शब्दस्यास्य लक्षणद्वयं प्रतिपादितम्-

त्यज्यमानद्रव्ये उद्देश्यविशेषो देवता मन्त्र-स्तुत्या च इति।

प्रथमलक्षणतया सैव देवता यामाभिलक्ष्य हविरादीनि समर्प्यन्ते। द्वितीयलक्षणदृष्ट्या मन्त्रेण या स्तूयते सैव देवतेति। कियत्यस्तावद् देवतेति जिज्ञासायामुच्यते-ऋग्वेदस्यैकस्मिन् मन्त्रे त्रयस्त्रिंशत् संख्याका (33) देवता मधुपेयग्रहणार्थमाकारिताः। यथा हि-

आ नासत्या त्रिभिरेकादशैरिह देवेभिर्यात मधुपेयमश्विना।। (ऋक्. 1.34.11)

ऋग्वेदे अन्यत्राग्नितावत्संख्याकैरेव देवैः सार्धमागमनाय प्रार्थितः। तद्यथा-

तान् रोहिदश्व गिर्वणं त्रयस्त्रिंशतमावह।। (तत्रैव 1.45.2)

तत्रैव दिवि पृथिव्यामप्सु च प्रत्येकमेकादशसंख्यापरिमिता देवा यज्ञसेवानार्थमाहूताः। यथा हि-

ये देवासो दिव्येकादश स्थ पृथिव्यामध्येकादश स्थ।
अप्सु क्षितौ महिनैकादश स्थ ते देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम्।। (तत्रैव 1.139.11)

वैदिक साहित्ये विविधाः विद्याः

प्रो. गीताबहन डी. पटेल व्याख्याता : संस्कृत विभाग म्युनि. आर्ट्स एण्ड कोमर्स कॉलेज-उपलेटा

युञ्जते उत प्रयुञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः।
विहोत्रा दधेवयुनाविदेक इन्मही देवस्य सवितः परिष्टुतिः।।
(ऋ. पू. 89.1, 5.18, 8.11, 8.37.2) योग श्चितवृत्ति निरोधः (पातञ्जली योगदर्शन - 12)

निर्विकार चिन्तन, निर्विकार दृष्टि, निर्विकार श्रुति, निर्विकार वाणी, निर्विकार मन, निर्विकार चित, निर्विकार ज्ञान और निर्विकार कर्तुत्व ये अष्ट योग है। मित आहार, मित निंद्रा, मित श्रम, मित विहार व्यायाम, मित प्राणायाम ये षड्योग है। यम नियमासन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान समाधपोडष्टा वहानि। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान समाधि ये अष्ट योग है। (पतञ्जलियोगदर्शन - 2.26)

यजुर्वेद में संग्राम योग का वर्णन यजुर्वेद ने तप दिया। यज्ञ परक तप से पूर्ण कर्मकाण्ड का वेद है। ऋग्वेद स्वाध्याय तथा ज्ञान-विज्ञान का वेद है। सामवेद उपासना काण्ड का वेद है। उपासना भक्ति है। प्रयन्ति है। क्रिया योग का तीसरा अड्डा ईश्वर प्रणिध न अपने को पवित्र करके प्रभु की गोद में सोप देना है।

सामवेद में संगीत

डॉ० नन्दिता भट्टाचार्य विभागाध्यक्ष संगीत विभाग, आर०जी०पी०जी० कालिज, मेरठ

वैदिक युग भारत के सांस्कृतिक इतिहास में प्राचीनतम युग माना जाता है। वैदिक युग वह सुदीर्घ कालखण्ड है जिसमें चारों वेदों ऋक्, यजु, साम, अथर्ववेद तथा उनसे विविध ग्रंथों का विकास हुआ है। वेद वह दिव्य ज्ञान का भंडार है। जो आधिभौतिक आधिदैविक व आध्यात्मिक सभी प्रकार के ज्ञान का भंडार अपने भीतर संजोए हुए है। ज्ञान, कर्म, उपासना और जीवन धर्म की व्यवहारिकता से पूर्ण वेदवाणी का ही प्रभाव था कि भारत लाखों वर्ष पूर्व भी ज्ञान विज्ञान और आध्यात्मिक दृष्टि से बहुत उन्नत और विकसित राष्ट्र था। चारों वेदों में सामवेद की महत्ता सभी ने स्वीकार की है। यही वह ग्रंथ है जो हमें भारतीय संगीत सरिता के आदि स्रोत को हमारे सम्मुख प्रथव वार अभिव्यंहित करता है। "गीतिषु सामाख्या" अर्थात् जो मंत्र गाये जाते हैं वे ही साम कहलाते हैं। साम शब्द का मूल अर्थ गान है, और साम का गान ऋग्वेद की ऋचायों द्वारा किया जाता है। साम का प्रधान अंग स्वर ही है। साम का यौगिक अर्थ गान अथवा गीत है। उपनिषदों के अनुसार सारा विश्व ब्रह्म का मधुर संगीत है और इसी का नाम साम है। वैदिक यज्ञानुष्ठान एवं विभिन्न संस्कारों में सामगान का विशेष महत्त्व है। यजुर्वेद में कहा गया है जिस यज्ञ में साम गान न हो वह यज्ञ ही नहीं है। देवताओं का वास्तविक आश्रय स्थान साम है। एक मंत्र के अनुसार साम गान से समस्त नभमंडल प्रतिध्वनित हो उठता था।

संगीत के तीनों विधायें-गायन, वादन व नृत्य का प्रयोग यज्ञ तथा अन्य धार्मिक अवसरों पर होता था, सामगान, गायागान आदि का विस्तार गंधर्व में सप्तगीत, जातिगान, ध्रुवगान, स्तुतिगान प्रवन्ध के विविध रूपों में काल क्रम में होता रहा। सामगान में पहले तीन स्वरों का प्रयोग होता था, फिर सात स्वरों का विकास हुआ इन्हीं स्वरों को बाद में षड्ज ऋषभ नाम से गंधर्व में प्रयोग किया गया। सात स्वरों के अतिरिक्त अन्य सूक्ष्म स्वरों का प्रयोग भी सामगान में किये जाने का उल्लेख मिलता है। सप्त स्वरों का यम नाम से प्रतिशाख्य ग्रंथों में उल्लेख मिलता है। संगीत शास्त्र की दृष्टि से वैदिक काल का यम शब्द बहुत व्यंजक था।

वेद विश्व वाङ्मय की अमूल्य निधि है

कु० बबीता छात्रा, कन्या गु. महाविद्यालय, ज्वालापुर

वेद विष्ठव वाङ्मय की अमूल्य निधि है। उससे प्राचीन, पवित्र और उससे अधिक ज्ञान-विज्ञान एवं आध्यात्मिक रहस्यों से पूर्ण अन्य कोई ग्रन्थ आज संसार के पुस्तकालयों में ढूंढ़ने से भी नहीं मिल पाता। वह ब्रह्म का निस्वास है।

अस्य भूतो महतो भूतस्य निश्वसितमोतद् यद् ऋग्वेदो यजुर्वेद: सामवेदोऽथर्वाङ्गि रस:। वष्ट० 2/4/11 और महान् देव का सर्वांग सुन्दर अमर काव्य ही नहीं किन्तु इससे भी अधिक प्रत्यक्ष ब्रह्म है। देवस्य पश्यकाव्यं नममार न जीर्यति (अथर्व० 10/8/32) वेद सृष्टि के कण कण में भासमान है। विराट सौन्दर्य के द्रज्टा क्रान्तदर्शी कवियों की वह दिव्यानुभूति है जिसमें उन्होंने प्रकृति पुरुष की रहस्यमयी क्रीड़ाओं का अन्त: चक्षुओं से साक्षात्कार किया है इसलिये वेद सनातन है। पूर्ण है और निखिल ज्ञान-विज्ञान के मधुमय उत्स है।

वेद एवं हमारा जीवन

हरेन्द्र नारायण देव गोस्वामी सत्राधिकार, द्विपरसत्र, कैठालकुछि नलबाड़ी, असम

1. वेद के विद्वान् पण्डितगण समग्र विश्व को अमृतपान से अमरत्व प्रदान कर हमारे देश भारतवर्ष के महत्व को प्रकाशित कर रहे हैं। कहा गया है "अमृतं शिशिरे वह्निरमृतं प्रियदर्शनम्।" तथा "साधूनां दर्शनं पुण्यं तीर्थभूता हि साधव:। तीर्थ फलति कालेन सदय: साधु समागम:।।"
2. मनुष्य जीवश्रेष्ठ हैं-जन्तूनां नरजन्म दुर्लभम्।

इस मनुष्य जनम को सार्थक बनाने से संसार की तमाम समस्याओं से मुक्ति मिल सकती है। हमारे समाज में व्याप्त विभिन्न

अशान्तिओं को दूर करने के लिए वैदिक वाङ्मय की प्रासंगिकता पर हम अपना विचार करते जा रहे हैं।

3. वेद सिफ धर्म ग्रन्थ नहीं है। इनमें विज्ञान भी है। वे अखिल धर्म में मूल हैं-सब कुछ हैं: सर्वज्ञानमयो हि सः वेदः।

4. यजुर्वेद में ईश्वरीय वाणी की स्तुति इसलिए की गयी है जिससे यह वाणी समाज के बुद्धिमान लोगों तथा व्यवसायी, योद्धा, सेवक (अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) तथा अन्य सभी के कल्याण कर सकती है।

अथर्ववेदीय पृथिवी सूक्त का महत्त्व

डॉ० सुषमा देवी गुप्ता ऐसोशियट प्रोफेसर संस्कृत विभाग जम्मू वि०वि०, जम्मू

अथर्ववेद की मन्त्र सूक्तियों पर समीक्षात्मक दृष्टि डालने से हमें अतिसंख्यक ऐसे मन्त्र दृष्टिगोचर होते हैं जिनका काव्य सौन्दर्य स्पष्टतः प्रतिभासित होता हुआ दिखाई देता है। अथर्ववेद के सभी काव्यात्मक सूक्तों में 'पृथिवी सूक्त' का स्थान सर्वोपरि है। इसके द्रष्टा अथर्वा ऋषि हैं; जिनके नाम पर इस वेद का नाम पड़ा है। 'पृथिवी सूक्त' अथर्ववेद का 'द्वादश काण्ड' का 'प्रथम सूक्त' है। वर्ण्य विषय की दृष्टि से इस सूक्त में पृथिवी के स्वरुप का बड़ा ही कलात्मक विधि से वर्णन किया गया है।

सर्वप्रथम ऋषि कवि ने इसमें पृथिवी के नैसर्गिक सौन्दर्य का अर्थात् प्राकृतिक रुप का बार-बार वर्णन किया है। उन्होंने मातृभूमि भारतभूमि की नदियों, पर्वतों, झरनों का उल्लेख करते हुए यहां प्रवाहित होने वाले जल की तुलना दूध तथा मधु से की है। पृथिवी सूक्त में धरती के स्वरुप का वर्णन करते हुए इसकी चार दिशाएं कही गई हैं। इस धरती पर खेती होती है, यह सभी स्थावर एवं जंगम जीवों को बसाने वाली तथा विविध मनुष्यों के समूह से युक्त राष्ट्र या देश को बसाने वाली है। साथ ही यह भी कहा है कि इस धरती का वेग एवं कंपन भी महान है। पृथिवी के पौराणिक स्वरुप पर प्रकाश डालते हुए ऋषि कवि कहते हैं कि यह पृथिवी पूर्वकाल में जल में निमग्न थी, अश्विनी कुमारों ने इसे दिन रात के रुप में नापा था, विष्णु ने इस पर विशेष पराक्रम किया था तथा इन्द्र ने अपने लिए इसे निष्कण्टक बनाया। देवता जागृत रहकर सतर्कता पूर्वक इसकी रक्षा में तत्पर हरहते हैं तथा इसी पर हमारे पूर्वजों ने पुरुषार्थ किया था।

वेदों में रुद्र-शिव : ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक संदर्भ में

डॉ० गीता शर्मा, कुमाऊँ वि.वि., नैनीताल

भारतवर्ष विश्व का सर्वाधिक अद्भुत, सुन्दर, कल्याणकारी, प्राकृतिक संसाधनों से युक्त विविधताओं वाला देश माना जाता है। इसके रुप इतिहास और संस्कृति में अनेकों विरोधी तत्व उपस्थित हैं, परन्तु फिर भी वह एक है। संभवतः इस देश की मिट्टी में ही वह विशेषता विद्यमान है कि हम चाह कर भी इसे न तो इसकी विभिन्नताओं से विलग कर सकते हैं और न इसकी भावात्मक एकता को तोड़ सकते हैं। इसी गहन विशिष्टता ने यहाँ एक ऐसे तत्व को जन्म दिया जिसके विषय में श्रद्धेय महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने ऋग्वेद की प्रसिद्ध ऋचा

"ऋचो अक्षरे परमे व्योमन यस्मिन्देवा अधि विश्वें निषेदुः। यस्तत्र वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते।।9।।

ऋग्वेद, मंडल 9। सूक्त 164। मं० 3।।

"अर्थात् जो सब दिव्य गुण-कर्म-स्वभाव-विद्यायुक्त और जिसमें पृथिवी सूर्यादि लोक स्थित हैं और जो आकाश के समान व्यापक, सब देवों का देव परमेश्वर है।" के संदर्भ में स्पष्ट किया, "जिसमें सब देवता स्थित हैं, वह जानने और उपासना करने योग्य ईश्वर हैं।' यह इनकी भूल है जो देवता ृब्द से ईश्वर का ग्रहण करते हैं। परमेश्वर देवों का देव होने से 'महादेव' इसलिए कहलाता है कि वही सब जगत् की उत्पत्ति-स्थिति-प्रलयकर्ता न्यायाधीश अधिकष्ठाता है।"

विश्वहिताय वैदिकी अभयभावना

डॉ० विजयलक्ष्मी: संस्कृत प्रवक्त्री सनातनधर्ममहाविद्यालय:, मुजफ्फरनगरम्, उ.प्र.

यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि।

मघवं छग्धि तव त्वं न ऊतिभिर्वि द्विषो वि मृधो जहि।। अथर्व० 19.15.1

प्राणभूतां कृते आवश्यकेषु नैकेषु गुणेषु निर्भयता सर्वोत्कर्षत्वेन राजते। अभयप्रधानेन मनसा जीवने जन: साध्यति असाध्यमपि, अवाप्नुते च अमन्दमानन्दम्। भिया क्रियमाणेषु कार्येषु मानवानां न तथा प्रीतिर्जायते यथा भयरहिततेन चेतसा विधीयमानेषु कृत्येषु। यदा जन: जगति सर्वत्र अभयत्वम् अनुभवति तदा स्नेह उदारता स्थितरता अहिंसा मैत्री करुणा मुदिता सहिष्णुता आत्मविश्वासदयो गुणा: सामाजिकानां स्वान्तेषु समुद्भूता भवन्ति। चेतसि जायमानास्ते गुणा जनानां वाचि आचारे व्यवहारे च मूर्तरुपामाकृतिं लभन्ते। वेदा हि सन्ति समस्तानां ज्ञानानां विज्ञानानां व्यवहाराणामाधारभूता:। विद्यन्ते च वेदेषु विविधा अभयप्रार्थनापरा मन्त्रा:। न केवलमात्महिताय अपितु समस्तचराचराय अभयकामना अवलोक्यन्ते वेदभगवति

यतो यत: समीहसे ततो नो ऽअभयं कुरु। शं न: कुरु प्रजाभ्योऽभयं न: पशुभ्य:।। यजु० 36.22

अद्यत्वे जगति जायमानानां सुरसामुखसदृशीनां समस्यानामकरणाय वैदिकी अभयभावना कथं सार्थकतामुद्वहतीत्येव विचारणा अस्य शोधपत्रस्य मूले विराजते।

शुक्लयजुर्वेद शाखा निरूपणम्

प्रो0 वेदप्रकाश उपाध्याय: वरिष्ठ: आचार्य: संस्कृतविभाग, पंजाब विश्वविद्यालय: चण्डीगढ़म्

यजुर्वेद: शुक्लकृष्णभेदेन द्विधा स्वीक्रियते पतञ्जलिकृतमहाभाष्यस्य पस्पशाह्निके प्रोक्तम्-'एकशतमध्वर्युशाखा:'। यजुर्वेदस्य शुक्लविभाग गता: पञ्चदशभेदा निगदिताश्चरणव्यूहे शौनकीये। यथा

जाबाल: बौधेय: काण्व: माध्यन्दिनीय: शापेय: तापायिनीय: कपोल: पोण्ड्रवत्स: आवटिक: परमावटिक: पाराशर: वैनधेय: गालव: कात्यायनां बैजवापश्च। यद्यपि शुक्लयजुर्वेदस्य अनेका वेदशाखा: लुप्ता प्रतीयन्ते किन्तु पाण्डुलिपीनामन्वेषणं क्रियते चेत्, लुप्तवेदशाखाावाप्ति: सम्भाव्यत इत्यस्मिन् विषये न कश्चित्सन्देहावकाश:। अधुना शुक्लयजुर्वेदस्य संहिताद्वयमुपलभ्यते-माध्यन्दिन शाखीया संहिता काण्वशाखीया संहिता चेति।

देवानामस्मि वासव:

डॉ० कालिकादत्त झा प्राचार्य: मानविकीसंकायाध्यक्षश्च संस्कृतविभाग: ल.ना.मिथिलाविश्वविद्यालय:, दरभंगा

समस्तवेदार्थसारसङ्ग्रहभूते गीताशास्त्रे दिव्या आत्मविभूती: प्रख्यापयन् भगवान् वासुदेव: कथयति-वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासव:। निरुक्ते द्युस्थानीया अन्तरिक्षीया: पृथिवीस्थानीयाश्चेति त्रिस्थानीया, अन्ये च अनेके देवा विभाविता: ये एकस्यैव परमतत्त्वस्य प्रपञ्चभूता: नानाकारा: अदृष्टशक्तय:। **'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति' 'महद्देवानामसुरत्वमेकम्'** इति वैदिकपरम्परायाम् एकेश्वरवादेन सह बहुदेववादस्य सम्यक्समन्वय: सुप्रतिष्ठित:। तत्र सत्सु अनेकेषु दिव्येषु देवेषु सति च देवाधिदेवे महादेवे भगवान् स्वकीयं तादात्म्यं वासवेन इन्द्रेण सह अङ्गीकरोति इति इन्द्रस्य देवस्य किंकृतं वैलक्षण्यम् इति विचारणीयं भवति। वसव: अष्टसंख्याका: समुदायचारिण्यो गणदेवता:, वसूनि रत्नानि वा सन्ति अस्य इति वासव: इन्द्र:।

किरातार्जुनीये वैदिकचिन्तनस्य प्रभाव:

श्यामानन्दमिश्र:, साहित्यविभाग:, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणासी

सनातनपरम्परायां प्राय: सर्वाण्येव शास्त्राणि **'वेदा: प्रमाणम्'** इति सिद्धान्तमभ्युपगम्यैव प्रवर्तितानि प्रचारितानि च। अत: वैदिकपरम्परायां सुसंस्कृतेन सुशिक्षितेन च महाकविभारविना सङ्ग्रथिते **'किरातार्जुनीयं'** नामाष्टादशसर्गात्मके लोकविश्रुते महाकाव्ये वैदिकचिन्तनस्य प्रभावस्तु सर्वथा स्वाभाविक:। महाकाव्येऽस्मिन् विविधविषयवर्णनक्रमे वैदिकसिद्धान्तानामनुसरणं यथाप्रसङ्गं लक्ष्यत एव।

तत्र वेदस्यापौरुषेयत्वं ऋषिदृष्टत्वञ्च प्रतिपादयति भारविणोक्तमिदं पद्यम्

यमनियमकृशीकृतस्थिराङ्गः परिददृशे विधृतायुधः स ताभिः। अनुपमशमदीप्रता गरीयान्

कृतपदपङ्क्तिरथर्वणैव वेदः॥ किरातार्जुनीये १०/१०

अत्र '**कृतपदपङ्क्तिः**' इत्यस्य तात्पर्यं दृष्टत्व एव न रचितत्वे। यतो हि येऽपि वेदस्य पौरुषेयत्वं मन्यन्ते तेऽपि तस्येश्वररचितत्वमेवाभिप्रयन्ति, न पुनः वसिष्ठादिरचितत्वम्। किञ्च, वेदवाक्यम् प्रमाणान्तरनिरपेक्षत्वमपि प्रतिपादितमेकादशसर्गे देवेन्द्रवचनस्य शास्त्रप्रमाणानपेक्षत्वं प्रतिपादयता महाकविना **न्यायनिर्णीतसारत्वान्निरपेक्षमिवागमे। अप्रकम्प्यतयान्येषामाम्नायवचनोपमम्॥ किरातार्जुनीये ११/३९**

इत्थमेव **'सर्व खल्विदं ब्रह्म' 'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति', 'एकमेवाद्वितीयं'** इत्यादिश्रुतिसहस्रतात्पर्यविषयीभूतमद्वयं तत्त्वमपि समाम्नातं किरातार्जुनीयं **अविग्रहस्याप्यतुलेन हेतुना समेतभिन्नद्वयमूर्ति तिष्ठतः। इति। किरातार्जुनीये १८/३३**

एवमेव परस्ताच्छिवविषयं **तेन सर्वभुवनातिगलोके नोपमानमसि नाप्युपमेयः। किरातार्जुनीये १८/३४**

अत्रोपमानापमेयाभावकथने शिवस्याद्वैतत्वं तु स्फुटमेव। एवमेवान्यत्रापि वैदिकचिन्तनस्य प्रभावः परिलक्ष्यते किरातार्जुनीये यस्य चर्चा प्रस्तावितं शोधनिबन्धे करिष्यते।

वेदविज्ञाने प्रयुक्तिविज्ञानपर्यालोचनम्

डॉ. रवीन्द्रनाथभट्टाचार्यः संस्कृतविभागः, कलिकाताविश्वविद्यालय, कोलकाता

वैज्ञानिकानां धार्मिकानाञ्च योनिः वेदः। तस्तात् वेदविरुद्धं धर्मशास्त्रमग्राह्यम्। परमेश्वरः प्रतिकल्पम् अखिलं जगन्निर्ममे। वेदः ब्रह्म प्रोच्यते। अतः ब्रह्मवेदं परं ब्रह्म वा चरित यः सः ब्रह्मचारी। वेदः अपरा विद्या इति श्रूयते। परन्तु वेदे न केवलं परा विद्या अपितु विज्ञानं, सृष्टितत्त्वं साधनरहस्यं, मनस्तत्त्वं, ज्यौतिषं, समाजतन्त्रं, वापीकूपतडागनिर्माणं, विमानविद्या, नृत्यं, नाट्यं, पाकशास्त्रं, युद्धशास्त्रं, यजुर्वेदः, गवायुर्वेदः, विषविद्या लतापादपाद्यारोहः, प्रासादनिर्माणमित्यादिप्रत्यक्षलाभास्पदवैज्ञानिकानि बहूनि तत्त्वानि समालोचितानि सन्ति। एतद्विषयाणामपि अध्ययनादिकं स्वतन्त्रे भारते अवश्यमेव विधेयम्, येन संस्कृतेऽपि प्राविधिकी(Technical) विषयवन् नवीनानां स्वाभाविकी प्रवृत्तिः स्यात्। यद्यपि सम्प्रत्यपि संस्कृतवाङ्मये वेददर्शनादीनामेव प्रायोध्ययनं भवतीति सार्वजनीनम्। मन्ये वेदेभ्यः अन्यत् किमपि तत्त्वं नास्ति। वेदः समुद्रः इति भाषते, यतो हि सर्वाणि तत्त्वानि समुद्भवति।

साम्प्रतमाधुनिकवैज्ञानिकैः वैदिकसिद्धान्तनामपेक्षया वेदतत्त्वं विस्मृतप्रायम्। श्रीमद्भगवद्गीतायां प्राप्यते- "तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्" इति वचनाद् यज्ञतत्त्वेष्वपि ध्यानं देयम्। यथा- द्विविधो हि क्रियमाणः-सृष्टिसर्गपालनरूपः। लोककृतश्रेष्ठलाभाय च। द्वितीययज्ञः लोकव्यवहाराय परमावश्यकः। अस्मिन्नेव यज्ञे मीमांसाशास्त्रमाश्रितम्। मन्त्रोऽयं यज्ञः जायते। श्रेष्ठलाभाय समजाकल्याणाय वा देवतोद्देशेन प्रियद्रव्यत्यागः विषयं विशेषतया आग्रहोऽपि दर्शितः। परन्तु प्रथमयज्ञसत्तायाः नापलापो भवितुमर्हति। वर्तमानविज्ञानस्याधारमूलं विद्युत्शक्तिरस्ति। वैदिकविज्ञानमूलं प्राणशक्तिः। इयं विज्ञानमूला प्राणशक्तिः विद्युत्शक्त्यपेक्षया बहुव्यापिकास्ति। यतः विद्युत्शक्तिः अपि प्राणशक्तेरेव एकभेदः। एतादृशप्राणशक्तौ अनन्तभेदाः समाविष्टाः। ऋषिपितृगन्धर्वदेवासुरादयः प्राणस्यैव भेदाः भवन्ति। येषां सङ्केतः स्थाने स्थाने वेदमन्त्रेषु ब्राह्मणेषु च प्राप्यते। स एव देवर्षिपित्रादयो यज्ञपरिपालकाः सन्ति। "यज्ञ-देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु" इति धातुपाठे प्राप्यते यज्ञशब्दार्थः। अयं भावः- प्राणरूपदेवानां पूजनप्रसारणं यज्ञः। तथा जगतः समस्तपदार्थानाम् आदानप्रदानभावो यज्ञः। यज्ञानामग्नीषोमौ परिचालकौ देवौ। अत्ता अन्नात् इति वा अग्निरिति प्रोक्तः। अन्नमिति सोमः इति इमावेव व्यापकतत्त्वौ स्तः। तथा च श्रुतौ- "अग्नीषोमात्मकं जगदि"ति एवम् अग्निः निरन्तरं सोममस्ति। स्वस्य रूपं च परिरमयति। अतः अग्नौ निरन्तरं सोमस्य आहुतिः पतति इति वक्तुं शक्यते। तथा एव सूर्यः एकः महाविशालः अग्नितेजांसि अग्नये वा समस्तेषु ब्रह्माण्डेषु प्रसरन्ति। किन्तु एतान् अग्नीन् निरन्तरप्रक्षिपन्नति सूर्यः नैव क्षिणोति। इत्यस्य कारणं श्रुतौ परिलक्ष्यते यत्- 'सोमेनाहित्या बलिनः।'

प्रमुख-उपनिषत्सु जनकल्याणस्य अवधारणा

आचार्यो जितेन्द्रः थदानी प्राध्यापकः राजकीय कन्या महाविद्यालय, चित्तौड़गढ़, राजस्थान

जनकल्याणस्य अवधारणैषा आऋग्वेदात् आधुनिकसाहित्यपर्यन्तं सर्वत्र वर्तते विद्यमाना। वैदिक वाङ्मये प्रायः सर्वेषु उपनिषत्सु मानवकल्याणस्यचिन्तनं वर्तते। शङ्कराचार्येणापि ईशोपनिषदः भूमिकायां उपनिषदः या परिभाषा प्रदत्ता सा परिभाषापि जनकल्याणं अनुसरति 'उपनिषदयति सर्वानर्थकरं संसारं निवनाशयति, संसारकारणभूतामविद्यां च शिथिलयति, ब्रह्म च गमयति इति उपनिषद्।' एतदनुसारेणापि उपनिषद् सर्वेषाम् अनर्थानां विनाशं करोति, संसारस्य विनाशं कृत्वा आत्मनः अमरतां स्थापयति, अविद्यामज्ञानमपि च शिथिलयति दूरीकरोति, ब्रह्मप्राप्तिरपि च कारयति। अनेन प्रकारेणापि उपनिषद् जनकल्याणमेव करोति।

सर्वप्रथमं ईशोपनिषदि प्रथममन्त्रे एव 'ईशावास्यमिदं सर्वं' इत्युक्त्वा सर्वेषु प्राणिषु ईश्वरस्य सत्तां स्थापयित्वा प्राणिमात्रस्य समतायाः सिद्धान्तः प्रतिपादितः तथा च भेदाभावः निराकृतः। तत्रैव लोभस्य निषेधं कृत्वा त्यागपूर्वक भोगस्य आदेशः दत्तः। एवमेव निष्कामकर्मणः प्रतिपादनं कृत्वा शतवर्षाणि जीवितुं कामना कृता तथा च आत्महननस्य हानयोऽपि सुस्पष्टा। जीवनमात्रस्य कल्याणाय विद्याद्वारा अमृततत्त्वस्य प्राप्तिः अपि उपनिषदि अस्मिन्नेव उपलभ्यते। कठोपनिषदि अपि श्रेय-प्रेय-माध्यमेन श्रेयसः श्रेष्ठता प्रतिपादिता। यमराजनचिकेता उपाख्यानेन अतिथि-सत्कारस्य महत्त्वं तस्य लाभाः अतिथिनामनादरेण हानयः उपदिष्टा वर्तन्ते अत्र। आत्मनः अमरतायाः उपदेशेन शरीरस्य नश्वरतायाः प्रतिपादनेन च मोक्षप्राप्तेः उपदेशः दत्त। मुण्डकोपनिषदि 'द्वासुपर्णा सजुजा सखाया' इत्युक्त्वा कर्मणः फलप्राप्तिः भवत्येव इत्युपदेशेन सुकर्म एव करणीयम् इत्युपदिष्टम्। बृहदारण्यकोपनिषदि प्रजापतेः तथा च तस्य त्रयाणां पुत्राणां माध्यमेन दानस्य, दयायाः, दमनस्य च महत्त्वं प्रतिपादितम्। एवमेव 'तत्त्वमसि', 'अहं ब्राह्मास्मि' इत्यादिमहावाक्यैः जीवब्रह्मणो, एकता सुस्पष्टा। श्वेताश्वतरोपनिषदि अप्युक्तमस्ति यत् ब्रह्मज्ञानेनैव सुखस्य शश्वत् शान्तेः च प्राप्तिर्भवति। अनेन प्रकारेण प्रायः सर्वेषु एव उपनिषत्सु जीवमात्रस्य कल्याणाय मार्गः निर्दिष्टः अस्ति। मुक्तिकोपनिषदि प्रथमेऽध्याये उपनिषद् श्रवणमात्रेण अपि सर्वेषां पापानां निराकरणं भवति सर्वोपनिषदां मध्ये सारमष्टोत्तरशतम्। सकृच्छ्रवणमात्रेण सर्वाघौघनिकृन्तनम्।। अनेन प्रकारेण लेखेऽस्मिन् उपनिषत्सु जनकल्याणस्य अवधारणायाः उपरि प्रकाशः प्रदत्तः।

वेदे रुद्र पदार्थस्य चर्चा

डॉ. शिवप्रसादः अग्निहोत्री डी.बी.एस. महाविद्यानलयः, कर्णपुरम्

वेदमाश्रित्य रुद्रनामादिविवेचनमारभ्यते। तत्र प्रथमं प्रसिद्धतमे कोशे (अमरकोशे) प्रसिद्धानां रुद्रानाम्नां मध्ये यानि वैदिकं संहिताभागे लभ्यन्ते तानि स्थलनिर्देशपूर्वकं प्रदर्श्य, ततोऽधुनातनकोशेष्वनुपलब्धानां परन्तु वेदभागे रुद्रानामत्वेन संभाव्यमानानां नाम्नां संकलनं च कृत्वा, श्रीरुद्रविषयकस्य कथाजातस्य पुराणेतिहासवाङ्मये प्राचुर्येणोपलब्धस्य बीजभूतानि वैदिकस्थलानि प्रदर्शयामहे। अध कघाती, कृत्तिवसानः, गिरित्रः, गिरिशः, नीलग्रीवः, बम्भुजः इत्यादि बहूनि पदानि बहुकथासूचकानि विद्यन्ते तानि सति प्रसङ्गे तत्तत्पुराणस्थकथा सूचकस्थलोद्घाटनपूर्वकं संगोष्ठीमध्ये प्रदर्शयिष्यामः। श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्स्वपि उक्तं भगवता श्रीकृष्णेन-''रुद्राणां शङ्करश्चास्मि।'' (10.23)

मानवजीवनस्य सार्थकता

डॉ. गणेशंकरविद्यार्थी रा.सं.सं. (मानितविश्वविद्यालयः) लखनऊ परिसरः, लखनऊ

ससारेऽस्मिन् मनुष्यजीवनं सर्वोत्तमं मन्यते। एतस्य सर्वोत्कृष्टतां परिलक्ष्य कविना तुलसीदासेन सुव्यक्तस्ति- सबसे सुन्दर मानवदेही। सुर नर मुनि सब जाचत एही।। मानवः लक्ष्यप्राप्त्यर्थ प्रयतते। सज्जनाश्रितमार्गानुसरणं लक्ष्याधिगन्तुं सहायकं भवति, मार्गोऽयम् आचारपूर्णो भवति। यथोक्तं श्रीमद्भगवद्गीतायाम्- 'श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।' अनेनैव प्रकारेण श्रद्धया-अभ्युदयस्य महत्त्वम् अथर्ववेदेऽपि समुद्घोषितं वर्तते- 'अन्वारभेथामनुसंरभेथाम् एतं लोकं श्रद्धानाः सचन्ते। यद् वां पक्वं परिवृष्टिमग्नौ, तस्य गुप्तये

दम्पती सं श्रयेथाम्।।' अथर्व. 6.122.3 सन्मार्गानुगामी जनः आत्मबलसम्पन्नः भवति। आत्मबलेन कर्तव्याकर्तव्यबोधो जायते दृष्टिश्च विश्वकल्याणयुक्ता भवति. अनेन "सर्वे भवन्तु सुखिनः" इति भावनायाः विकासः भवति।

वैदिक-संस्कृतिः ('अमेरिका-वैभवम्' महाकाव्य-सन्दर्भे)

सुश्री रचना सिंह, जयपुर

कविवरेण आचार्य सुभाष-वेदालङ्कारेण विरचितम् 'अमेरिका वैभवम्' इति महाकाव्ये वैदिकसंस्कृत्याः विशदं वर्णनं कृतम्।

1. वैदिक संस्कृत्यौ धर्मस्य विशिष्टं महत्त्वम् अस्ति। महाकाव्यानुसारं पूर्वजैः याः परम्पराः चालिताः सन्ति ताः धर्मः नास्ति अपितु वेदेषु यत् कथितं सः एव धर्मः यच्च वेदात् विपरीतम् अस्ति। तत् अधर्मः इति निगद्यते।
2. भारतीयः संस्कृतौ वेदाः परमेश्वरेण एव आविष्कृताः। ते वेदाः चत्वारः सन्ति ऋग्वेदः, यजुर्वेदः, सामवेदः, अथर्ववेदश्च।
3. ते खलु वेदाः कालातीताः सन्ति आधुनिक वैज्ञानिक युगे अपि तेषां प्रासंगिकता वर्तते।
4. सर्वासां विद्यानां धर्माणां च स्रोतांसि वेदाः एव सन्ति।
5. वैदिक संस्कृत्यनुसारं परमेश्वरः एकः एव अस्ति सः सत्यस्वरूपः, आनन्दस्वरूपः सर्वव्यापकः, अजरः,अमरः, सर्वशक्तिमान अनादिः, अनन्तः, निर्विकारः, सृष्टिकर्ता च वर्तते। तस्य, नामानि बहूनि सन्ति। अतएव वेदे अपि लिखितम्- **'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति'**
6. महाकाव्यानुसारं वैदिक-संस्कृतौ पंच देवानां पूजनस्य विधानम् अस्ति। ते देवाः सन्ति माता, पिता, आचार्यः, अतिथिः, तेषाम् अपि उपरि सर्वोत्तमः देवः परमेश्वरः अस्ति।
7. वैदिक संस्कृतौ कर्म-महत्त्वं वर्तते। कर्मणां फलम् अवश्यं प्राप्यते। महाकाव्ये अपि वेद-प्रसंगे लिखितं यत् ईश्वरः न्यायकारी वर्तते अतः कर्मानुसारं सः फलं ददाति। सः दयालुः अस्ति तथापि दुष्टेभ्यः कर्मानुसारं दण्डं ददाति।
8. वैदिक संस्कृतौ त्रीणि तत्त्वानि अनादीनि मन्यन्ते ईश्वरः जीव प्रकृतिश्च।
9. अमेरिका वैभवानुसारं चत्वारः पुरुषार्थाः वैदिक संस्कृतौ गण्यन्ते धर्मः, अर्थः, कामः, मोक्षश्च। एतेषां समानं महत्त्वम् अस्ति किन्तु अर्थकामौ धर्मम् एव अनुसरताम् इति वेदाः निगदन्ति।
10. वैदिक संस्कृत्यां नैतिकतायाः आध्यात्मवादस्य त्यागवादस्य च प्राधान्यं वर्तते। यजुर्वेदस्य अन्तिमे अध्याये ईश्वरस्य वर्णनं त्यागवादस्य भावनाः च इत्थं प्रकटिता-

    ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
    तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।।

    'अमेरिका वैभवम्' महाकाव्ये ईश्वरस्य आध्यात्मवादस्य त्याग भावनायाः च पदे-पदे वर्णनं वर्तते।
11. महाकाव्यानुसारं वैदिक-संस्कृत्यां नार्याः अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थानम् अस्ति। तस्याः अधिकाराः अपि पुरुषैः समानाः एव भवन्ति। सा नारी यज्ञिया, पूता वीरप्रसविनी, साम्राज्ञी इत्यादि पदैः सम्मानिता वर्तते।
12. महाकाव्यानुसारं वैदिक-संस्कृतिः वाममार्गात् सर्वथा विपरीता अस्ति। वाममार्गे कथितं यत्-

    मद्यं मांसश्च मीनञ्च मुद्रा मैथुनमेव च।
    एते पंच मकाराः स्युः मोक्षदा हि युगे युगे।।
13. वैदिक संस्कृत्याम् एतानि पंच तत्त्वानि धिक् कृतानि सन्ति। तत्र मोक्ष-स्वरूपम् अद्भुतं वर्णितम्। केवलं ज्ञानमार्गेण एव मोक्षप्राप्तिः सम्भवति।

इत्थं वैदिक संस्कृतेः अनेकानि तत्त्वानि सर्वाणि च तत्त्वानि 'अमेरिका-वैभवम्' महाकाव्ये वर्णितानि विद्यन्ते। आचार्यः सुभाषो वेदालंकारः यदा अमेरिका-देशं गतवान् तदा तत्रत्य-वासिनां जीवनं विलोक्य तेन 'अमेरिका-वैभवम्' नामकं महाकाव्यं लिखितं तत्र च वैदिक संस्कृतेः उत्त्कर्षः प्रदर्शितः। शोधपत्रे अस्यैव विषयस्य सोद्धरणं विस्तारो वर्तते।

दयानन्द की दृष्टि में अश्विनौ का स्वरूप

डॉ० रणवीर सिंह, आचार्य, संस्कृत एवं प्राच्यविद्या संस्थान,कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

वेदों के मर्म को समझने के लिए सूक्तगत अथवा मन्त्रगत देवता का ज्ञान होना आवश्यक है। देवता ही वह विषयवस्तु है जिसे वेदभगवान् द्वारा वहाँ निर्दिष्ट किया होता है। ऋषि अपनी योगशक्ति के द्वारा जिस अर्थ का अन्वेषण करता है, वही उसका देवता कहा जाता है। निरुक्त इसी को इसप्रकार कहता है- यत्काम ऋषिर्यस्यां देवतायामार्थपत्यमिच्छन् स्तुतिं प्रयुङ्क्ते तद्दैवत: स मन्त्रो भवति। इसप्रकार एक ही मन्त्र के अनेक निहितार्थ यदि निकाले जा सकते हैं तो वे सूक्ष्मभाव ही देवता के नाम से कहे जा सकते हैं। दयानन्द की वेदों के प्रति अगाध श्रद्धा थी, जिनके द्वारा समाज को एक नई दृष्टि प्रदान की। इसीलिए उन्हें ऋषित्व प्राप्त हुआ और वेदार्थ का योगविद्या से अन्वेषण करने वाले आधुनिक ऋषि कहे गये। अश्विनौ देवताक मन्त्रों का अर्थदर्शन उन्होंने अनेक दृष्टियो से किया है, वही इस निबन्ध के द्वारा स्पष्ट करने का उद्देश्य है।

वैदिक साहित्य में संगीत

डॉ. गुलशन सक्सेना रीडर-संगीत तबला विभाग, राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, फतेहपुर

चारों वेदों में संगीत संबन्धी महत्त्वपूर्ण उल्लेख प्राप्त होते हैं, जिनके द्वारा आज हम वैदिक कालीन संगीत से परिचित होने में सक्षम हैं। ऋग्वेद में तत्, सुषिर, धन व अवनद्ध वाद्यों का उल्लेख भिन्न-भिन्न प्रसंगों पर उपमा सूचक शब्दों के रूप में विद्यमान है, साथ ही ऋग्वेद में स्वर के उदात्त, अनुदात्त स्वरित् इन तीन भेदों का निरूपण है। यजुर्वेद में अश्वमेध यज्ञ के समजय "गाथागान" के प्रचलित होने का उल्लेख मिलता है। अर्थववेद में विवाह के समय, आमोद-प्रमोद के समय, यात्रा के समय तथा युद्ध के समय प्रयुक्त होने वाले गीत-संगीत व वाद्यों का उल्लेख है, जो संगीत की लोक धारा (लौकिक संगीत) से सम्बद्ध होता है।

"साम" शब्द के कई अर्थो में से एक अर्थ गान अथवा स्वर भी है। मीमांसा सूत्र 7.02.07 पर शाबर भाष्य द्रष्टव्य है- "स्वर: साम शब्देन लोकेऽभिधीयते। सुसामा देवदत्त: सुस्वरो देवदत्त इति।" अर्थात् प्रयोग में स्वर का पर्याय साम शब्द है। यदि हम कहें कि देवदत्त सुसाम है तो इसका अर्थ है कि वह सुस्वर है। मीमांसा सूत्र 2.1.36 में लिखा है "गीतिषु सामाख्या"- गीत के लिए साम शब्द का प्रयोग होता है। जो ऋग-मन्त्र यज्ञानुष्ठान में गान के काम आते थे। उनके संग्रह को साम संहिता कहते हैं। उल्लेखनीय है कि आर्चिक ग्रन्थों में ऋचाओं का संग्रह है। ये ऋचाएँ ही गान का आधार हैं, इनका गेय रूप जिन ग्रन्थों में प्राप्त होता है। वे गान-ग्रन्थ हैं; जो कि वास्तविक 'साम' (सामगीत) हैं। विस्तृत प्रपत्र का वाचन सम्मेलन में किया जायेगा।

अथर्ववेद : भारतीय एवं वैश्विक सन्दर्भ में

डॉ. मीना शुक्ला,रीडर, समाज शास्त्र विभाग, बी.एम.एल.जी0 कॉलेज गाजियाबाद, उ.प्र.

वेद भारतीय मनीषियों द्वारा उपार्जित अध्यात्म, धर्म, दर्शन, ज्ञान योग, कर्मयोग, भक्तियोग के अनन्त और शाश्वत निधान हैं। महात्मा ऋषियों के चिन्तन और अनुभव का समग्र तत्त्व वेदों में समाविष्ट है। वेद-वाणी ईश्वरीय वाणी है, जो ऋषियों के माध्यम से मुखरित होकर संसार में अवतरित हुई है। आधुनिक परिप्रेक्ष्य में भी वेदों की महती आवश्यकता एवं उपयोगिता है, क्योंकि वेद हमें ज्ञान, ध्यान, संयम और सदाचार सिखाने के साथ-साथ मानवजाति मात्र से अखण्ड प्रेम करने का भी संदेश देते हैं। वैदिक संदेश एक देशीय नहीं, सार्वभौमिक हैं और उसकी उपादेयता सार्वकालिक है। यह निश्चित है कि हमारे राष्ट्र का और समग्र विश्व का कल्याण वेदों में निहित है। वेद प्राणी मात्र की समृद्धि हेतु लोक एवं परलोक दोनों के सबल साधक हैं। अध्यात्म, ज्ञान, विज्ञान आदि की विविध दिशाओं में भारतीय ही नहीं, अभारतीय जन भी वेदों से सदा लाभान्वित होते आये हैं और होते रहेंगे, यह निर्विवाद तथ्य है।

शुक्लयजुर्वेदीय रुद्राष्टाध्यायी का वर्तमान परिप्रेक्ष्य में महत्त्व एवं उपयोगिता

डॉ. सरिता शर्मा प्रवक्ता, कमला नेहरु महाविद्यालय अगस्त क्रान्तिमार्ग, नई दिल्ली

प्रस्तुत शोधपत्र निम्न बिन्दुओं पर आधारित रहेगा-

1. भूमिका शुक्ल यजुर्वेद का सामान्य परिचय एवं उसमें रुद्राष्टाध्यायी का स्थान।
2. रुद्र व्युत्पत्ति, अर्थ, स्वरूप, प्रकृति, कार्य, वैदिक साहित्य में रुद्र का स्थान तथा अन्य देवताओं के साथ सम्बन्ध।
3. रुद्राष्टाध्यायी सामान्य परिचय, विषय-वस्तु।
4. वर्तमान परिप्रेक्ष्य में महत्त्व एवं उपयोगिता- (क) व्यष्टिगत महत्त्व- धार्मिक, आध्यात्मिक, मनोवैज्ञानिक, पुरुषार्थपरक अभ्युदय। (ख) समष्टिगत महत्त्व- नैतिक, सामाजिक ऐतिहासिक, साहित्यिक, आयुर्वैज्ञानिक।

RISHI VISHWAMITRA OF INDRASUKTA OF 3RD MANDAL OF RIGVEDA

Dr. Sanjay Pandya, Kampani & Shah Arts, comm. College, Mansol, Distt. Junagadh, Gujrat

The third mandal of Rigveda continued by the hymns created by mantra seers of Vishwamitra's family and believed as 'Rishi Darshanatt' and the belief that Ved in non - Personal calls Rishis as seers of mantra.

We can say the 53rd hymn of this mandal as family hymn. The description of devine adventures of ancesters of that time is given in this hymn. Which are based as the magical shall of some mantras of this hymn. In Rigveda the hymns which gives proud to whole family are preserved with esteem honour. The 33rd hymn is as attractive as the 53rd hymn. The fame of Rishi Vishwamitra 'Kushiksunu' has described in both the 33rd & 53rd hymn. is overall the highest fame of Vishwamitra Rishi whereas 53rd hymn is Fragenice of ame it seems that 33rd hymn. Should have been written after a long time of its existance. While 53rd hymn has been writen within short time or at a time which we can identiy from the used ased in description in this research papers, the adventures, charactar and historicity of Rishi Vishwamitra as well as the ideology at the. time has also been observed.

ASVINS AND MADHU

Dr. Rani Majumdar, Deptt. of Sanskrit A.M.U., Aligarh

The wonder workers (dasra), the divine physicians (devabhisajau), the twin deities of the Rgvedic pantheon, Asvins occupy the most prominent place after Indra, Agni and Soma. They are celebrated in more than fifty hymns, and they are also invoked with other gods also. Their name occurs more than 400 times in the Rigveda. The priest invokes these gods to bestow various types of wealth, health and prosperity etc. For this purpose, he propitiates them by offering various things such as ghrta, havisa, soma etc. of these, 'madhu' is the most favourite drink of Asvins. Now what is this madhu? Simply honey! It is reffered to as madhu-vidya later on, in the upanisad. This is certainly a secret knowledge as it is explained later on in the Brhadaryankopanisad. There is an interesting conversation between Yajnavalkya and his wife Maitreyi. In the story it is mentioed that the twin gods Asvins received this mandhu vidya from the sage Dadhyan by replacing his head with hors'e head, as Indra had prohibited the sage to impart this knowledge to anybody else.

The present paper will be an attempt to explain this madhu vidya on the basis of the commentaries of Sayanacharya and Yaska and opinions of various western scholars.

EROTICS IN RGVEDA

Dr. V. K. Hapmpiholi, Baliga Arts and Science College KUMTA : 581343 KARNATAK

Rgveda is considered as the earliest available literature not only in India but also in the world . Vedic seers

had never discarded material pleasures. They were praying for health, wealth, fame and offspring. They gave much importance to all aspect of the life. They knew the importance of sex in the life. Therefore love and lust elements are depicted openly and frankly.

Vedic seers were aware of that kama is seed of the mind and it is necessary for all round development of the man. Hence They have discussed about sex without any hesitation. They never ashamed to speak or to discuss about their carnal desire. Sex was sacred to them and it was not a secret. Vedic seers considered copulation as a procreation act. They describedphysical copulation as well as cosmic copulation with same spirit. Hence we come across the erotic eiements in various sukta-s. The present paper deals with Yama-Yami, Agastya-lopamudra, Asanga-Shashvati, Urvasi-Pururava dialogue hymns and other hymns and exhibits the erotic elements hidden in the those hymns.The dialoguse held between Yama-Yami (X-10) show that even the brother and sister were talking freely about sex. The hymn relation to Agastya Lopamudra (I-179) clearly states that there is neither sin nor shame in expressing sexual desire, Shashvati wife of Asanga describes the sexual organ of her husband and exhibits her pleasure (VIII-1). Romasha the daughter of Brhaspati declares that she is fit for enjoyment (I-126) Urvasi recollects her pleasure experienced in the company of Pururava with great proud. (X-95) The vivahasukta (X-85) Instructs husband and wife about pre and pro copulation activities in bold words. Thus the paper shows the erotic elements depicted in the Rgveda.

THE CONTRIBUTION OF PAIPPALADA SAMHITA TO ORISSAN CULTURE

Bibhuti Bhusan Mohapatra Senior Research Fellow (Sanskrit) Central research institute (Ay) Unit - I, Bhubaneswar -9 Orissa, India

In Vedic literature It is generally a cepted that the Atharava Veda (A V) existed at one time in nine schools, namely *Paippalada, Tauda, Mauda, Shaunaka, Jajala, Jalada, Brahmavada, Devadarsha,* and *caranavaidya.* This reference is available in *Paspasanhika* of *Mahabhashya* of *Patanjali.* But in present only two schools are extant namely Shaunaka and Paippalada. After the discovery of Atharava Veda Paippalada Shakha (A VP), it is a new task for Vedic scholars to do more and more research on this, because it is create a new problem that what is the important of A VP. Unfortunately there is no such clear edit samhita portion available for a clear vision. However, A VP first time discovered in Kashmir in Sarada script which was edited by Prof. L. C. Barrette and at last the result was known by everyone. But when it was discovered in Orissa it is , create a resolution among the scholars. But still A VP needs a new dimensional study on it. Therefore the modem scholars take steps for them. In between A VP and A VS there is some usual different which are discuses in this paper. But the important thing is that, the impact of A VP on Orissa culture is proves that once open a time Orissa was full of A VP Brahmins. This school was vastly spread in Orissa and A VP Brahmins took a major role in Orissa administration, culture etc. which is discuses in this paper.

CHANTING "PRITHVI SHANTI" PROMOTES ECOLOGY

Brigadier Chitranjan Sawant, VSM Noida, India

Prithvi is our planet Earth. Shanti means Peace. This is an excert from a Veda mantra praying for peace of self which is similar to the peace that prevails in the elements of Nature. Will mere chanting of a mantra or a hymn from a scripture be enough to achieve the aim of putting ecology back on track. It is not exactly so. A prayer goes a long way in building the human will to act and to achieve the aim. Thereafter it is the WILL that exhorts the individual to put in effort for Karma or action and reach the goal. Thus is a happy blend of Prathana and Purushartha or prayer and action to achieve the aim. One complements the other; one is incomplete without the other.

LOVING CARE FOR PLANET EARTH

The planet Earth is ravaged. It has been ravaged by no extra-terrestrial aliens but by human being who were born on this earth, are sustained by this earth and after the soul leaves the body, their body is cremated and ashes sprinkled in fields. Dust to dust and ashes to ashes, that is what the priest says in performing the last rites. Thus a human being is wholly dependent on planet earth from the beginning to the end, both in life and death. The Earth is generous to humans; shouldn't the humans be generous to the earth and not disturb its basic structure and ecology. Isn't it incumbent upon Mankind to maintain in good shape what he and she have inherited from the ancestors. The bond of love and continuity between the ancestors and the posterity is provided by the planet Earth. **VEDAS** are the most ancient scriptures available to Man for Divine guidance right from the day one of human Creation. Emphasising the importance of planet earth and its loving bond with human beings, the Veda says **"Prithve Mata Purto Aham Prithivyah"** and it means that planet Earth is our mother and we are her children. Isn't it the duty of the offspring to take care of the mother and not bother her with one demand or the other to the extent of milking her dry.

A SURVEY STUDY ON EMERGING HEALTH ISSUES OF ELDERLY POPULATION

R.D.H. Kulatunga, Alankruta R. Dave, M. S. Baghel, I.P.G.T. & R.A.

Ageing has become one of the leading demographic issues in the modern world. It is associated with physiological, functional and pathological changes affecting physical, mental, emotional and social well being. Thus social, economic and health implications are the most challenging issues facing in this century. This survey study has been designed to identify health issues among the elderly persons from Ayruvedic point of view. The study comprised the data of 200 individuals' age group of 55-65 yrs and adopted as a descriptive cross sectional surrvey at I.P.G.T. & R.A., G.A.U Jamnagar. The result showed prevalence diseases were Hypertension (28.5%), Diabetes mellitus (16.5%) and Arthritis (16%) among the elders and majority of elders reported Impairment of Memory (59.5%) and Sleep disturbances (53.5%).

Further it has been found maximum of elders were having status of Vishamagni (34.5%) and slightly higher percentage reported Constipation (39.5%). Moreover Bhaya (Fear) Kroda (Anger) Shoka (Worries) and Chinta (Thoughts) were identified as prominent psychological Factors. Based on the survey study that impairment of memory and sleepessness were found relatively high prevalence among elders.

key words: Ageing, Prevalence diseases, Psychological factors.

VEDA AND WORLD FRATERNITY

Vivek Kumar Research Scholar G.K.V., Haridwar

One of the major problem that today world is facing is being violence throughout every corner of the world. We have seen many terrorist attacks during the last three decades not only in India but around the world. Mumbai attacks, Parliament attack, Delhi Bomb blast, attack on world trade centre in New York and many more are the recent example. We have witnessed so much hatred is being engendered in our society in the name of religion. All such kind of hatred can be wiped out only through Peace and a feeling of fraternity for the living being. And Vedas give us the ways to lead such life. In this paper I will present how Vedas teach us bring peace in the society.

CONSERVATION OF NATURAL RESOUCES (INDIAN PRESPECTIVE)

(Sri) Gokulendra Narayan Deva Goswami, AES. K.K.H. Govt. Sanskrit College Guwahati, Assam)

1- We have four Vedas, namely Rk, Yajuh, Sama and Atharva, where conservative measures are being adopted. It has been urged upon by Vedavyasa in the Mahabharata (Sabha parva, 31-4511) like this- O fire (agni), give me energy, O air, give me my soul, O earth, give me strength and valour, O water, you enliven me:

agnir dadatu me tejo vayuh pranam dadatu me!

prthivi balam adhyacchitavam capo disantu me!!

2- Indian sages teach the world community some basic principles or Tattvas, like - **Ahimsa, Santi, Maitri, Punya** (meritorious acts) etc. In this contexts it is highly necessary to admit that if we go through these messages, then automatically we shall follow the Conservation of Natural Resources (without naming the term Conservation).

3- There is a saying: Prevention is better than cure. Preventive measures were adopted by the Indian seers. Conservation is the protective measures of something, for its future and survival. Conservation is very important; otherwise some life forms already endangered may be disappeared for ever. All over the world, the scientists, the social organizations are nor devoting their selves for conservation.

YASKA ON VEDIC DEITIES

Prof. Maan Singh, 60/3, Munshi Prem Chand Marg, New Nehru Nagar, Roorkee, UTTATAKHAND.

Vedic seers(Rsis) address their panegyries to dieties who are capable of fulfilling their wishes. Yaska, in his Nirukta refers to divergent views with regard to the from of deities, the first views treating them as anthropomorphic, the second considering them unanthromorphic and the third holding them as essentially un anthropomorphic but assuming an thropomorphic froms as and where required. He classifies the deities under three categories : terrestrial, atmospheric and celestial. He also divides the Vedic gods into two classes: those to whom hymns are addressed (Suktabhajah) and those who receives oblations (Havirbhujah). Yaska also mentions legends associated with some of the Vedic gods. Yaska offers interpretation of some of Vedic deities. Thus Aryaman Bhaga, Daksa, Indra and Vsvanra are understood as the sun and Bharati as the light; the Rbhus and the Vasus as the sun-beams; and saranyu as the night. Similarly Aditi and Rudra are taken to be Agni and the asvins to be the darkness mixed with the light of the sun at dawn. Such interpretations are also available in the supplement to the Nirukta(Chapters XIII-XIV). Thus soma and Aapah(waters) are taken to be Atman; and soma, Vahni and Indu as the sun or Atman. It contains a long list of words such ad hamsa, sagara, samudra, etc. which signify both the worldly objects as well as Atman. Yaska's own view is that all the gods as well as objects associated with them are only different manifestations of the same single Atman and hence nothing but Atman.

PATHETIC PLEASURE (KARUNA RASA IN J.M. SYNAGE'S THE RIDERS TO THE SEA)

Dr. Manjusha Kaushik, Lecturer, **Aparna Sharma,** Dept. of English, K.G. M., Hardwar

The object of this paper is to show the Pathetic pleasure in the context of J.M. Synge's Riders to the Sea. It has been most acclaimed to be most tragic of all his tragedies. Here is an unplumbed depth of tragic emotion. Maurya (heroine) caught in the meshes of fate is a truly Pathetic figure. From the beginning the to vend Maurya's feeling miserable on account of her grief over the death of her son. The thought of his impending death makes her mind go back to the deaths of other male members of her family. She had her husband, six sons, but they all perished in the Sea. The bodies of some had been founded and some other not. But there is something noble and sublime about the way she faces the indecency of elements. Her fortitudes evoke the emotions of terror, pathos and pity in the heart of audience.

SCIENTIFIC BASIS OF RASAYANA W.S.R. TO ITS ECCICACY ON AKALAJA JARA (PREMATURE AGEING)

Samarakoon S.M.S., Chandola H.M., Jamnagar

Ageing refer to a multi-dimensional process of physical, psychological, and social changes. Most development countries have accepted the chronological age of 65 years as a definition of elderly. There is no United Nations standard numerical criterion, but the UN agreed cutoff is 60+ years to refer to the older population. Ageing process which is normal ageing, represents the universal biological changes that occur with age (Kalajajara-chronological ageing) and that is unaffected by disease and environment influences. There is no cure for Kalaja Jara i.e. Yapya. Premature or accelerated again means that which occurs before its prescribed time i.e., irrespective of chronological age. *Akalaja Jara* (*biological ageing*) is of greater intensity but may be retarded in which Ayurvedic Rasayana therapy has an unparallel role. Free-radical theory is the most popular among more than 300 probable theories of ageing. It postulates that ageing deserves from an accumulation of changes caused by reactions in the body initiated by highly react ive molecules known as (free-radical scavenging activity), adipogenetic, anti-stress, immune-potentiating, mental agility, nootrphic, nephro-protective, anti-cancer activity etc. Rasayana increases life expectancy, enhances memory and intellect, and promotes health by promoting immunity against diseases. Hence, ultimately Rasayana improves quality of life. In nut shell, Ayurvedic Rasayana drugs can be used successfully to retard and manage the premature ageing.

Key words: Akalaja Jara, Premature ageing, Rasayana, Antioxidant, Adaptogenic, Free redical, immuno-modulator

शक्ति का स्वरूप

प्रो. रमाशंकर मिश्र, पूर्व अध्यक्ष संस्कृत विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

शिव के साथ अविनाभाव सम्बन्ध से रहने वाली शक्ति "तदीया परमा शक्तिः सच्चिदानन्दलक्षणा" (सि.शि. 2.12) सिद्धान्त शिखामणि की इस उक्ति के अनुसार सच्चिदानन्द स्वरूपिणी है। श्वेताश्वतरोपनिषद् में इस शक्ति को माया कहा गया है। यहां माया का अर्थ मिथ्या नहीं है, किनतु "मं शिवम् अयति समभावतः प्राप्नोतीति माया" इस व्युत्पत्ति के अनुसार शिव में स्वाभाविक रूप से रहने वाली शक्ति माया है।

ब्रह्म पुराण में सौर परिवार और सूर्योपस्थान

शिखा त्रिवेदी, सत्यनगर, रायबरेली

वैदिक धर्म के अनुसार देवता-देवियों की संख्या गणनातीत है। "हिन्दुओं के तैतीस कोटि देवता हैं।" इस कथन का तात्पर्य संख्या से नहीं है। इसका अर्थ है कि अगणित प्राणमय विभिन्न आकृतिपूर्ण यह जो सृष्टि है, उसकी उत्पत्ति स्थिति और 8लय के रूप में इसके पीछे कोई सर्वशक्तिमान् पुरुष है।

देवताओं देवियों के असंख्य नाम उसी की असंख्य नाम उसी की विभिन्न शक्तियों के वाहक मात्र हैं। वैदिक धर्म में बहुदेवतावाद की जो कल्पना की गयी है, वह सब उस सर्वशक्तिमान् के असंख्य रूपों की कल्पना मात्र है।

वेद कहते हैं कि वस्तुतः एक आत्मा की विश्वव्याप्त है। विभिन्न देवों में विभिन्नता रूप में गुण में है।, किन्तु मूल में नहीं है। मूल तत्त्व होने के बाद भी विभिन्न गुणों के परिप्रेक्ष्य में इसी का संख्यातीत संबोधन होता है। सभी रूपों में वह एक ही है।

CONCEPT OF MEDICAL PROFESSION IN VEDIC LITERATURE

Dr. NC Panda VVBIS & IS, Panjab University, Hoshiarpur

Our ancient sages have systematized the Medical profession (cikitsa-vrtti) in a clear order, as:

1. Physician (Bhisag)
2. Medicine or Drug (Dravya or ausadhi)
3. Attendant (Upasthata), and
4. Patient (Rogi)

These four medical professions are specifically classified and described by our ancient vaidyas or doctors for the first time in the history or Medicine.

An attempt will be made to highlight and elaborate these points in this paper.

वैदिक वाङ्मय में पर्यावरण विज्ञान (पृथिवी सूक्त पर आधारित)

डॉ. ज्योति कपूर एसोसियेट प्रोफेसर संस्कृत विभाग, स.सा. खन्ना महिला महाविद्यालय, इलाहाबाद

अथर्ववेद के बारहवें कांड के अन्तर्गत पृथ्वी सूक्त में 63 मंत्र हैं। जिसके अध्ययन से ज्ञात होता है कि पृथ्वी सूक्त पर्यावरण किसी भी प्रकार के प्रदूषण का स्वागत नहीं करता। यह पृथ्वी सुन्दर रुप वाली, बहुत जलों वाली, इच्छाओं को पूर्ण करने वाली, स्तुति योग्य तथा कल्याणमयी है। पृथ्वी मातृवत् आदरणीया तथा संरक्षणीया है। हम पृथ्वी के पुत्र हैं। हमारा कर्तव्य है कि हम उसे नरक रूपी प्रदूषण से बचाएं। अंत में हम यह कह सकते हैं कि पर्यावरण के प्रति वर्तमान चुनौती का सामना करने के लिये आध्यात्मिकता और तकनीकि दोनों को सम्मिलित प्रयास करना होगा।

वेद में प्रतिपादित वर्णव्यवस्था

नरेश चन्द्र छात्र संस्कृत, गु.कां.वि., हरिद्वार

वेदों में मानव की उन्नति के लिये चार वर्णो की संकल्पना की गयी है। दुनिया से अज्ञान, अन्याय, अभांव मिटाने के लिये योग्य पुरुषों की आवश्यकता होती है। जो स्थान शरीर में मस्तिष्क का है वही समाज में ब्राह्मण का है। जो स्थान भुजाओं का है वह स्थान क्षत्रिय का है। जो स्थान शरीर में उदर का है वही स्थान समाज में वैश्य का है। गुण कर्म अनुसार यह सामाजिक व्यवस्था मानव की उन्नति के लिये परमावश्यक थी। जो कालान्तर में विकृत हो गयी। अतएव प्रस्तुत शोध पत्र में इस विषय को विस्तार से समझाया जायेगा।

महर्षि दयानन्द की ईश्वरविषयकं अध्यात्म प्रक्रिया

डॉ० सुधीर कुमार आर्य वेद विभाग, गुरुकुल काङ्गड़ी विश्वविद्यालय (हरिद्वार)

महर्षि दयानन्द सरस्वती का मत है कि वेदों का मुख्य तात्पर्य ईश्वर अनुभव में ही है। महर्षि ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के वेदविषयक विचार-प्रकरण में विज्ञान विषय की सबसे मुख्यता बताते हुए लिखते हैं कि **तत्रादिमो विज्ञानविषयो हि सर्वेभ्यो मुख्योऽस्ति । तस्य परमेश्वरादारभ्य तृणपर्यन्तपदार्थेषु साक्षाद् वोधान्वयत्वात्। तत्रापीश्वरानुभवो मुख्यतोऽस्ति। कुत:? अत्रैव सर्वेषां वेदानां तात्पर्यमस्ति, ईश्वरस्य खलु सर्वेभ्य: पदार्थेभ्य: प्रधानत्वात्** अत: एव महर्षि ने अपने वेदभाष्य में ईश्वरपरक अर्थ को प्रधानता दी है। कहीं यदि श्लेषादि से मन्त्रों के एकाधिक अर्थ कियें हैं, तो उसमें प्राय: एक अर्थ ईश्वरपरक भी है और कहीं केवल ईश्वरपरक ही अर्थ किया है।

वेदों में बहुदेवतावाद नहीं है तथा वैदिक अग्नि, इन्द्र आदि देवता एक ईश्वर के ही विभिन्न नाम हैं। इस विषय में महर्षि दयानन्द ने ऋग्वेद के प्रथम मन्त्र के भाष्य में अनेक प्रमाण दिये हैं। उन प्रमाणों की पृष्ठभूमि में ऋग्वेद के प्रथमसूक्त में तो अग्नि का एक अर्थ परमेश्वर ही किया है। आगे भी महर्षि ने देवताओं का अर्थ परमेश्वर लिया है। प्रस्तुत शोधपत्र में कुछ प्रमुख देवताओं यथा सविता, विष्णु, इन्द्र आदि का ईश्वरपरक अर्थ महर्षि भाष्य से प्रस्तुत किया जायेगा।

पृथिवी सूक्त में वैज्ञानिक तथ्य

डॉ० संगीता विद्यालंकार प्राचार्या, कन्या गुरुकुल महाविद्यालय, हरिद्वार

पृथिवी सूक्त में जल, थल एवं वायु तीनों की दृष्टि से पृथिवी का विशद वर्णन है। तीनों का होना ही प्राणी जगत् के लिये उपयोगी है इनमें से एक के नष्ट होने पर भी जीवन का अस्तित्व सम्भव नहीं है। पृथ्वी को ध्रुवा, शिवास्योनम् बनाये रखने में पृथिवी वासियों के गुण ही सहायक हैं। सत्य, ऋत, संकल्प, तप, ज्ञान, त्याग जैसे विशिष्ट गुणों का देशवासियों में होना आवश्यक है। इन्हीं गुणों से हम पृथिवी को संरक्षित कर सकते हैं। आलस्य तथा प्रमाद रहित व्यक्ति प्रकृति का संरक्षण नहीं कर सकता। पृथिवी को शुद्ध भोजन गौ दुग्ध और सुगन्धित उत्पादन का महान् स्रोत माना गया है। प्रत्येक स्थान पर याचना की गयी है माँ हमें दूध दो, शक्ति दो, सुगन्धि दो और जीवन दो। पृथिवी को माँ, मानव को उसका पुत्र मानकर मां शक्ति का दान मांगा गया है।

यह पृथिवी सुन्दर रूप वाली, शान्तिकारक, सुगन्धियुक्त, सुखदेने वाली, बहुत जल वाली, अन्न देने वाली, इच्छाओं को पूर्ण करने वाली तथा स्तुति योग्य तथा कल्याणमयी है। हम सब पृथिवी के पुत्र हैं। यह हमारा कर्तव्य है कि उसकी रक्षा के लिये हम सर्वस्व न्यौछावर कर दें।

पशुपक्षिणां प्राकृतिकज्ञानम्

डॉ० सोमदेव शतांशु प्रवाचक, संस्कृतविभागः गुरुकुलकांगड़ीविश्वविद्यालयः, हरिद्वारम्

संस्कृतवाङ्मये पशुपक्षिणां बहुविधं ज्ञानं वर्णितम्। अत्र वेदेतरपरवर्ति साहित्ये च पशुपक्षिणां प्राकृतिकज्ञानविषये चर्चा विहिता। यजुर्वेदस्य चतुर्विंशतितमेऽध्याये तत्तवित्त्विशिष्टदेवताभ्यः तद्गुणविशिष्टपशुपक्षिणः प्रापणं निर्दिष्टम्–यथा अश्वस्तपरो गोमृगस्ते प्राजापत्याः कृष्णग्रीव आसेयो इत्यादयः। कृकवाकः अधोरामश्च भुवि सूर्यप्रभावविज्ञापकत्वात् आदित्यपक्षीरूपेण निर्दिष्टौ। अथर्ववेदे उलूकः कपोतस्य अग्नौ पदक्षेपस्य मृत्योः पूर्वसंकेतः कथितः।

आचार्यवाराहमिहिरेण विविधपशुपक्षिणां चेष्टाभिः प्राकृतिकघटनानां पूर्वसूचना प्रकाशिताः निदर्शत्वेन यथा वर्षासु प्रदोषकाले श्रृगालानां विरावः साप्ताहिकं प्रवलवर्षणं सूचयति, मार्जाराणां भूमिविकिरणं, पिप्पिलिकानां स्वाण्डानां स्थानान्तरणं, वृक्षशिखिरारूढ़ानां कृकलासानां गगनप्रक्षेपणं, मण्डूकानां कूर्दनं ध्वन्यादिकं च सद्यो वृष्टिसूचकं विद्यते। आधुनिकवैज्ञानिकैरपि सुनामीभूकम्पादिसूचकाः पशुपक्षिचेष्टाः अनुभूताः। एतत्सर्वं पशुपक्षिणां स्वाभाविकं ज्ञानशक्तिं प्रकटयति।

वेदेषु पर्यावरण-संरक्षण-तत्त्वानि

डॉ० हरीशचन्द्र गुरुरानी शोधसहायकः, संस्कृतविभागः गुरुकुलकांगड़ीविश्वविद्यालयः, हद्विारम्

वेदाः सर्वासां विद्यानां निधिभूताः प्रमाणभूताश्च वर्तन्ते। आदिपुरुषेण मनुना वेदानां सर्वमयत्वं स्वीकुर्वनोक्तं यत् 'सर्वं वेदे प्रतिष्ठितम्,। सम्पूर्णां सषष्टिं विलोक्य ज्ञायते यत् वेदादैव सर्वं निस्सरितं जातमस्ति। अस्माकम् ऋषिभिः सर्वेषां प्राणिनां कल्याणाय, संरक्षणाय वेदेषु विविधानां तत्त्वानां चिन्तनं चिन्तितम् । वेदेषु विविधैः तत्त्वैः सह पर्यावरणतत्त्वमपि प्राणिनामन्तस्थ बाह्य वष्तं रक्षयति। पर्यावरणं न केवलं पषथिवी-जलाकाशादिभिः न भवत्यपितु मानवस्य मन-बुद्धि-चित्त-आध्यात्मिक-समाज-धर्मादिनामपि पर्यावरणेन सह सम्बन्धो स्वीक्रियते। एवं प्रकारेण पंचमहाभूतैः आवष्तं प्राकषतिकपर्यावरणं मानवीय प्रकषतिजन्यपर्यावरणं च द्वयोरपि वेदैः सह सम्बद्धोऽस्ति। वस्तुतः वेदेषु पर्यावरणस्य स्पष्टमुल्लेखो नास्ति। चतुर्वेदभाष्यकारेण आचार्य सायणेण **'परितोध ाारक = परिधि परिधानमस्तु कवचस्थानीयोऽस्तु।** इत्युक्ते परितः धारणं क्रियमाणं प्रभामण्डलं यत् कवचतुल्यं रक्षणं कर्तुं सामर्थ्यं स्थापयति। तस्य नाम परिधिरस्ति।[1] अथर्ववेदे पर्यावरणरूपेण परिधिः[2] शब्दस्य प्रयोगः प्राप्यते। महर्षिदयानन्देन निजवेदभाष्ये स्पष्टं लिखितं यत् - 'सर्वलोकावरणं' इत्युक्ते सर्वेषां लोकानामावरणस्वरूपमस्ति पर्यावरणम्।[3] श्रीपाददामोदरसातवलेकरमहोदयेन कथितं यत् संसारोऽयं पष्वी-आप-तेज-वायु-आकाश- तन्मात्रा-महत्तत्वादिभिः सप्ततत्त्वैः संचाल्यते।

> **सप्त युंजन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा।**
> **त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः।।**[4] अथर्ववेद ६.१४

एतेषां सप्तपदार्थानां त्रिगुणितं जातेन एकविंशतिः २१ पदार्थाः भवन्ति। एतेषां एकविंशतिपदार्थानां संरक्षणेन इदं सम्पूर्णं ब्रह्माण्डं पर्यावरणं प्रदूषणं रहितं भवितुं शक्नोति। एतेषामेव एकविंशतिपदार्थानां विस्तृतं चिन्तनं बृहद्शोधकलेवरे चर्चयिष्यते।

छपते-छपते

क्र.	नाम/संस्था	विषय
1.	गोपाल कृष्ण जोशी हनेटी, दाडिमठोक, बागेश्वर, उत्तराखण्ड	वैदिक साहित्य में विश्व बन्धुत्व
2.	मधु अग्रवाल, एसोसियेट प्रोफेसर रा.भा.दे.म., महाविद्यालय, बिजनौर	वेदों में विश्व शान्ति के आदर्श एवं मूल्य
3.	डॉ0 साधना डिमरी, प्रवक्ता एस.सी.ई.आर.टी, नरेन्द्र नगर, टिहरी गढ़वाल	वैदिक वाड्मय वनस्पत्य संरक्षण
4.	सुश्री यशोदा छात्रा, कन्या गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर	वैदिक वाड्मये संस्कारा:
5.	डॉ. अनिकेत कुमार जैन, जैन दर्शन विभाग श्री लाल बहादुर शास्त्री रा.सं. विद्यापीठ, दिल्ली	वैदिक एवं जैन साहित्य में आत्मानुभूति का उपाय
6.	विक्रान्त भास्कर, भास्कर भवन, पोखरिया, बेगूसराय, बिहार	वैदिक साहित्य में कृषि तंत्र
7.	डॉ. जया दवे, सहआचार्य संस्कृत महिला पी.जी. कॉलेज, जोधपुर	वेद जीवनमूल्यों के मुख्य निर्णायक
8.	डॉ0 खालिद बिन यूसुफ खां, रीडर संस्कृत, अ.मु.वि.वि., अलीगढ़	वैदिक शिक्षा का स्वरूप
9.	डॉ. कीर्ति वर्मा, डॉ. ममता दीक्षित, आचार्य नरेन्द्र देव नगर निगम म.म., कानपुर	आयुर्वेद इतिहास तथा वेदमूलकता
10.	डॉ. मदन लाल शर्मा, संहायक आचार्य, राजस्थान संस्कृत वि.वि. जयपुर	भैषज्य वेद में चिकित्सा विज्ञान
11.	डॉ. सुजाता त्रिपाठी, वरिष्ठ व्याख्याता, श्री लाल बहादुर शास्त्री रा.सं. विद्यापीठ, नई दिल्ली	पर्यावरण की भारतीय संकल्पना के स्रोत
12.	केशव दत्त बलियानी, अध्यापक संस्कृत आनन्दमयी विद्यापीठ, हरिद्वार	वेदेषु परिवारस्य अवधारणा
13.	डॉ0 रमेश चन्द्र वर्मा, विभागाध्यक्ष संस्कृत, रा.मा. गंगापुर सिटी	अथर्ववेद के मंत्रों में औषधीय तत्व
14.	Neeraj Chandra Bisht, Lecturer, Ghaziabad UP	Computer Vision and Robotic stystem in Vedas
15.	डॉ. रजनी त्रिपाठी, रीडर हिन्दी विभाग आर.एस.जी.यू. पी.जी. का.पुखरायां	वेदों में काव्यनिष्ठा
16.	ए.आर.नायक, संस्कृत विभाग श्यामदालस आर्ट्स कॉलेज भावनगर, गुजरात	वैदिक संस्कृति-वर्तमान परिप्रेक्ष्य में
17.	डॉ. कौसल्या, वरिष्ठ प्रवक्ता, संस्कृत कालपी कॉलेज, कालपी, जालौन उ.प्र.	वैदिक वाड्मय में पर्यावरण संचेतना
18.	डॉ. श्रीमती सुषमा दुबे, संस्कृत विभागाध्यक्ष एन.ए.के.पी. पी.जी. कॉलेज, फर्रुखाबाद	वेद एवं सदाचार
19.	श्री राजपरा वनराजभाई नारणभाई, सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, राजकोट	वेदों में तत्वज्ञान
20.	वालाणी भरतकुमार केशवलाल, सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, राजकोट	वेद में दर्शन
21.	डॉ. माधव चन्द्र पण्डा, वरिष्ठ उपाचार्य, श्री जगन्नाथ सं.वि.वि. श्री बिहार, पुरी	धर्मशास्त्रे आत्मविज्ञानम्
22.	डॉ. कृष्ण नारायण पाण्डेय, संयुक्त निदेशक राजभाषा आकाशवाणी, नई दिल्ली	किमाश्चर्यम् अत: परम्
23.	निधि अग्रवाल, छात्रा बी.ए., तृतीय वर्ष, आई.के.एम. डिग्री कॉलेज, आनापुर, इलाहाबाद, उ.प्र.	जन्मांग के वारहभाव एवं उनका फल

24.	डॉ. गीतांजलि तिवारी, प्रवक्ता संस्कृत, इमामबाड़ा गर्ल्स पी.जी. कॉलेज, गोरखपुर	मानस पूजा
25.	डॉ. धर्मेन्द्र शास्त्री, रीडर संस्कृत विभाग, खालसा कॉलेज, देवनगर नई दिल्ली	वैदिक समाज व्यवस्था एवं विश्वबन्धुत्व
26.	डॉ. ब्रह्ममुनि, परली वैद्यनाथ, महाराष्ट्र	Modern Science in the in the Vedas
27.	श्रीमती बी.एस. काले, परली वैद्यनाथ, महाराष्ट्र	Vedic Vijnan which is not in modern science
28.	डॉ. सुधा सिंह, प्रवक्ता संस्कृत, योग सिंह राजपूत, शोधच्छात्र हिन्दी, अ.मु.वि.वि., अलीगढ़	यज्ञ और उसकी उपयोगिता
29.	डॉ. विनीता वर्मा, रीडर संस्कृत विभाग, डी.एन. कॉलेज, फतेहगढ़	वैदिक साहित्य में वास्तुशास्त्र
30.	प्रो. हिना जे. पटेल सं.वि. एम.पी.शाह आर्ट्स एण्ड साईस कॉलेज सुरेन्द्र नगर	वैदिक साहित्ये विज्ञानम् (आयुर्वेदः)
31.	डॉ. आशा शर्मा, अध्यक्ष संस्कृत विभाग, कुसुमबाई जैन महाविद्यालय, भिण्ड	वैदिक साहित्य में पर्यावरण चिंतन
32.	आदित्य प्रकाश मिश्र, शोधच्छात्र हिन्दी वि., अलीगढ़ मुस्लिम वि.वि., अलीगढ़	वेद में नीतितत्व
33.	डॉ. रत्ना पाण्डेय, वरिष्ठ प्रवक्ता, स.वि., मनोहर लाल महाविद्यालय जाजमऊ, कानपुर	वर्तमान समय में योगकी प्रासंगिकता
34.	वैद्या सरोज मधुकर तिरपुडे, व्याख्याता, सं.स.सि.वि., महात्मा गांधी आ.का. रुग्णालय और अनुसंधान केन्द्र, सालोड, वर्धा, महाराष्ट्र	आयुर्वेद चिकित्सा प्रणाली रसौषधी
35.	गोविन्दचन्द्रकरः	वाग्विज्ञानम्
36.	आयशा खातून, गु.का.वि.वि., हरिद्वार	वैदिक साहित्य में विश्व बन्धुत्व एक अनुशीलन
37.	प्रो. धीरज वांधरा, कॉलेज ऑफ रूरल स्टडीज, सौराष्ट्र यूनिवर्सिटी, राजकोट	वेद साहित्य में औषधीय वनस्पति
38.	कु. रीतंश शर्मा, शोधच्छात्रा, हिन्दी विभाग अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़	वेदों में शिक्षा का स्वरूप और प्रशिक्षण विधि
39.	डॉ. वन्दना श्रीवास्तव, वरिष्ठ प्रवक्ता हिन्दी विभाग डी.एस.एन. कॉलेज, उन्नाव	वेदों में ब्राह्मण का स्वरूप
		वैदिक मानव दर्शन
40.	पुष्पलता शर्मा, सं.वि., राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर	वैदिक साहित्य में विश्वबन्धुत्व
41.	रमा चौधरी, सं.प्रा., हंसराज महिला महाविद्यालय, जालन्धर	
42.	डॉ. गोपाललाल मीणा, सहायक प्रोफेसर, श्री मधुसूदन सारस्वत शोधच्छात्र, आयुर्वेद संकाय, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणासी	ऋग्वेदीय साहित्य में वर्णित आयुर्वेदीय वनस्पतियां एक समीक्षात्मक अध्ययन

विश्व-वेद-सम्मेलन की जय

डॉ० विजयवीर विद्यालंकार

गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार में, विश्व-वेद-सम्मेलन है।
देश-विदेश के विद्वानों का, एक अपूर्व यह मिलन है।।
महात्मा मुंशीराम तपस्वी के, तप का ही यह फल है।
श्रद्धानन्द की श्रद्धा का, प्रतिरूप बना यह गुरुकुल है।।
अर्वाचीन-प्राचीन पठन-पाठन, दोनों का संगम है।
दीन-धनी दोनों की एकता का, यहाँ दृश्य विहंगम है।।
वत्सों को जो गले लगाए, वात्सल्यमयी यह धरणी है।
अज्ञान-सागर से पार लगाए, साक्षात् यही वैतरणी है।।
वेद-वेदांगों के विद्वानों की, गुरुकुल यह जननी है।
आचार्यों गुरुओं मनीषियों की, पावन यह अवनी है।।
वेदों में है विविध ज्ञान-विज्ञान, विकीर्ण विभासित है।
इस विश्व-वेद-सम्मेलन में, विद्वानों के मन लासित हैं।।
विविध विषय वैदिक वाङ्मय के, यहाँ सुनाए जायेंगे।
ऋग्यजुसामअथर्व-प्रोक्त, मन्त्रों को सस्वर गाएंगे।।
वैदिक विज्ञान पर चर्चा होगी, यह विश्व-वेद-सम्मेलन है।
अहोभाग्य अभ्यागत जन का, धन्य-धन्य जित जीवन है।।
कुल-माता के चरणों में, पुत्रों का शत-शत वन्दन है।
विश्व-वेद-सम्मेलन में, श्रोता-विद्वानों का अभिनन्दन है।

प्राचार्यः पण्डित नरेन्द्र प्राच्य महाविद्यालय (निवृत्त)
अधिष्ठाताः प्राच्य भाषा संकाय (पूर्व)
उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद

विषयानुक्रमणिका

विज्ञान 13-42

वेद और विज्ञान

वैभव शर्मा लखनऊ क्रिश्चियन कॉलेज, लखनऊ

वैदिककाले यज्ञसमिधायाः विज्ञानम्

डॉ. रीता त्रिवेदी सूरत-395001

अथर्ववेद में मशक-विज्ञान

डॉ. लखवीर सिंह संस्कृत विभाग, राजकीय कन्या महाविद्यालय, चण्डीगढ़

डॉ. शगनदीप कौर स्नातकोत्तर प्राणी विभाग, डी.ए.वी. महाविद्यालय, चण्डीगढ़

वेद विज्ञान के सन्दर्भ में

कपिल कुमार हिन्दी विभाग, अ.मु.वि. अलीगढ़

वैदिक संस्कृति में वनस्पति विज्ञान

विपिन कुमार शोधार्थी, वेदविभाग, गु.कां.वि.वि. हरिद्वार

ऋग्वेद में जैव विविधता और उसका संरक्षण

डॉ. नन्दिता सिंघवी व्याख्याता संस्कृत, राजकीय डूंगर महाविद्यालय बीकानेर(राजस्थान)

विमान-विद्या का मूल स्रोत - वेद

लक्ष्मण कुमार गु.कां.वि.वि., हरिद्वार

वेदों में वस्त्र निर्माण कला

श्रीमती अनुपमा कुमारी प्रवक्ता- गृहविज्ञान, कानपुर विद्या मन्दिर महिला पी.जी. कॉलेज, कानपुर

यजुर्वेद में वृष्टि विज्ञान

डॉ. विजयकुमार वेदाङ्कार प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, हिन्दू कॉलेज, सोनीपत

वेदों में वनस्पति विज्ञान

अपर्णा कुमारी राजकीय सं. महाविद्यालय, रांची

योग-वासिष्ठ में उल्लिखित ब्रह्माण्ड की संरचना तथा उसका विस्तार आधुनिक वैज्ञानिक अनुसन्धानों के परिप्रेक्ष्य में एक......

डॉ. सीमा वर्मा ज्योतिर्विज्ञान, लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ

वेदों में वनस्पतियों की महत्ता

इरफान अहमद अलीगढ़

अथर्ववेद का वनस्पति-जगत्

डॉ. बीना कुमारी गुप्ता प्रवाचक एवं अध्यक्ष, संस्कृत विभाग बैकुण्ठी देवी कन्या महाविद्यालय, आगरा

सरस् तथा सोम : वैदिक आलोक में

रेखा अग्रवाल (शोधच्छात्रा) वनस्थली विद्यापीठ जिला-टोंक राजस्थान

ऋग्वेद और अथर्ववेद के अनुसार विद्युत् विवेचन

पारस शास्त्री (शोधच्छात्र) जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

सार्वकालिक एवं सार्वभौमिक वैदिक नियम "ऋत"

डॉ. रामसिंह चौहान स.आचार्य, संस्कृत विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

वैदिक साहित्य में सूर्यग्रह से सम्बन्धित तथ्यों का निरूपण

शोभित सिंह (शोधच्छात्र) ज्योतिर्विज्ञान विभाग, लखनऊ वि.वि. लखनऊ

वैदिक संहिताओं में सूर्य एवं सौर ऊर्जा

डॉ. योगेन्द्र कुमार भानु. (व्याख्याता-संस्कृत) महारानी श्री जया राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भरतपुर

वेदों में सूर्य विज्ञान पुराणों के आलोक में

डॉ. शीतलाप्रसाद शुक्ल वरिष्ठव्याख्याता, श्री ला.ब.शा.रा.संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली

पर्यावरण एवं जल संरक्षण की वैदिक-वैज्ञानिक अवधारणा

डॉ. पुनीत बिसारिया नेहरू स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ललितपुर, उ.प्र.

डॉ. प्रणव, उपाधि स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पीलीभीत, उ.प्र.

आयुर्वेद 43-78

ऋग्वेद में चिकित्सा विज्ञान

गौरव कुमार, शोधच्छात्र गु.कां.वि.वि., हरिद्वार

वेदों में विषम ज्वर (मलेरिया) व उसका निदान

पंकज सैनी व बी.डी. जोशी, जन्तु एवं पर्यावरण विज्ञान विभाग, गु.कां. विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वाल्मीकि रामायण में आयुर्वेदीय तत्त्व

विजय शर्मा एवं बी.डी. जोशी, जन्तु एवं पर्यावरण विज्ञान विभाग, गुरुकुल कांगड़ी वि.वि. हरिद्वार

ऋग्वेद के परिप्रेक्ष्य मे रोग निवारण

सपना देवी (शोधच्छात्रा) हिमांचल प्रदेश वि.वि., शिमला

अथर्ववेद में आयुर्वेद का स्थान

पूजा शर्मा (शोधच्छात्रा) संस्कृत विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

सूर्य-चिकित्सा

डॉ. निरञ्जन साहु प्राचार्य, व.उ. राजकीय विद्यालय, अजमेर

अथर्ववेद का उपाङ्ग आयुर्वेद

डॉ. माधुरी गुप्ता म.प्र. राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, चित्तौड़गढ़ (राज.)

वेदों में आयुर्वेद - एक परिचय

डॉ. पीयूष बाला जम्मू वि.वि., जम्मू

वेदों में आयुर्वेद

कु. अनुज (शोधच्छात्रा) वेद विभाग, गुरुकुल कांगड़ी वि.वि. हरिद्वार

वेदों में आयुर्वेद : एक चिन्तन की रूप रेखा

बलबीर सिंह शास्त्री शोधच्छात्र गु. कां. वि.वि., हरिद्वार

वैदिक कालीन चिकित्सा पद्धति और उसकी प्रासंगिकता

अचला सोनकर प्रवक्ता (इतिहास), दयानन्द गर्ल्स कॉलेज, कानपु

अथर्ववेद में आयुर्वेद

मौ. अखलाक (शोधार्थी) हिन्दी विभाग, अ.मु.वि.वि. अलीगढ़

अग्निपुराण एवं गरुड पुराण में पुनर्नवा

डॉ. नन्दिता सिंघवी वरिष्ठव्याख्याता (संस्कृत), राज. स्ना. डूंगर महा. बीकानेर

सुदर्शन व्यास राज. स्ना. डूंगर महा. बीकानेर

आयुर्वेद में धातु प्रयोग

आरती गुप्ता (शोधच्छात्रा) संस्कृत विभाग, जम्मू वि.वि. जम्मू

शल्यचिकित्सा में प्रयुक्त औषध-द्रव्यों का वानस्पतिक विश्लेषण

कु. विमलेश सचान (शोधच्छात्रा) राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय कोटद्वार (गढ़वाल)

वेदों में वृक्षों का संवर्धन

डॉ. विरमा कुमारी शर्मा दिल्ली वि.वि., दिल्ली

अथर्ववेद में हस्तस्पर्श-चिकित्सा (रेकी) : एक अनुशीलन

डॉ. गीता शुक्ला रीडर, संस्कृत विभाग, भ.दी.आ.क. स्नातकोत्तर महविद्यालय, लखीमपुरखीरी

शतपथ ब्राह्मण में उदुम्बर

डॉ. नन्दिता सिंघवी व्याख्याता, संस्कृत, राजकीय डूंगर महाविद्यालय, बीकानेर (राजस्थान)

रविन्द्र कुमार आचार्य एम.ए. (संस्कृत), बीकानेर

वेदों में सूर्यदेव और आरोग्य

डॉ. इन्दु तिवारी रीडर (संस्कृत), डी.एस.एन. कॉलेज, उन्नाव

अथर्ववेद में आयुर्वेद का महत्व

डॉ. किरन त्रिपाठी जुहारी देवी गर्ल्स पो.ग्रे. कालेज कानपुर

डॉ. रामानुज त्रिपाठी रीडर (हिन्दीविभाग), डी.एस.एन.पीजी. कॉलेज उन्नाव

योग, अध्यात्म, दर्शन, मनोविज्ञान 79-128

भारतीय दार्शनिक परिप्रेक्ष्य में वैदिक साहित्य- एक चिन्तन

रेनू सिंह शोधच्छात्रा, संस्कृतविभाग, फिरोज़ गाँधी कालेज, रायबरेली

वेदों में प्रतिबिम्बित तेजस्वी जीवनवाद

डॉ. मनसुख के. मोलिया रीडर, संस्कृत भवन, सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, राजकोट(गुजरात)

शिवसंकल्पसूक्त और न्याय-वैशेषिक का मनस् तत्त्व

डॉ. अनीता राजपाल एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, हिन्दू महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली 110007

वैदिक दर्शन में चेतना की अवधारणा

डॉ. नितिश दुबे रीडर दर्शन विभाग, डी.ए.वी. कालेज, कानपुर

श्वेताश्वतर में ब्रह्म की उभयरूपता

डॉ. बबीता शर्मा प्रवाचिका- कन्या गुरुकुल महाविद्यालय, हरिद्वार

वैदिक साहित्य में षोडश संस्कार

भरतकुमार नगाभाई जादव (रिसर्चफैलो) श्री सोमनाथ सं.यूनि. वेरावल(गुजरात)

वैदिक अद्वैतवाद

प्रशान्त राठौर (शोध-छात्र) गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

स्वामी दयानन्द का वैदिक दर्शन

क्षिप्रा गौतम (शोधच्छात्रा) संस्कृतविभाग, गुरुकुल कां.वि.वि. हरिद्वार

वेदों में मोक्ष का स्वरूप

प्रशान्त कुमार (शोधच्छात्र) दर्शनशास्त्रविभाग गुरुकुल कां.वि.वि. हरिद्वार

वेदों में भक्ति-तत्त्व

डॉ. राजेश सी. व्यास सेठ पी.टी. आदर्श कॉलेज, गोधरा गुजरात

वेदों में तत्त्व चिन्तन

डॉ. सोहनपाल सिंह आर्य एसो.प्रोफेसर, दर्शनशास्त्रविभाग, गु.कां.वि.वि. हरिद्वार

स्वामी दयानन्दसरस्वतीकृत ऋग्वेदभाष्य में इन्द्र का आधिभौतिक स्वरूप

डॉ. राजेश कुमार सहा. आचार्य, संस्कृतविभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

वेदों में ऋत की अवधारणा : एक दार्शनिक विवेचन

डॉ. विपिन कुमार नीरज प्रवक्ता, दर्शनशास्त्रविभाग, डॉ. अम्बेडकर डिग्री कॉलेज, मेरठ

वेदों में जल तत्त्व की अवधारणा

डॉ. शुभा बाजपेयी रीडर- हिन्दी विभाग, डी.एस.एन. कॉलेज, उन्नाव

नासदीय सूक्त में वर्णित सृष्टि के रहस्य

डॉ. लता शर्मा व्याख्याता(संस्कृत) गौरी देवी राजकीय महिला महाविद्यालय अलवर(राज.)

शुक्लयजुर्वेद में सोमतत्त्व

सञ्जीव कुमार पाण्डेय (शोधच्छात्र) वेद विभाग, सं.वि.ध.वि.संकाय, काशी हिन्दू वि.वि.

संहिताओं में दार्शनिक विचार

इन्दु शर्मा (शोधच्छात्रा) चौ. चरण सिंह वि.वि., मेरठ

कर्मयोग का वैदिक मूलमन्त्र- 'चरैवेति चरैवेति'

डॉ. पुष्पा गुप्ता स्वस्तिक कुञ्ज, रोहिणी दिल्ली

वेदों में मनोविज्ञान विवेचन

डॉ. मोहम्मद शरीफ रीडर- संस्कृत विभाग, अलीगढ़ मुस्तिलम विश्वविद्यालय, अलीगढ़

वैदिक साहित्य में मनोविज्ञान

डॉ. अर्चना कुमारी दुबे प्रवक्ता- संस्कृत, वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान

वैदिक सृष्टि प्रक्रिया एवं आधुनिक विज्ञान

डॉ. अंजना शर्मा प्रवक्ता- संस्कृतदर्शन एवं वैदिक अध्ययन विभाग, वनस्थली विद्यापीठ राजस्थान

वेदों में मनोविज्ञान

श्री रमेश सिंह, एसोसिएट प्रोफेसर, शारीरिक-शिक्षा रा.सं.सं.(मानित विश्वविद्यालय) जम्मू

वेदों में मनोविज्ञान की अवधारणा

रेखा शर्मा(शोधार्थी) अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़

वैदिक साहित्य में मनोविज्ञान

डॉ. मनुप्रताप सिंह एम.जे.पी.रूहेलखण्ड वि.वि. बरेली

योगदर्शन में प्राणायाम

विवेक कुमार सिंह प्रवक्ता- शारीरिक शिक्षा, आर्यावर्त इन्स्टीट्यूट आफ हायर एजुकेशन, लखनऊ

वेदों में मानवीय चेतना

डॉ. लता गर्ग रीडर एवं अध्यक्ष- संस्कृतविभाग मुन्नालाल एवं जयनारायण खेमका गर्ल्स कालेज, सहारनप

ऐतरेय आरण्यक मे प्राणविद्या

डॉ. हेतल एम. पाण्डेय संस्कृत विभाग, स्कूल ऑफ लैंगुएज, गुजरात यूनिवर्सिटी, अहमदाबाद

वेदों में योगविद्या

अक्षय कुमार गौड शोधच्छात्र(दर्शन विभाग) गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वेदों में योग

गौरव मलिक(शोधच्छात्र) दर्शनशास्त्र विभाग, गुरुकुल कां.वि.वि. हरिद्वार

योग द्वारा प्रादुर्भूत कुण्डलिनी शक्ति की मीमांसा

पूनम शर्मा(शोधच्छात्रा) संस्कृतविभाग, जम्मूविश्वविद्यालय, जम्मू

अथर्व-वैदिक मनश्चिकित्सा

डॉ. नीलम त्रिवेदी उपाचार्य- संस्कृतविभाग, दयानन्द गर्ल्स पी.जी. कॉलेज, कानपुर

छात्राओं के तनाव और शारीरिक वजन के उपचार में योग की भूमिका

डॉ. रीता भल्ला योग विभाग, एच.पी. यूनिवर्सिटी, शिमला

वैदिक वाङ्मय में योगतत्त्व - एक परिशीलन

कु. दीप्ति शर्मा(शोधच्छात्रा) कन्या गुरुकुल महाविद्यालय, हरिद्वार

वेदों में योगतत्त्व और उसका परवर्ती साहित्य पर प्रभाव

संजय सिंह(शोधच्छात्र) दर्शन विभाग, गुरुकुल कां.वि.वि. हरिद्वार

पतञ्जलिप्रोक्त यम का वैदिक आधार

गुलाब सिंह (शोधच्छात्र) दर्शन विभाग, गुरुकुल कां.वि.वि. हरिद्वार

उपनिषद् वाङ्मय में योगतत्त्व : एक विवेचन

डॉ. नरेश कुमार प्रोजैक्ट फैलो, वेदविभाग, गुरुकुल कां.वि.वि. हरिद्वार

वैदिक साहित्य में योग और मनोविज्ञान

महेश कुमार मैनाली, पवमान सुवेदी(शोधच्छात्र) योगविभाग, गुरुकुल काङ्गड़ी वि.वि. हरिद्वार

उपनिषदों में प्राणविद्या

शालिनी सिंह(शोधच्छात्रा) बैसवारा पी.जी.कॉलेज, लालगंज, रायबरेली

आयुर्वेद एवं योग की मनुष्य जीवन में महत्ता

डॉ. वंदना जोशी राजनीतिविज्ञान विभाग, सेठ ज्ञानीराम बंशीधर पोद्दार कॉलेज, झुंझुनू(राजस्थान)

ज्योतिर्विज्ञान में षट्चक्रों की रचना

डॉ. नरेश दीक्षित लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

नासदीय सूक्त-मीमांसा

आचार्या सुष्मिता पाण्डेय शास्त्री प्रतापगढ़ (उ.प्र.)-230001

विश्वोत्पत्ति के मूल- दशवाद

डॉ. सत्य प्रकाश दुबे निदेशक, पण्डित मधुसूदन ओझा शोध प्रकोष्ठ, संस्कृत विभाग, जयनारायण व्यास वि.वि. जोधपुर(राज.)

वेदान्त में काल का स्वरूप

कु.आराधाना(शोधच्छात्रा) छत्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर

वेदों में विश्वबन्धुत्व के यौगिक सूत्र

आचार्य दयासागर प्रधान, छत्तीसगढ़ प्रान्तीय आर्यप्रतिनिधि सभा दयानन्द परिसर, आर्यनगर, दुर्ग(छ.ग.)

दैवीय महाशक्ति एवं वैज्ञानिक साधना के रूप में गायत्री महामन्त्र

डॉ. बबिता सिंह प्रवक्ता-संस्कृतविभाग, चौ.चरण सिंह पी.जी. कॉलेज हैंवरा इटावा।

सविता सुमन अध्यापिका(प्राच्यविद्या) रा.रो.इ.स्तरीय विद्यालय, समस्तीपुर (बिहार)

उपनिषत्तत्व-विमर्श

डॉ. जगन्नाथ झा सेवानिवृत्त- प्रधानाध्यापक, शुभंकरपुर, दरभंगा।

शिवसंकल्प ऋषि का मनस्तत्त्व चिन्तन

कैलाश चन्द्र(शोधच्छात्र) संस्कृतविभाग, दिल्लीविश्वविद्यालय, दिल्ली

ज्ञानी का ज्ञानः प्रतिनिधान

कुमारी श्वेता श्रीवास्तव लखनऊ

वेदों में भक्तियोग का स्वरूप

रुचि मिश्रा(शोधच्छात्रा) लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

योग-सुखमय जीवन का स्वर्णिम पथ

डॉ. अनीता गुप्ता लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

अमृतनाद उपनिषद् - एक अध्ययन(योगशास्त्रीय तत्त्वों के आधार पर)

राम हरीश मौर्य (शोधच्छात्र) वेदविभाग, गु.कां.वि.वि.हरिद्वार

याज्ञवल्क्योपनिषद् - एक अध्ययन

डॉ. अमित कुमार पाण्डेय दी.द.उ.गोरखपुर वि.वि.

शुक्ल यजुर्वेद के सप्तम अध्याय में वर्णित योग विद्या और उसकी उपादेयता

डॉ. विजेन्द्र कुमार तोमर के.डी.पी.जी. कॉलेज मवाना मेरठ

वेदों में भक्ति की अवधारणा

नवदीप गुप्ता गुरुनानक देव यूनिवर्सिटी अमृतसर

छान्दोग्योपनिषद् के आरुणि-श्वेतकेतुसंवाद में जीव और ब्रह्म की एकता का स्वरूप

डॉ0 मधु श्रीवास्तव रीडर, संस्कृत-विभाग, एम.एम.एच.कॉलेज, गाजियाबाद

ऋग्वेद की सृष्टि-प्रक्रिया का दार्शनिक विवेचन

डॉ0 मधु बाला सिन्हा व्याख्यात्री संस्कृत, "आनन्द निकेतन", शिवपुर मार्ग, महेन्दू, पटना

उपनिषदों के दार्शनिक तत्त्व

डॉ0 सरोज नौटियाल कन्या गुरुकुल महाविद्यालय, देहरादून

ऋग्वेद, बौद्ध दर्शन और त्रिक साहित्य में आत्मा का स्वरुप-एक विवेचन

डॉ0 वाहिद नसरु सहायक प्रोफेसर, मध्य एशियाई अध्ययन केन्द्र, कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर, काश्मीर

वर्तमान सन्दर्भ में योग की भूमिका

डॉ0 योगेश्वर दत्त योग विभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वेदों में योग-एक परिचय

डॉ0 जे0के0 गोदियाल हे०नं०ब०ग० केन्द्रीय वि०वि०, श्रीनगर, ग० यू०के०

वेद वैदिक दर्शन और भूमंडलीकरण

सुशान्त कुमार

वैदिक वाङ्मय में वर्णित देवताओं पर पण्डितराज कृत स्तोत्र ग्रन्थों का दार्शनिक अध्ययन

विनय कुमार त्रिपाठी शोधच्छात्र इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

उपनिषदों में योगदर्शन सिद्धान्त विमर्श

कु० आकांक्षा शुक्ला दिल्ली

पुरुषसूक्त में तत्त्वज्ञान

जाडा कनाभाई रत्नाभाई सौराष्ट्र युनिवर्सिटी, राजकोट

उपनिषदों में निरुपित योग

डॉ० धनंजय कुमार सिंह, डॉ० प्रतिमा खोस्या व्याख्याता (संस्कृत) बाबूशोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर (राज.)

परांचेतना के सूत्र स्वरुप-वेद

डॉ. रामप्रकाश शर्मा 'सरस', दिल्ली

वेदों में ब्रह्मतत्त्व

कुलदीप पन्त शोधच्छात्र, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

वेदेषु अद्वैत तत्त्वविमर्शः वैदिक वाङ्मय में आत्मदर्शन

डॉ० तुलसी देवी रीडर संस्कृत विभाग, महात्मा गाँधी बालिका पी.जी. कॉलेज, फिरोजाबाद (उ0प्र0)

ऋग्वेद में प्रकृति के पर्याय

डॉ० अनुराग शुक्ल वरिष्ठप्रवक्ता एवम् अध्यक्ष, संस्कृतविभाग, म०मा०स्वा०महा०, कालाकाँकर, प्रतापगढ़ (उ0प्र0)

वेदों में प्राणायाम

कमल किशोर (एम.ए. विज्ञान) शोधच्छात्र देवसंस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार

सांख्यदर्शन का वैदिक आधार

प्रो. ज्ञानप्रकाश शास्त्री श्रद्धानन्द वैदिक शोध संस्थान, गु.कां. वि.वि., हरिद्वार

नासदीयसूक्ते विद्यमाना दार्शनकता

वाला भीमसीभाई एच. सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, राजकोट

कठोपनिषद् में परा विद्या के गूढ़ तत्व

डॉ. रोशनी संस्कृत विभाग, रा.ना.महा0 जयहरीखाल, पौड़ी गढ़वाल (उत्तराखण्ड)

वैदिक साधना पद्धति-समग्र योग

डॉ० ईश्वर भारद्वाज प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, मानवचेतना एवं योगविज्ञान विभाग, गु. कां. वि. वि., हरिद्वार

वेदों में योगविद्या का वर्णन

प्रमोदकुमार गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर हरिद्वार (उत्तराखण्ड)

सृष्टि रचना तथा पद्धति

डॉ० हरिहर प्रसाद, गोरखपुर

वैदिक साहित्ये त्रैतवादविवेचनम् (महर्षि दयानन्द परिप्रेक्ष्ये)

सालिकरामः विद्यालंकार शोधछात्र, संस्कृत विभाग गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार (उत्तराखण्ड)

वैदिक सांख्यदर्शन के विविध आयाम

वेदनिधि प्रवक्ता विवेकानन्द महाविद्यालय दिल्ली विश्वविद्यालय

वैदिकसाहित्ये योगविद्या

डॉ0 शशिकान्त द्विवेदी प्रवक्ता वैदिकदर्शन विभाग, संस्कृतविभाग धर्मविज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

कर्त्तव्य आत्मसंस्कारो यमेन नियमेन च

डॉ. कमलेशमिश्रः उपाचार्यः स्ना.न्यायदर्शनविभागस्य, श्रीजगन्नाथसंस्कृतविश्वविद्यालये, श्रीविहारे पुरीस्थे

मीमांसाशास्त्रे वर्णित-विनियोगविधेः षट्प्रमाणानां स्वरूप-विमर्शः

डॉ. नारायणप्रसादभट्टराई ऋषिकेश

वेदेषु मनोविज्ञानम्

डॉ. योगिनी हिमांशु व्यासः गांधीनगरम् गुजरातः

अष्टाङ्गयोगस्य स्वरूपप्रयोजनविवेचनम्

डॉ. सुखमयभट्टाचार्यः योगविज्ञानमहाविद्यालयः, शिलचरः

वेदेषु प्राणतत्त्वम्-प्राणस्य स्वरूपं महिमा च

डॉ. जयदत्त उप्रेती अल्मोड़ा

संस्कृत वाङ्मये मनोविज्ञानम्

प्रो. लोकमान्यमिश्रः रा.सं.सं.(मानितविश्वविद्यालयः) लखनऊपरिसरः

वन संरक्षण : वैदिक एवं आधुनिक सन्दर्भ

डॉ. अर्चना श्रीवास्तव महिला महाविद्यालय किदवईनगर, कानपुर

वैदिक साहित्य और पर्यावरण चिन्तन

डॉ. हेमा देवरानी राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर (राज.)

वेदों में पर्यावरणीय जागरूकता

डॉ. अरुण मिश्र शा.मा. बाई महिला महा. जबलपुर(मध्यप्रदेश)।

वैदिक वाङ्मय में प्रतिपादित पर्यावरण सुरक्षा की अवधारणा

डॉ. गया प्रसाद दुबे श्रीगांधी महाविद्यालय घोखारा, रायबरेली

पर्यावरण संरक्षण की औपनिषत्की-भावना

डॉ. मीरा द्विवेदी वनस्थली विद्यापीठ वनस्थली(टोंक) राजस्थान

पर्यावरणीय संकट के समापन में वैदिक वाङ्मय का योगदान

डॉ. नरेन्द्र कुमार सुल्तानपुर (उ.प्र.)

वैदिक वाङ्मय में पर्यावरण चेतना

शत्रुघ्न कुमार पाण्डेय मार्खम कालेज ऑफ कॉमर्स विनोबा भावे विश्वविद्यालय, हजारीबाग (झारखण्ड)

वेदों में पर्यावरण संरक्षण विषयक अवधारणा

डॉ. (श्रीमती) पुष्पा अवस्थी आचार्य, संस्कृत विभाग कुमाऊँ विश्वविद्यालय एस.एस.जे. परिसर, अल्मोड़ा

वर्तमान पर्यावरण असंतुलन और वैदिक कालीन पर्यावरण संचेतना

डॉ. प्रतिभा त्रिपाठी रीडर एवं विभागाध्यक्ष- प्रशिक्षण विभाग, सतीशचन्द्र कालेज, बलिया (उ.प्र)

डॉ. अवधेश नारायण तिवारी हण्डिया पी.जी. कालेज हण्डिया, इलाहाबाद

रेडियो-सक्रियता-प्रदूषण से मुक्ति के वैदिक उपाय

कु. बिन्दिया रत्नम्(शोधच्छात्रा) रसायन विभाग, देवनागरी पी.जी.कॉलेज मेरठ, उत्तर प्रदेश

पर्यावरण चेतना

डॉ. कुलदीप तिवारी सदस्य- एस.आर.जी. बेसिक शिक्षा उत्तर-प्रदेश

वैदिक साहित्य में पर्यावरण चेतना

डॉ. राजा एन. काथड रीडर, संस्कृत भवन, सौराष्ट्र विश्वविद्यालय राजकोट(गुजरात)

वैदिक पर्यावरण में वायु

डॉ. नीलम श्रीवास्तव रीडर, संस्कृत, ज्वाला देवी वि.म.स्ना.महा., कानपुर

अथर्ववेद में भूमि सूक्त एवं पर्यावरण

मूलचन्द प्रवक्ता-संस्कृत, रा.लो. महाविद्यालय चूरू

पर्यावरण संरक्षण एवं धर्म

प्रेरिका अग्रवाल (शोधच्छात्रा) संस्कृत एवं प्राकृतभाषा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ

वायु प्रदूषण का वैदिक समाधान

डॉ. ए.बी.चन्द्रमौलि रीडर, गणित विभाग, मेरठ कॉलेज, मेरठ (उ.प्र.)

वैदिक साहित्य में तीर्थ यात्रा, पर्यटन एवं पर्यावरण

सुधांशु कौशिक व बी.डी. जोशी जन्तु एवं पर्यावरण विज्ञान विभाग, गुरुकुल कांगड़ी वि.वि. हरिद्वार

वेदों में पर्यावरण चेतना

देवेन्द्रपाल सिंह तोमर प्रवक्ता, समाजशास्त्र, जनता वैदिक कॉलेज बड़ौत (बागपत)

वैदिक अग्निहोत्र और पर्यावरण

श्रीमती गायत्री आचार्या सरस्वती कन्या महाविद्यालय, तारानगर (चूरू) राजस्थान

अरुण कुमार आचार्य (शोधच्छात्र)राजकीय स्ना. महाविद्यालयकिशनगढ़(अजमेर) राज.

वैदिकसाहित्य में पर्यावरणविज्ञान

डॉ. रामेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी उपाचार्य एवं विभागाध्यक्ष(संस्कृत) रा.ग्रा.परास्नातक महा. पुखरायाँ, कानपुर (देहात)

वेदों में पर्यावरण चेतना

योगेन्द्र कुमार शास्त्री (शोधच्छात्र) संस्कृतविभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

पर्यावरण संरक्षण में आपः तत्त्व का प्रातिष्ठ्य

डॉ. रूपकिशोर शास्त्री रीडर- वेदविभाग, गुरुकुल काङ्गड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

पर्यावरण और प्रदूषण

डॉ. अम्बरीष कुमार शास्त्री एसो. प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, संस्कृतविभाग ज.ने. पी.जी.कॉलेज, बाराबंकी, (उ.प्र.)

पर्यावरण संरक्षण में वेदों की भूमिका

डॉ. आशा रानी पाण्डेय रीडर(संस्कृतविभाग) डी.एस.एन. कॉलेज, उन्नाव

वेदों में पर्यावरण की अवधारणा

डॉ. मुरली मनोहर द्विवेदी रीडर, संस्कृत विभाग महामति प्राणनाथ महाविद्यालय, मऊ चित्रकूट

डॉ. संतोष कुमार चतुर्वेदी वरिष्ठ प्रवक्ता, इतिहास विभाग, महामति प्राणनाथ महाविद्यालय, मऊ चित्रकूट

वेदों में पर्यावरण

रजनी महीनीया(शोधच्छात्रा) संस्कृतविभाग, जम्मू विश्वविद्यालय

वैदिक साहित्य में पर्यावरण चिन्तन

रेखा जैन(शोधच्छात्रा) संस्कृतविभाग, अलगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ

वैदिक वाङ्मय में पर्यावरणीय प्रसंग

डॉ. संजय कुमार सिंह असि. प्रोफेसर(भूगोल) तिलक महाविद्यालय औरैया(उ.प्र.)

वेदों में पर्यावरण

सचिन कुमार(शोधच्छात्र) हिन्दीविभाग, अ.मु.वि.वि., अलीगढ़

वेदों में पर्यावरण चिन्तन

शिशिर कुमार पाण्डेय(शोधच्छात्र) संस्कृत विभाग, राँची झारखण्ड

वेदों में पर्यावरण

राजीव कुमार त्रिपाठी संस्कृतविभाग, इ.वि.वि. इलाहाबाद

वैदिक साहित्य में वर्णित पर्यावरण चेतना

वैशाली श्रीवास्तव हिन्दी विभाग, फीरोज गाँधी कालेज, रायबरेली

ऋग्वेदिक पंचतत्त्वों की स्तुति तथा पर्यावरण

डॉ. शालिनी अग्रवाल प्रवक्ता- जुहारी देवी गर्ल्स पी.जी. कॉलेज, कानपुर

पर्यावरण-संरक्षण में वैदिक साहित्य की प्रासंगिकता

डॉ. निरपेन्द्र कुमार सिन्हा प्रवक्ता- समाजशास्त्र विभाग चौ.चरणसिंह पी.जी. कॉलेज, हैवरा, इटावा(उ.प्र.)

वेदों में पर्यावरण चिन्तन

उमेश कुमार शर्मा सोडाला जयपुर

वेदों में पर्यावरण

आचार्य देवांशु कुमार सिंह **'शास्त्री'** जयप्रकाश विश्वविद्यालय छपड़ा (बिहार)

वेदों में पर्यावरण की अवधारणा

डॉ. रेनू तिवारी डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी रा.महा.भदोही

वेदों में पर्यावरण

डॉ. अश्विनी कुमार शुक्ल बाराबंकी उ.प्र.

पर्यावरण संरक्षण में वेदों की उपादेयता - ऋग्वेद के विशेष संदर्भ में

डॉ. सरोज बिल्लोर व डॉ. दिलीप बिल्लोरे माता जीजाबाई शा. कन्या स्नातकोत्तर महाविद्याय मोती तबेला इन्दौर (म.प्र.)

यजुर्वेद में पर्यावरण चिन्तन

डॉ. सन्तकुमार मिश्र हापुड, गाजियाबाद(उ.प्र.)

वेदों में पर्यावरण-संरक्षण

डॉ. पंकज त्रिवेदी पी.एन.आर. शाह महिला आर्ट्स एण्ड कॉमर्स कॉलेज, पलीताना, गुजरात

वेदों में पर्यावरण शिक्षा

डॉ. ज्योत्सना सक्सेना डी.डब्लू. टी. कॉलेज, देहरादूरन

डॉ. गीतिका मेहरोत्रा पेसलवीड कॉलेज, देहरादून

ऋग्वेदीय ऋचाओं में पर्यावरण चेतना

पूजा राजपूत संस्कृत विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

वेदों में पर्यावरण एवं संरक्षण

श्रीमती ऋचा पंडित, शोधच्छात्रा महारानी लक्ष्मीबाई शासकीय उत्कृष्ट महाविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)

वैदिक पर्यावरण विज्ञान

मेघदूत में वर्णित पर्यावरण का विवेचन

पर्यावरण समस्या-वैदिक चिन्तन

डॉ. दीनदयाल वेदालङ्कार वैदिक कर्मकाण्ड विभाग, गु० का० वि० वि०, हरिद्वार

पर्यावरण एवं वायु प्रदूषण

राजीव कुमार शुक्ल परसपुर, गोंडा(उ.प्र.)

वेदों में पर्यावरण

प्रो. विमला आर्या मगध विश्वविद्यालय, बोधगया (बिहार)

जीवन का पर्यावरण आयुर्वेद

प्रो. आर.जी. मकवाना म्युनिसिपल आर्ट्स एण्ड कामर्स कालेज, उपलेटा, गुजरात।

आधुनिक पर्यावरणीय बोध का दिग्दर्शक ऋग्वेद का अरण्यानी सूक्त

डॉ० सरिता भार्गव अध्यक्ष संस्कृत विभाग, राजकीय महाविद्यालय, कोटा

वेदों में पर्यावरण प्रदूषण

पी०सी०जोशी एवं महादेव सेमवाल जन्तु एवं पर्यावरण विज्ञान विभाग, गु.कां. वि. वि., हरिद्वार

वेदों में पर्यावरण संरक्षण

डॉ. मनोज कुमार राव (प्रवक्ता) भारतीय संस्कृति एवं पर्यटन अध्ययन, देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार

प्राचीन ग्रंथों में पर्यावरण संरक्षण्ण

पवन कुमार भारती श्रीराम इन्सटीट्यूट फोर इन्डस्ट्रियल रिसर्च, दिल्ली

वेदों में पर्यावरण संरक्षण

डॉ० अलका प्रकाश प्रवक्ता (हिन्दी) इलाहाबाद डिग्री कॉलेज, इ0वि0वि0, इलाहाबाद

वैदिक साहित्य में पर्यावरण-चेतना

डॉ० व्रजेश कुमार पाण्डेय विभागाध्यक्ष, संस्कृत विभाग राजकीय महिला महाविद्यालय, नवाबी रोड, हल्द्वानी (नैनीताल)

वेदों में वृक्ष संरक्षण सम्बन्धी तत्त्व एवं वर्तमान में उसकी उपयोगिता

डॉ० रुचि गुप्ता वरिष्ठ प्रवक्ता-संस्कृत विभाग दि० जैन महाविद्यालय बड़ौत (बागपत) उ०प्र०

वेदों में पर्यावरण विचार

डॉ० मयूरी भाटीया श्रीरंगनवचेतन महिला आर्ट्स कॉलेज, वालीया गुजरात

प्रो. डी.जी. अद्रोजा श्रीजयेन्द्रपुरी आर्ट्स एन्ड साइन्स कॉलेज भरुच, गुजरात

स्थलमण्डलस्य पर्यावरण सुरक्षायै वैदिकाः उपायाः

डॉ0 बृहस्पति मिश्रः प्राध्यापकः, संस्कृत महाविद्यालयः, श्री नयनादेवी जी, बिलासपुर हि० प्र०

वैदिक वाङ्मये पर्यावरणसंरक्षणम्

डॉ0 चान्दकौर मान रा० व० मा० विद्यालय, उग्रा खेड़ी (पानीपत)

वैदिक पर्यावरणसंरक्षणस्यावधारणा

डॉ. रामसुमेर यादवः लखनऊ विश्वविद्यालयः, लखनऊ

वेदेषु तन्मूलकपुराणेषु पर्यावरणविमर्शः

डॉ. हरेराम त्रिपाठीः उपाचार्य सर्वदर्शन श्री ला.ब.शास्त्री रा.सं विद्यापीठ, नई दिल्ली

राजधर्म, लोक प्रशासन 169-188

वैदिक राजनीतिक अवस्था

डॉ. अर्चना चौहान राजनीति शास्त्र विभाग राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, भोपाल

वैदिक संहताओं में 'युद्ध नीति'

जहाँ आरा अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी अलीगढ़

वैदिक वाङ्मय में मातृभूमि की परिकल्पना

सुश्री नीतू शर्मा अंशकालिक प्रवक्ता(साहित्य), रा.सं.सं., श्रीरणवीर परिसर, जम्मू

राष्ट्र बनाम मातृभूमिः

डॉ. किसना राम संस्कृत प्राध्यापक, एम.बी.डी. राजकीय महाविद्यालय कुशलगढ़।

अथर्ववेद में प्रतिबिम्बित राष्ट्रभक्ति

डॉ. किरण टण्डन प्रोफेसर एवं अध्यक्ष(संस्कृतविभाग), कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

वैदिक काल में सेना के प्रमुख विभाग

डॉ. ए.वी. कौर वरिष्ठ प्रवक्ता, चौ.चरणसिंह विश्वविद्यालय, मेरठ

वैदिक राजा की लोकाराधना

डॉ. महीपाल यादव स.आचार्य, संस्कृत विभाग, राज.वि.वि. जयपुर

धर्मशास्त्रोक्त दण्ड-व्यवस्था

डॉ. वीरेन्द्र कुमार मिश्र हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला

वैदिक वाङ्मय में सैन्य व्यवस्था व प्रकार

निधि शर्मा (शोध छात्रा) आर.जी.(पी.जी.) कालेज, मेरठ

महर्षि दयानन्द की दृष्टि में न्याय व्यवस्था

डॉ0 दयाशंकर विद्यालंकार अतीन्द्रिय योग साधना एवं शोध संस्थान, हरिद्वार

वर्तमान समय में वैदिक राजनीति की प्रासंगिकता

डा० शिखा जैन राजनीति शास्त्र, बी.एस.एम. (पी.जी.) कालेज, रुड़की

स्मृतिकालीन दण्डव्यवस्था

श्रीमती शशी प्रभा, शोधार्थिनी, संस्कृत विभाग, गुरुकुल कांगड़ी वि.वि. हरिद्वार

वैदिक कालीन एवं वर्तमान दण्ड व्यवस्था का तुलनात्मक अध्ययन

अशोक कुमार तिवारी शोध छात्र, दर्शन विभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

ऋग्वैदिक दाशराज युद्धः प्रयोजन और परिणति

प्रो. ओमप्रकाश पाण्डेय, आचार्य एवं अध्यक्ष, संस्कृत तथा प्राकृत भाषा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

वैदिक राजनीतिः

डॉ. बिजेन्दु राव गुड़गांव

वेदों में राजनीतिक चिन्तन का स्वरुप

उमाकान्त इन्दौलिया प्रवक्ता, भा.सं. एवं प.अध्ययन विभाग, देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार

अरुणेश पराशर प्रवक्ता, भा.सं. एवं प.अध्ययन विभाग, देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार

धर्मशास्त्र में ब्राह्मणों की राजनैतिक स्थिति

डॉ० मधु सक्सेना रीडर एवं अध्यक्षा संस्कृत विभाग, रघुनाथ गर्ल्स (पो०ग्रे०) कॉलिज, मेरठ

राष्ट्रसभासूक्तस्य राजकीयदृष्ट्या परिशीलनम्

प्रो. ललितः पटेलः श्रीसोमनाथ-संस्कृतयूनिवर्सिटी, वेरावलम्।

सर्वज्ञानमये वेदे वर्णितं धर्मशासनम्

डॉ. कृपाशङ्करमिश्रः सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालयः, वाराणसी(उ.प्र.)

वेदे राजनीतौ शासन व्यवस्थायाः समीक्षा

पं. रामानुग्रहः शर्मा रांची(झारखण्ड)

महाभारत में प्रतिबिम्बित वैदिक राजधर्म

वन्दना पाण्डेय (शोधच्छात्रा), वाराणसी

अर्थशास्त्र/व्यापार/वाणिज्य 189-205

समाज/ परिवार 206-237

वैदिक दृष्टि में सन्तान का माता-पिता के प्रति कर्त्तव्य

सलोनी शोधच्छात्रा संस्कृत विभाग, गुरुनानकदेव यूनिवर्सिटी, अमृतसर, पंजाब

वेदों में समाजशास्त्र

विनोद कुमार शोधच्छात्र, लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ

वैदिक साहित्य में वर्ण एवं आश्रम व्यवस्था निरूपण

संजूलता वर्मा शोधच्छात्रा, संस्कृत तथा प्राकृत भाषाविभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

आधुनिक सामाजिक सन्दर्भो में वैदिक समाजवाद

डॉ. जवाहर लाल वरिष्ठ व्याख्याता, सर्वदर्शन विभाग, श्री ला.ब.शा.रा.सं.विद्यापीठ, नई दिल्ली

भारतीय समाज के वैदिक स्रोतों का विवेचनात्मक अध्ययन

डॉ. सावित्री शर्मा प्रभारी प्राचार्या, घनश्यामसिंह आर्य कन्या महाविद्यालय आर्यनगर, दुर्ग(छत्तीसगढ़)

वैदिक वाङ्मय में समाजवाद का स्वरूप

डॉ. विजय कुमारी गुप्ता डी.ए.वी कॉलेज, जालन्धर पंजाब

वेद प्रतिपादित समाज का स्वरूप

संगीता एम.ए. दर्शनशास्त्र गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

वेदोक्त पारिवारिक व्यवस्था और 'मानस' में वर्णित परिवार

डॉ. मृदुल जोशी असिस्टेंट, प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, कन्या गुरुकुल महाविद्यालय, हरिद्वार

वेदों में वर्णित परिवार के तत्त्व

डॉ. देवेन्द्र सिंह सोलंकी रीडर एवं अध्यक्ष संस्कृत विभाग, संजय गांधी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मेरठ

वेद में समाजशास्त्र

वाघ दक्षाबहन अेल. (रिसर्चफैलो) सौराष्ट्र युनिवर्सिटी, राजकोट(गुजरात)

जाति गत्यात्मकता- भारतीय समाज के सन्दर्भ में

डॉ. वन्दना नारायण रीडर (समाज शास्त्र) जु.दे.ग.पी.जी. कॉलेज कानपुर

वैदिकसाहित्य में वर्ण-व्यवस्था

कु. निशा(शोधच्छात्रा) प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

वेदों में समाज संरचना

डॉ. संचिता शर्मा रीडर, प्राचीन इतिहास विभाग, डी.ए.वी.कॉलेज, कानपुर

अभिज्ञानशाकुन्तलम् में वैदिक वर्णाश्रमव्यवस्था

आरती (शोधच्छात्रा) संस्कृत विभाग, गुरुकुल कांगड़ी वि.वि. हरिद्वार

ऋग्वैदिक साहित्य में पारिवारिक व्यवस्था

नाज़िया कमाल अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़

वैदिक और उत्तरवैदिक काल में परिवार व्यवस्था

डॉ. अलका रानी रीडर एवं अध्यक्ष- समाजशास्त्र विभाग जनता वैदिक कॉलेज बड़ौत (बागपत)

वेदों में वर्ण तथा जाति व्यवस्था के सन्दर्भ में दलित विमर्श

डॉ. नीरज कुमार सिंह प्रवक्ता हिन्दीविभाग, चौ. चरणसिंह पी.जी0 कॉलेज हैवरा इटावा

वैदिक काल में संयुक्त परिवार की अवधारणा

डॉ. देवेन्द्र गुप्ता रीडर, प्रा.भा.इ.सं. एवं पुरातत्त्व, गुरुकुल कांगड़ी वि.वि. हरिद्वार

डॉ. हिमांशु पण्डित तदर्थ प्रवक्ता, प्रा.भा.इ.सं. एवं पुरातत्त्व, गुरुकुल कांगड़ी वि.वि. हरिद्वार

वेदों में निरुपित समाजजीवन का महत्त्व

प्रा. अरविन्द एच. नन्दाजिया महिला कॉलेज, गुजरात

मांसाहार-मीमांसा

सच्चिदानन्द पाठक वरिष्ठ अध्यापक, राजकीय जे.के. इण्टर स्तरीय विद्यालय, बेगूसराय(बिहार)

वेदों में प्रतिपादित समाज-कल्याण की अवधारणा

डॉ. भारतेन्दु द्विवेदी का.न.रा.स्नातकोत्तर महाविद्यालय(ज्ञानपुर) भदोही।

वैदिक काल में नारी की स्थिति का समाजशास्त्रीय अध्ययन

डॉ. रोमा श्रीवास्तव बृहस्पति महिला महाविद्यालय कानपुर

गौतम धर्मसूत्र में वर्णित वर्ण-व्यवस्था

राकेश कुमार शर्मा हि.आ.कॉलेज, शिमला हिमाचल प्रदेश

वेदों में पारिवारिक जीवनमूल्यों की उदात्तता

डॉ. जे.एन. त्रिपाठी शासकीय हमीदिया कला एवं वाणिज्य स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भोपाल (म०प्र०)

वैदिक साहित्य में वर्णित भारतीय परिवार व्यवस्था एवं प्रासंगिकता

रवि प्रकाश, वरिष्ठ प्रवक्ता (समाजशास्त्र विभाग) राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय ऋषिकेश

वैदिक साहित्य में परिवार

डॉ. लाभुबहन एम. कारावदरा (व्याख्याता) एम.पी.शाह आर्टस् सायन्स कॉलेज, सुरेन्द्रनगर

डॉ. मधुभाई एम. हीरपरा दरबार गोपालदास शिक्षण महाविद्यालय, अलीगढ

वेदकालीन सामाजिक व्यवस्था

डॉ0 श्रीमती आभासिंह, (रीडर, संस्कृत) प्रधानाचार्य, रोहतास महिला महाविद्यालय, सासाराम, बिहार

यमयमीसंवादः पुनरवलोकन

कौशल तिवारी शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग, राजकीय महाविद्यालय, कोटा (राज.)

सन्यास जीवन का अन्तिम पड़ाव

प्रीती देवी शुक्ला प्रवक्ता कानपुर विद्या मन्दिर महिला (पी०जी०) महाविद्यालय, स्वरूप नगर कानपुर

वैदिक साहित्य में परिवार

तरन्नुम खान शोधच्छात्रा संस्कृत विभाग, अमुवि अलीगढ़

वैदिक साहित्य और परिवार

डॉ० जयप्रकाश नारायण असिस्टैंन्ट प्रोफेसर, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान मानित विश्वविद्यालय, जम्मू

ऋग्वेद का समाजशास्त्रीय अध्ययन

रीना आर्य असिस्टेण्ट प्रोफेसर, विवेकानन्द ग्रामोद्योग स्नातकोत्तर महाविद्यालय, दिबियापुर, जनपद, औरैया

वेदों में परिवार विषयक मीमांसा

तरुलता वनुभाई पटेल शोधछात्रा (Ph. D.) महर्षि वेद विज्ञान अकादमी, अहमदाबाद

ऋग्वेद की आर्थिक व्यवस्था का समाजशास्त्रीय अध्ययन

योगेश कुमार प्रवक्ता समाजशास्त्र, विवेकानन्द ग्रामोद्योग स्नात कोत्तर महाविद्यालय, दिबियापुर औरैया

वैदिक परिवारसंस्था का आधुनिक युग में महत्त्व

डा. सुधा सिंह रा. कन्या इन्टर कालेज, पन्तनगर कृषि वि.वि. पन्तनगर

वेदों में आदर्श परिवार

सुशील कुमार त्यागी गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर, हरिद्वार

स्वामी दयानन्दकृत यजुर्वेद भाष्य में प्रतिबिम्बित-समाज एवं संस्कृति

वाजश्रवा आर्य प्रवक्ता (संस्कृत) रा. इ. कॉ. मूलाकोट, चम्पावत।

वेदों में सामाजिक व्यवस्था

डॉ० जयेन्द्र कुमार प्राचार्य आर्ष गुरुकुल, नोएडा

वैदिक कालीन संस्कृति तथा रहन-सहन का स्तर

डॉ. सरिता वर्मा विभागाध्यक्षा, गृह विज्ञान विभाग, महिला महाविद्यालय, किदवई नगर, कानपुर (उ0प्र0)

पूजा श्रीवास्तव, प्रवक्ता-गृह विज्ञान, अभिनव प्रज्ञा महाविद्यालय, हरदौरपुर, चौड़गरा, फतेहपुर (उ0प्र0)

वेदों में सामाजिक और राष्ट्रीय चेतना

डॉ० ज्ञान प्रकाश द्विवेदी प्रवक्ता (हिन्दी) नागरिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय जंघई, जौनपुर

अक्षसूक्ते प्रतीयमानः समाजः

गोहिल हार्दिक एम., सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, राजकोट

वेदों में सामाजिक जीवन

संजीव प्रकाश ध्यानी प्रवक्ता संस्कृत, रा०इ०का० दिउली, (पौड़ी गढ़वाल)

वैदिकसाहित्ये आदर्शपरिवारः

निशिता. एस. शुक्ल व्याख्याता संस्कृत श्री एम.पी.शाह.आ.सा. कॉलेज, सुरेन्द्रनगरम् गुजरात

वैदिकसाहित्ये परिवारः

डॉ0 इन्द्रेश 'पथिकः' व्याख्याता-संस्कृतविभागस्य देवसंस्कृति विश्वविद्यालयः, हरिद्वारम् (उत्तराखण्डः)

वैदिकसाहित्ये समाजशास्त्रम्

शिवप्रतापद्विवेदी (शोधच्छात्रः) श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठम्, नवदेहली

रात्रीसूक्तम्-समाजश्रेयः

डॉ. के. नीलकण्ठः प्रोफेसरः, संस्कृतविभागः, उस्मानियाविश्वविद्यालय

वैदिकसाहित्ये परिवारः

डॉ. प्रकाशचन्द्र पन्तः 'दीप' स.अध्यापकः, राजकीयइण्टरकॉलेजः, भिंगराडा, चम्पावतम्

अथर्ववेदे आश्रम-व्यवस्था

चन्द्रप्रकाश उप्रेती (छात्रः) श्रीभगवानदास आ.सं.महाविद्यालयः, हरिद्वारम्

वेदाः आश्रमाणां व्यवस्थापकाः

आशुतोष पारीक व्याख्याता, सं.ध. राज. महाविद्यालय, ब्यावर

वर्तमान-समाजोत्कर्षे वैदिक समाजशास्त्रीय अवधारणायाः पुनरावलोकनम्

सुरचना त्रिवेदी भगवानदीन आर्यकन्या स्ना. महा., लखीमपुर-खीरी

उत्तररामचरिते भवभूतेः दाम्पत्य-प्रेम : वैदिक परिप्रेक्ष्ये

डॉ. ऋतुरानी रुड़की, हरिद्वारम्

वेदेषु पारिवारिकं चिन्तनम्

दयालसिंहः पंवारः, श्रीला.ब.शा.रा.सं.विद्यापीठम्, नईदिल्ली

शूद्र वर्ण और वेद

डॉ0 राजेन्द्र विद्यालंकार, रीडर, संस्कृत एवं प्राच्यविद्या संस्थान, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

ब्राह्मण एवं क्षत्रिय का वर्णधर्म

डॉ0 ब्रह्मदेव, उपाचार्य, संस्कृत-विभाग, गुरुकुलकांगड़ीविश्वविद्यालय, हरिद्वार

वैदिक वाङ्मय में सामाजिक समरसता

डॉ. धर्मा रीडर(सेवा निवृत्त) लक्ष्मीबाई महाविद्यालय(दिल्ली विश्वविद्यालय)

वैदिक वाङ्मय पारिवारिक समीक्षण

डॉ. सुनीता तिवारी, संस्कृत विभागाध्यक्ष, गुरुनानक गर्ल्स पी.जी. कॉलेज, कानपुर

वैदिक वाङ्मय में समाज शास्त्र की समीक्षा

डॉ. हरबंस कौर रीडर, हिन्दीविभाग, गुरुनानक गर्ल्स पी.जी. कालेज, कानपुर- उ.प्र.

समकालीन समाजों में वेदों की प्रासंगिकता

डॉ. रश्मि, वरिष्ठ प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, वी.एम.एल.जी. कॉलेज, गाजियाबाद (उ.प्र.)

वैदिक साहित्य में परिवार

डॉ. लाभुवहन एम0 कारावदरा व्याख्याता, एम.पी. शाह आर्ट्स-सायन्स कॉलेज, सुरेन्द्रनगर

डॉ. मधुभाई एम.हीरपरा दरबार गोपालदास शिक्षण महाविद्यालय, अलीआ बाडा

VEDIC SOCIALISM

Dr. Deepali Saxena Lecturer-Sociology DG (PG) College Kanpur

INTERGENERATIONAL RELATIONS IN VEDAS: AN ANALYTICAL STUDY IN MODERN PERSPECTIVE

Dr. A.K. Shukla, Lecturer - Sociology, Govt. P.G. College, Kotdwar, Uttarakhand

GRHYSUTRAS ON DISTURBED FAMILY LIFE

Dr. Sulok Sunder Mohanty, Professor of Sanskrit, G.M. College (Autonomous) Sambalpur, Orissa - 768004

VEDIC MARRIAGE: EPICENTER OF SOCIAL MANAGEMENT

Pranati Mohapatra Visva Bharati

वैदिक नारी

ज्योतिर्विज्ञान/गणित

धर्म/ संस्कृति

"संस्कार" - व्यक्तित्व निर्माण का आधार

डॉ. मनीषा पाण्डेय प्रवक्ता, संस्कृत विभाग, जवाहर नेहरु मेमोरियल पी.जी. कॉलेज बाराबंकी

वैदिक साहित्य में संस्कारों का महत्त्व

डॉ. उमा सिंह प्रवक्ता इन्दिरा गांधी रा.स्ना.महा. उन्नाव

वैदिक संस्कृति और उसकी समकालीन प्रासंगिकता

डा. साधना मिश्रा रीडर, हिन्दी-विभाग, दयानन्द गर्ल्स पी.जी. कालेज, कानपुर

वैदिक साहित्य में षोडश संस्कार

भरतकुमार नगाभाई जादव (रिसर्चफैलो) श्री सोमनाथ सं.यूनि. वेरावल(गुजरात)

षोडश संस्कार एवं उनकी वेदमूलकता

स्वाती गुप्ता (शोधच्छात्रा) संस्कृतविभाग, कुमायूँ विश्वविद्यालय, नैनीताल (उत्तराखण्ड)

वैदिक गणेश

डॉ. अनीता मिश्रा प्रवक्ता-समाजशास्त्र विभाग चौ.चरण सिंह पी.जी. कॉलेज हैवरा, इटावा(उ.प्र.)

वैदिक साहित्य में संस्कार

हेमलता संस्कृतविभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

मानव जीवन में षोडश संस्कारों की उपयोगिता

डॉ. रत्नेश्वर मणि त्रिपाठी प्रवक्ता संस्कृत, चौधरी गया प्रसाद महाविद्यालय, शिवपुर बहराइच

विवाह संस्कार के विविध आयाम एवं वैदिकीय दृष्टि

डॉ. रामबहादुर शुक्ल वरिष्ठ प्रवक्ता- संस्कृतविभाग, जम्मू विश्वविद्यालय जम्मू

नामकरण संस्कार की प्रासङ्गिकता एवं वर्तमान परिदृश्य

रेणू शर्मा शोधच्छात्रा, संस्कृतविभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

अथर्ववेद में संस्कार

महेन्द्र कुमार (शोधछात्र) जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

वेदों में विवाह संस्कार

श्रद्धा अग्रवाल (स्नातकोत्तर छात्रा) एन.के.बी.एम.जी. कॉलेज, चन्दौसी

ईशोपनिषद् और गीता

विपिन कुमार (शोधच्छात्र) संस्कृतविभाग, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

अवध अचल में संस्कारों का महत्त्व

डॉ. जनार्दन पाण्डेय लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

सरस्वती सरिता और संस्कृति

अनिल कुमार पोरवाल सीनियर रिसर्च फेलो, ज्योतिर्विज्ञान विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

वैदिक साहित्य में विश्वबन्धुत्व भावना

काथड कान्तिलाल जी रिसर्चफैलो, सौराष्ट्र वि.वि. राजकोट(गुजरात)

कर्मकाण्डों में निहित भारतीय संस्कृति ; वेद में विज्ञान का समावेश

डॉ. उर्मिला सिंह डी.एस.एन.पी.जी. कालेज, उन्नाव

विनय कुमार सिंह हिन्द इन्स्टीट्यूट आफ मेडिकल साइंसेस, बाराबंकी

वैदिक वाङ्मय में धर्म

डॉ. शुचि अग्रवाल मेरठ कॉलेज मेरठ

वैदिक साहित्य में विश्वबन्धुत्व

मीता जे. व्यास, समलदास आर्ट्स कॉलेज, भावनगर (गुजरात)

वैदिक सूक्तियों में सांस्कृतिक आदर्श

डॉ० हेमलता सुमन वरिष्ठ प्रवक्ता (हिन्दी विभाग) नारायण (पी०जी०) कालेज, सिकोहाबाद, उत्तर प्रदेश

वेदों में वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना

मौ० मेराज अहमद सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर

यागों का विभाजन (कात्यायन श्रौतसूत्र के सन्दर्भ में)

डॉ. अरुणिमा लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ

यज्ञों में ललितकला

डॉ. अर्चना लालसिंग सीताबाई कला महाविद्यालय अकोला

वेदों में यज्ञ का महत्त्व

डॉ. ज़ीवन आशा संस्कृत विभाग, डी.ए.वी कॉलेज जालन्धर (पंजाब)

वैदिक साहित्य में यज्ञविधान

डॉ. रीता शर्मा प्रवक्ता, रायबरेली

भारतीय संस्कृति में यज्ञ की महिमा

जीवन वेदालङ्कार (शोधच्छात्र) गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।

वेदों में यज्ञ का महत्त्व

डॉ. ऋतु वार्ष्णेय (स.अ.) ब्रह्म बाजार तिराहा बहजोई (मुरादाबाद)

वैदिक साहित्य में कर्मकाण्ड

आ. धनीराम संगर(शोधार्थी) गुरुकुल कांगड़ी वि.वि. हरिद्वार

वेदों में 'यज्ञ' का स्वरूप

धीरज कुमार(शोधार्थी) बागपत(उत्तरप्रदेश)।

वेदों में कर्मकाण्डीय आदेशों का अध्ययन

डॉ. सुदर्शनदेव आचार्य प्रधानाध्यापक, गुरुकुल आश्रम आमसेना खरियार रोड़, नवापारा(उड़ीसा)।

वैदिक यज्ञ : एक समीक्षा

स्वयं प्रभा(शोधच्छात्रा) गुरुकुल कांगड़ी वि.वि. हरिद्वार

संस्कार विशेष में अग्नि के विविध नाम

डॉ. सुनील कुमार काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

वैदिक पञ्चमहायज्ञविधान : एक दयानन्दीय दृष्टि

डॉ. अरुणिमा रानी प्रवक्त्री- संस्कृत विभाग सनातन धर्म कॉलेज, ध.पा रोड, मुजफ्फरनगर

वेदों में यज्ञ का स्वरूप

डॉ. शुभा सिंह गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वेदों में यज्ञ महिमा का वर्णन

महेश चन्द्र बहुगुणा वेदाचार्य, ऋषिकुल विद्यापीठ सं. महाविद्यालय, हरिद्वार

पञ्चमहायज्ञ विमर्श

सन्दीपन कुमार आर्य व्याख्याता संस्कृत, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,टौंक

यज्ञ

इलिका शर्मा लखनऊ

गृह्यसूत्रोक्त पञ्चमहायज्ञ तथा आधुनिक समाज : एक परिशीलन

सरोज कुमार शुक्ल(शोधच्छात्र) लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

श्रौत यज्ञ प्रक्रिया का रहस्य

प्रा. आचार्य अखिलेश शर्मा संस्कृत विभाग, राजर्षि शाहू महाविद्यालय, लातूर

अग्निहोत्र का पर्यावरण एवं स्वास्थ्य पर प्रभाव

डॉ. प्रदीप कुमार अ.प्रवक्ता(वेदविभाग) गुरुकुल काङ्गड़ी वि.वि. हरिद्वार

अहीन-मीमांसा

डॉ. वेदपाल रीडर संस्कृत, ज.वै.(पी.जी.) कॉलेज, बडौत(बागपत)

पारस्कर गृह्यसूत्र में गृह्यविज्ञान की धर्मशास्त्रीय अवधारणा

डॉ. छाया रानी उपाचार्य-संस्कृत, दी.द.उ.गो.वि.वि. गोरखपुर(उ.प्र.)

वैदिक वाङ्मय में यज्ञानुष्ठान प्रक्रिया

डॉ. अवनीश अग्रवाल रा.सं.सं.(मानित विश्वविद्यालय)लखनऊ परिसर

वैदिक विवाह संस्कार : अश्क के उपन्यासों के संदर्भ में

कु. शिखा कपूर मु.ला.ज.ना.खेमका स्ना. कन्या महा. सहारनपुर

वैदिक यज्ञ विज्ञान एवं मानव-कल्याण

डॉ. सुशीला बुन्देला बा.शो.रा. कला महा. अलवर(राज.)

वेद संहिताओं में हविःस्वरूप

ओमपाल सिंह एन.ए.एस. कॉलेज, मेरठ

यज्ञ

डॉ0 शालिनी त्रिपाठी, प्रवक्ता प्रवक्ता, संस्कृत विभाग, बी.एस.एम.पी.जी. कॉलेज, रुड़की

यज्ञोपवीत संस्कार का वैज्ञानिक महत्व

डॉ0 एस.वी. शारदा रमणी प्रवक्ता डायट, गौतमबुद्ध नगर

वैदिक साहित्य में यज्ञ

स्नेहलता शोधप्रज्ञा जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा, सारण

वेदों में यज्ञ

डॉ० अंजनी राजौरिया सदस्य आर्य दयानंद वेद मंदिर, तात्याटोपे नगर, भोपाल

अश्वमेध यज्ञ

डॉ. रमेशकुमारी सिंह चौहान सी.एस.एन.(पी.जी.)कॉलेज, हरदोई

वैदिके साहित्ये कर्मकाण्डम्

डॉ० ओम प्रकाश भट्टः प्रधानाचार्यः श्री रामानुज श्रीवैष्णव संस्कृत महाविद्यालयः, तोताद्रि मठः, भूपतवाला, हरिद्वारम्

वैदिक संस्कृति की प्रेरणादायी आध्यात्मिक विरासतः संस्कार परम्परा

डॉ. सी०आर०कैवर्त्य भारतीय संस्कृति एवं पर्यटन प्रबंधन, देवसंस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वैदिक वाङ्मये संस्काराः

रोशन लालः शोधकर्ता हरिद्वार

यज्ञस्य वैज्ञानिकं स्वरूपं तत्र चाग्निहोत्रम्

ऋतेशशर्मा शोधच्छात्रः वेदविभागः श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठम्

वेदोक्ताः संस्काराः

पंकजः, सुरेन्द्रप्रसादः श्रीसोमनाथसंस्कृतविश्वविद्यायः, वेरावलम्, गुजरातप्रान्तम्

वैदिकसाहित्ये संस्काराः

जगदीश चन्द्र पाण्डेयः सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयः वाराणसी

यज्ञस्वरूपसमीक्षा

श्यामसुन्दरठाकुरः (शोधच्छात्रः) वेदविभागः, काशीहिन्दू विश्वविद्यालयः

वैदिकसाहित्ये संस्काराः

श्री मञ्जुनाथः एस.जी., हरिद्वार

वैदिकवाङ्मये यज्ञस्वरूपम्

श्री के.एस. सतीशः

सृष्टेः मूलाधारो यज्ञः

डॉ. रामचन्द्रः शर्मा श्री ला.ब.शा.रा.सं.विद्यापीठम् नवदेहली

वेदों में यज्ञ का महत्त्व

डॉ. जीवन आशा संस्कृत विभाग, डी.ए.वी. कॉलेज, जालन्धर (पंजाब)

वैदिक वाङ्मये संस्काराः

कु. यशोदा (सं.वि.), कन्या गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुरम्, हरिद्वारम्

THE PURPORT AND SIGNIFICANCE OF YAJNA IN VEDAS

Dr. Nareendra Kumar Sharma Asso. Professor Dept. of History B.S.R. Govt P.G. Arts College Alwar (Raj.)

काव्य शास्त्र 319-336

वैदिक जीवन मूल्य/विश्व बन्धुत्व 337-368

यजुर्वेद संहिता में प्राप्त नैतिक एवं मानवीय मूल्य

ममता मेहरा (शोधच्छात्रा) वेदविभाग, संस्कृतविद्याधर्मविज्ञानसंकाय, काशीहिन्दू विश्वविद्यालय

आधुनिक परिप्रेक्ष्य में वैदिक मूल्यों की प्रासंगिकता

डॉ. प्रज्ञा सहाय रीडर एवं विभागाध्यक्ष- दर्शनशास्त्र विभाग, डी.जी.पी.जी. कालेज, कानपुर

वैदिक साहित्य में जीवन मूल्य

डॉ. ममता गंगवार वरिष्ठ प्रवक्ता (हिन्दी विभाग) आ.न.दे.न.नि.म.म. कानपुर

विश्वशान्ति का मार्ग वैदिक जीवनदर्शन

डॉ.प्रीति वाधवानी वरिष्ठप्रवक्ता- तिलक महाविद्यालय औरैया (उ.प्र.)

वैदिक वाङ्मय में सामाजिक जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा

डॉ. मीता अरोडा वरिष्ठ प्रवक्ता हिन्दी विभाग, राजकीय महाविद्यालय, उन्नाव

डॉ. सुमन सिंह वरिष्ठ प्रवक्ता हिन्दी विभाग, दयानन्द गर्ल्स कालेज, कानपुर

अथर्ववेद की ऐक्य-भावना का विश्वशान्ति में प्रदान

डॉ. महाकान्त जे. जोशी अध्यक्ष- संस्कृतविभाग, प्रमुखस्वामी सायन्स एण्ड एच.डी. पटेल आर्ट्स कालेज, कड़ी सर्वविद्यालय कैम्पस, मु.पो.ता. फड़ी, जिला महसाना(नोर्थ गुजरात) 382715

वेदों में विश्वशान्ति के सन्देश

श्रीमती राजश्री पटेल (उच्च वर्ग शिक्षिका) ग्राम बालोद(आमापारा) जिला दुर्ग (छ.ग.)

वेदों में विश्वशान्ति के साधक तत्त्व

डॉ. सुनीता जायसवाल विभागाध्यक्ष- संस्कृतविभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, चकिया-चन्दौली (उ. प्र.)

वेदों में जीवनमूल्य

प्रा. श्रीमती रंजन अहारिया संस्कृत (विभागाध्यक्ष- निवृत्त) श्रीमती गांधी महिला कालेज, भावनगर गुजरात

ऋग्वेद में मैत्री भाव

डॉ. शालिमा तबस्सुम उपाचार्य, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, सोबन सिंह जीना परिसर, अल्मोड़ा

ऋग्वेद में विश्वशान्ति

डॉ. गीता परिहार रीडर, संस्कृत विभाग, गोकुलदास हिन्दू गर्ल्स कॉलेज, मुरादाबाद (उ.प्र.)

वेद में विश्वशान्ति

डॉ. छाया रानी महात्मा ज्योतिबाफुले रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय बरेली (उत्तरप्रदेश)

वैदिक साहित्य मे 'विश्वबन्धुत्व'

डॉ. लोकेश चन्द्र प्रवक्ता- संस्कृत, राजकीय इण्टर कॉलेज बदायूँ

विश्वबन्धुत्व

डॉ. देवेन्द्र कुमार उपाध्याय प्रवक्ता संस्कृत रामकृष्ण परमहंस डिग्री कॉलेज, कंसरगंज, बहराइच (उ.प्र.)

अथर्ववेद के आलोक में नीतिशिक्षा

प्रवीण बाला (शोधच्छात्रा) जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

वैदिक साहित्य में 'विश्वबन्धुत्व'

डॉ. लोकेश चन्द्र प्रवक्ता- संस्कृत, राजकीय इण्टर कॉलेज, बदायूँ

वैदिक साहित्य में विश्वबन्धुत्व की परिकल्पना

डॉ. अरविन्द कुमार व्याख्याता, साहित्य विभाग, श्री ला.ब.शा.सं.विद्यापीठ, नई दिल्ली

वैदिक संस्कृति में विश्वबन्धुत्व

डॉ. दिवांशु कुमार प्राध्यापक स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

वेद का सहकार, सौमनस्य भाव- श्री मोरारि बापू के जीवन व्यवहार में

राज्यगुरु हितायु

वेद और विश्वबन्धुत्व

भूपेन्द्र कुमार राठौर (शेधच्छात्र) नई दिल्ली

वैदिक कालीन नैतिक मान्यताएँ

डॉ० मञ्जुला सहदेव पूर्वाचार्या एवं अध्यक्षा महर्षि वाल्मीकि पीठ पञ्जाबी विश्वविद्यालय, पटियाला, पंजाब

वैदिक वाङ्मय में 'जीवन मूल्यों' की वैश्विक परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता

श्री जी.सी.उपाध्याय बरन (राजस्थान)

डॉ. अञ्जना पालिवाल रा.मीरा कन्या पी.जी. कॉलेज, उदयपुर राजस्थान

वैदिकजीवनमूल्यम्

डॉ० शिवशंकर मिश्रः संस्कृतविभागाध्यक्षः राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालयः, कोटद्वारम् (उत्तराखण्ड)

मनोवैज्ञानिक एवं वैदिक (सामवेद) दृष्टिकोण से उत्तम चरित्र (व्यवहार) एवं चारित्रिक विकृति का तुलनात्मक अध्ययन

आरसी प्रसाद झा, कुमार विमलेंदु शेखर, रानी कुमारी, उदय शंकर, पटना (बिहार)

वेदों में मानव जीवन

प्रविन्द्र कुमार शोधाथी हिन्दी विभाग गु.कां.वि.वि. हरिद्वार

वेद एवं आचार्य शंकर की दृष्टि से जीवन मूल्य की उपयोगिता

डॉ० दुर्गा प्रसाद पाण्डेय, देवरिया

धर्म एवं मानव मूल्य-एक अनुशीलन

सुमित्रा कुमारी शोध छात्रा, दर्शन शास्त्र सिदो कान्हू, मुर्मू विश्वविद्यालय दुमका (झारखण्ड)

धर्म एवं मानव मूल्य-एक अनुशीलन

सुमित्रा कुमारी शोधच्छात्रा, दर्शन शास्त्र सिदो कान्हू मुर्मू विश्वविद्यालय दुमका (झारखण्ड)

मूल्यशब्दार्थानुशीलनम्

प्रो० अयोध्या दास श्री वैष्णव आचार्य एवं अध्यक्ष प्राच्य संस्कृत विभाग लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

"रामायणे नैतिकसंस्काराः"

डॉ. (श्रीमती) कृष्णा आचार्य रीडर म०द० विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)

वैदिकसाहित्ये जीवनमूल्यानि

डॉ. आशुतोष गुप्तः प्रवक्ता,संस्कृत विभागे, हे.न.ब.ग. वि.वि. बिडलापरिसरः, श्रीनगरम् उत्तराखण्डम्

वैदिकसाहित्ये जीवन-मूल्यानि

दीपक कोठारीः श्रीभगवानदास आ.सं.महाविद्यानलयः, हरिद्वारम्

वैदिकवाङ्मये जीवनमूल्यानामुपदेशः

डॉ. कुलदीपकुमारः दिल्ली

वैदिक जीवनमूल्य : वर्तमान प्रासङ्गिकाता

डॉ. राजेश राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय

वैदिक साहित्य में जीवन-मूल्य

डॉ. डी.आर. अवस्थी व्याख्याता संस्कृत, केन्द्रिय विद्यालय, कौसानी

IDEALS HUMANISM REFLECTED IN THE VEDAS

Dr. Manjula Devi, Reader, Dept. of Sanskrit Gauhati University, Guwahati-14, Assam

FOUNDATIONAL ETHICAL IDEAS IN EARLY RIGVEDA

Dr. Deepak Srivastava Asst. Professor H.O.D Dept. of Philosophy B.S.R. Govt P.G. Arts College Alwar (Raj.)

IDEALS OF HUMANISM REFLECTED IN THE VEDAS

Dr. Manjula Devi Reader, Dept. of Sanskrit Gauhati University Guwahati-14, Assam

UPANISHADICO WAY OF LIFE

Dr. Trinath Hota

वैदिक वाङ्मय में मानवतावादी सन्देश

डॉ. मौहर सिंह मीणा, असिस्टेण्ट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

चरैवेति चरैवेति........

डॉ. अनिता त्यागी वरिष्ठ प्रवक्ता संस्कृत, राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रामपुर

वैदिक कृषि

वैदिक शिक्षा दर्शन

वेदों में शैक्षिक सूत्र

डॉ. एस. सी. बहुगुणा प्राध्यापक-बी. एड. विभाग रा. स्ना. महा. विद्यालय कोटद्वार, गढ़वाल, उत्तराखण्ड

धर्मशास्त्र में वर्णित कर्म एवं पुनर्जन्म के सिद्धान्त की वर्तमान में प्रासङ्गिकता

डॉ उषा चौहान सिरोही

संस्कृत वैय्याकरण परम्परा

डॉ. रीता तिवारी ए.पी.एन.पी.जी. कॉलेज बस्ती उ.प्र.

पाञ्चरात्रागमप्रतिपादित 'शब्दब्रह्मस्वरूप' विमर्शः

डॉ. कन्हैया प्रसाद शर्मा वरिष्ठ शोध-अध्येता सांख्ययोगतन्त्रागम विभाग सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

शतपथकार की वैदिक भाषा संबंधी विचारधारा

डॉ० सुकेशी रानी गुप्ता रीडर संस्कृत विभाग, रघुनाथ गर्ल्स (पो०ग्रे०) कॉलिज, मेरठ

वेदार्थज्ञाने व्याकरणस्योपादेयता

डॉ0 ब्रजभूषण ओझाः सहायकप्राध्यापकः, व्याकरणम् राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्, भोपालपरिसरः, भोपालम् (मध्यप्रदेशः)

वैदिकसाहित्ये धर्मशास्त्रम्

प्रियम तोमर (शोधच्छात्रा) संस्कृतविभाग, बरेली कॉलेज, बरेली (उत्तर प्रदेश)

वेदमूलकं व्याकरणदर्शनम्

डॉ. कामदेव झा प्राचार्य- डी.ए.वी. कॉलेज, नन्योला(अम्बाला)

वेदकालीनविविधशास्त्रविज्ञानम्

डॉ. वी. श्रीनिवास शर्मा संस्कृत अकादमी, उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद

वैदिकसाहित्ये वाग्विज्ञानम्

डॉ. पशुपतिनाथ मिश्रः व.प्रवक्ता(व्याकरणम्), ह.सं.विद्यापीठ बघौला पलवल, हरियाणा

स्वराः- भेदोच्चारणात्मकं विवेचनम्

प्रो. भवानीशङ्करः शर्मा 'महाजनीयः' राजकीय लोहिया स्नातकोत्तरमहाविद्यालयः, चुरू(राजस्थानम्)

वैदिकसाहित्ये व्याकरणविद्या

डॉ. भगवतशरणशुक्लः उपाचार्यः व्याकरणविभागे, संस्कृतविद्याधर्मविज्ञानसंकायः, काशीहिन्दू वि.वि. वाराणसी

वैदिकसाहित्ये धर्मशास्त्रम्

डॉ. गिरीशचन्द्र पाण्डेयः श्रीसनातनधर्म संस्कृत महाविद्यालयः हल्द्वानी(नैनीताल)

वेदव्याख्याने वेदाङ्गानाम् उपयोगिता

प्रो. मनुदेव बन्धु आचार्योऽध्यक्षः वेदविभागस्य अधिष्ठाताप्राच्यविद्यासंकायस्य, गु.कां.वि.वि. हरिद्वारम्

वैदिकसन्दर्भे वाक्तत्त्वानुशीलनम्

डॉ. रमाकान्तपाण्डेयः काशीहिन्दूविश्वविद्यालयः, वाराणसी

वैदिकवाङ्मये वाग्-विज्ञानम्

डॉ. बी.बी. त्रिपाठी रा.स्ना.महा.कोटद्वार

वाग्ब्रह्म

डॉ. भारतभूषण त्रिपाठी रा.सं.सं.(मानितविश्वविद्यालयः) लखनऊपरिसरः

वाग् विज्ञानम्

डॉ. सुदेशगौतमः हि.आ.सं.महा.जांगला रोहडू(शिमला)

प्रकीर्ण 420-455

वेद साहित्य का महत्व वर्तमान परिप्रेक्ष्य में

दीपिका श्रीवास्तव प्रवक्ता, समाजशास्त्र विभाग डी.जी. पी.जी. कालेज, कानपुर

आधुनिक युग में वेद साहित्य का दृष्टिकोण

डा. मंजू सिंह रीडर एवं अध्यक्ष समाजशास्त्र विभाग, डी.जी. पी.जी. कालेज कानपुर

डा. आर.के. सिंह रीडर एवं अध्यक्ष समाजशास्त्र विभाग, डी.बी.एस. कालेज, कानपुर

वेदों में देवता-तत्त्व

आभा शोधच्छात्रा, जनता वैदिक कॉलेज, बडौत

गांधीजी का न्यासिता सिद्धान्त : ऋग्वेद के सन्दर्भ में

सुरेन्द्र डी. सोनी व्याख्याता इतिहास, रा.लोहिया महाविद्यालय, चूरू, राजस्थान

वैदिक काल में संगीत

विजयकृष्ण रेखा साह संगीत विभाग कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

वैदिक काल में संगीत

डॉ. उमा सक्सेना रीडर एवं विभागाध्यक्ष संगीत महिला महाविद्यालय, किदवईनगर, कानपुर

वेदों में संगीत विषयक तत्त्व : एक विश्लेषण

डॉ. सुनीता द्विवेदी वरिष्ठ प्रवक्ता, संगीत विभाग जु.दे.गर्ल्स पी.जी. कॉलेज, केनाल रोड, कानपुर

वैदिक वाङ्मय में वाक्विद्या

प्रो. शारदा शर्मा संस्कृतविभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली

वेद और आर्य

डॉ. रानी अग्रवाल, रीडर, हिन्दी विभाग, जुहारी देवी गर्ल्स पी.जी. कॉलेज, कानपुर

डॉ. अलका द्विवेदी वरिष्ठ प्रवक्ता हिन्दी विभाग, जुहारी देवी गर्ल्स पी.जी. कॉलेज, कानपुर

वैदिक कालीन वाद्य

डॉ. सुश्री सरिता निगम रीडर एवं अध्यक्ष, संगीत, जे.डी.वी.एम. पी.जी. कालेज, कानपुर

ऋग्वेद में संगीत

स्मिता पुरोहित शोधच्छात्रा

नचिकेतोपाख्यान : 'कठोपनिषद्' से कुँवरनारायणकृत 'आत्मजयी' तक

प्रो. नीरजा टण्डन हिन्दीविभागाध्यक्ष, डी.एस.बी. परिसर, कुमाऊँ वि.वि., नैनीताल

वैदिक वाङ्मय में सूर्य देवता

प्रा. गिरा टी. अटालीवाला पालडी, अहमदाबाद, गुजरात

विजयवल्लभचरितम् महाकाव्य में वेद-तत्त्व विवेचन

मोहनलाल खटीक राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

जन्द-अवेस्ता पर वैदिक प्रभाव

डॉ. दिनेशचन्द्र शास्त्री वेद विभाग, गु.कां.वि.वि. हरिद्वार

डॉ. अमित कुमार, श्र.वै.शो.संस्थान, गु.कां.वि.वि. हरिद्वार

आर्यों के मूल निवास स्थान की समस्या

डॉ. राजेन्द्र कैड़ा हिन्दी विभाग, एस.एस.जे. कैम्पस, अल्मोड़ा

डा. इला साह, एस.एस.जे. कैम्पस, अल्मोड़ा कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

श्री गुरुग्रन्थ साहिब में 'वेद' की अवधारणा

डॉ. पवन कुमार गुरुनानकदेव वि.वि. अमृतसर, पंजाब

ऋग्वेद में वर्णित सङ्गीतकला

डॉ० अनीता सोनकर रीडर-संस्कृत विभाग, वी.एस.एस.डी. कॉलेज, कानपुर

ऋग्वैदिक ऋचाओं का गूढ़ार्थ और कृतयुग का आगमन

डॉ. कला जोशी प्राध्यापक(हिन्दी) शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मोती तबेला इन्दौर, म.प्र.

इतिहास-पुराण के द्वारा वैदिक तथ्यों का प्रकाशन

डॉ0 श्रीकृष्ण त्रिपाठी, वरिष्ठ प्रवक्ता, वैदिक दर्शन विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

वेदों की समकालीन प्रासंगिकता

डॉ0 नरेन्द्र देवसंस्कृति विश्वविद्यालय, शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार

वेदों में कला

डॉ0 अंजुली बिसारिया रीडर, चित्रकला विभाग, गुरु नानक गर्ल्स पी० जी० कॉलेज, कानपुर

संस्कृत एवं मशीनी अनुवाद

डॉ0 धनीन्द्र कुमार झा व्याख्याता, व्याकरण विभाग, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान (मानित विश्वविद्यालय) लखनऊ

आधुनिक युग में वेदों का महत्त्व

डॉ० शशि प्रभा वाजपेयी रीडर हिन्दी विभाग भ.दी.आर्य क.स्ना.म., लखीपुर खीरी

वेदों के परिप्रेक्ष्य में सुखी जीवन

डॉ. केशवप्रसाद उपाध्याय उपाचार्य, गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर, हरिद्वार

शतपथस्य प्रथमं ब्राह्मणम्

रामनारायण: शास्त्री प्रवक्ता (सं. वि.) राज. स्नातकोत्तर महाविद्यालय:, सिरोही, राज०

वैदिक साहित्य में वर्णित मनोरंजन

महेन्द्र सिंह राणा शोधच्छात्र प्रा० भा० इति० संस्कृति एवं पुरातत्त्व, गु० कां० वि० वि० हरिद्वार

वेद को श्रुति क्यों माना है

डॉ. संजय पंडित विभागाध्यक्ष वाणिज्य माता जीजावाई शा. कन्या स्नातकोत्तर महा. मोती तबेला, इन्दौर

वेद भारत की प्राचीन विरासत

डॉ. एम. चित्रे अतिथि सहा. प्राध्यापक वाणिज्य, माता जीजाबाई शा. कन्या स्नातकोत्तर महा. मोती तबेला, इन्दौर

ऋग्वेदे देवतातत्त्वम्

डॉ. व्रजेन्द्रकुमारसिंहदेव: साहित्यविभाग:, श्रीभगवानदास संस्कृतमहाविद्यालय:, हरिद्वारम्

वैदिक साहित्ये विविधा: विद्या:

प्रो. गीताबहन डी. पटेल व्याख्याता : संस्कृत विभाग म्युनि. आर्ट्स एण्ड कोमर्स कॉलेज-उपलेटा

सामवेद में संगीत

डॉ० नन्दिता भट्टाचार्य विभागाध्यक्ष संगीत विभाग, आर0जी0पी0जी0 कालिज, मेरठ

वेद विश्व वाङ्मय की अमूल्य निधि है

कु० बबीता छात्रा, कन्या गु. महाविद्यालय, ज्वालापुर

वेद एवं हमारा जीवन

हरेन्द्र नारायण देव गोस्वामी सत्राधिकार, द्विपरसत्र, कैठालकुछि नलबाड़ी, असम

अथर्ववेदीय पृथिवी सूक्त का महत्त्व

डॉ० सुषमा देवी गुप्ता ऐसोशियट प्रोफेसर संस्कृत विभाग जम्मू वि०वि०, जम्मू

वेदों में रुद्र-शिव : ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक संदर्भ में

डॉ० गीता शर्मा, कुमाऊँ वि.वि., नैनीताल

विश्वहिताय वैदिकी अभयभावना

डॉ० विजयलक्ष्मी: संस्कृत-प्रवक्त्री सनातनधर्ममहाविद्यालय:, मुजफ्फरनगरम्, उ.प्र.

शुक्लयजुर्वेद शाखा निरूपणम्

प्रो0 वेदप्रकाश उपाध्याय: वरिष्ठ: आचार्य: संस्कृतविभाग, पंजाब विश्वविद्यालय: चण्डीगढ़म्

ब्रह्म पुराण में सौर परिवार और सूर्योपस्थान

शिखा त्रिवेदी, सत्यनगर, रायबरेली

CONCEPT OF MEDICAL PROFESSION IN VEDIC LITERATURE

Dr. NC Panda VVBIS & IS, Panjab University, Hoshiarpur

वैदिक वाङ्मय में पर्यावरण विज्ञान (पृथिवी सूक्त पर आधारित)

डॉ. ज्योति कपूर एसोसियेट प्रोफेसर संस्कृत विभाग, स.सा. खन्ना महिला महाविद्यालय, इलाहाबाद

वेद में प्रतिपादित वर्णव्यवस्था

नरेश चन्द्र छात्र संस्कृत, गु.कां.वि., हरिद्वार

महर्षि दयानन्द की ईश्वरविषयक अध्यात्म प्रक्रिया

डॉ० सुधीर कुमार आर्य वेद विभाग, गुरुकुल काङ्गड़ी विश्वविद्यालय (हरिद्वार)

पृथिवी सूक्त में वैज्ञानिक तथ्य

डॉ0 संगीता विद्यालंकार प्राचार्या, कन्या गुरुकुल महाविद्यालय, हरिद्वार

पशुपक्षिणां प्राकृतिकज्ञानम्

डॉ0 सोमदेव शतांशु प्रवाचकः, संस्कृतविभागः गुरुकुलकांगड़ीविश्वविद्यालयः, हरिद्वारम्

वेदेषु पर्यावरण-संरक्षण-तत्त्वानि

डॉ० हरीशचन्द्र गुरुरानी शोधसहायकः, संस्कृतविभागः गुरुकुलकांगड़ीविश्वविद्यालयः, हद्विारम्

छपते-छपते 456-457

वैदिक साहित्य में विश्व बन्धुत्व

गोपाल कृष्ण जोशी हनेटी, दाडिमठोक, बागेश्वर, उत्तराखण्ड

वेदों में विश्व शान्ति के आदर्श एवं मूल्य

मधु अग्रवाल, एसोसियेट प्रोफेसर रा.भा.दे.म., महाविद्यालय, बिजनौर

वैदिक वाङ्मय वनस्पत्य संरक्षण

डॉ0 साधना डिमरी, प्रवक्ता एस.सी.ई.आर.टी, नरेन्द्र नगर, टिहरी गढ़वाल

वैदिक वाङ्मये संस्काराः

सुश्री यशोदा छात्रा, कन्या गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर

वैदिक एवं जैन साहित्य में आत्मानुभूति का उपाय

डॉ. अनिकेत कुमार जैन, जैन दर्शन विभाग श्री लाल बहादुर शास्त्री रा.सं. विद्यापीठ, दिल्ली

वैदिक साहित्य में कृषि तंत्र

विक्रान्त भास्कर, भास्कर भवन, पोखरिया, बेगूसराय, बिहार

वेद जीवनमूल्यों के मुख्य निर्णायक

डॉ. जया दवे, सहआचार्य संस्कृत महिला पी.जी. कॉलेज, जोधपुर

वैदिक शिक्षा का स्वरूप

डॉ0 खालिद बिन यूसुफ खां, रीडर संस्कृत, अ.मु.वि.वि., अलीगढ़

आयुर्वेद इतिहास तथा वेदमूलकता

डॉ. कीर्ति वर्मा, डॉ. ममता दीक्षित, आचार्य नरेन्द्र देव नगर निगम म.म., कानपुर

भैषज्य वेद में चिकित्सा विज्ञान

डॉ. मदन लाल शर्मा, सहायक आचार्य, राजस्थान संस्कृत वि.वि. जयपुर

पर्यावरण की भारतीय संकल्पना के स्रोत विद्यापीठ, नई दिल्ली

डॉ. सुजाता त्रिपाठी, वरिष्ठ व्याख्याता, श्री लाल बहादुर शास्त्री रा.सं.

वेदेषु परिवारस्य अवधारणा

केशव दत्त बलियानी, अध्यापक संस्कृत आनन्दमयी विद्यापीठ, हरिद्वार

अथर्ववेद के मंत्रों में औषधीय तत्व

डॉ0 रमेश चन्द्र वर्मा, विभागाध्यक्ष संस्कृत, रा.मा. गंगापुर सिटी

Computer Vision and Robotic stystem in Vedas

Neeraj Chandra Bisht, Lecturer, Ghaziabad UP

वेदों में काव्यनिष्ठा

डॉ. रजनी त्रिपाठी, रीडर हिन्दी विभाग आर.एस.जी.यू. पी.जी. का.पुखरायां

वैदिक संस्कृति वर्तमान परिप्रेक्ष्य में

ए.आर.नायक, संस्कृत विभाग श्यामदालस आर्ट्स कॉलेज भावनगर, गुजरात

वैदिक वाड्मय में पर्यावरण संचेतना जालौन उ.प्र.

डॉ. कौसल्या, वरिष्ठ प्रवक्ता, संस्कृत कालपी कॉलेज, कालपी,

वेद एवं सदाचार, पी.जी. कॉलेज, फर्रुखाबाद

डॉ. श्रीमती सुषमा दुबे, संस्कृत विभागाध्यक्ष एन.ए.के.पी.

वेदों में तत्वज्ञान

श्री राजपरा वनराजभाई नारणभाई, सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, राजकोट

वेद में दर्शन

वालाणी भरतकुमार केशवलाल, सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, राजकोट

धर्मशास्त्रे आत्मविज्ञानम्

ड्रॉ. माधव चन्द्र पण्डा, वरिष्ठ उपाचार्य, श्री जगन्नाथ सं.वि.वि., श्री बिहार, पुरी

किमाश्चर्यम् अतः परम्

डॉ. कृष्ण नारायण पाण्डेय, संयुक्त निदेशक राजभाषा आकाशवाणी, नई दिल्ली

जन्मांग के वारहभाव एवं उनका फल

निधि अग्रवाल, छात्रा बी.ए., तृतीय वर्ष, आई.के.एम. डिग्री कॉलेज, आनापुर, इलाहाबाद, उ.प्र.

मानस पूजा

डॉ. गीतांजलि तिवारी, प्रवक्ता संस्कृत, इमामबाड़ा गर्ल्स पी.जी. कॉलेज, गोरखपुर

वैदिक समाज व्यवस्था एवं विश्वबन्धुत्व

डॉ. धर्मेन्द्र शास्त्री, रीडर संस्कृत विभाग, खालसा कॉलेज, देवनगर नई दिल्ली

Modern Science in the in the Vedas

डॉ. ब्रह्ममुनि, परली वैद्यनाथ, महाराष्ट्र

Vedic Vijnan which is not in modern science

श्रीमती बी.एस. काले, परली वैद्यनाथ, महाराष्ट्र

यज्ञ और उसकी उपयोगिता

डॉ. सुधा सिंह, प्रवक्ता संस्कृत, योग सिंह राजपूत, शोधच्छात्र हिन्दी, अ.मु.वि.वि., अलीगढ़

वैदिक साहित्य में वास्तुशास्त्र

डॉ. विनीता वर्मा, रीडर संस्कृत विभाग, डी.एन. कॉलेज, फतेहगढ़

मुद्रक :- किरण ऑफसैट प्रिंटिंग प्रैस, कनखल हरिद्वार - 01334-245975, 9837007222